सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७७

(१८ दिसम्बर, १९४२ – ३१ जुलाई, १९४४)

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७७

(१८ दिसम्बर, १९४२ – ३१ जुलाई, १९४४)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें (१८ दिसम्बर, १९४२-३१ जुलाई, १९४४) 'आरोग्यकी कुंजी', ९ अगस्त, १९४२ को नेताओंकी गिरफ्तारीके फलस्वरूप हुए दंगोंके लिए कांग्रेसकी जिम्मेदारीपर सरकारके साथ हुआ पत्र-व्यवहार, १९४३ के आरम्भमें ही २१ दिनका उपवास जिसकी कल्पना "प्रभुके सर्वोच्च न्यायालयमें एक अपील" के रूपमें की गई थी, फरवरी १९४४ में कस्तूरबाका निधन, मई १९४४ में डॉक्टरोंकी रायपर गांधीजी की रिहाई और सरकार तथा कांग्रेसके बीच समझौतेके लिए किसी ऐसे आधारकी फिरसे खोज जो लोगोंको अपनी कठिनाइयाँ दूर करने तथा युद्ध-प्रयत्नमें भाग लेने में सहायक हो सके, आदि सामग्री शामिल है।

गांधीजी और वाइसराय लॉर्ड लिनलिथगोके बीच पत्र-व्यवहारकी शुरुआत व्यक्तिगत स्तरपर हुई थी। १९३७ से १९३९ तक प्रान्तीय स्वायत्तताके संवैधानिक प्रयोगके दौरान वाइसरायके साथ गांधीजी के व्यक्तिगत सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हो गये थे और जो लगता था तबसे ऐसे ही बने हुए थे। वाइसरायके धैर्य और सौजन्यकी सार्वजनिक रूपसे प्रशंसा करते हुए गांधीजी ने कहा कि वाइसराय और उनके बीच दोस्ती की गाँठ बँध चुकी है और "वह कभी नहीं टूट सकती" (देखिए खण्ड ७३, पृ० ८४)। इसीलिए भारत छोड़ो प्रस्तावके विरोधमें सरकारने जो व्यापक दमन-चक्र चलाया उसने गांधीजी को बिलकुल स्तब्ध कर दिया। गांधीजी ने घोषणा की थी कि कोई कार्रवाई करने से पूर्व वह वाइसरायको पत्र लिखेंगे। वाइसराय द्वारा उस पत्रका इन्तजार न करने तथा उनके और कांग्रेसी नेताओंके विरुद्ध सरकारी प्रचारसे गांधीजी को बेहद पीड़ा पहुँची। इन सबपर चारसे भी ज्यादा महीनेतक सोचने-विचारने के बाद गांधीजी ने वर्षके अन्तिम दिन वाइसरायको एक "अत्यन्त निजी पत्र" लिखा जिसमें उनसे एक ईसाई, एक मानव और एक भूतपूर्व मित्रके रूपमें अपील की गई थी। "अगर मैं अब भी आपका मित्र हूँ तो आपने यह सख्त कार्रवाई करने से पहले मुझे क्यों बुला नहीं भेजा और अपने सन्देह मुझे क्यों नहीं बताये, और अपने तथ्योंकी सत्यता क्यों निश्चित नहीं कर ली?" उन्होंने एक मित्रके नाते उनसे अनुरोध किया कि वे उन्हें उनकी गलती समझायें (पृ० ४५-४७)।

वाइसरायने गांधीजी के पत्रकी स्पष्टवादिताका स्वागत किया और स्वयं भी वैसी ही स्पष्टवादिता दिखाते हुए यह साफ कर दिया कि कांग्रेस द्वारा अपनाई गई नीतिसे और उससे भी ज्यादा उस नीतिके फलस्वरूप, जैसा कि लाजिमी था, जो हिंसा और अपराध फूट पड़े उसपर गांधीजी और कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा चुप्पी साध लेने से वे "बहुत खिन्न" हुए। वाइसरायने उन्हें आश्वासन दिया कि अब यदि गांधीजी कोई

और विचार रखना चाहें तथा उनके पास कोई व्यावहारिक सुझाव हो तो गांधीजी से जो भी सन्देश प्राप्त होगा उसपर वे गम्भीरतासे विचार करेंगे (पृ० ४७५-७६)।

मैत्रीपूर्ण ढंगसे लिखे गये पत्रकी गांधीजी ने सराहना की और ९ अगस्तके बादकी घटनाओंकी निन्दा की, लेकिन उनके लिए उन्होंने सरकारको दोषी ठहराया। उन घटनाओंके लिए स्वयं गांधीजी को अथवा कांग्रेसको जिम्मेदार ठहराये जाने के वाइसरायके निर्णयको मानने से गांधीजी ने इनकार कर दिया और कहा कि "मैं उन घटनाओंके बारेमें कोई राय प्रकट नहीं कर सकता जिनको मैं प्रभावित नहीं कर सकता या जिनपर कोई नियन्त्रण नहीं रख सकता और जिनका मुझे एकतरफा विवरण ही मिला है" (पृ० ४८)। इसीलिए उन्होंने दुबारा अनुरोध किया कि सरकारने जो आरोप लगाये हैं उनके लिए वे प्रमाण प्रस्तुत करें या फिर उन्हें कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंके साथ ठहरने की इजाजत दी जाये जिससे वे उनकी ओरसे कोई नये सुझाव पेश कर सकें। वाइसरायने दोनों ही अनुरोधोंको अस्वीकार कर दिया और पहले ८ अगस्तके प्रस्तावको वापस लेने का आग्रह किया (पृ० ५०)।

गांधीजी के लिए यह असह्य था। उन्होंने कुछ आवेशमें पूछा: "क्या सरकारकी सख्त और अनुचित कार्रवाई उस हिंसाका कारण नहीं थी? . . . सरकारने लोगोंको इतना उत्तेजित किया कि वे पागल हो उठे।" सरकारकी "भयंकर हिंसा" ने, सामूहिक गिरफ्तारियों तथा व्यापक पैमानेपर संगठित दूसरी दमनात्मक कार्रवाइयोंने बदलेमें लोगोंको भी हिंसा करने को उत्तेजित कर दिया। गांधीजी ने कहा कि यदि मुझे ऐसा मरहम नहीं मिला जो मेरी पीड़ाको दूर करके आराम पहुँचाये तो मुझे "सत्याग्रहियोंके लिए विहित नियम" का पालन करते हुए "यथाशक्ति अनशन" करना होगा (पृ० ५१-५२)। इसपर वाइसरायने उत्तर दिया: "[इस बातके प्रमाण हैं कि] आप और आपके [साथियोंको यह आभास था] कि इस नीतिका परिणाम हिंसा होगी, और आप उसे दरगुजर करने को तैयार थे, और जो हिंसा बादमें हुई वह एक ऐसी संगठित योजनाका अंग थी जो कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीके बहुत पहले ही तैयार कर ली गई थी।" उनकी दृष्टिमें यह संकल्पित अनशन "एक ऐसा अनुचित राजनीतिक दबाव (हिंसा) है जिसका कोई नैतिक औचित्य नहीं हो सकता" (पृ० ४७७-७९)।

गांधीजी ने वाइसरायके पत्रको "अनशन करने का आमन्त्रण" माना। अपने इस कथनको दोहराते हुए कि उन्होंने वाइसरायको जो पत्र लिखा था वह खुले दिमागसे लिखा था जिससे कि वे उनकी गलतीके लिए उन्हें कायल कर सकें, गांधीजी ने वाइसरायके दावोंका संक्षेपमें उत्तर देते हुए अन्तमें कहा: "मैंने अपने लिए जो कड़ी परीक्षा निर्धारित की है उससे बचने का आपने मेरे लिए कोई रास्ता नहीं छोड़ा है। . . . आनेवाली पीढ़ियाँ इस बातका निर्णय करेंगी कि सर्वाधिकार-सम्पन्न सरकारके प्रतिनिधि-स्वरूप आप और अपने देशकी सेवा करनेवाले और देशके माध्यमसे मनुष्य-मात्रकी सेवा करनेवाले मुझ तुच्छ व्यक्तिमें से कौन गलतीपर था" (पृ० ५४-५६)।

अनशन ९ फरवरी, १९४३ को आरम्भ हुआ। सरकारने गांधीजी के सामने "अनशन करने के लिए एवं अनशनकी अवधिके लिए" उन्हें रिहा करने का प्रस्ताव रखा। लेकिन गांधीजी ने यह कहते हुए प्रस्ताव ठुकरा दिया कि मैंने "स्वतन्त्र मनुष्यकी हैसियतसे अनशन करने का विचार नही किया था" और इसलिए यदि मुझे रिहा कर दिया जाता है तो अनशन भी नही होगा। मुझे स्थितिपर नये सिरेसे विचार करके फैसला करना होगा कि मुझे क्या करना चाहिए। अतिरिक्त गृह-सचिवको पत्रमें उन्होंने लिखा कि मैं झूठे बहाने बनाकर रिहा होना नही चाहता। उन्होंने आगे कहा: "मेरे विरुद्ध जो-कुछ भी कहा गया है, उसके बावजूद मैं सत्य और अहिंसाके व्रतका पालन करूँगा, क्योंकि ऐसा करने से ही मै जीवनको जीने योग्य पाता हूँ" (पृ० ५७)। इस स्पष्टवादिताका सरकारी अधिकारियोंपर कोई प्रभाव नही पड़ा और सर रेजिनल्ड मैक्सवेलने रूखेपनसे कहा कि सकल्पित अनशनका "इसके सिवाय कोई और मतलब नही प्रतीत होगा" कि वे "अपनी रिहाईकी माँग कर रहे है" (पृ० ८६)।

अनशनके दौरान जिन-जिन लोगोने भी गांधीजी से भेंट की उन समीने इस तरह की गलतबयानियोंके प्रति गांधीजी की "अभूतपूर्व मानसिक पीड़ा" की चर्चा की। 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवीने लिखा: उन्हें इस बातका अपार दु:ख था कि और तो और, लॉर्ड लिनलिथगोने भी "उन्हें इतना गलत समझ लिया है कि वे उनके बारेमें . . . यह सोचते है कि वे [गांधीजी] कभी भी किसी प्रकारकी हिंसाकी इजाजत दे सकते हैं" (पृ० ६१)। सितम्बर १९४३ में वाइसरायके भारत रवाना होने से एक दिन पहले वाइसरायको भेजे अपने अन्तिम पत्रमें गांधीजी ने लिखा: "मै आशा और प्रार्थना करता हूँ कि प्रभुकी प्रेरणासे आप किसी दिन समझ जायेंगे कि एक महान राष्ट्रके प्रतिनिधिके रूपमें आपसे एक गम्भीर भूल हुई।" इसका उत्तर देते हुए लॉर्ड लिनलिथगोने लिखा कि सम्बन्धित घटनाओंका गाधीजी जो अर्थ लगाते है उसे स्वीकार करने में वे सर्वथा असमर्थ है। उन्होंने तटस्थ भावसे और आदरके साथ कहा: "जहाँतक समय और चिन्तनकी भूल दिखाने की क्षमताका सम्बन्ध है, स्पष्ट ही वह सबपर समान रूपसे लागू होती है और बुद्धिमत्ताका तकाजा यही है कि कोई भी उसके सत्प्रभावको नकारे नही" (पृ० २१६)।

गांधीजी और वाइसरायके बीचके सम्बन्धका, जो दोनोंके लिए कभी महत्त्वपूर्ण था, दु:खद अन्त उन उद्देश्योंके बीच परस्पर संघर्षका स्वाभाविक परिणाम था जिसका कि वे दोनों प्रतिनिधित्व कर रहे थे — वाइसराय साम्राज्यके सरकारी प्रवक्ताके रूपमें प्रतिनिधित्व कर रहे थे और गांधीजी उस पराधीन भारतके नेताके रूपमें जो साम्राज्यका अन्त करने के प्रयत्नमें लगे थे। जहाँ एक ओर कांग्रेसकी माँग ब्रिटिश राज द्वारा तुरन्त सत्ता त्याग करने की थी वहाँ ब्रिटिश सरकारका इरादा युद्धके पश्चात् भी भारतको वास्तविक स्वतन्त्रता देने का नही था। ब्रिटिश सरकार तो भारतके हितोंको ऐसे जंजालमें फँसाने के लिए कटिबद्ध थी जिसमें भारत हमेशाके लिए ब्रिटेनके अधीन रह सके। नये वाइसराय लॉर्ड वैवेलने, जो एक निर्भीक योद्धा तो थे लेकिन सूक्ष्म-दर्शी कूटनीतिज्ञ भी कुछ कम नहीं थे, अपना यह इरादा फरवरी १९४४ में केन्द्रीय

विधान-सभामें दिये भाषणमें प्रकट कर दिया था। उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश लोगोंकी यह कामना है और संकल्प है कि "संवैधानिक समस्याका समाधान निकालते समय उन सबके हितोंका पूरा ध्यान रखा जाये जिन्होंने इस युद्धमें और पहले सभी मौकोंपर वफादारीसे हमारा साथ दिया है—अर्थात् सैनिक लोग, जिन्होंने समान ध्येयमें योग दिया है; वे लोग जिन्होंने हमारे साथ काम किया है; देशी राज्योंके राजा और वहांकी जनता, जिनके प्रति हम वचनवद्ध हैं; वे अल्पसंख्यक वर्ग जिनका हम पर विश्वास रहा है कि हम उन्हें उचित न्याय दिलायेंगे।" भारतके लोगोंके मनोवैज्ञानिक पतनको देखते हुए गांधीजी ने इस कार्यक्रममें होनेवाले खतरेको अनुभव किया और वाइसरायकी घोषणापर इस प्रकार टिप्पणी की: "इसमें परिस्थितिको जिस प्रकार देखा-समझा गया है वह मेरे मतमें निराशाजनक है। . . . ऐसी निराशाजनक परिस्थितिको देखकर ही "भारत छोड़ो" की व्यथित पुकार फूट उठी थी।" (पृ० २६१-६२)।

गांधीजी से ब्रिटिश सरकार इस कदर नाराज थी कि रुग्ण कस्तूरबाको एक निजी परिचारक मुहैया करने के लिए और उनकी मर्जीके मुताबिक प्राकृतिक चिकित्सक तथा वैद्यकी सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए बहुत ज्यादा जोर डालने की तथा बार-बार शिकायतें करने की जरूरत पड़ी। कस्तूरबाके इलाजके दौरान सुविधाएँ देने में "शोभा और उदारताका नितान्त अभाव रहा है" (पृ० २३५)। और गांधीजी ने तो कस्तूरबाको किसी दूसरी जेलमें स्थानान्तरित करने की भी बात कही जिससे वे मरीजकी पीड़ाके "असहाय दर्शक" बनकर न रह जायें (पृ० २४५)। २२ फरवरीको कस्तूरबाका निधन हो गया। लेकिन कस्तूरबाकी अन्तिम बीमारीके दौरान दी जानेवाली डॉक्टरी और अन्य सुविधाओंके सम्बन्धमें जो बहस थी वह चलती रही और कॉमन्स-सभा तथा केन्द्रीय विधान-सभामें भी चर्चाका विषय रही।

जब गांधीजी स्वयं बीमार पड़े तो वाइसरायने लन्दन रिपोर्ट भेजी कि भविष्यमें "गांधीजी की राजनीतिमें कोई सक्रिय भूमिका नही रह पायेगी" और आगे कहा कि "अगर गांधीजी की नजरबन्दीके दौरान मृत्यु हो गई तो सरकारके विरुद्ध जन-विद्रोह भड़क उठेगा।" इसलिए ६ मई, १९४४ को उन्होंने गांधीजी को "डॉक्टरोंकी रायपर" रिहा करने का आदेश दे दिया (पृ० २७९)। गांधीजी प्रसन्न नही थे और फिर मन और शरीरसे भी कमजोर हो गये थे। लेकिन १४ मईको एक मित्रको उन्होंने लिखा: "आज मैं कह सकता हूँ कि मैं अच्छा हूँ, क्योंकि पिछली रात मुझे वह चीज वापस मिल गई जिसे मैंने कुछ समयके लिए खो दिया था अर्थात् ईश्वरमें जीवन्त आस्था" (पृ० २८९)। और इसी आस्थाके उजागर होने से गांधीजी ने अपनेको "डॉक्टरोंके नियन्त्रणसे" मुक्त कर लिया और अपने मनोबलकी परीक्षा करने के लिए एक पखवाड़ेका मौन-व्रत धारण कर लिया (पृ० २९०)।

नई स्थितिका अध्ययन करने में और देश जिस विकट स्थितिमें फँसा हुआ था उसमें से उसे बाहर निकालने के लिए कोई रास्ता ढूँढ़ने में गांधीजी को कुछ समय लगा। वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीने गांधीजी को लिखे पत्रमें जन-समुदायकी भावनाओंका इस

प्रकार प्रदर्शन किया : "आपके साथ भारी अन्याय किये गये हैं और वे पुकार-पुकार कर कहते हैं कि उनका मार्जन हो। किन्तु इस समय भविष्यका महत्त्व अतीतसे कही अधिक है। . . . मै पूरे हृदयसे आपसे विनती करता हूँ कि विश्व-शान्तिकी माँगपर ध्यान दें।" गांधीजी ने उत्तर दिया : "जो वर्त्तमान मेरे सामने है, क्या वही भविष्यका निर्माण नही करेगा ?" (पृ० ३४२)।

२९ जूनको पूनामें कांग्रेसियोंके साथ हुई एक अनौपचारिक बैठकमें गांधीजी ने वर्त्तमान स्थितिका आँखों-देखा वर्णन किया : "चारों तरफ काले बादल दिखाई देते है। सल्तनत सख्त बनकर बैठी है। कोई रास्ता दिखाई नही पड़ता। . . . कई लोग मुझे गालियाँ देते है।" इसपर भी गांधीजी ने दावा किया कि उन्हें कोई निराशा नही होती। "निराशा . . . अपूर्णता तथा श्रद्धाकी कमीके कारण ही हो सकती है।" सत्य तथा अहिंसामें गांधीजी की हमेशा ही गहन आस्था रही है। वे इन्हें कोई व्यक्तिगत गुण नही अपितु सामान्य आचार-व्यवहारके सिद्धान्त मानते रहे हैं। यह उनका दृढ़ विश्वास था कि "जिस हदतक सत्य और अहिंसाका प्रयोग हुआ है, उसी हदतक हमें सफलता मिली है। इसका हिसाब आप गणितशास्त्रसे कर सकते है" (पृ० ३६१)। उनकी रायमें गोपनीयता "पाप है, और हिंसाका लक्षण है" तथा सभी भूमिगत प्रवृत्तियाँ वर्जित हैं। अपने कार्यकर्त्ताओंको उनकी यही सलाह थी (पृ० ३२६)।

लेकिन गांधीजी को लगा कि आन्दोलनमें गोपनीयता तथा तोड़-फोड़की कार्रवाइयाँ अपनी नजरबन्दीके दौरान जितनेकी उन्होंने कल्पना की थी उससे कही ज्यादा बड़े पैमानेपर हुई थी। जैसा कि होरेस अलेक्जैंडरको उन्होंने लिखा भी कि "तुमने मुझे जो-कुछ बताया है उसमें से कुछ बातोंका तो मुझे जेलसे बाहर आते ही पता चल गया था और इनमें से कुछ तो चौंका देनेवाली हैं।" वैसे उन्होंने जनताके रोष की, जो उनकी दृष्टिमें क्षम्य था, भर्त्सना करने से तो इंकार कर दिया लेकिन इतना कहा कि "प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित होकर जो अमानवीय कार्रवाइयाँ की गईं वे किसी भी प्रकार उचित नही मानी जा सकती" (पृ० ३९४-९५)। और फिर समाचारपत्रोंको दी गई भेंटमें उन्होंने जन-साधारणके कार्योंको सत्य और अहिंसाके मापदण्डसे मापने से तबतक इंकार कर दिया जबतक कि वही मापदण्ड सरकारी कार्यो पर भी लागू नही होता (पृ० ४३१)। वास्तवमें जिन लोगोंने, पूरे उत्तरदायित्वके साथ, गांधीजी द्वारा निर्धारित आदर्शोंको बदलने की व्यवस्था की थी गांधीजी ने उनके साहस और देशभक्तिकी सराहना की। उन्होंने अरुणा आसफ अलीको, जो भूमिगत थी, लिखा कि "यह संघर्ष रोमाचक घटनाओं और वीरतासे परिपूर्ण रहा है" और उन्हे सलाह दी कि वे आत्म-समर्पण कर दें। लेकिन यह आत्म-समर्पण दुर्बलतासे नही बल्कि शक्तिसे उद्भूत होना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें यदि उन्हें यह नही लगता कि आत्म-समर्पण बेहतर रास्ता है तो वे आत्म-समर्पण न करें। साथ-साथ गांधीजी ने उन्हें यह भी आश्वासन दिया कि "तुम कुछ भी करो, मैं तुमपर फतवा नहीं दूंगा" (पृ० ३६४-६५)।

बालकृष्ण भावेको गांधीजी ने लिखा : "मैंने यह सीखा है कि हमें अपने साथियोंके कार्योंपर तुरन्त कोई निर्णय नही दे देना चाहिए। सम्बद्ध व्यक्तिके सम्मुख

विचारार्थ दूसरा पक्ष भी रखना चाहिए और उस व्यक्तिको ही निर्णय करने देना चाहिए" (पृ० ३४१)। चाहे नीतिके रूपमें हो या सिद्धान्तके तौरपर, हिंसा और अहिंसाके तत्वका निर्णय हर कार्यकर्त्ताको अपनी बुद्धि और हृदयके निर्देशपर करना चाहिए (पृ० ३२६)। जैसा कि एक पत्र-प्रतिनिधिको समझाते हुए उन्होने लिखा कि हालाँकि संगठित बुराईका प्रतिरोध भी संगठित ही होना चाहिए लेकिन सत्याग्रहके संगठनकर्त्ताओंको बुराईके संगठनकर्त्ताओंका अनुकरण नहीं करना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैंने कोशिश की और "बुरी तरह नाकामयाब" रहा। हालाँकि यह उन्हें नहीं मालूम कि बुराईकी शक्तियोंके विरुद्ध अच्छाईकी शक्तियोंको संगठित करने का ठीक-ठीक मार्ग क्या है, लेकिन उन्हें लगा कि उसका मार्ग "जहाँतक सम्भव हो, व्यक्तिका परिपूर्ण बनना है"। वैसे उन्होंने यह स्वीकार किया कि "मैं तो अब भी टटोल ही रहा हूँ" (पृ० ४३३-३४)।

जेलमें गांधीजी को मार्क्सके बारेमें तथा रूसमें होनेवाले "महान प्रयोग" के बारेमें जो भी साहित्य हाथ लगा वह सब उन्होंने पढ़ा। उन्हें इस बातने बहुत प्रभावित किया कि भारतके समान वहाँ भी "सारी जनताको यज्ञमें शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया जाता है" (पृ० २९५)। लेकिन उन्होंने रूसी और भारतीय प्रयोगोंके बीच जो मौलिक भेद है उसे भी महसूस किया। हालाँकि हर प्रकारके संघर्षके माध्यमसे देशने प्रगति ही की है, लेकिन उनका अब भी यही विचार है कि भारतमें "यदि हमने मेरी कल्पना की अहिंसात्मक वीरता दिखाई होती तो प्रगति इससे भी कही अधिक हुई होती" (पृ० २८५)। वे "इतिहासके इस न्याय" को नही समझ पाये जिसने साम्राज्यवादी युद्धको जन-युद्ध में परिवर्तित कर दिया था। जेलसे रिहा होने के बाद गांधीजी ने कम्युनिस्ट पार्टीके महासचिव पूरणचन्द्र जोशीके साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया और उनसे अनुरोध किया कि वे उनकी पार्टीके प्रति गांधीजी के पूर्वग्रहको धैर्यपूर्वक और तर्क-वितर्क द्वारा दूर करने का प्रयत्न करें (पृ० ४६४)। लेकिन इस पत्र-व्यवहारका कोई निष्कर्ष नही निकला।

अपनी नजरबन्दीके ही दौरान गांधीजी ने सहिष्णुता और शिष्टताके साथ नये वाइसराय लॉर्ड वैवेलके साथ बातचीत शुरू कर दी। अपनेको मानव-जातिका, जिसमें अंग्रेज भी शामिल है, मित्र और सेवक मानते हुए उन्होंने समझाया कि किस प्रकार भारत छोड़ो फार्मूलेमें "सम्पूर्ण मानवताके सन्दर्भमें ब्रिटेनके प्रति अधिकसे-अधिक मैत्रीका भाव भरा हुआ है" और अंग्रेजोंके एक मित्र तथा मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंके समर्थकके रूपमें गांधीजी ने "ब्रिटेन के उच्च पदस्थ लोगों" द्वारा "अपने हृदयोंको टटोलने" के लिए कहा (पृ० २४८-४९)।

अपनी रिहाईके बाद गांधीजी को बदलती हुई परिस्थितियोके अनुरूप कांग्रेस-नीतिमें संशोधन करने की जरूरत तो महसूस हुई लेकिन उन्हें "जनताको जैसी जलालतमें रखा जा रहा है उसके कायम रहते . . . सहयोगकी कोई सूरत नजर नही" आई (पृ० ३५८)। देश-भरके लोगों और विदेशियोंने उनसे "सबकी भलाईके लिए कोई ठोस योगदान करने" का आग्रह किया। लेकिन वे स्वयं कोई कदम उठाने के

लिए तैयार नही थे। उन्होने वाइसरायको पत्र लिखा जिसमें अहमदनगरमें बन्द कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योसे मिलने की इजाजत माँगी गई थी। और जैसी कि उम्मीद थी, उनके अनुरोधको ठुकरा दिया गया और बदलेमें उनसे "भारतके कल्याणके लिए . . . कोई निश्चित और रचनात्मक नीति" सुझाने के लिए कहा गया (पृ० ३३७)।

'न्यूज क्रॉनिकल' के प्रतिनिधि स्टुअर्ट गेल्डरके साथ भेंट-वार्त्ताके दौरान गांधीजी ने उपरोक्त बातपर ही जोर दिया। उन्होंने कहा कि अभी सविनय अवज्ञा करने का मेरा कोई इरादा नही है। मैं तो "ऐसी राष्ट्रीय सरकारसे सन्तोष" मानूँगा "जिसका नागरिक प्रशासनपर पूर्ण नियन्त्रण हो।" उन्होंने कहा कि युद्धका पूर्ण विरोधी होने के नाते मैं तो युद्ध-प्रयत्नमें राष्ट्रीय सरकारका बिना कोई प्रतिरोध किये अलग हट जाऊँगा। लेकिन इसी आशासे काम करूँगा कि मेरा इतना प्रभाव हमेशा रहे कि "भारतका मानस शान्तिवादी" बना रहे और समस्त मानव-जातिके बीच भाईचारा रहे (पृ० ३७२-७३)।

गांधीजी ने यह प्रस्ताव सरकारके सामने रखने के बजाय जो समाचारपत्रके प्रतिनिधिके सम्मुख रखा वह इस कारण कि गांधीजी औपचारिक रूपसे इस प्रस्तावपर अपना अनुमोदन देने से पहले जनताकी प्रतिक्रिया जानना चाहते थे। प्रतिक्रिया कोई खास उत्साहजनक नही रही। जहाँ विदेशी पत्रकारोंने इसे कांग्रेसकी "करारी हार" की संज्ञा दी (पृ० ४२९) वहाँ भारतीय आलोचकोंने यह शिकायत की कि गांधीजी ने "देशहितके साथ घात" किया है (पृ० ४०८)। वैसे गांधीजी यह मानते थे कि "यदि अपना प्रस्ताव अपने-आपमें सही हो तो गलत समझे जाने या उसके ठुकराये जाने की आशंकासे डरना नही चाहिए।" पूरा देश, विशेषकर बंगाल, अकालका शिकार हो गया था और गांधीजी ने यह अनुभव किया कि स्थितिका तकाजा यही है कि ऐसी जन-निर्वाचित सरकारकी स्थापना हो जिसपर केन्द्र और प्रान्तोंके नागरिक प्रशासनका उत्तरदायित्व हो। लेकिन इस प्रकारका कार्यभार सँभालने से पहले शर्त यही होगी कि युद्धके बाद भारतको पूर्ण स्वतन्त्रता देने की बातकी घोषणा हो (पृ० ४३० और ३७२)। २७ जुलाईको गांधीजी ने वाइसरायको एक पत्र लिखा जिसमें यही ठोस सुझाव रखा गया था और इसके आधारपर उन्हें मैत्रीपूर्ण वार्त्ताके लिए आमन्त्रित किया गया था (पृ० ४५५)। १५ अगस्तको वाइसरायने गांधीजी को सूचित किया कि प्रस्ताव "महामहिमकी सरकारको वार्त्ताके आधारके रूपमें स्वीकार्य नहीं है" (पृ० ५१७)।

आगाखाँ महलमें अपनी नजरबन्दीके शुरूके चार महीनोंके दौरान गांधीजी ने "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान" विषयपर लिखे लेखोंको, जो ३० वर्ष पहले 'इंडियन ओपिनियन' में (खण्ड ११ और १२) प्रकाशित हो चुके थे, अपनी याददाश्तके आधारपर संशोधित और संक्षिप्त रूपमें दोबारा लिखना आरम्भ कर दिया। इस नये विवरणमें आरोग्यकी समस्याओंके प्रति गांधीजी की निरन्तर रुचि परिलक्षित होती है। शरीरकी देख-भालसे लेकर आध्यात्मिक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके हेतु शरीरके सही उपयोगके प्रति गांधीजी की चिन्तामें साल-दर-साल वृद्धि ही होती रही। शरीर तो

आत्माके रहने के लिए मन्दिर और ईश्वरकी रचना — जगतकी सेवाके लिए समर्पित साधन-मात्र है। शरीर अपना यह कार्य सुचारु रूपसे कर सके, इसके लिए समस्त इन्द्रियों और मनको सभी आन्तरिक तनावोंसे मुक्त पूर्ण सामंजस्यके साथ काम करना पड़ता है (पृ० १२-१४)। शरीर और मनपर इस पूर्ण नियन्त्रणकी परिणति पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्राप्तिमें होती है।

ब्रह्मचर्य-पालनकी दिशामें गांधीजी का प्रयोग जारी रहा और उन्हें आशा थी कि यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो "पूर्ण सफलता भी शायद यह देह छूटने से पहले मिल जाये।" जहाँ गांधीजी ने यह स्वीकार किया कि इस तरहका प्रयोग सामान्य अनुभवसे उलटा है, वहाँ उन्होंने यह भी कहा कि कभी-कभी हमें प्रगति करने के लिए "सामान्य अनुभवसे आगे भी जाना पड़ता है" और कभी-कभी तो "सामान्य अनुभव" के विरुद्ध भी जाना पड़ता है। जो बात भौतिक वस्तुओंपर लागू होती है, वही आध्यात्मिकपर भी होती है (पृ० २९-३०)। जिस व्यक्तिने इन आत्मनिष्ठ इच्छाओंसे मुक्ति पा ली उसके लिए न केवल पुरुष और स्त्रीमें ही कोई भेद न रह जायेगा बल्कि वह पाँचों तत्त्वोंमें अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व आकाश, जो उतना ही रहस्यपूर्ण है जितना ईश्वर, के साथ भी मेल साध लेगा। इस शून्य अथवा खालीपनसे मेल साधने के लिए यह जरूरी है कि हम उस अनन्तमें लीन हो जायें। हमें अपना जीवन ऐसे बिताना चाहिए जिससे "इस सुदूर और अदूर तत्त्वके और हमारे बीचमें कोई आवरण नहीं" रहे, और "घर-बारके बिना, या कपड़ोंके बिना" हम इस अनन्तके साथ सम्बन्ध जोड सकें (पृ० ४२)। इसलिए मनुष्यके सोनेका स्थान, वर्षा-ऋतुके अलावा आकाशके नीचे होना चाहिए, जिससे उसकी आँखोंको "तारागणोंका भव्य संघ घूमता ही दिखाई" दे। "जो मनुष्य उनके साथ सम्पर्क साधकर सोयेगा, उन्हें अपने हृदयका साक्षी बनायेगा, वह अपवित्र विचारोंको कभी अपने हृदयमें स्थान नहीं देगा..." (पृ० ४३)।

तारामण्डलके दर्शनमें निहित जीवनका यह मोहक दृश्य बाहरी सौन्दर्यकी पवित्रता को ही आन्तरिक शुद्धिका प्रतीक माननेवाली गांधीजी की वैष्णव भावनाका व्यक्तिगत चित्रण है। यात्राके अन्तमें मनुष्य और प्रकृतिके बीच ऐसी समरसताकी अनुभूति वास्तवमें उस अवर्णनीय आनन्दका पूर्वानुभव है। लेकिन अपनी विनम्रतावश गांधीजी ने स्वयंको ऋषि कहलाने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा : "मैं तो जो हूँ, मुझे वही रहने दो — अर्थात् भारतका और उसके माध्यमसे मानवताका एक साधनारत सेवक" (पृ० ३०६)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा पत्र-पत्रिकाओंके आभारी हैं:

संस्थाएँ: साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय, नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, ब्रिटिश हाई कमीशन, नई दिल्ली; इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता और महाराष्ट्र सरकार, बम्बई।

व्यक्ति: श्रीमती अमृतकौर; श्री अमृतलाल चटर्जी, कलकत्ता; श्री आनन्द तो० हिंगोरानी, इलाहाबाद; श्री एस० पी० के० गुप्त, नई दिल्ली; श्री क० मा० मुंशी, बम्बई; श्री कान्तिलाल गांधी, बम्बई; श्री गजानन एन० कानिटकर; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार; श्री छगनलाल गांधी; डॉ० जोसिया ओल्डफील्ड, सेवेन ओक्स, केन्ट; डॉ० नाथूभाई पटेल, बम्बई; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली; श्रीमती प्रेमाबहन कंटक, सासवाड; श्री बालकृष्ण भावे, उरुलीकाचन; श्री मंगलदास पकवासा, बम्बई; श्रीमती मंजुला म० मेहता; श्री माणेकलाल अमृतलाल गांधी; श्री मुन्नालाल गं० शाह, सेवाग्राम; श्रीमती रामेश्वरी नेहरू; श्रीमती वनमाला म० देसाई, नई दिल्ली; श्रीमती विजयाबहन म० पंचोली, सनोसरा; आचार्य वी० पी० लिमये, पूना; श्री शान्तिकुमार न० मोरारजी, बम्बई; श्री शारदाबहन गो० चोखावाला, सूरत; श्री सुरेन्द्र मशरूवाला, बम्बई; श्री हरिभाऊ जोशी और श्री होमी० पी० मोदी, बम्बई।

पुस्तकें: 'आरोग्यकी कुंजी', 'इन द शैडो ऑफ द महात्मा', '(द) इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, १९४३ और १९४४', 'कॉरस्पॉण्डेन्स बिटवीन महात्मा गांधी ऐंड पी० सी० जोशी', 'कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, अगस्त १९४२ – अप्रैल १९४४', 'गांधी-जिन्ना टॉक्स', 'गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४ और १९४४-४७', 'ग्लिम्पसेज ऑफ गांधीजी', 'ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, १९४२-४७', जिल्द ३, 'दिस वाज बापू', 'पिल्ग्रिमेज टु फ्रीडम', 'प्राणलाल देवकरण नानजी अभिनन्दन-ग्रन्थ', 'बापुनी प्रसादी', 'बापूके पत्र: बीबी अमतुस्सलामके नाम,' 'महात्मा — लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', जिल्द ६, 'महात्मा गांधी — द लास्ट फेज', जिल्द १, भाग १, 'महाराष्ट्रके कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके साथ महात्मा

गांधीकी बातचीत', 'लेटर्स ऑफ द राइट ऑनरेबल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री' और 'संस्मरणो'।

पत्र-पत्रिकाएँ: 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'लिंक', 'हरिजन', 'हितवाद' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अ० भा० कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स लाइब्रेरी, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली, इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता और श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र है। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके भी आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों की स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनाने का भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके है, उनका हमने मूलसे मिलान और संशोधन करने के बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणोंके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकों में दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नही हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये है। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजी के नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है, लेकिन जिन लेखों, टिप्पणियों आदिके अन्तमें लेखन-तिथि दी गई है उनमें उसे यथावत् रहने दिया गया है। जहाँ वह उपलब्ध नहीं है, वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है, और आवश्यक होने पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें प्रसंगानुसार मास तथा वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उनका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोंका, 'एस० जी०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध सामग्रीकी फोटो-नकलोंका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत दस्तावेजोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

परिशिष्ट :

चित्र-सूची

१. आरोग्यकी कुंजी[1]

विषय-सूची

पहला भाग

दूसरा भाग

१. गांधीजी ने इस पुस्तकके अध्याय मूलतः गुजरातीमें लिखे थे, किन्तु प्रकाशकके अनुसार, उन्होंने सुशीला नैयर द्वारा किये इसके हिन्दुस्तानी अनुवादको जाँच लिया था। इसलिए इसे स्वयं गांधीजी का किया अनुवाद माना जा सकता है। अतः हमने यहाँ उसी प्रकाशित अनुवादका उपयोग यत्किंचित् शाब्दिक परिवर्तनोंके साथ किया है। इस शीर्षकको उस तिथिके अन्तर्गत रखा गया है जिस तिथिको गांधीजी ने इसके अन्तिम अध्यायका संशोधन किया। गांधीजी द्वारा लिखी इसकी प्रस्तावनाके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ४५४-५५।

विषय-सार[1]

पहला भाग

१. यह विषय-सार गांधीजी ने खुद तैयार किया था, इसलिए यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

दूसरा भाग

पहला भाग

१. शरीर

२८ अगस्त, १९४२[1]

शरीरके परिचयसे पहले आरोग्य किसे कहते हैं यह समझ लेना ठीक होगा। आरोग्यके मानी है तन्दुरुस्त शरीर। जिसका शरीर व्याधिरहित है, जिसका शरीर सामान्य काम कर सकता है, अर्थात् जो मनुष्य वगैर थकानके रोज दस-वारह मील चल सकता है, वगैर थकानके सामान्य मेहनत-मजदूरी कर सकता है, सामान्य खुराक पचा सकता है, जिसकी इन्द्रियाँ और मन स्वस्थ है, ऐसे मनुष्यका शरीर तन्दुरुस्त कहा जा सकता है। इसमें पहलवान या अतिशय दौड़ने-कूदनेवाले का समावेश नहीं है। ऐसे असाधारण वलवाले व्यक्तिका शरीर रोगी हो सकता है। ऐसे शरीरका विकास एकांगी कहा जायेगा।

इस आरोग्यकी साधना जिस शरीरको करनी है उस शरीरका कुछ परिचय आवश्यक है।

प्राचीन कालमें कैसी तालीम दी जाती होगी यह तो विधाता ही जाने, या शोध करनेवाले लोग कुछ जानते होंगे। आधुनिक तालीमका थोड़ा-वहुत परिचय हम सभीको है। इस तालीमका हमारे दिन-प्रति-दिनके जीवनके साथ कोई सम्वन्ध नहीं होता। शरीरसे हमें सदा काम पड़ता है, मगर फिर भी आधुनिक तालीमसे हमें शरीरका ज्ञान नहींके वरावर होता है। अपने गाँव और खेतोंके वारेमें भी हमारे ज्ञानका यही हाल है। अपने गाँव और खेतोंके वारेमें तो हम कुछ भी नही जानते, मगर भूगोल और खगोलको तोतेकी तरह रट लेते हैं। यहाँ कहने का अर्थ यह नही कि भूगोल और खगोलका कोई उपयोग नहीं है, मगर हर चीज अपने स्थानपर अच्छी लगती है। शरीरके, घरके, गाँवके, गाँवके चारों ओरके अंचलके, गाँवके खेतों में पैदा होनेवाली वनस्पतियोंके और गाँवके इतिहासके ज्ञानका पहला स्थान होना चाहिए। ज्ञानके इस पायेपर खड़ा दूसरा ज्ञान जीवनमें उपयोगी हो सकता है।

२९ अगस्त, १९४२

शरीर पंचभूतका पुतला है। इसीपर से कविने गाया है:

पवन, पानी, पृथ्वी, प्रकाश और आकाश,
पंचभूतके खेलसे वना जगतका पाश।

शरीरका व्यवहार दस इन्द्रियों और मनके द्वारा चलता है। दस इन्द्रियोंमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ है, अर्थात् हाथ, पैर, मुँह, जननेन्द्रिय और गुदा। ज्ञानेन्द्रियाँ भी पाँच

१. यह और आगे दी गई तिथि-पंक्तियाँ मूल गुजराती पुस्तक आरोग्यनी चावी से ली गई हैं।

है — स्पर्श करनेवाली त्वचा, देखनेवाली आँखें, सुननेवाले कान, सूँघनेवाली नाक और स्वाद या रस पहचाननेवाली जीभ। मनके द्वारा हम विचार करते हैं। कोई-कोई मनको ग्यारहवी इन्द्रिय कहते हैं। इन सब इन्द्रियोका व्यवहार जब सम्पूर्ण रीतिसे चलता हो तभी शरीर पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है। ऐसा आरोग्य बहुत ही कम देखने में आता है।

शरीरके अन्दरके विभाग हमें चकित कर देते हैं। शरीर जगतका एक छोटा-सा मगर सम्पूर्ण नमूना है। जो शरीरमें नही है, वह जगतमें भी नही है। और जो जगतमें है, वह शरीरमें है। इसी परसे यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे यह महत्त्वपूर्ण कथन निकला है। इसलिए अगर हम शरीरको पूर्णतया पहचान सकें तो जगतको पहचान सकते हैं। मगर जब बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य और हकीम भी इसे पूरी तरह नहीं पहचान पाये, तो हमारे जैसे सामान्य प्राणी भला किस गिनतीमें है? आजतक ऐसे किसी यन्त्रकी शोध नही हो पाई जो मनको पहचान सके। शरीरके अन्दर और बाहर चलनेवाली क्रियाओका विशेषज्ञ आकर्षक वर्णन कर सके हैं, मगर ये क्रियाएँ कैसे चलती हैं, यह कोई नही बता सका। मौत क्यों आती है, वह कब आयेगी, यह कौन कह सका है? अर्थात् मनुष्यने बहुत पढा, विचार किया और अनुभव किया, मगर परिणाममें उसको अपनी अल्पज्ञताका ही अधिक भान हुआ है।

शरीरके अन्दर चलनेवाली अद्भुत क्रियाओंपर इन्द्रियोंका स्वस्थ रहना निर्भर है। शरीरके सब अंग नियमानुसार चलें तो शरीरका व्यवहार अच्छी तरहसे चलता है। एक भी अंग अटक जाये तो गाड़ी चल नही सकती। उसमें भी पेट अपना काम ठीक तरहसे न करे तो शरीर ढीला पड़ जाता है। इसलिए अपच या कब्जियतकी जो लोग अवहेलना करते हैं वे शरीरके धर्मको जानते ही नहीं। इन दो रोगोंसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

३० अगस्त, १९४२

अब हमें विचार करना है कि शरीरका उपयोग क्या है।

हरएक चीजका सदुपयोग और दुरुपयोग हो सकता है। यह नियम शरीरके बारेमें भी लागू होता है। शरीरका उपयोग स्वार्थके लिए, स्वेच्छाचारके लिए, दूसरों को नुकसान पहुँचाने के लिए किया जाये तो यह उसका दुरुपयोग होगा। किन्तु यदि उसी शरीरका उपयोग सारे जगतकी सेवाके लिए किया जाये और इस हेतुसे संयम का पालन किया जाये तो वह उसका सदुपयोग होगा। आत्मा परमात्माका अंश है। उस आत्माको पहचानने के लिए अगर हम इस शरीरका उपयोग करते है तो शरीर आत्माके रहने का मन्दिर बन जाता है।

शरीरको मल-मूत्रकी खान कहा गया है। एक तरहसे इस उपमामें तनिक भी अतिशयोक्ति नही है। परन्तु यदि शरीर केवल मल-मूत्रकी खान ही हो तो उसकी सँभालके लिए इतने यत्न करना कोई अर्थ नही रखता। पर इसी “नरककी खान” का सदुपयोग हो, तो उसे साफ-सुथरा रखकर उसकी सँभाल करना हमारा धर्म हो

जाता है।[1] हीरे और सोनेकी खान भी ऊपरसे देखने पर तो मिट्टीकी खान ही लगती है, पर उसमें हीरा और सोना है, इसलिए मनुष्य उसपर करोड़ों रुपये खर्च करता है, और उसके पीछे अनेक शास्त्रज्ञ अपनी बुद्धिका उपयोग करते हैं। तब आत्माके मन्दिररूपी शरीरके लिए तो हम जितना भी करें कम है।

हम इस जगतमें जन्म लेते हैं जगतके प्रति अपना ऋण चुकाने के लिए, अर्थात् उसकी सेवाके लिए। इस दृष्टि-बिन्दुको सामने रखकर मनुष्य अपने शरीरका संरक्षक बनता है। इसलिए शरीरकी रक्षाके लिए हमें ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे वह सेवा-धर्म का पालन पूरी तरह कर सके।

२. हवा

३१ अगस्त, १९४२

हवा शरीरके लिए सबसे जरूरी चीज है। इसीलिए ईश्वरने हवाको सर्वव्यापी बनाया है, और वह हमें बिना प्रयत्नके मिल जाती है।

हवाको हम नाकके द्वारा फेफड़ोंमें भरते हैं। फेफड़े धौंकनीका काम करते हैं। वे हवाको अन्दर खींचते हैं और बाहर निकालते हैं। बाहरकी हवामें प्राणवायु होती है। वह न मिले तो मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता। जो हवा फेफड़ोंसे बाहर आती है, वह जहरीली होती है। अगर यह जहरीली हवा तुरन्त इधर-उधर न फैल जाये, तो हम मर जायें। इसलिए घर ऐसा होना चाहिए, जिसमें हवा अच्छी तरह आ-जा सके और सूर्य-प्रकाशके आने का रास्ता भी हो।

हवाका काम रक्तकी शुद्धि करना है। मगर हमें फेफड़ोंमें हवा भरना और उसे बाहर निकालना ठीक तरहसे नहीं आता। इसलिए हमारे रक्तकी शुद्धि भी पूरी तरह नहीं हो पाती।[2] कई लोग मुँहसे श्वास लेते हैं। यह बुरी आदत है। नाकमें कुदरतने एक तरहकी छलनी रखी है, जिससे हवा छनकर भीतर जाती है, और साथ ही गरम होकर फेफड़ोंमें पहुँचती है। मुँहसे श्वास लेने से हवा न तो साफ होती है और न गरम हो पाती है। इसलिए हरएक मनुष्यको चाहिए कि प्राणायाम सीख ले। यह क्रिया जितनी आसान है, उतनी ही आवश्यक भी है। प्राणायाम कई तरह के होते हैं। उन सबमें उतरने की यहाँ आवश्यकता नहीं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उनका कोई उपयोग नहीं है। मगर जिस मनुष्यका जीवन नियमबद्ध है, उसकी सब क्रियाएँ सहज रूपसे होती हैं। इससे जो लाभ होता है, वह अनेक प्रक्रियाओंके करने से भी नहीं होता।

१. आरोग्यनी चावी में यह वाक्य इस प्रकार है: "किन्तु यदि हम भिन्न रीतिसे देखें तो उसे मल-मूत्रकी खान कहने के बजाय यों समझें कि प्रकृतिने मल-मूत्र आदिको निकालने के लिए निकास-मार्ग भी दिये हैं।"

२. आरोग्यनी चावी में इसके बाद यह वाक्य है: "क्योंकि हवाका काम रक्तको शुद्ध करना होता है।"

चलते-फिरते और सोते वक्त अगर लोग अपना मुंह बन्द रखें, तो नाक अपना काम अपने-आप करेगी ही। सुबह उठकर जैसे हम मुंह साफ करते हैं, वैसे ही नाक भी साफ करनी चाहिए। नाकमें मैल हो तो उसे निकाल डालना चाहिए। इसके लिए उत्तमसे-उत्तम वस्तु साफ पानी है। जो ठंडा पानी सहन न कर सके, वह कुनकुना पानी इस्तेमाल करे। हाथमें या एक कटोरेमें पानी लेकर उसे नाकमें चढ़ाना चाहिए। नाकके एक छेदसे चढ़ाकर दूसरेसे निकाल सकते हैं और नाकके द्वारा पानी पी भी सकते हैं।

फेफड़ोंमें शुद्ध हवा ही भरनी चाहिए। इसलिए रातको आकाशके नीचे या बरामदेमें सोने की आदत डालना अच्छा है। हवासे सर्दी लग जायेगी, यह डर नहीं रखना चाहिए। ठण्ड लगे तो ज्यादा कपड़े ओढ़ सकते हैं।[1] ओढ़ने का कपड़ा गलेसे ऊपर नहीं जाना चाहिए। सिर ठण्डको बरदाश्त न कर सके, तो उसपर एक रूमाल बाँध लेना चाहिए। मतलब यह कि नाकको, जो कि हवा लेने का द्वार है, कभी ढँकना नहीं चाहिए।

सोते समय दिनके कपड़े उतार देने चाहिए। रातको कम कपड़े पहनने चाहिए और वे ढीले होने चाहिए। शरीरको चद्दरसे ढँके तो रहना ही है, इसलिए वह जितना खुला रहे, उतना ही अच्छा है। दिनमें भी कपड़े जितने ढीले पहने जायें, उतना ही अच्छा है।

हमारे आसपासकी हवा हमेशा शुद्ध ही होती है, ऐसा नहीं। न सब जगहकी हवा एक-सी ही होती है। प्रदेशके साथ हवा भी बदलती है। प्रदेशका चुनाव हमारे हाथमें नहीं होता। मगर घरका चुनाव थोड़ा-बहुत हमारे हाथमें जरूर रहता है, और रहना भी चाहिए। सामान्य नियम यह हो सकता है कि घर ऐसी जगह ढूंढ़ा जाये जहाँ बहुत भीड़ न हो, आसपास गन्दगी न हो, और हवा और प्रकाश ठीक-ठीक मिल सकें।

३. पानी

१ सितम्बर, १९४२

शरीरको जिन्दा रखने के लिए हवाके बाद दूसरा स्थान पानीका है। हवाके बिना मनुष्य थोड़े क्षणतक जिन्दा रह सकता है और पानीके बिना थोड़े दिनतक। पानी इतना आवश्यक है, इसलिए ईश्वरने हमें खूब पानी दिया है। बिना पानीकी मरुभूमिमें मनुष्य बस ही नहीं सकता। सहाराके रेगिस्तान-जैसे प्रदेशोंमें बस्ती दिखाई ही नहीं पड़ती।

तन्दुरुस्त रहने के लिए हरएक मनुष्यको चौबीस घंटेमें पाँच पौंड पानी या प्रवाही द्रव्यकी आवश्यकता है। पीने का पानी हमेशा स्वच्छ होना चाहिए। बहुत जगह पानी स्वच्छ नहीं होता। कुएँका पानी पीने में हमेशा खतरा रहता है। उथले

१. आरोग्यकी चाबी में इसके बाद निम्न वाक्य है: "[शरीरको] नाकके द्वारा ताजी हवा रातमें भी मिलनी चाहिए। मुँह ढँकने से लोग दम घुटकर मर जाते हैं।"

(कम गहरे) कुएँ और बावड़ीका पानी पीने के लायक नहीं होता। दु:खकी बात यह है कि हम देखकर या चखकर हमेशा यह नही कह सकते कि पानी पीने के लायक है या नही। देखने में और चखने में जो पानी अच्छा लगता है, वह दरअसल जहरीला हो सकता है। इसलिए अनजाने घर या अनजाने कुएँका पानी न पीने की प्रथाका पालन करना अच्छा है।

बंगालमें तालाब होते हैं। उनका पानी अकसर पीने के लायक नहीं होता। बड़ी नदियोंका पानी भी पीने के लायक नही होता, खास करके जहाँ नदी बस्तीके पाससे गुजरती है, और जहाँ उसमें स्टीमर और नावें आया-जाया करती हैं।

ऐसा होते हुए भी यह सच्ची बात है कि करोड़ों मनुष्य इसी प्रकारका पानी पीकर गुजारा करते हैं। मगर यह अनुकरण करने-जैसी चीज हरगिज नही है। कुदरतने मनुष्यको जीवन-शक्ति काफी प्रमाणमें न दी होती, तो मनुष्य-जाति अपनी भूलों और अपने अतिरेकके कारण कब-की लोप हो गई होती।

हम यहाँ पानीका आरोग्यके साथ क्या सम्बन्ध है, इसका विचार कर रहे हैं। जहाँ पानीकी शुद्धताके विषयमें शंका हो, वहाँ पानीको उबालकर पीना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्यको अपने पीने का पानी साथ लेकर घूमना चाहिए। असंख्य लोग धर्मके नामपर मुसाफिरीमें पानी नहीं पीते। अज्ञान लोग जो चीज धर्मके नामपर करते हैं, आरोग्यके नियमोंको जाननेवाले वही चीज आरोग्यकी खातिर क्यों न करें? पानीको छानने का रिवाज तारीफ करने लायक है। इससे पानीमें मौजूद कचरा निकल जाता है। लेकिन पानीमें मौजूद सूक्ष्म जन्तु नहीं निकलते। उनका नाश करने के लिए पानीको उबालना ही चाहिए। छानने का कपड़ा हमेशा साफ होना चाहिए। उसमें छेद न होने चाहिए।

४. खुराक

२ सितम्बर, १९४२

हवा और पानीके बिना आदमी जिन्दा ही नहीं रह सकता, यह बात सच है। मगर जीवनको टिकानेवाली चीज तो खुराक ही है। अन्न मनुष्यका प्राण है।

खुराक तीन प्रकारकी होती है — मांसाहार, शाकाहार और मिश्राहार। असंख्य लोग मिश्राहारी हैं। मांसमें मछली और पक्षी भी आ जाते हैं। दूधको हम किसी भी तरह शाकाहारमें नहीं गिन सकते। सच पूछा जाये तो वह मांसका ही एक रूप है। मगर लौकिक भाषामें वह मांसाहारमें नहीं गिना जाता। जो गुण मांसमें हैं वे अधिकांश दूधमें भी हैं। डाक्टरी भाषामें वह प्राणिज खुराक — ऐनिमल फूड — माना जाता है। अण्डे सामान्यतः मांसाहारमें गिने जाते हैं, मगर दरअसल वे मांस नहीं हैं। आजकल तो अण्डे ऐसे तरीकेसे पैदा किये जाते हैं कि मुर्गी मुर्गेको देखे बिना भी अण्डे देती है। इन अण्डोंमें चूजा कभी बनता ही नहीं है। इसलिए जिन्हें दूध पीने में कोई संकोच नहीं, उन्हें इस प्रकारके अण्डे खाने में भी कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

डाक्टरी मतका झुकाव मुख्यतः मिश्राहारकी ओर है। मगर पश्चिममें डाक्टरोंका एक बड़ा समुदाय ऐसा है जिसका यह दृढ़ मत है कि मनुष्यके शरीरकी रचनाको

देखने से वह शाकाहारी ही लगता है। उसके दाँत, आमाशय इत्यादि उसे शाकाहारी सिद्ध करते हैं। शाकाहारमें फलोका समावेश होता है। फलोमें ताजे फल और सूखा मेवा अर्थात् बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा इत्यादि आ जाते है।

मै शाकाहारका पक्षपाती हूँ। मगर अनुभवसे मुझे यह स्वीकार करना पड़ा है कि दूध और दूधसे बननेवाले पदार्थ, जैसे मक्खन, दही वगैरहके बिना मनुष्य-शरीर पूरी तरह टिक नही सकता। मेरे विचारोंमें यह महत्त्वका परिवर्तन हुआ है। मैंने दूध-घीके वगैर छह वर्ष निकाले हैं। उस वक्त मेरी शक्तिमें किसी तरहकी कमी नहीं आई थी। मगर अपनी मूर्खताके कारण मै १९१८ में[1] सख्त पेचिशका शिकार बना। शरीर हाड़-पिंजर हो गया। मैंने हठपूर्वक दवा न ली, और उतने ही हठसे दूध या छाछ भी लेने से इनकार किया। शरीर किसी तरह बनता ही नही था। मैंने दूध न लेने का व्रत लिया था। मगर डाक्टर कहने लगा — "यह व्रत तो आपने गाय-भैंसके दूधको नजरमें रखकर लिया था। बकरीका दूध लेने में आपको कोई हर्ज नही होना चाहिए।" मेरी धर्मपत्नीने डाक्टरका समर्थन किया, और मै पिघला।[2] सच कहा जाये तो जिसने गाय-भैंसके दूधका त्याग किया है, उसे बकरी वगैरहका दूध लेने की छूट नही होनी चाहिए। क्योंकि उस दूधमें भी पदार्थ तो वही होते हैं। सिर्फ मात्राका ही फर्क होता है। इसलिए मेरे व्रतके अक्षरोंका ही पालन हुआ है, उसकी आत्माका नही। जो भी हो, बकरीका दूध तुरन्त आया और मैंने वह लिया। लेते ही मुझमें नया चेतन आया, शरीरमें शक्ति आई और मै खाटसे उठा। इसपर से और ऐसे अनेक दूसरे अनुभवोंपर से मै लाचार होकर दूधका पक्षपाती बना हूँ। मगर मेरा यह दृढ़ मत है कि असंख्य वनस्पतियोंमें कोई-न-कोई ऐसी जरूर होगी जो दूध और मांसकी आवश्यकता अच्छी तरह पूरी कर सके और उनके दोषोंसे मुक्त हो।[3]

मेरी दृष्टिसे दूध और मांस लेने में दोष तो है ही। मांसके लिए हम पशु-पक्षियोंका नाश करते हैं, और माँके दूधके सिवा दूसरा दूध पीने का हमें अधिकार नही है। नैतिक दोषके सिवा केवल आरोग्यकी दृष्टिसे भी इनमें दोष है। दोनोंमें उनके मालिकके दोष आ ही जाते हैं। पालतू पशु सामान्यतः पूरे तन्दुरुस्त नही होते। मनुष्यकी तरह पशुओंमें भी अनेक रोग होते हैं। अनेक परीक्षाएँ करने के बाद भी कई रोग परीक्षककी नजरसे छूट जाते है। सब पशुओंकी अच्छी तरह परीक्षा करवाना असम्भव लगता है। मेरे पास गोशाला है। मित्रोंकी मदद आसानीसे मिल जाती है। परन्तु मै निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि मेरी गोशालामें सब पशु निरोग ही हैं। उल्टे यह देखने में आया है कि जो गाय निरोग मानी जाती थी, वह अन्तमें रोगी सिद्ध हुई। इसका पता चलने से पहले तो उस रोगी गायके दूधका उपयोग होता ही रहता था। सेवाग्राम आश्रम आसपासके किसानोंसे भी दूध लेता है। उनके पशुओं की परीक्षा कौन करता है? दूध निर्दोष है या नही, इसकी परीक्षा करना कठिन

१. मूलमें १९१७ है; देखिए खण्ड १५, पृ० १९।

२. देखिए खण्ड १५, पृ० ७४।

३. मूलमें इसके बाद यह वाक्य है: "पर इसकी खोज तो जब हो तब ठीक है।"

है। इसलिए दूध उबालने से जितना निर्दोष बन सके उससे ही काम चलाना होगा। दूसरी सब जगह आश्रमसे तो कम ही पशुओंकी परीक्षा हो सकती है। जो बात दूध देनेवाले पशुओंके लिए है, वह मांसके लिए कत्ल होनेवाले पशुओंके लिए तो है ही। पर अधिकतर तो हमारा काम भगवान भरोसे ही चलता है। मनुष्य अपने आरोग्य की बहुत चिन्ता नही रखता। उसने अपने लिए वैद्यों, डाक्टरों और नीमहकीमोंकी संरक्षक फौज खड़ी कर रखी है, और उसके बलपर वह अपने-आपको सुरक्षित मानता है। उसे सबसे अधिक चिन्ता रहती है धन और प्रतिष्ठा वगैरह प्राप्त करनेकी। यह चिन्ता दूसरी सब चिन्ताओको हजम कर जाती है। इसलिए जबतक कोई पारमार्थिक डाक्टर, वैद्य या हकीम लगनसे परिश्रम करके सम्पूर्ण गुणोंवाली कोई वनस्पति नही ढूंढ़ निकालता, तबतक मनुष्य दुग्धाहार या मांसाहार करता ही रहेगा।

अब जरा युक्ताहारके बारेमें विचार करें। मनुष्य-शरीरको स्नायु बनानेवाले, गर्मी देनेवाले, चर्बी बढ़ानेवाले, क्षार देनेवाले और मल निकालनेवाले द्रव्योंकी आवश्यकता रहती है। स्नायु बनानेवाले द्रव्य दूध, मांस, दालो और सूखे मेवोसे मिलते हैं। दूध और मांससे मिलनेवाले द्रव्य दालों वगैरहकी अपेक्षा अधिक आसानीसे पच जाते है, और सर्वांशमें अधिक लाभदायक हैं। दूध और मांसमें दूधका दर्जा ऊपर है। डाक्टर लोग कहते हैं कि जब मांस नहीं पचता, तब भी दूध पच जाता है। जो लोग मांस नहीं खाते उन्हें तो दूधसे बहुत बड़ी मदद मिलती है। पाचनकी दृष्टिसे कच्चे अण्डे सबसे अच्छे माने जाते हैं।

मगर दूध या अण्डे सब कहाँसे पायें? सब जगह ये मिलते भी नहीं। दूधके बारेमें एक बहुत जरूरी बात यही कह दूं। मक्खन निकाला हुआ दूध निकम्मा नही होता। वह अत्यन्त कीमती पदार्थ है। कभी-कभी तो वह मक्खनवाले दूधसे भी अधिक उपयोगी होता है। दूधका मुख्य गुण स्नायु बनानेवाले प्राणिज पदार्थकी आवश्यकता पूरी करना है। मक्खन निकाल लेने पर भी उसका यह गुण कायम रहता है। इसके अलावा सबका-सब मक्खन दूधमे से निकाल सके, ऐसा यन्त्र तो अभीतक बना ही नहीं है, और बनने की सम्भावना भी कम ही है।

४ सितम्बर, १९४२

पूर्ण या अपूर्ण दूधके सिवा दूसरे पदार्थोंकी शरीरको आवश्यकता रहती है। दूधसे दूसरे दर्जेपर गेहूँ, बाजरा, ज्वार, चावल वगैरह अनाज रखे जा सकते है। हिन्दुस्तानके अलग-अलग प्रान्तोंमें अलग-अलग किस्मके अनाज पाये जाते है। कई जगह पर केवल स्वादकी खातिर एक ही गुणवाले एकसे अधिक अनाज खाये जाते हैं। जैसे कि गेहूँ, बाजरा और चावल तीनों चीजें थोड़ी-थोड़ी मात्रामें एक साथ खाई जाती है। शरीरके पोषणके लिए इस मिश्रणकी आवश्यकता नहीं है। इससे खुराककी मात्रा पर अंकुश नहीं रहता और आमाशयका काम अधिक बढ़ जाता है। एक समयमें एक ही तरहका अनाज खाना ठीक माना जायेगा। इन अनाजोंमें से मुख्यतः स्टार्च (निशास्ता) मिलता है। गेहूँ सब अनाजोंका राजा है। दुनियापर नजर डालें तो गेहूँ सबसे ज्यादा खाया जाता है। आरोग्यकी दृष्टिसे गेहूँ मिले तो चावल

अनावश्यक है। जहाँ गेहूँ न मिले, और बाजरा, ज्वार इत्यादि अच्छे न लगें या अनुकूल न आयें, वहाँ चावल लेना चाहिए।

६ सितम्बर, १९४२

अनाज-मात्रको अच्छी तरह साफ करके हाथ-चक्कीमें पीसकर बिना छाने इस्तेमाल करना चाहिए। अनाजकी भूसीमें सत्व और क्षार भी रहते हैं। दोनों बड़े उपयोगी पदार्थ हैं। इसके उपरान्त भूसीमें एक ऐसा पदार्थ होता है जो बगैर पचे निकल जाता है, और अपने साथ मलको भी निकालता है। चावलका दाना नाजुक होनेके कारण ईश्वरने उसके ऊपर छिलका बनाया है, जो खानेके कामका नहीं होता। इसलिए चावलको कूटना पड़ता है। कुटाई उतनी ही करनी चाहिए, जिससे ऊपरका छिलका निकल जाये। मशीनमें चावलके छिलकेके अलावा उसकी भूसी भी बिलकुल निकाल डाली जाती है। इसका कारण यह है कि चावलकी भूसीमें बहुत मिठास रहती है, इसलिए अगर भूसी रखी जाये तो उसमें सुसरी या कीड़ा पड़ जाता है। गेहूँ और चावलकी भूसी निकाल दें, तो बाकी केवल स्टार्च रह जाता है, और भूसीमें अनाज का बहुत कीमती हिस्सा चला जाता है। गेहूँ और चावलकी भूसीको अकेली पकाकर भी खाया जा सकता है। उसकी रोटी भी बन सकती है। कोंकणी चावलोंका तो आटा पीसकर उसकी रोटी ही गरीब लोग खाते हैं। पूरे चावल पकाकर खानेकी अपेक्षा चावलके आटेकी रोटी शायद अधिक आसानीसे पचती हो, और थोड़ी खानेसे पूरा सन्तोष भी दे।

हम लोगोको दाल या शाकके साथ रोटी खानेकी आदत है। इससे रोटी पूरी तरह चबायी नहीं जाती। स्टार्चवाले पदार्थोको जितना चबायें और वे लारके साथ जितने मिले, उतना ही अच्छा है। यह लार स्टार्चके पचने में मदद करती है। मगर खुराकको बिना चबाये निगल जायें, तो उसके पचने में लारकी मदद नहीं मिल सकती। इसलिए खुराकको ऐसी स्थितिमें खाना कि जिससे उसे चबाना पड़े, अधिक लाभदायक है।

स्टार्च-प्रधान अनाजोके बाद स्नायु बाँधनेवाली (प्रोटीन-प्रधान) दालों इत्यादिको दूसरा स्थान दिया जाता है। दालके बिना खुराकको सब लोग अपूर्ण मानते हैं। मांसाहारीको भी दाल तो चाहिए ही। जिसको मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है और जिसे पूरी मात्रामें या बिलकुल दूध नहीं मिलता उसका गुजारा दालके बिना न चले, यह मैं समझ सकता हूँ। मगर मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता कि जिन्हें शारीरिक काम कम करना पड़ता है — जैसे कि क्लर्क, व्यापारी, वकील, डाक्टर या शिक्षक — और जिन्हें दूध पूरी मात्रामें मिल जाता है, उन्हें दालकी आवश्यकता नहीं है। सामान्यतः दाल भारी खुराक मानी जाती है, और स्टार्च-प्रधान अनाजकी अपेक्षा बहुत कम मात्रामें खाई जाती है। दालोंमें मटर और लोबिया बहुत भारी हैं। मूंग और मसूर हलके माने जाते हैं?[1]

१. आरोग्यनी चावीमें इसके बाद निम्न वाक्य हैं: "स्पष्ट है कि मांसाहारीको दालकी तनिक भी जरूरत नहीं है। दलहनको बिना दले रात-भर पानीमें भिगोकर, उसमें से अंकुर फूटने पर यदि तोला-भर चबाया जाये तो वह लाभदायक होता है।"

तीसरा दर्जा शाक-भाजी और फलोको देना चाहिए; शाक और फल हिन्दुस्तानमें सस्ते होने चाहिए, मगर ऐसा नही है। वे केवल शहरियोंकी खुराक माने जाते है। गाँवोमें हरी तरकारी भाग्यसे ही मिलती है। और बहुत जगह फल भी नही मिलते। इस खुराककी कमी हिन्दुस्तानके लिए बडी शर्मकी बात है। देहाती चाहें तो काफी शाक-भाजी पैदा कर सकते है। फलोके पेड़ोंके बारेमें कठिनाई जरूर है, क्योंकि जमीनकी काश्तके कानून सख्त और गरीबोको दबानेवाले है। मगर यह तो हमारे विषयके बाहरकी बात हुई।

ताजी शाक-भाजीमें पत्तोंवाली जो भी भाजी मिले वह काफी मात्रामे हर रोज लेनी चाहिए। जो शाक स्टार्च-प्रधान है, उनकी गिनती यहाँ मैंने शाक-भाजीमें नही की है। आलू, शकरकन्द, रतालू और जमीकन्द स्टार्च-प्रधान शाक है। इन्हें अनाज की पदवी देनी चाहिए। दूसरे कम स्टार्चवाले शाक काफी मात्रामें लेने चाहिए। ककड़ी, लूनीकी भाजी, सरसोंका साग, सोएकी भाजी, टमाटर इत्यादिको पकाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। उन्हें साफ करके और अच्छी तरह धोकर थोड़ी मात्रामें कच्चा खाना चाहिए।

फलोंमें मौसमके जो फल मिल सकें, लेने चाहिए। आमके मौसममें आम, जामुन के मौसममें जामुन, इसी तरह अमरूद, पपीता, संतरा, अंगूर, मीठे नीबू (शरबती या स्वीट लाइम), मोसम्बी वगैरह फलोंका ठीक-ठीक उपयोग होना चाहिए। फल खाने का सबसे अच्छा वक्त सुबहका है। सवेरे दूध और फलका नाश्ता करने से पूरा सन्तोष मिल जाता है। जो लोग खाना जल्दी खाते है, उनके लिए सवेरे केवल फल ही खाना अच्छा है।

केला अच्छा फल है, मगर उसमें स्टार्च बहुत रहता है। इसलिए वह रोटीकी जगह लेता है। केला, दूध और भाजी सम्पूर्ण खुराक है।

मनुष्यकी खुराकमें थोड़ी-बहुत चिकनाईकी आश्यकता रहती है। वह घी और तेलसे मिल जाती है। घी मिल सके तो तेलकी कोई आवश्यकता नही रहती। तेल पचने में भारी होते है और शुद्ध घीके बराबर गुणकारी नही होते। सामान्य मनुष्य के लिए तीन तोला घी काफी समझना चाहिए। दूधमें घी आ ही जाता है। इसलिए जिसे घी न मिल सके, वह तेल खाकर चर्बीकी मात्रा पूरी कर सकता है। तेलोंमें तिलका, नारियलका और मूँगफलीका तेल अच्छा माना जाता है। तेल ताजा होना चाहिए। इसलिए देशी घानीका तेल मिल सके तो अच्छा है। जो घी और तेल बाजारमें मिलता है, वह लगभग निकम्मा होता है। यह दुःखकी और शर्मकी बात है। मगर जबतक व्यापारमें कानून या लोक-शिक्षणके द्वारा ईमानदारी दाखिल नहीं होती, तबतक लोगोंको सावधानी रखकर मेहनत करके अच्छी और शुद्ध चीजें प्राप्त करनी होंगी। अच्छी और शुद्ध चीजके बदले कैसी भी मिले उससे कभी सन्तोष नही मानना चाहिए। बनावटी घी या खराब तेल खाने के बदले घी-तेलके बगैर गुजारा करने का निश्चय ज्यादा पसन्द करने योग्य है।

जैसे खुराकमें चिकनाईकी आवश्यकता रहती है, वैसी ही गुड़ और खाँड़की भी। मीठे फलोंसे काफी मिठास मिल जाती है, तो भी तीन तोला गुड़ या खाँड़

लेने में कोई हानि नहीं है। मीठे फल न मिलें तो गुड़ और खाँड़ लेने की आवश्यकता रहती है। मगर आजकल मिठाईपर जो इतना जोर दिया जाता है, वह ठीक नहीं है। शहरोंमें रहनेवाले बहुत ज्यादा मिठाई खाते है, जैसे कि खीर, रबड़ी, श्रीखंड, पेड़ा, बर्फी, जलेबी वगैरह मिठाइयाँ। ये सब अनावश्यक हैं और अधिक खाने से नुकसान ही करती है। जिस देशमें करोड़ों लोगोंको पेट-भर अन्न भी नहीं मिलता, वहाँ जो पकवान खाते हैं, वे चोरीका माल खाते है, यह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं लगती।

जो मिठाईके बारेमें कहा गया है, वह घी-तेलको भी लागू होता है। घी-तेल में तली हुई चीजें खाना बिलकुल जरूरी नहीं है। पूरी, लड्डू वगैरह बनाने में घी खर्च करना अविचारीपन है। जिन्हें आदत नहीं होती, वे ये चीजें खा ही नहीं सकते। अंग्रेज जब हमारे देशमें आते हैं, तब हमारी मिठाइयाँ और घीमें पकाई हुई चीजें वे खा ही नहीं सकते। जो खाते है वे बीमार पड़ते है, यह मैंने कई बार देखा है। स्वाद तो सिर्फ आदतकी बात है। भूख जो स्वाद पैदा करती है, वह छप्पन भोगोंमें भी नहीं मिलता। भूखा मनुष्य सूखी रोटी भी बहुत स्वादसे खायेगा। जिसका पेट भरा हुआ है, वह अच्छेसे-अच्छा माना जानेवाला पकवान भी नहीं खा सकेगा।

८ सितम्बर, १९४२

अब हम यह विचार करें कि हमें कितना खाना चाहिए और कितनी बार खाना चाहिए। सब खुराक औषधिके रूपमें लेनी चाहिए, स्वादकी खातिर हरगिज नहीं। स्वाद-मात्र रसमें होता है और रस भूखमें है। पेट क्या चाहता है, इसका पता बहुत कम लोगोंको रहता है। कारण यह है कि हमें गलत आदतें पड़ गई है। जन्मदाता माता-पिता कोई त्यागी और संयमी नहीं होते। उनकी आदतें थोड़े-बहुत प्रमाणमें बच्चोंमें भी उतरती है। गर्भाधानके बाद माता जो खाती है, उसका असर बालकपर पड़ता ही है। फिर बाल्यावस्थामें माता बच्चेको अनेक स्वाद सिखाती है। जो-कुछ वह स्वयं खाती है, उसमें से बच्चेको भी खिलाती है। परिणाम यह होता है कि बचपनसे ही पेटको बुरी आदतें पड़ जाती हैं। पड़ी हुई आदतोंको मिटा सकने-वाले विचारशील लोग थोड़े ही होते है। मगर जब मनुष्यको यह भान होता है कि वह अपने शरीरका संरक्षक है और उसने शरीरको सेवाके लिए अर्पण कर दिया है, तब शरीरको स्वस्थ रखने के नियम जानने की उसे इच्छा होती है और उन नियमों का पालन करने का वह महाप्रयास करता है।

९ सितम्बर, १९४२

ऊपरके दृष्टि-बिन्दुसे बुद्धिजीवी मनुष्यके लिए चौबीस घंटेमें खुराकका नीचे लिखा प्रमाण योग्य माना जा सकता है:

गायका दूध २ पौंड

अनाज ६ औंस अर्थात् १५ तोले (चावल, गेहूँ, बाजरा इत्यादि मिलाकर)

शाकमें पत्ता-भाजी ३ औंस और दूसरे शाक ५ औंस

कच्चा शाक १ औंस

३ तोले घी या ४ तोले मक्खन

गुड़ या शक्कर ३ तोले

ताजे फल, जो मिल सकें, रुचि और आर्थिक शक्तिके अनुसार

रोज दो नीबू लिये जायें तो अच्छा है। नीबूका रस निकालकर भाजीके साथ या पानीके साथ लेने से खटाईका दाँतोंपर खराब असर नहीं पड़ेगा।

ये सब वजन कच्चे अर्थात् बिना पकाये हुए पदार्थोंके है। नमकका प्रमाण यहाँ नहीं दिया है। वह रुचिके अनुसार ऊपरसे लिया जा सकता है।

हमें दिनमें कितनी बार खाना चाहिए? बहुत लोग तो दिनमें केवल दो ही बार खाते हैं। सामान्यत: तीन बार खाने की प्रथा है — सवेरे कामपर बैठने से पहले, दोपहरको और शाम या रात्रिको। इससे अधिक बार खाने की आवश्यकता नही होती। शहरोंमें रहनेवाले कुछ लोग समय-समयपर कुछ-न-कुछ खाते ही रहते हैं। यह आदत नुकसानदेह है। आमाशयको भी आखिर आराम चाहिए।

५. मसाले

खुराकका विवेचन करते समय मैंने मसालोंके बारेमें कुछ नही कहा। नमकको मसालोंका राजा कह सकते हैं, क्योंकि नमकके बिना सामान्य मनुष्य कुछ खा ही नही सकता। इसलिए नमकको सबरस भी कहा गया है। शरीरको कई क्षारोंकी आवश्यकता रहती है। उनमें से नमक भी एक है। ये क्षार खुराकमें होते ही हैं। मगर उसे अशास्त्रीय तरीकेसे पकाने के कारण कुछ क्षारोंकी मात्रा कम हो जाती है, इसलिए वे ऊपरसे लेने पड़ते हैं। ऐसा ही एक अत्यन्त आवश्यक क्षार नमक है। इसलिए उसे थोड़े प्रमाणमें अलगसे खाने को मैंने पिछले प्रकरणमें कहा है।

मगर कई ऐसे मसाले, जिनकी शरीरको सामान्यत: कोई आवश्यकता नही होती, केवल स्वादकी खातिर या पाचनशक्ति बढ़ाने की खातिर लिये जाते है, जैसे कि हरी या सूखी लाल मिर्च, काली मिर्च, हल्दी, धनिया, जीरा, राई, मेथी, हींग इत्यादि। इनके विषयमें पचास वर्षके निजी अनुभवसे मेरी यह राय बनी है कि शरीरको पूरी तरह निरोग रखने के लिए इनमें से एककी भी आवश्यकता नही है। जिसकी पाचन-शक्ति बिलकुल कमजोर हो गई है, उसे केवल औषधिके रूपमें, अमुक समयके लिए निश्चित मात्रामें मसाले लेने पड़ें तो वह भले ले। मगर स्वादकी खातिर तो ऐसी चीजका आग्रहपूर्वक निषेध मानना चाहिए। हर प्रकारका मसाला, यहाँतक कि नमक भी, अनाज और शाकके स्वाभाविक रसका नाश करता है। जिसकी जीभ बिगड़ नही गई है, उसे स्वाभाविक रसमें जो स्वाद आता है वह मसाला या नमक डालने के बाद नहीं आता। इसीलिए मैंने सुझाव दिया है कि नमक लेना हो तो ऊपर से लिया जाये। मिर्च तो पेट और मुँहको जलाती है। जिसे मिर्च खाने की आदत नहीं, वह शुरूमें तो उसे खा ही नही सकता। मैंने देखा है कि मिर्च खाने से कई लोगोंका मुँह आ जाता है — उसमें छाले पड़ जाते हैं। और एक आदमी, जिसे

मिर्च खाने का बहुत शौक था, भरी जवानीमें इसी कारण मृत्युका शिकार भी बना था। दक्षिण आफ्रिकाके हब्शी मिर्चको छू भी नही सकते। खुराकमें हल्दीका रंग वे बरदाश्त नही कर सकते। अंग्रेज भी हमारे मसाले नही खाते। हिन्दुस्तानमें आने के बाद उन्हें आदत पड़ जाये तो बात अलग है।

६. चाय, काफी और कोको

इन तीनोंमें से एककी भी शरीरको आवश्यकता नही है। चायका प्रचार चीनसे हुआ कहा जाता है। चीनमें उसका खास उपयोग है। वहाँ पानी अकसर शुद्ध नही होता। पानीको उबालकर पिया जाये तो पानीका विकार दूर किया जा सकता है। किसी चतुर चीनीने चाय नामकी घास ढूंढ़ निकाली। वह घास बहुत थोड़ी मात्रामें भी उबलते पानीमें डाली जाये, तो पानीका रंग सुनहरा हो जाता है। अगर इस तरह पानी सुनहरा रंग पकड ले, तो यह इस बातकी पक्की निशानी है कि पानी उबल चुका है। सुना है कि चीनमें लोग इसी तरह पानीकी परीक्षा करते है, और वही पानी पीते हैं। चायकी दूसरी विशेषता यह है कि उसमें एक तरहकी खुशबू रहती है। ऊपर लिखे तरीके से बनी हुई चायको निर्दोष मान सकते हैं। ऐसी चाय बनाने का यह तरीका है: एक चम्मच चाय छलनीमें डाली जाये। छलनीको चायके बर्तनपर रखा जाये। छलनीपर धीरे-धीरे उबला हुआ पानी डाला जाये। नीचे जो पानी आये उसका रंग सुनहरा हो, तो समझ लें कि पानी ठीक उबल चुका है।

१० सितम्बर, १९४२

जैसी चाय सामान्यत. पी जाती है, उसका कोई गुण तो जानने में नहीं आया। मगर उसमें एक भारी दोष होता है। अर्थात् उसमें टैनीन होता है। टैनीन ऐसी चीज है जो चमडेको पकाने के काममें आती है। यही काम टैनीनवाली चाय आमाशयमें जाकर करती है। आमाशयके भीतर टैनीनकी तह चढ़ने से उसकी पाचन-शक्ति कम होती है। इससे अपच होता है। कहा जाता है कि इंग्लैंडमें तो असंख्य औरतें केवल कड़क चायकी आदतके कारण अनेक रोगोकी शिकार बनती है। जिन्हे चायकी आदत है, उन्हें समयपर चाय न मिले तो वे व्याकुल हो जाते हैं। चायका पानी गरम होता है। उसमें थोड़ी चीनी और थोड़ा-सा दूध डाला जाता है। यह चायका गुण जरूर माना जा सकता है। मगर दूधमें पानी डालकर उसे गरम किया जाये और उसमें चीनी या गुड़ डाला जाये, तो उससे वही काम अच्छी तरह निकलता है। उबलते पानीमें एक चम्मच शहद और आधा चम्मच नीबूका रस डाला जाये, तो सुन्दर पेय बन जाता है।

जो चायके विषयमें कहा है, वह काफीको भी थोड़े-बहुत प्रमाणमें लागू होता है। काफीके बारेमें एक कहावत है:

कफकाटन, वायुहरण, धातुहीन, बलक्षीण।
लोहूका पानी करे, दो गुण, अवगुण तीन।।[१]

१. इसके बाद मूलमें निम्न वाक्य है: "इसमें कितना तथ्य है, यह मैं नहीं जानता।"

७ अक्टूबर, १९४२

जो राय मैंने चाय और काफीके बारेमें दी है, वही कोकोके बारेमें भी है। जिसकी पाचन-क्रिया नियमित है, उसे चाय, काफी और कोकोकी मददकी आवश्यकता नहीं रहती। अपने लम्बे अनुभवपर से मैं कह सकता हूँ कि तन्दुरुस्त मनुष्यको सामान्य खुराकसे पूरा सन्तोष मिल जाता है। मैंने उपरोक्त तीनोंका खूब सेवन किया है। जब मैं ये चीजें लेता था, तब शरीरमें कुछ-न-कुछ बिगाड़ रहा ही करता था। इन चीजोंके त्यागसे मैंने कुछ भी खोया नहीं है, उल्टा बहुत पाया है। जो स्वाद मुझे चाय इत्यादिमें मिलता था उससे कही अधिक स्वाद मैं उबली हुई सामान्य भाजियोंके रसमें पाता हूँ।

७. मादक पदार्थ

८ अक्टूबर, १९४२

हिन्दुस्तानमें शराब, भांग, गांजा, तम्बाकू और अफीम मादक पदार्थोंमें गिने जा सकते है। शराबमें इस देशमें पैदा होनेवाली ताड़ी और "एरक" आते है, और परदेशसे आनेवाली शराबोंका तो कोई हिसाब ही नहीं है। ये सब सर्वथा त्याज्य हैं। शराब पीकर मनुष्य अपना होश खो बैठता है और निकम्मा बन जाता है। जिसको शराबकी लत लगी होती है वह खुद बरबाद होता है और अपने परिवारको भी बरबाद करता है। वह सब मर्यादाएँ तोड़ देता है।

एक पक्ष ऐसा है कि जो निश्चित (मर्यादित) मात्रामें शराब पीने का समर्थन करता है और कहता है कि इससे फायदा होता है। मुझे इस दलीलमें कुछ सार नहीं लगता। पर घड़ी-भरके लिए इस दलीलको मान लें, तो भी अनेक ऐसे लोगोंकी खातिर, जो कि मर्यादामें रह ही नहीं सकते, इस चीजका त्याग करना चाहिए।

पारसी भाइयोंने ताड़ीका बहुत समर्थन किया है। वे कहते हैं कि ताड़ीमें मादकता तो है, मगर ताड़ी एक खुराक है, और दूसरी खुराकको हजम करने में मदद पहुँचाती है। इस दलीलपर मैंने खूब विचार किया है और इस बारेमें काफी पढ़ा भी है। मगर ताड़ी पीनेवाले बहुत-से गरीबोंकी मैंने जो दुर्दशा देखी है, उस पर से मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि ताड़ीको मनुष्यकी खुराकमें स्थान देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

९ अक्टूबर, १९४२

ताड़ीमें जो गुण माने जाते है, वे सब हमें दूसरी खुराकमें मिल जाते है। ताड़ी खजूरके रससे बनती है। खजूरके शुद्ध रसमें मादकता बिलकुल नही होती। उसे नीरा कहते है। ताजी नीराको ऐसी-की-ऐसी पीने से कई लोगोंको दस्त साफ आता है। मैंने खुद नीरा पीकर देखी है। मुझपर उसका ऐसा असर नहीं हुआ। परन्तु वह खुराकका काम तो अच्छी तरहसे देती है। चाय इत्यादिके बदले मनुष्य सवेरे नीरा पी ले, तो उसे दूसरा कुछ पीने या खाने की आवश्यकता नहीं रहनी

चाहिए। नीराको गन्नेके रसकी तरह पकाया जाये, तो उससे बहुत अच्छा गुड़ तैयार होता है। खजूर ताड़की एक किस्म है। हमारे देशमें अनेक प्रकारके ताड़ कुदरती तौरपर उगते हैं। उन सबमें से नीरा निकल सकती है। नीरा ऐसी चीज है जिसे निकालने की जगहपर ही तुरन्त पीना अच्छा है। नीरामें मादकता जल्दी पैदा हो जाती है। इसलिए जहाँ उसका तुरन्त उपयोग न हो सके, वहाँ उसका गुड़ बना लिया जाये तो वह गन्नेके गुड़की जगह ले सकता है। कई लोग मानते हैं कि ताड़-गुड़ गन्नेके गुड़से अधिक गुणकारी है। उसमें मिठास कम होती है, इसलिए वह गन्नेके गुड़की अपेक्षा अधिक मात्रामें खाया जा सकता है। ग्रामोद्योग-संघके द्वारा ताड़-गुड़का काफी प्रचार हुआ है। मगर अभी और ज्यादा मात्रामें इसका प्रचार होना चाहिए। जिन ताड़ोंके रससे ताड़ी बनाई जाती है, उन्हींसे गुड़ बनाया जाये, तो हिन्दुस्तानमें गुड़ और खाँड़की कभी तंगी पैदा न हो, और गरीबोंको सस्ते दाममें अच्छा गुड़ मिल सके। ताड़-गुड़की मिश्री और शक्कर भी बनाई जा सकती है। मगर गुड़ शक्कर या चीनीसे बहुत अधिक गुणकारी है। गुड़में जो क्षार है, वे शक्कर या चीनीमें नहीं होते। जैसे बिना भूसीका आटा और बिना भूसीका चावल होता है, वैसे ही बिना क्षारकी शक्करको समझना चाहिए। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि खुराक जितनी अधिक स्वाभाविक स्थितिमें खाई जाये, उतना ही अधिक पोषण उसमें से हमें मिलता है।

ताड़ीका वर्णन करते हुए मुझे स्वभावतः नीराका उल्लेख करना पड़ा, और उसके सम्बन्धमें गुड़का। मगर शराबके बारेमें मुझे अभी और कहना है। शराबसे पैदा होनेवाली बुराईका जितना कड़वा अनुभव मुझे हुआ है, मैं नहीं जानता कि उतना सार्वजनिक काम करनेवाले किसी और सेवकको हुआ होगा। दक्षिण आफ्रिकामें गिरमिट (अर्ध गुलामी) में काम करनेवाले हिन्दुस्तानियोंमें बहुत-से शराब पीने के आदी होते थे। वहाँ यह कानून था कि हिन्दुस्तानी शराब अपने घर नहीं ले जा सकते; जितनी पीनी हो, शराबकी दुकानपर बैठकर पीयें। स्त्रियाँ भी शराबकी शिकार बनी होती थी। उनकी जो दशा मैंने देखी है, वह अत्यन्त करुणाजनक थी। जो उसे जानता है, वह कभी शराब पीने का समर्थन नहीं करेगा।

वहाँके हब्शियोंको सामान्यतः अपनी मूल स्थितिमें शराब पीने की आदत नहीं होती। कहा जा सकता है कि उनके मजदूर वर्गका तो शराबने नाश ही कर दिया है। कई मजदूर अपनी कमाई शराबमें स्वाहा करते दिखाई देते हैं। उनका जीवन निरर्थक बन जाता है।

और अंग्रेजोंका? सभ्य माने जानेवाले अंग्रेजोंको मैंने गटरोंमें पड़े देखा है। यह अतिशयोक्ति नहीं है। लड़ाईके समय जिन गोरोंको ट्रान्सवाल छोड़ना पड़ा था, उनमें से एकको मैंने अपने घरमें रखा था। वह इंजीनियर था। थियोसॉफिस्ट होते हुए भी उसे शराबकी लत थी। शराब न पी हो, तब उसके सब लक्षण अच्छे रहते थे। लेकिन जब वह शराब पी लेता, तब बिलकुल दीवाना बन जाता था। उसने शराब छोड़ने का बहुत प्रयत्न किया, मगर जहाँतक मैं जानता हूँ वह अन्ततक इसमें सफल न हो सका।

१० अक्टूबर, १९४२

दक्षिण आफ्रिकासे वापस हिन्दुस्तानमें आकर भी मुझे शरावके दुःखद अनुभव ही हुए। कितने ही राजा-महाराजा शरावकी बुरी आदतके कारण वरवाद हुए हैं और हो रहे है। जो उनके विषयमें सच है, वह थोड़े-बहुत प्रमाणमें अनेक धनिक युवकोंको भी लागू होता है। मजदूर-वर्गकी स्थितिकी जाँच की जाये, तो वह भी दयाजनक ही है। ऐसे कड़वे अनुभवोंके वाद मैं शरावका सख्त विरोधी वना हूँ, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

एक वाक्यमें कहूँ तो शराबसे मनुष्य अपने शरीर, मन और बुद्धिको क्षीण करता है और पैसा बरवाद करता है।

८. अफीम

जो टीका शराबखोरीके विषयमें की गई है, वही अफीमपर भी लागू होती है। दोनों व्यसनोंमें भेद जरूर है। शरावका नशा जवतक रहता है, मनुष्यको पागल बनाये रखता है। अफीम मनुष्यको जड़ बना देती है। अफीमची आलसी हो जाता है, तन्द्रावश रहता है और किसी कामका नही रहता। शरावखोरीके वुरे परिणाम हम रोज अपनी आँखों देख सकते हैं। अफीमका असर उस तरह प्रत्यक्ष नही दीखता। अफीमका जहरीला असर प्रत्यक्ष देखना हो, तो उड़ीसा और असममें जाकर देख सकते हैं। वहाँ हजारों लोग इस दुर्व्यसनमें फँसे हुए दिखाई देते हैं। जो इस व्यसनके शिकार बने हुए है, वे ऐसे लगते हैं मानो कब्रमें पैर लटकाकर बैठे हों।

मगर अफीमका सबसे खराव असर तो चीनमें हुआ कहा जाता है। चीनियोंका शरीर हिन्दुस्तानियोंसे ज्यादा मजबूत होता है। परन्तु जो अफीमके फंदेमें फँस चुके है, वे मुर्दे-से दिखाई देते हैं। जिसको अफीमकी लत लगी होती है, वह दीन वन जाता है और अफीम हासिल करनेके लिए कोई भी पाप करनेको तैयार हो जाता है।

चीनियों और अंग्रेजोंके बीच एक लड़ाई हुई थी, जो अफीमकी लड़ाईके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। चीन हिन्दुस्तानकी अफीम लेना नही चाहता था, जब कि अंग्रेज जबरदस्ती चीनके साथ उस अफीमका व्यापार करना चाहते थे। इस लड़ाईमें हिन्दुस्तानका भी दोष था। हिन्दुस्तानमें बहुत-से अफीमके ठेकेदार थे। इससे उन्हें अच्छी कमाई भी होती थी। हिन्दुस्तानको महसूलमें चीनसे करोड़ों रुपये मिलते थे। यह व्यापार प्रत्यक्ष रूपसे अनीतिमय था, तो भी चला। अन्तमें इंग्लैडमें भारी आन्दोलन हुआ, और अफीमका यह व्यापार वन्द हुआ। जो चीज इस तरह प्रजाका नाश करनेवाली है, उसका व्यसन क्षण-भरके लिए भी सहन करने योग्य नहीं है।

११ अक्टूबर, १९४२

इतना कहने के वाद, यह स्वीकार करना चाहिए कि वैद्यक या चिकित्साशास्त्रमें अफीमका वहुत बड़ा स्थान है। वह ऐसी दवा है जिसके विना चल ही नहीं सकता। इसलिए अफीमका व्यसन मनुष्य स्वेच्छासे छोड़ दे तभी उसका उद्धार

हो सकेगा। चिकित्सा-शास्त्रमें उसका स्थान भले ही रहे। परन्तु जो चीज हम दवाके तौरपर ले सकते है, वह व्यसनके तौरपर थोड़े ही ले सकते है? अगर ले तो वह जहरका काम करेगी। अफीम तो प्रत्यक्ष जहर ही है। इसलिए व्यसनके रूपमें वह सर्वथा त्याज्य है।

९. तम्बाकू

तम्बाकूने तो गजब ही ढाया है। इसके पंजेसे भाग्यसे ही कोई छूटता है। सारा जगत एक या दूसरे रूपमें तम्बाकूका सेवन करता है। टॉल्स्टॉयने इसे व्यसनोंमें सबसे खराब व्यसन माना है। उन ऋषिका वचन ध्यान देने लायक है। उन्होंने तम्बाकू और शराब दोनोंका काफी अनुभव लिया था, और दोनोंकी हानियाँ वे स्वय जानते थे। ऐसा होते हुए भी मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि शराब और अफीमकी तरह तम्बाकूके दुष्परिणाम प्रत्यक्ष रूपसे मैं स्वयं बता नही सकता। इतना कह सकता हूँ कि इसका एक भी फायदा मैं नहीं जानता। जो इसका सेवन करते है उनके सिर इसका खर्च भी खूब पड़ता है। एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट तम्बाकूपर हर महीने पाँच पौंड अर्थात् ७५ रुपये खर्च करता था। उसका महीनेका वेतन था २५ पौंड। दूसरे शब्दोंमें अपनी कमाईका पाँचवाँ भाग अर्थात् बीस प्रतिशत वह धुएँमे उड़ा देता था।

तम्बाकू पीनेवाले की विवेक-शक्ति इतनी मन्द पड़ जाती है कि वह तम्बाकू पीते समय अपने पड़ोसीका विचार नही करता। रेलगाड़ीमें मुसाफिरी करनेवालों को इस चीजका काफी अनुभव होता है। जो तम्बाकू नही पीते, वे तम्बाकूका धुआँ सहन ही नही कर सकते। मगर पीनेवाला अकसर इस बातका विचार नही करता कि पासवाले को क्या लगता होगा। इसके उपरान्त तम्बाकू पीनेवालों को अकसर थूकना पड़ता है, और वे विना संकोच कही भी थूक देते है।

तम्बाकू पीनेवाले के मुँहसे एक तरहकी असह्य बदबू निकलती है। सम्भव है कि तम्बाकू पीनेवाले की सूक्ष्म भावनाएँ मर जाती हों। और यह भी सम्भव है कि उन्हें मारने के लिए ही मनुष्यने तम्बाकू पीना शुरू किया हो। इसमें तो शक है ही नही कि तम्बाकू पीने से मनुष्यको एक तरहका नशा चढ़ जाता है, और उस नशेमें वह अपनी चिन्ताओं और दु:खोंको भूल जाता है। टॉल्स्टॉय अपने एक उपन्यासमें एक पात्रसे भयंकर काम करवाते हैं। यह काम करने से पहले उसे शराब पिलवाते हैं। पात्रको एक भयंकर खून करना था। मगर शराबके नशेमें भी उसे खून करने में संकोच होता है। विचार करते-करते वह सिगार जलाता है, और धुआँ उड़ाता है। धुएँको ऊपर चढ़ते हुए वह देखता है और देखते-देखते बोल उठता है—"मैं कैसा डरपोक हूँ! खून करना यदि कर्त्तव्य है, तो फिर संकोच क्यों? चल उठ, और अपना काम कर।" इस तरह उसकी धूम्रवश विचलित वुद्धि उससे एक निर्दोष आदमीका खून करवाती है। मैं जानता हूँ कि इस दलीलका बहुत असर नही पड़ सकता है। तम्बाकू पीनेवाले सबके-सब पापी नही होते। यह कहा जा सकता है कि करोड़ों तम्बाकू पीनेवाले लोग अपना जीवन सामान्यत: सरलतासे व्यतीत करते

हैं। तो भी जो विचारशील हैं, उन्हें उपर्युक्त दृष्टान्तपर मनन करना चाहिए। टॉल्स्टॉयके कहने का सार यह है कि तम्बाकूके नशेमें मनुष्य छोटे-छोटे पाप किया करता है। उसकी विवेकबुद्धि मन्द पड़ जाती है।

हिन्दुस्तानमें हम लोग तम्बाकू केवल पीते ही नही, सूँघते भी है, और जरदेके रूपमें खाते भी हैं। कुछ लोग मानते हैं कि तम्बाकू सूँघने से फायदा होता है। वैद्य और हकीमकी सलाहसे वे तम्बाकू सूँघते हैं। मेरा मत यह है कि इसकी कुछ आवश्यकता नहीं। तन्दुरुस्त मनुष्योंको ऐसी चीजोंकी आवश्यकता होनी ही नहीं चाहिए।

जरदा खानेवालों का तो कहना ही क्या? तम्बाकू पीना, सूँघना और खाना, इन तीनोंमें तम्बाकू खाना सबसे गन्दी चीज है। इसमें जो गुण माना जाता है, वह केवल भ्रम है।

हम लोगोंमें एक कहावत है कि खानेवाले का कोना, सूँघनेवाले का कपड़ा और पीनेवाले का घर ये तीनो समान हैं। जरदा खानेवाला सावधान हो तो थूकदान रखता है, मगर अधिकांश लोग अपने घरके कोनोंमे और दीवारोंपर थूकते शरमाते नही हैं। पीनेवाले धुएँसे अपना घर भर देते हैं और नसवार सूँघनेवाले अपने कपड़े बिगाड़ते हैं। कोई-कोई अपने पास रूमाल रखते हैं, पर वह अपवादरूप है। आरोग्यका पुजारी दृढ़ निश्चय करके सब व्यसनोंकी गुलामीसे छूट जायेगा। बहुतोंको इनमें से एक, या दो या तीनों व्यसन लगे होते हैं। इसलिए उन्हें इससे घृणा नही होती। मगर शान्त चित्तसे विचार किया जाये तो तम्बाकू फूँकने की क्रियामें या लगभग सारा दिन जरदे या पानके बीड़े वगैरहसे गाल भरे रखने में या नसवारकी डिबिया खोलकर सूँघते रहने में कोई शोभा नहीं है। ये तीनों व्यसन गन्दे हैं।

१०. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ है ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए चर्या। संयमके बिना ब्रह्म मिल ही नही सकता। संयममें सर्वोपरि स्थान इन्द्रिय-निग्रहका है। ब्रह्मचर्यका सामान्य अर्थ स्त्री-संगका त्याग और वीर्य-संग्रहकी साधना समझा जाता है। सब इन्द्रियोंका संयम करनेवाले के लिए वीर्य-संग्रह सहज और स्वाभाविक क्रिया हो जाती है। स्वाभाविक रीतिसे किया हुआ वीर्य-संग्रह ही इच्छित फल देता है। ऐसा ब्रह्मचारी क्रोधादिसे मुक्त होता है। सामान्यतः जो ब्रह्मचारी कहे जाते हैं, वे क्रोधी और अहंकारी देखने में आते है, मानो उन्होंने क्रोध और अभिमान करने का ठेका ही ले लिया हो।

यह भी देखने में आता है कि जो ब्रह्मचर्य-पालनके सामान्य नियमोंकी अव-गणना करके वीर्य-संग्रह करने की आशा रखते है, उन्हें निराश होना पड़ता है, और कुछ तो दीवाने-जैसे बन जाते हैं। दूसरे निस्तेज देखने में आते है। वे वीर्य-संग्रह नही कर सकते, और केवल स्त्री-संग न करने में सफल हो जाने पर अपने-आपको कृतार्थ समझते हैं। स्त्री-संग न करने से ही कोई ब्रह्मचारी नही बन जाता। जबतक स्त्री-संगमें रस रहता है, तबतक ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति हुई नही कही जा सकती। जो स्त्री या

पुरुष इस रसको जला सकता है, उसीके बारेमें कहा जा सकता है कि उसने अपनी जननेन्द्रियपर विजय प्राप्त कर ली है। उसकी वीर्यरक्षा इस ब्रह्मचर्यका सीधा फल है, परन्तु वही सब-कुछ नही है। सच्चे ब्रह्मचारीकी वाणीमें, विचारमें, और आचारमें एक अनोखा प्रभाव देखने में आता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य स्त्रियोके साथ पवित्र सम्बन्ध रखने से या उनके आवश्यक स्पर्शसे भंग नही होगा। ऐसे ब्रह्मचारीके लिए स्त्री और पुरुषका भेद मिट-सा जाता है। इस वाक्यका कोई अनर्थ न करे। इसका उपयोग स्वेच्छाचारका पोषण करने के लिए कभी नही होना चाहिए। जिसकी विषयासक्ति जलकर खाक हो गई है, उसके मनमें स्त्री-पुरुषका भेद मिट जाता है, मिट जाना चाहिए। उसकी सौन्दर्यकी कल्पना भी दूसरा ही रूप ले लेती है। वह बाहरके आकारको देखता ही नही। जिसका आचार सुन्दर है, वही स्त्री या पुरुष सुन्दर है। इसलिए सुन्दर स्त्रीको देखकर वह विह्वल नही बन जायेगा। उसकी जननेन्द्रिय भी दूसरा रूप ले लेगी, अर्थात् वह सदाके लिए विकार-रहित बन जायेगी। ऐसा पुरुष वीर्यहीन होकर नपुसक नहीं बनेगा, मगर उसके वीर्यका परिवर्त्तन होने के कारण वह नपुसक-सा लगेगा। सुना है कि नपुंसकके रस नही जलते। मुझे पत्र लिखनेवालो में से कईने इस बातकी साक्षी दी है कि वे चाहते तो हैं कि उनकी जननेन्द्रिय जाग्रत हो, मगर वह होती नही, फिर भी वीर्य-स्खलन हो जाता है। उनमें विषयरस तो रहता ही है। इसलिए वे अन्दर-ही-अन्दर जला करते हैं। ऐसा पुरुष क्षीणवीर्य होकर नपुसक हो गया है, या नपुंसक होने की तैयारी कर रहा है। यह दयनीय स्थिति है। परन्तु जो रस-मात्रके भस्म हो जाने से ऊर्ध्वरेता हो गया है, उसका "नपुंसकत्व" बिलकुल अलग ही किस्मका होता है। वह सबके लिए इष्ट है। ऐसे ब्रह्मचारी विरले ही देखने में आते हैं।

मैंने ब्रह्मचर्य-पालनका व्रत १९०६ में लिया था,[1] अर्थात् मेरा इस दिशामें छत्तीस वर्षका प्रयत्न है। परन्तु मैं ब्रह्मचर्यकी अपनी व्याख्याको पूर्णतया पहुँच नही सका हूँ। तो भी मेरी दृष्टिसे इस दिशामें मेरी अच्छी प्रगति हुई है, और ईश्वरकी कृपा होगी तो पूर्ण सफलता भी शायद यह देह छूटने से पहले मिल जाये। अपने प्रयत्नमें मैं कभी ढीला नही पड़ा। मै इतना जानता हूँ कि ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताके बारेमें मेरे विचार ज्यादा दृढ़ बने है। मेरे कुछ प्रयोग समाजके सामने रखने की स्थितिको नही प्राप्त हुए। मुझे सन्तोष हो, इस हृदतक अगर वे सफल हो जायेंगे, तो मै उन्हें समाजके आगे रखने की आशा रखता हूँ। क्योकि मै मानता हूँ कि उनकी सफलतासे पूर्ण ब्रह्मचर्य शायद अपेक्षाकृत सरल बन जायेगा।

११ दिसम्बर, १९४२

इस प्रकरणमें जिस ब्रह्मचर्यपर मैं जोर देना चाहता हूँ, वह वीर्यरक्षण तक ही सीमित है। पूर्ण ब्रह्मचर्यका अमोघ लाभ उससे नहीं मिलेगा, तो भी उसकी कीमत कुछ कम नहीं है। उसके बिना पूर्ण ब्रह्मचर्य असम्भव है। और उसके बिना, अर्थात्

१. देखिए खण्ड ३९, पृ० २४२-४४।

वीर्य-संग्रहके बिना, पूर्ण आरोग्यकी रक्षा भी अशक्य-सी समझनी चाहिए। जिस वीर्यमें दूसरे मनुष्यको पैदा करने की शक्ति है, उस वीर्यका व्यर्थ स्खलन होने देना महा अज्ञान की निशानी है। वीर्यका उपयोग भोगके लिए नहीं, परन्तु केवल प्रजोत्पत्तिके लिए है, यह हम पूरी तरह समझ लें तो विषयासक्तिके लिए जीवनमें कोई स्थान ही न रह जायेगा। स्त्री-पुरुष-संगकी खातिर नर-नारी दोनों जिस तरह आज अपना सत्यानाश करते हैं, वह बन्द हो जायेगा, विवाहका अर्थ ही बदल जायेगा, और उसका जो स्वरूप आज देखने में आता है, उसकी तरफ हमारे मनमें तिरस्कार पैदा होगा। विवाह स्त्री-पुरुषके बीच हार्दिक और आत्मिक ऐक्यकी निशानी होना चाहिए। विवाहित स्त्री-पुरुष यदि प्रजोत्पत्तिके शुभ हेतुके बिना कभी विषयभोगका विचार तक न करें, तो वे पूर्ण ब्रह्मचारी माने जाने के लायक हैं। ऐसा भोग दोनोंकी इच्छा होने पर ही हो सकता है। वह आवेशमें आकर नहीं होगा, कामाग्निकी तृप्तिके लिए तो कभी नहीं। मगर उसे कर्त्तव्य मानकर किया जाये, तो उसके बाद फिर भोगकी इच्छा भी पैदा नही होनी चाहिए। मेरी इस बातको कोई हास्यास्पद न समझे। पाठकोंको याद रखना चाहिए कि छत्तीस वर्षके अनुभवके बाद मैं यह सब लिख रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं जो-कुछ लिख रहा हूँ, वह सामान्य अनुभवसे उलटा है। ज्यों-ज्यों हम सामान्य अनुभवसे आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों हमारी प्रगति होती है। अनेक अच्छी-बुरी शोधें सामान्य अनुभवके विरुद्ध जाकर ही हो सकी हैं। चकमकसे दियासलाई और दियासलाईसे बिजलीकी शोध इसी एक चीजकी आभारी है। जो बात भौतिक वस्तुपर लागू होती है, वही आध्यात्मिकपर भी होती है। पूर्व कालमें विवाह-जैसी कोई वस्तु थी ही नहीं। स्त्री-पुरुषके भोग और पशुओंके भोगमें कोई फर्क न था। संयम-जैसी कोई वस्तु ही नही थी। कई साहसी लोगोंने सामान्य अनुभवसे बाहर जाकर संयम-धर्मकी शोध की। संयम-धर्म कहाँतक जा सकता है, इसका प्रयोग करने का हम सबको अधिकार है और ऐसा करना हमारा कर्त्तव्य भी है। इसलिए मेरा कहना यह है कि मनुष्यका कर्त्तव्य स्त्री-पुरुष-संगको मेरी सुझाई हुई उच्च कक्षातक पहुँचाने का है। यह हँसीमें उड़ा देने-जैसी बात नही है। इसके साथ ही मेरा यह भी सुझाव है कि यदि मनुष्य-जीवन जैसा गढ़ा जाना चाहिए वैसा गढ़ा जाये, तो वीर्य-संग्रह स्वाभाविक वस्तु हो जानी चाहिए।

नित्य उत्पन्न होनेवाले वीर्यका हमें अपनी मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने में उपयोग करना चाहिए। जो ऐसा करना सीख लेता है, वह प्रमाणमें बहुत कम खुराकसे अपना शरीर बना सकेगा। अल्पाहारी होते हुए भी वह शारीरिक श्रममें किसीसे कम नहीं रहेगा। मानसिक श्रममें उसे कमसे-कम थकान लगेगी। बुढापेके सामान्य चिह्न ऐसे ब्रह्मचारीमें देखने को नही मिलेंगे। जैसे पका हुआ पत्ता या फल वृक्षकी टहनी परसे सहज ही गिर पड़ता है, वैसे ही समय आने पर मनुष्य का शरीर सारी शक्तियाँ रखते हुए भी गिर जायेगा। ऐसे मनुष्यका शरीर समय बीतने पर देखने में भले क्षीण लगे, मगर उसकी बुद्धिका तो क्षय होने के बदले नित्य विकास ही होना चाहिए, और उसका तेज भी बढ़ना चाहिए। ये चिह्न जिसमें

देखने में नही आते, उसके ब्रह्मचर्यमें उतनी कमी समझनी चाहिए। उसने वीर्य-संग्रहकी कला हस्तगत नही की। यह सब सच हो — और मेरा दावा है कि सच है — तो आरोग्यकी सच्ची कुंजी वीर्य-संग्रहमें है।

१२ दिसम्बर, १९४२

वीर्य-सग्रहके जो थोड़े-बहुत नियम मै जानता हूँ, उन्हें यहाँ देता हूँ:

१. विकार-मात्रकी जड़ विचारमें है। इसलिए विचारोंपर हमें काबू पाना चाहिए। इसका उपाय यह है कि मनको कभी खाली रहने ही न दिया जाये; उसे अच्छे और उपयोगी विचारोसे पूर्ण रखा जाये। अर्थात् हम जिस काममें लगे हों, उसकी चिन्ता न करके यह विचार करे कि कैसे उसमें निपुणता पाई जा सकती है, और उसपर अमल करे। विचार और उनका अमल विकारोको रोकेगा। पर हर समय काम नही होता। मनुष्य थकता है, और उसका शरीर आराम चाहता है। रातमें जब नीद नही आती, तभी विकारोका हमला हो सकता है। ऐसे प्रसंगोके लिए सर्वोपरि साधन जप है। भगवानका जिस रूपमें अनुभव किया हो, या अनुभव करने की धारणा रखी हो, उस रूपको हृदयमें रखकर उस नामका जप किया जाये। जप चल रहा हो, तब दूसरा कोई विचार मनमें नही होना चाहिए। यह आदर्श स्थिति है। वहाँतक न पहुँच सकें और अनेक विचार बिना बुलाये चढ़ाई किया करें तो उनसे हारना नही, परन्तु श्रद्धापूर्वक जप करते रहना चाहिए; और आखिर इसमें विजय मिलेगी, यह विश्वास रखना चाहिए। ऐसा करेंगे तो जरूर विजय मिलेगी।

२. विचारोंकी तरह वाणी और वाचन भी विकारोंको शान्त करनेवाले होने चाहिए। इसलिए एक-एक शब्द तौलकर बोलना चाहिए। जिसको बीभत्स विचार नही आते, उसके मुँहसे बीभत्स वचन निकल ही नही सकते। विषयोंका पोषण करनेवाला काफी साहित्य पड़ा है। उसकी तरफ मनको कभी जाने नही देना चाहिए। सद्ग्रन्थ या अपने कामसे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ पढने चाहिए और उनका मनन करना चाहिए। गणितादिका यहाँ बड़ा स्थान है। यह तो स्पष्ट है कि जो मनुष्य विकारोंका सेवन करना नही चाहता, वह विकारोंका पोषण करनेवाले धन्धेका त्याग करेगा।

३. जैसे मनको काममें लगाये रखने की आवश्यकता है, वैसे ही शरीरको भी काममें लगाये रखना जरूरी है। यहाँतक कि रात पड़ने तक मनुष्यको इस कदर मीठी थकान चढ़ जाये कि बिस्तरपर पड़ते ही वह तुरन्त निद्रावश हो जाये। ऐसे स्त्री-पुरुषोकी नीद शान्त और निःस्वप्न होती है। जितना समय खुलेमें मेहनत करने को मिले, उतना ही अच्छा है। जिन्हें ऐसी मेहनत करने को नही मिले, उन्हें अचूक कसरत करनी चाहिए। उत्तमसे-उत्तम कसरत है खुली हवामें तेजीसे घूमना। घूमते समय मुँह बन्द होना चाहिए, और नाकसे ही श्वास लेना चाहिए। चलते, बैठते शरीर बिलकुल सीधा और तना हुआ रहना चाहिए। जैसे-तैसे बैठना या चलना आलस्यकी निशानी है। आलस्य-मात्र विकारका पोषक है। आसन भी इसमें उपयोगी सिद्ध होते हैं। जिसके हाथ, पैर, आँख, कान, नाक, जीभ इत्यादि इन्द्रियाँ अपने योग्य कार्य

योग्य रीतिसे करती है, उसकी जननेन्द्रिय कभी उपद्रव करती ही नही है। मैं आशा रखता हूँ कि मेरे इस अनुभव-वाक्यको सब कोई मानेंगे।

४. जैसा आहार वैसा ही आकार। जो मनुष्य अत्याहारी है, जो आहारमें कुछ विवेक या मर्यादा ही नही रखता, वह अपने विकारोंका गुलाम है। जो स्वादको नहीं जीत सकता, वह कभी जितेन्द्रिय नही हो सकता। इसलिए मनुष्यको युक्ताहारी और अल्पाहारी बनना चाहिए। शरीर आहारके लिए नही, आहार शरीरके लिए है। शरीर अपने-आपको पहचाननेके लिए मिला है। अपने-आपको पहचानना, अर्थात् ईश्वरको पहचानना। इस पहचानको जिसने अपना परम विषय बनाया है, वह विकार-वश नही होगा।

५. प्रत्येक स्त्रीको माता, बहन या पुत्रीकी तरह देखना चाहिए। कोई पुरुष अपनी माँ, बहन या पुत्रीको विकारी दृष्टिसे नही देखेगा। स्त्री प्रत्येक पुरुषको पिता, भाई या पुत्रकी तरह देखे।

इन पाँच विषयोंमें सब नियमोंका समावेश हो जाता है। अपने दूसरे लेखोंमें मैंने इससे अधिक नियम दिये हैं। मगर उन सबका समावेश इन पाँचमें हो जाता है। इन नियमोका पालन करनेवालेके लिए महान विकारको जीतना बहुत सरल हो जाना चाहिए। जिसे ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनकी लगन लगी है, वह यह मानकर कि यह तो असम्भव बात है या यह मानकर कि इसका पालन करोड़ोंमें कोई विरले ही कर सकते हैं, अपना प्रयत्न नहीं छोड़ेगा। जो रस ब्रह्मचर्यके पालनमें है, वह दूसरी किसी चीजमें नही है। दूसरी तरह कहूँ तो जो आनन्द सच्चे आरोग्यमें है, वह दूसरी किसी चीजमें नही है। और जो मनुष्य विकारका गुलाम है, उसका शरीर सर्वथा निरोग नही रह सकता।

कृत्रिम उपाय: अब कृत्रिम उपायोंके विषयमें मैं कुछ कह दूँ। विषयभोग करते हुए भी कृत्रिम उपायोंके द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकने की प्रथा पुरानी है। मगर पूर्वकालमें वह गुप्त रूपसे चलती थी। आधुनिक सभ्यताके इस जमानेमें उसे ऊँचा स्थान मिला है, और कृत्रिम उपायोंकी रचना भी व्यवस्थित तरीकेसे की गई है। इस प्रथाको परमार्थका जामा पहनाया गया है। इन उपायोके हिमायती कहते है कि भोगेच्छा स्वाभाविक वस्तु है, शायद उसे ईश्वरका वरदान भी कहा जा सकता है। उसे निकाल फेंकना अशक्य है। उसपर संयमका अंकुश रखना कठिन है। और अगर संयमके सिवा दूसरा कोई उपाय न ढूँढ़ा जाये, तो असंख्य स्त्रियोंके लिए प्रजोत्पत्ति बोझ-रूप हो जायेगी, और भोगसे उत्पन्न होनेवाली प्रजा इतनी बढ़ जायेगी कि मनुष्य-जातिके लिए पूरी खुराक ही नही मिल सकेगी। इन दो आपत्तियोंको रोकनेके लिए कृत्रिम उपायोंकी योजना करना मनुष्यका धर्म हो जाता है। मुझपर इस दलीलका असर नही हुआ। क्योकि इन उपायोंके द्वारा मनुष्य अनेक दूसरी मुसीबतें मोल लेता है। मगर सबसे बड़ा नुकसान तो यह है कि कृत्रिम उपायोंके प्रचारसे संयम-धर्मके लोप हो जानेका भय पैदा होगा। इस रत्नको बेचकर चाहे जैसा तात्कालिक लाभ मिले, तो भी यह सौदा योग्य नहीं है। मगर यहाँ मैं दलीलमें नही उतरना चाहता।

जिज्ञासुको मेरी सलाह है कि वह 'अनीतिकी राहपर'[1] नामक मेरी पुस्तक पढ़े और उसका मनन करे। बादमें जैसा उसका हृदय और बुद्धि कहे वैसा करे। जिन्हें यह पुस्तक पढ़ने की इच्छा या अवकाश न हो, वे भूलकर भी कृत्रिम उपायोंके नजदीक न फटकें। वे विषयभोगका त्याग करने का भगीरथ प्रयत्न करें और निर्दोष आनन्दके अनेक क्षेत्रोंमें से थोड़े पसन्द कर लें। ऐसी प्रवृत्तियाँ ढूंढ लें जिनसे सच्चा दम्पती-प्रेम शुद्ध मार्गपर जाये, दोनोंकी उन्नति हो, और विषयवासनाके सेवनका अवकाश ही न मिले। शुद्ध त्यागका थोड़ा अभ्यास करने के बाद, इस त्यागके अन्दर जो रस भरा पड़ा है, वह उन्हें विषयभोगकी ओर जाने ही नहीं देगा। कठिनाई आत्म-वंचनासे पैदा होती है। इसमें त्यागका आरम्भ विचार-शुद्धिसे नहीं होता, केवल बाह्याचारको रोकने के निष्फल प्रयत्नसे होता है। विचारकी दृढ़ताके साथ आचारका संयम शुरू हो, तो सफलता मिले बिना रह ही नहीं सकती। स्त्री-पुरुषकी जोड़ी विषय-सेवन के लिए हरगिज नहीं बनी है।

१. यंग इंडिया और हरिजन में प्रकाशित गांधीजी और महादेव देसाईके अंग्रेजी लेखोंके संग्रह सेल्फ-रेस्ट्रेंट वर्सेस सेल्फ-इंडल्जेंस का अनुवाद। गांधीजीके ये लेख पिछले खण्डोंमें प्रकाशन-तिथिके क्रमसे दिये गये हैं और मूल पुस्तककी द्वितीय और तृतीय आवृत्तियोंकी गांधीजी द्वारा लिखी प्रस्तावनाओंके लिए देखिए खण्ड ३३, पृ० १९९-२०० और खण्ड ३७, पृ० १२४।

दूसरा भाग

१. पृथ्वी अर्थात् मिट्टी

१३ दिसम्बर, १९४२

ये प्रकरण लिखने का हेतु यह बताना है कि नैसर्गिक उपचारोंका क्या महत्त्व है और मैंने उनका उपयोग किस तरहसे किया है। इस विषयपर कुछ तो पिछले प्रकरणोंमें कहा जा चुका है। यहाँ वे बातें कुछ विस्तारसे कहनी हैं। जिन तत्वोंसे यह मनुष्य-रूपी पुतला बना है, वे ही नैसर्गिक उपचारोंके साधन हैं। पृथ्वी (मिट्टी), पानी, आकाश (अवकाश), तेज (सूर्य) और वायुसे यह शरीर बना है। इन साधनोंका उपयोग यहाँ क्रमसे बताने की मैंने कोशिश की है।

सन् १९०१ तक मुझे कोई भी व्याधि होती थी, तो मैं डाक्टरोंके पास तो भागता नहीं जाता था, मगर उनकी दवाका थोड़ा उपयोग कर लेता था। एक-दो चीजें मुझे स्वर्गीय डाक्टर प्राणजीवन मेहताने बताई थी। मैं एक छोटे-से अस्पतालमें काम करता था। कुछ अनुभव मुझे वहाँसे मिला और कुछ पढ़ने से। मुझे खास तकलीफ कब्जियतकी रहती थी। उसके लिए समय-समयपर मैं फ्रूट साल्ट लेता था। उससे कुछ आराम तो मिलता था, मगर कमजोरी मालूम होती थी, सिरमें दर्द होने लगता था, और दूसरे भी छोटे-मोटे उपद्रव होते रहते थे। इसलिए डाक्टर प्राणजीवन मेहता की बताई दवा लोह (डायलाइज्ड आयरन) और नक्स वोमिका लेने लगा। दवापर मेरा विश्वास बहुत कम था। इसलिए लाचार हो जाने पर ही मैं दवा लेता था। इससे सन्तोष नहीं होता था।

इस अर्सेमें खुराकके मेरे प्रयोग तो चल ही रहे थे। नैसर्गिक उपचारोंमें मुझे काफी विश्वास था। मगर इस बारेमें मुझे किसीकी मदद नहीं थी। इधर-उधरसे जो-कुछ पढ़ लिया था, उसके आधारपर मुख्यतः भोजनमें फेर-बदल करके काम चला लेता था। खूब घूम लेता था, इससे खाटपर कभी पड़ना नहीं पड़ा। इस तरहसे मेरी ढीली-ढाली गाड़ी चला करती थी। ऐसे समय जुस्टकी[1] 'रिटर्न टु नेचर' नाम की पुस्तक भाई पोलकने मुझे पढ़ने को दी। वे खुद उसके उपचारोंको काममें नहीं लाते थे। खुराक जो जुस्टने बताई थी, वही कुछ अंशतक लेते थे। लेकिन वे मेरी आदतोंको जानते थे, इसलिए उन्होंने वह पुस्तक मुझे दी। उसमें खास जोर मिट्टी पर दिया गया है। मुझे लगा कि उसका उपयोग कर लेना चाहिए। जुस्टने कब्जियत में मिट्टीको ठंडे पानीमें भिगोकर वगैर कपड़ेके पेड़ूपर रखने का सुझाव दिया है। मगर मैंने तो एक बारीक कपड़ेमें पुलटिसकी तरह मिट्टी लपेटकर सारी रात अपने पेड़ूपर रखी। सवेरे उठा तो दस्तकी हाजत थी। पाखाने जाते ही बँधा हुआ

१. एडॉल्फ जुस्ट

सन्तोषकारी दस्त हुआ। यह कहा जा सकता है कि उस दिनसे लेकर आजतक फ्रूट साल्टको मैंने शायद ही कभी छुआ होगा। आवश्यक मालूम होने पर कभी अरंडीका तेल छोटा पौना चम्मच सवेरे जरूर ले लेता हूँ। मिट्टीकी वह पट्टी तीन इंच चौड़ी, छह इंच लम्बी और बाजरेकी रोटी से दुगुनी मोटी, या यह कहो कि आधा इंच मोटी होती है। जुस्टका दावा है कि जिसे जहरीले साँपने काटा हो उसे गढ़ा खोदकर उसमें मिट्टीसे ढँककर सुला देने से जहर उतर जाता है। यह दावा सच्चा साबित हो या न हो, परन्तु मैंने स्वयं जो मिट्टीके प्रयोग किये हैं, उन्हें यहाँ कह दूँ। मेरा अनुभव है कि सिरमें दर्द होता हो, तो मिट्टीकी पट्टी सिरपर रखने से बहुत करके फायदा होता है। यह प्रयोग मैंने सैंकड़ोंपर किया है। मैं जानता हूँ कि सिर-दर्दके अनेक कारण हो सकते हैं। परन्तु सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि किसी भी कारण से सिरमें दर्द क्यों न हो, मिट्टीकी पट्टी सिरपर रखने से तात्कालिक लाभ तो होता ही है। सामान्य फोड़े-फुन्सीको भी मिट्टी मिटाती है। मैंने तो बहते फोड़ेपर भी मिट्टी रखी है। ऐसे फोड़ेपर मिट्टी रखने के पहले मैं साफ कपड़ेको परमेंगनेट के गुलाबी पानीमें भिगोता हूँ, फोड़ेको साफ करता हूँ और फिर इसपर मिट्टीकी पुलटिस रखता हूँ। इससे अधिकाश फोड़े मिट ही जाते हैं। जिनपर मैंने यह प्रयोग किया है, उनमें से एक भी केस निष्फल रहा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। बर्रे वगैरहके डंकपर मिट्टी तुरन्त फायदा करती है। बिच्छूके डंकपर भी मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। सेवाग्राममें बिच्छूका उपद्रव आये दिनकी बात हो गई है। बिच्छूके जितने इलाजोंका पता लगा है, वे सब सेवाग्राममें आजमाकर देखे हैं। मगर उनमें से किसीको भी अचूक नहीं कहा जा सकता। मिट्टी इनमें किसीसे भी कम साबित नहीं हुई।

१४ दिसम्बर, १९४२

सख्त बुखारमें मिट्टीका उपयोग पेड़ूपर रखने के लिए और सिरमें दर्द हो तो सिरपर रखने के लिए मैंने किया है। मैं यह नही कह सकता कि इससे हमेशा बुखार उतरा ही है, मगर रोगीको उससे शान्ति जरूर मिली है। टायफाइडमें मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। वह बुखार तो अपनी मुद्दत लेकर ही जाता है, मगर मिट्टीसे रोगीको हमेशा शान्ति मिलती है। सब रोगी खुद मिट्टी माँगते थे। सेवाग्राम आश्रममें टायफाइडके दस-एक केस हो चुके हैं। उनमें से एक भी केस नहीं बिगड़ा। सेवाग्राममें अब टायफाइडसे लोग डरते नही है। मैं कह सकता हूँ कि एक भी केसमें मैंने दवाका उपयोग नही किया। मिट्टीके सिवा दूसरे नैसर्गिक उपचारोंका उपयोग जरूर किया है; मगर उनकी चर्चा उनके स्थानपर करूँगा।

मिट्टीका उपयोग सेवाग्राममें एंटीफ्लोजिस्टीनकी जगह खुलकर हुआ है। उसमें थोड़ा सरसोंका तेल और नमक मिलाया जाता है। इस मिट्टीको अच्छी तरह गरम करना पड़ता है। इससे वह बिलकुल निर्दोष बन जाती है।

मिट्टी कैसी होनी चाहिए, यह कहना बाकी है। मेरा पहला परिचय तो अच्छी लाल मिट्टीसे हुआ था। पानी मिलाने पर उसमें से सुगन्ध निकलती है। ऐसी मिट्टी आसानीसे नही मिलती। बम्बई-जैसे शहरमें तो किसी भी तरहकी मिट्टी पाना

मेरे लिए कठिन हो गया था। मिट्टी न बहुत चिकनी होनी चाहिए, और न बिलकुल रेतीली। खादवाली तो हरगिज न होनी चाहिए। वह रेशमकी तरह मुलायम हो, और उसमें कंकरी बिलकुल न हो। इसलिए उसे बारीक छलनीसे छान लेना अच्छा है। बिलकुल साफ न लगे तो उसे सेंक लेना चाहिए। मिट्टी बिलकुल सूखी होनी चाहिए। गीली हो तो उसे धूपमें या अंगीठीपर सुखा लेना चाहिए। साफ भागपर इस्तेमाल की हुई मिट्टी सुखाकर बार-बार इस्तेमाल की जा सकती है। इस तरह इस्तेमाल करने से मिट्टीका कोई गुण कम होता हो तो मैं नहीं जानता। मैंने इस तरह मिट्टीका इस्तेमाल किया है, और मेरे अनुभवमें यह नहीं आया कि उसका कोई गुण कम हुआ। मिट्टीका उपयोग करनेवालों से सुना है कि यमुनाके किनारे जो पीली मिट्टी मिलती है, वह बहुत गुणकारी होती है।

मिट्टी खाना : कूनेने[1] लिखा है कि साफ बारीक समुद्री रेती दस्त लाने के लिए उपयोगमें लाई जाती है। मिट्टी किस तरह काम करती है, इसके बारेमें उसने बताया है कि मिट्टी पचती नहीं, उसे कचरेकी तरह बाहर निकलना ही होता है। और अपने साथ वह मलको भी निकालती है। लेकिन इसका मैंने कभी अनुभव नहीं किया है। इसलिए जो यह प्रयोग करना चाहें, वे सोच-समझकर करें। एक-दो बार आजमा देखने में कोई नुकसान होने की सम्भावना नहीं है।

२. पानी

पानीका उपचार प्रसिद्ध और पुरानी चीज है। उसके बारेमें अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। कूनेने पानीका उत्तम उपयोग ढूँढ़ निकाला है। कूनेकी पुस्तक हिन्दुस्तानमें बहुत प्रसिद्ध हुई है, और उसका तर्जुमा भी हमारी भाषाओंमें हुआ है। उसके सबसे अधिक अनुयायी आन्ध्र देशमें मिलते हैं। कूनेने खुराकके बारेमें भी काफी लिखा है। मगर यहाँ तो मेरा विचार केवल पानीके उपचारोंके बारेमें ही लिखने का है।

कूनेके उपचारोंमें मध्य-बिन्दु कटि-स्नान और घर्षण-स्नान है। उनके लिए उसने खास बरतनकी भी योजना की है। मगर उसकी खास आवश्यकता नहीं है। मनुष्यके कदके अनुसार तीससे छत्तीस इंच गहरा टब ठीक काम देता है। अनुभवसे ज्यादा बड़े टबकी आवश्यकता मालूम हो, तो ज्यादा बड़ा ले सकते हैं। उसमें ठंडा पानी भरना चाहिए। गर्मीकी ऋतुमें पानीको ठंडा रखने की खास आवश्यकता है। पानीको तुरन्त ठंडा करने के लिए यदि मिल सके तो थोड़ी बरफ डाल सकते हैं। समय हो तो मिट्टीके घड़ेमें ठंडा किया हुआ पानी अच्छी तरह काम दे सकता है। टबमें पानीके ऊपर एक कपड़ा ढँककर जल्दी-जल्दी पंखा करने से भी पानी तुरन्त ठंडा किया जा सकता है।

टबको दीवारके साथ लगाकर रखना चाहिए, और उसमें पीठको सहारा देने के लिए एक लम्बा लकड़ीका तख्ता रखना चाहिए, ताकि उसका सहारा लेकर रोगी

१. लुई कूने; अंग्रेजी अनुवादमें यहाँ "जुस्ट" है।

आरामसे बैठ सके। रोगीको अपने पैर पानीसे बाहर रखकर बैठना चाहिए। पानीसे बाहरका शरीरका भाग ढँका रहना चाहिए, ताकि सर्दी न लगे। जिस कमरेमें टब रखा जाये, वह हवादार और रोशनीदार होना चाहिए। रोगीको आरामसे टबमें बैठाकर पेड़ूपर नरम तौलियेसे धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिए। पाँच मिनटसे लेकर तीस मिनटतक टबमें बैठ सकते हैं। स्नानके बाद गीले हिस्सेको सुखाकर रोगीको बिस्तरमें सुला देना चाहिए। यह स्नान बहुत सख्त बुखारको भी उतार देता है। इस तरह स्नान लेने में नुकसान तो है ही नहीं, जब कि लाभ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। स्नान भूखे पेट ही लेना चाहिए। इससे कब्जियतको भी फायदा होता है, और अजीर्ण भी मिटता है। स्नान लेनेवाले के शरीरमें स्फूर्ति आती है। कब्जियतवालों को स्नानके बाद आधा घंटा टहलने की सलाह कूनेने दी है।

इस स्नानका मैंने बहुत उपयोग किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि वह हमेशा ही सफल हुआ है, मगर इतना कह सकता हूँ कि सौ में पचहत्तर बार वह सफल हुआ है। खूब बुखार चढ़ा हुआ हो, तब यदि रोगीकी स्थिति ऐसी हो कि उसे टबमें बैठाया जा सके, तो इससे दो-तीन डिग्रीतक बुखार अवश्य उतर जायेगा और सन्निपातका भय मिट जायेगा।

१५ दिसम्बर, १९४२

इस स्नानके बारेमें कूनेकी दलील यह है: बुखारके बाहरी चिह्न भले कुछ भी हों, मगर उसका आन्तरिक कारण एक ही होता है। अँतड़ियोंमें इकट्ठे हुए मलके जहरसे या अन्य कारणोंसे बुखार उत्पन्न होता है। यह अँतड़ियोंका बुखार— अन्दरकी गर्मी—अनेक रूप लेकर बाहर प्रकट होता है। यह आन्तरिक बुखार कटि-स्नानसे अवश्य उतरता है, और उससे बाहरके अनेक उपद्रव शान्त होते हैं। मैं नहीं जानता कि इस दलीलमें कितना तथ्य है। यह तो अनुभवी डाक्टर ही बता सकते है। डाक्टरोंने यद्यपि नैसर्गिक उपचारोंमें से कई-एकको अपना लिया है, तो भी यह कहा जा सकता है कि वे इन उपचारोंके विषयमें उदासीन रहे हैं। इसमें दोनों पक्षोंका दोष पाता हूँ। डाक्टरोंने डाक्टरीके शिक्षण-केन्द्रोंसे सीखी हुई बातोंपर ही ध्यान देने की आदत डाल ली है, इसलिए बाहरकी चीजोंके प्रति वे लोग तिरस्कार नहीं तो उदासीनता अवश्य बताते हैं। नैसर्गिक उपचार करनेवाले लोग डाक्टरोंके प्रति तिरस्कारका भाव रखते हैं। उनके पास शास्त्रीय ज्ञान बहुत कम होता है, तो भी वे दावे बहुत बड़े-बड़े करते हैं। संघशक्तिका उन उपचारकोंमें अभाव रहता है, क्योंकि सब अपने-अपने ज्ञानकी पूँजीसे सन्तोष मानते हैं। इसलिए कोई दो उपचारक साथ मिलकर काम नहीं कर सकते। किसीके प्रयोग गहरे नहीं उतरते। बहुतोंमें नम्रताका भी अभाव होता है (क्या नम्रता सीखी भी जा सकती है?)।

यह सब कहकर मैं नैसर्गिक उपचारकोंको कोसना नहीं चाहता, परन्तु वस्तु-स्थिति बता रहा हूँ। जबतक उन लोगोंमें कोई अत्यन्त तेजस्वी मनुष्य पैदा नहीं होता, तबतक यह स्थिति बदलने की कम सम्भावना है। इस स्थितिको बदलने की जिम्मेदारी नैसर्गिक उपचारकोंपर है। डाक्टरोंके पास अपना शास्त्र है, अपनी प्रतिष्ठा

है, अपना संघ है और अपने विद्यालय हैं। अमुक हदतक उन्हें अपने काममें सफलता भी मिलती है। उनसे यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि एक अपरिचित चीजको, जो डाक्टरीकी मार्फत नहीं आई है, वे एकाएक ग्रहण कर लेंगे।

इस बीच सामान्य मनुष्यको इतना समझ लेना चाहिए कि नैसर्गिक उपचारोंका जैसा नाम है, वैसा ही उनका गुण भी है। क्योंकि वे कुदरती हैं, इसलिए सामान्य मनुष्य भी निश्चित होकर उनका उपयोग कर सकता है। सिरमें दर्द हो तो रूमाल को ठंडे पानीमें भिगोकर सिरपर रखने से कोई हानि हो ही नहीं सकती। गीले रूमालकी जगह गीली मिट्टीकी पट्टी रखें, तो जल और मिट्टी दोनोंके गुणोंका फायदा मिलेगा।

अब मैं घर्षण-स्नानपर आता हूँ। जननेन्द्रिय बहुत नाजुक इन्द्रिय है। उसकी ऊपरकी चमड़ीके सिरमें कुछ अद्‌भुत चीज है। उसका वर्णन करना मुझे नहीं आता। इस ज्ञानका लाभ लेकर कूनेने कहा है कि इन्द्रियके सिरपर (पुरुष हो तो सुपारी पर चमड़ी चढ़ाकर) नरम रूमालको पानीमें भिगोकर घिसते जाना चाहिए और पानी डालते जाना चाहिए। उपचारकी पद्धति यह बताई है: पानीके टबमें एक स्टूल रखा जाये। स्टूलकी बैठक पानीकी सतहसे थोड़ी ऊँची होनी चाहिए। इस स्टूलपर पाँव टबसे बाहर रखकर बैठ जाना चाहिए। और इन्द्रियके सिरपर घर्षण करना चाहिए। उसे तनिक भी तकलीफ नही पहुँचनी चाहिए। यह क्रिया बीमारको अच्छी लगनी चाहिए। स्नान लेनेवाले को इस घर्षणसे बहुत शान्ति मिलती है। उसका रोग भले कुछ भी हो, उस समय तो वह शान्त हो जाता है। कूनेने इस स्नानको कटि-स्नानसे ऊँचा स्थान दिया है। मुझे जितना अनुभव कटि-स्नानका है, उतना घर्षण-स्नानका नही है। इसमें मुख्य दोष तो मैं अपना ही मानता हूँ। मैंने घर्षण-स्नानका प्रयोग करने में आलस्य किया है। जिनको यह उपचार करने का मैंने सुझाव दिया था, उन्होंने इसका धीरजसे प्रयोग नहीं किया। इसलिए इस स्नानके परिणामके बारेमें मैं निजी अनुभवसे कुछ नहीं लिख सकता। सबको यह स्वयं आजमाकर देख लेना चाहिए। टब वगैरह न मिल सके, तो लोटेमें पानी भरकर भी घर्षण-स्नान किया जा सकता है। उससे शान्ति तो अवश्य मिलेगी। लोग इस इन्द्रियकी सफाईपर बहुत कम ध्यान देते हैं। घर्षण-स्नानसे यह आसानी से साफ हो जाती है। ध्यान न रखा जाये तो सुपारीको ढँकनेवाली चमड़ीमें मैल भर जाता है। इस मैलको साफ करने की पूरी आवश्यकता है। जननेन्द्रियका उपयोग घर्षण-स्नानके लिए करने और उसे साफ-सुथरा रखने से ब्रह्मचर्य-पालनमें मदद मिलती है। इससे आसपासके तन्तु मजबूत और शान्त बनते हैं। और इस इन्द्रियके द्वारा व्यर्थ वीर्य-स्खलन न होने देने की सावधानी बढ़ती है। क्योंकि इस तरह स्राव होने देने में जो गन्दगी रहती है, उसके लिए मनमें नफरत पैदा होती है, और होनी भी चाहिए।

इन दोनों खास स्नानोंको कूने-स्नान कह सकते हैं। तीसरा ऐसा ही असर पैदा करनेवाला चद्दर-स्नान है। जिसे बुखार आता हो, या किसी तरह भी नींद न आती हो, उसके लिए यह स्नान उपयोगी है।

खाटपर दो-तीन गरम कम्बल बिछाने चाहिए। ये काफी चौड़े होने चाहिए। इनके ऊपर एक मोटी सूती चद्दर — मोटी खादीका खेस — बिछाना चाहिए। इस चद्दरको ठंडे पानीमें भिगोकर और खूब निचोड़कर कम्बलोंपर बिछाना चाहिए। इसके ऊपर रोगीको कपड़े उतारकर चित सुला देना चाहिए। उसका सिर कम्बलों के बाहर तकियेपर रखना चाहिए, और सिरपर गीला निचोड़ा हुआ तौलिया रखना चाहिए। रोगीको सुलाकर तुरन्त कम्बलके किनारे और चद्दर चारों तरफ से शरीरपर लपेट देने चाहिए। हाथ कम्बलोंके अन्दर होने चाहए और पैर भी अच्छी तरह चद्दर और कम्बलोंसे ढँके रहने चाहिए, ताकि बाहरका पवन भीतर न जा सके। इस स्थितिमें रोगीको एक-दो मिनटमें गर्मी लगनी चाहिए। सर्दीका क्षणिक आभास-मात्र सुलाते समय होगा, बादमें तो रोगीको अच्छा ही लगना चाहिए। बुखारने घर न कर लिया हो, तो पाँच-एक मिनटमें गर्मी लगकर पसीना छूटने लगेगा। परन्तु सख्त बीमारीमें मैंने आधे घंटेतक रोगीको इस तरह गीली चद्दरमें रखा है और अन्तमें उसे पसीना आया है। कभी-कभी पसीना नही छूटता, मगर रोगी सो जाता है। सो जाये तो रोगीको जगाना नही चाहिए। नींदका आना इस बात का सूचक है कि उसे चद्दर-स्नानसे आराम मिला है। चद्दरमें रखने के बाद रोगीका बुखार एक-दो डिग्री तो नीचे उतरता ही है। मेरे (दूसरे) लड़केको[1] डबल निमो-निया हो गया था और सन्निपात भी। ऐसी हालतमें मैंने उसे चद्दर-स्नान कराया है। तीन-चार दिनतक इस तरह करने के बाद उसका बुखार उतर गया, और वह पसीनेसे तर-ब-तर हो गया। उसका बुखार आखिर टायफाइड सिद्ध हुआ और ४२ दिनके बाद ही पूरी तरह उतरा। चद्दर-स्नान जबतक बुखार १०६° तक जाता था, तभी तक दिया। सात दिनके बाद इतना सख्त बुखार आना बन्द हो गया, निमोनिया गया और टायफाइडके रूपमें १०३° तक बुखार रहने लगा। हो सकता है कि बुखारके अंश (डिग्री)के बारेमें मेरी स्मरण-शक्ति मुझे धोखा देती हो। यह उपचार मैंने डाक्टर मित्रोंका विरोध करके किया था। दवा बिलकुल नहीं दी। आज मेरे चारों लड़कोंमें वह लड़का सबसे अधिक स्वस्थ है, और सबसे अधिक श्रम करने की शक्ति रखता है।

१६ दिसम्बर, १९४२

शरीरमें घमौरी निकली हों, पित्ती निकली हुई हो, आमवात निकला हो, बहुत खुजली आती हो, खसरा या चेचक निकली हो तो भी यह चद्दर-स्नान काम देता है। मैंने इन रोगोंमें चद्दर-स्नानका उपयोग खुलकर किया है। चेचक या खसरेमें पानीमें गुलाबी रंग आ जाये इतना परमेंगनेट डालता था। चद्दरका उपयोग हो जाने पर उसे उबलते पानीमें डाल देना चाहिए, और जब पानी कुनकुना हो जाये तब उसे अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिए।

१. मणिलाल गांधीको; देखिए खण्ड ३९, पृ० १९०-९२।

रक्तकी गति मन्द पड़ गई हो, पाँव टूटते हों, तब बर्फ घिसने से बहुत फायदा होते मैंने देखा है। बर्फके उपचारका असर गर्मीकी ऋतुमें अधिक अच्छा होता है। सर्दीकी ऋतुमें कमजोर मनुष्यपर बर्फका उपचार करने में खतरा है।

अब गरम पानीके उपचारोंके बारेमें विचार करें। गरम पानीका बुद्धिपूर्वक उपयोग करने से अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। जो काम प्रसिद्ध दवा आयोडीन करती है, वही काम काफी हदतक गरम पानी कर देता है। सूजनवाले भागपर आयोडीन लगाते हैं। वहाँ गरम पानीकी पट्टी रखने से आराम होना सम्भव है। कानके दर्दमें आयोडीनकी बूँदें डालते हैं; उसमें भी गरम पानीकी पिचकारी लगाने से दर्द शान्त होने की सम्भावना है। आयोडीनके उपयोगमें कुछ खतरा रहता है, जब कि गरम पानीके उपचारोंमें कुछ नहीं। जिस तरह आयोडीन जन्तुनाशक है, उसी तरह उबलता गरम पानी भी जन्तुनाशक है। इसका यह अर्थ नही कि आयोडीन बहुत उपयोगी वस्तु नहीं है। उसकी उपयोगिताके बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। मगर गरीबके घरमें आयोडीन नही होता। वह महँगी चीज है। वह हर-एक आदमीके हाथमें नहीं रखा जा सकता। मगर पानी तो हर जगह होता है। इसलिए हम दवाके तौरपर उसके उपयोगकी अवगणना करते हैं। ऐसी अवगणना से हमें बचना चाहिए। ऐसे घरेलू उपचारोंको सीखकर और अपनाकर हम अनेक भयोंसे बच जाते है।

बिच्छूके काटेको जब दूसरी किसी चीजसे फायदा नहीं होता, तब डंकवाले भागको गरम पानीमें रखने से कुछ आराम तो मिलता ही है।

एकाएक सर्दी लगे, कँपकँपी चढ़ने लगे, तब रोगीको भाप देने से, या उसे अच्छी तरह कम्बल ओढ़ाकर उसके चारों ओर गरम पानीकी बोतलें रखने से उसकी कँपकँपी मिटाई जा सकती है। सबके पास रबड़की गरम पानीकी थैली नही होती। काँचकी मजबूत बोतलमें मजबूत कार्क लगाकर उसे गरम पानीकी थैलीके तौरपर इस्तेमाल किया जा सकता है।[1] धातुकी या दूसरी बोतल बहुत गरम हो, तो उसे कपड़ेमें लपेटकर इस्तेमाल करना चाहिए।

भापके रूपमें पानी बहुत काम देता है। पसीना न आता हो, तो भापके द्वारा लाया जा सकता है। गठियासे जिनका शरीर निकम्मा बन गया हो, या जिनका वजन बहुत बढ़ गया हो, उनके लिए भाप बहुत उपयोगी वस्तु है।

१७ दिसम्बर, १९४२

भाप लेने का पुराना और आसानसे-आसान तरीका यह है: सनकी या सुतली की खाट इस्तेमाल करना ज्यादा अच्छा है, मगर निवारकी खाट भी चल सकती है। खाटपर एक खेस या कम्बल बिछाकर रोगीको उसपर सुला देना चाहिए। उबलते पानीके दो पतीले या हंडे खाटके नीचे रखकर रोगीको इस तरह ढँक देना

१. इसके बाद आरोग्यनी चावी में निम्न वाक्य है: "किसी भी धातुकी बोतल जिसमें अच्छी तरह डाट लगाई जा सकती हो, वह भी अच्छा काम देती है।"

चाहिए कि कम्बल खाटपर से लटककर चारों तरफ जमीनको छू ले, ताकि खाटके नीचे बाहरकी हवा जा ही न सके। इस तरहसे लपेटने के बाद पानीके पतीलों या हंडोंपर से ढक्कन उतार देना चाहिए। इससे रोगीको भाप मिलने लगेगी। अच्छी तरह भाप न मिले, तो पानी बदलना होगा। दूसरे हंडेमें पानी उबलता हो, तो उसे खाटके नीचे रख देना चाहिए। साधारणतया हम लोगोंमें यह रिवाज है कि खाटके नीचे अंगारे रखते है और उसके ऊपर उबलते हुए पानीका बरतन। इस तरह पानीकी गर्मी कुछ ज्यादा मिल सकती है, मगर उसमें दुर्घटनाका डर रहता है। एक चिनगारी भी उड़े और कम्बल या किसी दूसरी चीजको आग लग जाये, तो रोगीकी जान खतरेमें पड़ सकती है। इसलिए तुरन्त गर्मी पाने का लोभ छोड़कर जो तरीका मैंने बताया है, उसीका उपयोग करना अच्छा है।

कुछ लोग भापके पानीमें वनस्पतियाँ डालते हैं, जैसे कि नीमके पत्ते। मुझे स्वयं इसकी उपयोगिताका अनुभव नही है, मगर भापका उपयोग तो प्रत्यक्ष है। यह हुआ पसीना लाने का तरीका।

पाँव ठंडे हो गये हों या टूटते हों, तो एक गहरे बरतनमें, जिसमें कि घुटने तक पाँव पहुँच सकें, सहन होने लायक गरम पानी भरना चाहिए और उसमें राई की भुक्की डालकर कुछ मिनटतक पाँव रखने चाहिए। इससे पाँव गरम हो जाते हैं, बेचैनी और पाँवोंका टूटना बन्द हो जाता है, खून नीचे उतरने लगता है और रोगीको आराम मालूम होता है। बलगम हो या गला दुखता हो, तो केटलीमें उबलता पानी भरकर गले और नाकको भाप दी जा सकती है। केटलीमें एक स्वतन्त्र नली लगाकर उसके द्वारा आरामसे भाप ली जा सकती है। यह नली लकड़ी की होनी चाहिए। इस नलीपर रबडकी नली लगा लेने से काम और भी आसान हो जाता है।

३. आकाश

आकाशका ज्ञानपूर्वक उपयोग हम कमसे-कम करते हैं। उसका ज्ञान भी हमें कमसे-कम होता है। आकाशको अवकाश कहा जा सकता है। दिनमें अगर बादल न हो, तो ऊपरकी ओर देखने पर एक अत्यन्त स्वच्छ सुन्दर आसमानी रंगका शामियाना नजर आता है। उसको हम आकाश कहते हैं। उसका ही दूसरा नाम आसमान है न? इस शामियानेका कोई ओर-छोर देखने में नही आता। वह जितना दूर है, उतना ही हमारे नजदीक भी है। हमारे चारों ओर आकाश न हो, तो हमारा खातमा ही हो जाये। जहाँ कुछ भी नही है, वहाँ आकाश है। इसलिए यह नहीं समझना चाहिए कि दूर-दूर जो आसमानी रंग देखने में आता है, वही आकाश है। आकाश तो हमारे पाससे ही शुरू हो जाता है। इतना ही नहीं, वह हमारे भीतर भी है। खालीपन अथवा शून्य (वैक्यूम)को आकाश कह सकते हैं। मगर सच तो यह है कि जो खाली नजर आता है, वह हवासे भरा हुआ है। यह भी सच है कि हम हवाको देख नहीं सकते। मगर हवाके रहने का ठिकाना कहाँ है? हवा

आकाशमें ही विहार करती है न? इसलिए आकाशसे हम अलग हो ही नही सकते। हवाको तो बहुत हदतक पम्प द्वारा खींचा भी जा सकता है, मगर आकाशको कौन खींच सकता है? यह सही है कि हम आकाशको भर देते हैं। मगर क्योंकि आकाश अनन्त है, इसलिए कितनी भी देहें क्यों न हों, सब उसमें समा जाती हैं।

इस आकाशकी मदद हमें आरोग्यकी रक्षाके लिए और उसे खो चुके हों तो फिरसे प्राप्त करने के लिए लेनी है। जीवनके लिए हवाकी सबसे अधिक आवश्यकता है, इसलिए वह सर्वव्यापक है। मगर हवा दूसरी चीजोंके मुकाबलेमें व्यापक है, पर अनन्त नहीं है। भौतिक शास्त्र हमें सिखाता है कि पृथ्वीसे अमुक मील ऊपर चले जायें, तो हवा नही मिलती। ऐसा कहा जाता है कि इस पृथ्वीके प्राणियों-जैसे प्राणी हवाके आवरणसे बाहर रह ही नही सकते। यह बात सच हो या न हो, हमें तो इतना ही समझना है कि आकाश जैसे यहाँ है, वैसे ही हवाके आवरणके बाहर भी है। इसलिए सर्वव्यापक तो आकाश ही है। फिर भले वैज्ञानिक लोग सिद्ध किया करें कि उस आवरणके ऊपर ईथर नामक पदार्थ या कुछ और है। वह पदार्थ भी जिसके भीतर रहता है, वह आकाश ही है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि अगर हम ईश्वरका भेद जान सकें, तो आकाशका भेद भी जान सकेंगे।

ऐसे महान तत्वका अभ्यास और उपयोग जितना हम करेंगे, उतना ही अधिक आरोग्यका उपभोग कर सकेंगे।

पहला पाठ तो यह है कि इस सुदूर और अदूर तत्वके और हमारे बीचमें कोई आवरण नही आने देना चाहिए। अर्थात् यदि घरबारके बिना, या कपड़ोंके बिना हम इस अनन्तके साथ सम्बन्ध जोड़ सकें, तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूरी तरह आरोग्यका अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्शतक हम भले न पहुँच सकें, या करोड़ोंमें से एक ही पहुँच सके, तो भी इस आदर्शको जानना, समझना और उसके प्रति आदर-भाव रखना आवश्यक है। और यदि वह हमारा आदर्श हो तो जिस हदतक हम उसे प्राप्त कर सकेंगे, उस हदतक हम सुख, शान्ति और सन्तोषका अनुभव करेंगे। इस आदर्शको मैं आखिरी हदतक पेश कर सकूँ, तो मुझे कहना पड़ेगा कि हमें शरीरका अन्तराल (बाधा) भी नहीं चाहिए। अर्थात् शरीर रहे या जाये, इस बारेमें हमें तटस्थ रहना चाहिए। मनको हम इस तरहका शिक्षण दे सकें, तो शरीरको विषय-भोगका साधन तो कभी नही बनायेंगे। तब अपनी शक्ति और अपने ज्ञानके अनुसार शरीरका सदुपयोग हम सेवाके लिए, ईश्वरको पहचानने के लिए, उसके जगत को जानने के लिए और उसके साथ ऐक्य साधने के लिए करेंगे। इस विचारश्रेणीके अनुसार घरबार, वस्त्रादिके उपयोगमें हम काफी अवकाश रख सकते हैं। कई घरोंमें इतना साज-सामान देखने में आता है कि मेरे जैसे गरीब आदमीका तो उसमें दम ही घुटने लगता है। उन सब चीजोंका उपयोग क्या है, यह उसकी समझमें ही नहीं आता। उसे वे सब धूल और जन्तुओंको इकट्ठा करने के साधन ही मालूम होंगे। यहाँ जिस जगह मैं रहता हूँ, वहाँ तो खो ही जाता हूँ। यहाँकी कुर्सियाँ, मेजें, अलमारियाँ और शीशे मुझे खाने को दौड़ते हैं। यहाँके

कीमती कालीन केवल धूल इकट्ठी करते हैं और सूक्ष्म जन्तुओंका घर बने हुए हैं। एक बार एक कालीनको झाड़ने के लिए निकाला गया था। वह एक आदमीका काम न था। छह-सात आदमी उसमें लगे। कमसे-कम दस रतल धूल तो उसमें से निकली ही होगी। जब उसे वापस उसकी जगह रखा गया, तो उसका स्पर्श नया ही मालूम हुआ। ऐसे कालीन रोज थोड़े ही निकाले जा सकते हैं? अगर निकाले जायें, तो उनकी उम्र कम हो जायेगी और मेहनत बढ़ेगी। यह तो मैं अपना ताजा अनुभव लिख गया। मगर आकाशके साथ मेल साधने की खातिर मैंने अपने जीवनमें अनेक झंझटें कम कर डाली हैं। घरकी सादगी, वस्त्रकी सादगी, और रहन-सहनकी सादगी बढ़ाकर, एक शब्दमें कहूँ और हमारे विषयसे सम्बन्ध रखती भाषामें कहूँ तो, मैंने अपने जीवनमें उत्तरोत्तर खालीपन बढ़ाकर आकाशके साथ सीधा सम्बन्ध बढ़ाया है। यह भी कह सकते हैं कि जैसे-जैसे यह सम्बन्ध बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा आरोग्य भी बढ़ता गया, मेरी शान्ति बढ़ती गई, सन्तोष बढ़ता गया, और धनेच्छा बिलकुल मन्द पड़ती गई। जिसने आकाशके साथ सम्बन्ध जोड़ा है, उसके पास कुछ नहीं है और सबकुछ है। अन्तमें तो मनुष्य उतनेका ही मालिक है जितनेका वह प्रतिदिन उपयोग कर सकता है, और जिसे वह पचा सकता है। इसलिए उसके उपयोगसे वह आगे बढ़ता है। सब ऐसा करें तो इस आकाश-व्यापी जगतमें सबके लिए स्थान रहे, और किसीको तंगीका अनुभव ही न हो।

१८ दिसम्बर, १९४२

इसलिए मनुष्यके सोने का स्थान आकाशके नीचे होना चाहिए। ओस और सर्दीसे बचने के लिए काफी ओढ़ने को रख सकते हैं। वर्षाऋतुमें एक छातेकी-सी छत भले हो, मगर बाकी हर समय उसकी छत अगणित तारागणोसे जड़ित आकाश ही होगा। जब आँख खुलेगी, वह प्रतिक्षण नया दृश्य देखेगा। इस दृश्यसे वह कभी ऊबेगा नहीं। इससे उसकी आँखें चौंधियायेंगी नहीं, बल्कि वे शीतलताका अनुभव करेंगी। तारागणोंका भव्य संघ उसे घूमता ही दिखाई देगा। जो मनुष्य उनके साथ सम्पर्क साधकर सोयेगा, उन्हें अपने हृदयका साक्षी बनायेगा, वह अपवित्र विचारोंको कभी अपने हृदयमें स्थान नहीं देगा, और शान्त निद्राका उपभोग करेगा।

परन्तु जिस तरह हमारे आसपास आकाश है, उसी तरह हमारे भीतर भी है। चमड़ीके एक-एक छिद्रमें, दो छिद्रोंके बीचकी जगहमें भी आकाश है। इस आकाश-अवकाशको भरने का हम जरा भी प्रयत्न न करें। इसलिए हम आहार जितना आवश्यक हो उतना ही लें, तो शरीरको अवकाश रहेगा। हमें इस बातका हमेशा भान नहीं रहता कि हम कब अधिक या अयोग्य आहार कर लेते हैं। इसलिए अगर हम हफ्तेमें एक दिन या पखवारेमें एक दिन या सुविधासे उपवास करें, तो शरीर का सन्तुलन कायम रख सकते हैं। जो पूरे दिनका उपवास न कर सकें, वे एक या एकसे अधिक वक्तका खाना छोड़ने से भी लाभ उठायेंगे।

४. तेज

जैसे आकाश, हवा, पानी आदि तत्वोंके बिना मनुष्यका निर्वाह नहीं हो सकता, वैसे ही तेज अर्थात् प्रकाशके बिना भी नही हो सकता। प्रकाश-मात्र सूर्यसे मिलता है। सूर्य न हो तो न हमें गर्मी मिल सके, न प्रकाश। इस प्रकाशका हम पूरा उपयोग नही करते, इसलिए पूर्ण आरोग्यका भी अनुभव नही करते। जैसे हम पानी का स्नान करके साफ होते है, वैसे ही सूर्य-स्नान करके भी साफ और तन्दुरुस्त हो सकते हैं। दुर्बल मनुष्य या जिसका खून सूख गया हो वह यदि प्रातःकालके सूर्य की किरणें नंगे शरीरपर ले, तो उसके चेहरेका फीकापन और दुर्बलता दूर हो जायेगी, और पाचन-क्रिया मन्द हो तो वह जाग्रत हो जायेगी। सवेरे जब धूप ज्यादा न चढ़ी हो, यह स्नान करना चाहिए। जिसे नंगे शरीर लेटने या बैठने में सर्दी लगे, वह आवश्यक कपड़े ओढ़कर लेटे या बैठे और जैसे-जैसे शरीर सहन करता जाये, वैसे-वैसे कपड़े हटाता जाये। नंगे बदन धूपमें टहल भी सकते है। कोई न देख सके, ऐसी जगह ढूँढ़कर यह क्रिया की जा सकती है। अगर ऐसी सहूलियत पैदा करने के लिए दूर जाना पड़े और इतना समय न हो, तो बारीक लंगोटीसे गुह्य भागोंको ढँककर सूर्य-स्नान लिया जा सकता है।

इस प्रकार सूर्य-स्नान लेने से बहुत-से लोगोको लाभ हुआ है। क्षयरोगमें इसका खूब उपयोग होता है। सूर्य-स्नान अब केवल नैसर्गिक उपचारकोंका विषय नहीं रहा। डाक्टरोंकी देखरेखमे ऐसे मकान बनाये गये हैं जहाँ ठंडी हवामें काँचकी ओटमें सूर्य किरणोंका सेवन किया जा सकता है।

कई बार फोड़ेका घाव भरता ही नही है। उसे सूर्य-स्नान दिया जाये, तो वह भर जाता है।

पसीना लाने के लिए मैंने रोगियोको ग्यारह बजेकी जलती धूपमें सुलाया है। इससे रोगी पसीनेसे तर-ब-तर हो जाता है। इतनी तेज धूपमें सुलाने के लिए रोगीके सिरपर मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिए। उसपर केलेके या दूसरे बड़े पत्ते रखने चाहिए, जिससे सिर ठंडा और सुरक्षित रहे। सिरपर तेज धूप नही लेनी चाहिए।

५. वायु

जैसे पहले चार तत्व, वैसे ही यह पाँचवाँ तत्व भी अत्यन्त उपयोगी है। जिन पाँच तत्वोंका यह मनुष्य-शरीर बना है, उनके बिना मनुष्य टिक ही नही सकता। इसलिए वायुसे किसीको डरना नहीं चाहिए। आम तौरपर हम जहाँ-कहीं जाते हैं, वहाँ घरमें वायु और प्रकाशका प्रवेश बन्द करके आरोग्यको खतरेमे डालते हैं। सच तो यह है कि यदि हम बचपनसे ही हवाका डर न रखना सीखे हों, तो शरीर को हवा सहन करने की आदत हो जाती है, और जुकाम, बलगम इत्यादिसे हम बच जाते हैं। हवाके प्रकरणमें इस बारेमें मै लिख चुका हूँ। इसलिए वायुके विषयमें यहाँ अधिक कहने की आवश्यकता नही रहती।

आरोग्यकी कुंजी

२. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

निजी

नजरबन्दी कैम्प[1]
नव वर्षकी पूर्व-संध्या, १९४२

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

यह अत्यन्त निजी पत्र है। 'बाइबिल' के आदेशके प्रतिकूल, मैंने अपने हृदयमें आपके विरुद्ध शिकायत लिये कितने ही दिन बीत जाने दिये हैं। परन्तु मैं यह गवारा नहीं कर सकता कि आपके विरुद्ध जो विचार मेरे हृदयको पीड़ा पहुँचा रहे हैं, उन्हें व्यक्त किये बिना इस वर्षका अन्तिम दिन भी बीत जाने दूँ। मैंने सोचा था कि हम दोस्त हैं और अब भी ऐसा ही सोचना चाहूँगा। लेकिन ९ अगस्तके बाद जो-कुछ हुआ है उसके कारण मनमें यह सवाल उठने लगा है कि क्या आप अब भी मुझे अपना दोस्त समझते हैं। आपकी इस गद्दीपर बैठनेवाले किसी अन्य व्यक्तिके साथ शायद मेरा इतना निकट सम्पर्क नही हुआ जितना कि आपके साथ।

आपका मुझे गिरफ्तार करना, उसके बाद जारी की गई आपकी विज्ञप्ति[2], राजाजी को आपका उत्तर[3] और उसके लिए दिये गये कारण, श्री एमरी द्वारा मेरी कटु आलोचना[4] और ऐसी बहुत-सी दूसरी बातें जो मैं गिना सकता हूँ — इन

१. पूनाका आगाखाँ पैलेस, जहाँ गांधीजी को ९ अगस्त, १९४२ को बम्बईमें गिरफ्तार करने के बाद बिना कोई आरोप लगाये नजरबन्द रखा गया था; देखिए खण्ड ७६।

२. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४४८-५३।

३. चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने गांधीजी के नाम एक तारमें लिखा था कि यदि उनका इरादा कोई उपवास करने का है तो उसे छोड़ दें, किन्तु वाइसरायने न तो उस तारको आगे जाने दिया और न स्वयं राजगोपालाचारीको ही उनसे मिलने की अनुमति दी। यहाँ तात्पर्य शायद उसी प्रसंगसे है। राजगोपालाचारीका वाइसरायसे मुलाकातका अनुरोध भी अस्वीकार कर दिया गया था। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३ (पृ० ६८३-४ और ८४०) में प्रकाशित वाइसरायके पत्र-व्यवहारसे ज्ञात होता है कि वे "गांधी या कार्य-समितिके साथ किसीको कोई पत्र-व्यवहार करने की अनुमति देने को तैयार नहीं थे", क्योंकि उनका विचार था, "यदि एक बार यह सिलसिला आरम्भ हो गया तो इसका कोई अन्त ही नहीं रहेगा।" और फिर "श्री राजगोपालाचारीके साथ बात करने का मतलब निश्चय ही यह लगाया जायेगा कि वे वार्ताके लिए इच्छुक हैं, और देशके बहुत-से महत्त्वपूर्ण वर्गों के लोग, जो उनके द्वारा व्यक्त दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हैं, इसे निकट आ रहे समझौतेको, शायद कमजोरीको भी, निशानी मानेंगे।"

४. इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० ३५०-१ के अनुसार ११ सितम्बर, १९४२ को कॉमन्स सभामें बहसका जवाब देते हुए भारत मन्त्री एल० एस० एमरीने कहा था : ". . .सर स्टैफर्ड क्रिप्सके भारतसे प्रस्थान करते ही यह स्पष्ट हो गया था कि श्री गांधीकी प्रेरणासे कांग्रेस

सबसे प्रकट होता है कि किसी-न-किसी समय आप मेरी नेक-नीयतीपर सन्देह करने लग गये थे। इसी सम्बन्धमें दूसरे कांग्रेसियोंके नाम तो प्रसंगवश लिये गये हैं। लगता है, कांग्रेसमें जो भी बुराइयाँ आरोपित की गई हैं, उनका प्रेरणा-स्रोत और मूल कारण मुझे ही माना गया है। अगर मैं अब भी आपका मित्र हूँ तो आपने यह सख्त कार्रवाई करने से पहले मुझे क्यों बुला नहीं भेजा और अपने सन्देह मुझे क्यों नही बताये, और अपने तथ्योंकी सत्यता क्यों निश्चित नही कर ली? मेरे लिए अपनेको उस तरह देखना जैसा कि दूसरे मुझे समझते हैं, बिलकुल सम्भव है, परन्तु इस बार तो मैं ऐसा करने में बिलकुल असफल रहा हूँ। मैं देखता हूँ कि इस सम्बन्धमें मेरे विषयमें सरकारी क्षेत्रोंमें दिये गये बयानोंमें कई स्पष्टतः झूठी बातें हैं। मैं कृपासे यहाँतक वंचित हो गया हूँ कि मुझे मौतके मुँहमें पड़े एक मित्रके[1] साथ सम्पर्क स्थापित करने की भी सुविधा नही मिली। मेरा अभिप्राय प्रो० भणसाली से है, जो चिमूरके मामलेको लेकर अनशन कर रहे हैं। और मुझसे आशा की जाती है कि मैं कांग्रेसी माने जानेवाले कुछ लोगोंकी कथित हिंसाकी निन्दा करूँ, हालाँकि मेरे पास सरकार द्वारा की गई भारी काट-छाँटके बाद अखबारोंमें छपी खबरोंके अतिरिक्त कोई सामग्री नही जिसके आधारपर मैं उनकी निन्दा कर सकूँ। मैं साफ कहता हूँ कि मैं इन खबरोंपर बिलकुल विश्वास नहीं करता। मेरे पास लिखने को बहुत-कुछ है, परन्तु मैं अपने दुःखड़ेके वृत्तान्तको लम्बा नहीं करना चाहता। मुझे विश्वास है, मैंने इतना कह दिया है कि तफसीलोंका अन्दाजा अब आप खुद लगा सकते हैं।

आप जानते हैं कि मैं एक उद्देश्य लेकर १९१४ के अन्तमें आफ्रिकासे भारत लौटा था। उस उद्देश्यकी प्रेरणा मुझे १९०६ में मिली थी और वह उद्देश्य था — जीवनके हर क्षेत्रमें हिंसा और झूठके बजाय सत्य और अहिंसाका मानव-मात्रमें प्रचार करना। सत्याग्रहके सिद्धान्तकी कभी पराजय नहीं होती। कारावास भी इस सन्देशके

मौजूदा भारत सरकारको ठप कर देने के उद्देश्यसे धीरे-धीरे प्रत्यक्ष अवमाननाकी नीतिकी ओर झुक रही है।. . .उनके सचिव श्री देसाईके अनुसार, उन्होंने कहा है: 'मेरा दृष्टिकोण बदल गया है, मुझसे प्रतीक्षा करते नहीं बन सकता। मुझे स्पष्ट खतरे उठाकर भी लोगोंसे गुलामीका विरोध करनेको कहना चाहिए।' श्री गांधीने घोषणा की कि राष्ट्रीय स्वातन्त्र्यके लिए लोगोंको बमों, गोलियों और गोलोंका सामना करना पड़ सकता है। क्या यह विशुद्ध अहिंसक आन्दोलन-जैसा दिखता है? प्रतिरोधके तरीके के बारेमें श्री गांधीने कहा: 'निःसन्देह अहिंसक मार्ग उत्तम है, लेकिन अगर वह सुलभ नहीं होता तो स्वभावतः . . . हिंसक मार्ग आवश्यक भी है और सम्मानजनक भी, और यहाँ निष्क्रियताका मतलब पहले दर्जेकी कायरता और नपुंसकता होगी।'. . . भारत सरकारने उल्लेखनीय धीरजका परिचय दिया।. . .जबतक इस बातकी सम्भावना रही कि श्री गांधीसे प्रभावित कार्य-समितिके अनिष्टकारी मन्तव्योंका अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी शायद अनुमोदन न करे तबतक भारत सरकारने कोई कार्रवाई नहीं की।"

१. सेवाग्राम आश्रमके सदस्य जयकृष्ण भणसाली १७ अक्टूबरको चिमूरमें बरती गई नृशंसताकी सार्वजनिक न्यायिक जाँच न करवाये जाने के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए २६ नवम्बरसे अनिश्चित कालके लिए उपवास कर रहे थे; देखिए खण्ड ७६।

प्रसारके अनेक उपायोंमें से एक है, परन्तु इसकी सीमाएँ हैं। आपने मुझे एक महलमें रखा है, जहाँ हर प्रकारके उचित भौतिक सुखकी व्यवस्था है। मैंने सुख भोगने के विचारसे नहीं, केवल कर्त्तव्य-बुद्धिसे ही और इस आशामें इन सुखोंका निस्संकोच उपभोग किया है कि सत्ता-सम्पन्न अधिकारी किसी-न-किसी दिन समझेंगे कि उन्होंने निर्दोष व्यक्तियोंके साथ अन्याय किया है। मैंने इस सुख-भोगके लिए अपनेको छः महीनेकी अवधि दी थी। वह अवधि अब खत्म होनेवाली है और इसके साथ मेरा धैर्य भी। सत्याग्रहका सिद्धान्त — जैसा कि मैं उसे जानता हूँ — परीक्षाकी ऐसी घड़ीके लिए एक उपाय बताता है। संक्षेपमें वह उपाय है: उपवास द्वारा शरीरको होम देना। वही सिद्धान्त कहता है कि उस उपायको एक अन्तिम उपायके तौरपर ही काममें लाया जाये। मै इससे काम नही लेना चाहता, बशर्ते कि मेरे लिए इससे बचना सम्भव हो। इससे बचने का यह तरीका है कि आप मुझे मेरी गलती या गलतियाँ समझाइए और मैं उनका परिशोध करूँगा। आप मुझे बुलवा सकते हैं या मेरे पास ऐसे आदमीको भेज सकते हैं जो आपके विचारोंको जानता हो और मुझे कायल कर सकता हो। यदि आपमें चाह है तो अन्य अनेक राहें भी हैं। क्या मैं आशा करूँ कि आप जल्दी उत्तर देंगे? ईश्वर करे कि नया वर्ष हम सबको शान्ति दे।[1]

आपका सच्चा मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० १८-१९। **कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी,** पृ० ५ भी

३. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

१९ जनवरी, १९४३

निजी

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मुझे आपका चालू माहकी १३ तारीखका कृपा-पत्र[2] कल दोपहर बाद २-३० बजे मिला। मैं आपसे पत्र पाने के बारेमें लगभग निराश हो गया था। इस अधीरताके लिए क्षमा चाहता हूँ।

१. ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ४३९ और ४५८ के अनुसार वाइसरायने ३ जनवरीको पत्रका पाठ तार द्वारा एमरीको प्रेषित कर दिया, और उसके उत्तरमें ५ जनवरीको एमरीने सूचित किया कि "जवाब देनेकी बहुत जल्दी करने की कतई कोई जरूरत नहीं है।" लेकिन एमरी और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलसे परामर्श करने के बाद वाइसरायने १३ जनवरीको इसका उत्तर गांधीजी को भेज दिया; देखिए परिशिष्ट १।

२. देखिए परिशिष्ट १।

आपके पत्रसे मुझे यह जानकर खुशी होती है कि आपने मुझे बिरादरीसे बाहर नहीं किया है।

मेरा ३१ दिसम्बरका पत्र[1] आपके विरुद्ध मेरी गुर्राहट थी। आपका पत्र मेरे विरुद्ध आपकी जवाबी गुर्राहट है। इसका मतलब यह है कि आपकी अब भी यह धारणा है कि आपने मुझे गिरफ्तार करके ठीक ही किया और आपके खयालसे मैं जिन अकर्मोंका दोषी हूँ, उनके लिए आपको अफसोस है।

आपने मेरे पत्रसे जो निष्कर्ष निकाला है, मेरे खयालमें वह ठीक नहीं है। आपने मेरे पत्रका जो अर्थ लगाया है उसे ध्यानमें रखकर मैंने अपने पत्रको फिर पढा है, परन्तु मुझे तो उसमें वह अर्थ नही मिला जो आपने लगाया है। मै अनशन करना चाहता था और अगर हमारे पत्र-व्यवहारका कोई नतीजा नही निकला और मुझे देशमें होनेवाली घटनाओंका, विशेषतः सर्वत्र अभावके कारण लोगोंको होनेवाले कष्टोंका, असहाय दर्शक बनना पड़ा तो मै अब भी अनशन करना चाहूँगा।

आपने मेरे पत्रका जो अर्थ लगाया है अगर मैं उसे ठीक न मानूँ तो आप चाहते है कि मै कोई निश्चित सुझाव दूँ। शायद मै ऐसा कर सकूँ, लेकिन यह तभी हो सकता है जब आप मुझे कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंके साथ रहने का अवसर दें।

अगर मुझे यकीन हो जाये — जैसे कि आपको है — कि मैंने कोई गलती या उससे भी बुरी बात की है तो जहाँतक मेरी अपनी कार्रवाईका सम्बन्ध है, मुझे अपनी गलतीको पूरी तरह और खुल्लमखुल्ला स्वीकार करने और उसका परिशोध करने के लिए किसीसे सलाह लेने की जरूरत नही होगी। लेकिन मुझे ऐसा यकीन नही है कि मैंने कोई गलती की है। क्या आपने भारत सरकारके सचिवके नाम मेरा २१ सितम्बर, १९४२ का पत्र[2] देखा है? उसमें और १४ अगस्त, १९४२ के आपके नाम अपने पत्रमें[3] मैंने जो कहा था उसपर मै कायम हूँ।

९ अगस्तके बाद जो घटनाएँ हुई हैं, उनपर मुझे बेशक बहुत अफसोस है। पर क्या मैंने उनके लिए भारत सरकारको पूर्णतः दोषी नही ठहराया है? दूसरी बात यह है कि मै उन घटनाओंके बारेमें कोई राय प्रकट नही कर सकता जिनको मैं प्रभावित नहीं कर सकता या जिनपर कोई नियन्त्रण नही रख सकता और जिनका मुझे एकतरफा विवरण ही मिला है। आपको अपने विभागीय अध्यक्षोंसे जो खबरें मिलती हैं, उन्हें ठीक मानना आपके लिए प्रत्यक्षतः जरूरी है। लेकिन आप यह आशा नही करेंगे कि मै भी उन्हें मान लूँगा। ऐसी खबरें पहले भी कई बार गलत साबित हुई हैं। इसी कारण मैंने अपने ३१ दिसम्बरके पत्रमें अनुरोध किया था कि आपकी धारणा जिन खबरोंपर आधारित है, उनके सच होने के बारेमें मुझे कायल

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. वास्तवमें यह पत्र २३ सितम्बरको लिखा गया था; देखिए खण्ड ७६, पृ० ४५७-५८।
३. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४४८-५३।

कीजिए। आप शायद इस बातको समझेंगे कि आप मुझसे जिस बयानकी आशा करते हैं वैसा बयान देने में मेरे लिए बुनियादी कठिनाई है।

अलबत्ता मैं इस बातका खुल्लमखुल्ला ऐलान कर सकता हूँ कि अहिंसामें मेरा अब भी उतना ही दृढ़ विश्वास है जितना कि पहले कभी था। आपको शायद यह बात मालूम नहीं कि मैंने कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं द्वारा की गई हिंसाकी हर कार्रवाईकी खुल्लमखुल्ला और साफ-साफ शब्दोंमें निन्दा की है। मैंने कई दफा ऐसी हिंसाके लिए सार्वजनिक रूपसे प्रायश्चित्त भी किया है।[1] मैं उदाहरण देकर आपको थकाना नहीं चाहता। मेरा मुद्दा यह है कि ऐसे हर अवसरपर मैं एक स्वतन्त्र व्यक्ति था।

लेकिन इस बार, जैसा कि मैंने निवेदन किया है, सरकारको ही कदम वापस लेना है। आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे कि मैं आपकी रायको अमान्य करने वाली राय व्यक्त कर रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि अगर आपने अपनी कार्रवाई थोड़ी देरके लिए रोक दी होती और मुझे मुलाकात दी होती तो इसका परिणाम अच्छा ही होता। मैंने ८ अगस्तकी रातको घोषणा[2] की थी कि मैं आपसे भेंट करने की प्रार्थना करूँगा। परन्तु भाग्यमें ऐसा नहीं लिखा था।

क्या मैं आपको याद दिलाऊँ कि भारत सरकारने पहले भी कई बार अपनी गलतियाँ स्वीकार की हैं? उदाहरणतः पंजाबमें, जब कि दिवंगत जनरल डायरकी निन्दा की गई[3]; संयुक्त प्रान्तमें कानपुरमें, जब एक मसजिदके कोनेका फिरसे निर्माण किया गया[4]; और बंगालमें, जब कि बँटवारेको रद्द कर दिया गया।[5] ये सारी बातें इनके पूर्व भीड़ द्वारा भारी हिंसा किये जाने के बावजूद की गईं।

संक्षेपतः

१. यदि आप चाहते हैं कि मैं अकेले कार्रवाई करूँ तो मुझे मेरी गलतीका कायल कीजिए; फिर मैं पर्याप्त परिशोध करूँगा।

२. अगर आप चाहते हैं कि मैं कांग्रेसकी ओरसे कोई सुझाव दूँ, तो मुझे कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंके साथ ठहराने का प्रबन्ध कीजिए। मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप गतिरोधको दूर करने का निश्चय कर लीजिए।

अगर मेरा पत्र अस्पष्ट है या अगर मैंने आपके पत्रका पूरा जवाब नहीं दिया है, तो कृपया बताइए कि मुझसे कौन-सी बातें छूट गई हैं। मैं आपकी तसल्ली कराने की कोशिश करूँगा।

१. १९२१ में १९ से २१ नवम्बरतक; १९२२ में १२ से १६ फरवरीतक; और १९३४ में ७ से १३ अगस्ततक; देखिए खण्ड २१, २२ और ५८।

२. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४३३-३४।

३. एक जाँच समितिने १३ अप्रैल, १९१९ के जलियाँवाला बाग गोली-कांडके लिए जनरल डायरकी निन्दा की और उन्हें सेनासे इस्तीफा देने का आदेश दिया।

४. १९१३ में कानपुरमें एक सड़कको चौड़ा करने के लिए एक मसजिदका कुछ भाग गिरा दिये जाने पर दंगा हो गया था। लॉर्ड हार्डिंगको मसजिदके पुनर्निर्माणका आदेश देना पड़ा था।

५. १९०५ में बंगालका बँटवारा करने पर भारी अशान्ति मच गई थी और १९१२ में बँटवारेको रद्द कर दिया गया था।

मैंने कोई बात मनमें छिपाई नहीं है।

मैं देख रहा हूँ कि आपके नाम मेरे पत्र बम्बई सरकारकी मार्फत भेजे जाते हैं। इस तरह कुछ समय नष्ट हो जाता है। चूंकि इस मामलेमें समयका बहुत अधिक महत्त्व है, शायद आप हिदायत देना चाहेंगे कि इस कैम्पके अधीक्षक महोदय मेरे पत्र आपको सीधे भेज दिया करें।[1]

आपका सच्चा मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २१-२२। कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ६-७ भी

४. स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा[2]

[२२ जनवरी, १९४३ या उसके पूर्व][3]

मेरा तात्कालिक उद्देश्य यह है — और वर्षोंसे रहा है — कि भारत सत्य और अहिंसाके उपायोंसे ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त करे जो हर अर्थमें पूर्ण स्वतन्त्रता हो। और इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए मैं आज स्वतन्त्रता-दिवस [की इस तेरहवीं वर्षगांठ][4] पर फिर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तबतक दम नहीं लूंगा [और न उन लोगोंको दम लेने दूंगा जिनपर मेरा कुछ भी प्रभाव है][5] जबतक कि स्वतन्त्रताकी प्राप्ति न हो जाये। अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिए मैं उस दिव्य और अदृश्य शक्तिकी सहायता चाहता हूँ जिसे हम गॉड, अल्ला, परमात्मा आदि परिचित नामोंसे याद करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २४-१-१९४५

१. इसके उत्तरमें २५ जनवरीको वाइसरायने अपने पहलेवाले विचारको ही दोहराते हुए लिखा कि उपद्रवके लिए गांधीजी और कांग्रेस दोषी थे। उन्होंने गांधीजीको यह भरोसा दिलाया कि अगर वे ८ अगस्तके प्रस्तावको "वापस ले लें" तो वे "मामलेपर आगे विचार करने को तैयार हैं"। उन्होंने आगे यह भी लिखा: "कहने की जरूरत नहीं कि उस मुद्देके बारेमें साफ बात करनी बहुत जरूरी है, और मैं जानता हूँ कि अगर मैं उस चीजको अधिकसे-अधिक स्पष्ट शब्दोंमें रखता हूँ तो आप उसका कोई गलत अर्थ नहीं लगायेंगे।" (ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ५३६)।

२ और ३. यह प्रतिज्ञा दिनांक "वर्धागंज, २२ जनवरी" के अन्तर्गत प्यारेलालके एक वक्तव्यमें प्रकाशित हुई थी। प्यारेलालने बताया है कि इसे गांधीजी ने स्वतन्त्रता-दिवसके लिए अपनी नजरबन्दीके दौरान लिखा। उनके कथनानुसार ८ अगस्त, १९४२ [भारत छोड़ो आन्दोलन] की पहली वर्षगाँठके अवसरपर और फिर १९४३ और १९४४ के स्वतन्त्रता-दिवसोंपर भी गांधीजी और उनके साथियोंने प्रतिज्ञामें संशोधन किया। गांधीजी द्वारा १० जनवरी, १९३० को तैयार किये गये प्रतिज्ञाके मूल मसौदेके लिए देखिए खण्ड ४२, पृ० ३९५-९७; दिसम्बर १९३९ में कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा संशोधित रूपके लिए देखिए खण्ड ७१, परिशिष्ट १ और फिर उसके ११ जनवरी, १९४१ को गांधीजी द्वारा परिवर्धित रूपके लिए देखिए खण्ड ७३, पृ० ३०५।

४ और ५. सुशीला नैयरकी बापूकी कारावास-कहानी से

५. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

नजरबन्दी कैम्प
२९ जनवरी, १९४३

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

चालू मासकी १९ तारीखके मेरे पत्रका तुरन्त उत्तर[1] देनेके लिए हार्दिक धन्यवाद। काश, मैं आपकी यह बात मान सकता कि आपका पत्र स्पष्ट है! मेरा विश्वास है कि स्पष्टतासे आपका यह अभिप्राय कदाचित नहीं है कि आपकी अमुक राय बिलकुल पक्की है। मैंने आपसे अनुरोध किया है और मरते दमतक करता रहूँगा कि आप मुझे इस बातका कायल करनेकी कमसे-कम कोशिश तो कीजिए कि आपकी यह राय ठीक है कि गत वर्ष ९ अगस्तको और उसके बाद होनेवाली हिंसाकी घटनाओंका कारण कांग्रेसका अगस्तका प्रस्ताव[2] ही था, हालाँकि वे घटनाएँ भारी संख्यामें मुख्य कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंको गिरफ्तार किये जानेके बाद ही शुरू हुई थीं। क्या सरकारकी सख्त और अनुचित कार्रवाई उस हिंसाका कारण नहीं थी?

आपने इतना भी नहीं बताया कि आपकी रायमें अगस्त प्रस्तावका कौन-सा भाग बुरा अथवा आपत्तिजनक है। उस प्रस्तावका कदापि यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेसने अपनी अहिंसाकी नीति त्याग दी है। वह निश्चय ही हर तरहके फासीवादके विरुद्ध है। उसमें युद्धकी कोशिशोंमें सहयोग करनेकी तत्परता बताई गई है, लेकिन सिर्फ ऐसी परिस्थितियोंमें जिनमें ठोस और राष्ट्रव्यापी सहयोग सम्भव हो सकता है।[3] जाहिर है कि सरकारने इस महत्त्वपूर्ण बातकी या तो उपेक्षा कर दी या इसे नजरअन्दाज कर दिया कि कांग्रेसने अगस्तवाले प्रस्तावमें अपने लिए कुछ भी नहीं माँगा था। उसकी सभी माँगें सारी जनताके लिए थीं। जैसा कि आपको मालूम ही होगा, कांग्रेस इस बातके लिए राजी और तैयार थी कि सरकार कायदे-आजम जिन्नाको इस शर्तके साथ राष्ट्रीय सरकार बनानेका निमन्त्रण दे कि युद्ध-कालके लिए जो भी बातें जरूरी हों उनके बारेमें आपसी सहमतिसे फैसला कर लिया जायेगा और वह सरकार यथोचित रीतिसे निर्वाचित विधान-सभाके प्रति जिम्मेवार होगी। श्रीमती सरोजिनी देवीके अतिरिक्त कार्य-समितिके अन्य सदस्योंके साथ मेरा

१. देखिए पृ० ५०, पा० टि० १।

२. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट १०।

३. आगेके पाँच वाक्य "असावधानीवश छूट गये थे" और इसलिए इन्हें मूल पत्रके अन्तमें पश्चात्-लेखके रूपमें जोड़ दिया गया था। लेकिन उसकी एक साफ नकलमें, जो गांधीजी ने अपने ७ फरवरी, १९४३ के पत्रके साथ वाइसरायको भेजी थी, इन वाक्योंको यथास्थान रख दिया गया था। यहाँ भी पश्चात्-लेखको उसी क्रममें रखा गया है।

सम्पर्क टूट जाने के कारण मुझे मालूम नही है कि अब कार्य-समितिका क्या विचार है। लेकिन ऐसा नही लगता कि समितिका विचार बदल गया होगा। क्या यह बात निन्दनीय है? प्रस्तावके उस अनुच्छेदपर शायद आपत्ति की जा सके जिसमें सविनय अवज्ञाका इरादा व्यक्त किया गया है। परन्तु वह भाग अपने-आपमें आपत्तिजनक नही है, क्योंकि "गांधी-अर्विन समझौते"[1] में सविनय अवज्ञाके सिद्धान्त का अनुमोदन निहित है। और वह सविनय अवज्ञा भी तबतक शुरू नही की जानी थी जबतक कि उस भेंटका परिणाम न मालूम हो जाता जिसके लिए मैं आपसे समय माँगनेवाला था।

और फिर वे इल्जाम लीजिए जो भारत-मन्त्री-जैसे जिम्मेवार मन्त्रीने कांग्रेसपर और मुझपर लगाये हैं और जो साबित नही किये गये और जो, मेरी रायमें, साबित नही किये जा सकते।[2]

निश्चय ही मैं बिलकुल निरापद होकर कह ही सकता हूँ कि अपनी कार्रवाईका औचित्य सरकारको साबित करना है — और सो केवल अपनी अधिकार-वत्ताके बलपर नहीं, बल्कि ठोस प्रमाण देकर।

लेकिन आप कांग्रेसी माने जानेवाले लोगों द्वारा की गई हत्याओंकी बात मेरे सामने रखते हैं। हत्याएँ हुई हैं, यह मैं उतनी ही स्पष्टतासे देख सकता हूँ जितनी स्पष्टतासे, मेरे खयालमें, आप। मेरा जवाब यह है कि सरकारने लोगोंको इतना उत्तेजित किया कि वे पागल हो उठे। सरकारने ऊपर उल्लिखित गिरफ्तारियोंके रूपमें भयंकर हिंसा शुरू कर दी। वह हिंसा इसलिए कुछ कम हिंसा नहीं हो जाती कि वह इतने व्यापक पैमानेपर संगठित है कि मूसाके "दाँतके बदले दाँत" के सिद्धान्तके बदले उसके मसीही अनुसिद्धान्त अर्थात् बुराईके अप्रतिरोधके नियमसे काम लेना तो दूर रहा, उल्टे उसके स्थानपर "एकके बदले दस हजार" का सिद्धान्त प्रतिष्ठित कर दिया गया है। सर्वशक्तिमान भारत सरकारके दमन-चक्रको मैं [हिंसाके अतिरिक्त] कोई और नाम नहीं दे सकता।

इस दुःखमयी दास्तानके साथ उन तकलीफोंका भी किस्सा जोड़ दीजिए जो करोड़ों लोग देशव्यापी अभावके कारण झेल रहे हैं। मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि यदि देशमें जनता द्वारा निर्वाचित विधान-सभाके प्रति जिम्मेदार सच्ची राष्ट्रीय सरकार होती तो ये तकलीफें यदि पूरी तरह रोकी न जा सकतीं तो बहुत हदतक कम तो की ही जा सकती थीं।

यदि मुझे ऐसा मरहम न मिले जो मेरी पीड़ाको दूर करके आराम पहुँचाये, तो मुझे सत्याग्रहियोंके लिए विहित नियमका पालन करना होगा, अर्थात् यथाशक्ति अनशन करना होगा। ९ फरवरीको बहुत सवेरे नाश्ता करने के बाद मैं २१ दिनों का अनशन शुरू करूँगा, जो २ मार्चकी सुबह खत्म होगा। अनशनके दौरान मैं आम तौरपर नमक मिला पानी पीता हूँ। परन्तु आजकल मेरे शरीरको पानी

१. देखिए खण्ड ४५, परिशिष्ट ६।
२. देखिए पृ० ४५, पा० टि० ४।

माफिक नहीं आता। इसलिए इस बार पानीको पीने लायक बनाने के लिए मेरा उसमें नीबू आदिका रस मिलाने का विचार है। कारण, मेरी इच्छा आमरण अनशन करने की नहीं है, बल्कि उस कठोर परीक्षाके बाद भी जीते रहने की है, बशर्ते कि ईश्वरको ऐसा मंजूर हो। सरकार आवश्यक राहत देकर इस अनशनको जल्दी खत्म करा सकती है।

पहले दो पत्रोंकी भाँति मैं इसे 'निजी' पत्रके रूपमें नहीं भेज रहा हूँ।[1] वे पत्र भी गोपनीय नहीं थे। उनमें निजी विनती-मात्र थी।[2]

आपका सच्चा मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २४-२६। कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ८-९ भी

६. पत्र : सर जॉन गिलबर्ट लेथवेटको

नजरबन्दी कैम्प
७ फरवरी, १९४३

प्रिय सर गिलबर्ट,[3]

इतने लम्बे अर्सेके बाद आपका हस्ताक्षर देखकर मुझे खुशी हुई। जब मैंने कहा था कि दोनों निजी पत्र[4] गोपनीय नहीं है, तो मेरा मतलब निस्सन्देह वही था जो आप बता रहे हैं।[5] लेकिन साथ ही मेरा यह भी मतलब था कि यद्यपि मेरे लिए वे गोपनीय नहीं हैं, फिर भी अगर वाइसराय महोदय उन्हें गोपनीय ही रखना चाहें —क्योंकि वे निजी पत्र हैं—तो वे ऐसा कर सकते है और अपने दोनों उत्तरोंको भी वैसे ही गोपनीय रख सकते हैं। उस सूरतमें वे चारों पत्रोंको बेशक प्रकाशित न होने दें। जहाँतक मेरी बात है, मैं तो अनुरोध करूँगा

१. देखिए पृ० ४५-५०।
२. वाइसरायके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट २।
३. वाइसरायके निजी सचिव
४. ३१ दिसम्बर, १९४२ का और १९ जनवरी, १९४३ का
५. अपने ५ फरवरीके पत्रमें सर गिलबर्टने वाइसरायके नाम गांधीजी के पत्र (देखिए पिछला शीर्षक) के अन्तिम अनुच्छेदके सम्बन्धमें लिखा था : "जैसी कि आपने निस्सन्देह आशा की होगी, वाइसराय महोदय अबतक 'निजी' शब्दका सामान्य रूढ़ अर्थ लगाते रहे हैं, और तदनुसार अपने उत्तर भी 'व्यक्तिगत' रूपमें ही भेजते रहे हैं। वे मानते हैं . . . वे उन पत्रोंको अपने उत्तरोंके साथ प्रकाशित कर दें तो आपको इसपर कोई आपत्ति नहीं होगी। . . .।"

कि सारा पत्र-व्यवहार — गत वर्ष १४ अगस्तके मेरे पत्रसे लेकर और भारत सरकारके गृह-विभागके सचिवके नाम मेरे पत्रको शामिल करके — प्रकाशित कर दिया जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २९

७. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

नजरबन्दी कैम्प
७ फरवरी, १९४३

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मेरे गत २९ जनवरीके पत्रका आपने इसी महीनेकी ५ तारीखको जो लम्बा जवाब[1] दिया है, उसके लिए धन्यवाद। आपके पत्रकी अन्तिम बात — अर्थात् इसी माहकी ९ तारीखको शुरू होनेवाले अनशन — को मैं पहले लेता हूँ। एक सत्याग्रहीके दृष्टिकोणसे आपका पत्र अनशन करने का आमन्त्रण है। इस कदमके लिए और उसके परिणामोंके लिए जिम्मेवारी, निस्सन्देह, सिर्फ मेरी होगी। आपकी कलम से एक ऐसा वाक्यांश लिखा गया है जिसके लिए मैं तैयार नहीं था। दूसरे अनुच्छेदके अन्तिम वाक्यमें आपने मेरे कदमको "बच निकलने का आसान तरीका ढूँढ़ने का" प्रयत्न बताया है। आश्चर्य है कि आप मित्र होते हुए भी मुझपर यह आरोप लगा सकते हैं कि मेरा उद्देश्य इतना नीचा और कायरतापूर्ण है। आपने इस कदमको "धमकी देकर अपना राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध करने का ही एक रूप" बताया है। आपने मेरी बातको गलत साबित करने के लिए मेरे पहले लेखोंका हवाला दिया है। मैं अपने लेखोंपर कायम हूँ। मेरी धारणा है कि उनमें और मेरे संकल्पित कदममें कोई असंगति नहीं है। पता नहीं, आपने उन लेखोंको स्वयं पढ़ा भी है या नहीं।

मेरा अवश्य यह दावा है कि मैंने यह बात बिलकुल खुले दिमागसे कही थी कि आप मुझे कायल कीजिए कि मैंने गलती की है। छपे समाचारोंका "घोर अविश्वास" और खुला दिमाग रखना — इन दो बातोंमें कोई असंगति नहीं है।

आप कहते हैं कि इस बातके प्रमाण हैं कि मेरा — फिलहाल मैं अपने दोस्तों के बारेमें कुछ नहीं कहता — "खयाल था कि इस नीतिके परिणामस्वरूप हिंसाकी घटनाएँ होंगी", कि मैं "उन्हें नजरअन्दाज करने को तैयार" था, और यह कि "हिंसाकी जो घटनाएँ हुईं वे कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीसे बहुत पहले सहमतिसे तैयार की गई योजनाका अंग थीं।" इतने गम्भीर आरोपकी पुष्टि करनेवाला कोई प्रमाण मेरी

[1] देखिए परिशिष्ट २।

नजरसे नही गुजरा है। आपने माना है कि कुछ प्रमाण अभी प्रकाशित होने है। गृह-सदस्यका[1] भाषण — जिसकी प्रति आपने मुझे भेजने की कृपा की है — अभियोक्ता वकीलका प्रारम्भिक भाषण समझा जा सकता है — इससे अधिक कुछ नहीं। इसमें कांग्रेसजनोंपर निराधार आरोप लगाये गये है। इसमें सन्देह नही कि उन्होंने हिंसाकी घटनाओंका विशद वर्णन किया है। परन्तु उन्होंने यह नही बताया कि घटनाएँ उसी समय क्यों हुईं। मैंने इस ओर सकेत किया है कि वे क्यों हुईं। आपने स्त्रियो और पुरुषोंपर मुकदमा चलाने और उनकी सफाई सुनने से पहले ही उन्हें मुजरिम ठहरा दिया है। मेरा आपसे यह कहना अनुचित नही है कि मुझे वह प्रमाण दिखलाइए जिसके आधारपर आप उन्हे मुजरिम ठहराते हैं। आपने अपनी चिट्ठीमें जो लिखा है उससे मैं कायल नही हुआ। प्रमाण इंग्लैण्डके विधि-शास्त्रके सिद्धान्तोके अनुरूप होना चाहिए।

अगर कार्य-समितिके किसी सदस्यकी पत्नी "बम फेंकने तथा आतंक फैलाने की दूसरी कार्रवाइयोंकी योजना बनाने" में सक्रिय रूपसे लगी हुई है तो उसपर अदालतमें मुकदमा चलाया जाना चाहिए, और अगर वह मुजरिम साबित हो तो उसे सजा दी जानी चाहिए। आपने जिस महिलाका जिक्र किया है उसने गत ९ अगस्तको बड़े पैमानेपर की गई गिरफ्तारियोंके बाद ही कथित कार्रवाइयाँ की होंगी। गिरफ्तारियोंको मैंने भयंकर हिंसा कहने का साहस किया है।[2]

आप कहते है कि कांग्रेसपर लगाये गये इल्जामोको प्रकाशित करने का अभी समय नही आया है। क्या आपने कभी सोचा है कि यदि उन्हें एक निष्पक्ष अदालतके सामने रखा जाये तो उनके निराधार साबित होने की भी सम्भावना है? या कभी यह सोचा है कि तबतक कई मुजरिम करार दिये लोग मर चुके होंगे या यह कि बहुत-सा साक्ष्य जो जीवित लोग दे सकते थे, अप्राप्य हो जायेगा?

मैं अपने इस कथनको दोहराता हूँ कि भारत सरकारकी ओरसे तत्कालीन वाइसराय और कांग्रेसकी ओरसे मेरे बीच हुए ५ मार्च, १९३१ के समझौतेमें[3] सविनय अवज्ञाके सिद्धान्तकी वैधता निहित है। आपको शायद मालूम होगा कि समझौतेका खयाल किये जाने से पहले ही मुख्य कांग्रेसियोंको रिहा कर दिया गया था। समझौते के अधीन कांग्रेसियोको कुछ हरजाना दिया गया था। सरकार द्वारा कुछ शर्तें पूरी की जाने पर ही सविनय अवज्ञा बन्द की गई थी। इसका मतलब मेरी रायमें यह है कि कुछ विशेष परिस्थितियोंमें सविनय अवज्ञाकी वैधता स्वीकार कर ली गई थी। इसलिए मुझे आपका यह कहना जरा अजीब लगता है कि आपकी सरकार "किसी भी परिस्थितिमें सविनय अवज्ञाको वैध नहीं मान सकती।" आप ब्रिटिश सरकारकी उस परिपाटीकी उपेक्षा कर रहे हैं जिसके अनुसार "अनाक्रामक प्रतिरोध" के नामसे इसकी वैधता स्वीकार की गई थी।

१. रेजिनल्ड मैक्सवेल, जो १५ सितम्बर, १९४२ को केन्द्रीय विधान-सभामें बोले थे।
२. देखिए पृ० ५२।
३. गांधी-अर्विन समझौता; देखिए खण्ड ४५, परिशिष्ट ६।

अन्तमें मै यह कहूँगा कि आप मेरे पत्रोंका ऐसा मतलब लगाते है जो उन में से एकमें की गई मेरी इस घोषणाके बिलकुल प्रतिकूल है कि मैं शुद्ध अहिंसाका पालन करूँगा। आपने उत्तरावीन पत्रमें कहा है कि "मेरे दृष्टिकोणको मानने का मतलब यह स्वीकार करना होगा कि देशकी अधिकृत सरकार, जिसपर शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेवारी है, ऐसे आन्दोलन होने दे जिनमें हिंसा करने, संचार-व्यवस्थाको भंग करने, निर्दोष लोगोंपर हमले करने और पुलिस अफसरों तथा अन्य लोगोंकी हत्या करने की तैयारियाँ बेरोक-टोक चल सकती है।" अगर आप मुझे दोस्त समझते हैं तो फिर यह कैसे मान सकते हैं कि मैं ऐसी बातोंके वैध माने जाने की माँग कर सकता हूँ।

मैंने अपनेपर आरोपित किये गये विचारों और बयानोंके सम्बन्धमें विस्तृत उत्तर देने का यत्न नहीं किया है। ऐसा उत्तर देने का न तो यह स्थान है और न समय ही। मैंने केवल वही बातें चुनी हैं जिनका मेरे खयालसे शीघ्र उत्तर देना जरूरी था। मैंने अपने लिए जो कड़ी परीक्षा निर्धारित की है उससे बचने का आपने मेरे लिए कोई रास्ता नहीं छोड़ा है। मै यथासम्भव शुद्धतम अन्तःकरणके साथ चालू महीनेकी ९ तारीखको अपने-आपको इस परीक्षामें डाल रहा हूँ। यद्यपि आपने इसे "धमकी देकर अपना राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध करने का ही एक रूप" बताया है, फिर भी मैं इसे प्रभुके सर्वोच्च न्यायालयमें अपनी एक अपील समझता हूँ, जिसका उद्देश्य वह न्याय प्राप्त करना है जो मुझे आपसे नहीं मिल पाया। यदि मैं इस कठोर परीक्षासे जीवित न निकला तो अपनी निर्दोषतामें पूर्ण विश्वास लेकर उस न्यायालयमें पहुँचूँगा। आनेवाली पीढ़ियाँ इस बातका निर्णय करेंगी कि सर्वाधिकार सम्पन्न सरकारके प्रतिनिधि-स्वरूप आप और अपने देशकी सेवा करनेवाले और देशके माध्यमसे मनुष्य-मात्रकी सेवा करनेवाले मुझ तुच्छ व्यक्तिमें से कौन गलतीपर था।

मेरा पिछला पत्र[1] समयाभावके कारण जल्दीमें लिखा गया था और इस कारण एक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद पश्च-लेखके रूपमें लिखना पड़ा था। अब मैं इस पत्रकी एक साफ नकल भेज रहा हूँ। इसे प्यारेलालने, जो महादेव देसाईकी जगहपर काम करने लगे हैं, टाइप किया है। इसमें आप उस अनुच्छेदको यथास्थान पायेंगे।

आपका सच्चा मित्र,
मो० क० गांधी

संलग्न १

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३७७) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ३०-३२ और कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ११-१२ से भी

१. देखिए पृ० ५१, पा० टि० ३।

८. पत्र : सर रिचर्ड टॉटनमको

८ फरवरी, १९४३

प्रिय सर रिचर्ड,[1]

मैंने आपके पत्रको[2] बड़े ध्यानसे पढ़ा है। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि वाइसराय महोदय और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहारमें या आपके पत्रमें ऐसी कोई बात नही है जिससे मै अनशन करने का अपना इरादा छोड़ सकूँ। मैंने वाइसराय महोदयके नाम अपने पत्रोंमें उन शर्तोकी चर्चा की है जिनके पूरा होने पर इस कदमको रोका अथवा स्थगित किया जा सकता है।

यदि अस्थायी रिहाई मेरी सुविधाके लिए हो तो मुझे उसकी जरूरत नही है। मै नजरबन्द अथवा कैदीके रूपमें अनशन करके बिलकुल सन्तुष्ट होऊँगा। यदि रिहाई सरकारकी सुविधाके लिए हो तो मै खेदपूर्वक कहता हूँ कि बहुत चाहते हुए भी मैं उसकी इच्छा पूरी नही कर सकता। मै इतना ही कह सकता हूँ कि बन्दी रहते हुए मै सरकारके लिए असुविधाजनक हर बातसे — सिवाय उसके जो कि अनशनमें स्वाभाविक है — बचने की इतनी कोशिश करूँगा जितनी कि कोई मनुष्य कर सकता है। मैंने एक स्वतन्त्र मनुष्यकी हैसियतसे अनशन करने का विचार नही किया था। ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है — जैसे कि पहले भी हुई है — जिनमें मुझे एक स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे अनशन करना पड़े। इसलिए अगर मुझे रिहा कर दिया जाता है तो मै अपने उक्त पत्र-व्यवहारके आधारपर कोई अनशन नही करूँगा। मुझे स्थितिपर नये सिरेसे विचार करके फैसला करना होगा कि मुझे क्या करना चाहिए। मै झूठे बहाने बनाकर रिहा होना नही चाहता। मेरे विरुद्ध जो-कुछ भी कहा गया है, उसके बावजूद मै सत्य और अहिंसाके व्रतका पालन करूँगा, क्योंकि ऐसा करने से ही मै जीवनको जीने योग्य पाता हूँ। मै यह सब कह रहा हूँ, चाहे यह केवल मेरी अपनी तसल्लीके लिए ही हो। जब मेरे चारों ओर अन्धकार होता है — जैसा कि अब है — तब मुझे अपने विश्वासकी पुनर्घोषणा करके सुख मिलता है।

मैं नही चाहता कि सरकारको इस पत्रके बारेमें जल्दीमें कोई फैसला करना पड़े। मुझे पता चला है कि आपका पत्र टेलीफोनपर लिखवाया गया है। सरकारको काफी समय देने के लिए, अगर जरूरी हुआ तो, मैं अपना अनशन बुधवार अर्थात् चालू महीनेकी १० तारीखतक स्थगित कर दूंगा।

१. भारत सरकारके गृह-विभागमें अतिरिक्त सचिव

२. ७ फरवरीके इस पत्रमें गांधीजी को सूचित किया गया था कि सरकार उन्हें "अनशन करने के लिए एवं अनशनकी अवधिके लिए" रिहा करने का इरादा रखती है।

जहाँतक उस वक्तव्यकी वात है जो सरकार जारी करना चाहती है और जिसकी नकल आपने मुझे भेजने की कृपा की है, उसके बारेमें मैं कुछ भी कहने की स्थितिमें नहीं हूँ। यदि मुझे कुछ कहना ही पड़ा तो यही कहूँगा कि इसमे मेरे साथ अन्याय किया गया है। ठीक तरीका यह होगा कि पूरा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया जाये और लोगोंको स्वयं फैसला करने दिया जाये।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ३८। कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० १३ भी

९. पत्र : मदनगोपाल भण्डारीको

नजरबन्दी कैम्प
१२ फरवरी, १९४३

प्रिय कर्नल भण्डारी,[2]

आपने मुझे बताया है कि सरकारसे आपको हिदायत मिली है कि यदि मैं कोई इच्छा व्यक्त करूँ तो आप सरकारको उसके बारेमें तुरन्त सूचित कर दें। आपने दोस्तोंकी मुलाकातोंको नियमित करने के बारेमें सरकारी हिदायतोंकी[3] नकल भी मुझे दी है। मुलाकातोके बारेमें मेरा निवेदन यह है:

१. पहल करने की जिम्मेदारी मुझपर छोड़ देना उचित नहीं है। वर्तमान मनो-दशामे मुझे ऐसी मुलाकातोंके बारेमें अपनी ओरसे कोई पहल नही करनी है। अतः

१. इसके उत्तरमें ९ फरवरीको रिचर्ड टॉटनमने लिखा: ". . . भारत सरकारने आपके निर्णयको बहुत खेदपूर्वक पढ़ा है। उसकी स्थिति ज्योंकी-त्यों है। . . . लेकिन अगर आप इस बातका लाभ उठाने को तैयार नहीं हैं और यदि आप नजरबन्दीमें ही उपवास करेंगे तो आप सिर्फ अपनी जिम्मेदारी पर और अपनी मर्जीसे खतरा उठाकर वैसा करेंगे। उस स्थितिमें आपको अपनी पसन्दके चिकित्सक रखने और उपवासके दौरान सरकारकी अनुमति लेकर आनेवाले मुलाकातियोंसे मिलने-जुलने की छूट रहेगी। उस हालतमें भारत सरकार समाचारपत्रोंको जो वक्तव्य देगी उसके मसौदेमें उपयुक्त परिवर्तन कर दिये जायेंगे।"

२. बम्बईके जेल-महानिरीक्षक

३. गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ४६ में प्यारेलालने बताया है कि "१२ फरवरी, १९४३ को दोपहर १-१० पर स्वयं कर्नल भण्डारीने गांधीजी को निर्देशोंकी नकल दी।" इस स्रोतके अनुसार निर्देश निम्न प्रकार थे: "(१) कार्यपद्धतिके बारेमें पहल करने का काम पूरी तरह गांधीजी पर छोड़ दिया गया है। (२) चर्चित विषयोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं। (३) मुलाकातके समय एक अधिकारी वहाँ उपस्थित रहेगा। (४) मुलाकातके दौरान हुई बातचीतके प्रकाशनपर प्रतिबन्ध रहेगा।"

यदि सरकार चाहती है कि मैं मुलाकातियोंसे मिलूँ, तो उसे जनताको सूचित कर देना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति मुझसे खास तौरपर मिलना चाहता हो, तो सरकार उसे इजाजत दे देगी। उनके नाम मेरे पास भेजने की जरूरत नहीं है। कारण, मैं अपनेसे मिलने की इच्छा रखनेवाले किसी मित्रको निराश नहीं करूँगा। यह बहुत सम्भव है कि मेरे बच्चे और दूसरे सम्बन्धी तथा आश्रममें रहनेवाले लोग एवं अन्य मित्र, जो मेरी अनेक प्रवृत्तियोंमें से एक या अधिकके कारण मुझसे सम्बन्ध रखते हैं, मुझसे मिलना चाहेंगे। उदाहरणतः, यदि राजाजी, जिन्होंने साम्प्रदायिक समस्याके बारेमें मुझसे मिलने की इजाजतके लिए सरकारको आवेदनपत्र दिया था, उस सम्बन्धमें या किसी और सम्बन्धमें मुझसे मुलाकात करना चाहें, तो मुझे उनसे मिलकर खुशी होगी। परन्तु उनके बारेमें भी मैं अपनी ओरसे उनका नाम सरकारके पास भेजने का उपक्रम नहीं करूँगा।

२. यदि मुलाकातियोंको मुझसे मिलने दिया जाये और उनपर ऐसी कोई पाबन्दी न लगाई जाये कि वे किस-किस विषयपर मुझसे बातचीत कर सकते हैं, तब यदि बातचीतको प्रकाशित न किया जा सके तो बातचीतका उद्देश्य बहुत हदतक पूरा नहीं होगा। मैं निस्सन्देह सदा और हर परिस्थितिमें बिना किसी बाहरी दबावके स्वयं ही ऐसी कोई बातचीत होने नहीं दूँगा जिससे जापान-समेत किसी फासीवादी राष्ट्रको लाभ पहुँचने की कभी कल्पना भी की जा सकती हो। यदि बातचीतके इरादे से की जानेवाली मुलाकातोंकी इजाजत देनी हो तो जो घोषणा करने का मैंने सुझाव दिया है वह तुरन्त कर देनी चाहिए, ताकि ऐसी मुलाकातें अनशनके शुरू-शुरूके दिनोंमें हों।

३. यह सम्भव है कि जो लोग आश्रममें मेरी सेवा-शुश्रूषा करते रहे हैं या जो मेरे पहले अनशनोंके दौरान मेरी परिचर्या करते रहे हैं, वे सेवा-शुश्रूषाके लिए मेरे साथ ठहरना चाहें। यदि वे ऐसा चाहते हों, तो उन्हें इजाजत दे दी जानी चाहिए। मुझे लगता है, इस विषयमें कोई सार्वजनिक घोषणा करना कठिन होगा। यदि सरकारको मेरा सुझाव जँच जाये, तो मैं कहूँगा कि वह स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाजकी विधवा श्रीमती जानकी देवीको लिखे कि मेरे अनशनके दौरान मेरी सेवा-शुश्रूषाके काममें शामिल होने के इच्छुक व्यक्तियोंको, यदि श्रीमती जानकी देवी उनके नाम सरकारके पास भेज दें तो, इजाजत दे दी जायेगी। वे उन सब लोगोंको जानती हैं जिन्होंने पहले मेरी सेवा की है।

इसके अतिरिक्त दो और बातें हैं। इन तमाम महीनोंके दौरान मैं बम्बईके भूतपूर्व महापौर श्री मथुरादास त्रिकमजीके स्वास्थ्यके बारेमें जानकारी प्राप्त करने को बहुत उत्सुक रहा हूँ। वे मेरी एक बहनके — जिसे मरे बहुत समय हो चुका है — पौत्र हैं। सरकार या तो मुझे उनके बारेमें जानकारी दे या श्री मथुरादास त्रिकमजीको स्वयं मुझे लिखने की इजाजत दे दे, और यदि वे अस्वस्थताके कारण ऐसा न कर सकें, तो किसी और व्यक्तिको उनकी ओरसे मुझे पूरी जानकारी देने की इजाजत दी जाये। जब मुझे गिरफ्तार किया गया था उस समय उनके बचने की

बहुत कम आशा थी। लेकिन मैंने अखबारोंमें पढ़ा कि उनका एक सफल आपरेशन हुआ था।

दूसरी बात उस समाचारके बारेमें है जो आज यहाँ पहुँचनेवाले 'बॉम्बे क्रॉनिकल' में छपा है। समाचार यह है कि प्रोफेसर भणसालीने एक बार फिर अनशन शुरू कर दिया है— इस बार मेरे साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए। वक्त बचाने के खयाल से मैं चाहूँगा कि सरकार एक्सप्रेस तार अथवा टेलीफोनसे— जिस तरह भी जल्दीसे-जल्दी हो सके— निम्नलिखित सन्देश उनके पास भिजवा दे:

"मैंने आपके सहानुभूतिक अनशनके बारेमें अभी पढ़ा है। आपने चिमूरके विषयमें अपना बहुत लम्बा अनशन अभी समाप्त किया है। आपने उसे अपना विशेष कार्य बना लिया है। अतः आपको चाहिए कि जल्दी अपना स्वास्थ्य ठीक कर लें और अपने स्वयं-निर्धारित कार्यको पूरा करें। ईश्वर मेरे साथ जो करना चाहे उसे करने दें। अगर आपने अपना अनशन, जो प्राण-लेवा सिद्ध हो सकता था, अभी-अभी न समाप्त किया होता और अपने सिर एक विशेष कार्य न लिया होता, तो मैं इस मामलेमें दखल न देता।"

यदि सरकार इस विषयमें मेरी प्रार्थना स्वीकार करे, तो मैं चाहूँगा कि यह सन्देश बिना किसी फेर-बदलके भेजा जाये और अगर मेरे सन्देशका अभीष्ट फल न निकले, तो मुझे उनके साथ आगे पत्र-व्यवहार करने दिया जाये।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३८१) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ४४-४५ और ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ६६५-६७ से भी

१. सरकारने मदनगोपाल भण्डारीके जरिये १६ फरवरीको गांधीजी को पहुँचाये गये अपने उत्तरमें स्पष्ट कर दिया कि (१) मुलाकातियोंके बारेमें "कोई सार्वजनिक घोषणा" नहीं की जा सकती; (२) किसी मुलाकातका विवरण "उसकी [सरकारकी] स्पष्ट अनुमतिके बिना" प्रकाशित नहीं किया जा सकता; (३) "और परिचारकों" की जरूरतके बारेमें "सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायेगा"; (४) भणसालीके नाम गांधीजी का सन्देश नहीं भेजा जा सकता, "क्योंकि इसमें चिमूरका जिक्र है", लेकिन उन्हें यह सूचित कर दिया जायेगा कि गांधीजी चाहते हैं कि "वे अनशन छोड़ दें" या "गांधीजी के ही शब्दोंमें" कोई दूसरा सन्देश भी भेजा जा सकता है; और (५) बम्बई सरकार मथुरादास त्रिकमजीके बारेमें समाचार मालूम करके गांधीजी को सूचित करेगी और इस बीच मथुरादास त्रिकमजीको "व्यक्तिगत और पारिवारिक मामलोंपर गांधीजी को पत्र लिखने" की अनुमति दे रही है।

१०. भेंट : सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवीको[1]

२१ फरवरी, १९४३

जो लोग गांधीजी से मिल चुके थे, उनसे मुझे पता चला था कि गांधीजी अभूतपूर्व मानसिक पीड़ा अनुभव कर रहे हैं। उन्हें इस बातका अपार दुःख था कि और तो और, लॉर्ड लिनलिथगोने उन्हें इतना गलत समझ लिया है कि वे उनके बारेमें, जिसने अपना जीवन अहिंसाके लिए अर्पित कर दिया है और जो अहिंसाको जीवन से भी अधिक मूल्यवान समझता है, यह सोचते हैं कि वे [गांधीजी] कभी भी किसी प्रकारकी हिंसाकी इजाजत दे सकते हैं या उसे अनदेखा कर सकते हैं। उन्हें इस बातसे गहरी चोट पहुँची है कि यद्यपि सरकारने उनपर और कांग्रेसपर संगीन इल्जाम लगाये, तो भी उन्हें उनका प्रतिवाद करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। यह व्यथा और अनशनकी चिन्ता उनके चेहरेसे बहुत साफ झलकती थी।

उन्होंने मेरे सलामका उत्तर अपनी स्वाभाविक मुस्कानसे दिया। जब मैं उनके पास बैठ गया तो उन्होंने बहुत धीमे स्वरमें पूछा कि क्या मैं उनसे कुछ कहने आया हूँ। मैंने जवाब दिया कि मैं बस सलाम कहने आया हूँ और मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। मैंने यह भी कहा कि आपने उन दोस्तोंसे, जो आपसे मिल चुके हैं, जो-कुछ कहा है वह मुझे उनसे मालूम हो गया है। उन्होंने आँखें मूँद लीं और विचार-मग्न हो गये। आधे मिनटतक वे चुप रहे। मैंने महसूस किया कि वे बोलने की बहुत कोशिश कर रहे थे। फिर वे बड़े धीमे स्वरमें बोलने लगे और ज्यों-ज्यों बोलते गये त्यों-त्यों उनका स्वर स्पष्ट होता गया। उन्होंने कहा: "हाँ, लेकिन मैं जो कहना चाहता था वह मैंने पूरा नहीं कहा।" उन्होंने आगे कहा, मैं हिंसाका कभी अनुमोदन नहीं कर सकता, लेकिन जिन लोगोंके बारेमें कहा जाता है कि उन्होंने हिंसा की है उनकी मैं तबतक आलोचना या निन्दा नहीं करना चाहता, जबतक कि मैं सारे तथ्योंका अध्ययन न कर लूँ। यदि मुझे गिरफ्तार न किया गया होता तो मैं समझौते के लिए वाइसरायके साथ वार्त्ता चलाता। यदि मैं जन-आन्दोलन शुरू करने पर मजबूर हो जाता, तो मैं किसी तरहकी हिंसाकी इजाजत न देता। मेरा इरादा था कि अगर आन्दोलन शुरू किया जाये तो उसे अहिंसाको उस चरम सीमातक पहुँचा दिया जाये जहाँतक इतिहासमें वह कभी पहुँच नहीं पाया है।

१. भेंटकर्त्ता बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक थे। वे एक राष्ट्रवादी मुसलमान और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य थे। यह रिपोर्ट बम्बईके गृह-सचिवकी ओर से गृह-विभागके रिचर्ड टॉटनमको "इसके प्रकाशनार्थ . . . भारत सरकारके आदेश" के निमित्त भेजी गई थी। साधन-सूत्रके अनुसार सै० अ० ब्रेलवी गांधीजी से दोपहर बाद मिले थे।

फिर हिन्दू-मुस्लिम समस्याकी चर्चा करते हुए उन्होंने बहुत गम्भीर और दर्द-भरे स्वरमें कहा कि गिरफ्तारीसे पहले मुझे इसी समस्याकी सबसे अधिक चिन्ता थी और मैंने उसे सुलझाने के लिए भरसक प्रयत्न करने का निश्चय कर रखा था, और इसलिए मैंने फैसला किया था कि श्री जिन्ना मुझे मिलने का समय न दें तो भी मैं उनसे मिलने जाऊँगा।[1]

[अंग्रेजीसे]
फाइल सं० ३३/४/४३। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

११. पुर्जा: मथुरादास त्रिकमजीको

२२ फरवरी, १९४३

मैंने तुझे कहलाया था कि तू संयमसे काम ले और यहाँ मत आ। अब बिलकुल अच्छा हो जा, ताकि यहाँ आने के लिए माफ कर दिया जाये।[2]

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० १८९

१२. बातचीत: होरेस जी० अलेक्जैंडरके साथ[3]

२३ फरवरी, १९४३

सवाल पूछा गया:

अगर वाइसराय आपको यकीन दिलायें कि आपको हिंसाके लिए अपनी और कांग्रेसकी कथित जिम्मेवारीके प्रमाणोंकी जाँच करने और उसपर स्वयं वाइसरायके साथ या उनके द्वारा चुने गये किसी व्यक्तिके साथ चर्चा करने का पूरा मौका दिया जायेगा, तो क्या आप अनशन छोड़ देने को तैयार होंगे?

१. रिपोर्टके अन्तमें ग्रेडवीने लिखा था: "साम्प्रदायिक समस्याका समाधान मुसलमानोंके लिए सन्तोषजनक रीतिसे करने की इच्छा जितनी अधिक गांधीजी के मनमें है उतनी और किसी भारतीय नेताके मनमें नहीं है। और कोई ऐसा है भी नहीं जो इसमें उनसे ज्यादा मददगार हो सकता है। क्या मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे अपील कर सकता हूँ कि वे जीवन और मृत्युके बीच झूलते इस महान नेताके शब्दोंपर विचार करें?"

२. देखिए पृ० ५९-६०।

३. बातचीतका यह विवरण होरेस अलेक्जैंडरने, जो भारतमें फ्रेंड्स एम्बुलेंस यूनिटके नेता थे, बम्बईके गवर्नर सर लॉरेन्स रॉजर लमलेको लिखे अपने पत्रके साथ भेजा था। देखिए परिशिष्ट ३। साधन-सूत्रके अनुसार विवरण "गांधीजी की हिदायतके मुताबिक २४ फरवरी, १९४३ को संशोधित किया गया था।"

मुझे ऐसा लगा कि श्री गांधी २१ दिन पूरे होने से पहले अनशन खत्म करने की सम्भावनापर गम्भीरतासे विचार नहीं कर रहे हैं। वे आगेकी सोच रहे थे, मानो सवाल यह रहा हो कि "आप किन परिस्थितियोंमें कांग्रेसकी सारी कोशिशोंपर पुनर्विचार करने और उनका नये सिरेसे निर्देशन करने को तैयार होंगे?"

मैंने उनके संकेतोंका यह मतलब समझा कि प्रश्नमें सुझाया गया प्रस्ताव एक पहले कदमके तौरपर तो खासा अच्छा है, परन्तु वह काफी दूरतक ले जानेवाला नहीं है। फर्ज कीजिए कि प्रमाणोंकी जाँच करने के बाद भी वे कायल न हों, तो फिर क्या होगा? उनके विचारसे, जरूरत अदालती जाँच की है और असलमें उससे ही मामलेका फैसला हो सकता है। उनपर यह इल्जाम है कि जो भी हिंसा हुई है, उस सबका मूल कारण और प्रेरक वही हैं। उनकी समझसे, निश्चय ही उनकी यह माँग उचित है कि उनपर तथा दूसरे कांग्रेसी नेताओंपर लगाये गये इस इल्जामकी जाँच तथा निर्णय अदालत द्वारा किया जाना चाहिए।

उनका विचार है कि अगर उन्हें नजरबन्दीसे रिहा कर दिया जाये तो वे स्पष्टतः हिंसाकी सब शक्तियोंसे अपने ढंगसे निपटेंगे और स्पष्टतः उन लोगोंको राहत पहुँचाने के काममें जुट जायेंगे जो अनाज तथा अन्य आवश्यक पदार्थोंके वर्त्तमान अभावके कारण कष्ट उठा रहे हैं।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४३७) से। सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ७३३-५ से भी

१३. पत्र : मदनगोपाल भण्डारीको

नजरबन्दी कैम्प
२४ फरवरी, १९४३

प्रिय कर्नल भण्डारी,

लगता है कि मुलाकातोंके सम्बन्धमें सरकारी हिदायतोंका मतलब लगाने में मेरे और खान बहादुर केटलीके[1] बीच मतभेद है। पत्र-व्यवहारसे तथा जो हिदायतें आपने कृपापूर्वक मुझे पढ़कर सुनाई थी उनसे मैंने यह समझा था कि जिन लोगोंको मुझसे मिलने की इजाजत दी जायेगी उनपर ऐसी कोई पाबन्दी नहीं होगी कि वे किस तरह की बातचीत करते हैं या कितनी देरतक बातचीत करते हैं। हाँ, जरूरी होने पर एक सरकारी प्रतिनिधिकी उपस्थितिकी बात अवश्य कही गई थी। जब मैं थकानके कारण बातचीत जारी नहीं रख पाता, प्यारेलालसे कह देता हूँ कि वे उसे पूरा कर दें। और जिन मुलाकातियोंका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, मेरी पत्नी स्वभावतः उनसे मिलती है और बातचीत करती है। मैं स्वयं तो बहुत कम बातचीत

१. अरदेशिर इंदुलजी केटली, विशेष कार्यार्थ जेल-अधीक्षक

कर सकता हूँ। एक कारण यह है कि डाक्टरोको मेरी बातचीत यथासम्भव थोड़ेसे-थोड़े मिनटोंतक सीमित रखनी होती है। खान बहादुरकी हिदायत है कि बातचीत मुलाकातियों और मेरे बीच ही होनी चाहिए। यदि यही स्थिति है तो वह बड़ी निराशाजनक है। मिसालके तौरपर सेठ रामेश्वरदास बिड़ला और श्री कमलनयन बजाज आये थे। वे मेरे नियमनमें चलनेवाले न्यासोंके बारेमें सब-कुछ जानते हैं। स्वभावतः मैंने उनकी मुलाकातके मौकेसे फायदा उठाया और प्यारेलालको हिदायत दी और वे उनसे उन मामलोंपर बातचीत करते रहे हैं। खान बहादुरके जिम्मे एक नाजुक काम था। उन्होंने उसे दृढ़तासे तथा ऐसी शालीनतासे निभाया जैसी कि उन परिस्थितियोंमें सम्भव थी। खान बहादुरका यह भी कहना है कि उन्हें सख्त हिदायत की गई है कि वे किसी मुलाकातीको कोई नोट न लिखने दें और न कोई कागज ले जाने दें। मैं चाहूँगा कि यदि सम्भव हो तो अनशनके बाकी दिनोंमें और स्वास्थ्य-लाभके दिनोंमें मुझे ऐसी बातोंसे परेशान न किया जाये। इसलिए मैं चाहूँगा कि ऐसी स्पष्ट हिदायतें जारी की जायें जिन्हें खान बहादुर और मैं दोनों समझ सकते हों। मैं फिरसे उनके औचित्यकी छानबीन नहीं करना चाहता।

मेरे लड़के श्री देवदास गांधीको इजाजत मिली है कि वह जबतक चाहे महल में ठहर सकता है। इजाजतकी अवधिमें, जब भी उसे उपयुक्त मालूम होता है, वह मुझसे बात कर लेता है। स्वभावतः ऐसे अवसरोंपर खान बहादुर उपस्थित नहीं हो सकते। मैंने श्री प्यारेलालसे कहा है कि वे उसे मेरे और भारत सरकार तथा बम्बई सरकारके बीच हुआ सारा पत्र-व्यवहार दिखा दें। मेरा इरादा उसे उस पत्र-व्यवहारकी प्रतिलिपि देनेका भी था। लेकिन चूँकि खान बहादुरने इस बातकी मनाही कर दी है, मैंने अपने लड़केसे कह दिया है कि जबतक सरकारी हिदायत न मिल जाये, वह कोई प्रतिलिपि न ले जाये।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ४७-४८

१. प्यारेलालके अनुसार, मदनगोपाल भण्डारीने "२६ फरवरीको एक आदेश" द्वारा सूचित किया, जिसमें अन्य बातोंके अलावा यह भी कहा गया था कि "सरकारका इरादा हमेशा यह रहा है कि सभी मुलाकातोंके दौरान एक अधिकारी उपस्थित रहे. . .। अबतक सरकारने, उनके पिताके स्वास्थ्यकी हालतको देखते हुए. . . देवदास और रामदास गांधीके मामलेमें इस शर्तका आग्रह नहीं रखा है, लेकिन अब चूँकि उनके पिताकी हालतमें सुधार है. . .उन्हें यह इजाजत. . .उन्हीं शर्तोंपर दी जानी चाहिए जिनके अधीन दूसरी मुलाकातोंकी इजाजत दी जाती है। . . .दूसरे नजरबन्दोंके बातचीतमें शरीक होने पर सरकारको कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन जब श्री गांधी खुद मुलाकात खत्म कर दें या बोलने में असमर्थ हो जायें तो मुलाकात समाप्त मानी जाये। . . .सरकार यह उचित नहीं समझती कि गांधीजीके साथ उसके पत्र-व्यवहारकी नकलें बाहर ले जाई जायें। . . ."

१४. एक स्पष्टीकरण[1]

२६ फरवरी, १९४३

या तो मुझे मृत्युका वरण करना था या मुसम्बीका रस लेना था। मैंने जीने का वादा किया था। मुझे जीने की कोशिश करनी ही है, और इसलिए रविवारको मैंने पानीमें मुसम्बीका रस मिला दिया,[2] ताकि उसे पीकर मतलीसे छुटकारा पा सकूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २७-२-१९४३

१५. बातचीत : मीराबहनके साथ[3]

२७ फरवरी, १९४३

यदि लोग मेरे अनशनका आशय तोड़-मरोड़कर पेश करने की कोशिश करते हैं, तो इससे क्या फर्क पड़ता है?

यह अनशन केवल ईश्वरकी सेवाके लिए और उसे साक्षी मानकर शुरू किया गया। दूसरे लोग इस बातको मानें या न मानें — इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। जो मेरे विरुद्ध हैं वे सोच रहे हैं कि वे झूठी बातें बनाकर फायदा उठा सकते हैं, परन्तु वे निश्चय ही असफल रहेंगे। सत्य तो प्रकट होकर रहेगा। मुझे जो-कुछ कहना है वह सब मैंने अपने पत्रोंमें कह दिया है।

१. साधन-सूत्रके अनुसार, गांधीजी ने यह बात "अपने अनशनके सत्रहवें दिन" कही थी। उससे यह भी मालूम होता है कि वे इन दिनों भी मानसिक रूपसे पूर्णतः सजग थे। उन्हें भली-भाँति स्मरण था कि गत शनिवार और रविवारको उनकी अवस्था गम्भीर हो गई थी।

२. २१ फरवरीको; ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ७१९ के अनुसार बम्बई सरकार द्वारा जारी डाक्टरी बुलेटिनमें बताया गया था कि २१ तारीखको गांधीजी को काफी बेचैनी रही और दिनके साढ़े चार बजे उनकी स्थिति गम्भीर हो गई। उन्हें जोरोंसे मतली होने लगी और वे लगभग संज्ञाशून्य हो गये तथा नब्जकी गति पकड़में नहीं आ रही थी। बादमें वे मुसम्बीके रसके साथ पानी ले सके। फलतः वे संकटसे उबर गये और रातमें साढ़े पाँच घंटे सोये।

३. साधन-सूत्रमें मीराबहनने निम्नलिखित टिप्पणीके नीचे इस बातचीतका विवरण लिखा है: "२७ फरवरी, १९४३ की सुबह बापूजीने मुझसे ये बातें कहीं।" मीराबहनने इस बातचीतका जो विवरण लिखा है उसे गांधीजी ने सुधारा है। ऐसा ही दूसरी बातचीतोंके विवरणके बारेमें भी है।

मेरे किसी अनशनका इतना अद्भुत अन्त नहीं हुआ जितना कि इसका हो रहा है। मेरा अभिप्राय उन घटनाओंसे नहीं है जो बाहरी दुनियामें घट रही है, प्रत्युत उनसे है जो मेरे भीतर घट रही हैं। मेरे भीतर दिव्य शान्ति है।[1]

ठीक है, ७ मार्च, १९४३।[2]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०९९) से

१६. पत्र: मदनगोपाल भण्डारीको

नजरबन्दी कैम्प
२ मार्च, १९४३

प्रिय कर्नल भण्डारी,

कल, जब कि मेरा मौन-दिवस था, आपने मुझे यह बताने की कृपा की कि कल मेरे अनशनके समाप्त होने के अवसरपर उपस्थित होने के लिए सरकारने बाहर-वालोंमें से केवल मेरे दो लड़कोंको इजाजत दी है। यद्यपि मैं इस रियायतके लिए आभारी हूँ, फिर भी मैं इसका लाभ नहीं उठा सकता। कारण, जैसा कि सरकार जानती है, मै अपने लड़कों तथा बहुतेरे दूसरे लोगोंमें — जो मुझे अपने लड़कोंके समान ही प्यारे हैं — कोई फर्क नहीं समझता। तीन-चार दिन हुए, मैंने आपको बताया था कि यदि सरकार अनशन-समाप्तिके अवसरपर बाहरवालोंको उपस्थित होने की इजाजत दे, तो ऐसी इजाजत उन सब लोगोंको दी जाये — और ऐसे लोगोंकी संख्या पचासके करीब है — जो इस समय पूनामें हैं और जिन्हें अनशनके दौरान मुझसे मिलने की इजाजत दी गई थी। देखता हूँ कि ऐसा होना नहीं था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ४९

---

१. इसके बाद मीराबहन बताती हैं कि आगे गांधीजी ने अस्फुट-से स्वरमें उनसे कुछ बातें कहीं, जो वे ठीकसे समझ नहीं पाईं। उनका मतलब शायद आगे कोई भी स्पष्टीकरण न देने और मौन धारण कर लेने से था। शायद उन्होंने कुछ ऐसा भी कहा कि इसके बावजूद वे राजाजी-जैसे लोगोंको निराश नहीं कर सकते और फिर यह कि वे ऐसी शक्ति अर्जित करेंगे जिससे सारी दुनियाके खिलाफ खड़े हो सकें और शान्ति तथा आनन्दके साथ मृत्युका वरण कर सकें।

२. स्पष्ट है कि यह टिप्पणी गांधीजी ने सारी बातचीत पढ़ लेने के बाद ही लिखी थी।

१७. उद्गार : अनशन-समाप्तिके समय[1]

३ मार्च, १९४३

रसकी चुस्की लेने के पूर्व महात्माजीने क्षीण स्वरमें डाक्टरोंसे कहा, आपने मेरी बड़ी सेवा और परिचर्या की है; मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। किसी और बातसे कहीं अधिक आपके स्नेह और प्यारने ही मेरी जान बचाई है। फिर, उन्होंने उपस्थित लोगोंसे कहा, डाक्टरोंकी शक्तिसे भी ऊँची कोई चीज होगी जिसने मुझे बचाया है।[2]

मैं नही जानता कि विधाताने इस बार मेरे प्राण क्यों बचाये हैं। सम्भवतः कारण यह है कि वह मुझसे कोई और काम करवाना चाहता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४३, जिल्द १, पृ० ३३७-३८

१८. प्रश्नोत्तर[3]

[३ मार्च, १९४३ के पश्चात्][4]

प्र० : आरोप है कि अहिंसामें आपकी श्रद्धा शिथिल हो गई है। क्या यह सच है?

उ० : अहिंसामें मेरी श्रद्धा न केवल अविचल है, बल्कि आप यह भी कह सकते हैं कि छः महीनेकी नजरबन्दीके बाद अहिंसामें मेरी श्रद्धा, अगर इसकी गुंजाइश सम्भव थी तो, और भी दृढ़ हो गई है।

१. साधन-सूत्रमें २१ दिनोंकि इस अनशनकी समाप्तिका वर्णन करते हुए एन० एन० मित्र बताते हैं कि गांधीजी ने अपना अनशन सुबह ९ बजकर ३४ मिनटपर (नजरबन्दी कैम्पके रेकार्डके अनुसार ८ बजकर ३४ मिनटपर) तोड़ा। विधानचन्द्र राय, बम्बई सरकारके सर्जन-जनरल, मेजर-जनरल आर० एच० कैण्डी, लेफ्टिनेंट-कर्नल मदनगोपाल भण्डारी और लेफ्टिनेंट-कर्नल बी० जेड० शाह, तथा डाक्टरोंके अलावा नजरबन्दी कैम्पमें रहनेवाले लोग ही उस समय वहाँ उपस्थित थे, जिन्होंने "वैष्णवजन", गीतांजलि के दो छंद और "लीड काइंडली लाइट" गाये और कुरानकी आयतें पढ़ीं। प्रार्थनाके बाद सबने पाँच मिनटका मौन रखा। तत्पश्चात् कस्तूरबाने गांधीजी को एक गिलासमें छः औंस नारंगीका रस दिया, जिसे पीनेमें गांधीजी ने बीस मिनट लगाये।

२. साधन-सूत्रके अनुसार गांधीजी की आगेकी उक्तिके बारेमें डॉ० विधानचन्द्र रायने ७ मार्च, १९४३ को कलकत्ता विश्वविद्यालयके दरभंगा हालमें गांधीजी के अनशनकी सकुशल समाप्तिपर ईश्वरके प्रति आभार प्रकट करने के लिए आयोजित सभामें बताया था। डॉ० विधानचन्द्र रायने ४ मार्चको पूनासे प्रस्थान करने के पूर्व यूनाइटेड प्रेसको दी एक मुलाकातमें इस अनशनके सम्बन्धमें अपने विचार बताये थे। देखिए परिशिष्ट ४।

३. घनश्यामदास बिड़लाने साधन-सूत्रमें बताया है कि गांधीजी की नजरबन्दीके दौरान उनसे पूछे गये प्रश्नोंके ये रेकॉर्ड किये हुए उत्तर हैं।

४. ३ मार्चको समाप्त हुए गांधीजी के उपवासके उल्लेखके आधारपर

जब अहिंसामें आपकी ऐसी श्रद्धा है तो आपपर और कांग्रेसपर लगाये गये इन आरोपोंके बारेमें आपका क्या कहना है कि ८ अगस्तके बाद हुई तोड़-फोड़ और हिंसाकी सब कार्रवाइयाँ आपके द्वारा या कांग्रेसके द्वारा जारी की गई गुप्त हिदायतों के कारण हुईं?

इन आरोपोंमें रत्ती-भर भी सचाई नहीं है। मैंने तोड़-फोड़ या किसी तरहकी हिंसाके लिए कभी कोई गुप्त या जाहिरा हिदायत जारी नहीं की। अगर कांग्रेसने ऐसी हिदायतें दी होतीं, तो मुझे उनका पता होता। न मैंने और न कांग्रेसने ही ऐसी हिदायतें जारी कीं।

तो क्या आप तोड़-फोड़ और हिंसाकी इन कार्रवाइयोंको नापसन्द करते हैं?

निश्चय ही मैं उन्हें नापसन्द करता हूँ। मैंने यह बात उन सब मित्रोंको स्पष्ट कर दी है जो अनशनके दौरान मुझसे मिलने आये हैं। हिंसामें विश्वास रखनेवाले किसी व्यक्तिके बारेमें मैं कोई फतवा नहीं देना चाहता। लेकिन मैं उनसे यह स्पष्ट घोषणा करनेको कहूँगा कि वे हिंसाकी ये कार्रवाइयाँ अपनी जिम्मेदारी पर कर रहे हैं और इसलिए कर रहे हैं कि वे हिंसामें विश्वास रखते हैं। कांग्रेस के प्रति यह इंसाफकी बात होगी कि हिंसा और तोड़-फोड़की कार्रवाइयाँ करनेवाले ये लोग इस बातको बिलकुल स्पष्ट कर दें। मैं यह भी कहूँगा कि यदि कांग्रेसी न होते हुए भी किसीके मनमें मेरे प्रति सम्मान हो तो उसे सभी गुप्त और हिंसक तरीकोंका त्याग कर देना चाहिए। अगर वे मेरी मानें, तो मैं उनसे कहूँगा कि वे अपने-आपको पुलिसके हवाले कर दें। इस तरीकेसे वे देशके हित-साधनमें सहायक ही हो सकते हैं। लेकिन अगर कोई कांग्रेसके सिद्धान्त और मेरे तरीकेमें विश्वास नहीं रखता, तो उसे यह बात सब सम्बन्धित लोगोंके सामने स्पष्ट कर देनी चाहिए।

कहते हैं कि आपने यह आन्दोलन इस खयालसे शुरू किया था कि मित्र-राष्ट्रोंकी हार होनेवाली है और आपने आन्दोलनको उस समय शुरू किया जब कि मित्र-राष्ट्र मुश्किलोंमें फँसे थे, और आप उनकी स्थितिसे अनुचित लाभ उठाना चाहते थे।

इसमें रत्ती-भर भी सचाई नहीं है। आप 'हरिजन' में छपे मेरे लेख पढ़ सकते हैं और मैंने यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया है कि मेरा ऐसा इरादा नहीं था।

हाँ, मैंने 'हरिजन' में आपके लेख पढ़े हैं और उनसे मैंने यह समझा है कि आप न केवल जर्मनी और जापानके पक्षपाती नहीं हैं बल्कि आप नाजियों और फासीवादियोंके विरोधी भी हैं। क्या मेरा खयाल ठीक है?

निस्सन्देह। नाजीवाद और फासीवादके विरुद्ध किसीने इतने कड़े शब्द नहीं कहे हैं जितने कि मैंने। मैंने नाजियों और फासीवादियोंको दुनियाका कूड़ा कहा है। मैंने मई १९४२ में किसी दिन मीराबहनको, जब वे उड़ीसामें थीं, एक पत्र[1] लिखा था। चूँकि मैं जेलमें हूँ, मैं आपको इस पत्रकी नकल नहीं दे सकता। मुझे पता

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० १९१-९२।

चला है कि मीराबहनने उस पत्रकी एक नकल सरकारको भेजी है। आप सरकारसे उसकी नकल माँग सकते हैं और अपनी तसल्ली कर सकते हैं। उस पत्रमें मैंने इस बारेमें पूरी हिदायतें दी हैं कि अगर जापानी कभी भारतपर हमला करें तो उनका मुकाबला किस तरह किया जाये। उस पत्रको पढ़ने के बाद कोई मुझपर यह इल्जाम नहीं लगा सकता कि नाजीवाद या फासीवाद या जापानके साथ मेरी सहानुभूति है।

क्या यह सच नहीं है कि कांग्रेसने यह वचन दिया था कि यदि भारतको स्वतन्त्र कर दिया जाये और देशमें राष्ट्रीय सरकार स्थापित कर दी जाये तो वह मित्र-राष्ट्रोंको सैनिक सहायता देगी?

आपने जो निष्कर्ष निकाला है वह बिलकुल ठीक है। भारतके स्वतन्त्र कर दिये जाने पर राष्ट्रीय सरकार, निस्सन्देह, सब सुलभ सैनिक साधनोंसे मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यकी सफलताके लिए लड़ेगी और हर सम्भव तरीकेसे मित्र-राष्ट्रोंसे सहयोग करेगी।

हाँ, यही कांग्रेसकी नीति है। परन्तु चूँकि आप शान्तिवादी हैं, इसलिए क्या आप मित्र-राष्ट्रोंको सैनिक सहायता देने की कांग्रेसी योजनामें बाधा डालेंगे?

बिलकुल नही। मै शान्तिवादी हूँ। परन्तु यदि राष्ट्रीय सरकार बने और वह मित्र-राष्ट्रोको सैनिक सहायता देने की शर्तपर शासनाधिकार ग्रहण करे, तो स्पष्ट है कि मैं कोई बाधा नही डाल सकता और न डालूँगा ही। मैं स्वयं हिंसा की किसी कार्रवाईमें शरीक नही हो सकता। परन्तु कांग्रेस वैसी शान्तिवादी नही है जैसा कि मैं हूँ। और मै स्वभावतः कांग्रेसके इरादेपर अमल किये जाने में बाधा डालने के लिए कोई बात नही करूँगा।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यद्यपि आप यूनाइटेड किंगडमका सबसे अच्छा मित्र होने का दावा करते हैं, तथापि इस समय आपके प्रति वहाँ बहुत अविश्वास है।

मुझे यह मालूम है और मै यही कहूँगा कि यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण बात है। लेकिन मुझे उससे कोई चिन्ता नही होती। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह अविश्वास दूर होगा और विश्वास लौटेगा जो उतना ही उत्कट होगा जितना तीव्र आज यह अविश्वास है।

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८६७) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला। **इन द शैडो ऑफ द महात्मा**, पृ० २६१-६३ से भी

१९. पत्र : सर रिचर्ड टॉटनमको

नजरबन्दी कैम्प
५ मार्च, १९४३

प्रिय सर रिचर्ड टॉटनम,

गांधीजी ने मुझसे यह पूछने को कहा है कि क्या उन्हें गृह-विभाग द्वारा जारी की गई वह पुस्तिका[1] सुलभ कराने की कृपा की जा सकती है जिसमें कांग्रेस और उनपर लगाये गये आरोपोंका समर्थन करनेवाले साक्ष्यका एक अंश दिया गया है।

आपका सच्चा,
प्यारेलाल

सर रिचर्ड टॉटनम
अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार
गृह-विभाग, नई दिल्ली

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ८९। कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ३३ भी

२०. पत्र : मदनगोपाल भण्डारीको

नजरबन्दी कैम्प
१३ मार्च, १९४३

प्रिय कर्नल भण्डारी,

मेरे स्वास्थ्य-लाभकी अवधिमें — जो कि डाक्टरोंके अनुसार एक महीनेसे अधिक नहीं होगी — कनु गांधीके मेरे पास रहने के बारेमें आज सवेरे हुई बातचीतके सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहूँगा कि यदि सरकार उसे इस अवधिमें मेरे साथ रहने की इजाजत नहीं देगी तो मुझे किसी भी परिचारककी सेवाओंके बिना ही काम चलाना होगा, चाहे वे सेवाएँ कितनी ही उपयोगी हों। मुझे यह कहना पड़ता है कि मैं इस तरहके बरतावको पसन्द नहीं करता। यह मेरी बेबसीकी अवधिमें भी — जिसके लिए, मैं अच्छी

१. तात्पर्य कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३, से है। टॉटनमने ५ अप्रैलको यह पुस्तिका गांधीजीको भेजी। इस पुस्तिकाको, जिसे भारत सरकारने २२ फरवरीको जारी किया था, जनवरी १९४६ में वापस ले लिया गया। पुस्तिकाके सम्बन्धमें गांधीजीके विस्तृत उत्तरके लिए देखिए "पत्र: भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको", १५-७-१९४३।

तरह जानता हूँ, केवल मैं ही जिम्मेवार हूँ — मुझे तीखे रूपमें याद दिलाता प्रतीत होता है कि मैं कैदी हूँ। मगर एक कैदी भी ऐसी सुख-सुविधासे परहेज करने का अधिकार रखता है जिसे स्वीकार करने में उसकी जिल्लत हो — जैसा कि कनु गांधीके बजाय किसी औरको भेजने की पेशकशसे होती लगती है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ५०

२१. सलाह : मनु गांधीको[1]

१३ मार्च, १९४३

अपनी कताईका हिसाब लिखती रहना। मनमें आनेवाले विचार भी लिख लेने चाहिए। जो पढ़ती है, उसे भी नोट करके रखना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

२२. सलाह : मनु गांधीको[2]

३ मई, १९४३

अपनी लिखावट सुधारनी चाहिए। कताईका हिसाब नहीं दिया। जिससे जो मालूम हो, लिख लेना चाहिए। उससे यह समझमें आ जायेगा कि तूने पचाया कितना है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

२३. पत्र : मुहम्मद अली जिन्नाको

नजरबन्दी कैम्प
४ मई, १९४३

प्रिय कायदे-आजम,

मेरे जेल पहुँचने के बाद जब सरकारने मुझसे पूछा कि मैं किन समाचारपत्रोंको पढ़ना चाहता हूँ, तो मैंने उनकी सूचीमें 'डॉन' को सम्मिलित कर लिया था। वह पत्र मैं प्रायः बराबर पाता रहा हूँ। वह जब भी मेरे पास आता है, मैं उसे सावधानीसे पढ़ता हूँ। मैंने 'डॉन' में प्रकाशित लीगके अधिवेशनकी कार्यवाहीको ध्यानसे पढ़ा है।

१ और २. यह मनु जयसुखलाल गांधीकी डायरीमें लिखी गई थी।

उसमें मैंने यह भी देखा कि आपने मुझे लिखने को आमन्त्रित किया है।[1] इसीलिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

मैं आपके निमन्त्रणका स्वागत करता हूँ। मेरा सुझाव है कि पत्र-व्यवहार द्वारा वार्त्तालाप करने के बजाय हम परस्पर मिलें। लेकिन आप जैसा चाहें वैसा करने के लिए मैं तैयार हूँ।

मुझे आशा है कि यह पत्र आपके पास भेज दिया जायेगा और यदि आप मेरे सुझावको मानने को तैयार होंगे तो सरकार आपको मुझसे मिलने की सुविधा दे देगी।

एक बात कह दूँ तो बेहतर होगा। आपके निमन्त्रणमें 'यदि' की ध्वनि है। क्या आपका मतलब है कि मैं आपको अपना हृदय-परिवर्तन होने की ही हालतमें लिखूँ? परन्तु मनुष्योंके हृदयकी बात तो सिर्फ परमात्मा ही जानता है। मैं तो चाहता हूँ कि आप मुझसे मैं जैसा हूँ उसी रूपमें मिलें।

क्यों न आप और मैं दोनों साम्प्रदायिक समस्याका कोई हल निकालने का संकल्प करके इस महान प्रश्नको अपने हाथमें लें, और फिर उस हलको उससे सम्बन्ध और दिलचस्पी रखनेवाले सभी लोगोंसे स्वीकार कराने के लिए मिल-जुलकर कोशिश करें?[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

कायदे-आजम मु० अ० जिन्ना
माउण्ट प्लेजेंट रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४३४ बी) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ७१ और कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० १४ से भी

१. ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ९८२ के अनुसार मुहम्मद अली जिन्नाने २४ अप्रैलको दिल्लीमें मुस्लिम लीगके वार्षिक अधिवेशनमें अपने अध्यक्षीय भाषणमें कहा था: "यदि श्री गांधी मुस्लिम लीगके साथ पाकिस्तानके आधारपर समझौता करने को अभी भी सचमुच राजी हों, तो मुझसे ज्यादा इसकी किसीको खुशी नहीं होगी। . . . यदि श्री गांधीने ऐसा इरादा कर लिया है तो मुझे सीधा लिखने में उनके सामने क्या बाधा है? . . . इस तरहका पत्र यदि मुझे भेजा जाये तो वे [ब्रिटिश अधिकारी] उसे रोकने की हिम्मत करेंगे, मैं ऐसा नहीं मानता। . . ."

२. सरकारने इस पत्रको आगे नहीं भेजा; देखिए अगला शीर्षक; "पत्र: सर रिचर्ड टॉटनमको", २७-५-१९४३ भी।

२४. पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
४ मई, १९४३

सचिव
भारत सरकार
गृह-विभाग

महोदय,

क्या संलग्न पत्र[1] कायदे-आजम जिन्नाको भिजवाने की कृपा करेंगे?

भवदीय,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४३४ ए) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ७१, और कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० १४ से भी

२५. पत्र : लॉर्ड सैम्युअलको

नजरबन्दी कैम्प
१५ मई, १९४३

प्रिय लॉर्ड सैम्युअल,[2]

मैं इस पत्रके साथ गत ८ अप्रैलके 'हिन्दू' की एक कतरन भेज रहा हूँ, जिसमें लॉर्ड-सभाकी हालकी [भारत-विषयक] बहसके दौरान दिये गये आपके भाषणका 'रायटर' द्वारा भेजा हुआ सार है। यह मानकर कि आपके भाषणका यह सार सही है, मुझे विवश होकर आपको यह पत्र लिखना पड़ रहा है।

१. देखिए पिछला शीर्षक। वाइसरायने पत्रका पाठ तार द्वारा भारत मन्त्रीको भेजा और राय जाहिर की कि पत्र जिन्नाको भेज दिया जाना चाहिए और यदि गांधीजी जिन्नासे भेंट करना चाहें तो उन्हें इसकी भी अनुमति दे दी जानी चाहिए। चर्चिल तथा एमरीने इसका विरोध किया और तत्पश्चात पूरे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने निर्णय लिया कि पत्र रोक लिया जाना चाहिए। वाइसरायने निर्णयको गलत बताया। अन्ततः २४ मईको गृह-विभागने सूचित किया कि उनका पत्र जिन्नाको नहीं भेजा जा सकता। (ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ९६७-७६, ९७८-८३, ९९४-१०००)।

२. हरबर्ट लुइस सैम्युअल; प्रथम वाइकाउंट; १९३१-३५ में लिबरल संसदीय दलके नेता

मुझे यह विवरण पढ़कर बहुत दुःख हुआ। मैं यह सोच नहीं सकता था कि आप भारत सरकारके उस एकतरफा और अप्रामाणिक[1] बयानके साथ पूर्णतः सहमत होंगे जो उसने कांग्रेसके और मेरे खिलाफ दिया है।

आप एक दार्शनिक हैं और उदारतावादी व्यक्ति हैं। दार्शनिक मनोवृत्तिवाले व्यक्तिको मैं सदासे एक तटस्थ व्यक्ति समझता आया हूँ, और उदारतावादको मनुष्यों और समस्याओंको सहानुभूतिपूर्वक समझने के प्रयासका प्रतीक मानता आया हूँ।

मैं तो समझता हूँ कि सरकारके बयानमें ऐसा कुछ भी नही है जिससे आप वे नतीजे निकालें जो, खबरके अनुसार, आपने निकाले हैं।

आपके भाषणके सारसे मैं कुछ ऐसी बातें लेता हूँ जो मेरी रायमें सत्यकी कसौटीपर खरी नही उतरतीं।

१. कांग्रेस दलने बहुत हदतक लोकतान्त्रिक सिद्धान्तोंको तिलांजलि दे दी है।

कांग्रेसने कभी भी "लोकतान्त्रिक सिद्धान्तोंको तिलांजलि" नहीं दी है। उसका इतिहास तो इस बातका द्योतक है कि वह हमेशा लोकतन्त्रकी दिशामें ही अग्रसर होती रही है। प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो शान्तिमय और न्यायोचित साधनों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने में विश्वास रखता है और ४ आना वार्षिक शुल्क देता है, उसका सदस्य बन सकता है।

२. उसमें सर्वसत्तावादकी ओर जाने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

आपने यह अभियोग इस आधारपर लगाया है कि भूतपूर्व कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों पर कांग्रेस कार्य-समितिका नियन्त्रण था। ब्रिटेनमें जो दल निर्वाचनमें सफल होता है वह क्या कॉमन्स-सभामें ऐसा ही नहीं करता? मुझे तो लगता है कि जब लोकतन्त्रमें पूरी परिपक्वता आ जायेगी तब भी पार्टियाँ चुनाव लड़ेंगी और उनकी प्रबन्ध-समितियाँ अपने सदस्योंकी कार्रवाइयों और नीतियोंपर नियन्त्रण रखेंगी। कांग्रेसजनोंने कांग्रेस संगठनसे अलहदा रहकर चुनाव नहीं लड़ा था। उम्मीदवारोंको अधिकृत रूपसे खड़ा किया गया था और अखिल भारतीय स्तरके नेताओंने उनकी मदद की थी। ऑक्सफर्ड पॉकेट डिक्शनरीके अनुसार, "'सर्वसत्तावाद' किसी ऐसे दलका द्योतक है जो विरोधी निष्ठाओं और विरोधी दलोंको इजाजत न दे।" इसी तरह "सर्वसत्तावादी राज्य" का अर्थ है "केवल एक ही दलके शासनवाला राज्य।" नियन्त्रण रखने के लिए उसे हिंसापर आश्रित रहना पड़ता है। लेकिन, इसके विपरीत, प्रत्येक कांग्रेस सदस्यको उतनी ही स्वतन्त्रता प्राप्त है जितनी कि कांग्रेसके अध्यक्षको अथवा कार्य-समितिके किसी सदस्यको। स्वयं कांग्रेसके अन्दर भी दल हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कांग्रेस हिंसासे सर्वथा विमुख है। कांग्रेसके सदस्य स्वेच्छापूर्वक उसके अनुशासनमें रहते हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको अधिकार है कि वह जब भी चाहे कार्य-समितिके सदस्योंको हटाकर उनकी जगह नये सदस्य चुन ले।

१. गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद् द गवर्नमेंट में यहाँ 'अनुचित' का पर्यायवाची शब्द "अनजस्टीफाइड" दिया है।

३. उन्होंने (कांग्रेसी मन्त्रियोंने)[1] इसलिए इस्तीफे (नहीं?)[2] दिये कि उन्हें अपनी विधान-सभाओंका समर्थन प्राप्त नहीं था, बल्कि इसलिए दिये कि कानूनी तौरपर यद्यपि वे अपने निर्वाचकोंके प्रति उत्तरदायी थे, लेकिन वास्तवमें वे कांग्रेस कार्य-समिति और आला कमानके प्रति उत्तरदायी थे। यह लोकतन्त्र नहीं है। यह तो सर्वसत्तावाद है।

अगर आपको सारी बातें मालूम होती तो आप ऐसा कभी न कहते। कांग्रेस कार्य-समितिके प्रति मन्त्रियोंकी जिम्मेदारीके कारण निर्वाचकोंके प्रति उनकी जिम्मेदारी किसी तरहसे भी कम नही हुई, जिसका सीधा-सादा और उचित कारण यह है कि कार्य-समितिकी शक्ति और प्रतिष्ठा भी उन्ही निर्वाचकोंपर आश्रित है जिनके प्रति ये मन्त्री उत्तरदायी थे। कांग्रेसकी जो प्रतिष्ठा है उसका एकमात्र कारण जनताके लिए की गई उसकी सेवा ही है। वास्तवमें मन्त्रियोंने अपनी-अपनी विधान-सभाओंमें अपने पार्टी-सदस्योंसे सलाह-मशविरा किया था और उनकी सहमतिसे ही इस्तीफा दिया। लेकिन दूसरी तरफ पूर्ण रूपसे सर्वसत्तावादी तो भारत सरकार है, जो भारतमें किसीके प्रति भी जिम्मेवार नहीं है। यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि जो सरकार स्वयं सर्वसत्तावादसे ओतप्रोत है, वह वही आरोप भारतके सबसे अधिक लोकतान्त्रिक दलपर लगाती है।

४. भारतका यह दुर्भाग्य है कि वहाँके विविध राजनीतिक दलोंकी विभाजन-रेखा बहुत ही बुरी है — यह विभाजन धार्मिक समुदायोंके आधारपर है।

भारतके राजनीतिक दलोंका विभाजन धार्मिक समुदायोके आधारपर नहीं है। शुरूसे ही कांग्रेस जान-बूझकर एक विशुद्ध राजनीतिक सगठन रही है। उसके अध्यक्ष अंग्रेज और भारतीय दोनों रहे है और इनमें ईसाई, पारसी, मुसलमान और हिन्दू सभी शामिल रहे हैं। भारतका उदारवादी दल एक दूसरा राजनीतिक संगठन है। इसके अलावा और भी ऐसे राजनीतिक संगठन है जो बिलकुल असाम्प्रदायिक है। इसमें कोई शक नही कि भारतमें धार्मिक सम्प्रदायोंपर आधारित ऐसे संगठन भी हैं जो राजनीतिमें भाग लेते है। लेकिन उससे आपके स्पष्ट वक्तव्यका तो समर्थन नहीं होता। मै किसी तरहसे भी इन संगठनोके महत्त्व अथवा देशकी राजनीतिमें उनकी भारी भूमिकाको कम नही दर्शाना चाहता हूँ। लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगा कि वे भारतके राजनीतिक मानसका प्रतिनिधित्व नही करते। ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर यह साबित किया जा सकता है कि ये राजनीतिक-धार्मिक संगठन विदेशी सरकार द्वारा जान-बूझकर लागू की गई "फूट डालो और राज करो" की नीतिका ही परिणाम है। जब ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रभाव इस देशसे पूरी तरह हट जायेगा तो भारतका प्रतिनिधित्व सम्भवतः केवल ऐसे राजनीतिक दल ही करेंगे जिनमें सभी वर्गों और धर्मोंके लोग शामिल होगे।

१ और २. कोष्ठकोंमें दिये गये शब्द गांधीजी ने जोडे थे।

५. कांग्रेस अधिकसे-अधिक भारतकी आधीसे कुछ अधिक जनसंख्याके प्रतिनिधित्वका दावा कर सकती है। फिर भी वह सर्वसत्तावादी भावनासे प्रेरित होकर समस्त जनसंख्याकी प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

अगर आप कांग्रेसके प्रातिनिधिक स्वरूपका अन्दाजा उसके बाकायदा सदस्योंकी संख्यासे लगाते है, तो वह देशकी आधी जनसंख्याका भी प्रतिनिधित्व नहीं करती। भारतकी लगभग ४० करोड़ जनसंख्याकी तुलनामें कांग्रेसके बाकायदा सदस्योंकी संख्या नगण्य-सी है। कांग्रेसने केवल, १९२० से ही सदस्य भरती करने शुरू किये। उससे पहले कांग्रेसका प्रतिनिधित्व उसकी अखिल भारतीय कमेटियाँ करती थीं, जिनके सदस्य मुख्यतः विभिन्न राजनीतिक संगठनों द्वारा चुने जाते थे। तथापि जहाँतक मुझे मालूम है, कांग्रेस हमेशासे समस्त भारतका — यहाँतक कि देशी नरेशोंका भी — प्रतिनिधित्व करने का दावा करती आई है। विदेशी शासनके अधीन किसी भी राष्ट्रका केवल एक ही राजनीतिक उद्देश्य हो सकता है — अर्थात् उस गुलामीसे मुक्ति। और जब हम यह विचार करते है कि कांग्रेसने हमेशा और मुख्यतया स्वतन्त्रताकी उस भावनाको व्यक्त किया है, तो हम उसके समस्त भारतका प्रतिनिधित्व करने के दावेसे क्योंकर इनकार कर सकते है? अगर कुछ दल कांग्रेसके खिलाफ है तो उसका मतलब यह नहीं कि उसका यह दावा गलत है।

६. जब श्री गांधीने अंग्रेजोंसे भारत छोड़ने को कहा तो यह भी कहा कि कांग्रेस शासन-सूत्र अपने हाथमें लेगी।

मैंने यह कभी नही कहा कि जब अंग्रेज भारत छोड़कर जायेंगे तो "कांग्रेस शासन-सूत्र अपने हाथमें लेगी।" वाइसरायके नाम गत २९ जनवरीके अपने पत्रमें[1] मैंने यह लिखा था:

> जाहिर है कि सरकारने इस महत्त्वपूर्ण बातकी या तो उपेक्षा कर दी या इसे नजरअन्दाज कर दिया कि कांग्रेसने अगस्तवाले प्रस्तावमें अपने लिए कुछ भी नहीं माँगा था। उसकी सभी माँगें सारी जनताके लिए थीं। जैसा कि आपको मालूम ही होगा, कांग्रेस इस बातके लिए राजी और तैयार थी कि सरकार कायदे-आजम जिन्नाको इस शर्तके साथ राष्ट्रीय सरकार बनाने का निमन्त्रण दे कि युद्ध-कालके लिए जो भी बातें जरूरी हों उनके बारेमें आपसी सहमतिसे फैसला कर लिया जायेगा और वह सरकार यथोचित रीतिसे निर्वाचित विधान-सभाके प्रति जिम्मेवार होगी। श्रीमती सरोजिनी देवीके अतिरिक्त कार्य-समितिके अन्य सदस्योंके साथ मेरा सम्पर्क टूट जाने के कारण मुझे मालूम नहीं है कि अब कार्य-समितिका क्या विचार है। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि समितिका विचार बदल गया होगा।

७. अगर ब्रिटेन अथवा कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण आफ्रिका या अमेरिका कांग्रेसकी तरहसे युद्ध-प्रयत्नसे किनारा कर बैठते . . .[2] तो सम्भवतः सभी जगह स्वाधीनताके हितोंको नुकसान पहुँचता . . .।[3] कितने दुर्भाग्य

१. देखिए पृ० ५१-५२।
२ व ३. साधन-सूत्रमें यहाँ छूटा हुआ है।

की बात है कि कांग्रेसके नेता यह नहीं समझते कि मानव-जातिके हितोंकी उपेक्षा करके भारतमें कीर्ति नहीं अर्जित की जायेगी।

ब्रिटेन और अमेरिकाकी तो आप बात ही छोड़िए। वे तो पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र राष्ट्र है। पर कनाडा और दूसरे अधिराज्योकी तुलना भी आप भारतसे कैसे कर सकते है, क्योंकि वे भी लगभग स्वतन्त्र ही है? क्या भारतको आपके द्वारा गिनाये गये इन देशो-जैसी रत्ती-भर भी आजादी हासिल है? भारतको अभी अपनी आजादी हासिल करनी है। मान लीजिए कि मित्र-राष्ट्र हार जाते हैं, और मान लीजिए कि सैनिक कारणोसे उन्हें अपनी सेनाएँ भारतसे हटा लेनी पड़ती है — जैसी कि मुझे आशा नही है — तो जिन देशोका आपने जिक्र किया वे अपनी आजादी खो सकते हैं। लेकिन अभागे भारतकी अगर उस समय भी यही प्रतिरक्षा-विहीन स्थिति रही तो उसे तो सिर्फ अपना मालिक ही बदलना पड़ेगा। कांग्रेस कोई जिदके कारण किनारा नही कर रही है। जबतक भारत — आपके ही शब्दोमें "कानूनी तौरपर" या "वास्तवमें" — स्वतन्त्र नही हो जाता तबतक न तो कांग्रेस और न कोई अन्य संगठन ही भारतीय जनतामें मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयके प्रति अनुराग-उत्साह पैदा कर सकता है। भविष्यमें भारतको आजाद कर दिया जायेगा, ऐसा वादा करने-भरसे वह चमत्कार नही हो सकता। "भारत छोड़ो" का नारा इसलिए लगाया गया है कि अगर भारतको मानवजातिके हितोंका प्रतिनिधित्व करने या उसके लिए लड़ने का भार अपने सिर लेना है, तो उसे इसी समय स्वाधीनताकी आभा प्राप्त होनी चाहिए। क्या कभी किसी ठिठुरते हुए आदमीको यह कहने से गर्मी पहुँची है कि भविष्यमें किसी दिन उसे धूपकी गर्मी मिलनेवाली है?

दुर्भाग्य तो यह है कि कांग्रेस मेरे प्रभावके कारण जो-कुछ भी कहती या करती है, उसपर हमारे शासक अविश्वास करते हैं, और अब सहसा वे यह मानने लगे है कि कांग्रेसपर मेरा प्रभाव अभिशाप-स्वरूप है। स्थितिको साफ-साफ समझने के लिए यह आवश्यक है कि आपको कांग्रेस और कांग्रेसजनोके साथ मेरे सम्पर्कका ज्ञान हो जाये। १९३५ में मैं कांग्रेससे सभी प्रकारका औपचारिक नाता तोड़ने में सफल हो गया। कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंके साथ मेरा कोई मतभेद नही था। लेकिन मैंने अनुभव किया कि कांग्रेससे अधिकृत रूपसे सम्बद्ध रहते मैं भी जकड़नमें पड़ा हुआ हूँ और कार्य-समितिके सदस्य भी। मेरी कल्पनाकी अहिंसा समय-समयपर जिन बढ़ते हुए संयमोंकी अपेक्षा करती थी उन्हें बरदाश्त करना बहुत मुश्किल पड़ रहा था। इसलिए मुझे लगा कि मेरा प्रभाव केवल नैतिक ही होना चाहिए। मेरी कोई राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा नही थी। मेरी राजनीति तो सत्य और अहिंसाको मैंने जिस रूपमें परिभाषित और प्रायः जीवन-भर आचरित किया था उस रूपमें, उनकी अपेक्षाओंकी चेरी थी। इसलिए मेरे सहयोगियोने मुझे कांग्रेससे अपना औपचारिक सम्बन्ध तोड़ने की, यहाँतक कि उसकी चौअन्निया सदस्यतासे भी अलहदा होने की अनुमति दे दी। मेरे और उनके दरम्यान यह तय हुआ कि जब-कभी अहिंसा अथवा साम्प्रदायिक एकतासे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंमें सलाह-मशविरेके लिए उन्हें मेरी

जरूरत महसूस होगी, केवल तभी मैं कार्य-समितिकी बैठकोंमें उपस्थित होऊँगा। तबसे कांग्रेसके नियमित कार्यसे मेरा किसी किस्मका सम्बन्ध नही रहा है। इसलिए कार्य-समितिकी बहुत-सी बैठकोंमें मैं शामिल नही हुआ हूँ। उनकी कार्यवाहियोंकी सूचना मुझे अक्सर केवल अखबारोंसे ही मिली है। कार्य-समितिके सदस्य स्वतन्त्र विचारोंके लोग है। अक्सर लम्बी बहसोंके बाद ही वे नई परिस्थितियोंसे उत्पन्न समस्याओंके सन्दर्भमें प्रयुक्त अहिंसाकी व्याख्याके सम्बन्धमें मेरी सलाह मानते है। इसलिए यह कहना कि मैं उनपर अनुचित रूपसे प्रभाव डालता हूँ — उनके और मेरे दोनोंके साथ अन्याय करना होगा। जनता जानती है कि किस तरह अभी बिलकुल हालतक अनेक अवसरोंपर कार्य-समितिके अधिकांश सदस्य महत्त्वपूर्ण विषयोंपर मेरी सलाह मानने से साफ इनकार करते रहे हैं।

> **८. उन्होंने न केवल इस युद्ध-प्रयत्नमें भाग लेने से इनकार कर दिया है, बल्कि कांग्रेसने जान-बूझकर यह घोषणा की है कि इस युद्धमें जन या धनसे अंग्रेजोंकी मदद करना गलती है और युद्ध-मात्रका अहिंसापूर्वक प्रतिरोध करना ही एकमात्र श्रेयस्कर बात है। अहिंसाके नाम उन्होंने एक ऐसा आन्दोलन शुरू किया है जिसमें बहुत-सी जगहोंपर अत्यधिक हिंसासे काम लिया गया है और 'श्वेतपत्र' में स्पष्ट रूपसे साबित कर दिया गया है कि इन उपद्रवोंमें भारतीय नेताओंका हाथ रहा है।**

इस आरोपसे प्रकट हो जाता है कि किस तरहसे कल्पित कहानियोंके आधार पर ब्रिटिश जनताको गुमराह किया गया है, जैसा कि भारत सरकार द्वारा प्रकाशित उपद्रव-सम्बन्धी पुस्तिकामें देखा जा सकता है। भारतीय नेताओंकी बातोंको उनके सन्दर्भोंसे विच्छिन्न करके उन्हें इस प्रकार एकसाथ मिलाकर पेश किया गया है, मानों वे एक ही समयमें या एक सन्दर्भमें कही गई हों। कांग्रेस स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके निमित्त अहिंसासे प्रतिबद्ध है। और इस लक्ष्यको ध्यानमें रखकर कांग्रेस इन तमाम बीस वर्षोंके दौरान अपने आचरणमें — चाहे जितने अपूर्ण रूपसे हो — अहिंसाको अभिव्यक्त करनेके लिए प्रयत्नशील रही है, और मैं समझता हूँ कि बहुत हदतक वह इसमें सफल भी हुई है। लेकिन उसने अहिंसाके जरिये युद्धके प्रतिरोधका दावा तो कभी नहीं किया है। यदि वह वैसा दावा कर सकती और उसे चरितार्थ कर पाती तो आज भारतका नक्शा ही कुछ और होता और तब दुनियाने संगठित हिंसाके संगठित अहिंसा द्वारा सफल विरोधका चमत्कारिक दृश्य देखा होता। किन्तु मानव-स्वभाव कहीं भी पूर्ण अहिंसाकी अपेक्षाओंके अनुरूप ऊँचाईतक नही उठ पाया है। ८ अगस्तके बाद जो उपद्रव हुए उनका कारण कांग्रेसकी ओरसे की गई कोई कार्रवाई नहीं थी। वे तो पूर्ण रूपसे सरकार द्वारा भारत-भरमें कांग्रेसी नेताओंको, और सो भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे सर्वथा अनुचित समयपर, गिरफ्तार करके भड़कानेवाली कार्रवाईके कारण हुए। ज्यादासे-ज्यादा यही कहा जा सकता है कि कांग्रेसजन या अन्य लोग अहिंसाकी साधनामें उतने ऊपर नही उठ पाये थे कि उनके कारण सारी उत्तेजनाएँ निष्फल हो जातीं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि आप एक ओर तो यह स्वीकार करते हैं कि "यह 'श्वेतपत्र' पत्रकारिताका अच्छा नमूना हो सकता है, लेकिन सरकारी प्रलेखके रूपमें उतना अच्छा नही है", किन्तु दूसरी ओर किसी प्रकारकी छूट या अपवादकी गुंजाइश छोड़े बिना जाहिर की गई अपनी रायका आधार भी आपने उसी प्रलेखको बनाया है। अगर आप उन भाषणोको ही पढ़ें जिनका इस 'श्वेतपत्र' में उल्लेख किया है तो उनमें आपको इस बातका पर्याप्त प्रमाण मिल जायेगा कि गत ९ अगस्तको और उसके बाद भारत सरकारने जो दुर्भाग्यपूर्ण गिरफ्तारियाँ की या उसने गिरफ्तार नेताओंको जेलोंमें डालने के बाद उनपर जो आरोप लगाये और जिन आरोपों की किसी अदालतमें कभी जाँच नही की गई उनका कतई कोई औचित्य नही था।

> **९. श्री गांधीने हमारे साथ राजनीतिक विवादमें बिलकुल अनुचित तरीका अपनाया। उन्होंने उपवासके जरिये मानवकी सर्वोत्तम भावनाओं — दया और सहानुभूतिसे अनुचित लाभ उठाने की कोशिश की। श्री गांधीके उपवासके पक्षमें एक यहीं बात अच्छी मानी जा सकती है कि उन्होंने उसे समाप्त कर दिया।**

आपने मेरे उपवासके सम्बन्धमें बड़ा सख्त शब्द कहा है। वाइसराय महोदय भी यही कह गये हैं। आपके लिए तो शायद यह बहाना हो सकता है कि आपको पूरी स्थितिकी जानकारी नही है, लेकिन वाइसराय महोदयके लिए ऐसा कोई बहाना नही हो सकता, क्योंकि उनके पास मेरे पत्र मौजूद थे। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उपवास सत्याग्रहका अभिन्न अंग है। सत्याग्रहीका यह अन्तिम शस्त्र है। जब कोई व्यक्ति यह खयाल करके कि उसके साथ अन्याय हुआ है, आत्म-बलिदान करनेको तैयार हो जाता है, तो उसे अनुचित लाभ उठाना कैसे कह सकते है? शायद आप जानते हों कि अपनी शिकायतें दूर कराने के लिए सत्याग्रही कैदियों ने दक्षिण आफ्रिकामें उपवास किया था और यही चीज उन्होने भारतमें की है। आपको मेरे एक उपवासका[1] तो पता होगा ही, क्योंकि मेरा खयाल है, उस समय आप ब्रिटेनके मन्त्रिमण्डलमें थे। मेरा मतलब उस उपवाससे है जिसकी वजहसे सम्राट की सरकारको अपने फैसलेमें बादमें रद्दोबदल करना पड़ा। अगर वह फैसला कायम रहता तो अस्पृश्यताका अभिशाप सदाके लिए बना रहता। लेकिन उसी परिवर्त्तनके कारण यह महा अनर्थ टल गया।

मेरे हालके उपवासके आरम्भ होने के बाद भारत सरकारने जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसमें उसने मुझपर यह इल्जाम लगाया कि मैंने उपवास अपनी रिहाईके लिए किया है। यह इल्जाम बिलकुल बेबुनियाद था। मैंने सरकारके पत्रके जवाबमें जो पत्र[2] लिखा था, उसकी बातोंको तोड़-मरोड़कर सरकारने मेरे ऊपर यह इल्जाम लगाया था। ८ फरवरीका मेरा वह पत्र सरकारने अपनी विज्ञप्ति प्रकाशित करते समय दबा दिया था। अगर आप इस बारेमें अधिक जानकारी हासिल करना चाहें तो मैं

१. २० से २६ सितम्बर, १९३२ तक; देखिए खण्ड ५१।
२. देखिए पृ० ५७-५८।

आपका ध्यान निम्न पत्रोंकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जो समाचारपत्रोमें प्रकाशित हो चुके है:

नववर्षकी पूर्व-सध्या, १९४२ का वाइसराय महोदयके नाम मेरा पत्र।[1]
१३ जनवरी, १९४३ का वाइसराय महोदयका जवाब।[2]
१९ जनवरी, १९४३ का मेरा पत्र।[3]
२५ जनवरी, १९४३ का वाइसराय महोदयका जवाब।[4]
२९ जनवरी, १९४३ का मेरा पत्र।[5]
५ फरवरी, १९४३ का वाइसराय महोदयका जवाब।[6]
७ फरवरी, १९४३ का मेरा पत्र।[7]
७ फरवरी, १९४३ का सर आर० टॉटनमका पत्र।[8]
८ फरवरी, १९४३ का मेरा जवाब।[9]

और मुझे नहीं मालूम कि आपको यह खयाल कैसे हुआ कि मैंने उपवास खत्म कर दिया, जिस काल्पनिक कार्रवाईके लिए आप मुझे श्रेय दे रहे है। अगर आपका यह मतलब है कि मैंने यह उपवास समयसे पहले समाप्त कर दिया तो मैं वैसी समाप्ति को अपने लिए अपकीर्तिकी बात मानता हूँ। वास्तविकता यह है कि उपवास उचित समयपर ही खत्म किया गया था और उसके लिए मैं किसी प्रकारके श्रेयका दावा नही कर सकता।

१०. उनका (लॉर्ड सैम्युअलका) खयाल है कि अगर कांग्रेस वास्तवमें समझौतेकी इच्छुक होती तो उन बातोंको लेकर बातचीत नहीं टूट सकती थी जिन्हें लेकर वह टूटी है।

कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद और पण्डित नेहरू बहुत दिनोंतक समझौतेकी बातचीत करते रहे। इस बारेमें उन्होने जो वक्तव्य दिये हैं, मैं कह सकता हूँ कि उनसे यह साफ जाहिर हो जाता है कि कोई भी ईमानदार आदमी समझौतेके लिए उससे सच्ची और अधिक इच्छाका परिचय नही दे सकता था जितनी कि उन्होंने की। इस सम्बन्धमें यह बात याद रखनी चाहिए कि पण्डित नेहरू सर स्टैफर्ड क्रिप्सके घनिष्ठ मित्र थे और मुझे इसमें कोई शक नही कि वे अबतक भी उनके वैसे ही मित्र हैं और उन्हीके कहने पर वे इलाहाबादसे आये थे। इसलिए ऐसा नहीं हो सकता था

१. देखिए पृ० ४५-४७।
२. देखिए परिशिष्ट १।
३. देखिए पृ० ४७-५०।
४. देखिए पृ० ५०, पा० टि० १।
५. देखिए पृ० ५१-५३।
६. देखिए परिशिष्ट २।
७. देखिए पृ० ५४-५६।
८. देखिए पृ० ५७, पा० टि० २।
९. देखिए पृ० ५७-५८।

कि समझौता करने में वे कोई कसर उठा रखते। क्रिप्सकी असफलताका इतिहास अभी नहीं लिखा गया है। जब वह लिखा जायेगा तो आपको पता चल जायेगा कि असफलताका कारण कांग्रेस नहीं, बल्कि कोई और था।

मुझे आशा है कि मेरे पत्रसे आप ऊबे नहीं होंगे। सत्यको झूठसे बुरी तरह दबानेकी कोशिश की गई है। एक महान संगठनके प्रति न्यायके तकाजेको अलग रखें तो भी कमसे-कम सत्य — जो मानवताका ही पर्याय है — तो वर्त्तमान व्याधिकी निष्पक्ष जाँचकी माँग करता ही है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न १

परम माननीय लॉर्ड सैम्युअल
हाउस ऑफ लॉर्ड्स
लन्दन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३७८) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। **गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट**, पृ० ७५-८२; **कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी**, पृ० २५-२९ से भी

१. यह पत्र उस समय रोक लिया गया था (देखिए अगले शीर्षककी पा० टि० १)। जब रिहा होने पर गांधीजी ने इसकी नकल लॉर्ड सैम्युअलको भेजी तो उत्तरमें २५ जुलाई, १९४४ को उन्होंने अपने दृष्टिकोणको फिरसे सही बताते हुए लिखा: "और मैं इतना और बता दूँ कि वर्तमान युद्धके दौरान आपके और कांग्रेसके द्वारा अबतक अपनाई गई नीतिके फलस्वरूप इस देशमें भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनके लगभग सभी मित्रोंके साथ मुझे उसके प्रति जो विरोधका रुख अख्तियार करना पड़ा है, इसका मुझे कितना गहरा अफसोस है और यदि स्थिति इससे उलटी हो जाये, तो मुझे कितनी ज्यादा खुशी होगी।"

२६. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१५ मई, १९४३

महोदय,

क्या संलग्न पत्र[1] परम माननीय लॉर्ड सैम्युअलके पास भिजवाने की कृपा करेंगे?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० २५

२७. पत्र : सर रेजिनल्ड मैक्सवेलको

नजरबन्दी कैम्प
२१ मई, १९४३

प्रिय सर रेजिनल्ड मैक्सवेल,[2]

आपने मेरे अनशनके बारेमें गत १५ फरवरीको विधान-सभामें काम रोको प्रस्तावपर[3] जो भाषण दिया था उसे मैं चालू माहकी १० तारीखको पढ़ पाया। मैंने फौरन समझ लिया कि इसका जवाब देने की जरूरत है। काश कि मैंने आपका भाषण पहले पढ़ा होता।

१. देखिए पिछला शीर्षक। २६ मईको इसका उत्तर देते हुए अतिरिक्त गृह-सचिवने गांधीजी को सूचित किया कि "अन्य प्रसंगपर आपको बताये गये कारणोंसे" सरकारने तय किया कि पत्र आगे नहीं भेजा जा सकता। किन्तु १९४४ में रिहा होने पर गांधीजी ने पत्रकी एक नकल लॉर्ड सैम्युअलको भेजी, जिसके बाद दोनोंके बीच कुछ पत्र-व्यवहार हुआ; देखिए खण्ड ८०, "पत्र : लॉर्ड सैम्युअलको", ८-९-१९४५।

२. वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में गृह-सदस्य

३. इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४३ (जिल्द १, पृ० १५९) में एन० एन० मित्र बताते हैं कि एल० के० मैत्र द्वारा पेश किये गये काम रोको प्रस्तावमें "सदनके सभी सदस्योंसे तमाम राजनीतिक दृष्टिकोणोंसे ऊपर उठकर एक स्वरसे समस्त वर्गोंके लोगों द्वारा पूजित उस महान भारतीयकी 'बिना शर्त' और 'अविलम्ब' रिहाईकी माँग करने का अनुरोध किया गया था।" मैत्रका समर्थन एन० एम० जोशी, सन्तसिंह, डॉ० पी० एन० बनर्जी और टी० टी० कृष्णमाचारीने किया था।

देखता हूँ कि आप नाराज है, या कमसे-कम उस समय नाराज थे जब आपने यह भाषण दिया था। आपकी स्पष्ट गलत-बयानियोंका मै कोई और कारण नही समझ सकता। इस पत्रमें मै उन गलत-बयानियोको दिखानेकी कोशिश करूँगा। यह पत्र आपको, आपकी अधिकारीकी हैसियतको दृष्टिमें रखकर नही, बल्कि जैसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको लिखता है वैसे लिखा जा रहा है। मेरे मनमें सबसे पहला खयाल यह उठा कि आपने अपने भाषणमें तथ्योको जान-बूझके तोड़-मरोड़कर पेश किया है। पर मैंने तुरन्त अपना खयाल बदल लिया। जिस हदतक आपके शब्दोका अच्छा मतलब निकल सकता था, उस हदतक मैने बुरा मतलब छोड़ दिया है। इसलिए मै यही मानूंगा कि मुझे जो बातें तोड़-मरोड़कर कही गई प्रतीत हुईं वे जान-बूझकर नही तोड़ी-मरोड़ी गई थी।

आपने कहा है कि "जिस पत्र-व्यवहारके परिणामस्वरूप अनशन किया गया था वह मौजूद है और हर कोई अपनी इच्छानुसार उसका अर्थ लगा सकता है।" लेकिन फिर भी आपने श्रोताओसे उसी दम कह दिया: "सम्भवत: इसका अर्थ निम्नलिखित तथ्योंके प्रकाशमें समझा जा सकता है।" क्या आपने उन्हें अपनी इच्छानुसार अर्थ लगाने का मौका दिया?

अब मै आपके "तथ्यों" को एक-एक करके लेता हूँ:

> **१. जब कांग्रेस पार्टीने अपना ८ अगस्तका प्रस्ताव पास किया तब यह खयाल किया जाता था कि भारतपर जापानका हमला सम्भव है।**

आप यह भाव सूचित करते प्रतीत होते है कि यह खयाल कांग्रेसका था और निराधार था। सच तो यह है कि इस खयालको सरकारने फैलाया और अपनी ऐसी कार्रवाइयोंसे इसे महत्त्व दिया जो हास्यास्पद भी प्रतीत होती थी।

> **२. ऐसा खयाल किया जा सकता है कि कांग्रेस पार्टी ब्रिटिश सत्ताके भारतसे हट जानेकी मांग करके और कांग्रेसको खुल्लमखुल्ला उस सत्ताके विरुद्ध खड़ा करके यह आशा करती थी कि अगर जापानियोंका हमला सफल हुआ, तो खुद उसे कुछ फायदा होगा।**

यह तथ्य नही है, बल्कि आपकी राय है, जो तथ्योंके सर्वथा प्रतिकूल है। कांग्रेसजनोंको जापानकी सफलतासे किसी फायदेकी न तो आशा थी और न इच्छा ही थी। इसके विपरीत उन्हें जापानकी सफलतासे डर लगता था और उसी डरके कारण वे ब्रिटिश शासनका तुरन्त अन्त चाहते थे। ये सब बातें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्ताव (८ अगस्त, १९४२) से और मेरे लेखोसे स्फटिककी भाँति स्पष्ट हो जाती हैं।

> **३. आज, छः महीनेके बाद, जापानका खतरा कमसे-कम फिलहाल तो टल गया है और उस तरफसे तुरन्त लाभकी आशा नहीं है।**

यह भी आपकी राय ही है। मेरी रायमें, जापानका खतरा टला नहीं है। वह अब भी स्पष्टत: भारतके सामने उपस्थित है। आपको अपना यह ताना कि "उस

तरफसे तुरन्त लाभकी आशा नहीं है", वापस ले लेना चाहिए, बशर्ते कि आपका यह खयाल न हो और आप यह साबित न कर दें कि ऊपरके अनुच्छेदोंमें उल्लिखित प्रस्ताव और मेरे लेखोंका वह मतलब नहीं था जो उनके शब्दोंसे प्रकट होता है।

> **४. कांग्रेस द्वारा शुरू किया गया आन्दोलन निर्णायक रूपसे असफल हो गया है।**

मैं इस कथनका निश्चय ही विरोध करूँगा। सत्याग्रह कभी असफल नहीं होता। सख्तसे-सख्त चोट लगनेसे भी वह पनपता है। परन्तु मुझे इस तरह अपने-आपको दिलासा देनेकी जरूरत नहीं है। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतमें स्थापित स्कूलोंमें मैंने सीखा था कि "आजादीकी लड़ाई जब एक बार शुरू हो जाती है तब खूनसे लथपथ पिताके बाद उसका पुत्र उसे जारी रखता है।" यदि प्रयत्न शिथिल न पड़ जाये तो इस बातसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मंजिलपर कब पहुँचते हैं। ६० वर्ष पूर्व कांग्रेसकी स्थापनाके साथ ही प्रभात हुआ। ६ अप्रैल, १९१९ को, जब भारत-भरमें सत्याग्रह शुरू हुआ,[1] भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तककी जनता जाग उठी। आप चाहें तो बेशक अपने-आपको इस बातसे दिलासा दे सकते हैं कि कुछ कांग्रेस-जनोंकी आशाके विपरीत आन्दोलनका तात्कालिक उद्देश्य प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु यह बात "निर्णायक" या "असफलता" की कसौटी नहीं है। कभी हार न माननेवाली जातिके एक व्यक्तिको यह शोभा नहीं देता कि वह शक्तिके भयावह प्रदर्शनसे जनताका जोश — जो सम्भवतः सदा बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होता — दबा दिये जानेसे यह नतीजा निकाले कि एक जन-आन्दोलन असफल हो गया है।

> **५. इसलिए अब कांग्रेस पार्टीका उद्देश्य अपनेको पुनःस्थापित करना और बने तो अपनी खोई हुई प्रतिष्ठाको फिरसे प्राप्त करना है।**

निश्चय ही, आपको स्वयं अपने ही अनुभवसे अपनी इस रायको दुरुस्त कर लेना चाहिए। मेरी तरह आप भी अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेसको दबानेकी हर कोशिशसे उसकी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता बढ़ी है। कांग्रेसको दबानेकी यह सबसे ताजी कोशिश है और उसका परिणाम भी उलटा नहीं हो सकता। इसलिए "खोई हुई प्रतिष्ठा" या "पुनःस्थापन" का सवाल ही नहीं उठता।

> **६. अतः अब वे अपने फैसलेसे निकलनेवाले नतीजोंके लिए अपनी जिम्मेवारीसे इनकार करना चाहते हैं। यह बात श्री गांधीने वाइसरायके साथ अपने पत्रमें उठाई है। अब उन प्रतिकूल पड़नेवाले तथ्योंको अप्रमाणित कहकर अस्वीकार किया जा रहा है।**

यहाँ "वे" का मतलब मेरे सिवाय और कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि सारे भाषणमें मुझे ही निशाना बनाया गया था। "अब" का मतलब है मेरे अनशनके समय। मैं आपको याद दिला दूँ कि मैंने अपनी जिम्मेवारीसे इनकार तो गत १४

१. रौलट अधिनियमके विरोधमें

अगस्तको वाइसराय महोदयको लिखे पत्रमें[1] ही कर दिया था। उसी पत्रमें मैंने जिम्मेवारी सरकारपर डाली थी, जिसने ९ अगस्तको भारी संख्यामें गिरफ्तारियाँ करके लोगोको इतना उत्तेजित किया कि वे पागल हो उठे थे। "प्रतिकूल पड़नेवाले तथ्य" मेरे लिए प्रतिकूल नही है, क्योकि जिम्मेवारी सरकारपर है, और जिन्हें आप "तथ्य" कहते हैं, वे एकतरफा इल्जाम हैं, जो अभी साबित नही किये गये हैं।

> **७. श्री गांधीकी यह दलील है: "मैं बेखटके कह सकता हूँ कि यह सरकारका काम है कि वह ठोस प्रमाण देकर अपनी कार्रवाईका औचित्य प्रमाणित करे।" वह अपनी कार्रवाईका औचित्य किसके सामने प्रमाणित करे?[2]**

क्या सरदार सन्तसिंहका जवाब ठीक जवाब नही था? कितना अच्छा होता अगर आपने वह विस्मय-बोधक टिप्पणी न की होती। कारण, क्या भारत सरकार पहले कभी जाँच-समितियाँ नियुक्त करके — उदाहरणार्थ, जलियाँवाला बागके नर-संहारके बाद — अपनी कार्रवाइयोका औचित्य प्रमाणित करने को बाध्य नही हुई? लेकिन आप आगे कहते हैं:

> **८. यह बात श्री गांधीने अपनी चिट्ठियोंमें अन्यत्र स्पष्ट की है। वे कहते हैं[3]: "मुझे मेरी गलतीका कायल कीजिए, फिर मैं पर्याप्त परिशोध करूँगा।" यदि ऐसा न हो सके तो वे कहते हैं: "अगर आप चाहते है कि मैं कांग्रेस की ओरसे कोई सुझाव दूँ, तो मुझे कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंके साथ ठहराने का प्रबन्ध कीजिए।"[4] जहाँतक कि समझमें आ सकता है, जिस समय उन्होंने अनशनका विचार किया था उनकी यही माँगें थीं। उन्होंने कोई और ठोस माँग नहीं रखी।**

यहाँ मेरे साथ दोहरा अन्याय किया गया है। आपने इस बातका कोई खयाल नही किया कि मैंने अपने पत्र ऐसे व्यक्तिको लिखे थे जिसे मै अपना दोस्त समझता था। आपने इस तथ्यकी भी उपेक्षा की है कि वाइसरायने अपने पत्रोंमें मुझसे स्पष्ट सुझाव रखने को कहा था। अगर आप इन दो तथ्योंको ध्यानमें रखते, तो मेरे साथ इस तरह अन्याय न करते। परन्तु अब मै आपके द्वारा लगाये गये नवें इल्जामको लेता हूँ, और तब आपको मेरा मतलब स्पष्ट हो जायेगा।

> **९. लेकिन अब नई रोशनी मिलती है। सरकारने श्री गांधीकी किसी भी माँगको स्वीकार न करते हुए उन्हें सूचित किया कि उनके अनशनके लिए एवं अनशनकी अवधितक के लिए वह उन्हें रिहा कर देगी, ताकि यह स्पष्ट हो जाये कि परिणामोंके लिए वह जिम्मेवार नहीं है। इसपर श्री गांधीने जवाब दिया[5] कि अगर मुझे रिहा कर दिया जायेगा तो मै अनशनका विचार**

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४४८-५३।
२. इसके उत्तरमें सन्तसिंहने कहा था: "एक निष्पक्ष जाँच-समितिके सामने।"
३ और ४. देखिए पृ० ४९।
५. देखिए पृ० ५७-५८।

> तुरन्त छोड़ दूंगा, क्योंकि मैंने कैदीकी हैसियतसे ही अनशन करनेका विचार किया है। इसका मतलब यह है कि अगर उन्हें रिहा कर दिया जाये तो जिन उद्देश्योंकी खातिर उन्होंने अनशन करनेका ऐलान किया था, और जो तब भी पूरे नहीं हुए होंगे, उनका कोई महत्त्व नहीं रहेगा। स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे वे न इन लक्ष्योंकी पूर्तिकी माँग करेंगे और न अनशन करेंगे। इस तरह देखें तो उनके अनशनका इसके सिवाय कोई और मतलब नहीं प्रतीत होगा कि वे अपनी रिहाईकी माँग कर रहे हैं।

रिहाईकी पेशकशवाले पत्रके साथ मुझे उस विज्ञप्तिके मसौदेकी एक प्रति भी दी गई थी जो सरकारको जारी करना था। उसमें यह नहीं कहा गया था कि पेशकश "यह स्पष्ट करनेके लिए की जा रही है कि सरकार परिणामोके लिए जिम्मेवार नही है।" अगर मैंने ऐसा अभद्र वाक्य देखा होता तो उत्तरमें मै अपनी अस्वीकृति-मात्र सूचित कर देता। मैंने अपने भोलेपनके कारण उस पेशकशका अच्छा मतलब लगाया और अपने उत्तरमें तर्कपूर्वक बताया कि मैं उसे क्यों स्वीकार नहीं कर सकता। और इस खयालसे कि सरकारको किसी तरहकी गलतफहमी न हो, मैंने अपनी आदतके मुताबिक सरकारको यह भी बता दिया कि मैंने अनशनका खयाल कैसे बनाया और मै एक स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे क्यों अनशन नही कर सकता। सरकारकी सुविधाके लिए मैंने अपने दस्तूरके खिलाफ अनशनको एक दिनके लिए मुल्तवी भी कर दिया। श्री अर्विनने,[1] जो पेशकश तथा विज्ञप्तिका मसौदा लेकर आये थे, मेरी इस शिष्टताकी प्रशंसा की। संशोधित विज्ञप्ति जारी करते समय मेरे इस उत्तरको जनताके सामने क्यों नही रखा गया और उसके बजाय उसकी अनुचित व्याख्या क्यों पेश की गई? क्या मेरा पत्र महत्त्वपूर्ण दस्तावेज नही था?

अब दूसरे अन्यायकी बातको लेता हूँ। आप कहते है कि अगर मुझे रिहा कर दिया जाये तो उन उद्देश्योंका कोई महत्त्व नहीं रहेगा जिनकी खातिर मैंने अनशन करनेका ऐलान किया और आप बिना किसी कारणके यह भी संकेत करते हैं कि एक स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे मैं इन उद्देश्योंकी पूर्तिकी माँग नहीं करूँगा और न अनशन ही करूँगा। स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे मैं कांग्रेसजनोंपर और मुझपर लगाये गये इल्जामोंकी सार्वजनिक रूपसे निष्पक्ष जाँच करानेके लिए आन्दोलन कर सकता था और करता भी। मैं बन्दी कांग्रेसजनोसे मुलाकात करनेकी इजाजत भी माँगता। फर्ज कीजिए कि मेरे आन्दोलनका सरकारपर कोई असर न होता, तब मैं शायद अनशन करता। अगर आप गहरे क्षोभसे ग्रस्त न हो गये होते, तो ये सब बातें आपको मेरे पत्रसे स्पष्ट हो जातीं, और मेरा पिछला रिकार्ड भी आपकी सहायता करता। इसके बजाय आपने वह अर्थ लगाया है जो अर्थ लगानेके सरल नियमोंके अनुसार आपको लगानेका अधिकार नहीं था। और फिर स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे मुझे कांग्रेसियों और गैर-कांग्रेसियों द्वारा की गई कथित तबाहीके किस्सों की जाँच करनेका मौका मिलता। और अगर मुझे पता चलता कि उन्होंने मनमाने

१. जोजेफ बॉयड अर्विन, बम्बई सरकारके सचिव

तौरपर हत्याएँ की है, तब भी शायद मैं अनशन करता, जैसा कि मैं पहले भी कर चुका हूँ। इसलिए आपको समझना चाहिए कि वाइसराय महोदयके नाम मेरे पत्रमें की गई माँगोंका महत्त्व मेरे रिहा कर दिये जाने पर कम न हो पाता, क्योंकि मैं अनशनके अलावा किसी और तरीकेसे उनके बारेमें जोर डाल सकता था, और आपको यह भी समझना चाहिए कि अनशनका मेरी रिहा होनेकी इच्छासे दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि कैद सत्याग्रहीको कभी नागवार नहीं होती। उसके लिए जेल स्वतन्त्रताका द्वार होता है।

> १०. मैं उनके खिलाफ कांग्रेस कार्य-समितिके कई प्रस्तावोंका हवाला दे सकता हूँ। . . . श्री गांधीने १९ अगस्त, १९३९ के 'हरिजन' में स्वयं इस विषयको उठाया था। वहाँ वे कहते हैं:[1] "भूख-हड़ताल आजकल निश्चय ही एक महामारी बन गई है।"
>
> ११. भूख-हड़तालकी नैतिकतापर श्री गांधीने राजकोटमें किये गये अपने अनशनके बाद २० मई, १९३९ के 'हरिजन' में यह विचार व्यक्त किया था:[2] "अब देखता हूँ कि वह हिंसासे रंजित था।" आगे चलकर वे कहते हैं: "यह अहिंसाका, हृदय-परिवर्तनका मार्ग नहीं था।"

आपने मेरे जिन विचारोंके उद्धरण दिये हैं उनमें रत्ती-भर परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि आपने उद्धरणोंको भावावेशके विना पढ़ा होता, तो आप मेरे पत्रका वह अर्थ न लगाते जो आपने लगाया है।

मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि आपने मेरे लेखको बिलकुल गलत समझा है। सौभाग्यसे मेरे पास आनन्द हिंगोरानी द्वारा किया गया मेरे लेखोंका संग्रह 'टु द प्रिन्सेज एण्ड देअर पीपुल्स' (नरेशों और उनकी प्रजासे) मौजूद है। आपने 'हरिजन' के जिस लेखकी चर्चा की है, उसका मैं उद्धरण दे रहा हूँ:[3]

> उपवासके अन्तमें मैंने कहा था कि मेरा यह उपवास जितना सफल हुआ है उतना इससे पहलेका और कोई उपवास सफल नहीं हुआ। लेकिन मैं अब देखता हूँ कि वह हिंसासे रंजित था। उपवास करके मैंने अधीश्वरी सत्ताकी दस्तन्दाजी चाही, ताकि वह ठाकुर साहबको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए प्रेरित करे। यह अहिंसाका, हृदय-परिवर्तनका मार्ग नहीं था, यह तो हिंसा तथा दबाव डालनेका मार्ग था। मेरा उपवास शुद्ध तो तब होता जब वह केवल ठाकुर साहबको ही लक्ष्य करके किया गया होता और मैं उनके, बल्कि उनके सलाहकार दरबार श्री वीरावालाके हृदयको द्रवित करनेमें असफल होने पर मर जानेमें ही सन्तोष मानता। . . .

मेरे खयालमें आप मानेंगे कि आपने इधर-उधरके वाक्योंको सन्दर्भसे अलग करके उनका गलत उपयोग किया है। मैंने अपने अनशनको दूषित इसलिए नहीं

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० ९७।
२ और ३. देखिए खण्ड ६९, पृ० २९३।

कहा था कि वह आरम्भसे ही बुरा था, वल्कि इसलिए कि मैंने अधीश्वरी सत्ता द्वारा हस्तक्षेप किये जाने की माँग की थी। मैंने माना है कि आपको इस लेखका पता नहीं था। कितना अच्छा होता अगर आप इसे पढ़ पाते! वहरहाल, क्या मैं आशा करूँ कि आप अपनी गलतीको दुरुस्त कर लेंगे? जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, राजकोट की घटना मेरे जीवनके सबसे सुखद प्रसंगोंमें से है, क्योंकि ईश्वरने मुझे अपनी गलती स्वीकार करने और पंच-फैसलेके फलका त्याग करके उस गलतीको दूर करने का साहस दिया। उस गलतीको दूर करने से मैं पहलेसे अधिक समर्थ हो गया।

> १२. मुझे मानना होगा कि जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, यह बात शिष्टता की पाश्चात्य धारणाओंके सर्वथा प्रतिकूल है कि किसी विरोधीकी दयालुता, उदारता और अनुकम्पाकी भावनाओंसे अनुचित लाभ उठाया जाये, या केवल किसी दुनियावी उद्देश्यकी खातिर जनताकी भावनाओंसे अनुचित लाभ उठाने के लिए अपने जीवन-जैसी पवित्र धरोहरके साथ खिलवाड़ की जाये।

जिस विषयसे आप मेरी अपेक्षा कही अधिक परिचित है उसके वारेमें कुछ कहने में मुझे अत्यन्त सावधानी वरतनी होगी। फिर भी मैं आपको स्वर्गीय मैकस्वीनी[1] के ऐतिहासिक अनशनकी याद दिलाता हूँ। मुझे मालूम है कि ब्रिटिश सरकारने उन्हें जेलमें मर जाने दिया। परन्तु आयरलैण्डके लोगोंने उन्हें एक सूरमा और शहीद माना है। एडवर्ड टॉमसन अपनी पुस्तक 'यू हेव लिव्ड थ्रु ऑल दिस' में कहते हैं कि स्वर्गीय श्री एस्क्विथने ब्रिटिश सरकारकी कार्रवाईको "पहले दर्जेकी भूल" वताया था। लेखक आगे कहते हैं:

> उसे तिल-तिल करके मर जाने दिया गया, जब कि दुनिया प्रशंसा और सहानुभूतिके उद्रेकके साथ इस घटनाको देख रही थी, और असंख्य ब्रिटिश नर-नारी अपनी सरकारसे विनती कर रहे थे कि वह ऐसी मूर्खता न करे।

तो क्या यह वात शिष्टताकी पाश्चात्य धारणाओंके प्रतिकूल है कि किसी विरोधीकी दयालुता, उदारता और अनुकम्पाकी भावनाओंसे (यदि आपके ही शब्दोंका प्रयोग किया जाये तो) लाभ उठाया जाये? यह अच्छा है कि गुप्त या प्रकट रूपसे विरोधीकी जान ले ली जाये, या यह अच्छा है कि उसमें कोमल भावनाओंका होना स्वीकार करके उन्हें जगाने के लिए अनशन आदि किया जाये? फिर, यह अच्छा है कि अनशन या आत्म-वलिदानके किसी और ढंगसे अपने जीवनसे खिलवाड़ की जाये या यह अच्छा है कि विरोधी और उसके आश्रितोंका अन्त करने की कोशिश करके जीवनसे खिलवाड़ की जाये?

> १३. उनके कहने का मतलब है: 'आप कहते हैं कि सरकार सही है और कांग्रेस गलतीपर है। मैं कहता हूँ कि कांग्रेस सही है और सरकार गलतीपर है। साबित करने की जिम्मेवारी मैं आपपर डालता हूँ। मैं ही

१. टेरेंस मैक्स्वीनी (१८७९-१९२०), आयरलैण्डके राष्ट्रीय नेता। लन्दनकी एक जेलमें अनशनसे उनकी मृत्यु हुई थी।

> एकमात्र व्यक्ति हूँ जिसे कायल करने की जरूरत है। या तो आप अपनी गलती स्वीकार करें या अपनी दलीलें मेरे सामने रखें और मुझे एकमात्र निर्णायक बनायें। . . .' मुझे तो श्री गांधीकी माँग ऐसी लगती है मानो कोई मित्र-राष्ट्रोंसे कहे कि वर्तमान युद्धके लिए जिम्मेवारीका फैसला करने के लिए हिटलरको नियुक्त किया जाये। इस देशका यह रिवाज नहीं है कि अभियुक्तको अपने मामलेका फैसला करने के लिए जज बनाया जाये।

यह तो वाइसरायके नाम मेरे पत्रोंको अनुचित ढंगसे विकृत करके पेश करने वाली बात हुई। मैंने जो कहा था उसका आशय यह था: 'आपने मुझे आपको अपना मित्र समझने की छूट दी। मैं अपने अधिकारोंकी दुहाई देकर अपने पर मुकदमा चलाये जाने की माँग नही करना चाहता। आप मुझपर इल्जाम लगाते हैं कि मैंने गलती की है। इसके विपरीत, मेरा दावा है कि आपकी सरकार गलतीपर है। चूँकि आप अपनी सरकारकी गलती नही मानते, इसलिए मेरे प्रति आपका कर्त्तव्य है कि मुझे बतायें कि मैंने कहाँ गलती की है, क्योंकि मुझे मालूम नही कि मैंने क्या गलती की है। अगर आप मुझे मेरे अपराधका कायल कर दें तो मैं पर्याप्त परिशोध करूँगा।' आपने मेरी मामूली-सी प्रार्थनाको मेरे ही विरुद्ध इस्तेमाल करके मेरी तुलना एक ऐसे काल्पनिक हिटलरसे की है जिसे अपने मामलेका आप फैसला करने के लिए नियुक्त किया गया हो। अगर आप मेरे पत्रोंका वह अर्थ नहीं स्वीकार करते जो मैं बता रहा हूँ, तो क्या मैं यह माँग नही कर सकता कि 'इन परस्पर विरोधी अर्थोंकी जाँच एक निष्पक्ष न्यायाधीश द्वारा की जाये?' यदि मैं उस कहानीकी याद दिलाऊँ जिसमें भेड़िया हमेशा सच्चाईपर होता था और मेमना हमेशा गलतीपर तो क्या यह अरुचिकर दृष्टान्त होगा?

> १४. श्री गांधी एक खुले विद्रोहके नेता हैं। . . . जबतक वे खुल्लम-खुल्ला विद्रोही रहेंगे तबतक वे उस अधिकार (सुनवाईके अधिकार) से वंचित रहेंगे। अब तो वे अपने तरीकेकी सफलताके आधारपर ही काम करने का दावा कर सकते है, अन्यथा नहीं। वे जिस कानूनसे इनकार करते हैं, उसीके संरक्षणमें वे सार्वजनिक जीवनमें भाग नहीं ले सकते। यह नहीं हो सकता कि वे नागरिक तो हों पर शासनके मातहत न हों।

आपने यह सच ही कहा है कि मैं खुले विद्रोहका नेता हूँ, यद्यपि आप यह महत्त्वपूर्ण बात कहना भूल गये कि विद्रोह सर्वथा अहिंसात्मक है। यह भूल उसी तरहकी है जैसे कि कोई मूसाके दस आदेशोंमें से 'मत' शब्द निकाल दे, और हत्या, चोरी आदिका समर्थन करने के लिए उनका हवाला दे। आप इस शब्दको बेशक महत्त्व न दें या उसकी चाहे जैसी व्याख्या करके उसे खारिज कर दें। परन्तु जब आप किसीके बयानका उद्धरण दे रहे हो तो आपको उसमें से कोई शब्द नही हटाने चाहिए, खासकर ऐसे शब्द जिनके बिना मामलेका रंग ही बदल जाये। मैंने बहुतेरे अवसरोंपर — दूसरे गोलमेज सम्मेलनके अवसरपर[1] लन्दन जाकर भी — यह ऐलान

१. सितम्बरसे दिसम्बर १९३१ तक; देखिए खण्ड ४८।

किया कि मैं खुल्लमखुल्ला विद्रोही हूँ। परन्तु आपने मुझे जिस तरह अभिशप्त व्यक्ति घोषित किया है उस तरह पहले किसीने नही किया था। शायद आपको वह समय याद होगा जब स्वर्गीय लॉर्ड रेडिंग एक गोलमेज सम्मेलन करने को तैयार थे, जिसमें मुझे भी उपस्थित होना था, हालाँकि मैं सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलनका नेतृत्व कर रहा था।[1] सम्मेलन नही बुलाया गया, क्योंकि मैंने आग्रह किया कि अली भाइयोंको, जो उस समय जेलमें थे, रिहा कर दिया जाये। मुझे किशोरावस्थामें जो ब्रिटिश इतिहास पढ़ाया गया था उसमें लिखा था कि विद्रोह करनेवाले वाट टाइलर[2] और जॉन हैम्पडन[3] सूरमा थे। हालमें ब्रिटिश सरकारने आयरलैण्डके विद्रोहियोके साथ समझौतेकी बातचीत की, जब कि उनके हाथ खूनसे रंगे थे। फिर मेरा बहिष्कार क्यों किया जाये, जब कि मेरा विद्रोह सर्वथा अनपकारी है और हिंसासे मेरा कोई वास्ता नही?

यद्यपि मेरा यह दावा सही है कि आपने एक अनोखे सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है, फिर भी मैं मानता हूँ कि आपका यह कथन बिल्कुल ठीक है कि "वे अपने तरीकेकी सफलताके आधारपर ही काम करने का दावा कर सकते है, अन्यथा नही।" मेरा तरीका सत्य और अहिंसापर आधारित है, इसलिए जिस हदतक वह बरता जाये उस हदतक सदा सफल होता है। अतः मैं सदा और केवल अपने तरीकेकी सफलताके आधारपर ही काम करता हूँ, और उसी हदतक काम करता हूँ जिस हदतक मैं, अपनी समझसे, अपने व्यक्तित्वमें उस तरीकेके बुनियादी तत्त्वोंको ठीक-ठीक उतार पाता हूँ।

जिस क्षण मैं सत्याग्रही बना उसी क्षण मैं शासनका मातहत न रहा। परन्तु इससे मेरी नागरिकताका कभी अन्त नहीं हुआ। एक नागरिक स्वेच्छासे कानूनका पालन करता है, न कि मजबूरीसे या कानून भंग करने के दण्डके भयसे। जब वह जरूरी समझता है, वह कानूनको भंग करता है और दण्डका स्वागत करता है। इससे उस सजामें जो तीक्ष्णता, अथवा बेइज्जती समझी जाती है, वह नहीं रहती।

> **१५. प्रकाशित पत्रोंमें से कुछमें श्री गांधीने वाइसरायसे भेंटके लिए इजाजत माँगनेके अपने इरादेको बड़ा महत्त्व दिया है। परन्तु कांग्रेसका प्रस्ताव और श्री गांधीके अपने शब्द "करो या मरो" तो ज्योंके-त्यों कायम थे। उनके अनशनके विषयपर जारी की गई सरकारी विज्ञप्तिमें जनताको श्री गांधीके इस बयानकी[4] याद दिलाई गई है कि प्रस्तावमें इस स्थितिसे पीछे हटने या बातचीत करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह गई है। . . . मैं पुनः श्री गांधी के अपने शब्द उद्धृत करता हूँ:**

१. दिसम्बर, १९२१ में; देखिए खण्ड २२।

२. इंग्लैण्डमें किसान-विद्रोहके नेता, जिनकी १३८१ में हत्या कर दी गई।

३. इंग्लैण्डके संसदीय नेता (१५९४-१६४३), जिनके नेतृत्वमें चार्ल्स प्रथम द्वारा संसदीय अनुमतिके बिना लगाये गये कर का जन-विरोध किया गया था।

४. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३२९।

"आपमें से हर स्त्री-पुरुषको इस क्षणसे अपने-आपको आजाद समझना चाहिए, और यों आचरण करना चाहिए मानो आप आजाद हैं और इस साम्राज्यवादके शिकंजेसे छूट गये हैं।" अब इस बयानको सुनिए :

"आप विश्वास रखिए कि मैं मन्त्रिपदों आदिके लिए वाइसरायसे कोई सौदा करनेवाला नहीं हूँ। मैं पूर्ण स्वतन्त्रताके सिवाय किसी चीजसे सन्तुष्ट होनेवाला भी नहीं। करो या मरो। या तो हम भारतको आजाद करेंगे या आजादीकी कोशिशमें प्राण दे देंगे।" यह खुला विद्रोह है।

आपने १४ जुलाईको अखबारोंके लिए दिये गये तथा १९ जुलाईके 'हरिजन' में छपे मेरे बयानका उद्धरण देते हुए जो भारी गलती की है, सबसे पहले मैं उसको दुरुस्त करना चाहता हूँ। आपके उद्धरणके अनुसार मैंने कहा, "प्रस्तावमें इस स्थिति-से पीछे हटने या बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नही रह गई है।" ठीक उद्धरण यह है, "हिन्दुस्तान छोड़कर जाने के प्रस्तावमें समझौतेकी बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नही है।" आप मानेंगे कि दोनों उद्धरणोंमें भारी अन्तर है। गलत उद्धरण के अलावा आपने 'हरिजन' के लगभग तीन कॉलममें छपे मेरे बयानमें से वे सब चीजें निकाल दी हैं जिनमें मेरा आशय विस्तारसे समझाया गया था और यह दिखाया गया था कि मैं कितनी सावधानीसे काम कर रहा हूँ। मैं उस बयानमें से कुछ वाक्य लेता हूँ।

> यह हो सकता है कि अंग्रेज हिन्दुस्तानसे हटने के बारेमें वार्त्ता चलायें। अगर उन्होंने ऐसा किया तो वह उनके लिए शोभाकी बात होगी। उस हालतमें हिन्दुस्तान छोड़कर जाने का मुद्दा मुख्य मुद्दा नहीं रहेगा। अगर ब्रिटेन, विभिन्न पक्षोंका कोई खयाल किये बिना, हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको मंजूर करने की बुद्धिमत्ता दिखाये, भले ही देरसे ही सही, तो सभी कुछ हो सकता है। लेकिन जिस मुद्देपर मैं जोर देना चाहता हूँ वह तो यह है।

इसके बाद वह वाक्य आता है जिसे आपने गलत उद्धृत किया। उसके बाद आता है :

> या तो वे हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता स्वीकार करें, या न करें। स्वीकृतिके बाद बहुत-सी बातें हो सकती हैं। क्योंकि अपने इसी कार्य द्वारा ब्रिटिश प्रतिनिधि पूरी परिस्थिति बदल चुके होंगे, और देशमें लोगोंकी उस आशाको फिरसे जिला चुके होंगे जो न जाने कितनी बार चूर-चूर की गई है। इसलिए जब भी ब्रिटिश जनताकी ओरसे वह महान् कार्य किया जायेगा, वह दिन हिन्दुस्तान और संसारके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायेगा। और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, युद्धके भविष्यपर उसका गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

इस पूर्णतर उद्धरणसे आपको पता चलेगा कि जो बात भी की जा रही थी, विजयको निश्चित बनाने के लिए और जापानी हमलेको रोकने के लिए की जा रही थी। आप मेरी बुद्धिमत्ताको चाहे स्वीकार न करें, पर आपका मेरी नेकनीयतीपर शक करना ठीक नही है।

यद्यपि मेरे पास अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने दिये गये अपने भाषणोंकी अक्षरश: रिपोर्ट नहीं है, फिर भी लगभग पूरे-पूरे नोट तो है ही। मैं स्वीकार करता हूँ कि आपने जो उद्धरण दिये है वे ठीक हैं। अगर आप इस बातको ध्यानमें रखें कि जो-कुछ भी कहा गया था, सदा अहिंसाकी पृष्ठभूमिमें ही कहा गया था, तो मेरे बयान आपत्तिजनक नही रहेंगे। "करो या मरो" का साफ यही मतलब है कि हिदायतोंपर अमल करके अपना कर्त्तव्य निभाओ और अगर जरूरी हो तो उसके लिए अपनी जान भी दे दो।

लोगोंसे मैंने जो यह अनुरोध[1] किया था कि वे अपने-आपको स्वतन्त्र समझें उसके सम्बन्धमें मेरा नोट इस प्रकार है:

> वास्तविक संघर्ष इस क्षण नहीं शुरू हो रहा है। आपने अपने सारे अधिकार मुझे सौंप दिये है। अब मैं वाइसरायसे भेंट करने जाऊँगा और उनसे कांग्रेसकी माँग स्वीकार करने का अनुरोध करूँगा। इस काममें दो-तीन सप्ताह लग जाने की सम्भावना है। इस बीच आप क्या करेंगे? इस अवधिके लिए क्या कार्यक्रम है, जिसमें सब हिस्सा ले सकते है? जैसा कि आप जानते हैं, मुझे सबसे पहले चरखेका खयाल आता है। मैंने मौलाना साहबको भी यही जवाब दिया था। वे चरखेकी बात नहीं मानते थे, हालाँकि बादमें इसका महत्त्व उनकी समझमें आ गया। चौदह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम तो आपके सामने है ही, जिसपर कि आप अमल कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आपको क्या करना होगा? मैं आपको बताता हूँ। आपमें से हर स्त्री-पुरुषको इस क्षणसे अपनेको आजाद समझना चाहिए, और यों आचरण करना चाहिए मानो आप आजाद हैं, और इस साम्राज्यवादके शिकंजेसे छूट गये है। मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ उसका मतलब अपने-आपको धोखा देना नहीं है। यह तो स्वतन्त्रताका सार है। गुलामकी बेड़ियाँ उसी क्षण टूट जाती है जब वह अपने-आपको आजाद समझने लगता है। तब वह अपने मालिकसे साफ कहेगा: 'इस क्षणतक तो मैं आपका गुलाम था लेकिन अब मैं गुलाम नहीं रहा। अगर आप चाहें तो मुझे मार सकते हैं, लेकिन अगर आप मुझे जिन्दा रहने दें तो मैं आपसे कहना चाहूँगा कि अगर आप अपनी मर्जीसे मुझे बन्धन-मुक्त कर दें तो मैं आपसे और कुछ नहीं माँगूंगा। आप मुझे रोटी-कपड़ा देते रहे थे, हालाँकि मैं खुद अपनी मेहनतसे रोटी-कपड़ेका प्रबन्ध कर सकता था। अबतक तो मैं भोजन-वस्त्रके लिए ईश्वरके भरोसे रहने के बजाय आपके भरोसे रहता था। लेकिन अब भगवानने मेरे अन्दर आजादीकी अभिलाषा पैदा कर दी है। आज मैं आजाद आदमी हूँ और आगेसे आपके भरोसे नहीं रहूँगा।'

"भारत छोड़ो" के नारेसे आपको जो नाराजगी है उसका खयाल न करते हुए आप अपने दिलसे पूछिए कि क्या अपने सन्दर्भमें रखा हुआ यह उद्धरण किसी प्रकार आपत्तिजनक है। क्या यह ठीक नहीं है कि स्वतन्त्रताका अभिलाषी मनुष्य अपने

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४३३-३४।

अन्दर पहले स्वतन्त्रताकी भावनाको पैदा करे और तब परिणामोंकी परवाह न करते हुए उस भावनाके अनुसार आचरण करे?

> १६. यह शान्तिमय अनुरोधका तरीका नहीं है कि जिसे आप कायल करना चाहते हों उसके पास आप ऐसा प्रस्ताव लेकर जायें जिसमें बड़े पैमाने-पर विद्रोह करने की घोषणा की गई हो। बातचीत करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि दोनों पक्ष पूर्व-निर्णय-रहित हों और कोई किसीपर ताकतका दबाव न डाले। यह नियम हर परिस्थितिमें लागू होता है। लेकिन शासनाधीन व्यक्ति और उसपर शासन करनेवाले राज्यके बीच तो यह नियम और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। मातहत व्यक्ति राज्यसे बराबरीके आधारपर बातचीत नहीं कर सकता, और इसका औचित्य तो और भी कम है कि वह साफ धमकी देता हुआ बातचीतके लिए राज्यके पास जाये।

सबसे पहले मैं आपकी एक गलतीको दुरुस्त करना चाहता हूँ। प्रस्तावमें बड़े पैमानेपर विद्रोह करने की "घोषणा" नही की गई थी। उसमें तो केवल इस बातकी अनुमति दी गई थी कि "यथासम्भव बड़ेसे-बड़े पैमानेपर एक अहिंसक जन-आन्दोलन" छेड़ा जा सकता है "ताकि देश पिछले बाईस सालोंके शान्तिपूर्ण संचित अपनी सम्पूर्ण अहिंसात्मक शक्तिको काममें ला सके।" "जो कदम उठाये जाने थे उनमें राष्ट्रका नेतृत्व" मुझे करना था। जिस अनुच्छेदमें बड़े पैमानेपर जन-आन्दोलन छेड़ने की मंजूरी दी गई थी उसमें "विश्व-स्वतन्त्रताके हितके लिए ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रोंके नाम अपील" भी की गई थी।

बातचीतके लिए निस्सन्देह यह आवश्यक होना चाहिए कि दोनों पक्ष पूर्व-निर्णय-रहित हों और उनमें से कोई दूसरेपर "ताकतका दबाव न डाले।" विचाराधीन मामलेमें वास्तविक स्थिति यह है कि एक पक्षके पास तो बेहद ताकत है और दूसरेके पास बिलकुल नही है। जहाँतक पूर्व-निर्णयसे रहित होने की बात है, कांग्रेसने कोई पूर्व-निर्णय नही कर रखा था, सिवाय तुरन्त आजादी हासिल करने के। बस इस एक शर्तके अलावा बातचीतके लिए पूरी-पूरी स्वतन्त्रता है।

आपने शासनाधीन व्यक्ति और राज्यकी जो बात कही है, मेरे खयालमें वह "भारत छोड़ो" के नारेका जवाब है। नारा तो मूलतः वैध है और शासनाधीन व्यक्ति और राज्यका फार्मूला इतना दकियानूस है कि इसका वस्तुतः कोई मतलब नही हो सकता। चूँकि कांग्रेसने भारतकी अधीनताको एक असह्य लांछन माना है, इसलिए वह उसका विरोध करती है। एक सुव्यवस्थित राज्य जनताके अधीन होता है। ऐसा राज्य आसमानसे उतरकर जनतापर लागू नहीं हो जाता, बल्कि जनता उसे बनाती और मिटाती है।

८ अगस्तके प्रस्तावमें कोई प्रकट या गुप्त धमकी नही थी। उसमें वे सीमाएँ निर्धारित की गई थी जिनके भीतर बातचीत की जा सकती थी, और उसमें अपनी बात मनवाने के लिए किसी तरहकी "ताकत" के प्रयोगकी अर्थात् हिंसाकी बात नही थी। उसमें स्वयं कष्ट झेलने की बात कही गई थी। आपने इस बातकी कद्र करने के

बजाय कि कांग्रेसने अपनी सारी योजना प्रकट कर दी थी, गलत निष्कर्ष निकालकर सारे आन्दोलनका बुरा मतलब लगाया है। गत ८ अगस्तके बाद कांग्रेसियोने हिंसाकी जो भी कार्रवाई की हो, वह बिलकुल अनधिकृत थी, जैसा कि स्वयं प्रस्तावसे ही सर्वथा स्पष्ट है। पता नही क्यों, सरकारने मुझे हिदायतें जारी करने का जरा भी समय न दिया। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीका अधिवेशन ८ अगस्तको आधी रातके बाद समाप्त हुआ। ९ अगस्तको दिन निकलने से काफी पहले पुलिस कमिश्नर मुझे पकड़कर ले गये और उन्होंने मुझे बताया तक नही कि मैंने क्या जुर्म किया है। कार्य-समितिके सदस्य तथा जो और मुख्य कांग्रेसी बम्बईमें थे, उनके साथ भी यही हुआ। क्या यह अत्युक्ति है कि सरकारने स्वयं हिंसाको निमन्त्रण दिया और वह नही चाहती थी कि आन्दोलन शान्तिपूर्ण ढंगसे चले?

अब मैं आपको खुले विद्रोहके एक अवसरकी याद दिलाता हूँ, जब आपने महत्त्वपूर्ण काम किया था। मेरा अभिप्राय सरदार वल्लभभाई पटेलके नेतृत्वमें चलाये गये प्रसिद्ध बारडोली सत्याग्रहसे[1] है। वे सविनय अवज्ञाके अभियानका संचालन कर रहे थे। अभियान स्पष्टतः ऐसी अवस्थामें पहुँच गया था कि बम्बईके तत्कालीन गवर्नर ने महसूस किया कि अब संघर्षका शान्तिपूर्ण अन्त होना चाहिए। आपको याद होगा कि तत्कालीन गवर्नर महोदय और सरदारकी भेंटके परिणामस्वरूप एक समिति नियुक्त की गई थी, जिसके आप भी एक प्रतिष्ठित सदस्य थे। और समितिकी जाँचका निष्कर्ष प्रायः सत्याग्रहियोके पक्षमें था। आप चाहें तो निस्सन्देह कह सकते हैं कि गवर्नरने एक विद्रोहीके साथ समझौतेकी बातचीत करने में गलती की और आपने भी नियुक्ति स्वीकार करके गलती की। तनिक विपरीत स्थितिका खयाल कीजिए — अगर गवर्नरने समिति नियुक्त करने के बजाय घोर दमन करने की कोशिश की होती, तो क्या होता? अगर लोग आपेसे बाहर हो जाते और हिंसाकी कार्रवाइयाँ शुरू हो जाती तो क्या सरकारको जिम्मेवार न ठहराया जाता?

> १७. सरकार निश्चय ही श्री गांधीको हालकी उन घटनाओंके लिए जिम्मेदार समझती है जिनसे भारतकी शान्ति बुरी तरह भंग हुई है, बेगुनाह लोगोंके माल और जानका भारी नुकसान हुआ है और देशके सामने एक भारी खतरा उपस्थित हो गया है। मैं यह नहीं कहता कि हिंसाकी कार्रवाइयोंमें उनकी व्यक्तिगत भागीदारी थी . . . परन्तु उन्होंने बारूदकी उस लड़ीमें, जो उन्होंने और उनके साथियोंने बड़ी होशियारीसे बिछाई थी, आग लगाई। वे समयसे पहले ही ऐसा करने पर मजबूर हो गये — इसमें उनका दोष नहीं, बल्कि हमारा सौभाग्य था। यह वह तरीका था जिससे वे अपना मतलब निकालना चाहते थे। अब, जब कि उनका तरीका असफल रहा है, वे शायद इससे इनकार करना चाहेंगे, लेकिन फिर भी जिम्मेवारी उनकी ही है। . . . अगर श्री गांधी अपने-आपको उनसे अलग करना चाहते तो वे कार्य-समितिके सदस्योंसे सलाह किये बिना अपनी बात कह सकते थे। तो क्या वे कांग्रेसके विद्रोहको

१. १२ फरवरीसे ६ अगस्त, १९२८ तक; देखिए खण्ड ३६ और ३७।

> मंसूख किये बिना, परिशोध किये बिना, भविष्यके लिए कोई आश्वासनतक दिये बिना, यह दावा कर सकते हैं कि वे — जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो, इस तरह — किसी भी क्षण देशके सार्वजनिक जीवनमें फिर प्रवेश करेंगे और सरकार तथा समाज उनका एक अच्छे नागरिकके रूपमें स्वागत करेगा?

आपने जिन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओंका वर्णन किया है उनके लिए मैं कोई जिम्मेवारी नहीं स्वीकार कर सकता। मुझे इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं है कि इतिहास में यह बात अंकित की जायेगी कि उन घटनाओंकी सारी जिम्मेवारी सरकारपर थी। वस्तुस्थिति ऐसी थी कि मैं बारूदकी लड़ीमें आग लगा ही नहीं सकता था, क्योंकि अव्वल तो वह कभी बिछाई ही नहीं गई थी। और अगर बारूदी लड़ी बिछाई नहीं गई थी तो समयसे पहले आग लगाने का सवाल नहीं उठता। जनताका नेताओं से वंचित किया जाना आप "हमारा सौभाग्य" समझ सकते हैं। मैं इसे इससे सम्बन्धित सभी लोगोंका परम दुर्भाग्य मानता हूँ। मैंने जो-कुछ किया या करने का इरादा किया उससे मैं बिलकुल इनकार नहीं करना चाहता। मुझे तनिक भी पश्चात्ताप नहीं हो रहा, क्योंकि मैं नहीं समझता कि मैंने किसी व्यक्तिके साथ कोई अन्याय किया है। मैंने असंख्य बार कहा है कि मैं किसी भी रूप या शक्लमें हिंसासे नफरत करता हूँ। लेकिन मैं उन घटनाओंके बारेमें कोई राय नहीं दे सकता जिनका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है। कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंसे सलाह करने की इजाजत माँगने में मेरा उद्देश्य यह कदापि नहीं था कि उनसे मिलकर ही मैं यह कह सकता था कि हिंसाकी कार्रवाइयोंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने कहा था कि अगर मुझसे समितिकी ओरसे कोई सुझाव रखने की अपेक्षा की जाती है तो मुझे उससे मिलने की इजाजत दी जाये। मैं कांग्रेसके विद्रोहको मंसूख नहीं कर सकता, क्योंकि वह बिलकुल अहिंसात्मक है। मुझे उसपर गर्व है। मुझे कोई परिशोध नहीं करना है, क्योंकि मुझे यह एहसास नहीं है कि मैंने कोई जुर्म किया है, और चूँकि मैं अपने-आपको निरपराध समझता हूँ, इसलिए भविष्यके बारेमें आश्वासन देने का सवाल ही नहीं उठता। देशके सार्वजनिक जीवनमें फिरसे प्रवेश करने या सरकार और समाज द्वारा एक अच्छे नागरिकके रूपमें स्वीकार किये जाने का सवाल भी नहीं उठता। मैं बन्दी रहकर ही बिलकुल सन्तुष्ट हूँ। मैंने देशके सार्वजनिक जीवनमें जबरदस्ती घुसने की कभी कोशिश नहीं की और न कभी अपने-आपको सरकारके ऊपर ही थोपा है। मैं तो भारतका एक विनीत सेवक हूँ। मुझे जिस एकमात्र प्रमाणपत्रकी जरूरत है वह मेरे भीतरकी आवाजका प्रमाणपत्र है। आपने शायद अब महसूस कर लिया होगा कि आपने अपने श्रोताओंके सामने तथ्य नहीं, बल्कि गुस्सेमें बनी अपनी राय प्रस्तुत की थी।

अन्तमें मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैंने यह पत्र क्यों लिखा है। आपके गुस्सेका जवाब गुस्सेसे देने के लिए नहीं। मैंने इसे इस आशासे लिखा है कि आप मेरे शब्दोंकी तहमें छिपी मेरी ईमानदारीको समझेंगे। मैं किसी भी व्यक्तिके हृदयका — यहाँतक कि एक सख्तसे-सख्त अफसरके हृदयका भी — परिवर्तन करने के बारेमें

निराश नही होता। जनरल स्मट्सका हृदय-परिवर्तन हुआ था, या कहिए, उनका समाधान हो गया था, जैसा कि उन्होने अपने और मेरे बीच १९१४ में हुए समझौतेके अनुसार राहतका विधेयक पेश करते समय भाषण देते हुए ऐलान किया था। यह बात कि उन्होंने मेरी या वहाँ बसे हिन्दुस्तानियोंकी वह आशा पूरी नही की है जो समझौतेसे पैदा हुई थी, खेदजनक है, लेकिन हमारे वर्त्तमान उद्देश्यकी दृष्टिसे अप्रासंगिक है। मै ऐसे अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। मै नही कहता कि लोगोंको कायल करने या उनका समाधान करने का श्रेय मुझे मिलना चाहिए। वह तो मेरे माध्यमसे व्यक्त होनेवाले सत्य और अहिंसाकी क्रियाशीलताका ही परिणाम था। मेरा यह विश्वास अथवा दर्शन-सिद्धान्त है कि सब प्राणी वस्तुत: एक है, और सब मनुष्य जानते हुए या न जानते हुए उस एकताको साकार करने की चेष्टा कर रहे है। इस विश्वासके लिए एक जीवन्त ईश्वरमें — जो हमारे भाग्यका अन्तिम निर्णायक है — जीवन्त आस्थाकी आवश्यकता है। उसकी मर्जीके बिना तिनका भी नही हिलता। मेरे विश्वासका तकाजा है कि मै आपको भी कायल करने के विषयमें — यद्यपि आपके भाषणसे इसकी कोई आशा नही बनती — निराश न होऊँ। यदि ईश्वरकी ऐसी इच्छा है, तो वह शायद मेरे किसी शब्दमें ऐसी शक्ति भर देगा जिससे आपका हृदय द्रवित हो जायेगा। मेरा काम तो कोशिश करना है। परिणाम ईश्वरके अधीन है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

माननीय सर रेजिनल्ड मैक्सवेल
गृह-सदस्य
भारत सरकार
नई दिल्ली

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ५८-७०। **कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी,** पृ० १७-२४ भी

१. इसके उत्तरमें १७ जूनको रेजिनल्ड मैक्सवेलने लिखा: "देखता हूँ, कांग्रेसके ८ अगस्तके प्रस्ताव और उसके बाद होनेवाले उपद्रवोंकी जिम्मेवारीके बारेमें अब भी आपकी स्थिति वही है जो आपने वाइसराय महोदयके नाम अपने पत्रोंमें बताई है। आप जानते ही हैं कि इन घटनाओंका जो मतलब लगाने की कोशिश आपने की है उस मतलबको सरकारने कभी स्वीकार नहीं किया है। जबतक यह बुनियादी मतभेद कायम है, मुझे खेदपूर्वक यही निष्कर्ष व्यक्त करना पड़ेगा कि जो अन्य मुद्दे उठाये गये हैं उनके बारेमें लाभदायक चर्चाके लिए पर्याप्त दृष्टि-साम्य नहीं है।"

२८. पत्र : अरदेशिर ईदुलजी केटलीको

२६ मई, १९४३

भाई खानबहादुर,

४ तारीखको मैंने आपको केन्द्रीय सरकारके नाम लिखा एक पत्र दिया था। उसके साथ एक पत्र[1] कायदे-आजम जिन्ना साहबके नाम भी था। दूसरा पत्र मैंने आपको १५ तारीखको दिया था, जिसके साथ लॉर्ड सैम्युअलके लिए एक पत्र था। कृपया पूछताछ करके मुझे यह बतायें कि ये दोनों पत्र उनके ठिकानोंपर पहुँचे या नहीं तथा कायदे-आजम और लॉर्ड सैम्युअलके नाम लिखे पत्र उन्हें भेजे गये या नहीं।

आपका,

मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३०२) से

२९. पत्र : सर रिचर्ड टॉटनमको

नजरबन्दी कैम्प

२७ मई, १९४३

प्रिय सर रिचर्ड टॉटनम,

मुझे कल शाम आपका चालू महीनेकी २४ तारीखका पत्र[2] मिला, जिसमें कायदे-आजम जिन्नाके नाम मेरा पत्र भिजवाने के बारेमें मेरी प्रार्थनाको अस्वीकार करने की सूचना दी गई है। मैंने अभी कल ही इस कैम्पके अधीक्षकको पत्र लिखकर[3] उनसे कहा था कि कृपया पता लगाइए, क्या कायदे-आजम जिन्नाके नाम मेरा पत्र और उसके बाद परम माननीय लॉर्ड सैम्युअलके नाम चालू महीनेकी १५ तारीखका मेरा पत्र उन्हें भिजवा दिये गये हैं।

मुझे सरकारके फैसलेपर अफसोस है। कारण, कायदे-आजमके नाम मैंने अपना पत्र इसलिए लिखा था कि उन्होंने सार्वजनिक रूपसे मुझसे अनुरोध किया था और मैं लिखने के लिए विशेषतः इसलिए प्रोत्साहित हुआ कि उनके शब्दोंसे मुझे लगा कि अगर मैं उन्हें लिखूं, तो मेरा पत्र उन्हें भिजवा दिया जायेगा। जनता भी चाहती है कि कायदे-आजमकी और मेरी मुलाकात हो, या कमसे-कम हमारा परस्पर सम्पर्क स्थापित हो। मैं कायदे-आजमसे मिलने के लिए सदा उत्सुक रहा हूँ — इस खयालसे कि शायद हम साम्प्रदायिक समस्याका कोई ऐसा हल ढूंढ़ सकें जो आम तौरपर स्वीकार्य

१. देखिए पृ० ७१-७२।
२. यह पत्र गृह-सचिव ई० कॉनरन-स्मिथने लिखा था; देखिए पृ० ७३, पा० टि० १।
३. देखिए पिछला शीर्षक।

हो। अतः वर्त्तमान कठिनाई मेरे लिए उतनी नहीं है जितनी कि जनताके लिए है। सत्याग्रही होने के नाते मुझे सरकार द्वारा मुझपर लगाई गई पाबन्दियोंको अपनी कठिनाइयाँ नहीं समझना चाहिए। जैसा कि सरकारको मालूम है, मैंने अपने-आपको अपने सम्बन्धियोंको पत्र लिखने की खुशीसे भी वंचित कर रखा है, क्योंकि मुझे सहयोगियोंको जो कि एक तरह मेरे लिए अपने सम्बन्धियोंसे भी बढ़कर है, पत्र लिखने की इजाजत नहीं है।

आपने मुझे जिस प्रस्तावित विज्ञप्तिकी[1] अग्रिम प्रति भेजने की कृपा की है, उसमें अनेक स्थानोंपर संशोधनकी आवश्यकता है। कारण, वर्त्तमान रूपमें वह तथ्योंके अनुरूप नहीं है।

जहाँतक प्रस्तावित विज्ञप्तिमें उल्लिखित इस बातका सवाल है कि मुझे [कांग्रेस प्रस्तावसे] अपने को अलग कर लेना चाहिए, सरकार जानती है कि मैं अहिंसात्मक सार्वजनिक आन्दोलनको, जिसे शुरू करने के लिए गत ८ अगस्तको कांग्रेसने मुझे अधिकार दिया था, सर्वथा वैध और सरकार तथा जनता दोनोंके हितमें समझता हूँ। वस्तुस्थिति यह है कि सरकारने मुझे आन्दोलन शुरू करने का समय ही नहीं दिया। अतः जो आन्दोलन कभी शुरू ही नहीं किया गया, वह "भारतके" युद्धके प्रयत्नमें कैसे बाधा डाल सकता था? तब फिर अगर सरकार द्वारा मुख्य कांग्रेसियोंकी बड़े पैमानेपर पकड़-धकड़ की जाने से जनतामें नाराजगी फैलने के कारण कोई बाधा पड़ी हो, तो उसके लिए केवल सरकार ही जिम्मेवार है। सार्वजनिक आन्दोलनकी अनुमति, जैसा कि अनुमति देनेवाले प्रस्तावमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया था, मित्र-राष्ट्रोंके हितके समर्थनमें भारत-भरमें प्रयत्न करने के लिए ही दी गई थी। उस हितके अन्तर्गत रूस और चीनका हित भी था, जिनके लिए गत अगस्तमें भारी खतरा पैदा हो गया था और जो, मेरी रायमें, अब भी कदाचित् टला नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि यदि मैं यह कहूँ कि भारतमें जो युद्ध-प्रयत्न किया जा रहा है वह भारतकी ओरसे नहीं बल्कि विदेशी सरकारकी ओरसे किया जा रहा है, तो सरकार बुरा नहीं मानेगी। मेरा निवेदन है कि यदि सरकारने कांग्रेसके अगस्तके प्रस्तावमें अभिव्यक्त प्रार्थनाको स्वीकार किया होता, तो मानवकी स्वतन्त्रताकी लड़ाईको जीतने तथा दुनियाको फासीवाद, नाजीवाद, जापानवाद और साम्राज्यवादके अभिशापसे मुक्त कराने के लिए भारतमें अभूतपूर्व सार्वजनिक प्रयत्न हुआ होता। हो सकता है कि मेरा खयाल बिलकुल गलत हो। बहरहाल यह मेरी सोची-समझी और सच्ची राय है।

विज्ञप्तिको तथ्योंके अनुरूप बनाने के लिए मेरा यह सुझाव है कि पहले अनुच्छेदमें निम्न संशोधन किया जाये: "श्री जिन्ना" के बाद जोड़िए — "उन्होंने सार्वजनिक रूपसे श्री गांधीसे जो अनुरोध किया था कि वे उन्हें लिखकर बतायें कि वे (श्री गांधी) उनकी इच्छानुसार उनसे पत्र-व्यवहार करने या उनसे मिलने को राजी होंगे।"

१. देखिए पृ० ७३, पा० टि० १। इस विज्ञप्तिमें, जो २७ मईको जारी की गई, कहा गया था कि भारत सरकार "एक ऐसे व्यक्तिको, जिसे एक अवैध जन-आन्दोलन चलाने . . . और इस प्रकार एक नाजुक समयमें युद्ध-प्रयत्नमें बाधा पहुँचाने के आरोपमें नजरबन्द किया गया है, राजनीतिक पत्र-व्यवहार और सम्पर्ककी सुविधा देने को तैयार नहीं है। . . ."

मैं आशा करता हूँ कि मेरे निवेदनके अनुसार विज्ञप्तिके शेष भागमें भी उचित सशोधन कर दिया जायेगा।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४३३) से; सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। **गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट**, पृ० ७३-४ और **कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी**, पृ० १५-६ से भी

३०. पत्र : सर रिचर्ड टॉटनमको

२८ मई, १९४३

प्रिय सर रिचर्ड टॉटनम,

२४ तारीखके आपके पत्रका[2] जवाब[3] मैंने कल कोई एक बजे अधीक्षकको दे दिया था। वह विज्ञप्तिके प्रकाशित होने से पहले आपको मिल जाये, इस आशासे मैंने उसे लिखने और भेजने में बड़ी जल्दी की थी। इसलिए तीसरे पहर मिले समाचार-पत्रोमें जब मैंने वह विज्ञप्ति देखी और लन्दनमें उसपर हुई प्रतिक्रियाओके[4] बारेमें रायटरकी रिपोर्ट[5] पढ़ी, तो मुझे आश्चर्य भी हुआ और दु.ख भी। उस विज्ञप्तिकी एक अग्रिम प्रति मुझे भेजने का, जाहिर है, तब कोई मतलब नही था। मेरी रायमें इस विज्ञप्तिका न केवल तथ्योंसे कोई मेल नही है, बल्कि इसमें मेरे साथ अन्याय भी किया गया है। इस सिलसिलेमें मुझे कुछ हदतक राहत सिर्फ इसी तरह दी जा सकती है कि हमारे बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ है वह प्रकाशित कर दिया जाये। अत: मै उसे प्रकाशित करने की प्रार्थना करता हूँ।[6]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४३५) से; सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। **कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी**, पृ० १६; **गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट**, पृ०, ७४ से भी

१. ४ जूनको इसके उत्तरमें कॉनरन-स्मिथने गांधीजी को सूचित किया कि "भारत सरकारने इसपर विचार किया है लेकिन उसे प्रकाशित विज्ञप्तिमें कोई संशोधन करने का कारण दिखाई नहीं देता।" देखिए अगला शीर्षक भी।

२. देखिए पृ० ७३, पा० टि० १।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

४ और ५. **ट्रान्सफर ऑफ पॉवर** (जिल्द ३, पृ० १०२१-२) के अनुसार एमरीने लिनलिथगोको पत्र लिखकर विज्ञप्तिके सम्बन्धमें लन्दनके अखबारोंकी प्रतिक्रियापर सन्तोष व्यक्त किया और जिन्नाने गांधीजी के पत्रको "मुस्लिम लीगको सरकारसे उलझा देने" की चाल बताई।

६. ८ जूनको इसके उत्तरमें कॉनरन-स्मिथने बताया कि ". . . विज्ञप्तिकी अग्रिम प्रति आपके सूचनार्थ भेजी गई थी और सरकारको अफसोस है कि उसे पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने की कोई वजह दिखाई नहीं देती।"

३१. बातचीत : मीराबहनके साथ

२९ मई, १९४३

मैंने बापूजीसे पूछा कि ईश्वरके सम्बन्धमें जिन जातियोंकी कल्पना अविकसित है उन्हें हम कैसे मदद दे सकते हैं। मैंने यह भी कहा कि उनके सामने कोई रूढ़ धर्म नहीं रखा जाना चाहिए, बल्कि परमात्माके बारेमें सरल शब्दोंमें बात करनी चाहिए और इससे आगे बस उनकी सेवा करनी चाहिए और जिसका जिन आदर्शोंमें विश्वास हो उसके अनुसार प्रयत्न करना चाहिए। बापूने उत्तर दिया :

हमें परमात्माकी भी बात नही करनी चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्य स्वतः ही अपना काम करता है। सत्य, अर्थात् ईश्वर, सतत सर्वत्र उपस्थित है और सभी प्राणियोंके अन्दर अपना काम कर रहा है।[1] इसलिए हमें उनके बीच सिर्फ अपना जीवन जीना चाहिए और उनकी जरूरतोंके मुताबिक उनकी सेवा करनी चाहिए। पढ़ने-लिखने आदिका अपना अलग मूल्य है। इसलिए निरक्षरोंको वह ज्ञान देना एक ऐसी विशेष सेवा है जो हर ऐसे व्यक्तिका धर्म है जिसके पास वह ज्ञान है। बाकी तो अगर हममें सत्य है तो बिना किसी प्रयत्नके उनतक भी पहुँचेगा ही क्योंकि वह तो स्वतः ही कार्य करता है। ईश्वर अर्थात् सत्य उन सबको प्राप्त हो जाता है जो उसकी तलाश करते हैं। अगर हम उसे उन लोगोसे अधिक जानते हैं (हालाँकि हम निश्चयपूर्वक कभी भी ऐसा नही कह सकते) तो हमारी वह अधिक जानकारी उनतक भी पहुँचेगी ही।

[पुनश्च :]

तुम्हारे लिए मैंने इसकी नकल तैयार करवा ली है।[2]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१००) से

१. इसके आगेके वाक्यके एक-दो शब्द छोड़कर शेष भाग गांधीजी की लिखावटमें है।

२. देखिए अगला शीर्षक भी।

३२. बातचीत : मीराबहनके साथ

३१ मई, १९४३

हमारी बातचीतके[1] सम्बन्धमें तुमने जो-कुछ लिखा था उसे देखने पर मुझे लगा कि मै अपनी बातें अधिक संक्षिप्त और स्पष्ट रूपमें रख दूं। अब मैंने इसे सूत्र रूपमें रखा है। सच तो यह है कि पढ़ने-लिखने आदिकी पूरी कीमत मेरी समझमें कल ही आई। पहले तो मैं उनके बारेमें अक्सर उदासीनता ही प्रगट करता रहा हूँ। लेकिन कल मुझे यह भान हुआ कि पढने-लिखने का एक अनुपम स्थान और मूल्य है, और अनपढ़ जातियोंकी सेवा करने में उन्हे इनका ज्ञान कराना हमारे कर्त्तव्यका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जो पढ-लिख या जोड़-घटा नही सकता है वह तो कई प्रकारसे मूढ़ ही रह जायेगा। लेकिन इनका ज्ञान प्राप्त करके वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकास करता जायेगा। बेशक, इसका मतलब यह है कि इनका ज्ञान कराते समय हमें यह काम इस तरहसे करने की कोशिश करनी चाहिए कि उस आदमीकी ज्ञान-पिपासा तीव्र हो जाये। मेरे लिए सिर्फ आदमियोंकी गिनती करके आगे बढ़ जाने का सवाल ही नही उठता। मै चतुर्दिक विकासके लिए ज्ञान नही देता। अगर वह आदमी भौतिक रूपसे आगे बढ़ता है तो बहुत अच्छा। यद्यपि मुझे फिक्र उसके आध्यात्मिक विकासकी ही है, लेकिन उसतक मुझे भौतिक सेवाके जरिये ही पहुँचना है। उसका शरीर तो स्थूल रूपमें मौजूद है ही, लेकिन अपनी आत्माके अस्तित्वसे अभी वह बेखबर है। दिन-प्रति-दिन वह ज्यों-ज्यों मेरी भौतिक सेवाको स्वीकार करता जायेगा, उसके अन्दर मेरे जीवनके सम्बन्धमें अधिकाधिक जिज्ञासा जगती जायेगी। कालान्तरसे वह मेरे जीवनके भौतिक पक्षसे किसी श्रेष्ठ चीजको लक्ष्य करने लगेगा : कभी-कभी मैं अमुक मुद्राओमें क्यों बैठता हूँ, यदा-कदा मैं अपनी आँखें क्यों बन्द कर लेता हूँ, मै यह क्या बुदबुदाने लगता हूँ। जब अपनी जिज्ञासाके कारण वह यह पूछे कि इस सबका क्या मतलब है तब मै उसे सारी बातें समझा सकता हूँ। अब मैं जो जानकारी दूंगा उसका उसपर कैसा प्रभाव होगा, इसकी चिन्ता मुझे नहीं है। आत्म-शक्तिकी कार्य-विधिमें दखल देना मेरा काम नही है। जब मै किसी व्यक्तिके रू-ब-रू होता हूँ तब जिस अनुपातमें ईश्वरकी शक्ति मुझमें है उसी अनुपातमें वह उसतक भी पहुँचेगी।[2] प्रयोजन यह नहीं है कि मैं उसे अपना धर्म दूं। प्रयोजन यह है कि यदि मुझमें ईश्वरका निवास है और यदि मैं अपने दैनिक आचरणमें उसे वस्तुतः अभिव्यक्त करता हूँ तो उसे अपने जरिये उसके दर्शन करने का अवसर दूं।

१० जून, १९४३

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१०१) से

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. आगेका अंश गांधीजी की लिखावटमें है।

३३. पत्र : सर रिचर्ड टॉटनमको

नजरबन्दी कैम्प
१ जून, १९४३

प्रिय सर रिचर्ड टॉटनम,

परम माननीय लॉर्ड सैम्युअलके नाम मेरे पत्रके[1] बारेमें सरकारी निर्णयकी सूचना देते हुए आपका पिछली २६ ता० का पत्र[2] प्राप्त हुआ। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह कोई राजनीतिक पत्र नहीं है, बल्कि लॉर्ड-सभाके एक सदस्यसे एक शिकायत-भर है, जिसमें बताया गया है कि वे गुमराह होकर अमुक गलत-बयानियाँ कर गये है, जिससे मेरे साथ अन्याय हुआ है। सरकारी निर्णयका मतलब तो एक सजायाफ्ता कैदीको भी प्राप्त एक सामान्य अधिकारपर रोक लगाना है — यानी उसके बारेमें की गई अपवादपूर्ण गलत-बयानियोंको सुधारने के अधिकारपर। इसके अलावा मेरा कहना यह है कि कायदे-आजम जिन्नाके नाम मेरे पत्रसे[3] सम्बन्धित निर्णय परम माननीय लॉर्ड सैम्युअलके नाम मेरे इस पत्रपर तो बिलकुल लागू नहीं होता। इसलिए मैं निर्णयपर पुनर्विचार करने का अनुरोध करता हूँ।[4]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ८२-८३। कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ३१ भी

१. देखिए पृ० ७३-८१।
२. देखिए पृ० ८२, पा० टि० १।
३. देखिए पृ० ७१-७२।
४. ७ जून, १९४३ को इस पत्रकी प्राप्ति सूचित करते हुए कॉनरन-स्मिथने गांधीजीको बताया कि सरकारको अपना निर्णय बदलने की कोई सूरत दिखाई नहीं देती।

३४. पत्र : सर रेजिनल्ड मैक्सवेलको

नजरबन्दी कैम्प
२३ जून, १९४३

प्रिय सर रेजिनल्ड मैक्सवेल,

मेरे गत २१ मईके पत्रके[1] उत्तरमें इसी २१ तारीखको प्राप्त आपके १७ जूनके पत्रके[2] लिए धन्यवाद।

मैंने यह आशा नहीं की थी कि मेरे उत्तरसे हमारे बीचका बुनियादी मतभेद दूर हो जायेगा, लेकिन यह आशा जरूर की थी और अब भी करना चाहूँगा कि यह मतभेद सामने आई भूलोंकी स्वीकृति और उनके मार्जनमें बाधक नहीं होगा। मैंने सोचा था और अब भी सोचता हूँ कि मेरे पत्रमें विधान-सभामें आपके गत १५ फरवरीके भाषणकी कुछ भूलोंकी ओर ध्यान दिलाया गया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० २४

३५. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१५ जुलाई, १९४३

अतिरिक्त सचिव
गृह-विभाग
भारत सरकार
नई दिल्ली

महोदय,

मैंने भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' की एक प्रति भेजने का अनुरोध करते हुए ५ मार्चको एक पत्र[3] लिखा था, जिसके उत्तरमें १३ अप्रैलको मुझे उसकी एक प्रति प्राप्त हुई।

१. देखिए पृ० ८२-९६।
२. देखिए पृ० ९६, पा० टि० १।
३. वस्तुतः यह अनुरोध गांधीजी की ओरसे प्यारेलालने किया था; देखिए पृ० ७०।

पुस्तिकामें बहुत-से स्थानोंपर लाल स्याहीसे संशोधन किये गये हैं। इनमें से कुछ तो बहुत ध्यान देने योग्य हैं।

२. मैं मानता हूँ कि इस पुस्तिकामें सरकारने कांग्रेसपर तथा मुझपर जो आरोप लगाये हैं वे इसमें प्रकाशित सामग्रीपर ही आधारित हैं, न कि उन साक्ष्यों पर जो पुस्तिकाकी भूमिकाके अनुसार जनताके सामने प्रकट नहीं किये गये हैं।

३. पुस्तिकाकी भूमिका छोटी है तथा इसपर भारत सरकारके गृह-विभागके अतिरिक्त सचिव, सर रिचर्ड टॉटनमके हस्ताक्षर हैं। इसपर गत १३ फरवरीकी तारीख पड़ी हुई है, अर्थात् मेरे पिछले उपवासके आरम्भ होनेके तीन दिन बादकी तिथि। यह तारीख बहुत अर्थपूर्ण है। जिस पुस्तिकामें किये गये प्रहारोंका लक्ष्य मैं हूँ, उसके प्रकाशनके लिए मेरे उपवासका समय क्यों चुना गया?

४. पुस्तिकाकी भूमिका इस प्रकार आरम्भ होती है:

> **सरकारके पास कई स्रोतोंसे आई माँगोंके उत्तरमें सरकारने एक विवरण तैयार किया है. . . जिसमें ८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा जन-आन्दोलनकी मंजूरी दिये जानेके बाद होनेवाले उपद्रवोंके सम्बन्धमें श्री गांधी तथा कांग्रेस आला कमानकी जिम्मेदारीसे सम्बन्धित अनेक तथ्य . . . एकत्र किये गये हैं।**

यहाँ स्पष्ट ही एक गलत बात कही गई है। वास्तवमें उपद्रव अ० भा० कांग्रेस कमेटी द्वारा जन-आन्दोलनकी मंजूरी दिये जानेके बाद नहीं, बल्कि सरकार द्वारा की गई गिरफ्तारियोंके पश्चात् हुए थे। उपर्युक्त "माँगों" की बात लें तो जहाँतक मैं जानता हूँ, ये भारत-भरमें प्रमुख कांग्रेसियोंकी अन्धाधुन्ध गिरफ्तारीके शीघ्र बाद ही आरम्भ हो गई थीं। सरकारको मालूम है कि मैंने वाइसराय महोदयको लिखे गये अपने सभी पत्रोंमें, जिनमें से आखिरी पत्र[1] ७ फरवरी, १९४३ का था, अपने ऊपर लगाये गये दोषका प्रमाण माँगा था। जो साक्ष्य अब दिये गये हैं वे मुझे उस समय ही दिये जा सकते थे जब मैंने यह प्रश्न उठाया था। यदि उसी समय मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया जाता तो उसका एक लाभ तो अवश्य यह होता कि मुझपर लगाये गये आरोपोंके उत्तरमें मेरा पक्ष भी सुन लिया जाता। उस प्रक्रिया के ही कारण मेरा उपवास कुछ समयके लिए टल जाता और यदि सरकार मेरे साथ धीरजसे काम लेती तो हो सकता था, शायद उपवासकी नौबत ही न आती।

५. पुस्तिकाकी भूमिकामें निम्नलिखित वाक्य है:

> **इस विवरणमें दिये गये लगभग सभी तथ्य जनताको पहले ही मालूम होंगे अथवा मालूम होने चाहिए।**

अतः जहाँतक जनताका सम्बन्ध है, कोई ऐसी जल्दी नहीं थी कि इस पुस्तिका को मेरे उपवासके समय ही प्रकाशित किया जाता। इस तर्कसरणीके आधारपर

१. देखिए पृ० ५४-५६।

मै इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि अवश्य ही डाक्टरोंने इस उपवासके फलस्वरूप मेरी मृत्यु लगभग निश्चित मानी होगी और मेरी सम्भावित मृत्युको ही ध्यानमें रखकर सरकारने यह पुस्तिका प्रकाशित की। मेरे पिछले लम्बे उपवासोंके दौरान भी मेरी मृत्युकी आशंका थी। मै तो यही चाहूँगा कि मेरा यह निष्कर्ष बिलकुल गलत हो और सरकारने किसी ठोस व न्यायोचित कारणसे ही ऐसी पुस्तिकाके प्रकाशनके लिए यह समय चुना हो जो अन्तत: कांग्रेस तथा मेरे खिलाफ एक अभियोग-पत्र है। ऐसे निष्कर्षको लिखित रूपमें व्यक्त करने के लिए, आशा है, मुझे क्षमा कर दिया जायेगा, क्योंकि यदि वह सही है तो उससे अवश्य ही सरकारकी प्रतिष्ठाको आँच आयेगी। मैं समझता हूँ कि अपने संशयको मनमें ही रखने के बजाय उसको प्रकट करके मै सरकारके प्रति न्याय कर रहा हूँ। अन्यथा अपने प्रति सरकारके व्यवहारको जाँचते समय यह सशय मेरे विचारोंको प्रभावित कर सकता था।

६. अब मैं खुद अभियोग-पत्रपर विचार करूँगा। यह ऐसा प्रतीत होता है जैसे अभियोक्ता वकीलने अपना पक्ष प्रस्तुत किया हो। इस प्रसंगमें अभियोक्ता ही पुलिस भी है और जेलर भी। पहले वह अभियुक्तोंको पकड़कर उनका मुँह बन्द कर देता है और फिर उनकी पीठ-पीछे मुकदमा शुरू कर देता है।

७. मैंने इस अभियोग-पत्रको बार-बार पढ़ा है। मेरे कुछ साथियोंके पास 'हरिजन' की प्रतियाँ थी; उन्हें भी मैंने पढा है। और इसके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि मेरे लेखों और कार्योंमें ऐसी कोई बात नही थी जिसके आधारपर वैसे निष्कर्ष निकाले जाते और वैसी व्यंग्योक्तियाँ की जाती जिनसे यह अभियोग-पत्र भरा पड़ा है। चाहते हुए भी अपने लेखोंमें मैं अपना वह स्वरूप देखने में बिलकुल असमर्थ रहा जिस स्वरूपको लेखकने देखा है।

८. अभियोग-पत्रका आरम्भ ही एक गलतबयानीसे होता है। इसमें कहा गया है कि मैंने "भारतकी प्रतिरक्षामें सहायता देने के लिए विदेशी सैनिकोंके यहाँ लाये जाने पर" दु.ख प्रकट किया। 'हरिजन' में प्रकाशित मेरे जिस लेखके[1] आधारपर यह आरोप लगाया गया है उसमें मैंने यह मानने मे इनकार किया है कि भारतकी प्रतिरक्षाके लिए विदेशी सैनिकोंको बुलाना आवश्यक है। यदि भारतकी प्रतिरक्षा ही हमारा लक्ष्य है तो भारतके प्रशिक्षित सैनिकोंको भारतसे दूर भेजकर विदेशी सैनिकोको बुलाने का क्या प्रयोजन है? कांग्रेस-जैसी संस्थाका, जिसका जन्म ही भारत की स्वाधीनताके लिए हुआ था और जो उसीके लिए जीवित है, दमन क्यों किया जाना चाहिए? १९ अप्रैलको वह लेख लिखते समय मेरे मनमें यह बात जितनी स्पष्ट थी उससे आज और स्पष्ट हो गई है कि भारतकी कोई रक्षा नही की जा रही है और जैसी परिस्थिति आज बनती जा रही है, अगर वैसी ही बनती चली गई तो युद्धके अन्तमें भारत पतनके गर्तमें और गहरा धँस जायेगा, यहाँतक कि शायद वह "स्वाधीनता" शब्दको ही भूल बैठे। पुस्तिकाके लेखकने 'हरिजन' में छपे मेरे जिस लेखका उल्लेख किया है उसमें से मै प्रासगिक अंश उद्धृत करता हूँ:

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ५५-५६।

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मै इस घटनासे अविचलित नहीं रह सकता। क्या हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंमें से असंख्य सैनिक तैयार नहीं किये जा सकते? क्या वे लड़ने में दुनियाकी किसी भी फौजकी टक्करके नहीं होंगे? तो फिर ये विदेशी सिपाही क्यों? हम जानते हैं कि अमेरिकी सहायताके क्या माने हैं। आखिर इसके माने यही होंगे कि ब्रिटिश हुकूमतके साथ-साथ अमेरिकी हुकूमत नहीं तो अमेरिकी प्रभाव अवश्य ही हमारे देशमें घुस आयेगा। मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंकी सम्भावित विजयके लिए इतनी भारी कीमत देना एक महँगा सौदा है। हिन्दुस्तानकी रक्षाके नामसे की जानेवाली इस तैयारी में मुझे हिन्दुस्तानकी आजादीकी झलक कहीं नहीं दिखलाई देती। यह तैयारी तो शुद्ध रूपसे ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके लिए ही है, चाहे इसके विपरीत कुछ भी क्यों न कहा जाये।[1]

९. अभियोग-पत्रका दूसरा अनुच्छेद इस अर्थगर्भित वाक्यसे आरम्भ होता है:

इस सबसे इस बातका संकेत मिलेगा कि जब भी गांधीने पहली बार अंग्रेजोंके भारतसे हट जाने की वकालत की तबसे लेकर और जब बम्बईमें ७ अगस्तको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक हुई तबतक के समयमें कांग्रेस आला कमान और बादकी अवस्थामें सामान्य रूपसे पूरा कांग्रेस संगठन भारतको ब्रिटिश शासनसे अन्तिम रूपसे मुक्त कराने के लिए अच्छी तरह सोच-विचार कर एक जन-आन्दोलनका मंच तैयार कर रहे थे।

इस बातका संकेत मिलेगा, इन शब्दोंको मैं रेखांकित करना चाहता हूँ। एक खुले और स्पष्ट आन्दोलनके बारेमें किसी चीजका संकेत मिलने की बात क्यों कही जाये? सरलसे-सरल बातोंको भी बहुत ज्यादा तूल दे दिया गया है — ऐसी बातोंको जिनका किसीने खण्डन करना नही चाहा और जिनपर कांग्रेसजनोंको गर्व भी है। पूरे कांग्रेस संगठनने "भारतको ब्रिटिश शासनसे अन्तिम रूपसे मुक्त कराने के लिए अच्छी तरह सोच-विचारकर एक जन-आन्दोलनका मंच", जैसा कि इस अभियोग-पत्रमें कहा गया है उसके विपरीत, मेरे "पहली बार अंग्रेजोंके भारतसे हट जाने की वकालत करने के समयसे" नही, बल्कि १९२० में ही तैयार कर दिया था। उस वर्षसे लेकर आजतक कभी भी जन-आन्दोलनके प्रयासमें शिथिलता नही आने दी गई है। इस बातकी पुष्टि कांग्रेसी नेताओंके असंख्य भाषणों और कांग्रेस द्वारा पारित अनेक प्रस्तावोंसे की जा सकती है। युवा और अधीर कांग्रेसियोंने, यहाँतक कि समय-समयपर प्रौढ़ कांग्रेसियोंने भी मुझसे जन-आन्दोलन छेड़ने में शीघ्रता बरतने के लिए कहने में कभी संकोच नही किया है। किन्तु मैं जानता था कि यह उचित नही है, इसलिए मैंने सदा उनके उत्साहपर अंकुश लगाया और मै कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि उन्होंने मेरा अंकुश सहर्ष मान लिया। अभियोग-पत्रमें अंग्रेजोंके भारत छोड़ने की मेरी पहली वकालत

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ५५।

और ७ अगस्तकी अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकके बीचके अन्तरालको लुप्त कर देना बिलकुल गलत और भ्रामक है। मुझे तो २६ अप्रैल, १९४२ के बाद होनेवाली किसी विशेष तैयारीकी जानकारी नही है?

१०. पुस्तिकाके इसी अनुच्छेदमें आगे कहा गया है कि आन्दोलनके स्वरूपको परखने से पहले "इस कदमके वास्तविक प्रेरक हेतुओको स्पष्ट रूपसे समझ लेना आवश्यक है।" जब सभी-कुछ स्पष्ट रूपमें मौजूद है तो प्रेरक हेतुओको खोजने की क्या आवश्यकता है? मैं नि.संकोच कह सकता हूँ कि मेरे हेतु हमेशा ही सुस्पष्ट होते है। भारतसे ब्रिटिश सत्ता फौरन हटा ली जाने की माँग मैंने क्यों की, इसकी चर्चा मैं सार्वजनिक तौरपर और लगभग बालकी खाल निकालनेवाले अन्दाजसे कर चुका हूँ।

११. अभियोग-पत्रके पृष्ठ २ पर,[1] मेरे १० मई, १९४२ के लेख "वन थिंग नीडफुल"[2] ("जरूरी चीज")से एक मुहावरा लेकर मुझे यह कहते दिखाया गया है कि मैं इस "परम ध्येय" के लिए अपनी सारी "शक्ति" लगा दूंगा। सन्दर्भसे अलग कर देने मात्रसे इस वाक्यके चारों ओर रहस्यका पर्दा खिंच जाता है। "परम ध्येय" शब्द एक अंग्रेज मित्रको दी गई मेरी दलीलमें आता है और यदि उसे उसके परि-प्रेक्ष्यमें पढा जाये तो वह रहस्यपूर्ण या आपत्तिजनक नही रह जाता, अलबत्ता अगर अंग्रेजोके हट जाने का विचार-मात्र आपत्तिजनक हो तो बात और है। मेरी दलीलके प्रासंगिक अंश ये रहे:

> इसलिए मेरा यह विश्वास हो गया है कि अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंको अपने आपसी सम्बन्ध-विच्छेदके लिए लड़ाईके बाद नहीं, बल्कि लड़ाईके दरम्यान ही राजी हो जाना चाहिए। इसमें, और सिर्फ इसी एक तरीकेमें उन दोनोंकी —और दुनियाकी भी—सलामती है। मैं खुली आँखोंसे यह देख रहा हूँ कि उनके और हमारे बीच मनमुटाव बढ़ रहा है। अंग्रेज सरकारकी हर बातका यही अर्थ लगाया जाता है कि उसका हेतु अपनी रक्षा और अपना फायदा करना ही है; और, मुझे लगता है कि यह मान्यता है भी ठीक। इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनोंके समान और संयुक्त हित-जैसी कोई चीज है ही नहीं। . . . जातीयताके गर्वको वे दोष नहीं, बल्कि गुण समझते हैं। और यह बात सिर्फ हिन्दुस्तानके बारेमें ही नहीं, बल्कि आफ्रिका, बर्मा और लंकाके बारेमें भी उतनी ही सही है। जातीयताके अभिमानका प्रतिपादन किये बिना ये देश पराधीन रखे ही नहीं जा सकते थे।

१. जिसमें यह कहा गया था: "हालाँकि अंग्रेजोंके हट जाने के सम्बन्धमें श्री गांधीके पहले सभी प्रस्तावोंमें इस कार्यके स्वेच्छापूर्वक और खुशी-खुशी किये जाने के महत्त्वपर जोर दिया गया था, किन्तु १० मई तक वे यह निश्चय कर चुके थे कि उन्हें इस "परम ध्येय" में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए; और स्पष्ट है कि इसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए संघर्ष करने की बात सोचनी शुरू कर दी।" (इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० १७७)।

२. देखिए खण्ड ७६, पृ० ९४-९६।

यह एक तीव्र रोग है और इसका उपचार भी तीव्र ही होना चाहिए। उपचार मैं बता चुका हूँ कि कमसे-कम हिन्दुस्तानसे तो अंग्रेजोंको फौरन ही, पूरी तरह, व्यवस्थित रीतिसे हट जाना चाहिए। असलमें उनके लिए मुनासिब तो यह होगा कि वे उन तमाम गैर-यूरोपीय देशोंसे हट जायें, जो इस समय उनके कब्जेमें हैं। यह अंग्रेजोंका सबसे अधिक वीरतापूर्ण और शुद्धतम कार्य होगा। इससे मित्र-राष्ट्रोंके पक्षको पूरी तरह नैतिक आधार मिल जायेगा और हो सकता है कि इसके परिणामस्वरूप युद्धरत राष्ट्रोंके बीच अत्यन्त सम्मानपूर्ण सुलहका रास्ता भी खुल जाये। और सम्भव है कि साम्राज्यवादके इस शुद्ध अन्तके कारण फासीवाद और नाजीवादका भी अन्त हो जाये। जो उपाय मैंने सुझाया है, वह फासीवादी और नाजी तलवारको भोथरा तो अवश्य ही कर डालेगा, क्योंकि ये दोनों भी साम्राज्यवादकी उपज हैं।

जैसी पत्र-लेखकने सुझाई है, राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानकी वैसी मददसे ब्रिटेनकी विपत्ति कम नहीं हो सकती। अगर हिन्दुस्तानको इस कामके लिए किसी तरह प्रोत्साहित किया भी जा सके, तो इसके लिए उसके पास आवश्यक साधन नहीं हैं। और राष्ट्रवादी भारतके उत्साहको बढ़ानेके लिए यहाँ है ही क्या? जिस तरह सूरजके न होने पर उसकी दीप्ति अनुभव नहीं की जा सकती, उसी तरह जबतक स्वतन्त्रताका सूर्य प्रकट नहीं होता तबतक उसकी दीप्ति भी अनुभव नहीं की जा सकती। हममें बहुत लोग ऐसे हैं जो शान्तिके साथ और सन्तुलित मनसे हिन्दुस्तानकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रताकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वतन्त्रताके तेजके अनुभवसे पहले शुरूमें एक धक्का लग सकता है। इस धक्केकी आवश्यकता है। हिन्दुस्तान एक बड़ा राष्ट्र है। इस धक्केके लगने का उसपर क्या असर होगा और वह उसका क्या जवाब देगा, सो कोई नहीं कह सकता।

इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि मुझे अपनी सारी शक्ति अपने इस परम ध्येयकी प्राप्तिमें लगा देनी चाहिए। पत्रमें लेखकने यह स्वीकार किया है कि अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानके साथ अन्याय किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजोंकी कामयाबीकी पहली शर्त यह है कि वे इस अन्यायको अभी दूर करें। यह काम विजयसे पहले होना चाहिए, बादमें नहीं। हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी मौजूदगी जापानियोंके लिए हिन्दुस्तानपर आक्रमण करनेके निमन्त्रण-जैसी है। अगर अंग्रेज यहाँसे चले जायें, तो प्रलोभन भी दूर हो जायेगा। परन्तु मान लीजिए कि ऐसा न हो, तो भी आजाद हिन्दुस्तान आजकी अपेक्षा आक्रमणका सामना ज्यादा अच्छी तरह कर सकेगा। शुद्ध असहयोगको तब अपना जौहर दिखानेका अवसर मिलेगा। ('हरिजन', १०-५-१९४२, पृ० १४८)।

इस लम्बे उद्धरणमें "परम ध्येय" शब्द अपने उचित स्थानपर सटीक बैठते हैं। इसमें केवल अंग्रेजोंके हट जानेका ही उल्लेख नहीं है, वरन् इसमें वापसीके पहले और बादमें अनिवार्यतः होनेवाली सभी बातोंका सार आ जाता है। पर इस कामके

लिए एक व्यक्तिकी नहीं, बल्कि सैकड़ों व्यक्तियोंकी शक्ति दरकार है। मैंने अपने अंग्रेज मित्रके पत्रका उत्तर इस प्रकार आरम्भ किया था:

युद्धकी घोषणाके बाद लॉर्ड लिनलिथगोके साथ अपनी पहली मुलाकातके[1] वक्त मेरी जो मनोदशा थी, उसका वर्णन करते हुए मैंने अपने पत्रमें उन्हें जो-कुछ लिखा था, उसे मैं यहाँ दोहरा-भर सकता हूँ। उस पत्रमें मैंने जो-कुछ कहा था, उसमें से आज न तो मुझे कुछ वापस लेना है, न किसी चीजके लिए पछताना है। जैसा मित्र मैं अंग्रेजोंका उस समय था वैसा ही आज भी हूँ। मुझमें उनके प्रति तनिक भी द्वेष नहीं है। परन्तु उनके महान् गुणोंकी तरह उनकी कमजोरियोंकी तरफसे भी मैं कभी आँखें मूंद नहीं सका। ('हरिजन', १०-५-१९४२, पृ० १४८)।

मेरे लेखोंको पढ़ने और भली-भाँति समझने के लिए इस पृष्ठभूमिको समझना हमेशा बहुत जरूरी है। इस समूचे आन्दोलनकी कल्पना भारत तथा इंग्लैण्ड दोनोंके पारस्परिक हितके लिए की गई है। दुर्भाग्यसे, पुस्तिकाके लेखकने इस पृष्ठभूमिकी उपेक्षा करके मेरे लेखोंको मानो रंगीन चश्मेके माध्यमसे देखा है, और उनके वाक्यों और वाक्यांशोंको उनके सन्दर्भसे हटाकर उन्हें ऐसे रूपमें प्रस्तुत किया है जो उसकी पूर्वगृहीत धारणाके उपयुक्त है। उदाहरणार्थ, "अगर अंग्रेज यहाँसे चले जायें तो प्रलोभन भी दूर हो जायेगा," इस वाक्यांशको उसने सन्दर्भसे अलग कर दिया है और उसके ठीक परवर्ती वाक्यको छोड़ दिया गया है, जिसे मैंने ऊपरके उद्धरणमें यथास्थान रख दिया है। उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट हो जाता है कि विशुद्ध असहयोगका सम्बन्ध यहाँ केवल जापानियोंसे है।

१२. पृष्ठ २ का अन्तिम अनुच्छेद इस प्रकार आरम्भ होता है:

आरम्भमें श्री गांधीके "भारत छोड़ो" प्रस्तावका यही लक्ष्य था और सब जगह इसका यही तात्पर्य समझा गया था कि यह भारतसे <u>अंग्रेजोंके</u>[2] और सभी मित्र-राष्ट्रोंकी तथा अंग्रेजी सेनाओंके वास्तवमें हट जाने का एक प्रस्ताव है।

मैंने तथा मेरे मित्रोंने मेरे पिछले लेखोंमें ऐसे अंश ढूंढ़ने का निष्फल प्रयत्न किया है जिनसे इस विचारका औचित्य सिद्ध होता हो कि "भारत छोड़ो" प्रस्तावका लक्ष्य भारतसे अंग्रेजोंकी शारीरिक रूपसे वापसी था। यह सच है कि २६-४-१९४२ के 'हरिजन' में प्रकाशित मेरे लेखमें एक वाक्यको,[3] जिसे मैं ऊपर उद्धृत कर चुका हूँ, सतही तौरपर पढ़ने से उसका ऐसा अर्थ लगाया जा सकता था। परन्तु जैसे ही मेरे एक अंग्रेज मित्रने मेरा ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया, मैंने २४ मईके 'हरिजन' में लिखा:[4]

१. ४ सितम्बर, १९३९ को; गांधीजी के वक्तव्यके लिए देखिए खण्ड ७०, पृ० १७८-८०।

२. रेखांकन गांधीजी ने किया था।

३. शायद ऊपर अनुच्छेद ८ में उद्धृत अंशके अन्तिम वाक्यके तुरन्त बाद आनेवाला वाक्य; देखिए खण्ड ७६, पृ० ५५।

४. देखिए खण्ड ७६, पृ० १३२।

> अंग्रेजोंको हिन्दुस्तान छोड़कर जानेकी जो सलाह मैंने दी है, उसके बारेमें स्पष्ट ही कुछ लोगोंके मनमें एक भ्रम पैदा हो गया है; क्योंकि एक अंग्रेज सज्जन मुझे लिखते हैं कि उन्हें हिन्दुस्तान और उसके लोग अच्छे लगते हैं, और वे खुशीसे हिन्दुस्तान छोड़कर जाना नहीं चाहेंगे। वे मेरी अहिंसात्मक पद्धतिको भी पसन्द करते हैं। स्पष्ट ही उन्होंने सामान्य व्यक्तिको और सत्ताधारी व्यक्तिको एक ही मान लेने की भूल की है। अंग्रेजोंसे हिन्दुस्तानका कोई झगड़ा नहीं है। सैकड़ों अंग्रेज मेरे मित्र हैं। मुझे अंग्रेज जातिका मित्र बना देनेके लिए एक एन्ड्रयूजकी[1] मित्रता ही काफी थी।

अभियोग-पत्र तैयार करते समय लेखकके सम्मुख मेरे विचारोंकी इस स्पष्ट घोषणाके मौजूद रहते उसने यह किस प्रकार लिख दिया कि मेरा लक्ष्य ब्रिटिश सत्ताकी ही नहीं, बल्कि अंग्रेजोंकी शारीरिक रूपसे वापसी था? और मैं इस बातसे भी अनभिज्ञ हूँ कि मेरे लेखका "सब जगह यही तात्पर्य समझा गया"। पुस्तिकाके लेखकने अपने इस कथनकी पुष्टिके लिए कोई साक्ष्य उद्धृत नहीं किया है।

१३. उसी अनुच्छेदमें लेखक आगे लिखता है:

> अपनी योजनाकी खातिर, १४ जूनको वे यह मान लेते हैं कि संयुक्त अमेरिकी तथा ब्रिटिश सेनाओंके प्रधान सेनापतिने यह फैसला किया है कि लड़ाईके अड्डेके रूपमें हिन्दुस्तान किसी कामका नहीं है।

"अपनी योजनाकी खातिर", यह तो ख्वाहमख्वाहाका एक क्षेपक जोड़ दिया गया है। उद्धरण कई पत्रकारोंके साथ हुई मेरी भेंट-वार्त्ताके वृत्तान्तमें से लिया गया है।[2] उस समय मैं एकके बाद एक बहुत-से प्रश्नोंके उत्तर दे रहा था। एक स्थलपर मैंने स्वयं ही उलटकर प्रश्न किया:

> मान लीजिए कि मेरे सुझावपर नहीं बल्कि सिर्फ रणनीतिके खयालसे अंग्रेज हिन्दुस्तानसे हट जायें—जैसा कि बर्मामें उन्हें करना पड़ा—तब क्या होगा? हिन्दुस्तान उस हालतमें क्या करेगा?
>
> उन्होंने उत्तर दिया:
>
> ठीक यही बात हम आपसे समझने आये हैं। निश्चय ही हम यह जानना चाहेंगे।
>
> मैंने इसका प्रत्युत्तर दिया:
>
> बस, यहीं मेरी अहिंसा काम आयेगी; क्योंकि दूसरे हथियार तो हमारे पास हैं नहीं। याद रखिए, हम यह मान लेते हैं कि संयुक्त अमेरिकी और ब्रिटिश सेनाओंके प्रधान सेनापतिने यह फैसला कर लिया कि युद्ध-संचालनके लिए अड्डेके रूपमें हिन्दुस्तान किसी कामका नहीं है, और उन्हें यहाँसे हटकर किसी और अड्डेपर अपनी सेनाको केन्द्रित करना चाहिए। इसमें हम तो कुछ भी

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज
२. देखिए खण्ड ७६, पृ० २१२-१८।

नहीं कर सकते। तब जो-कुछ भी शक्ति हमारे पास है, हमें उसीका आधार होगा। हमारे पास न सेना है, न युद्ध-सामग्री है और न कोई उल्लेखनीय युद्ध-कौशल ही है। केवल अहिंसा ही हमारे पास है, जिसका हम आश्रय ले सकते हैं।

इस उद्धरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैं किसी योजनाका प्रतिपादन नहीं कर रहा था। मैं तो केवल उन सम्भावनाओंके बारेमें बात कर रहा था जो कुछ ऐसी कल्पित मान्यताओंपर आधारित थीं जिनके सम्बन्धमें मेरे और पत्रकारोंके बीच सहमति थी।

१४. लेखक आगे लिखता है:

श्री गांधीके आरम्भिक इरादोंकी यही व्याख्या सही है, इस धारणाकी और भी पुष्टि इस बातसे होती है — और इस बातकी ओर हम पहले ही ध्यान दिला चुके हैं — कि श्री गांधीने इस बातपर खास जोर दिया है कि अंग्रेजोंके हट जाने से भारतपर जापानके आक्रमण करने का प्रलोभन मिट जायेगा। कारण, भारतमें ब्रिटिश व मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंके रहते ऐसा कैसे हो सकता है?

मैं अभी सिद्ध कर चुका हूँ कि मैंने भारतमें रहनेवाले अंग्रेजोंकी शारीरिक वापसीकी बात कभी भी नहीं सोची थी। हाँ, पहले-पहल मित्र-राष्ट्रोंकी और अंग्रेजों की सेनाओंकी वापसीकी बात अवश्य सोची थी। यह एक तथ्य है, इसलिए यहाँ अर्थ लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु इस वाक्यका उपयोग एक सीधी-सादी बात भी टेढ़ी दिखाने के लिए किया गया है।

१५. लेखक आगे लिखता है:

साथ ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेजोंके हटते ही भारतीय सेना विघटित कर दी जायेगी।

मैंने ऐसा कुछ भी स्पष्ट नहीं किया था। मैंने भेंट-वार्त्ता करनेवालों से केवल अंग्रेजोंकी वापसीकी स्थितिमें सम्भावनाओंपर चर्चा की थी। चूँकि भारतीय सेना ब्रिटिश सरकारकी ही बनाई हुई है, इसलिए मैंने माना कि ब्रिटिश सत्ताके हटने के साथ ही वह स्वभावतः विघटित कर दी जायेगी, बशर्ते कि उसका स्थान लेनेवाली नई सरकार विशेष सन्धि द्वारा उसे अपने नियन्त्रणमें न ले ले। यदि वापसी दोनों पक्षोंकी सहमति और सद्भावनासे हुई तो ऐसी बातोंमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इस विषयपर हुई भेंट-वार्त्ताके प्रासंगिक अंश मैं परिशिष्टमें दे रहा हूँ। देखिए परिशिष्ट १ (एस)।

१६. उसी अनुच्छेदसे मैं निम्नलिखित पंक्तियाँ दे रहा हूँ:

इस विरोधके जोर पकड़ने के कारण और जैसा कि बादमें दिखाया जायेगा, शायद कार्य-समितिके सदस्योंके आपसी मतभेदको मिटाने की आशासे श्री गांधीने अपने मूल सुझावोंकी "खामी" खोज निकाली। १४ जूनके 'हरिजन' में उन्होंने किंचित् निगूढ़ ढंगसे कहा कि जब भारतीय राष्ट्रीय सरकार

बन जायेगी तब यदि उनका बस चला तो वह कुछ सुपरिभाषित शर्तोंपर संयुक्त-राष्ट्रोंका भारत-भूमिपर मौजूद रहना बर्दाश्त कर लेगी, किन्तु इससे अधिक कुछ और सहायताकी अनुमति नहीं देगी। वास्तवमें यह अगले सप्ताहके 'हरिजन' में प्रकाशित एक अमेरिकी पत्रकारसे कही गई उनकी अधिक स्पष्ट बातकी भूमिका थी। उस पत्रकारने उनसे पूछा था कि क्या वे ऐसी सम्भावना देखते हैं कि स्वतन्त्र भारत मित्र-सेनाओंको भारतसे युद्ध-अभियान चलाने देगा। उन्होंने उत्तर दिया था कि "मैं निश्चय ही ऐसी सम्भावना देखता हूँ। स्वतन्त्रता मिलने के बाद ही आप हिन्दुस्तानमें सच्चे सहयोगके दर्शन कर सकेंगे।" उन्होंने आगे कहा कि वे हिन्दुस्तानसे मित्र-राष्ट्रोंकी तमाम सेनाओं के हटा लिये जाने की बात नहीं सोच रहे हैं, और अगर हिन्दुस्तान पूरी तरह आजाद हो जाये तो वे उनके हट जाने पर आग्रह कर भी नहीं सकते।

मेरे विचारमें, लेखकका यही विचार उसकी मनोवृत्तिको समझने की कुंजी है। उस मनोवृत्तिका आधार है मेरी बातोंमें मेरी भाषासे स्पष्ट झलकनेवाले मन्तव्योंसे भिन्न और मन्तव्य ढूँढ़ना। यदि विदेशी या भारतीय समाचारपत्रों या कांग्रेसियोंके विरोधका मुझपर प्रभाव पड़ा होता तो इस बातको कहने में मुझे कोई संकोच नहीं होता। यह बात सुविदित है कि विरोधी पक्षके विरोधका यदि मेरे मस्तिष्क या हृदयपर कोई प्रभाव पड़े तो जितनी आसानीसे मैं विरोधियोंकी बात मान लेता हूँ, विरोधका प्रभाव न पड़ने पर उतनी ही सहजतासे मैं उसका प्रतिरोध भी कर सकता हूँ। पर सीधा-सादा तथ्य यह है कि जब मैंने देशको ब्रिटिश सत्ताकी वापसी का सुझाव दिया तब मेरे दिमागमें केवल यही बात थी कि यदि भारतको बचाना है, मित्र-राष्ट्रोंके लक्ष्यकी भी रक्षा करनी है और यदि भारतको युद्धमें न केवल प्रभावशाली बल्कि सम्भवतः निर्णायक रूपसे हिस्सा लेना है तो उसे आज ही पूर्णतः स्वतन्त्र हो जाना चाहिए। इसमें "खामी" यही थी कि ब्रिटिश सरकार सम्भवतः भारतको स्वतन्त्र घोषित करने को राजी हो जाये तो भी अपनी व चीनकी सुरक्षाके लिए वह अपनी सेनाएँ यहाँ रखना चाहेगी। उस हालतमें मेरी क्या स्थिति होगी? अब यह सर्वविदित है कि यह कठिनाई मेरे सामने[1] श्री लुई फिशरने रखी थी। वे सेवाग्राम आकर लगभग एक सप्ताह मेरे साथ ठहरे थे। हमारे विचार-विनिमयके बाद उन्होंने मुझसे पूछने के लिए कुछ प्रश्न तैयार किये। उनके दूसरे प्रश्नके मेरे उत्तरको पुस्तिकाके लेखकने "किंचित् निगूढ़-से" कथनकी संज्ञा दी है, जो उनके अनुसार "अगले सप्ताह 'हरिजन' में . . ." मेरी कहीं "अधिक स्पष्ट बातकी भूमिका थी।" मैं नीचे वह पूरा लेख,[2] जिसमें उनके प्रश्न और मेरे उत्तर शामिल हैं, दे रहा हूँ। लेख ७ जून, १९४२ को लिखा गया था और १४ जूनके 'हरिजन' में पृ० १८८ पर प्रकाशित हुआ था। . . .

१. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ५।
२. इसे यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। देखिए खण्ड ७६, पृ० २०५-७।

जिसे "और अधिक स्पष्ट बात" कहा जा रहा है वह एसोशिएटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाके प्रतिनिधि श्री ग्रोवरके प्रश्नके उत्तरमें खास सोचे-समझे बिना तत्क्षण कही गई एक बात थी। यदि संयोगवश वह भेंट-वार्ता[1] न हुई होती तो जो उत्तर मैंने श्री लुई फिशरको दिया था उससे "अधिक स्पष्ट" उत्तर देने का कोई प्रसंग भी न आया होता। अतः पुस्तिकाके लेखकका यह कहना कि मैंने आगामी सप्ताहके 'हरिजन' में एक "और अधिक स्पष्ट बात" कहने के लिए "भूमिका तैयार कर ली थी", यदि एक कुटिल कथन नही तो भी सरासर गलत तो है ही। श्री लुई फिशरको दिये गये अपने उत्तरोंको मै "किंचित् निगूढ़-सी बात" नही मानता। ये उत्तर एक सप्ताह के विचार-विनिमयके बाद विचारपूर्वक गढ़े हुए प्रश्नोंके सुविचारित उत्तर है। मेरे उत्तरोसे स्पष्ट है कि "भारत छोड़ो" फार्मूलेके अतिरिक्त मेरी और कोई योजना नही थी, और दूसरी सभी बातें अटकलबाजी-भर थी, तथा जैसे ही मित्र-राष्ट्रोकी समस्या मुझे समझाई गई, मैंने बात मान ली। मैंने उस "खामी" को देख लिया और उसे भरसक सबसे अच्छे ढंगसे दूर कर दिया। मेरे विचारमें, वह "स्पष्ट बात", सौभाग्यसे, उन अनुमानों और दोषारोपणोके लिए कोई गुंजाइश नही छोड़ती है जो लेखकने लगाये है। खुद उस कथनको ही देख लीजिए। उसके प्रासंगिक अंश नीचे दे रहा हूँ :[2]

१७ अध्यायके[3] शेष भागमें इलाहाबाद भेजे गये मेरे प्रस्तावके मसौदेका नमक-मिर्च लगा वर्णन पेश किया गया है तथा उस प्रस्तावपर पण्डित जवाहरलाल

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० २२९-३५।

२. इन्हें यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। अन्तिम छह अनुच्छेदोंके अलावा गांधीजी ने इसे पूरा उद्धृत किया था।

३. सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाके छह अध्यायोंमें से पहला अध्याय। उक्त अंश इस प्रकार था: "श्री गांधीके 'भारत छोड़ो' प्रस्तावके प्रेरक हेतुओंके मूल्यांकनका प्रयत्न करने से पहले उस महत्त्वपूर्ण प्रमाणका जिक्र करना आवश्यक है जिससे उनकी तत्कालीन मनोवृत्ति तथा उसके प्रति कार्य-समितिके सदस्योंकी प्रतिक्रियाकी जानकारी मिलती है। और वह प्रमाण है समितिकी इलाहाबादमें हुई बैठकका विवरण (परिशिष्ट १), जो बादमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके दफ्तरकी पुलिस द्वारा की गई तलाशीमें बरामद हुआ था। उस बैठकमें श्री गांधी उपस्थित नहीं थे, परन्तु उसमें कार्य-समितिके विचारार्थ उन्होंने एक प्रस्तावका मसौदा भेजा था। यही प्रस्ताव १४ जुलाईके प्रस्तावका सच्चा अग्रदूत था। इस मसौदेमें उन्होंने कहा है कि "जापानका भारतसे झगड़ा नहीं है। वह ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध युद्ध कर रहा है। . . . यदि भारतको स्वतन्त्र कर दिया जाता है तो उसका पहला कदम शायद जापानसे समझौतेकी बातचीत करना होगा और यदि अंग्रेज भारतसे हट जायें तो भारत जापानसे अपनी रक्षा कर सकेगा।" कांग्रेसका विचार था कि ब्रिटेन भारतको जापान या अन्य किसी आक्रमणकारीसे बचाने में असमर्थ है। मसौदेमें आगे जापान सरकारको आश्वासन दिया गया कि भारतकी जापानसे कोई दुश्मनी नहीं है, भारत तो केवल विदेशी प्रभुत्वसे छुटकारा चाहता है और अपनी स्वतन्त्रता वह अहिंसाके बलपर प्राप्त करेगा और बनाये रखेगा। यह आशा भी प्रकट की गई है कि जापान भारतके प्रति कोई बुरे मंसूबे नहीं रखेगा; पर यदि वह भारतपर आक्रमण करे तो कांग्रेसका नेतृत्व माननेवाले सभी भारतीयोंसे यह अपेक्षा की जायेगी कि वे जापानसे अहिंसापूर्ण ढंगसे असहयोग करेंगे।" (इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० १७७-७८)। गांधीजी के प्रस्तावके मसौदेके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ७०-७२।

नेहरू[1] तथा श्री राजगोपालाचारीकी[2] तथाकथित उक्तियाँ उद्धृत की गई हैं। जैसे ही सरकारने अपने कब्जेमें लिये गये कांग्रेसके कागजातमें से उद्धरण प्रकाशित किये, पण्डितजी ने तत्काल एक वक्तव्य जारी किया, जिसे मैं यहाँ संलग्न कर रहा हूँ। देखिए परिशिष्ट ५ (सी)। मेरी समझमें नहीं आता कि लेखकने उस महत्त्वपूर्ण वक्तव्य पर ध्यान क्यों नही दिया; इसका कारण तो यही हो सकता है कि उसे पण्डितजीके स्पष्टीकरणपर विश्वास नहीं है। जहाँतक श्री राजगोपालाचारीके कथनका प्रश्न है, लेखकका आधार उतना कमजोर नही है। निश्चय ही राजाजी के वही विचार है जो बताये गये है। मैंने अमेरिकी संवाददाता श्री ग्रोवरसे भेंट-वार्त्ताके दौरान राजाजी तथा अपने मतभेदके बारेमें इस प्रकार कहा था:[3]

१. उनकी "तथाकथित उक्तियाँ" इस प्रकार थीं: "भारतसे सेनाओं और सम्पूर्ण असैनिक प्रशासनके हटाये जाने से जो रिक्तता आयेगी उसे तुरन्त भरना सम्भव नहीं है। अगर हम जापानसे कहेंगे कि उसका युद्ध तो ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध है, न कि हमारे विरुद्ध तो जापान कहेगा: 'हमें खुशी है कि ब्रिटिश सेना हटा ली गई है। हम आपकी स्वाधीनताको मान्यता देते हैं, किन्तु इस समय हमें कुछ सुविधाएँ मिलनी चाहिए। हम आक्रमणकारीसे आपकी रक्षा करेंगे। हमें भारतमें हवाई अड्डोंपर अधिकार चाहिए, और हमारी सेनाओंको भारतसे गुजरने की आजादी चाहिए। यह सब आत्म-रक्षाके लिए अनिवार्य है।' इस प्रकार वे भारतके सामरिक महत्त्वके स्थानोंको अधिकारमें लेकर इराक आदिकी ओर बढ़ सकते हैं। यदि केवल सामरिक महत्त्वके स्थलोंपर उसे अधिकार मिल जाये तो जनताको यह चीज खास महसूस नहीं होगी। यदि बापू (श्री गांधी) की सलाह मान ली जाये तो हम धुरी-राष्ट्रोंके निष्क्रिय सहयोगी बन जायेंगे। . . . प्रस्तावकी पूरी पृष्ठभूमि इस प्रकार की है कि संसार अनिवार्यतया यही समझेगा कि हम निष्क्रिय रूपसे धुरी-राष्ट्रोंका साथ दे रहे हैं। अंग्रेजोंसे हटने की माँग की जा रही है, और उनके हटने के बाद जापानसे बातचीत करके संभव हो तो किसी समझौते पर आयें। समझौतेमें ये शर्तें हो सकती हैं कि असैनिक शासन अधिकांशतः हमारे ही अधीन हो, जापानको कुछ सैनिक अधिकार दिये जायें, जापानकी सेनाएँ भारतसे गुजर सकेंगी इत्यादि। . . . चाहे हम पसन्द करें या न करें, युद्धकी परिस्थितियोंके वशीभूत होकर वे भारतको युद्ध-क्षेत्र बना डालेंगे। यदि उन्हें मात्र आत्म-रक्षा ही करनी है तो भी वे भारतीय क्षेत्रसे बाहर नहीं रह पायेंगे; वे बड़े मजेमें भारतमें आ धमकेंगे और आप इसे अहिंसक असहयोगसे नहीं रोक सकते। . . . मसौदेकी पूरी विचारधारा और पृष्ठभूमि, बेइरादन ही सही लेकिन, जापानके पक्षमें हैं। वर्तमान आपातकालमें हमारे जो भी निर्णय होंगे उनके पीछे निम्नलिखित तीन बातोंका प्रभाव होगा: (१) भारतकी स्वाधीनता, (२) कुछ महत् उद्देश्योंके प्रति सहानुभूति और (३) युद्धका सम्भावित परिणाम — अर्थात् कौन विजयी होगा। गांधीजी को लगता है कि जापान और जर्मनी जीतेंगे और अनजाने ही इसी भावनाका उनके निर्णयपर प्रभाव पड़ता है।" (इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० १७८)।

२. उनकी "तथाकथित उक्तियाँ" इस प्रकार थीं: "मैं इस बातसे सहमत नहीं हूँ कि यदि ब्रिटेन भारतसे हट जाये और जापान कुछ आगे बढ़े तो भी भारतको अपने-आपको संगठित करने का कुछ मौका मिलेगा। ब्रिटेनके हट जाने से जो स्थान खाली होगा, वहाँ जापान आसीन हो जायेगा। ब्रिटेनकी बुराइयोंके विरुद्ध प्रतिक्रियाके रूपमें हमें अपना बुद्धि-सन्तुलन नहीं खो देना चाहिए। छोटी-छोटी बातोंपर परेशान हो उठने से कोई फायदा नहीं होगा। हमें जापानकी शरणमें नहीं जाना है, किन्तु इस प्रस्तावका तो मतलब यही है" (पूर्वोक्त, पृ० १७८)।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। देखिए खण्ड ७६, पृ० २३४।

१८. मैंने कार्य-समितिको जो मसौदा इलाहाबाद भेजा था, उसकी निम्नलिखित टीकाके साथ अभियोग-पत्रके पहले अध्यायका अन्त होता है:

> यहाँ यह फिर कह दिया जाना चाहिए कि यह एक ऐसा मसौदा है जिसकी पूरी विचारधारा और पृष्ठभूमि जापानके पक्षमें है। यह एक ऐसा प्रस्ताव है जिसका अर्थ अन्ततः जापानकी शरणमें जाना ही निकलता है।

यद्यपि पण्डित जवाहरलालने अपने नाम आरोपित कथनका खण्डन कर दिया था और मैंने अपने तथा राजाजी के मतभेदोका स्पष्टीकरण भी कर दिया था और यह सब पुस्तिकाके लेखकके सम्मुख मौजूद था, फिर भी लेखकने उपरोक्त टिप्पणी की।

१९. मेरा दावा है कि ऊपर उद्धृत वाक्योंमें प्रकट किये विचारोके लिए लेखकके पास कोई उचित कारण नही था। अपने इस दावेकी पुष्टिके लिए मै पिछले ५ अगस्तके 'बॉम्बे क्रॉनिकल' में प्रकाशित अपने एक प्रेस-वक्तव्यमें[1] से निम्नलिखित उद्धरणोंकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

> जैसा कि (इलाहाबाद भेजे गये) उस मसौदेकी भाषासे जाहिर है, उसमें बहुत-कुछ घटाना-बढ़ाना रहता था। वह मीराबहनके हाथों भेजा गया था जिन्हें मैंने मसौदेके गूढ़ार्थ समझा दिये थे और उनसे तथा कार्य-समितिके उन मित्रोंसे, जो उस समय सेवाग्राममें थे और जिन्हें मैं मसौदा समझा चुका था, मैंने यह कहा था कि कांग्रेसकी विदेश नीतिकी बात मेरे मसौदेमें जान-बूझकर छोड़ दी गई है और इसलिए चीन और रूसका उसमें कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि, जैसा कि मैंने उनसे कहा था, विदेशी मामलोंके बारेमें मुझे प्रेरणा और जानकारी पण्डितजीसे मिलती है, जो उनके गहरे अध्येता रहे हैं। इसलिए मैंने कहा था कि प्रस्तावके उस भागकी पूर्ति वे कर सकते हैं।
>
> परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि बिलकुल असावधानीके क्षणोंमें भी मैंने यह राय कभी जाहिर नहीं की है कि जापान और जर्मनी इस युद्धमें विजयी होंगे। यही नहीं, मैंने अक्सर यह राय जाहिर की है कि यदि केवल ग्रेट ब्रिटेन सदैवके लिए अपना साम्राज्यवाद छोड़ दे, तो वे (जापान और जर्मनी) युद्धमें विजयी हो ही नहीं सकते। इस मतको मैं अनेक बार 'हरिजन' के स्तम्भोंमें भी प्रकट कर चुका हूँ और यहाँ फिर दोहराता हूँ कि मेरी और अन्य लोगोंकी यद्यपि ऐसी इच्छा नहीं है, फिर भी ग्रेट ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंपर यदि विपत्ति आई, तो उसका कारण यही होगा कि वह नाजुक घड़ीमें — अपने इतिहासकी सबसे नाजुक घड़ीमें भी साम्राज्यवादके अपने कलंकको, जिसे वह कमसे-कम डेढ़ सौ वर्षोंसे धारण किये हुए है, धोने से हठपूर्वक इनकार करता रहा।

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४१३।

मेरे इस स्पष्ट वक्तव्यके बावजूद लेखकने यह कैसे कहा कि मेरे "भारत छोडो" प्रस्तावका प्रेरक हेतु यही था कि "मुझे विश्वास हो गया था कि युद्धमें धुरी-राष्ट्रोंकी ही विजय होगी", यह बात समझसे परे है।

२०. इसी आरोपके समर्थनमें लेखक कहता है:

> श्री गांधीका वही रुख कार्य-समितिकी इलाहाबादकी बैठकके बहुत बाद तक बना रहा, क्योंकि जब उनसे यह प्रश्न किया गया कि जबतक ब्रिटेन जर्मनी और जापानसे निबट ले तबतक इस आन्दोलनको स्थगित कर देना क्या समझदारीकी बात नहीं होगी, तो उन्होंने उसके उत्तरमें १९-७-१९४२ के 'हरिजन' में कहा: "जी नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमारे बिना आप जर्मनीसे निबट नहीं सकेंगे?"

नीचे मैं उस लेखका[1] कुछ भाग दे रहा हूँ जिसमें मेरा यह विचार व्यक्त हुआ है। लेखका शीर्षक है "ए टू मिनिट्स इन्टरव्यू" (दो मिनटकी मुलाकात) और यह १९ जुलाईके 'हरिजन' में पृ० २३४-५ पर छपा है। मुलाकाती थे 'डेली एक्सप्रेस', लन्दनके एक संवाददाता।

> 'डेली एक्सप्रेस' लन्दनका एक संवाददाता सबसे पहले आनेवालोंमें से था और चूँकि उसे अन्ततक नहीं रुकना था, उसने कहा कि वह केवल दो मिनटोंकी बातचीतसे सन्तोष मान लेगा। गांधीजी ने उसका अनुरोध मान लिया। उसका निश्चित विचार था कि अंग्रेजोंके हट जाने की माँग दिन-प्रति-दिन शक्तिशाली होती जा रही है और यदि इसे ठुकरा दिया गया तो किसी प्रकारका आन्दोलन अवश्य होगा। इसलिए उसने पूछा:[2]

बड़ी विचित्र बात है कि जिस स्थलपर मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके लिए चिन्ता प्रकट की गई है वहींसे एक वाक्य लेकर उसे मेरी "धुरी-राष्ट्र-समर्थक" मनोवृत्तिके सबूतके तौरपर प्रस्तुत किया गया है।

२१. इसके बाद, १४ अगस्तको वाइसरायके नाम लिखे मेरे पत्रका[3] अंश "अर्थपूर्ण" कहकर उद्धृत किया गया है।

> मैंने जवाहरलाल नेहरूको अपना मापदण्ड माना है। अपने व्यक्तिगत सम्पर्कके कारण उन्हें चीन और रूसके आशंकित विनाशसे मेरी अपेक्षा बहुत अधिक दुःख होता है।

"चीन और रूसके आशंकित विनाश . . . से दुःख", इन शब्दोंको लेखकने रेखांकित किया है और इस अंशपर उसने यह टिप्पणी की है:

> वे पूरे भारतमें ब्रिटिश सेनाकी पृष्ठारक्षी पंक्तिके युद्ध-रत होने और उस अनिवार्यतः मचनेवाली तबाहीकी पूर्व-कल्पना करने लगे।

१. महादेव देसाई द्वारा लिखे
२. इसके बाद जो बातचीत हुई, उसके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ३१९-२०।
३. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४५२।

अपनी आदतके अनुसार लेखकने यहाँ भी पत्रका पूरा प्रासंगिक अंश नहीं दिया है; और न ही पाठकोंकी सुविधाके लिए उस पत्रको परिशिष्टमें दिया है। मैं यहाँ प्रासंगिक अंश दे रहा हूँ:

> एक और बात। भारत सरकार और हमारा दोनोंका घोषित उद्देश्य एक ही है। यदि अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें कहना हो तो वह उद्देश्य है चीन और रूसकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना। भारत सरकारका खयाल है कि उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए भारतको स्वतन्त्र करना जरूरी नहीं है। मेरा खयाल इसके बिलकुल विपरीत है। मैंने जवाहरलाल नेहरूको अपना मापदण्ड माना है। अपने व्यक्तिगत सम्पर्कके कारण उन्हें चीन और रूसके आशंकित विनाशसे मेरी अपेक्षा — और मैं तो कहूँगा कि आपकी अपेक्षा भी — बहुत अधिक दुःख होता है। उस दुःखके कारण उन्होंने साम्राज्यवादके साथ अपने पुराने झगड़ेको भुला देने की कोशिश की।
>
> उन्हें फासीवाद और नाजीवादसे मेरी अपेक्षा ज्यादा डर लगता है। मैंने उनके साथ लगातार कई दिनतक तर्क-वितर्क किया है। उन्होंने मेरे विचारों का इस जोशसे विरोध किया जिसका बयान करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। परन्तु तथ्योंके तर्कने उन्हें निरुत्तर कर दिया। जब उन्होंने स्पष्ट रूपसे समझ लिया कि भारतको स्वतन्त्र किये बिना उन दोनोंकी स्वतन्त्रता खतरेमें पड़ जायेगी, तब वे मान गये। ऐसे शक्तिशाली दोस्त और साथीको कैद करके आपने निस्सन्देह गलती की है।

परिशिष्टमें पूरा पत्र दिया गया है। (देखिए परिशिष्ट ९)[1]।

मैं समझता हूँ कि इस पूरे अवतरणको पढ़ने से जो अर्थ निकलता है वह लेखक द्वारा दिये गये अर्थसे बिलकुल भिन्न है। नीचे मैं 'हरिजन' से कुछ-एक अंश दे रहा हूँ; उनसे इस बातकी और अधिक पुष्टि हो जायेगी कि मुझपर जो "धुरी-समर्थक" या "पराजयवादी" होने का आरोप लगाया गया है वह सर्वथा निराधार है:

> प्र०: क्या यह बात सच है कि इंग्लैण्ड और जापानके प्रति आपका हालका रुख इस मान्यतासे प्रभावित हुआ है कि अंग्रेजों और मित्र-राष्ट्रोंकी इस युद्धमें हार होनेवाली है? . . .
>
> उ०: मुझे यह कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि यह बात सच नहीं है। इसके विपरीत मैंने अभी-अभी 'हरिजन' में लिखा है कि अंग्रेजों को हराना कोई आसान बात नहीं है। हार किस चीजका नाम है यह उन्होंने कभी जाना ही नहीं। . . . ('हरिजन', ७-६-१९४२, पृ० १७७)[2]।

१. इसे यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है; देखिए खण्ड ७६, पृ० ४४८-५३।
२. देखिए खण्ड ७६, पृ० १८६।

"... आर्थिक तथा बौद्धिक दृष्टिसे और वैज्ञानिक कौशलमें अमेरिका इतना ज्यादा बड़ा है कि कोई राष्ट्र या कई राष्ट्र मिलकर भी उसे पराभूत नहीं कर सकते। . . . ('हरिजन', ७-६-१९४२, पृ० १८१)।[1]

२२. यदि अब भी आवश्यकता हो तो इसी आरोपका एक पूर्णतर उत्तर मीराबहनके नाम लिखे मेरे पत्रमें[2] मिल जाता है। यह पत्र मैंने तत्काल बोलकर लिखवाया था और इसे प्रकाशित कराने का कोई विचार नही था। यह पत्र मैंने उनके उन प्रश्नोके उत्तरमें लिखा था जिनसे मुझे ऐसा लगा कि उनके विचारमें जापानका आक्रमण बिलकुल आसन्न है और सम्भावना यही है कि बिना किसी संघर्षके वह विजयी हो जायेगा। मेरे उत्तरसे मेरी मनोवृत्तिके विषयमें कोई शंका नही रह जाती। यह पत्र अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी इलाहाबादमें हुई बैठकके बाद लिखा गया था। और वह मैंने बोलकर स्वर्गीय श्री महादेव देसाईको लिखाया था। मूल पत्र श्रीमती मीराबहनके पास है। मुझे मालूम है कि गत २४ दिसम्बरको उन्होंने लॉर्ड लिनलिथगोको इसी कैम्पसे एक पत्र लिखा था, जिसके साथ मेरे उक्त पत्र-व्यवहारकी नकलें भेजकर उन्होंने उन्हें प्रकाशित करवाने का अनुरोध किया था। अपने पत्रकी उन्हें पहुँच भी नही प्राप्त हुई। मैं आशा करता हूँ कि उनका पत्र बिना पढ़े ही ठिकाने नही लगा दिया गया होगा। मै इसे परिशिष्टमें दे रहा हूँ, ताकि उसे आसानीसे देख लिया जाये। देखिए परिशिष्ट २ (एच)।

२३. मैंने प्रस्तावका जो मसौदा इलाहाबाद भेजा था, उसका वर्णन चूँकि काफी नमक-मिर्च लगाकर किया गया है, इसलिए मै उस प्रस्तावमें से प्रासंगिक अंश यहाँ दे रहा हूँ। इससे स्पष्ट हो जायेगा कि लेखकने जान-बूझकर कांग्रेससे सम्बन्धित हर बातको, जैसा कि मुझे लगता है, केवल बुराईके रूपमें ही देखने की कोशिश की है। आप देखेंगे कि "ब्रिटेन भारतकी रक्षा करने मे असमर्थ है," इस वाक्यके बादका अंश इस प्रकार है:

यह स्वाभाविक है कि वह जो-कुछ करता है अपनी खुदकी रक्षाके लिए करता है। भारत और ब्रिटेनके हितोंमें एक शाश्वत संघर्ष है। परिणामस्वरूप उनके रक्षा-सम्बन्धी विचार भी भिन्न होंगे। ब्रिटिश सरकारको भारतके राजनीतिक दलोंमें कोई विश्वास नहीं है। भारतीय सेना अबतक मुख्य रूपसे भारतको अधीन बनाये रखने के लिए ही रखी गई है। उसे आम जनतासे बिलकुल अलग-थलग रखा गया है और जनता उसे किसी भी तरह अपनी सेना नहीं मान सकती। अविश्वासकी यह नीति अभीतक जारी है और यही कारण है कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षाका कार्य भारतके चुने हुए प्रतिनिधियोंको नहीं सौंपा गया है।

२४. फिर, मसौदेमें से यह वाक्य उद्धृत किया गया है: "यदि भारतको आजाद कर दिया जाता है तो उसका पहला कदम शायद जापानसे समझौतेकी बातचीत करना होगा।" यह वाक्य मसौदेके इन अनुच्छेदोंके साथ-साथ पढ़ा जाना चाहिए:

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० १८२।
२. देखिए खण्ड ७६, पृ० १९१-९३।

यह समिति जापानकी सरकार और जनताको यह विश्वास दिलाना चाहती है कि भारतकी जापान या किसी भी अन्य राष्ट्रसे शत्रुता नहीं है। भारत केवल सभी विदेशी प्रभुत्वसे मुक्ति चाहता है। लेकिन आजादीकी इस लड़ाईमें समितिकी राय है कि भारत विश्वकी सहानुभूतिका स्वागत तो करेगा, लेकिन उसे विदेशी सैनिक सहायताकी आवश्यकता नहीं है। भारत अपनी आजादी अपनी अहिंसात्मक शक्तिसे प्राप्त करेगा और उसी प्रकार उसे कायम रखेगा। इसलिए समिति आशा करती है कि जापान भारतपर आक्रमण करनेकी कोई नीयत नहीं रखेगा। लेकिन यदि जापान भारतपर आक्रमण करता है और ब्रिटेन अपीलपर कोई ध्यान नहीं देता है, तो समिति उन सब लोगोंसे, जो कांग्रेससे दिशा-निर्देशकी अपेक्षा रखते है, आशा करेगी कि वे जापानी फौजोंसे अहिंसात्मक असहयोग करें और उन्हें कोई मदद न दें। जिन लोगोंपर हमला किया गया हो उनका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे आक्रमणकारीको कोई मदद दें। उनका कर्त्तव्य है कि पूर्ण सहयोग करें।

अहिंसात्मक असहयोगके सरल सिद्धान्तको समझना कठिन नहीं है:

१. हम आक्रमणकारीके सामने घुटने न टेकें और उसके किसी आदेश का पालन न करें।

२. हम उससे कोई कृपा न चाहें और न उसके घूसके जालमें फँसें। लेकिन हम उसके प्रति कोई दुर्भावना न रखें और न उसका बुरा चाहें।

३. यदि वह हमारे खेतोंपर कब्जा करना चाहे तो हम उन्हें छोड़नेको तैयार न हों, चाहे उसको रोकने के प्रयत्नमें हमें मरना ही क्यों न पड़े।

४. यदि वह बीमार हो या प्याससे मर रहा हो और हमारी मदद माँगे तो हम उससे इनकार न करें।

५. ऐसी जगहोंपर जहाँ ब्रिटिश और जापानी सेनाएँ लड़ रही हों, हमारा असहयोग व्यर्थ और अनावश्यक होगा।

अभी ब्रिटिश सरकारसे हमारा असहयोग सीमित है। यदि हम उनसे उस समय पूर्ण असहयोग करें जब वे सचमुच लड़ रहे हों तो उसका अर्थ यह होगा कि हम अपने देशको जान-बूझकर जापानियोंके हाथमें देते हैं। इसलिए ब्रिटिश फौजोंके रास्तेमें कोई रुकावट न डालना ही जापानियोंके प्रति हमारे असहयोगके प्रदर्शनका एकमात्र रास्ता होगा। न ही हमें किसी सक्रिय ढंगसे अंग्रेजोंकी मदद करनी चाहिए। यदि हम उनके हालके रुखसे निर्णय करें तो ब्रिटिश सरकार सिर्फ यही चाहती है कि हम बीचमें दखल न दें। इससे ज्यादा कोई मदद वह हमसे नहीं चाहती। वे हमारी मदद सिर्फ गुलामोंकी तरह चाहते हैं और यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

जापानी फौजोंके विरुद्ध असहयोग तो अनिवार्य रूपसे अपेक्षाकृत कम लोगोंतक सीमित होगा और यदि वह पूर्ण और सच्चा हुआ तो वह सफल भी अवश्य होगा, लेकिन स्वराज्यका सच्चा निर्माण भारतके लाखों लोगों द्वारा

पूरे मनसे रचनात्मक कार्यक्रम चलाने में ही निहित है। उसके बिना पूरा राष्ट्र अपनी युगों पुरानी जड़तासे जाग ही नहीं सकता। अंग्रेज चाहे रहें या न रहें, हमारा यह कर्त्तव्य सदा रहेगा कि बेरोजगारी खत्म करें, अमीर और गरीब के बीचकी खाई पाटें, साम्प्रदायिक झगड़े खत्म करें, अस्पृश्यताके भूतको भगायें, डाकुओंका सुधार करें और जनताको उनसे बचायें। यदि करोड़ों लोग राष्ट्र-निर्माणके इस कार्यमें जीवन्त रुचि नहीं लेते तो आजादी निश्चय ही एक स्वप्न बनी रहेगी और वह न अहिंसासे हासिल हो सकेगी, न हिंसासे।

मेरा दावा है कि इस पृष्ठभूमिको देखते हुए मेरी या कार्य-समितिकी मनोवृत्तिको जापान-समर्थक या ब्रिटेन-विरोधी कहना असम्भव है। इसके विपरीत, यहाँ किसी भी प्रकारके आक्रमणका कड़ा विरोध किया गया है और मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंके लिए ठीक चिन्ता प्रकट की गई है। भारतको अविलम्ब स्वतन्त्र करने की माँगके पीछे भी इसी चिन्ताकी प्रेरणा है। यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादके प्रति मेरे प्रबल विरोधकी भावनाकी तलाश हो तो वह तलाश अनावश्यक है, क्योंकि मेरे सभी लेखोंमें यह बिलकुल स्पष्ट है।

२५. गत ७ और ८ अगस्तके अपने भाषणोंके कुछ अंश उद्धृत करके मैं यह विषय समाप्त करना चाहूँगा :

७ अगस्तको हिन्दुस्तानीमें[1] दिये गये भाषणका अंश

फिर आपके अंग्रेजोंके प्रति रवैयेका प्रश्न है। मैंने देखा है कि लोगोंमें अंग्रेजोंके प्रति घृणाका भाव है। वे कहते हैं कि वे अंग्रेजोंके व्यवहारसे तंग आ चुके हैं। भारतकी सामान्य जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा सामान्य ब्रिटिश जनतामें कोई फर्क नहीं मानती। उसके लिए दोनों एक ही हैं। इस घृणाके कारण वे जापानियोंका स्वागत भी कर सकते हैं। यह बहुत खतरनाक बात है। इसका अर्थ यह होगा कि वे एक गुलामीके बदलेमें दूसरी गुलामी स्वीकार कर लेंगे। हमें इस प्रकारकी भावनासे मुक्त होना है। हमारा ब्रिटिश जनतासे कोई झगड़ा नहीं है, हम तो उनके साम्राज्यवादसे लड़ रहे हैं। ब्रिटिश सत्ताके भारतसे हटाये जानेका प्रस्ताव क्रोधजन्य नहीं है। यह माँग इसलिए की जा रही है कि वर्तमान नाजुक स्थितिमें भारत अपनी उचित भूमिका निभा सके। भारत-जैसे बड़े देशके लिए यह कोई सुखद स्थिति नहीं है कि वह केवल अनिच्छापूर्वक दिये गये धन और सामग्रीसे ही युद्धमें मदद दे रहा है जब कि संयुक्त राष्ट्र युद्धमें लड़ रहे हैं। हमारे अन्दर बलिदान और वीरताकी सच्ची भावना तबतक पैदा नहीं हो सकती जबतक कि हम इस युद्धको अपना युद्ध न समझें, जबतक कि हम स्वतन्त्र न हो जायें। मैं जानता हूँ कि जब हम

१. मूल हिन्दुस्तानी भाषण उपलब्ध न होने के कारण इसका अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है।

पर्याप्त आत्म-बलिदान कर देंगे तब ब्रिटिश सरकार भी स्वतन्त्रताको हमसे दूर नहीं रख सकेगी। इसलिए हमें घृणाकी भावनासे मुक्त हो जाना चाहिए। अपने विषयमें तो मैं कह सकता हूँ कि मुझे उनके प्रति कभी भी घृणा या द्वेष नहीं हुआ। सच तो यह है कि मुझे महसूस होता है कि अब मैं अंग्रेजोंका पहलेसे भी अच्छा मित्र हूँ। इसका एक कारण यह है कि आज वे संकटमें हैं। इस कारण मेरी मित्रताका ही तकाजा है कि मैं उन्हें गलतियोंसे बचाने का प्रयत्न करूँ। मुझे तो स्थिति यही दिखाई देती है कि वे पतनके कगार पर खड़े हैं। इसलिए मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उन्हें खतरेसे आगाह कर दूँ, जब कि सम्भव है कि फिलहाल इस बातसे क्रोधित होकर वे उस हाथको काटने तकके लिए तैयार हो जायें जो कि सहारा देनेके लिए मित्रभावसे उनकी ओर बढ़ाया जा रहा है। हो सकता है लोग मेरे इस दावेपर हँसें, किन्तु यह मेरा दावा है। ऐसे समयमें जब मुझे अपने जीवनका सबसे बड़ा संघर्ष आरम्भ करना पड़ सकता है मैं किसीके भी प्रति घृणाका भाव नहीं रखना चाहूँगा। प्रतिपक्षकी कठिनाईका फायदा उठाकर उसपर प्रहार करनेका विचार मुझे बिलकुल घृणास्पद लगता है।

मैं चाहता हूँ कि आप एक बात हमेशा ध्यानमें रखें। आप कभी ऐसा विश्वास न रखें कि ब्रिटेन इस युद्धमें हारनेवाला है। मैं जानता हूँ कि ब्रिटेन कोई कायर राष्ट्र नहीं है। वे लोग हार मानने के बजाय आखिरी घड़ीतक लड़ते रहेंगे। पर मान लीजिए कि युद्ध-नीतिके कारण अंग्रेजोंको मलाया, सिंगा-पुर या बर्माकी ही भाँति भारतको भी छोड़ना पड़े तो उस दशामें हमारी क्या स्थिति होगी? जापानी भारतमें घुस आयेंगे और सामना करनेकी हमारी कोई तैयारी नहीं होगी। भारतपर जापानी अधिकारका यह भी अर्थ होगा कि चीन और सम्भवतः रूसका भी नाश। मैं चीन और रूसकी हारका कारण नहीं बनना चाहता। आज ही पण्डित नेहरू मुझे रूसकी बुरी हालतके विषयमें बतला रहे थे। वे उत्तेजित थे। उन्होंने जो चित्र खींचा वह अभीतक बार-बार मेरे ध्यानमें आ रहा है। मैंने अपने-आपसे प्रश्न किया: "मैं रूस और चीनकी सहायताके लिए क्या कर सकता हूँ?" और मेरे अन्तःकरणने उत्तर दिया, "इस समय तुम्हारी परीक्षा हो रही है। तुम्हारे पास अहिंसा रूपी रसायनके रूपमें एक सर्वरोगहर औषधि है। एक बार उसको आजमाते क्यों नहीं? क्या उसपर तुम्हारा विश्वास नहीं रहा?" इस व्यथाके फलस्वरूप ही ब्रिटिश वापसीके प्रस्तावका जन्म हुआ है। हो सकता है आज अंग्रेज इससे चिढ़ें और इसके कारण मेरे विषयमें गलत धारणा भी बनायें। यहाँतक कि वे मुझे अपना शत्रु भी समझ सकते हैं। पर एक दिन आयेगा जब वे कहेंगे कि मैं उनका सच्चा मित्र था।

८ अगस्तको हिन्दुस्तानीमें[1] दिये गये भाषणका अंश

चीनके विषयमें चिन्ता प्रकट करने के बाद मैंने कहा :

इसलिए मैं फौरन ही स्वतन्त्रता चाहता हूँ, आज ही रात, यदि सम्भव हो तो सूर्योदयसे पहले। इसके लिए अब साम्प्रदायिक एकताकी प्राप्ति तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। यदि इस एकताकी प्राप्ति नहीं होती है तो हमें स्वतन्त्रताके लिए अपेक्षाकृत अधिक बलिदान देने पड़ेंगे। कांग्रेसको स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है अथवा इस प्रयासमें अपने-आपको मिटा देना है। जिस स्वतन्त्रताको पाने के लिए कांग्रेस जूझ रही है वह केवल कांग्रेसियोंके लिए ही नहीं वरन भारतकी समस्त जनताके लिए होगी।

अंग्रेजीके उपसंहारात्मक भाषणसे

यदि संयुक्त-राष्ट्र भारतकी अहिंसापूर्ण विनतीकी सुनवाई नहीं करते और उसके स्वतन्त्रताके जन्मसिद्ध अधिकारको ठुकरा देते हैं तो यह उनकी सबसे बड़ी गलती होगी। आजका अहिंसक भारत इस बहुत पुराने कर्जकी अदायगी के लिए घुटने टेककर उनसे प्रार्थना कर रहा है और यदि वे इसे ठुकरा दें तो उससे रूस और चीनको सांघातिक आघात पहुँचेगा। . . . विपक्षीको झंझट में न डालने की कांग्रेसकी नीतिका प्रणेता मैं स्वयं हूँ, फिर भी आज मैं कठोर भाषामें बोल रहा हूँ। किन्तु मेरी उस नीतिके साथ सदैव "राष्ट्रकी प्रतिष्ठा और सुरक्षा" की शर्त जुड़ी रहती थी। यदि मैं डूब रहा हूँ और कोई मेरी गरदन पकड़ ले तो क्या मैं अपने-आपको उस मृत्यु-पाशसे छुड़ाने के लिए जूझूँगा नहीं? इसी कारण हमारी प्रस्तुत माँग और पूर्ववर्ती घोषणाओंमें कोई असंगति नहीं है। . . . लोकतन्त्रकी अनेक कमियोंके बावजूद मुझे सदैव ही फासीवाद और लोकतन्त्रमें आधारभूत अन्तर नजर आया है। और जिस ब्रिटिश साम्राज्यवादके विरुद्ध आज मैं लड़ रहा हूँ उसमें और फासीवादमें भी मुझे मूलभूत अन्तर दिखाई देता है। क्या अंग्रेजोंको भारतसे जितनी अपेक्षा है उतना उन्हें मिल रहा है? आज उन्हें जो-कुछ मिल रहा है वह ऐसे भारतसे मिल रहा है जिसे उन्होंने दास बना रखा है। जरा सोचिए कि यदि भारत युद्धमें एक स्वतन्त्र सहायकके रूपमें योग दे तो कितना फर्क आ जायेगा? यदि स्वतन्त्रता आनी है, तो उसे आज ही आ जाना चाहिए, क्योंकि भारत उस स्वतन्त्रताका उपयोग रूस और चीन समेत मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके लिए कर सकेगा। बर्मा रोड एक बार फिर खुल जायेगी और रूसकी वास्तवमें कारगर सहायता करने का रास्ता साफ हो जायेगा।

मलाया या बर्मामें अंग्रेज सेना आखिरी सैनिकके कट मरने तक नहीं लड़ी थी। उनकी वहाँकी कार्यवाहीको 'एक उत्कृष्ट निष्क्रमण' कहा गया है। परन्तु ऐसा करना मेरे बसकी बात नहीं है। मैं भला कहाँ जा सकता हूँ

१. मूल हिन्दुस्तानी भाषण उपलब्ध न होने के कारण इसका अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है।

और भारतकी चालीस करोड़ जनताको मैं कहाँ ले जाऊँगा? इस अपार जनसमूहमें विश्व-उद्धारके महान उद्देश्यके लिए तबतक उत्साह नहीं आ सकता जबतक कि इसे स्वतन्त्रताका स्पर्श और अनुभव न हो जाये। आज उनमें जीवनका स्पन्दन नहीं रह गया है। उनके जीवनका हनन कर दिया गया है। यदि उनकी आँखोंकी चमक वापस लानी है तो कलके बदले आज ही स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। कांग्रेसको करो या मरो का प्रण लेना होगा।

इन उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैंने कांग्रेसको अंग्रेजी सत्ताके हट जाने की माँग करने की सलाह क्यों दी थी। इन उद्धरणोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि अहिंसा — अर्थात् प्रत्याघात किये बिना स्वय कष्ट-सहन करना और आत्म-बलिदान करना — इस आन्दोलनका मूलाधार थी।

२६. मैंने ब्रिटिश सत्ताकी हट जाने की स्थितिमें भी मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंके भारतमें रहने पर रजामन्दी क्यों दिखाई, इस बातका समुचित कारण ढूँढ़ने में लेखकको कठिनाई हुई। यदि लेखकने खुले मनसे देखा होता तो उसे कोई कठिनाई नही होती। मेरा स्पष्टीकरण तो मौजूद था। उसके पीछे मौजूद ईमानदारीपर शक करने का तबतक कोई कारण नही था जबतक कि इसके विरुद्ध कोई निश्चित साक्ष्य न मिल जाता। मैंने कभी इस बातका दावा नहीं किया है कि मैं कोई गलती कर ही नही सकता अथवा मेरे पास सामान्य लोगोंसे अधिक बुद्धि है।

२७. लेखकका कहना है कि श्री गांधीने राजाजी द्वारा उठाई गई इस कठिनाईका कोई "सन्तोषजनक समाधान" कभी भी जनताके सामने प्रकट नही किया कि यदि मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ भारतमें तैनात रहें किन्तु भारतकी असैनिक सत्ता ब्रिटिश सरकारके हाथोंमें न हो तो इसका मतलब "ब्रिटिश सरकारको पहलेसे भी बदतर रूपमें फिरसे प्रतिष्ठित कर देना होगा।" इसलिए लेखकका कहना है कि इस समस्याका "समाधान ऐसा था जिसे उन्होंने (अर्थात् मैंने) गुप्त ही रहने देना बेहतर माना।" और वह आगे लिखता है :

इस समस्याके श्री गांधीके व्यक्तिगत समाधानकी तफसीलें तो केवल अनुमानका ही विषय बनी रहेंगी, किन्तु एक स्पष्टीकरण फौरन मनमें आता है, जो उपर्युक्त स्थितिके लिए तर्कसंगत है। वह स्पष्टीकरण — जिसकी सम्भावना ऊपर बताई जा चुकी है — यह है कि अपनी योजनामें श्री गांधी द्वारा इस समाधानकी स्वीकृतिके पीछे मुख्यतः तो अमेरिकाका समर्थन पाने के हेतुकी प्रेरणा थी और गौण रूपसे कार्य-समितिके विरोधी सदस्योंको सन्तुष्ट करने का प्रयोजन था। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने ऐसी परिस्थितिकी कल्पना की थी या उन्हें पैदा कर देने का मंसूबा बाँध रखा था जिसमें यह अनुमति अर्थहीन बन जाती; अर्थात् यह ऐसी परिस्थिति होती जिसमें या तो सेनाएँ हट जाने पर मजबूर हो जातीं या वे यदि यहाँ रहतीं तो बिलकुल निष्प्रभाव होतीं।

यह किस तरहकी अटकलबाजी है, कहना कठिन है। शायद लेखकने जिस गोपनीयताकी बात कही है वह कार्य-समितिके सदस्योंसे भी गोपनीय ही रहनी थी। अगर नही, तो मित्र-शक्तियोंके साथ जो धोखेबाजी की जानी थी उसके साझीदार

वे भी माने जायेंगे। ऐसी धोखेबाजीके बड़े हैरतअंगेज परिणाम निकलेंगे। मान लीजिए कि ब्रिटिश सरकारने भारतमें अपनी सारी सत्ताका त्याग कर दिया है और स्वतन्त्र भारतकी सरकार तथा मित्र-शक्तियोंके बीच हुए समझौतेके अनुसार उनकी सेनाएँ भारतमें बनी हुई हैं। इस मान्यतामें सहज ही यह मान्यता भी समाहित है कि यह समझौता हिंसक या अहिंसक किसी प्रकारके दबावके बिना और मात्र अंग्रेजों द्वारा भारतकी स्वतन्त्रताको मान्य करने की आवश्यकताकी स्वीकृतिके फलस्वरूप हुआ है। यह भी मान लीजिए कि वह रहस्य इस सबके दौरान मेरे अन्दर ही छिपा रहा है, और मैं सहसा इसे स्वतन्त्र भारतीय सरकार और इसलिए दुनियापर प्रकट कर देता हूँ, और भारत सरकार उस समझौतेको विफल करने की मेरी योजनापर अमल करती है, तो इसका परिणाम क्या होगा? जबरदस्त सैनिक शक्तिसे सम्पन्न मित्र-राष्ट्र मेरा सिर ले लेंगे — जो इस अपराधका न्यूनतम दण्ड ही होगा — और भारत सरकारको अपने सर्वथा उचित कोपका भाजन बनायेंगे तथा उसकी स्वतन्त्रता समाप्त कर देंगे; और चूँकि वह स्वतन्त्रता सैनिक शक्तिके बलपर नहीं, बल्कि मात्र सद्विवेककी शक्तिके जोरपर हासिल की हुई होगी, इसलिए वे भारतके लिए उस खोई हुई स्वतन्त्रताको पुनः प्राप्त करना जिस हदतक उनसे होगा उस हदतक असम्भव बना देंगे। इस विचारसरणीको मुझे अब और आगे नहीं खींचना चाहिए। अगर लेखकका कथन सही है तो उससे निर्विवाद रूपसे यह भी सिद्ध हो जायेगा कि हम सभी षड्यन्त्रकारियोंको भारतकी दासताकी मुक्तिकी या जनसाधारण की भलाईकी नहीं, बल्कि केवल अपने ही तुच्छ स्वार्थोंकी चिन्ता थी।

२८. जो कठिनाई राजाजी ने बताई और जिसपर लेखकने "गुप्त प्रयोजन" की सम्भावना बताने के लिए जोर दिया है, उसकी ओर एक पत्र-लेखकने कहीं ज्यादा जोरदार ढंगसे मेरा ध्यान आकर्षित किया था। १९ जुलाई, १९४२ के 'हरिजन' के पृष्ठ २३२-३३ पर मैंने उसपर विचार किया था। वह सम्पूर्ण लेख प्रश्नोत्तरके रूपमें है; और चूँकि वह लेखकके आक्षेपोंसे सम्बन्धित है, इसलिए उसे मैं यहाँ बिना किसी संकोचके उद्धृत कर रहा हूँ[1] . . .।

मैंने जो स्पष्टीकरण दिया है — उदाहरणार्थ, मेरे दूसरे और चौथे उत्तरोंमें और जो लेखकके सम्मुख था, उसकी उसने उपेक्षा क्यों कर दी? मेरे स्पष्टीकरणका सार यही निकलता है कि जिस प्रकार मैं मित्र-राष्ट्रोंसे यह विश्वास रखूँगा कि वे स्वतन्त्र भारत सरकार द्वारा समझौतेके अपने दायित्वोंके पालनका भरोसा रखकर चलेंगे उसी प्रकार मैं इस बातका भरोसा रखूँगा कि वे अपनी ओरसे सन्धिकी शर्तों को अक्षरशः निभायेंगे। ब्रिटिश सत्ताकी वापसी चाहे जब हो, वह इतनी सम्मानपूर्ण होगी कि उसके बाद दोनों पक्षोंको जो-कुछ भी करना होगा, वह अत्यन्त सद्भावना और पूरी-पूरी ईमानदारीके साथ किया जायेगा। मैं मानता हूँ कि उस समस्याका यह समाधान पूर्णतः बोधगम्य और सन्तोषजनक है।

२९. जहाँतक गोपनीयताकी बात है, मैं ८ अगस्तको अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सम्मुख हिन्दुस्तानीमें दिये गये अपने भाषणका अंश दे रहा हूँ:

१. यहाँ नहीं दिया गया है; देखिए खण्ड ७६, पृ० ३२३-२६।

> लेकिन कोई भी काम गुप्त रूपसे नहीं करना चाहिए। यह एक खुली बगावत है। इस संघर्षमें गुप्त रूपसे काम करना पाप है। स्वतन्त्र आदमी किसी गुप्त आन्दोलनमें शामिल नहीं होता। सम्भव है कि स्वतन्त्र होने के बाद आप मेरी सलाहके विरुद्ध अपनी खुफिया पुलिस रखें। लेकिन वर्तमान संघर्षमें हमें खुल्लमखुल्ला कार्यवाही करनी है और अपनी छातीपर गोलियाँ खानी हैं और भागना नहीं है। इस प्रकारके संघर्षमें किसी भी प्रकारकी गोपनीयता पाप है और सावधानीपूर्वक उससे बचना होगा। देखिए परिशिष्ट १ (सी) भी।

जो व्यक्ति गोपनीयताको पाप समझकर हमेशा उससे बचता रहा है उसपर इसी दोषका आरोप लगाया जाये, यह उसके साथ ज्यादती है — खासकर जब कि आरोपके पक्षमें कोई भी सबूत न हो।

३०. लेखक आगे लिखता है :

> . . . इसे मात्र संयोगकी बात नहीं कहा जा सकता कि जिन दिनों श्री गांधी 'हरिजन' में "भारत छोड़ो" के सिद्धान्तका पल्लवन कर रहे थे उसी समय हर प्रकारकी "सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति" की निन्दा भी कर रहे थे। (एक ओर श्री गांधीको सम्पत्तिको बचानेकी, और ध्यातव्य है, मुख्यतः औद्योगिक सम्पत्तिको बचाने की चिन्ता थी, जब कि यह जरूरी हो सकता था कि किसी भी हालतमें शत्रुओंको उनका लाभ उठाने का मौका न दिया जाये, किन्तु साथ ही दूसरी ओर जापानके प्रति अहिंसक प्रतिरोधमें वे असंख्य भारतीयोंकी बलि देने को तैयार थे। इन दोनों बातोंमें अद्‌भुत वैषम्य है। सम्पत्तिको बचाना आवश्यक है तो शायद यह पूछना भी तर्कसंगत है — किसके लिए?)।

"मात्र संयोगकी बात नहीं" — यह एक ऐसा निरर्थक संकेत है जिसके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं दिया गया है और कोष्ठकोंके अन्दर की गई टिप्पणीके पीछे जो संकेत है उसका आशय स्पष्ट ही है कि मैं सामान्य जनताकी सम्पत्ति और जानकी अपेक्षा अमीरोंकी सम्पत्तिके लिए अधिक चिन्तित था। यह मुझे तथ्योंको जान-बूझकर विकृत करना प्रतीत होता है। मैं नीचे कुछ-एक उद्धरण दे रहा हूँ, जो इससे विपरीत निष्कर्ष देते हैं :

> युद्ध-विरोधीके नाते मेरा तो एक ही उत्तर हो सकता है। मुझे तो आक्रमण या आत्म-रक्षा किसी भी उद्देश्यसे जीवन और धन-सम्पत्तिके ध्वंसमें किसी प्रकारकी वीरता या बलिदानकी भावना दिखाई नहीं देती। अगर मुझे अपनी फसल और अपना घर-द्वार छोड़ना ही पड़े तो मेरा शत्रु उनका उपयोग न कर पाये, इस खयालसे उन्हें नष्ट करने की अपेक्षा तो मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि मैं उन्हें ज्योंका-त्यों छोड़ दूँ, भले ही मेरा शत्रु उनका उपयोग क्यों न करे। यदि मैं भयके वशीभूत होकर नहीं, बल्कि इसलिए कि मैं किसीको अपना शत्रु मानने को तैयार नहीं हूँ — अर्थात् मानव-प्रेमसे प्रेरित होकर — अपनी फसलों और अपने घर-द्वारको ज्योंका-त्यों छोड़ देता हूँ तो उसके पीछे विवेक होगा, बलिदान-वृत्ति होगी और वीरता होगी।

किन्तु, भारतके सम्बन्धमें तो एक व्यावहारिक समस्या भी है। रूसके विपरीत भारतीयोंमें उस अर्थमें विकसित ढंगकी राष्ट्र-भावना नहीं है जिस अर्थमें वह रूसियोंमें है। भारत लड़ नहीं रहा है। हाँ उसके विजेता अवश्य लड़ रहे हैं। ('हरिजन', २२-३-१९४२, पृ० ८८)।

इस खयालसे कि मुझसे लड़नेवाले मेरे भाईको पानी न मिल सके, यदि मैं अपने कुएँमें जहर डाल दूँ या उसे पाट दूँ, तो इसमें मेरी कोई वीरता नहीं है। यहाँ हम यह मान लें कि मैं उसके साथ पुराने ढंगकी प्रचलित पद्धतिसे ही लड़ रहा हूँ। इसी तरह इसमें बलिदान भी नहीं है, क्योंकि यह मुझे शुद्ध नहीं बनाता, और बलिदानके लिए, जैसा कि इसके मूल अर्थमें निहित है, शुद्धि आवश्यक है। यह तो दूसरेका असगुनके लिए अपनी नाक काटने-जैसी बात हुई। पुराने जमानेके सैनिकोंमें लड़ाईके सिलसिलेमें भी मर्यादा-पालनके कुछ नियम प्रचलित थे। कुओंमें जहर डालना और खड़ी फसलोंको बरबाद करना निषिद्ध बातोंमें शामिल थे। लेकिन मेरा यह दावा जरूर है कि अगर मैं अपने कुएँ, फसल और घर-द्वारको ज्योंका-त्यों छोड़ जाता हूँ, तो उसमें वीरता और बलिदानकी भावना है। वीरता इसलिए कि मैं जान-बूझकर अपने सिर यह जोखिम लेता हूँ कि दुश्मन मेरे श्रमके बूते खाये-पीये और मेरा पीछा करे। बलिदान इसमें इसलिए है कि दुश्मनके लिए कुछ छोड़ जाने की भावना मुझे शुद्ध और उदात्त बनाती है।

"मुझे छोड़ना ही पड़े तो", मेरा यह शर्तसूचक वाक्य प्रश्नकर्त्ताके ध्यानमें नहीं रहा। मैंने एक ऐसी परिस्थितिकी कल्पना की है, जिसमें मैं तुरन्त ही मरने को तैयार नहीं हूँ, और इसलिए व्यवस्थित रीतिसे पीछे हटना चाहता हूँ और यह आशा रखता हूँ कि दूसरी व अधिक अनुकूल परिस्थितियोंमें मैं शत्रुके सामने डटकर लड़ सकूँगा। यहाँ जिस चीजका विचार करना है वह प्रतिरोध नहीं, बल्कि अनाजकी फसलों और ऐसी ही दूसरी चीजोंको नष्ट न करने की बात है। प्रतिरोध हिंसक हो या अहिंसक, बहुत सोच-समझकर करना होता है। विचारशून्य प्रतिरोध युद्धकी शब्दावलीमें दिखावटी बहादुरी कहा जायेगा, और अहिंसाकी भाषामें हिंसा या मूर्खता कहलायेगा। पीछे हटना अपने-आपमें प्रायः प्रतिरोधकी एक योजना होती है, और वह महान वीरता और बलिदानकी भूमिका भी हो सकती है। पीछे हटना हर हालतमें कायरता का सूचक नहीं; कायरता तो मौतके डरकी सूचक है। इसमें शक नहीं कि जो वीर होगा, वह अधिकतर तो उसे उसकी सम्पत्तिसे वंचित करने के आक्रमणकारीके प्रयत्नोंका हिंसा या अहिंसासे विरोध करते-करते ही मर मिटेगा; लेकिन अगर उसे तत्काल पीछे हटने में समझदारी मालूम होती है, तो सिर्फ इसी कारण वह कोई कम बहादुर नहीं माना जायेगा। ('हरिजन', १२-४-१९४२, पृ० १०९)।

इस सबमें तो केवल गरीबोंकी सम्पत्तिके लिए ही चिन्ता व्यक्त हुई है। औद्योगिक सम्पत्तिका कोई उल्लेख नहीं है। ऐसी सम्पत्तिको नष्ट न करने के लिए

मैंने अपने कारण भी दिये हैं, जिन्हे आज भी मै बिलकुल सही मानता हूँ। 'हरिजन' के जो अंक मुझे उपलब्ध है उनमें मुझे एक ही टिप्पणी मिली, जिसमें औद्योगिक सम्पत्तिकी चर्चा है। यह टिप्पणी निम्नलिखित है.

> **अगर कारखानें आटा पीसने या तेल पेरने के हों, तब तो मै उन्हें नष्ट नहीं करूँगा। लेकिन अगर युद्ध-सामग्रीके हों तो उन्हें नष्ट करूँगा;... कपड़ेकी मिलोंको मै नष्ट नहीं करूँगा, और मै इस तरहके सारे विनाशका विरोध करूँगा। ('हरिजन', २४-५-१९४२, पृ० १६७)।**

इसका कारण स्पष्ट है। यहाँपर भी चिन्ता कारखानोके मालिकोके लिए नहीं है, बल्कि उस जनताके लिए है जो इन कारखानोंमें तैयार होनेवाली खाद्य सामग्री और कपड़ेका उपयोग करती है। यहाँ यह बात भी याद रखनी चाहिए कि मै सामान्य परिस्थितियोंमें हमेशा ग्रामोद्योगोके हितके लिए इन दोनों प्रकारके कारखानोके खिलाफ लिखता और काम करता रहा हूँ। कारण, मेरा सिद्धान्त यह है कि हाथकी बनी वस्तुओंको ही प्राथमिकता दी जाये। क्योंकि इसमें करोड़ों लोगोंको काम मिल सकता है, जब कि कारखानोंमें केवल कुछ हजार या अधिकसे-अधिक कुछ लाख लोगोंको ही काम मिल सकता है।

३१. इलाहाबाद भेजे गये प्रस्तावके मसौदेके अन्तिमसे पहलेवाले अनुच्छेदके आखिरी वाक्यपर भी ध्यान दिया जाये:

> **लेकिन कांग्रेसकी यह नीति कभी नहीं हो सकती कि जो चीजें जनता की या उसके उपयोगकी हैं वह उनको नष्ट करे।**

उक्त वाक्यके सामने मौजूद होते हुए भी पुस्तिकाके लेखकने सत्यको विकृत कैसे कर दिया, यह बात समझमें नही आती।

३२. जिस अनुच्छेदमें से मैंने लेखककी कोष्ठकोके अन्दर दी गई टिप्पणी उद्धृत की है, उसीमें निम्नलिखित वाक्य भी है:

> **लेकिन हमें उन्हींकी यह स्वीकारोक्ति उपलब्ध है कि वे इस बातका आश्वासन नहीं दे सकते कि अहिंसाके बलपर जापानको रोका जा सकता है। बल्कि ऐसी आशाको उन्होंने "अयुक्तियुक्त अनुमान" कहा है।**

और इस उद्धरणका उपयोग इस निष्कर्षको सिद्ध करने के लिए किया गया है कि भारतको मित्र-राष्ट्रों और जापानका युद्ध-क्षेत्र बनने से बचाने के लिए मैं "उनकी (जापानियोकी) माँगें पूरी करने" के लिए तैयार था। यहाँ मैं वह अंश देना चाहता हूँ जहाँसे यह वाक्यांश लिया गया है। ५ जुलाई, १९४२ के 'हरिजन' में प्रकाशित "ए फैलेसी" ("एक भूल") शीर्षक लेखमें मैंने एक पत्र-लेखकके निम्नलिखित[1] प्रश्न का उत्तर दिया था:

मेरा उत्तर[2] इस प्रकार था:

यहाँ जिस अनुमानका उल्लेख किया गया है वह तो उस पत्र-लेखकका अनुमान था। अनुमान इस प्रकार था. मेरी कार्रवाईके फलस्वरूप उत्पन्न अहिंसाकी जो शक्ति

१ और २. इन्हें यहाँ नहीं दिया गया है; देखिए खण्ड ७६, पृ० २८३-८४।

अंग्रेजोंको वापस जाने के लिए मजबूर कर देने को पर्याप्त होगी वह शक्ति जापानियोंको भारतपर अधिकार करने से रोकने के लिए भी पर्याप्त प्रबल होगी। इसलिए, पत्र-लेखककी रायमें, मुझे अपना वह मूल प्रस्ताव वापस नहीं लेना चाहिए था जिसमें यह कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार भारतसे अपनी सेनाएँ हटा ले। भारतमें ब्रिटिश सेनाएँ जमी न रहें, इसी निमित्त ऐसा अनुमान कर लेना कितना बेतुका है, यह मैं जता चुका हूँ। अहिंसाकी शक्तिमें मेरा विश्वास अडिग है। परन्तु यदि जापानी आक्रमणके खतरेसे निबटने के लिए अंग्रेज भारतको अपना सैनिक अड्डा बनाना आवश्यक समझते हैं तो उन्हें यह करने से रोकने के लिए मैं उनके सामने अपना यह विश्वास नहीं रख सकता।

३३. अपने निष्कर्षकी और पुष्टिके निमित्त लेखकने मेरी उस अपीलको भी उद्धृत किया है जो मैंने जापानियोंसे की थी:

> और आज हमारी हालत यह है कि हमें एक ऐसे साम्राज्यवादका विरोध करना पड़ रहा है जिसे हम आपके साम्राज्यवाद और नाजीवादसे किसी भी कदर कम नापसन्द नहीं करते।

अपनी सुविधाके लिए लेखकने इसके आगेके उन वाक्योंको ही छोड़ दिया है जो उसके निष्कर्षकी पुष्टि करने के बदले उसका पूरा खण्डन करते। वे वाक्य निम्नलिखित हैं:

> ब्रिटिश साम्राज्यवादका विरोध करके हम ब्रिटिश जनताको कोई नुकसान पहुँचाना नहीं चाहते हैं। हम तो उनका हृदय-परिवर्त्तन करना चाहते हैं। ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ हमारी बगावत एक निःशस्त्र बगावत है। हिन्दुस्तानका एक महत्त्वपूर्ण दल विदेशी शासकोंके साथ एक भीषण किन्तु मित्रतापूर्ण लड़ाई लड़ने में लगा है।
>
> लेकिन अपने इस कार्यमें उसे किसी विदेशी सत्ताकी सहायताकी जरूरत नहीं है। अगर आपका यह खयाल हो — जैसा कि मेरी जानकारीके मुताबिक है — कि हमने यह खास समय, जब कि हिन्दुस्तानपर आपका हमला किया ही चाहते है, मित्र-राष्ट्रोंको परेशान करने के लिए चुना है, मैं कहूँगा कि आपका खयाल गलत है। अगर हम ब्रिटेनके संकटसे लाभ उठाना चाहते, तो करीब तीन साल पहले ही, जब लड़ाई छिड़ी ही थी, हम वैसा कर सकते थे। ब्रिटिश हुकूमतको हिन्दुस्तानसे हटाने के हमारे आन्दोलनका कोई गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। सच तो यह है कि हिन्दुस्तानकी आजादीके बारेमें आपकी चिन्ताके जो समाचार हमें मिले हैं, वे यदि विश्वसनीय हों, तो ब्रिटेन द्वारा हिन्दुस्तानकी आजादीको मान लेने के बाद आपके पास हिन्दुस्तानपर हमला करने का कोई बहाना नहीं रह जाना चाहिए। इसके अलावा आपकी इस तथाकथित चिन्ताका चीनपर आपके क्रूर आक्रमणोंके साथ कोई मेल नहीं बैठता।
>
> मैं आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि अगर आप यह मानते हों कि लोग हिन्दुस्तानमें आपका खुशी-खुशी स्वागत करेंगे, तो निश्चित मानिए कि

आपको निराशा ही मिलेगी। अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे हटाने के आन्दोलनका लक्ष्य और उद्देश्य तो यह है कि हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र बनाकर इस लायक बनाया जाये कि वह सब प्रकारकी सैन्यवादी और साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाका डटकर मुकाबला कर सके, फिर चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद हो, चाहे जर्मन नाजीवाद हो, चाहे आपके साँचेमें ढला हुआ कोई वाद हो। अगर हम ऐसा नहीं करते, तो अपनी इस आस्थाके बावजूद कि अहिंसा ही सैनिक वृत्ति और महत्त्वाकांक्षाओंका एकमात्र उपचार है, हम दुनियाके बढ़ते हुए सैन्यीकरणके असहाय और हीन दर्शक बनकर ही रह जायेंगे। व्यक्तिगत रूपसे मुझे इस बातका डर है कि हिन्दुस्तानकी आजादीका ऐलान किये बिना मित्र-राष्ट्र धुरी-राष्ट्रोंके गुटको, जिसने हिंसाको धर्मका-सा गौरव दे दिया है, हराने में कभी समर्थ नहीं हो सकेंगे। मित्र-राष्ट्र आपको और आपके साथियोंको तबतक हरा नहीं सकते, जबतक क्रूरता और युद्ध-कौशलमें भी वे आपको पछाड़ न दें। अगर वे आपके इन तरीकोंका अनुकरण करेंगे, तो निश्चय ही उनकी इस घोषणाका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा कि वे संसारको प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यके लिए बचाना चाहते हैं। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि उनके लिए आपकी क्रूरताके अनुकरणसे बचने की शक्ति प्राप्त करने का बस एक ही उपाय है, और वह यह कि वे 'इसी क्षण' हिन्दुस्तानकी आजादीका ऐलान करें और उसे स्वीकार करें, ताकि असन्तुष्ट हिन्दुस्तानसे जबरदस्ती प्राप्त किया जानेवाला सहयोग स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके स्वेच्छापूर्ण सहयोगमें बदल सके।

ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंसे हमने न्यायके नामपर, उनके अबतकके दावोंके सबूतके तौरपर, और उनके अपने हितकी खातिर अपील की है। आपसे मैं मानवताके नामपर अपील करता हूँ। मुझे यह देखकर ताज्जुब होता है कि आप यह नहीं समझ पा रहे हैं कि क्रूरतापूर्ण युद्ध किसी एककी बपौती नहीं है। अगर मित्र-राष्ट्र आपको न हरा सकें तो दूसरी कोई ताकत आपके तरीकेसे बढ़िया तरीके निकालकर आपके ही हथियारसे आपको हरा देगी। अगर आप जीत भी गये, तो अपने देशवासियोंके लिए ऐसी कोई विरासत नहीं छोड़ जायेंगे जिसपर वे गर्व कर सकें। इन क्रूर कर्मोंका स्तुतिगान करने में उन्हें गर्व अनुभव नहीं हो सकेगा, फिर भले ही आपके ये क्रूर कर्म कितनी ही निपुणताके साथ क्यों न किये गये हों।

अगर आपकी जीत भी हुई, तो उससे यह साबित नहीं होगा कि आपका पक्ष सही था। उससे तो सिर्फ यही साबित होगा कि आपकी संहारक-शक्ति श्रेष्ठ थी। स्पष्ट ही यह बात मित्र-राष्ट्रोंपर भी लागू होती है — बशर्ते कि वे हिन्दुस्तानको 'अभी' स्वतन्त्र करने का न्याय्य और पुण्य कार्य, जो एशिया और आफ्रिकाके दूसरे सभी पराधीन देशोंको भी इसी तरह स्वतन्त्र करने की पूर्वसूचना और वचन होगा, न करें।

> ब्रिटेनसे जो अपील हमने की है, उसमें हमने यह भी कहा है कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंको अपनी फौजें हिन्दुस्तानमें रखने देगा। हमारी यह तजवीज इस बातका सबूत है कि हम मित्र-राष्ट्रोंको उनके कार्यमें किसी प्रकार की हानि पहुँचाना नहीं चाहते। अपनी इस तजवीजके जरिये हम आपको यह भी जताना चाहते हैं कि कहीं भूलसे आप यह न समझ लें कि ब्रिटेन के हटते ही आप आसानीसे हिन्दुस्तानमें अपना आसन जमा सकेंगे। यहाँ यह दोहराने की तो जरूरत ही नहीं कि अगर आपने ऐसा कोई खयाल अपने दिलमें रखा और उसपर अमल किया, तो हमारा देश जितनी भी ताकत बटोर सकेगा उतनी ताकतके साथ आपका मुकाबला करने में हरगिज न चूकेगा। मैं आपसे यह अपील इस आशाके साथ कर रहा हूँ कि सम्भव है, हमारे इस आन्दोलनका आपपर और आपके साथियोंपर भी सही असर पड़े और वह आपको व आपके साथियोंको उस मार्गसे विमुख कर दे जो नैतिक दृष्टिसे सचमुच आपके सर्वनाशका कारण बनेगा और जिससे मनुष्य मनुष्य नहीं रह जायेंगे बल्कि हृदयहीन जड़यन्त्र बन जायेंगे।
>
> अपनी अपीलका ब्रिटेनकी ओरसे जवाब मिलने की मुझे जितनी आशा है, उसके मुकाबले आपकी ओरसे जवाब मिलने की आशा बहुत ही कम है। मैं जानता हूँ कि अंग्रेजोंमें न्याय-बुद्धिका नितान्त अभाव नहीं है और वे मुझे पहचानते भी हैं। मगर मैं आपको इतना नहीं जानता कि आपके बारेमें कोई राय बना सकूँ। आपके विषयमें जितना-कुछ मैंने पढ़ा है, उससे तो मुझे यही मालूम हुआ है कि आप तलवारको छोड़ और किसीकी नहीं सुनते। काश, यह सब गलत हो और ये सारी बातें आपको बदनाम करने के लिए ही लिखी गई हों, और मैं आपके हृदयके किसी सही तारको छू सकूँ! कुछ भी हो, मनुष्य-स्वभावकी संवेदनशीलतामें मेरा अटूट विश्वास है। अपने इसी विश्वासके बलपर मैंने हिन्दुस्तानमें जल्दी ही शुरू होनेवाले एक आन्दोलनकी कल्पना की है, और इसी विश्वासने मुझे आपके नाम यह अपील करने को प्रेरित किया है। ('हरिजन', २६-७-१९४२, पृ० २४० तथा उसके बाद)।

मैंने यह लम्बा उद्धरण इस कारण दिया है कि यह लेखकके प्रच्छन्न आरोपों-का पूरा-पूरा उत्तर है और पिछले ८ अगस्तके प्रस्तावमें जिस आन्दोलनकी कल्पना थी, उसके सम्बन्धमें मेरी विचार-धाराका सुस्पष्ट परिचायक भी। किन्तु लेखकके तरकशमें बाणोंकी कमी नहीं है। मैं "उनकी (जापानियोंकी) माँगें मानने" को तैयार था, अपने इस निष्कर्षकी पुष्टिके लिए वह आगे कहता है:

> केवल किसी प्रबल भावावेशके प्रभावमें ही उन्होंने (मैंने) इस प्रकार झुक जाने की बात सोची होगी। और लगभग असंदिग्ध रूपसे यह भावावेश भारतको युद्धकी विभीषिकासे बचाने की कामना ही था।

दूसरे शब्दोंमें, मैं ब्रिटिश शासनके बदले जापानी शासनको स्वीकार कर लेता। मेरी अहिंसा इससे कहीं अधिक सख्त मिट्टीकी बनी हुई है। 'हरिजन' में मैंने स्पष्टतम

रूपसे कई बार लिखा है कि ब्रिटिश प्रभुत्व-जैसी घोर विभीषिकाका अन्त करने के लिए मैं युद्धकी सभी विभीषिकाओंको सहने को तैयार हूँ। ऐसे लेखोंको देखते हुए केवल कोई पूर्वाग्रही ही मेरे शब्दोंमें से ऐसा भावावेश ढूँढ़ निकालेगा। मैं ब्रिटिश प्रभुत्वके प्रति धैर्य खो बैठा हूँ, क्योंकि मुझमें किसी भी प्रकारके प्रभुत्वके प्रति धैर्य नहीं है। मैं तो केवल एक ही "प्रबल भावावेशके प्रभाव" में हूँ और वह है भारतकी स्वतन्त्रता। लेखकने मुझपर वह अशोभनीय भावावेश आरोपित करने के साथ इस बातको भी स्वीकार किया है। और इस प्रकार उसने अपने ही मुँहसे स्वयंको दोषी ठहरा दिया है।

३४. अभियोग-पत्रके १४वें पृष्ठपर लेखक कहता है:

> और अन्तमें श्री गांधीके वे प्रसिद्ध शब्द हैं, जो उन्होंने वर्धामें पत्रकारोंके सम्मेलनमें[1] १४ जुलाई, १९४२ को कार्य-समिति द्वारा पारित प्रस्तावके उपरान्त कहे थे। उनसे स्पष्ट हो जाता है कि उस आरम्भिक चरणमें भी वे एक निर्णायक संघर्षके लिए कृतसंकल्प थे:
>
> "प्रस्तावमें पीछे हटने या समझौते की बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। एक और मौकेका कोई सवाल पैदा नहीं होता। आखिर यह एक खुला विद्रोह है।"
>
> इन शब्दोंमें उन लोगोंको भी उत्तर मिल जाना चाहिए जिन्होंने सरकार पर दोषारोपण किया है कि उसने श्री गांधी और कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारी करके संकटकी स्थितिको बुलावा दिया और जिन्होंने यह भी कहा है कि श्री गांधीने अपने बम्बईके भाषणमें जिस मोहलतकी बात की थी उसका उपयोग समझौता-वार्त्ताके लिए होना चाहिए था, जब कि इससे एक महीने पहले ही श्री गांधी कह चुके थे कि "पीछे हटने या समझौतेकी बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है।" इसके अतिरिक्त जहाँ वर्धा प्रस्तावमें इस बातकी धमकी ही थी कि यदि कांग्रेसकी माँगें पूरी नहीं की गईं तो जन-आन्दोलन होगा, बम्बईके प्रस्तावमें इससे भी आगे बढ़कर बात कही गई।
>
> इसमें अब मात्र आन्दोलनकी धमकी नहीं थी, जिसे आरम्भ करने में विलम्ब लग सकता था। उसके बजाय अब उसमें आन्दोलनकी मंजूरी दी गई थी, और यदि वह आन्दोलन छेड़ने में कोई विलम्ब करने का इरादा था तो जो-कुछ कहा जा चुका है उसको ध्यानमें रखते हुए क्या ऐसा मानने का पूरा कारण नहीं है कि उस अभिप्रेत विलम्बका उपयोग बातचीतके लिए नहीं, बल्कि उस योजनाको अन्तिम रूप देने के लिए होना था जिसको कार्यरूप देने के लिए उसके प्रणेता कृतसंकल्प तो थे, किन्तु जिसके लिए अभीतक पूरी तैयारी शायद नहीं हो पाई थी?

मैं अभी यह दिखाऊँगा कि मेरे तथाकथित "प्रसिद्ध शब्द" एक तो विकृत रूपमें पेश किये गये हैं, और दूसरे, उनमें ऐसे शब्द प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं जो

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३२७-३१।

वर्धाकी उस भेंट-वार्त्ताकी १९ जुलाई, १९४२ के 'हरिजन' में प्रकाशित प्रामाणिक रिपोर्टमें नहीं मिलते। यहाँ मैं वर्धाकी भेंट-वार्त्ताका वह पूरा अंश दे रहा हूँ जिसमें वह उद्धरण, जो मेरे विचारमें विकृत किया गया है, अपने सही रूपमें मिलता है:

"क्या आपको उम्मीद है कि अंग्रेज सरकार समझौतेकी बातचीत शुरू कर सकती है?"

"कर तो सकती है, लेकिन वह किसके साथ करेगी, सो मैं नहीं जानता। क्योंकि अब सवाल इस या उस दलको राजी करने का नहीं है। क्योंकि हमारी माँग तो यह है कि किसी भी दलकी इच्छाओंका कोई खयाल किये बिना, ब्रिटिश हुकूमत हिन्दुस्तानसे बिना शर्त हट जाये। अतएव यह माँग अपने-आपमें एक न्यायसम्मत माँग है। बेशक, यह हो सकता है कि अंग्रेज हिन्दुस्तानसे हटने के बारेमें वार्त्ता चलायें। अगर उन्होंने ऐसा किया, तो वह उनके लिए शोभाकी बात होगी। उस हालतमें हिन्दुस्तान छोड़कर जाने का मुद्दा मुख्य मुद्दा न रहेगा। अगर ब्रिटेन, विभिन्न पक्षोंका कोई खयाल किये बिना, हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको मंजूर करने की बुद्धिमत्ता दिखाये, भले ही देर से ही सही, तो सभी कुछ हो सकता है। लेकिन जिस मुद्देपर मैं जोर देना चाहता हूँ, वह तो यह है कि <u>हिन्दुस्तान छोड़कर जाने के प्रस्तावमें समझौतेकी बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है</u>। (इन्हें मैंने ही रेखांकित किया है)। या तो वे हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको स्वीकार करें, या न करें। स्वीकृतिके बाद बहुत-सी बातें हो सकती हैं। क्योंकि अपने इसी एक कार्य द्वारा ब्रिटिश प्रतिनिधि पूरी परिस्थिति बदल चुके होंगे, और देशके लोगोंकी उस आशाको फिरसे जिला चुके होंगे, जो न जाने कितनी बार चूर-चूर की गई है। इसलिए जब भी ब्रिटिश जनताकी ओरसे वह महान् कार्य किया जायेगा, वह दिन हिन्दुस्तान और संसारके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायेगा। और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, युद्धके भविष्यपर उसका गहरा प्रभाव पड़ सकता है।" ('हरिजन', १९-७-१९४२, पृ० २३३)।

इसी उद्धरणका अभियोग-पत्रमें दिया गया दूसरा रूप रेखांकित शब्दोंमें नीचे दे रहा हूँ:

<u>प्रस्तावमें पीछे हटने या समझौतेकी बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है</u>।

मेरा कहना यह है कि जिस सन्दर्भसे अलग करके इसे विकृत रूपमें पेश किया गया है उससे अलग कर दिये जाने के बाद यह बिलकुल बेमानी हो गया है। मैं इस प्रश्नका उत्तर दे रहा था: "क्या आपको उम्मीद है कि अंग्रेज सरकार समझौते-की बातचीत शुरू कर सकती है?" इस प्रश्नके उत्तरके तौरपर यह वाक्य 'हरिजन' में जिस रूपमें छपा है — अर्थात् "हिन्दुस्तान छोड़कर जाने के प्रस्तावमें समझौतेकी

बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है"—उस रूपमें यह पूरी तरह समझमें आने लायक है और अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती वाक्योंसे मेल खाता है।

३५. अभियोग-पत्रमें इस विकृत किये गये वाक्यमें दो और वाक्य जोड़ दिये गये हैं :

> एक और मौकेका कोई सवाल पैदा नहीं होता। आखिर यह एक खुला विद्रोह है।

रेखांकन लेखकने किया है। मुलाकातका जो विवरण 'हरिजन' में प्रकाशित हुआ है उसमें ये दो वाक्य कहीं नहीं मिलते। "एक और मौकेका कोई सवाल पैदा नहीं होता"—इस वाक्यका समझौता-वार्ता-सम्बन्धी अनुच्छेदमें कोई स्थान नहीं हो सकता, खासकर वार्त्ताके प्रति मेरे उस रुखको देखते हुए जो मेरे उत्तरसे प्रकट होता है। जहाँतक "खुले विद्रोह" का सम्बन्ध है, मैंने दूसरे गोलमेज सम्मेलनमें भी इन शब्दोंका प्रयोग किया था, लेकिन उनके साथ अहिंसक विशेषण जोड़कर। लेकिन भेंट-वार्त्तामें इसका कहीं स्थान नहीं है।

३६. मैंने यह जाननेकी बड़ी कोशिश की है कि ये दो वाक्य लेखकके उद्धरण में कैसे दाखिल हो गये। सौभाग्यसे, २६ जूनको जब यह उत्तर टाइप किया जा रहा था, उसी समय 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की फाइल पहुँची, जो श्री प्यारेलालने मँगवाई थी। उसके १५ जुलाई, १९४२ के अंकमें निम्नलिखित सन्देश प्रकाशित हुआ है :

> वर्धागंज, १४ जुलाई
>
> सेवाग्राममें कांग्रेस प्रस्तावपर पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ मुलाकातमें प्रश्नोंके उत्तर देते हुए महात्मा गांधीने कहा कि "प्रस्तावमें पीछे हटने या समझौतेकी बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है; या तो वे हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता स्वीकार करें या न करें।" उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि वे जो चाहते हैं वह कागजी तौरपर नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूपसे भारतकी स्वतन्त्रताकी स्वीकृति है।
>
> यह पूछे जाने पर कि क्या उनके आन्दोलनसे संयुक्त राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नों में बाधा नहीं पड़ेगी, महात्मा गांधीने कहा : "इस आन्दोलनका उद्देश्य केवल चीनकी ही सहायता करना नहीं, बल्कि मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यमें भी शरीक होना है।"
>
> जब महात्मा गांधीका ध्यान कॉमन्स-सभामें श्री एमरीके सबसे ताजे वक्तव्यकी ओर आकृष्ट किया गया तो उन्होंने कहा : "मुझे पूरी आशंका है कि हमें और भी कठोर शब्दोंमें उस भाषाकी पुनरावृत्ति सुननेका दुर्भाग्य प्राप्त होनेवाला है, लेकिन उससे उस राष्ट्र या समूहके कदम रुकनेवाले नहीं हैं जो आगे बढ़नेको कृतसंकल्प है।"
>
> महात्मा गांधीने आगे कहा : "एक और मौकेका कोई सवाल पैदा नहीं होता। आखिर यह एक खुला विद्रोह है।"
>
> यह पूछने पर कि आन्दोलनका स्वरूप क्या होगा, महात्मा गांधीने कहा : "कल्पना तो व्यापकतम पैमानेपर जन-आन्दोलनकी है। उसमें वह सब शामिल

होगा जो एक जन-आन्दोलनमें शामिल किया जा सकता है या जो जनताके बसका है। यह विशुद्ध अहिंसात्मक ढंगका जन-आन्दोलन होगा।"

यह पूछने पर कि इस बार क्या वे गिरफ्तार होंगे, उन्होंने कहा: "यह तो बहुत मामूली-सी चीज है। इस बार गिरफ्तार होने-जैसी कोई बात नहीं है। मेरा इरादा इस आन्दोलनको संक्षिप्त और तेज बनाने का है।" —ए० प्रे० इं०

३७. यह सन्देश मेरी आँख खोलनेवाली चीज है। मेरे लेखों या भाषणोंकी गलत रिपोर्टें या नमक-मिर्च मिले सार-संक्षेप अक्सर दिये जाते रहे हैं, जिनके कारण मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ा है, यहाँतक कि भीड़ द्वारा मार डाले जाने तक की नौबत मेरे सामने आ चुकी है।[1] यह गलतबयानी उतनी बुरी तो नहीं है, फिर भी काफी बुरी है। एसोशिएटेड प्रेसके इस सार-संक्षेपसे, अगर सम्भव हो तो, इस रहस्य-की कुंजी मिल जाती है कि लेखक द्वारा दिये गये गलत उद्धरण और अतिरिक्त वाक्योंका स्रोत क्या है। अगर उसने इस साधन-सूत्रका उपयोग किया तो सवाल यह उठता है कि जब उसके सामने १९ जुलाईके 'हरिजन' में प्रकाशित पूरी भेंट-वार्ताका प्रामाणिक पाठ मौजूद था तब उसने प्रयत्नपूर्वक एक सन्दिग्ध और अनधिकृत स्रोतका उपयोग क्यों किया। उसने मेरे विरुद्ध अपना पक्ष तैयार करने में 'हरिजन' में प्रकाशित सामग्रीका भरपूर रूपसे असम्बद्ध और पूर्वग्रहपूर्ण उपयोग किया है। अभियोग-पत्रके पृष्ठ १३ पर उसने निम्नलिखित ढंगसे दोषारोपण शुरू किया है, जिसकी चरम परिणति पृ० १४ पर दिये गये उद्धरणके रूपमें होती है।

यहाँसे श्री गांधीके संघर्ष-सम्बन्धी विचार बहुत तेजीसे विकसित होते गये। इस विषयपर उन्होंने इतना अधिक लिखा है कि उसे पूरा-पूरा उद्धृत नहीं किया जा सकता। परन्तु 'हरिजन' के निम्नलिखित अंश स्पष्ट रूपसे प्रकट कर देते हैं कि उनकी विचारधारा किस दिशामें अग्रसर हो रही थी।

उसी पृष्ठपर उसने 'हरिजन' में प्रकाशित उपर्युक्त भेंट-वार्ताकी रिपोर्टमें पृ० २३३ में दी गई सामग्रीमें से कुछ अंश उद्धृत किये हैं। इसलिए मुझे इस निष्कर्ष पर पहुँचने का अधिकार है कि विचाराधीन उद्धरण भी 'हरिजन' से लिया गया था। पर अब यह प्रकट हो चुका है कि ऐसा नहीं किया गया। इसका क्या कारण था? यदि उसने ये तीनों वाक्य एसोशिएटेड प्रेसकी रिपोर्टसे ही लिये है, तो उन्हें उद्धृत करते हुए उसने यह दिखानेवाले चिह्न क्यों नही लगाये कि वे एक-दूसरेसे दूर पड़ते हैं, क्योंकि एसोशिएटेड प्रेसकी रिपोर्टमें वे अलग-अलग स्थलोंपर आये हैं? मैं अब इस विषयमें और खोज-बीन करना नहीं चाहता। इससे मुझे गहरा दुःख पहुँचा है। भेंट-वार्ताके प्रामाणिक विवरणमें जो दो वाक्य आये ही नहीं, वे एसोशिएटेड प्रेसकी संक्षिप्त रिपोर्टमें किस प्रकार पहुँच गये, यह मैं नहीं जानता। अगर सरकार चाहे तो इसकी छान-बीन करा सकती है।

१. देखिए खण्ड ३९, पृ० १३३, १४८-५२।

३८. चूँकि लेखकका उद्धरण ही खामीसे भरा हुआ है, अतः इसपर आधारित निष्कर्ष और अनुमान भी धराशायी हो जाते हैं। अतः मेरे विचारमें अभियोगकी पात्र सरकार ही है, क्योंकि उसने संकटकी स्थिति "पैदा करने की जल्दबाजी" ही नहीं की, बल्कि पूर्व-नियोजित रूपसे धावा बोलकर संकटको आमन्त्रित भी किया। पूरे भारतमें गिरफ्तारीकी जो लम्बी-चौड़ी तैयारियाँ थी वे रातों-रात तो नही की गई थी। वर्धा और बम्बईके प्रस्तावके बीच इस दृष्टिसे भेद करना गलत है कि प्रथम प्रस्तावमें सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी 'धमकी' ही थी और दूसरेमें उसकी 'मंजूरी' थी। पहले प्रस्तावपर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अनुमोदन मिलने की आवश्यकता-भर थी, किन्तु दोनोंका परिणाम एक ही था, अर्थात् यह कि दोनोंमें मुझे यह अधिकार दिया गया था कि समझौतेकी बातचीतके असफल होने पर मैं आन्दोलनका नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन करूँ। परन्तु गत ८ अगस्तके प्रस्तावके फलस्वरूप यह आन्दोलन आरम्भ नही हुआ। इससे पहले कि मैं कुछ करता, उन्होंने न केवल मुझे, परन्तु पूरे भारतके प्रमुख कांग्रेसियोंको गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार मैंने नहीं, बल्कि सरकारने आन्दोलन आरम्भ किया तथा इसे ऐसा स्वरूप दे दिया जिसकी मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था और न ही मेरे संचालनमें उसका कभी भी यह स्वरूप हो सकता था। इसमें कोई सन्देह नही कि यह "संक्षिप्त और तेज" होता, लेकिन हिंसक अर्थमें नहीं, जैसा कि लेखकने आरोप लगाया है, बल्कि अहिंसक अर्थमें, जैसा कि मैं इस चीजको जानता हूँ। सरकारने अत्यधिक उग्र कार्रवाई करके इसे बहुत ही संक्षिप्त और तेज बना दिया। यदि सरकारने मुझे साँस लेने का मौका दिया होता तो मैंने वाइसरायसे भेंटका समय माँगा होता और कांग्रेसकी माँगका औचित्य बताने की जी-जानसे कोशिश की होती। लेखक तो हमें विश्वास दिलाना चाहता है कि यह मानने के कुछ "आधार" थे कि "मोहलतके समय" का उपयोग "उस योजनाको अन्तिम सँवार देने के लिए होना था जिससे उसके प्रणेता प्रतिबद्ध तो थे किन्तु जो अमलमें लाये जाने की दृष्टिसे अभी शायद पूरी तरह तैयार नहीं थी।" किन्तु हम देखते है कि ऐसे कोई भी "आधार" — उचित या अनुचित — नहीं थे। इस विश्वासकी पुष्टि करने के लिए लेखकके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बम्बईकी बैठककी समूची कार्यवाही और प्रस्तावके जन-आन्दोलनवाले भागको छोड़कर शेष सातों महत्त्वपूर्ण भागोंको तथा असुविधाजनक शब्द "अहिंसा" को नजरअन्दाज कर दे। अहिंसापर तो मैं अभी आऊँगा।

३९. यह दिखाने के लिए कि संघर्षसे बचने और वार्त्ता द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए मैं कितना व्यग्र था, और यह बताने के लिए कि मित्र-राष्ट्रोंके मार्गमें बाधा डालना कांग्रेसका लक्ष्य कभी नहीं रहा, नीचे मैं अपने भाषणों व लेखोंके अंश दे रहा हूँ :

> . . . हमारे लिए यह कहना निरी नादानी होगी कि 'हम किसीसे कोई चर्चा करना नहीं चाहते, और हम अपने ही दृढ़ संकल्पसे अंग्रेजोंको निकाल बाहर करेंगे।' अगर ऐसा ही होता तो कार्य-समितिकी बैठकें क्यों

होतीं, प्रस्ताव पास करने की भी क्या जरूरत रहती, और मैं पत्रकारोंके साथ बातचीत भी क्यों करता?[1] ('हरिजन', २६-७-१९४२, पृ० २४३)।

प्र० : क्या स्वतन्त्रताके सवालको पंच-फैसलेपर नहीं छोड़ा जा सकता?

उ० : नहीं, स्वतन्त्रताके सवालको नहीं। पंचके अधीन वही सवाल किये जा सकते हैं जिनके बारेमें मतभेदकी गुंजाइश हो। स्वतन्त्रताका जो असाधारण सवाल आज हमारे सामने है, वह तो समान ध्येय समझा जाना चाहिए। सिर्फ तभी मैं इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तानके बीचके मसलेको पंच द्वारा तय करने की बात सोच सकता हूँ। . . . परन्तु यदि फैसला कभी पंच द्वारा होना है तो वह तभी होगा, जब हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली जायेगी। मैं तर्कपूर्वक यह तो नहीं कह सकता कि पंच-फैसला होना ही नहीं चाहिए, क्योंकि अगर मैं ऐसा कहता हूँ तो मैं इस बातका दावा करता हूँ कि पूर्ण न्याय केवल मेरी ही तरफ है। ('हरिजन', २४-५-१९४२, पृ० १६८)।

एक अंग्रेज पत्रकार : . . . क्या आप भारत और इंग्लैण्डकी समस्याके लिए पंच-फैसला कराने की हिमायत करेंगे? . . .

उ० : मैं इसके लिए हमेशा ही तैयार हूँ। मैंने बहुत पहले यह सुझाव दिया था कि इस प्रश्नका निर्णय पंच-फैसले द्वारा हो सकता है। . . .[2] ('हरिजन', २४-५-१९४२, पृ० १६८)।

फिर भी वास्तविक संघर्ष इस क्षण नहीं शुरू हो रहा है। अभी तो आपने मुझे कुछ खास अधिकार सौंप दिये हैं। अब मेरा पहला कदम यह होगा कि मैं वाइसराय महोदयसे भेंट करने जाऊँगा और उनसे कांग्रेसकी माँग स्वीकार करने का अनुरोध करूँगा। इस काममें दो-तीन सप्ताह लग जाने की सम्भावना है। इस बीच आप क्या करेंगे? मैं आपको बताता हूँ। चरखा तो मौजूद ही है।

मुझे मौलाना साहबके साथ भी कुछ जूझना पड़ा था किन्तु वे मान गये कि अहिंसामय संघर्षमें चरखेका एक स्थायी स्थान है। चौदह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम तो आपके सामने है ही जिसपर कि आप अमल कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आपको कुछ और भी करना होगा जिससे इस कार्यक्रमका जीवन्त स्वरूप बने। आपमें से हर स्त्री-पुरुषको इस क्षणसे अपनेको आजाद समझना चाहिए, और यों आचरण करना चाहिए मानो आप आजाद हैं, और इस साम्राज्यवादके शिकंजेसे छूट गये हैं। मैं आपसे जो-कुछ कह रहा हूँ उसका मतलब अपने-आपको धोखा देना या कोरी कल्पनाकी उड़ान नहीं है। स्वतन्त्रताके वास्तवमें आ जाने से पहले ही आपको आजादीकी भावना अपनानी होगी। एक गुलामकी बेड़ियाँ उसी क्षण टूट जाती हैं जब वह अपने-आपको आजाद समझने लगता है। तब वह अपने मालिकसे साफ कहेगा: "इस क्षण

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३३८।
२. देखिए खण्ड ७६, पृ० १२७-२८।

तक तो मैं आपका गुलाम था लेकिन अब मैं गुलाम नहीं रहा। अगर आप चाहें तो मुझे मार सकते हैं, लेकिन अगर आप मुझे जिन्दा रहने दें और मुझे बन्धन-मुक्त कर दें तब मैं आपसे और कुछ नहीं माँगूंगा। आप मुझे रोटी-कपड़ा देते रहे थे, और मैं आपपर निर्भर था किन्तु अब मैं आपके बजाय ईश्वरके भरोसे रहूँगा। अब भगवानने ही मेरे अन्दर आजादीकी अभिलाषा पैदा कर दी है। इस कारण मैं अपने-आपको आजाद व्यक्ति मानता हूँ।"

आप विश्वास रखिए कि मैं मन्त्रि-पदों आदिके लिए वाइसरायसे कोई सौदा करनेवाला नहीं हूँ। मैं पूर्ण स्वतन्त्रताके सिवाय किसी चीजसे सन्तुष्ट होनेवाला भी नहीं। हो सकता है कि वे नमक-करको हटाने, शराबकी लत को खत्म करने आदिके बारेमें सुझाव रखें। लेकिन मैं कहूँगा: "स्वतन्त्रताके सिवाय कुछ भी नहीं।"

यह एक छोटा-सा मन्त्र मैं आपको देता हूँ। आप इसे अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लीजिए और हर श्वासके साथ उसका जाप किया कीजिए। वह मन्त्र है: 'करो या मरो'। या तो हम भारतको आजाद करेंगे या आजादीकी कोशिशमें प्राण दे देंगे। हम अपनी आँखोंसे अपने देशका सदा गुलाम और परतन्त्र बना रहना नहीं देखेंगे। प्रत्येक सच्चा कांग्रेसी, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री इस दृढ़ निश्चयसे संघर्षमें शामिल होगा कि वह देशको बन्धन या दासतामें बने रहने को देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेगा। ऐसी आपकी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। जेलका खयाल मनमें न लाइए। अगर सरकार मुझे कैद न करे, तो मैं आपको जेल भरने का कष्ट नहीं दूँगा। ऐसे समयमें जब कि सरकार खुद मुसीबतमें फँसी है, मैं उसपर भारी संख्यामें कैदियोंके प्रबन्धका बोझ नहीं डालूँगा। अबसे हर पुरुष और हर स्त्रीको अपने जीवनका हर क्षण यह जानते हुए बिताना है कि वे स्वतन्त्रताकी खातिर खा रहे हैं और जी रहे हैं, और अगर जरूरत हुई तो वे उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए प्राण दे देंगे। ईश्वर को और अपने अन्तःकरणको साक्षी मानकर यह प्रण कीजिए कि जबतक आजादी नहीं मिलती तबतक हम दम नहीं लेंगे और आजादी लेने के लिए अपनी जान देने को भी तैयार रहेंगे। जो जान देगा उसे जीवन मिलेगा और जो जान बचायेगा वह जीवनसे वंचित हो जायेगा।[1] स्वतन्त्रता डरपोकको नहीं मिलती। (८ अगस्तको अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें हिन्दुस्तानीमें दिये गये अन्तिम भाषणसे)।

मैं आपको पहले ही बता दूँ कि असली लड़ाई आजसे शुरू नहीं होती। मुझे हमेशाकी तरह अभी बहुत सारी औपचारिकताएँ निभानी हैं। बोझ लगभग असहनीय है और मुझे उन लोगोंको समझाने-बुझाने की कोशिश जारी रखनी है जिनमें फिलहाल मेरी कोई साख नहीं रही है। (८ अगस्तको अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें अंग्रेजीमें दिये गये अन्तिम भाषणसे)।

१. सेंट मैथ्यू, १६. २५

इसी सन्दर्भमें मौलाना साहब तथा अन्य व्यक्तियोंकी उक्तियोंके उद्धरण मैं परिशिष्टमें दे रहा हूँ। देखिए परिशिष्ट ६, ७ और ८।

४०. अभियोग-पत्रके पृष्ठ ११ पर लेखक कहता है:

> संक्षेपमें, श्री गांधीको यह विश्वास नहीं था कि केवल अहिंसा भारतको जापानसे बचा सकती है। साथ ही इस कामके लिए मित्र-राष्ट्रोंकी योग्यतापर भी उन्हें कोई भरोसा नहीं था। अपने इलाहाबादके प्रस्तावके मसौदेमें उन्होंने कहा, "ब्रिटेन भारतकी सुरक्षा करने में असमर्थ है।" उनके "भारत छोड़ो" आन्दोलनका लक्ष्य था भारतसे ब्रिटिश सरकारका हट जाना, जिसका स्थान या तो कोई अनिश्चित अन्तरिम सरकार लेती, या जैसा कि श्री गांधीने स्वयं सम्भव माना था, अराजकता लेती। भारतीय सेना विघटित कर दी जाती और मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ केवल अन्तरिम सरकार द्वारा निर्धारित शर्तोंके अन्तर्गत काम करतीं। उन्हें भारतके जापान-विरोधी अहिंसात्मक असहयोगसे सहायता मिलती जिसकी, जैसा कि श्री गांधीने स्वयं स्वीकार किया था, भारतमें मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओं के रहते गुंजाइश बहुत कम थी। अन्तमें उपर्युक्त तर्कोंके बावजूद यदि यह मान लिया जाये कि श्री गांधी और कांग्रेस सुरक्षाके लिए मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंकी सामर्थ्यपर भरोसा रखना चाहते थे तो यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्री गांधीने स्वयं ही स्वीकार किया था कि मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंका प्रभावकारी रूपसे काम करना उपयुक्त अन्तरिम सरकारकी स्थापनापर ही निर्भर होगा। और चूँकि यह सरकार समस्त भारतीय लोकमतका प्रतिनिधित्व करती, अतः न तो श्री गांधीको और न ही कांग्रेसको यह अधिकार था कि उसके लिए पहलेसे ही कोई विशेष कार्य-नीति निर्धारित कर दें। दूसरे शब्दोंमें, वे यह जिम्मा नहीं ले सकते थे कि यह सरकार जापानके विरुद्ध भारतकी रक्षा करने में मित्र-राष्ट्रोंको सहयोग देगी ही। वास्तवमें वे इस अन्तरिम सरकारकी ओरसे कोई वचन तबतक नहीं दे सकते थे जबतक कि उनका यह लक्ष्य न होता कि इस सरकारमें कांग्रेसका ही बोलबाला होगा। और बम्बईमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावमें इस अन्तरिम सरकारकी ओरसे जो लम्बे-चौड़े वादे किये गये थे उन्हें और कांग्रेसकी पूरी नीतिके रुखको देखते हुए इसमें कोई सन्देह नहीं कि कांग्रेसका इरादा भी यही था, और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मुस्लिम लीग तथा सामान्य मुस्लिम जनताकी भी यही धारणा थी। इस प्रकार एक ऐसी परिस्थिति सामने आती है जिसमें मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंको सहायताके लिए एक ऐसी सरकारपर निर्भर रहना पड़ता जिसमें एक ऐसे गुटका आधिपत्य होता जिसकी पूर्णतः पराजयवादी मनोवृत्ति पहले ही दर्शाई जा चुकी है और जिसके नेता पहले ही जापानसे समझौता-वार्ता करने का इरादा प्रकट कर चुके हैं।

यहाँ अन्तरिम सरकारके संगठनके पश्चात स्थापित की जानेवाली साम्प्रदायिक एकताके तीसरे लक्ष्यकी बारीकीसे परीक्षा करने का हमारा इरादा नहीं है। पिछले अनुच्छेदमें यह कहा जा चुका है कि कांग्रेसका इरादा इस सरकार को अपने आधिपत्यमें रखने का था और इस धारणाकी पुष्टिमें मुस्लिम जनताकी इस सर्वसम्मत रायपर भी ध्यान दिलाया जा चुका है कि इस कदमका लक्ष्य भारतपर कांग्रेस-हिन्दू आधिपत्यकी स्थापना करना था। यहाँ श्री गांधीके ही लेखोंसे इतना सिद्ध कर देना पर्याप्त होगा कि ऐसी सरकारकी स्थापनाकी व्यावहारिकताके बारेमें उनके मनमें भी शंकाएँ थीं।

आजतक मैंने जो-कुछ भी लिखा या कहा है और कांग्रेसके जो उद्देश्य रहे है तथा उसने पिछले अगस्तके प्रस्तावमें जो-कुछ कहा था, यह सार-संक्षेप उन सबका बिलकुल विकृत वर्णन है। आशा करता हूँ, पिछले पृष्ठोंमें मैंने यह दिखा दिया है कि मेरी बातोंको कितनी निष्ठुरताके साथ गलत रूपमें पेश किया गया है। यदि मैं अपनी दलीलसे आपको कायल नही कर पाया हूँ तो मै इसी बातसे सन्तोष कर लूँगा कि इस दलीलमें यत्र-तत्र बिखरे पड़े और संलग्न परिशिष्टोमें दिये गये उद्धरणोंके आधारपर मेरे सम्बन्धमें निर्णय किया जाये। उपर्युक्त विकृत वर्णनके मुकाबले मैं ऊपर उल्लिखित उद्धरणोसे सम्बन्धित अपने विचारोंका एक सार-संक्षेप नीचे दे रहा हूँ :

१. मेरा विश्वास है कि मात्र अहिंसा ही भारतकी रक्षा करने में समर्थ है — न केवल जापानसे वरन् पूरे विश्वसे।

२. मै निश्चय ही मानता हूँ कि ब्रिटेन भारतको बचाने में असमर्थ है। आज वह भारतकी रक्षा नही कर रहा है; वह अपनी और भारत तथा दूसरे स्थानोंमें प्रस्थापित अपने हितोंकी रक्षा कर रहा है। ये हित अधिकतर भारतके हितोके विपरीत हैं।

३. "भारत छोड़ो" प्रस्तावका लक्ष्य था भारतसे ब्रिटिश सत्ताका हटाया जाना और सम्भव हो तो उसके साथ-साथ एक ऐसी अन्तरिम सरकारकी स्थापना जिसमें, यदि वापसी ब्रिटिश सरकारकी स्वैच्छिक सहमतिसे हो तो, सभी मुख्य दलोके प्रतिनिधि शामिल हों। वापसी अनिच्छापूर्वक होने पर सम्भवत: कुछ कालतक अराजकता भी रह सकती थी।

४. भारतीय सेनाकी रचना अंग्रेजोने की है, इसलिए वह स्वाभाविक रूपसे विघटित हो जाती, बशर्ते कि यह मित्र-राष्ट्रोकी सेनाका अंग न बन जाती या स्वतन्त्र भारत सरकारके अधीन न चली जाती।

५. मित्र-राष्ट्रोकी सेनाएँ स्वतन्त्र भारत सरकार तथा मित्र-राष्ट्रोके बीच तय होनेवाली शर्तोके अनुसार ही भारतमें रहतीं।

६. यदि भारत स्वतन्त्र हो जाये तो स्वतन्त्र भारत सरकार अपनी सामर्थ्यके अनुसार सैनिक सहायता सुलभ कराकर अपना सहयोग देगी। परन्तु भारतके उन

विस्तृत भागोंमें, जहाँ फौजी कार्रवाई करना सम्भव न हो, जनता पूरे उत्साहसे अहिंसक कार्रवाई करती।

४१. इसके बाद सार-संक्षेपमें अन्तरिम सरकारकी बात आती है। देखें, इस सम्बन्धमें कांग्रेस प्रस्तावमें क्या कहा गया है। नीचे मैं प्रस्तावके प्रासंगिक अंश दे रहा हूँ :

> इसलिए अ० भा० कांग्रेस कमेटी पूरे जोरके साथ भारतसे ब्रिटिश सत्ताके हटाये जानेकी माँग दोहराती है। भारतके स्वतन्त्र घोषित होने पर एक अन्तरिम सरकारकी स्थापना होगी तथा स्वतन्त्र भारत संयुक्त-राष्ट्रोंका सहायक मित्र बनकर स्वाधीनताके संघर्षके संयुक्त अभियानकी सभी कठिनाइयों और संकटोंमें उनका भागीदार बनेगा। अन्तरिम सरकार देशके प्रधान दलों और समुदायोंके सहयोगसे ही बन सकती है। इस प्रकार यह भारतकी जनताके सभी महत्त्वपूर्ण वर्गोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली एक मिली-जुली सरकार होगी। इसके मूल कर्त्तव्य होंगे भारतकी प्रतिरक्षा करना तथा अपनी सम्पूर्ण शस्त्र तथा अहिंसामय शक्तिको लेकर अपने मित्र-राष्ट्रोंके साथ मिल-जुलकर आक्रमणका प्रतिरोध करना और खेतों, कारखानों तथा अन्य स्थानोंपर काम करनेवाले श्रमिकोंका कल्याण तथा उन्नति करना, क्योंकि वे ही शक्ति और सत्ताके वास्तविक अधिकारी हैं। अन्तरिम सरकार एक संविधान-सभाकी योजना बनायेगी जो भारत सरकारके लिए एक ऐसा संविधान तैयार करेगी जो कि भारतकी जनताके हर वर्गको मान्य हो सके। कांग्रेसकी रायमें यह संविधान संघीय होना चाहिए जिसमें संघीय इकाइयोंको अधिकतम स्वायत्तता मिले और अवशिष्ट शक्तियाँ उन्हींके हाथोंमें हों। स्वतन्त्र भारत तथा स्वतन्त्र मित्र-राष्ट्रोंके प्रतिनिधिगण पारस्परिक लाभ और आक्रमणका प्रतिरोध करनेके संयुक्त उद्देश्यकी खातिर आपसी परामर्श करेंगे और इस प्रकार अपने भावी सम्बन्धोंका समन्वय कर लेंगे। स्वतन्त्रता मिल जाने पर भारत जनताकी एकमत इच्छाशक्ति और उसके पीछे छुपी प्रेरक शक्तिके बलपर बाहरी आक्रमणका सशक्त रूपसे सामना कर सकेगा।
>
> अन्तमें, स्वतन्त्र भारतके भावी शासनके विषयमें अपना दृष्टिकोण जतानेके बाद अ० भा० कांग्रेस कमेटी इस बातको उन सब लोगोंपर स्पष्ट कर देना चाहती है जिनका इससे कोई वास्ता है कि जन-आन्दोलन आरम्भ करनेमें कांग्रेसका यह इरादा बिलकुल नहीं है कि कांग्रेसके ही लिए सत्ताको उपलब्धि की जाये। सत्ता जब आयेगी तो उसपर समस्त भारतीय जनताका अधिकार होगा।

मैं दावा करता हूँ कि प्रस्तावके इस अंशमें कोई "लम्बी-चौड़ी" या अव्यावहारिक बात नहीं है। मेरे विचारमें, इसके आखिरी वाक्यमें कांग्रेसकी ईमानदारी और निर्दलीय स्वरूप सिद्ध हो जाता है। देशमें कोई भी ऐसा दल नहीं है जो पूरे तौरपर फासीवाद-विरोधी, नाजी-विरोधी और जापान-विरोधी न हो, इसलिए स्वाभाविक

है कि इन दलोंको लेकर बनी सरकार निश्चित रूपसे मित्र-राष्ट्रोके उद्देश्यकी, जो भारतको एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें मान्यता मिलने पर सच्चे अर्थोमें प्रजातन्त्रका उद्देश्य हो जायेगा, उत्साहपूर्वक हिमायत करेगी।

४२. जहाँतक साम्प्रदायिक एकताका प्रश्न है, यह तो कांग्रेसके लिए आरम्भसे ही कार्यक्रमका एक बुनियादी अंग रहा है। इसके अध्यक्ष एक विश्व-विख्यात — विशेष कर मुस्लिम जगतमें विख्यात — एक मौलाना हैं। उनके अलावा, कार्य-समितिमें तीन मुसलमान सदस्य हैं। आश्चर्यकी बात है कि लेखकने अपनी बातकी पुष्टिके लिए मुस्लिम लीगकी रायका सहारा लिया है। लीग कांग्रेसके दावोकी ईमानदारीपर सन्देह कर सकती है और उसपर "कांग्रेस-हिन्दू आधिपत्य" की स्थापनाकी इच्छा रखने का आरोप भी लगा सकती है। किन्तु सर्वशक्तिमान भारत सरकारको यह शोभा नही देता कि वह मुस्लिम लीगका आश्रय और आड़ ले। इससे साम्राज्यवादके पुराने मन्त्र 'फूट डालो और राज करो' की खासी बू आती है। लीग-कांग्रेसके मतभेद बिलकुल घरेलू प्रश्न हैं। यदि पहले ही उनका समाधान नही हो जाता तो भी विदेशी प्रभुत्वके हटने पर ये मतभेद अवश्य ही सुलझ जायेंगे।

४३. लेखकने द्वितीय अध्यायका अन्त इस प्रकार किया है:

> कांग्रेसकी माँग यदि पूरी कर दी जाती तो उससे संयुक्त-राष्ट्रोंके उद्देश्य में बाधाके स्थानपर सहायता ही मिलती, इस बातपर प्रस्तावके प्रणेताओंको वास्तवमें विश्वास था या नहीं और उनकी माँगका यही फल उद्दिष्ट था या नहीं, ये बातें दो प्रश्नोंके उत्तरपर निर्भर हैं। पहला प्रश्न यह है कि यदि किसी संगठनको सच्चे दिलसे उसी परिणामकी आकांक्षा थी तो उसे प्राप्त करने के उसके तरीकेके अस्वीकृत होने पर क्या वह जान-बूझकर एक ऐसे जन-आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए अपने देशका आह्वान कर सकता था जिसके घोषित लक्ष्यका असर उस उद्दिष्ट परिणामके ठीक विपरीत होना था, क्योंकि उस आन्दोलनसे पूरा प्रशासन और युद्ध-प्रयत्न ठप हो जाना था? दूसरे, इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए कि अभी साल-भर भी नहीं हुआ जब श्री गांधीने युद्धमें धन या जन किसी प्रकारकी सहायता देना "पाप" घोषित किया था क्या इस बातसे इनकार किया जा सकता है कि इन लोगोंको ब्रिटेनके खतरेमें अपने लिए ठीक अवसर दिखाई दिया और इन्होंने ऐसा माना कि संयुक्त-राष्ट्रों के भाग्यके अधरमें लटके रहते और युद्धकी स्थितिके उनके अनुकूल — यदि कभी उसे उनके अनुकूल होना है तो — होने से पहले ही अपनी राजनीतिक माँगोंको जबरदस्ती स्वीकार करवाने का यही उपयुक्त मनोवैज्ञानिक क्षण है, जिसे खोना नहीं चाहिए? इन दो प्रश्नोंके उत्तर पाठक ही दें।

मुझे इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर पाठक और अभियुक्त दोनोंकी हैसियतसे देना है। जहाँतक पहले प्रश्नका सम्बन्ध है, कांग्रेसकी माँगकी स्वीकृति संयुक्त-राष्ट्रोके उद्देश्य अर्थात् विश्व-भरके लोकतन्त्रके उद्देश्यमें सहायक होगी, इस सच्चे विश्वास और कांग्रेस-की माँगके अस्वीकृत होने पर प्रशासनको ठप करने के लिए जन-आन्दोलन (जिसकी

आखिरकार तजवीज ही थी), इन दो चीजोंमें कोई अनिवार्य असंगति नहीं है। मेरा निवेदन है कि अस्वीकृतिकी स्थितिमें "प्रशासनको ठप करने" का प्रयत्न उस माँगके पीछे मौजूद ईमानदारीका द्योतक है। कांग्रेसजनोंकी उस प्रशासनको ठप कर देने के प्रयत्नमें मरमिटने की तैयारी जो लोकतन्त्र-विरोधी गठबन्धनके खिलाफ उनके लड़ने की इच्छाके मार्गमें बाधक है, उस माँगके पीछे मौजूद ईमानदारीपर अग्रिम मुहर लगा देती है। इस प्रकार वस्तुतः कांग्रेसके प्रति प्रशासनका घोर विरोध यह सिद्ध करता है कि उसका लोकतन्त्रके निमित्त युद्ध-रत होने का दावा खोखला है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह प्रशासन युद्धके सही संचालनकी अपनी अक्षमता दिन-प्रति-दिन साबित कर रहा है। चीन धीरे-धीरे छीजता चला जा रहा है, जब कि यह प्रशासन युद्ध-संचालनके नामपर खिलवाड़ कर रहा है। कांग्रेसका दमन करने का प्रयत्न करके उसने करोड़ों चीनियोंकी, जिन्हें जापानी अपने पैरों तले रौंद रहे हैं, सहायताके सबसे बड़े स्रोतको काट दिया है।

४४. दूसरे प्रश्नके अलग उत्तरकी कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती। जिन कांग्रेसजनोंने साल-भर पहले मेरे "आदेश" पर यह घोषणा की थी कि युद्धमें "धन या जन" से कोई मदद करना "पाप" है, उन्हें यदि मैं आज कोई भिन्न "आदेश" देता हूँ तो उनके बारेमें यहाँ विचार करना अनावश्यक है। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो युद्ध-मात्रके आज भी उतना ही खिलाफ हूँ जितना कि साल-भर या उससे भी अधिक समय पूर्व था। मैं मात्र एक व्यक्ति हूँ। सभी कांग्रेसजनोंका मानस वैसा ही नहीं है। अगर कांग्रेस अहिंसा-नीतिका त्याग करके भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके तो वह उसे आज ही त्याग दे। और मेरी सलाह लेने आनेवाले राष्ट्रोंको यह सलाह देने में मुझे कोई हिचक नहीं होगी कि वे अपनी सहायता आप करने के प्रयत्नमें जी-जानसे जुट जायें और इस प्रकार उन राष्ट्रोंको बन्धनमुक्त कर दें जो लोकतन्त्रसे प्रतिबद्ध हैं। अगर उस प्रयत्नके लिए सैनिक प्रशिक्षण आवश्यक हो तो लोगोंको वह प्रशिक्षण लेने की पूरी छूट होगी, और फिर उन्हें मुझे और मेरी जैसी मान्यतावाले अन्य लोगोंको अपनी अहिंसाके भरोसे छोड़ देना होगा। बोअर युद्ध और पिछले महायुद्धके समय मैंने यही किया था। तब मैं "बड़ा अच्छा आदमी" था, क्योंकि मेरा आचरण ब्रिटिश सरकारकी इच्छाके अनुरूप था। आज मैं उसका कट्टर शत्रु इसलिए नहीं हो गया हूँ कि मैं बदल गया हूँ, बल्कि इसलिए कि ब्रिटिश सरकारकी आज कसौटी हो रही है और उसपर वह खरी नहीं उतर रही है। पहले मैंने इसलिए मदद की कि मुझे ब्रिटेनकी नेकनीयतीमें विश्वास था। आज मैं उसके मार्गमें रोड़े अटकाता इसलिए प्रतीत होता हूँ कि ब्रिटिश सरकार उस विश्वासके अनुरूप आचरण नहीं कर रही है जो उसे दिया गया था। लेखक द्वारा प्रस्तुत दो प्रश्नोंका मेरा उत्तर कठोर लग सकता है, लेकिन वह सत्य है, पूर्ण सत्य और सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं — वह सत्य जिसके दर्शन मुझे ईश्वर करने देता है।

४५. लेकिन मेरे खिलाफ लगाये आरोपोंमें जघन्यतम आरोप[1] यह है कि "आन्दोलन क्या स्वरूप ग्रहण करेगा, इसकी भविष्यवाणी करते हुए और गिरफ्तारीके

१. अन्तिम अध्यायमें लगाया आरोप; देखिए परिशिष्ट ५।

वादके कार्यक्रमों और निर्देशोंमें श्री गांधी और उनके कांग्रेसी शिष्यों द्वारा अहिंसा का हर उल्लेख एक कोरी आशा या अधिकसे-अधिक एक हल्की-सी चेतावनीसे अधिक कुछ नही था और यह सुविदित था कि उसका कोई व्यावहारिक महत्त्व नही है।" अहिंसाके उन उल्लेखोंका वर्णन एक "दिखावे" के रूपमें भी किया गया है।

४६. लेखकने यह सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नही दिया है कि "यह सुविदित था" कि उस (चेतावनी) का "कोई व्यावहारिक महत्त्व नही है।" अगर मुझे और मेरे "कांग्रेसी शिष्यों" की आलोचना करने के लिए मेरे लेखों और वचनोंसे अहिंसाके उल्लेख अलग कर दिये जाते है तो यह वैसा ही होगा जैसे कि मूसाके आदेशोंसे "मत" शब्द निकालकर उन्हे हत्या, चोरी आदिके समर्थनमें उद्धृत किया जाये। लेखक मुझसे मेरी वह एक चीज, जिसके सहारे और जिसके लिए मैं जीता हूँ, छीनकर मेरा सब-कुछ छीन रहा है। अहिंसाके उल्लेखोंको "महत्त्वहीन" बताकर उन्हें खारिज करने के समर्थनमें जो साक्ष्य दिये गये है वे मुख्यत: वक्रोक्तियोके रूपमें है। "उसे एक निर्णायिक संघर्ष, अन्तिम लड़ाई होना था, जिसके फलस्वरूप विदेशी प्रभुत्वको निश्चित रूपसे समाप्त हो जाना था, चाहे उसकी कीमत जो देनी पड़ती।"[1] अहिंसक संघर्षमें लड़नेवालों को कीमत बराबर अपने रक्तसे चुकानी पड़ती है। "उसे एक नि.शस्त्र विद्रोह, सक्षिप्त और तेज विद्रोह होना था।" यहाँ "नि:शस्त्र" में उपसर्ग "नि:" को अगर "महत्त्वहीन" न मान लिया जाये तो "संक्षिप्त" और "तेज", इन दो विशेषणोको वह एक उदात्त अर्थ प्रदान करता है। कारण, संघर्षको "संक्षिप्त और तेज" बनाने के लिए जेलोंको बहुत मामूली और हल्की चीज मानकर उनसे बचना है और मृत्युको ऐसे सच्चे मित्रकी तरह गले लगाना है जिससे संघर्षकर्त्ताओंको अपने

१. विचाराधीन अंश पुस्तिकाके तीसरे अध्यायमें आता है। वह इस प्रकार है: "श्री गांधीके मनमें जिस आन्दोलनका विचार था उसका आम स्वरूप ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है। उसे एक निर्णायक संघर्ष, अन्तिम लड़ाई होना था, जिसके फलस्वरूप विदेशी प्रभुत्वको निश्चित रूपसे समाप्त हो जाना था, चाहे उसकी कीमत जो देनी पड़ती। उसे एक निःशस्त्र विद्रोह, एक संक्षिप्त और तेज विद्रोह होना था, जो निश्चत रूपसे देशको प्रचण्ड ज्वालामें झोंक देता — कितनी कठोर और सही भविष्यवाणी थी यह। उस विद्रोहके सिलसिलेमें श्री गांधी दंगोंकी वारदातोंका खतरा उठाने को तैयार थे। उसमें वे चरमसीमा तक जाने को तैयार थे, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर आम हड़तालका आह्वान भी किया जा सकता था। उस संघर्षमें वह सब-कुछ शामिल किया जाना था जो एक "अहिंसक" जन-आन्दोलनमें शामिल किया जा सकता था — जैसे हड़तालें और रेलगाड़ियोंको रोकना, और शायद ब्रिटिश सेनाके आवागमनमें भी हस्तक्षेप करना, और अंग्रेजोंके खिलाफ मौजूदा शिकायतोंका पूरा उपयोग किया जानेवाला था। कांग्रेसके पहलेके तरीकों — जैसे जेल-यात्रा — को — इस प्रसंगके लिए बहुत मामूली मानकर उनसे बचना था। अन्तमें, हर स्त्री-पुरुषको स्वयंको स्वतन्त्र मानकर अपनी इच्छानुसार काम करना था। इन अन्तिम शब्दों या कमसे-कम उनके भावका समावेश स्वयं इस प्रस्तावमें था, और जो संस्था अपने अनुगामियोंसे ऐसा करने की अपील करे वह उसके फलस्वरूप होनेवाली किसी भी घटनाकी जिम्मेदारीसे इनकार नहीं कर सकती।" (इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० १८४-५)।

विरोधियोंके हृदयको मात्र जेल-यात्राकी अपेक्षा अधिक तेजीसे पिघलाने की शक्ति प्राप्त होगी। मेरे द्वारा "प्रचण्ड ज्वाला" शब्दोंके उल्लेखका मतलब, आवश्यकता पड़ने पर, हजारों या और भी अधिक लोगों द्वारा अपने प्राणोंका उत्सर्ग था। लेखक ने इसे एक "कठोर और सही भविष्यवाणी" की संज्ञा दी है। घटनाक्रमने जो मोड़ लिया उसके कारण इसका एक ऐसा अर्थ बन गया है जो लेखकका अभिप्रेत नही था, क्योंकि अगर अखबारोंकी रिपोर्टों और जिम्मेदार लोक-सेवी व्यक्तियोंके वक्तव्योंका विश्वास किया जाये तो अधिकारियोंकी प्रतिशोधकी कार्रवाईके फलस्वरूप ढेर सारे लोगोंकी जानें गईं, और सेना और पुलिसने जनताके बीच अकथनीय अत्याचारोंका ताण्डव मचा दिया। "श्री गांधी दंगोंकी वारदातोंका खतरा उठाने को तैयार थे।" यह सच है कि मै ऐसा खतरा उठाने को तैयार था। हर बड़े आन्दोलनमें, चाहे वह हिंसक हो या अहिंसक, खतरा तो रहता ही है। लेकिन अहिंसापर कायम रहकर खतरा उठाने का मतलब एक अलग तरीका है, स्थितिसे निबटने का एक अलग ढंग है। मैं दंगोंसे बचने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखता। इसके अलावा, मेरा पहला काम तो वाइसरायको मनाने का होता। उस समयतक कोई खतरा उठाने का कोई प्रश्न नही हो सकता था। लेकिन हुआ यह कि सरकार मुझे खतरा उठाने देने को तैयार नही थी। बदलेमें उसने मुझे जेलमें डाल दिया। जन-आन्दोलनमें क्या-कुछ शामिल होनेवाला था और खतरेका सामना करने का मौका आना ही था तो उसका सामना किस प्रकार करना था, यह लेखकको नही मालूम हो सकता, क्योंकि वह आन्दोलन आरम्भ ही नहीं किया गया। और मैंने कोई निर्देश भी जारी नहीं किया।

४७. लेखकने मेरे द्वारा "मौजूदा शिकायतोंका पूरा उपयोग किये जाने" पर आपत्ति की है। यह उपयोग तो कांग्रेसके जन्मके भी पूर्व आरम्भ हो गया था। तबसे कभी यह बन्द नहीं हुआ है। जबतक वह विदेशी शासन मौजूद था जिसके वे अभिन्न अंग थे तबतक उनका उपयोग बन्द कैसे हो सकता था?

४८. "अन्तमें, हर स्त्री-पुरुषको स्वयंको स्वतन्त्र मानकर अपनी इच्छानुसार काम करना था। इन अन्तिम शब्दों या कमसे-कम उनके भावका समावेश स्वयं इस प्रस्तावमें था।" यह अन्तिम वाक्य तथ्योंको दबाने का एक नमूना है। नीचे कांग्रेस प्रस्तावका प्रासंगिक अंश दे रहा हूँ:

> उन्हें यह याद रखना चाहिए कि इस आन्दोलनका आधार अहिंसा है। एक ऐसा समय आ सकता है जब निर्देश जारी करना या निर्देशोंका हमारे लोगोंतक पहुँचना, और कांग्रेस कमेटियोंका काम कर सकना सम्भव न रहे। जब ऐसा होगा तो इस आन्दोलनमें भाग ले रहे हर स्त्री-पुरुषको जो आम निर्देश जारी किये गये हैं उन्हींकी चारदीवारीके अन्दर खुद अपने बूतेपर काम करना होगा। स्वाधीनताकी इच्छा रखनेवाले और उसके लिए प्रयत्नशील हर भारतीयको अपना मार्गदर्शक स्वयं बनना होगा, स्वयं अपनेको उस कठिन मार्ग पर आगे बढ़ाना होगा जो अन्ततः हमें भारतकी स्वतन्त्रता और मुक्तितक ले जायेगा।

इसमें कोई भी नई या चौंकानेवाली बात नही है। यह तो व्यावहारिक बुद्धिमत्ताकी बात है। सभी स्त्री-पुरुषोंको उस हालतमें अपने नेता आप बन जाना है जब उनके विश्वस्त मार्ग-दर्शक उनके बीचसे हटा दिये जायें, या जब उनके संगठन को अवैध घोषित कर दिया जाये अथवा अन्य कारणसे वह काम करना बन्द कर दे। यह सच है कि पहले नाममात्रके "अधिनायक" भी नियुक्त किये जाते थे। इसका उद्देश्य अनुयायियोंके सम्पर्कमें रहकर उनका मार्ग-दर्शन करने के बजाय जेल-यात्रा करना अधिक होता था। क्योंकि सम्पर्क चोरी-छिपे ही हो सकता था। इस बार आन्दोलनके कार्यान्वयनमें जेल-यात्रा नही करनी थी, बल्कि मृत्युका वरण करना था। इसलिए हरएकको अपना नेता आप बनकर अहिंसाकी लक्ष्मण-रेखाके अन्दर रहकर काम करना था। अपना नेता आप बननेवाले हर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धमें उन दो शर्तों का उल्लेख न किया जाना प्रासंगिक सत्यका अक्षम्य दमन था।

४९. इसके बाद लेखकने इस बातपर विचार किया है कि जिस आन्दोलनके बारेमें मै सोच रहा था वह क्या अपने प्रकृत रूपमें ऐसा था कि वह अहिंसक रह सकता था और क्या "श्री गांधी (यानी मै) यह चाहते थे कि यह ऐसा रहे या यह आशा करते थे कि ऐसा रहेगा"। मै पहले ही दिखा चुका हूँ कि जब आन्दोलन आरम्भ ही नही किया गया तब कोई भी तबतक यह नही कह सकता कि मेरे मनमें क्या था और मैंने क्या आशा की थी जबतक कि मेरे इरादे या मेरी आशाके सम्बन्धमें मेरे लेखोंसे उचित अनुमान नही लगाया जाता। लेकिन मैं यह बता दूं कि लेखक इस निष्कर्षपर कैसे पहुँचा है। उसका पहला प्रमाण यह है कि जिस आन्दोलनके पूर्णत: अहिंसक होने का दावा किया गया है उसके सम्बन्धमें मैंने सैनिक शब्दोंका उपयोग किया है। ऐसी भाषाका उपयोग तो मैं दक्षिण आफ्रिकामें अपना प्रयोग आरम्भ करने के समयसे ही करता आ रहा हूँ। जहाँतक हो सके समान शब्दावलीका प्रयोग करके और उसके साथ अहिंसाको मिलाकर मै अपने कदम और साधारण कदमोके बीचके अन्तरको ज्यादा अच्छी तरह स्पष्ट कर सकता था। १९०८ से ही अपने सत्याग्रहके पूरे अनुभवके दौरान मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नही आता जब मेरे द्वारा सैनिक शब्दावलीके प्रयोगसे लोग गुमराह हुए हों। और सच तो यह है कि सत्याग्रह चूंकि "युद्धका नैतिक पर्याय" है, इसलिए ऐसी शब्दावलीका प्रयोग स्वाभाविक ही है। शायद हममें से सबने किसी-न-किसी प्रसंग पर "आत्माकी तलवार", "सत्यकी बारूद", "धैर्यकी ढाल", "सत्यके दुर्गपर हमला" या "ईश्वरके साथ द्वन्द्व"-जैसे शब्दोका उपयोग किया है। लेकिन किसी को भी शब्दोके ऐसे इस्तेमालमें कोई विचित्रता या गलती नही दिखाई दी है। सैलवेशन आर्मी द्वारा सैनिक शब्दावलीके उपयोगसे कौन परिचित नही है? उस संस्थाने सैनिक शब्दावलीको पूरी तरह अपना लिया है, लेकिन मैंने तो किसीको भी सैलवेशन आर्मीको, जिसमें कर्नल और कैप्टन-जैसे अधिकारी होते है, ऐसा सैनिक संगठन मानते नही देखा है जिसे विनाशके घातक हथियारोके इस्तेमालका प्रशिक्षण मिला हो।

५०. मैं इस बातको अस्वीकार करता हूँ कि "यह दिखाया जा चुका है कि श्री गांधीको जापानी आक्रमणके प्रतिरोधके साधनके रूपमें अहिंसाकी प्रभावकारिता

पर कोई विश्वास नहीं था।" मैंने कहा यह है कि जब अहिंसाको हिंसाके साथ मिलकर काम करना है तब उसकी अधिकतम प्रभावकारिता नहीं दिखाई जा सकती। यह सच है कि मौलाना साहब और पण्डित नेहरूको अहिंसाकी बाह्य आक्रमणका सामना करने की शक्तिके विषयमें सन्देह है, लेकिन ब्रिटिश आधिपत्यके खिलाफ लड़ने के साधनके रूपमें अहिंसक कार्रवाईमें उनका पर्याप्त विश्वास है। मै यह अवश्य मानता हूँ कि ब्रिटिश और जापानी दोनों साम्राज्यवादोंसे समान रूपसे बचना चाहिए। लेकिन 'हरिजन' से उद्धरण देकर मैं बता चुका हूँ कि मौजूदा बुराईका सामना करना सम्भावित बुराईका सामना करने की अपेक्षा आसान है। देखिए परिशिष्ट २ (डी)।[1]

५१. यह बात मैं बेझिझक स्वीकार करता हूँ कि मेरे "अहिंसाके सिद्धान्तमें पूरा विश्वास रखनेवालों की संख्या सन्दिग्ध" है।[2] लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि मैंने यह भी कहा है कि अपने आन्दोलनके लिए मुझे अहिंसामें पूरा या अधूरा भी विश्वास रखनेवालों की आवश्यकता नहीं है। इतना काफी है कि लोग अहिंसक कार्रवाईके नियमोंका पालन करें। देखिए परिशिष्ट ४ (ए)।

५२. अब आता है विचाराधीन अनुच्छेदमें लेखककी विस्मृति या गलतबयानीका सबसे स्पष्ट उदाहरण। वह कहता है:

> . . . यह भी याद रखिए कि उनके सामने उनके पिछले आन्दोलनोंका उदाहरण था, जिनमें से हरएक कहने को अहिंसक था, लेकिन वास्तवमें हरएक में जघन्यतम हिंसा हुई थी।

मेरे सामने दक्षिण आफ्रिकाके सबसे पहले सत्याग्रह आन्दोलनसे लेकर आजतक के २० ऐसे आन्दोलनोंकी सूची है। मुझे निश्चय ही ऐसे उदाहरण याद है जब जन-

१. यहाँ नहीं दिया गया है। देखिए खण्ड ७६, पृ० २३८-३९।

२. पुस्तिकाका यहाँ विचाराधीन अंश निम्न प्रकार है: "फिर जैसा कि दिखाया जा चुका है, उन्हें इस सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं है कि उनके अहिंसाके सिद्धान्तमें पूरा विश्वास रखनेवाले भारतीयों की संख्या सन्दिग्ध है। फिर भी उनका इरादा एक ऐसा आन्दोलन छेड़ने का था जिसमें उन्हें आशा थी कि सभी वर्गों और समुदायोंके लोग शरीक होंगे, और जिसमें उन्होंने हर स्त्री और पुरुषको अपने को स्वतन्त्र मानने और खुद अपनी समझसे सोचने और काम करने का निर्देश दिया। इससे उनके १९४०-४१ के पिछले "सत्याग्रह आन्दोलन" का अन्तर देखिए। उसमें अहिंसाका वांछित स्तर बनाये रखने के लिए उन्हें उसमें शामिल होने का अधिकार खास तौरसे चुने हुए सत्याग्रहियोंतक ही सीमित रखना पड़ा था, और उन लोगोंको भी केवल एक विशेष औपचारिक कानून-भंग करने की ही छूट दी गई थी; यह भी याद रखिए कि उनके सामने उनके पिछले आन्दोलनोंका उदाहरण था, जिनमें से हरएक कहने को अहिंसक था, लेकिन वास्तवमें हरएक में जघन्यतम हिंसा हुई थी। यह निश्चित बात कि उनका आन्दोलन अहिंसक नहीं रह सकता था, बिलकुल स्पष्ट है, और अगर किसी और संकेतकी आवश्यकता थी तो वह पिछले अनुच्छेदोंमें उद्धृत श्री गांधीके अपने ही लेखोंके उद्धरणोंसे मिल जाता है। उनसे स्पष्ट हो जाता है कि अगर आन्दोलनके दौरान हिंसा और दंगे होते तो उससे भी वे विचलित नहीं होनेवाले थे और वे चरम सीमातक जाने को तैयार थे।" (इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द, २, पृ० १८५)।

क्षोभ भड़क उठा था और उसके फलस्वरूप हत्याकी दुःखद घटनाएँ भी हुई थीं। लेकिन भीड़की हिंसाके ये उदाहरण बहुत बुरे होते हुए भी इस देशके विशाल क्षेत्रफलको देखते हुए मामूली खरोंचके समान थे, क्योंकि यह देश रूसको हटा दिया जाये तो यूरोपके बराबर है और जनसंख्याकी दृष्टिसे तो उससे भी बड़ा। यदि कांग्रेस गुप्त या खुले तौरपर हिंसा-नीतिपर चल रही होती, या यदि उसका अनुशासन कुछ कम कठोर होता तो यह आसानीसे समझा जा सकता है कि वह हिंसा मामूली खरोंचके बजाय ज्वालामुखीके विस्फोटके समान होती। लेकिन जब भी ऐसा विस्फोट हुआ, उसका शमन करने के लिए पूरे कांग्रेस संगठनने अत्यन्त तत्परतासे कार्रवाई की। कई अवसरोंपर खुद मैंने उपवासका सहारा लिया। इस सबका जन-मानसपर बड़ा शमनकारी प्रभाव पड़ा। इसके अलावा ऐसे आन्दोलन भी हुए जो हिंसासे बिलकुल मुक्त थे। उदाहरणके लिए, दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह, जो एक जन-आन्दोलन था, और चम्पारन, खेड़ा, बारडोली और बोरसदमें चलाये गये ऐसे ही अन्य आन्दोलन — यहाँ मैं उन आन्दोलनोंका जिक्र नहीं कर रहा हूँ जिनमें व्यापक पैमाने पर सामूहिक सविनय अवज्ञा की गई — हिंसाके विस्फोटसे सर्वथा मुक्त थे। इन सभी आन्दोलनोंमें लोगोंके लिए जो नियम निर्धारित कर दिये गये थे उनका उन्होंने पालन किया। इस प्रकार, लेखकने इतिहासकी अवहेलना करके ही ऐसा अमर्यादित बयान दे डाला है कि मेरे सामने "पिछले आन्दोलनोंका उदाहरण था, जिनमें से हरएक कहने को अहिंसक था लेकिन वास्तवमें हरएकमें जघन्यतम हिंसा हुई थी।" मेरा अनुभव चूँकि इसके ठीक विपरीत है, इसलिए मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर सरकारने अपनी अन्धाधुन्ध कार्रवाई द्वारा लोगोंको इतना उत्तेजित न कर दिया होता जो उनकी बर्दाश्तकी सीमासे बाहर था तो कोई हिंसा नहीं होती। कार्य-समितिके सदस्य इस बातके लिए बहुत चिन्तित थे कि जनताकी ओरसे कोई हिंसा न हो पाये, और उनकी इस चिन्ताके पीछे कोई परमार्थ-वृत्ति नहीं थी, बल्कि उनका यह कठोर अनुभव-जन्य विश्वास था कि जनता द्वारा की गई हिंसासे स्वतन्त्रता नहीं आ सकती। जनताने कांग्रेससे जो शिक्षा प्राप्त की थी वह पूर्णतः अहिंसक थी — १९२० के पूर्व इसलिए कि नेताओंका सवैधानिक आन्दोलन और अंग्रेजोंके वादों तथा घोषणाओंमें विश्वास था, और १९२० के बादसे पहले तो मेरे द्वारा जगाये गये और फिर अनुभवसे पुख्ता हुए इस विश्वासके कारण कि यद्यपि संवैधानिक आन्दोलन ने एक हदतक अपना प्रयोजन सिद्ध किया है तथापि सिर्फ उसीके बलपर स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती, और भारतकी परिस्थितिको देखते हुए अहिंसक कार्रवाई ही वह एकमात्र शक्ति है जिसके सहारे यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र स्वतन्त्रता मिल सकती है। गत तीस वर्षोंके संचित अनुभवसे, जिनमें से प्रथम आठ वर्षोंका सम्बन्ध दक्षिण आफ्रिकासे रहा, मेरा मन इस बलवती आशासे भर गया है कि अहिंसाके अंगीकार किये जाने पर ही भारत और विश्वका भविष्य निर्भर है। मानवताके पद-दलित हिस्सेके साथ किये गये राजनीतिक और आर्थिक अन्यायोंके प्रतिकारका यह सबसे निर्दोष और साथ ही उतना ही प्रभावकारी साधन है। मैंने किशोरावस्थासे ही यह जाना है

कि अहिंसा कोई ऐसा गुण नहीं है जिसकी साधना व्यक्ति अपनी निजी शान्ति और अन्तिम मोक्षके लिए एकान्तमें बैठकर ही कर सकता है। इसके विपरीत, यदि मनुष्य-जातिको मानवोचित गरिमाके अनुसार जीना है और उस शान्तिकी प्राप्तिकी ओर आगे बढ़ना है जिसके लिए वह युगोंसे तरसती रही है तो अहिंसा समाजके आचरण का सामान्य नियम है। इसलिए यह सोचकर बड़ा दुःख होता है कि विश्वकी सबसे शक्तिशाली सरकार उस सिद्धान्तकी अवमानना करे और उसके उपासकोंको, चाहे वे कितने भी अपूर्ण हों, निष्क्रिय बना दे। मेरा निश्चित विश्वास है कि ऐसा करके उसने विश्व-शान्ति और मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको क्षति पहुँचाई है।

५३. लेखकके अनुसार, यह "निश्चित" था कि "उनका (मेरा) आन्दोलन अहिंसक नहीं रह सकता था।" किन्तु मेरी रायमें तो जो बात "निश्चित" थी वह इसके ठीक विपरीत थी, बशर्ते कि आन्दोलन उन्हींके हाथोंमें रहता जो जनताका मार्ग-दर्शन कर सकते थे।

५४. अब यह भी "स्पष्ट" है कि जब मैंने कहा था कि मैं चरम सीमा तक जाने को तैयार हूँ तब मेरा क्या तात्पर्य था। मेरा तात्पर्य यह था कि भले ही सरकार जनताको इतना उत्तेजित करने में सफल हो जाये कि वह हिंसापर उतारू हो जाये, फिर भी मै अहिंसक आन्दोलन जारी रखूँगा। अभीतक जब-कभी जनता को इस प्रकार उत्तेजित किया गया है, मैंने अपना हाथ रोक लिया है। इस बार मैं खतरा उठाने को इसलिए तैयार था कि विश्व एक ऐसी प्रचण्ड ज्वालाकी लपेट में पड़ा हुआ था जिसकी प्रचण्डता इतिहासमें बेमिसाल थी और ऐसे अवसरपर निष्क्रिय बैठे रहने में कई गुना ज्यादा खतरा था। यदि अहिंसा संसारमें सबसे महान शक्ति है तो इसे इस संकटकी घड़ीमे खरा उतरना ही था।

५५. मेरी अहिंसाके मात्र "दिखावा" होने के समर्थनमें लेखकने जो अन्तिम प्रमाण दिया है वह पोलैंडवासियोंकी बहादुरीके पक्षमें लिखे मेरे लेखका निम्नलिखित विकृत उद्धरण है:

> दूसरे शब्दोंमें, युद्धरत दो पक्षोंमें से कमजोर पक्ष अपनी इच्छानुसार या सामर्थ्यानुसार जितना हिंसात्मक कदम उठाना चाहे, बेशक उठा सकता है और इसके बावजूद उसके लिए कहा जा सकता है कि वह अहिंसापूर्वक लड़ रहा है। यदि इसे दूसरे शब्दोंमें कहा जाये तो जब हिंसाका प्रयोग अपेक्षाकृत शक्तिशाली प्रतिपक्षीके विरुद्ध किया जाता है तो वह अपने-आप ही अहिंसामें परिवर्त्तित हो जाती है। निश्चय ही यह सिद्धान्त "निःशस्त्र विद्रोह" करनेवाले विद्रोहियोंके लिए बहुत ही सुविधाजनक है।

मेरा दावा है कि लेखक द्वारा उद्धृत लेख ऐसा नही है जिससे इस तरहका भ्रामक निष्कर्ष निकाला जा सकता हो। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मैं अपने प्रतिदिनके अनुभवके विपरीत कोई बात कहूँ? ऐसा शायद ही कभी होता हो कि मुठभेड़में दोनों पक्ष बिलकुल बराबरीके हों। एक पक्ष दूसरेकी अपेक्षा सदैव कम-

जोर होता है। मैंने जो उदाहरण दिये हैं[1] उन सबको मिलाकर देखें तो उनसे एक ही निष्कर्ष निकलता है, और वह यह कि कमजोर पक्ष हिंसाके लिए कोई तैयारी नहीं करता है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उसका ऐसा कोई इरादा ही नहीं होता। परन्तु जब उसपर एकाएक आक्रमण किया जाता है, तब अनजाने, यहाँतक कि वैसा करने की किसी इच्छाके बिना, उसके हाथमें जो शस्त्र आता है उसीका वह उपयोग कर बैठता है। मैंने इसके लिए जो पहला उदाहरण चुना था वह ऐसे व्यक्ति का है जिसके पास यदि तलवार हो तो वह अकेले ही डाकुओंके दलका सामना करने के लिए उसका उपयोग करता है। दूसरा उदाहरण उस स्त्रीका है जो अपने सतीत्व की रक्षाके लिए अपने दाँतों, नाखूनों या छुरे तकका प्रयोग करती है। वह सोच-विचार किये बिना अनायास ही ऐसा करती है। और तीसरा उदाहरण एक चूहेका है, जो अपने तेज दाँतोंसे बिल्लीसे लड़ता है। मैंने विशेष रूपसे ये तीन उदाहरण चुने थे, ताकि इनके आधारपर कोई ऐसा अनुचित निष्कर्ष न निकाला जा सके कि मैं सोच-समझकर की जानेवाली हिंसाका पक्ष ले रहा हूँ। इसका एक अचूक लक्षण यह है कि ऐसे मौकोंपर कमजोर पक्ष कभी भी शक्तिशाली पक्षको दबानेमें सफल नहीं हो पाता। ऐसे स्त्री या पुरुष अपने आक्रमणकारीकी माँगके आगे झुकने की अपेक्षा अपने सम्मानकी रक्षाका प्रयास करते-करते मर मिटते हैं। पोलैंडवासियों ने आक्रमणकारियोंकी बड़ी संख्याके विरुद्ध जो प्रतिरक्षाकी कार्रवाई की उसका वर्णन करते समय मैं अपनी भाषाके सम्बन्धमें इतना सतर्क था कि मैंने उनके प्रयासको "लगभग अहिंसात्मक" कहा था।[2] इसके और स्पष्टीकरणके लिए एक पोलैंडवासी मित्रके साथ मेरी बातचीतका विवरण पढ़िए। देखिए परिशिष्ट ४ (एन)।

५६. यहाँ गत ७ और ८ अगस्तको बम्बईमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सम्मुख दिये गये मेरे भाषणोंके अहिंसा-सम्बन्धी अंश प्रस्तुत कर देना उपयुक्त रहेगा:

> किन्तु मैं बिना किसी संकोचके आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं वही गांधी हूँ जैसा कि मैं १९२० में था। मेरे मूलभूत विश्वास अब भी वही हैं जो तब थे। मैं अहिंसाको अब भी उतना ही महत्त्व देता हूँ जितना मैं तब देता था। यदि कोई परिवर्त्तन आया है तो यह कि मैं अब इसपर और भी अधिक जोर देता हूँ। प्रस्तुत प्रस्ताव और मेरे पिछले लेखों, और वक्तव्योंमें कोई वास्तविक विरोध नहीं है।... आज एक ऐसा अवसर है जो हरएकके जीवनमें नहीं आता और किसी एकके जीवनमें भी शायद ही कभी आता है। मैं इस बातको महसूस करता हूँ और आपको भी यह जताना चाहता हूँ कि आज मैं जो-कुछ कह रहा हूँ और कर रहा हूँ उसमें केवल विशुद्ध अहिंसा ही है। कार्य-समितिके प्रस्तावके मसौदेका मूलाधार अहिंसा है और इसी प्रकार जिस संघर्षकी हम सोच रहे हैं वह भी अहिंसापर आधारित है।

१. पाठमें उद्धृत अनुच्छेदसे पहलेके एक अनुच्छेदमें

२. देखिए खण्ड ७०, पृ० १९९-२०१।

इसलिए यदि आपमें से कोई ऐसा है जिसकी अहिंसापर से आस्था उठ गई है या जो अहिंसासे ऊब चुका है तो वह इस प्रस्तावके पक्षमें वोट न दे। . . .

मैं अपनी स्थिति स्पष्ट रूपसे समझाना चाहता हूँ। मुझे अहिंसाके रूपमें ईश्वरसे एक अमूल्य अस्त्रकी देन मिली है। आज मेरी और मेरी अहिंसाकी परीक्षा हो रही है। आजकी नाजुक घड़ीमें पृथ्वी हिंसाकी ज्वालासे तप रही है और त्राहि-त्राहि पुकार रही है, ऐसे समयमें यदि मैं इस ईश्वरप्रदत्त क्षमता का उपयोग न करूँ तो ईश्वर मुझे क्षमा नहीं करेगा और मैं इस महान् देन के लिए कुपात्र सिद्ध होऊँगा। मुझे अभी-अभी कदम उठाना है। जब चीन और रूसपर संकट छा रहा है तो मैं केवल आगा-पीछा करते तमाशा देखता हुआ नहीं रह सकता। . . .

हमारा कोई सत्ता-प्राप्तिका अभियान नहीं है, हमारा तो केवल भारतकी स्वतन्त्रताके लिए एक पूर्ण अहिंसामय संघर्ष है। हिंसापूर्ण संघर्षमें अक्सर देखा गया है कि कोई सफल सेना-नायक सफल सैनिक-क्रान्ति द्वारा अपनी तानाशाही सरकारकी स्थापना कर लेता है। परन्तु कांग्रेसकी योजनामें जो कि मूलभूत रूपसे अहिंसापूर्ण ही है, तानाशाहीका कोई स्थान नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता-संग्रामका अहिंसक सैनिक अपने लिए कुछ नहीं चाहता। वह केवल अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ता है। कांग्रेसको इस बातकी कोई चिन्ता नहीं कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर राज्य कौन करेगा। सत्ताके आ जाने पर उसपर समस्त भारतीय जनताका अधिकार होगा और वही इस बातका निर्णय करेगी कि सत्ता किसके हाथोंमें सौंपी जाये। हो सकता है कि शासनकी बागडोर पारसियोंके हाथोंमें थमाई जाये — ऐसा देखकर मुझे बड़ी खुशी होगी। हो सकता है कि बागडोर किसी औरके हाथमें दी जाये, जिसका कि आज कांग्रेसमें नाम भी नहीं सुनाई देता। उस समय आप यह कहकर एतराज नहीं कर सकेंगे कि "यह समुदाय तो बहुत छोटा है। इस समुदायने स्वतन्त्रताके संघर्षमें अपनी उचित भूमिका नहीं निभाई थी; इस कारण इसे पूरी सत्ता क्यों मिल जाये?" कांग्रेसने अपने उदयकालसे ही अपनेको सतर्कतापूर्वक जातीय भेदभाव के कलंकसे बचाये रखा है। कांग्रेसने हमेशा समूचे राष्ट्रकी बात सोची है और उसी दृष्टिकोणके अनुसार काम किया है। . . .

मैं जानता हूँ कि हमारी अहिंसा अभी कितनी अपूर्ण है और हम अब भी अपने आदर्शसे कितने दूर हैं। परन्तु अहिंसाके रास्तेमें न तो कोई निर्णायक असफलता होती है और न कोई हार होती है। इसी कारण मुझे विश्वास है कि यदि हमारी त्रुटियोंके बावजूद वह महान् घटना घट जाये तो वह केवल इस कारण होगी कि हमारी पिछले बाईस वर्षोंकी मूक निरन्तर साधनाको सफलता-रूपी ताज पहनाकर भगवान हमारी सहायता करना चाहता है।

. . . मेरा विश्वास है कि विश्वके इतिहासमें कभी भी हमारे स्वतन्त्रताके संघर्षसे अधिक लोकतन्त्रीय कोई संघर्ष नहीं हुआ है। मैं जब जेलमें था तब

मैंने कार्लाइलकी 'हिस्टरी ऑफ फ्रेंच रेवोल्यूशन' पढ़ी थी, और पण्डित जवाहरलाल नेहरूने मुझे रूसी क्रान्तिके विषयमें थोड़ा-बहुत बताया है। परन्तु मेरे विचारमें क्योंकि इन संघर्षोंमें हिंसा रूपी अस्त्रका प्रयोग किया गया था इसलिए उनके द्वारा लोकतन्त्रीय आदर्शोंकी स्थापना नहीं हो पाई। अहिंसा द्वारा प्रस्थापित जिस लोकतन्त्रकी मैंने कल्पना की है उस लोकतन्त्रमें सबको समान स्वतन्त्रता मिलेगी। हर कोई अपना स्वामी स्वयं होगा। आज मैं ऐसे ही लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए संघर्ष करने को आपका आह्वान कर रहा हूँ। अगर एक बार यह बात आपके दिलमें उतर जाये तो आप सब हिन्दू-मुस्लिमका भेदभाव भूल जायेंगे और स्वयंको मात्र भारतीय समझेंगे — ऐसे भारतीय जो एक ही स्वतन्त्रता-संग्राममें रत हैं।" (अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सम्मुख ७ अगस्तको हिन्दुस्तानीमें दिये भाषणसे उद्धृत)।[1]

वाइसराय, स्वर्गीय दीनबन्धु सी० एफ० एन्ड्रयूज तथा कलकत्ताके मेट्रोपोलिटन बिशपके साथ अपने व्यक्तिगत सम्बन्धोंकी चर्चा करने के बाद मैंने आगे कहा:

इसी चेतना-बोधकी पृष्ठभूमिको लेकर मैं विश्वके सम्मुख यह घोषणा कर देना चाहता हूँ कि चाहे इसके विरोधमें कुछ भी कहा जाये, चाहे आज मैं अपने बहुतसे पाश्चात्य मित्रोंसे प्राप्त सम्मान खो ही क्यों न बैठा हूँ, यहाँतक कि कुछका विश्वास खो भी बैठा हूँ, किन्तु उनके प्रेम-भाव और उनकी मैत्रीकी खातिर भी आज मैं अपने अन्तरकी आवाज नहीं दबा सकता। . . . मेरी अन्तरात्माकी आवाजने मुझे कभी धोखा नहीं दिया है और यह मुझसे कहती है कि चाहे पूरा संसार मेरे खिलाफ हो तब भी मुझे संघर्ष करना ही होगा। . . .

मेरा विश्वास है कि अहिंसाके बिना सच्ची स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। ये शब्द किसी अहंकारी या अक्खड़ व्यक्तिके नहीं हैं, ये तो सत्यके एक सच्चे शोधकके शब्द हैं। यह एक ऐसा बीज-सत्य है जिसके विषयमें कांग्रेस पिछले बाईस वर्षोंसे प्रयोग करती है। कांग्रेसने अपने उदयकालसे ही अनजानेमें ही अहिंसाको अपनी नीतिका आधार बनाया। उन शुरूके दिनोंमें कांग्रेसकी नीति वैधानिक पद्धति कहलाती थी। दादाभाई और फीरोजशाह मेहताको कांग्रेसी विचारधाराके हिन्दुस्तानियोंका समर्थन प्राप्त था। उन्हें कांग्रेससे प्रेम था और इसी कारण वे उसके स्वामी भी थे। परन्तु इन सबसे पहले वे राष्ट्रके सच्चे सेवक थे। वे विद्रोही तो बन गये किन्तु उन्होंने हत्या, गोपनीयता आदिको कभी बर्दाश्त नहीं किया। पीछे आनेवाली पीढ़ियोंने इस विरासतमें और बातें भी जोड़ीं और उनके राजनीतिक दर्शनको अहिंसात्मक असहयोगकी नीतिके रूपमें विकसित किया जिसे कांग्रेसने अपनाया। मैं इस बातका दावा नहीं करता कि प्रत्येक कांग्रेसी मात्र नीतिके रूपमें भी अहिंसाके उत्कृष्ट सिद्धान्तका पूरा-पूरा पालन करता है। मैं जानता हूँ कि कुछ-एक लोग कांग्रेसके नामपर कलंक रूप भी

१. मूल भाषण उपलब्ध न होने के कारण इसका अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है।

हैं, किन्तु मैं उन सबकी कड़ी परीक्षा न लेकर उन सबपर विश्वास कर रहा हूँ। मै उनपर इसलिए विश्वास कर रहा हूँ क्योंकि मुझे मनुष्य-स्वभावकी उस नैसर्गिक अच्छाईपर निष्ठा है जो मनुष्योंको सहज रूपसे सत्यको पहचान लेने और संकट पार कर लेने में समर्थ बनाती है। यही आधारभूत निष्ठा मेरे जीवन का संचालन करती है और जिसके बलपर मैं यह आशा रखता हूँ कि आगामी संघर्षमें समूचा भारत अहिंसाके सिद्धान्तकी सार्थकता सिद्ध करेगा। परन्तु यदि मेरी निष्ठा गलत सिद्ध हो जाये तो भी मैं पीछे नहीं हटूँगा। मैं अपने विश्वासको छोड़ूँगा नहीं। मैं तो केवल यही कहूँगा, "अभीतक पाठ पूरी तरह नहीं सीखा गया है, मुझे फिरसे कोशिश करनी होगी।" (८ अगस्तके अंग्रेजी भाषण से उद्धृत)।

कांग्रेसको अपने फैसले मनवाने के लिए नैतिक अधिकारके सिवाय कोई अधिकार नहीं है। मेरा विश्वास है कि सच्चा लोकतन्त्र अहिंसासे ही स्थापित हो सकता है। विश्व-संघकी इमारत अहिंसाकी नींवपर ही खड़ी की जा सकती है और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें हिंसाका सर्वथा त्याग करना जरूरी है। हिन्दू-मुस्लिम सवाल भी हिंसाके द्वारा हल नहीं किया जा सकता। अगर हिन्दू मुसलमानों पर अत्याचार करें तो वे किस मुँहसे विश्व-संघकी बात कर सकते हैं? इसी कारणसे कांग्रेसने सारे मतभेदोंको एक निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के सामने रखने और उसके फैसलेपर अमल करने की बात मान ली है।

सत्याग्रहमें जालसाजी या किसी प्रकारके झूठके लिए जगह नहीं है। जालसाजी और झूठ आज दुनियापर छा गये हैं। मैं ऐसी स्थितिको चुपचाप बैठा नहीं देख सकता। मैं सारे भारतमें इतना अधिक घूमा-फिरा हूँ जितना कि वर्त्तमान युगमें शायद कोई भी नहीं घूमा-फिरा होगा। देशके करोड़ों बेजबान लोगोंने मुझे अपना मित्र और प्रतिनिधि पाया और मै भी उनसे मिलकर उस हदतक एक हो गया जिस हदतक कि किसी मनुष्यके लिए ऐसा करना सम्भव है। मैंने उनकी आँखोंमें देखा कि वे मुझपर विश्वास करते है और अब मैं झूठ और हिंसापर खड़े इस साम्राज्यका मुकाबला करने के लिए उनके विश्वासका उपयोग करूँगा। साम्राज्यने चाहे जितना कड़ा शिकंजा कस रखा हो हमें उसके शिकंजे से निकल जाना होगा। मैं जानता हूँ इस महान् कार्यके लिए मैं कितना अपूर्ण साधन हूँ और मुझे जिस सामग्रीको लेकर कार्य करना है वह भी कितनी अपूर्ण है, फिर भी यह कैसे हो सकता है कि मैं इस महत्त्वपूर्ण घड़ीमें चुप बैठा रहूँ और सही रास्ता न दिखाऊँ? क्या मैं जापानियोंसे कहूँ कि भाई, जरा रुक जाओ? अगर आज मैं चुपचाप निष्क्रिय बैठा रहूँ तो ईश्वर मुझे फटकार देगा कि जब सारी दुनियामें आग फैल रही थी तब मैंने उसके दिये खजानेका उपयोग क्यों नहीं किया। यदि स्थिति कुछ और होती तो मैं आपसे थोड़ा इन्तजार करने को कहता जैसा कि पिछले कई वर्षोंसे कहता आ रहा हूँ। लेकिन अब स्थिति असह्य हो गई है और कांग्रेसके लिए कोई और रास्ता नहीं रह गया है। (८ अगस्तको दिये गये अन्तिम हिन्दुस्तानी भाषणसे उद्धृत)।

५७. अहिंसाके विषयमें मेरे दावे "महत्त्वहीन" थे, यह सिद्ध करने के लिए मेरे विरुद्ध सबूत देने के बाद लेखक कांग्रेस आला कमानके मेरे सहकर्मियोकी ओर मुड़ता है और बताता है कि उन्होंने "अपने कांग्रेसी अनुगामियो और जनताके समक्ष" मेरे "विचारों" को किस ढंगसे प्रस्तुत किया। पण्डित नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा श्री शंकरराव देवने चुनकर छात्र-वर्गपर जो ध्यान केन्द्रित किया, उसपर लेखकको एतराज है। कांग्रेसके इतिहासमें संघर्षकी खातिर छात्रों और किसानोंपर विशेष ध्यान देना कोई ऐसी नई बात नही थी जो पहले-पहल इसी आन्दोलनमें आरम्भ की गई हो। बहुत समय पूर्व १९२० में ही छात्रोंका असहयोग आन्दोलनमे हिस्सा लेने के लिए विशेष रूपसे आह्वान किया गया था और इस आह्वानके उत्तरमें हजारो छात्रोंने अपनी पढ़ाई-लिखाई स्थगित कर दी थी। मुझे नही मालूम कि अगस्तकी गिरफ्तारियों के बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें क्या हुआ। यह मान भी लें कि वहाँके कुछ छात्र बहक गये थे, तो भी इसी आधारपर उनके कार्योका पण्डित नेहरूसे सम्बन्ध तो नहीं जोड़ा जा सकता। ऐसा सम्बन्ध जोड़ने के लिए ठोस सबूत आवश्यक हैं। इस बातके अत्यधिक प्रमाण पेश किये जा सकते हैं कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अहिंसा-रूपी साधन के प्रति पण्डित नेहरूकी निष्ठा किसीसे भी कम नही है। उनके द्वारा संयुक्त प्रान्त के किसानोंके आह्वानके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त जहाँतक दूसरे नेताओंके भाषणोंके अभियोग-पत्रमें उद्धृत अंशोसे पता चलता है, उनमें भी हिंसाके पक्षमें कुछ नही कहा गया है।

५८. नेताओंके भाषणोंके पश्चात् लेखकने इस बातको लिया है कि "आन्दोलनके संचालनके लिए ब्योरेवार निर्देश भी अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बम्बईकी बैठकके पूर्व मौजूद थे"। "प्रथम उदाहरण" ९ अगस्तके 'हरिजन' से "चुना" गया है। लेखका शीर्षक है "अहिंसात्मक असहयोगके तरीके"। और बात ऐसी है कि इसमें आशंकित जापानी आक्रमणके विषयमें चर्चा की गई है। यह लेख इस प्रकार आरम्भ होता है:

> **अहिंसात्मक असहयोग करने के कुछ तरीकोंसे हम १९२० से ही परिचित हैं। इनमें सभी सरकारी संस्थाओं और सरकारी नौकरियोंका बहिष्कार करना और सरकारको कर न देना भी शामिल था। ये सब कदम उस विदेशी सरकारके विरोधमें थे जो हमारे देशपर सालोंसे कब्जा जमाये हुए है। एक नये विदेशी आक्रमणकारीके विरोधमें हम जो असहयोग करेंगे उसके तरीके स्वभावतः तफ़सीलकी दृष्टिसे भिन्न होंगे। जैसा कि गांधीजी ने कहा है, विदेशी आक्रमणकारीको भोजन और पानीतक न देना भी असहयोगमें शामिल हो सकता है। शत्रुको अपना काम करने में अक्षम बनाने के लिए सभी तरहका असहयोग अहिंसा की सीमाके भीतर रहकर करना है।**

इसके बाद लेखके लेखक (महादेव देसाई) ने भारतसे बाहरके देशोमें किये गये अहिंसात्मक असहयोगके कुछ उदाहरण दिये थे। ये उदाहरण ऐसे नही है जहाँ अहिंसा को जान-बूझकर अपनाया गया था। लेखके अन्तिम अनुच्छेदसे यह स्पष्ट हो जाता है

कि इस पूरे लेखका उद्देश्य यह दिखाना था कि आक्रमणकारीके विरोधमें अहिंसात्मक ढंगसे क्या-क्या किया जा सकता है:

> यह याद रखना है कि फ्रान्समें जो दमन-कार्य किया गया उससे दस गुना कड़ा दमन इस युद्धमें किया जायेगा। परन्तु यदि जनतामें कष्ट-सहनका संकल्प हो, अनाक्रामक प्रतिरोधके उपर्युक्त विभिन्न उदाहरणोंमें सुझाये गये ढंगपर असहयोग करने के तरीके ढूँढ़ निकालने की सूझबूझ हो, और सबसे बड़ी बात यह कि आक्रमणकारीको हर कीमतपर निकाल बाहर करने का संकल्प हो तो विजय निश्चित है। हमारे देशका भारी विस्तार हमारे लिए नुकसानकी बात होने के बजाय लाभकर सिद्ध हो सकता है, क्योंकि हजारों मोर्चोंपर प्रतिरोधका सामना कर पाना आक्रमणकारीके लिए कठिन हो जायेगा।

इस प्रकार इस लेखकी विषय-वस्तु जाति-विशेषके पक्षापक्षमें नहीं है, वल्कि आक्रमणकारीके विरोधमें है।

५९. लेखकने दूसरा उदाहरण २३ अगस्त, १९४२ के 'हरिजन' में प्रकाशित श्री कि० घ० मशरूवालाके लेखसे दिया है। श्री मशरूवाला मेरे एक सम्मानित सहकर्मी हैं। वे अहिंसाका इस चरम सीमातक पालन करते हैं कि उन्हें निकटसे जाननेवाले लोग हैरानीमें पड़ जाते हैं। फिर भी मैं उद्धृत अनुच्छेदके पक्षमें कुछ कहना नहीं चाहता। उन्होंने सतर्कता बरतते हुए कहा है कि उसमें केवल उनके व्यक्तिगत विचारकी अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने मुझे इस प्रश्नपर चर्चा करते हुए सुना होगा कि पुलों, रेलों और इसी प्रकारके अन्य साधनोंको तोड़ना-फोड़ना अहिंसामें शामिल किया जा सकता है अथवा नहीं। इस प्रकारके हस्तक्षेपके कार्य-रूपमें अहिंसात्मक होने में मुझे हमेशा सन्देह रहा था। यदि इस प्रकारके कार्योंका अहिंसात्मक होना सम्भव हो — और मैं मानता हूँ कि हो सकता है — तो भी आम जनताके सम्मुख यह सुझाव रखना खतरनाक है, क्योंकि उससे यह आशा नहीं रखी जा सकती कि वह इस प्रकारके काम अहिंसात्मक ढंगसे करेगी। इसके अलावा, आन्दोलनकी दृष्टिसे मैं ब्रिटिश सरकार और जापानको एक ही श्रेणीमें रखने के पक्षमें भी नहीं हूँ।

६०. अपने एक सम्मानित सहकर्मीकी रायकी आलोचनाकी छूट लेने के पश्चात् मैं यह कहना चाहता हूँ कि श्री मशरूवालाकी राय हिंसात्मक इरादेका सबूत नहीं है। अधिकसे-अधिक यही कहा जा सकता है कि यह वस्तुस्थितिको समझने की एक भूल थी और जन-सामान्य जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अहिंसाका पालन कर सकेगा या नहीं, ऐसे एक बिलकुल नये विषयमें इस प्रकारकी गलती होना स्वाभाविक है। पहले भी बड़े-बड़े सेनापतियों और राजनीतिज्ञोंसे समझकी ऐसी भूल हुई है, किन्तु उससे न तो उनकी प्रतिष्ठाकी भारी हानि हुई है और न उनपर बुरे इरादे रखने का आरोप लगा है।

६१. इसके पश्चात् आता है आन्ध्र परिपत्र। परन्तु चूँकि अपनी गिरफ्तारीसे पूर्व मैं इसके विषयमें कुछ नहीं जानता था, अतः मुझे इसको अपने लिए निषिद्ध विषय मानना चाहिए। इस कारण इसपर मैं संकोचके साथ ही कोई राय दे सकता

हूँ। यह सावधानी बरतते हुए मैं इस दस्तावेजको कुल मिलाकर अहानिकर समझता हूँ। परिपत्रकी दिशा-दर्शक धारा निम्न प्रकार है:

> इस सम्पूर्ण आन्दोलनका आधार अहिंसा है। इन निर्देशोंका उल्लंघन करनेवाला कोई भी कार्य कभी नहीं किया जाना चाहिए। नियम-भंगका जो भी कार्य किया जायेगा वह प्रकट रूपसे किया जायेगा, गुप्त रूपसे कदापि नहीं। (प्रत्यक्ष ही होगा, किसी आड़में नहीं होगा।)

कोष्ठकके भीतरके शब्द मूलमें भी हैं। परिपत्रमें निम्नलिखित चेतावनी भी शामिल है।

> इस बातकी निन्यानवे प्रतिशत आशा की जाती है कि महात्माजी शीघ्र ही इस आन्दोलनका आरम्भ करेंगे — सम्भवतः बम्बईमें होनेवाली अगली अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकके कुछ घंटों बाद ही। जिला कांग्रेस कमेटियोंको सतर्क रहना चाहिए और निर्देश मिलते ही फौरन काम शुरू कर देना चाहिए। किन्तु कृपा करके यह बात भी ध्यानमें रखी जाये कि जबतक महात्माजी कोई निर्णय न लें तबतक कोई आन्दोलन नहीं किया जाये और न कोई प्रकट कार्य किया जाये। यह भी तो सम्भव है कि महात्माजी का कुछ और ही निर्णय हो, और उस दशामें आप एक भारी और बेजा गलती करने के जिम्मेदार होंगे। आप तैयार रहें, फौरन संगठित हो जायें, सतर्क रहें, परन्तु बिना निर्देशके कोई कदम न उठायें।

जहाँतक समूचे परिपत्रका प्रश्न है, इसकी कुछ बातोंके लिए मैं स्वयंको उत्तरदायी नहीं मान सकता। किन्तु जिस चीजको मैं सुधार नहीं सकता — खासकर उसपर कमेटीके बयानके अभावमें — उसपर मुझे कोई निर्णय नहीं देना चाहिए। बेशक यह बात मैं परिपत्रको एक प्रामाणिक दस्तावेज मानते हुए कहता हूँ। अभियोग-पत्रमें कहा गया है कि रेलकी पटरी उखाड़ने पर लगाये हुए प्रतिबन्धको "लिखित संशोधन" द्वारा "हटा" दिया गया था, परन्तु उसमें इस तथाकथित संशोधनको उद्धृत नहीं किया गया है।

६२. इसके बाद पाँचवें परिशिष्टकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लेखकने यह दिखाना चाहा है कि किस प्रकार, अहिंसाकी "निरर्थक" आड़में मेरी बुद्धि, जैसा कि लेखक कहना चाहेगा, हिंसाकी ओर अग्रसर हो रही थी। परिशिष्टके एक स्तम्भमें लेखकके अनुसार अ० भा० कांग्रेस कमेटीके तथाकथित निर्देश दिये गये है और उनके ठीक सामने मेरे लेखोंमें से उद्धरण दिये गये हैं। मैंने उस परिशिष्टका अध्ययन करने की चेष्टा की है। मुझे अपने लेखोंमें से कोई शब्द वापस नहीं लेना है। और मेरा दावा है कि जिन निर्देशोंको अ० भा० कांग्रेस कमेटीके निर्देश बताये गये हैं, उनमें लेश-मात्र भी हिंसा नहीं है।

६३. अभियोग-पत्रके तर्कोंसे परे हटकर, मैं अहिंसाको जिस रूपमें जानता हूँ उसके विषयमें मुझे अब कुछ कहना है। अपनी किशोरावस्थाके आरम्भसे ही मेरे जीवन का उद्देश्य यही रहा है कि जीवनके हर क्षेत्रमें अहिंसाका प्रसार हो। यह काम मैं

लगभग साठ वर्षोंसे करता रहा हूँ। मेरे कहने पर १९२० में कांग्रेसने अहिंसाको एक नीतिके रूपमें अपनाया। अहिंसाका स्वरूप ही ऐसा है कि इसका उद्देश्य विश्वके सामने इसका प्रदर्शन नही था बल्कि इसे स्वराज्य-प्राप्तिका नितान्त अनिवार्य साधन मानकर ही नीति रूपमें अपनाया गया था। कांग्रेसियोने आरम्भमें ही इस बातको महसूस किया कि मात्र लिखित रूपमें इसे अपनाने का कोई महत्त्व नही है, बल्कि व्यक्तिगत और सामूहिक रूपमें इसे व्यवहारमें लाने में ही इसकी उपयोगिता है। जिस प्रकार उस व्यक्तिके लिए बन्दूकका कोई उपयोग नहीं है जो उचित समयपर उसका सही उपयोग करना न जाने, उसी प्रकार अहिंसाको एक बिल्लेकी तरह दिखावेके लिए धारण करने का भी कोई लाभ नहीं है। इसलिए यदि अहिंसाके अपनाये जाने पर कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता बढ़ी है तो उसी अनुपातमें बढ़ी है जिस अनुपातमें कांग्रेसने उसका उपयोग किया है — ठीक वैसे ही जैसे बन्दूकधारीकी शक्ति बन्दूकके सही उपयोगके अनुपातमें होती है। इस तुलनाको बहुत आगेतक नहीं ले जाया जा सकता। उदाहरणके लिए, हिंसात्मक तरीकोंमें आक्रमणकारीको चोट पहुँचाने और उसे नष्ट करने की चेष्टा की जाती है और इसमें सफलता तभी सम्भव होती है जब प्रतिपक्षीसे बढ़कर हिंसा की जाये। किन्तु अहिंसक कार्रवाई तो प्रतिपक्षीके हिंसा करने की दृष्टिसे चाहे जितना भी संगठित रहने पर की जा सकती है। ऐसा कभी नही देखा गया है कि कमजोरकी हिंसा अपने-आपमें अधिक बलवान प्रतिपक्षी की हिंसापर विजय पा गई हो। किन्तु अत्यन्त कमजोर पक्षकी भी अहिंसाकी विजय प्रायः देखी जाती है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि अहिंसाके यहाँ प्रतिपादित सिद्धान्तोंको मैंने इस संघर्षमें भी लागू किया है। भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यवादका संचालन करनेवाले वर्त्तमान शासन-तन्त्रके कार्यवाहकों और संचालकोंको या उनकी सम्पत्तिको नुकसान पहुँचाने की बात तो मैं सोच भी नही सकता। मेरी अहिंसा मनुष्य और उसके द्वारा संचालित तन्त्रमें आधारभूत अन्तर मानती है। मैं बिना किसी झिझकके हानिकर तन्त्रको नष्ट कर सकता हूँ, किन्तु उसके संचालकको नहीं। अपने निकटतम सम्बन्धियों, मित्रों और सहकर्मियोंके साथ भी मैंने इसी नियमको लागू किया है, जिसमें मुझे काफी सफलता भी मिली है।

६४. अहिंसाके विषयमें अपनी बात कह चुकने के बाद लेखकने १४ जुलाईके वर्धा प्रस्ताव[1] तथा ८ अगस्तके बम्बई प्रस्तावके[2] — उन्हीके शब्दोंमें — "दिखावटी उद्देश्यों" का सारांश इस प्रकार दिया है:

> १४ जुलाईके वर्धा प्रस्ताव (परिशिष्ट ३/१) तथा ८ अगस्तके बम्बई प्रस्ताव (परिशिष्ट ३/२) दोनोंमें मुख्य दिखावटी उद्देश्य एक-से हैं। ये हैं:
>
> १. भारतसे विदेशी प्रभुत्वको हटाना।
>
> २. जनतामें ब्रिटेनके प्रति बढ़ती हुई दुर्भावनाकी रोक-थाम, क्योंकि इस दुर्भावनाके कारण भारतीय जनता द्वारा भारतपर होनेवाले विदेशी आक्रमणके

१ और २. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ९ और १०।

निष्क्रिय रूपसे स्वीकार कर लिये जाने का खतरा है; भारतीयोंमें विदेशी आक्रमणके प्रतिरोधकी भावना उत्पन्न करना, और करोड़ों भारतीयोंको फौरन स्वतन्त्रता दिलाकर उनमें उस शक्ति और उत्साहका संचार करना जिसके बल पर ही भारत अपनी सुरक्षाके प्रयासमें और समग्र रूपसे इस महायुद्धमें एक सशक्त भूमिका निभा सकता है।

३. फूट डालकर राज्य करने की नीतिपर चलनेवाली विदेशी सत्ताको हटाकर देशमें एकताकी स्थापना करना और उसके बाद एक अन्तरिम सरकार की स्थापना करना जिसमें भारतीय जनताके हर वर्गका प्रतिनिधित्व हो।

तीन और उद्देश्य पहली बार बम्बईके प्रस्तावमें सामने आये :

४. विश्वकी समस्त पराधीन पददलित मानवताको संयुक्त-राष्ट्रोंके पक्षमें लाना, और इस प्रकार इन राष्ट्रोंको विश्वका नैतिक तथा आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान करना।

५. एशियाके सभी विदेशी सत्ताधीन राष्ट्रोंको पुनः स्वतन्त्र होने में सहायता देना और यह भी पक्का कर लेना कि पुनः उन्हें कोई उपनिवेशवादी सत्ता अपने अधीन न कर सके।

६. विश्व-संघकी स्थापना करना, जिसके अन्तर्गत सभी राष्ट्रीय थल, जल और वायु सेनाओंका विघटन हो जायेगा और विश्वके संसाधनोंको एकत्र करके सबकी भलाईके लिए उनका उपयोग किया जायेगा।

लेखक कहता है कि "उपर्युक्त उद्देश्योंमें से प्रथमकी सचाईसे इनकार नहीं किया जा सकता। चाहे जिन शब्दोंमें कहा गया हो, भारतकी स्वतन्त्रता चिरकालसे कांग्रेसका प्रधान लक्ष्य रही है, और ऊपर दिखाया जा चुका है कि यह लक्ष्य 'भारत छोड़ो' प्रस्तावके प्रधान हेतुओंमें से एक है।" मुझे भले ही विचित्र प्रतीत होता हो, लेकिन पहले उद्देश्यकी सचाईकी स्वीकृतिके बावजूद लेखकने बाकी उद्देश्योका किसी-न-किसी रूपमें मजाक उड़ाया है। मेरा कहना है कि बाकी सब उद्देश्य पहले उद्देश्यसे ही उद्भूत हैं। उदाहरणार्थ, यदि विदेशी सत्ता पारस्परिक समझौतेके अनुसार भारतसे हटा ली जाये तो ब्रिटेनके प्रति लोगोंकी दुर्भावना अपने-आप सद्भावनामें बदल जायेगी और भारतके करोड़ो लोगोकी शक्ति उन्मुक्त होकर मित्र-राष्ट्रोंके हितार्थ काम करेगी। और जिस प्रकार रातके बाद दिनका निकलना अनिवार्य है उसी प्रकार विदेशी सत्ता-रूपी रात्रिके अवसानपर साम्प्रदायिक एकताका उदय भी अनिवार्य है। यदि लगभग चालीस करोड़का एक जन-समुदाय स्वतन्त्र हो जाये तो दूसरे पददलित जन-समुदायोका स्वतन्त्र होना भी अनिवार्य है, और चूँकि मित्र-राष्ट्रोका इस स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ अन्तरग सम्बन्ध होगा, वे बिना किसी चेष्टाके स्वभावत: विश्वके नैतिक और आध्यात्मिक नेता बन जायेंगे। पाँचवाँ लक्ष्य तो चौथे लक्ष्यमें ही सन्निहित है, तथा छठा लक्ष्य उस सम्पूर्ण मानव-जातिके लक्ष्यकी पुनरावृत्ति-मात्र है जिसे या तो उसे प्राप्त करना है या उसके बिना नष्ट हो जाना है। यह बात सही है कि अन्तिम तीन लक्ष्य बम्बईमें जोड़े गये थे। परन्तु यह कोई ऐसी बात नही है जिसपर

निरर्थक आपत्ति की जाये। यदि वे आलोचनाके परिणाम थे तो उसमें भी क्या बुराई है? कोई भी लोकतन्त्रीय संगठन आलोचनाकी उपेक्षा नही कर सकता, क्योंकि वह आलोचना-रूपी स्वच्छ वायुके वलपर ही जीवित रहता है। लेकिन सच तो यह है कि विश्व-संघ और अश्वेत लोगोंके अधिकार, ये कांग्रेसके लिए कोई नये विचार नहीं हैं। पहले भी कई बार कांग्रेसके प्रस्तावोंमें इनका उल्लेख हो चुका है। अगस्तके प्रस्तावमें विश्व-संघसे सम्बन्धित अनुच्छेद एक यूरोपीय मित्रके अनुरोधपर तथा अश्वेत लोगोंके अधिकारोंसे सम्बन्धित अनुच्छेद मेरे अनुरोधपर शामिल किया गया था।

६५. जहाँतक ९ अगस्तकी गिरफ्तारियोंके बाद होनेवाले उपद्रवोंका सवाल है, मैंने अभियोग-पत्रके चौथे और पाँचवें अध्यायोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा है जिनमें इनका ब्योरा है। मैंने उन परिशिष्टोंको भी ध्यानपूर्वक पढ़ा है जिनमें विभिन्न संस्थाओंकी ओरसे जारी किये गये तथाकथित निर्देश दिये गये हैं। इन एकपक्षीय बयानों या अप्रमाणित दस्तावेजोंके सम्बन्धमें कोई भी निर्णय देनेसे मैं इनकार करता हूँ। उन तथाकथित निर्देशोंके सम्बन्धमें मैं कह सकता हूँ कि जहाँतक वे अहिंसाके विपरीत है, उनपर कभी भी मेरी स्वीकृति नहीं मिल सकती।

६६. सरकारने प्रतिशोधके रूपमें जो-जो कदम उठाये, उनका कोई विवरण अभियोग-पत्रमें ढूंढ़े नहीं मिलता। इन कार्रवाइयोंके बारेमें जितना-कुछ अखबारोंमें प्रकाशित होने दिया गया है, उसपर यदि विश्वास किया जाये तो कुपित जनताने, चाहे वह जनता कांग्रेसी कही जाये या न कही जा सके, जो भी तथाकथित गलत काम किये वे सब उसके सामने फीके पड़ जाते हैं।

६७. अब मैं गत ९ अगस्तको भारी संख्यामें की गई गिरफ्तारियोंके बादकी घटनाओंके उत्तरदायित्वके विषयको लेता हूँ। इन उपद्रवोंको सबसे सहज ढंगसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि ये उपद्रव गिरफ्तारियोंके बाद ही हुए, अतः वे उन्हींके परिणाम थे। इनका उत्तरदायित्व कांग्रेसपर थोपने के एकमात्र उद्देश्यको लेकर ही इस अभियोग-पत्रकी रचना की गई है, जैसा कि इसके शीर्षकसे ही स्पष्ट है। लेखकने जो तर्क दिया है, मेरी समझमें वह इस प्रकार है। सबसे पहले मैंने और उसके बाद कांग्रेसने अप्रैल, १९४२ में ही एक सार्वजनिक आन्दोलनके लिए रंगमंच तैयार करना आरम्भ कर दिया था, जब मैंने भारतसे ब्रिटिश वापसीके उस विचारका पहले-पहल प्रचार किया था जो बादमें "भारत छोड़ो" नारेके रूपमें प्रचलित हुआ। इस जन-आन्दोलनकी परिणति हिंसात्मक घटनाओंके रूपमें होनी निश्चित थी। मेरा और मेरा मार्ग-दर्शन स्वीकार करनेवाले कांग्रेसजनोंका इरादा था कि यह हिंसा हो। नेता लोगोंको इसका उपदेश दे रहे थे। इसलिए हर हालतमें उपद्रव होना तो निश्चित ही था। इसलिए गिरफ्तारियाँ तो ऐसी कार्रवाई थी जो उस हिंसक आन्दोलनको ध्यानमें रखकर पेशकदमीके तौरपर की गईं और जिसके फलस्वरूप वह आन्दोलन आरम्भमें ही दबा दिया गया। अभियोग-पत्रकी तर्क-श्रृंखलाका यही सारांश है।

६८. मैंने यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि मेरे ब्रिटिश सत्ताके हटाये जानेके प्रस्तावकी वजहसे किसी सार्वजनिक आन्दोलनके लिए न कोई मंच तैयार

हुआ और न उसका विचार किया गया; मैंने या किसी और कांग्रेसी नेताने हिंसाकी कभी कल्पना भी नही की थी; मैंने घोषणा कर दी थी कि यदि कांग्रेसजन हिंसक काण्ड करेंगे तो वे अपने बीच मुझे जीवित भी नही पायेंगे; मैंने वह जन-आन्दोलन कभी छेड़ा ही नही; उसे आरम्भ करने का पूरा उत्तरदायित्व केवल मुझे सौंपा गया था; मैंने सरकारसे बातचीत करने का विचार किया था, जिसके असफल होने पर ही मैं आन्दोलन आरम्भ करता; और इस समझौता-वार्त्ताके लिए मैंने "दो या तीन सप्ताह" के अन्तरालकी बात सोची थी। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि गिरफ्तारियाँ न की जाती तो गत ९ अगस्तको और उसके बाद जो उपद्रव हुए वे कदापि न होते। मै जी-जानसे प्रयत्न करता कि समझौता-वार्त्ता सफल हो और उसमें असफलता मिलने पर मेरा प्रयास होता कि कोई उपद्रव न हो। और तब भी उपद्रव होता तो उसे दबाने में सरकारको उतनी ही सफलता मिलती जितनी कि गत अगस्तमें मिली थी। हाँ, उस हालतमें सरकारको मेरे तथा कांग्रेसके विरुद्ध कुछ हदतक सही शिकायत होती। सरकारका कर्त्तव्य था कि कोई कदम उठाने से पहले वह अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें दिये कांग्रेसी नेताओंके और मेरे भाषणोंका अध्ययन कर लेती।

६९. कांग्रेसी नेताओंकी इच्छा थी कि आन्दोलन अहिंसापूर्ण बना रहे, चाहे केवल इसी कारण कि वे जानते थे कि एक अत्यन्त शक्ति-साधन-सम्पन्न सरकारसे तत्कालीन परिस्थितियोमें टक्कर लेने में हिंसात्मक आन्दोलन कभी भी सफल नहीं हो सकता। अतः लोगोंने, चाहे वे कांग्रेसी रहे हों या अन्य, जो-कुछ भी हिंसा की वह नेताओंकी इच्छाके विरुद्ध थी। यदि सरकारकी धारणा इसके विपरीत है तो उसे इस बातको एक निष्पक्ष न्यायाधिकरणके सामने असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध करना होगा। परन्तु जब उपद्रवका कारण बिलकुल प्रत्यक्ष है तो सरकार उसका उत्तरदायित्व दूसरों पर क्यों डालना चाहती है? समूचे भारतमें गिरफ्तारियाँ करने का सरकारका कदम इतना कड़ा कदम था कि जनता, जिसकी सहानुभूति कांग्रेसके प्रति थी, आत्म-नियन्त्रण खो बैठी। इस प्रकार जनताके आत्म-नियन्त्रण खो बैठने से यह तात्पर्य नही निकलता कि इसमें कांग्रेसका हाथ था, बल्कि यह सिद्ध होता है कि मनुष्यकी सहनशीलता को एक सीमा होती है। और यदि सरकारका कदम मनुष्यकी सहन-शक्तिसे बाहर था तो वह कदम और उसके प्रणेता ही उसके पश्चात् होनेवाले उस विस्फोटके लिए जिम्मेदार हैं। परन्तु सरकार कह सकती है कि गिरफ्तारियाँ आवश्यक थीं। यदि ऐसा ही है तो अपने कार्यके परिणामोंका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने में वह क्यों झिझक रही है? मुझे तो इस बातपर आश्चर्य है कि जब सरकार यह जानती है कि उसकी अपनी इच्छा ही कानून है तब भी वह अपने कार्योंके लिए सफाई क्यों दे रही है।

७०. अब मैं भारतकी वर्त्तमान शासन-प्रणालीका विश्लेषण करना चाहता हूँ। लगभग चालीस करोड़ जनतापर, जिसकी अपनी एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यता है, आज ब्रिटिश प्रतिनिधि राज्य कर रहे है, जिन्हें वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल कहा जाता है। उनके सहायक २५० अफसर हैं, जिन्हें कलक्टर कहा जाता है और इनकी

सहायताके लिए एक सशक्त ब्रिटिश सेना है, जिसमें ऐसे भारतीय सैनिकोंकी भी भारी संख्या है जिन्हें ब्रिटिश अफसरोंने ही प्रशिक्षित किया है और जिन्हें सावधानी-पूर्वक सामान्य जनतासे दूर रखा गया है। अपने क्षेत्रमें वाइसरायको जो अधिकार प्राप्त हैं, वे उनसे कहीं अधिक हैं जो इंग्लैण्डके राजाको प्राप्त हैं। जहाँतक मैं जानता हूँ, विश्वमें और किसी भी व्यक्तिको ऐसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं। कलक्टर अपने-अपने क्षेत्रोंमें वाइसरायके ही छोटे रूप हैं। जैसा कि उनके नामसे ही ज्ञात होता है, उनका प्रथम तथा प्रमुख कर्त्तव्य है अपने जिलेमें राजस्व एकत्र करना। इसके अलावा उन्हें दण्डाधीशके भी अधिकार प्राप्त हैं। जब भी वे आवश्यक समझें, अपनी सहायताके लिए सेना भी बुला सकते हैं। अपने अधिकार-क्षेत्रके छोटे-मोटे नरेशोंके लिए वे पॉलिटिकल एजेंट भी हैं तथा उनके अधिपति-जैसे भी हैं।

७१. अब आप इसकी तुलना कांग्रेससे कीजिए, जो विश्वका सच्चे अर्थोंमें सबसे अधिक लोकतान्त्रिक संगठन है। यह सबसे अधिक लोकतान्त्रिक इसलिए नहीं है कि इसके सदस्योंकी संख्या बहुत बड़ी है, वरन् इसलिए कि सोच-समझकर अपनाई गई अहिंसा ही इसकी एकमात्र शक्ति है। अपने स्थापना-कालसे ही कांग्रेस एक ऐसी लोकतान्त्रिक संस्था रही है जो सम्पूर्ण भारतका प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करती रही है। कांग्रेसका यह प्रयत्न चाहे जितना ही कमजोर या अपूर्ण रहा हो, किन्तु उसने अपने लगभग साठ वर्षोंके इतिहासमें कभी भी अपनी दृष्टि भारतकी स्वतन्त्रता-रूपी ध्रुव-तारेसे नहीं हटाई। वह मंजिलपर-मंजिल पार करती हुई, बिलकुल सच्चे लोकतन्त्रकी ओर अग्रसर होती रही है। यदि यह कहा जाये — जैसा कि कहा भी गया है — कि कांग्रेसने ग्रेट ब्रिटेनसे प्रजातन्त्रकी भावना अपनाई है तो कोई भी कांग्रेसी इनकार नहीं करेगा। किन्तु यहाँ यह भी कहा जाना चाहिए कि इसका मूल प्राचीन पंचायत-प्रणालीमें पाया जाता है। कांग्रेस नाजी, फासीवादी या जापानी प्रभुत्वको कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। जिस संस्थाके श्वास-प्रश्वासमें स्वतन्त्रता बसी हुई है और जो संसारके सबसे सशक्त रूपसे संगठित साम्राज्यवादके मुकाबलेमें खड़ी है वह किसी भी दूसरे प्रभुत्वके प्रतिरोधमें अपने एक-एक सदस्यके प्राणोंकी बाजी लगा देगी। जबतक वह अहिंसा-पालनपर दृढ़ रहेगी तबतक यह अदम्य और अजेय बनी रहेगी।

७२. कांग्रेसके प्रति सरकारको यह जो असामान्य रोष हो आया है उसका क्या कारण हो सकता है? मैंने पहले कभी भी सरकारको इस प्रकार नाराजगी व्यक्त करते नहीं देखा। क्या इसका कारण "भारत छोड़ो" सूत्र है? उपद्रव तो कारण नहीं हो सकते, क्योंकि मेरे ब्रिटिश सत्ताके हटाये जानेके प्रस्तावके प्रकाशित होनेके शीघ्र बाद सरकारकी नाराजगी प्रकट होनी शुरू हो गई थी। यह रोष बढ़ते-बढ़ते ९ अगस्तकी उन व्यापक गिरफ्तारियोंके रूपमें प्रकट हुआ जिनकी योजना पहले ही बना ली गई थी और ८ अगस्तको प्रस्तावके पारित होने-भरका इन्तजार था। किन्तु इस प्रस्तावमें "भारत छोड़ो" सूत्रके अतिरिक्त और नई कोई बात नहीं थी। १९२० से ही जन-आन्दोलन हमेशा कांग्रेसके कार्यक्रममें शामिल रहा है। परन्तु स्वतन्त्रता हाथ

में आती ही नहीं दीखती थी। कभी हिन्दू-मुस्लिम एकताका अभाव, कभी राजाओंको दिये गये वायदे, कभी अनुसूचित वर्गोकी भलाई, कभी यूरोपीयोंके व्यापारिक हित, ये सब स्वतन्त्रताके मार्गमें बाधक बनते जाते थे। देशमें फूट डालकर राज्य करने की नीति तो एक अक्षय कुएँ-जैसी थी। समय कम हो रहा था। युद्धरत राष्ट्रोंके बीच खूनकी नदियाँ बह रही थीं और राजनीतिक दृष्टिसे जागरूक भारतीय असहाय दर्शक बने हुए थे — जब कि जनता जड़ हो गई थी। इसलिए "भारत छोड़ो" का नारा बुलन्द किया गया। इससे स्वतन्त्रताके आन्दोलनको ठोस रूप मिला। यह माँग तो अकाट्य थी। जो लोग विश्वके इस संकटमें हिस्सा लेना चाहते थे उन्हें इस व्यथाकी पुकारमें अपनी अभिव्यक्ति मिली। इस माँगके मूलमें लोकतन्त्रको नाजीवाद और साम्राज्यवाद दोनोंसे बचाने की प्रबल इच्छा है, क्योंकि कांग्रेसकी इस माँगकी पूर्तिका अर्थ था हर प्रकारकी प्रतिक्रियावादी शक्तियोंपर लोकतन्त्रकी विजय सुनिश्चित हो जाना तथा जापान और जर्मनीके आतंकसे क्रमशः चीन और रूसको छुटकारा मिलना। परन्तु इस माँगसे सरकार चिढ़ गई। सरकारको इस माँगसे सम्बन्ध रखनेवाले लोगोंपर अविश्वास हो गया और इस प्रकार सरकार स्वयं युद्ध-प्रयत्नमें सबसे बड़ी बाधा बन गई। इसलिए कांग्रेसपर युद्ध-प्रयत्नमें बाधा डालने का आरोप लगाना गलत है। ८ अगस्तकी राततक कांग्रेसकी कार्रवाइयाँ केवल प्रस्तावों तक ही सीमित थीं। किन्तु ९ अगस्तके सूर्योदयतक कांग्रेसजन गिरफ्तार किये जा चुके थे। उसके बाद जो-कुछ हुआ वह सरकार द्वारा उठाये गये कदमका सीधा परिणाम था।

७३. मेरी दृष्टिमें जो एक न्यायोचित और गौरवपूर्ण आकांक्षा है उसके प्रति सरकारका आक्रोश यह सिद्ध करता है कि सरकारने युद्धके बाद स्वातन्त्र्य और प्रजातन्त्रके अवतरणके सम्बन्धमें जो बातें कही हैं उनकी सचाईमें जनताका अविश्वास सही है। यदि सरकारकी नीयत नेक होती तो कांग्रेसने सहायता करने का जो प्रस्ताव रखा था उसका वह स्वागत करती। आधी शताब्दीसे भी अधिक कालसे स्वतन्त्रताके लिए जूझ रहे कांग्रेसजन नव-अर्जित स्वतन्त्रताकी रक्षा करने के लिए एक-मत होकर मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-ध्वजके नीचे एकत्र हो जाते। परन्तु सरकार भारतके साथ बराबरीके भागीदार और सहयोगी मित्रके रूपमें व्यवहार नहीं करना चाहती थी। जिन लोगोंने ऐसी माँग रखी, उन्हें सरकारने निष्क्रिय बना दिया। यहाँतक कि उनमें से कुछ लोगोंका इस तरह पीछा किया जा रहा है मानो वे कोई खतरनाक अपराधी हों। मेरा तात्पर्य श्री जयप्रकाश नारायण तथा उन्हीं-जैसे अन्य लोगोंसे है। सरकारने उनके छुपने के स्थानका पता देनेवाले को ५००० रु० का पुरस्कार देने की घोषणा की है, और पुरस्कारकी राशि अब दुगुनी कर दी गई है। मैंने श्री जयप्रकाश नारायणका उदाहरण जान-बूझकर दिया है, क्योंकि जैसा कि वे ठीक ही कहते हैं, अनेक आधारभूत बातोंपर मुझसे उनका मतभेद है। परन्तु इतने घोर मतभेद होते हुए भी मैं उनके अदम्य साहस और अपने देशके लिए सर्वस्व त्यागकी ओरसे अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता। मैंने उनके उस घोषणा-पत्रको पढ़ा है जिसे अभियोग-पत्रके परिशिष्टमें दिया गया है। यद्यपि इस घोषणा-पत्रमें व्यक्त कुछ विचारोंसे मैं सहमत

नहीं हूँ, फिर भी यह उनकी ज्वलन्त देशभक्ति और विदेशी प्रभुताके प्रति अधैर्यकी एक प्रचण्ड अभिव्यक्ति है। ये भावनाएँ किसी भी राष्ट्रके लिए गर्वका विषय है।

७४. यह तो रहा राजनीतिमें रूचि रखनेवाले कांग्रेसजनोके बारेमें। कांग्रेसके रचनात्मक विभागमें भी सरकारने अपनेको हस्तोद्योगोंके संगठनमें लगे सबसे प्रतिभावान लोगोंके लाभसे वंचित कर लिया है, जब कि युद्ध-कालमें इन उद्योगोंकी आकुल आवश्यकता होती है। अखिल भारतीय चरखा संघने तीन करोड़से अधिक धनराशि पारिश्रमिकके रूपमें बिना किसी ताम-झामके उन गरीब ग्रामीणोंमें बाँटी है जिन्हे कोई पूछता ही नहीं था और जिनकी श्रम-शक्ति व्यर्थ जा रही थी, किन्तु इस संस्थापर भी सरकारकी कुदृष्टि पड़ी है। इसके अध्यक्ष श्री जाजूजी[1] और उनके बहुत-से सहकर्मियों को बिना कोई मुकदमा चलाये और बिना किसी ज्ञात कारणके बन्दी बना लिया गया है। खादी केन्द्र यद्यपि न्यासकी सम्पत्ति थे, फिर भी उन्हे सरकारने जब्त कर लिया है। मुझे ऐसा कोई कानून नही मालूम जिसके अन्तर्गत इस प्रकारकी सम्पत्ति जब्त की जा सकती हो। और विडम्बना तो यह है कि जब्त करनेवाले स्वयं इन केन्द्रोंको, जो कपड़ेका उत्पादन और वितरण करते थे, चलाने में असमर्थ है। सूचना मिली है कि अधिकारियों द्वारा खादी और चरखे जलाये गये हैं। कुमारप्पा बन्धुओं[2] द्वारा संचालित अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघके साथ भी लगभग ऐसा ही व्यवहार हुआ है। श्री विनोबा भावे तो स्वयं ही एक संस्था है। बहुत-से कार्यकर्त्ता उनके निर्देशनमें निरन्तर रचनात्मक कार्य कर रहे थे। रचनात्मक संस्थाओंके अधिकांश स्त्री-पुरुष राजनीतिक कार्यकर्त्ता नहीं है। ये लोग उच्चतम कोटिके रचनात्मक कार्योंमे लगे हुए है। यदि इनमें से कुछ लोगोंको राजनीतिके क्षेत्रमें उतरने की कुछ भी आवश्यकता प्रतीत हुई है तो यह सरकारके लिए सोचने की बात है। ऐसी संस्थाओं और उनके संचालकों पर प्रतिबन्ध लगाना मेरे विचारमें वर्तमान युद्ध-प्रयत्नमें अक्षम्य रूपसे विघ्न डालना है। आज जब भारतवासी खाने, कपड़े और जीवनकी अन्य अनेक आवश्यक वस्तुओंके अभावमें मुसीबतें उठा रहे हैं, ऐसे समयमें उच्च सरकारी अफसर जिस आत्म-तोषके साथ ऐलान कर रहे हैं कि उन्हें इस अभागे देशसे असीमित मात्रामें सामग्री और सैनिक मिल रहे है, वह वास्तवमें आश्चर्यजनक लगता है। मैं यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि यदि देश-भरके कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंको बन्दी बनाने के स्थानपर सरकारने उनकी सेवाओंका उपयोग किया होता तो इन चीजोंकी कमीको यदि पूरी तरह नही तो कमसे-कम काफी हदतक अवश्य दूर किया जा सकता था। कांग्रेसकी सफल कार्य-क्षमताके दो असाधारण उदाहरण सरकारके सम्मुख थे — मेरा आशय डॉ० राजेन्द्र प्रसादके नेतृत्वमें कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं द्वारा बिहारके विनाशकारी भूचालके[3] अवसरपर और सरदार वल्लभभाई पटेलके नेतृत्वमें गुजरातकी उतनी ही भीषण बाढ़के[4] अवसरपर की गई व्यवस्थासे है।

१. श्रीकृष्णदास जाजू
२. जे० सी० कुमारप्पा और भारतन् कुमारप्पा
३. १९३४ में
४. १९२७ में

७५. इस प्रकार अभियोग-पत्रका मेरा उत्तर समाप्त होने को है। मैं जितना चाहता था, उससे यह काफी लम्बा हो गया है। इस उत्तरपर मुझे और कैम्पमें उपस्थित मेरे सहकर्मियोको अपार श्रम करना पड़ा है। यद्यपि अपने प्रति और जिस महान उद्देश्यका मैं प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ उसके प्रति न्यायके लिए मैं अभियोग-पत्रके अपने इस उत्तरके प्रकाशनकी माँग करता हूँ, तथापि मेरा प्रधान लक्ष्य सरकारको यह विश्वास दिलाना है कि मुझपर तथा कांग्रेसपर लगाये गये आरोपोंकी पुष्टिके लिए इस अभियोग-पत्रमें कोई प्रमाण मौजूद नही है। सरकार जानती है कि जनताको इस अभियोग-पत्रपर सन्देह है तथा जनताके विचारमें, विदेशोमें प्रचार-मात्रके लिए ही इसकी रचना हुई है। सर तेज वहादुर सप्रू तथा परम माननीय श्री मु० रा० जयकर-जैसे व्यक्तियोने अपना यह मत व्यक्त किया है कि अभियोग-पत्रमें दिये गये "प्रमाणो" का कानूनकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नही है। इसलिए सरकारको यह अभियोग-पत्र वापस ले लेना चाहिए। अभियोग-पत्रकी भूमिकामें कहा गया है कि सरकारके पास "महत्त्वपूर्ण प्रमाण" हैं, जो कि सम्भवत: नजरबन्दोको दोषी ठहराने में सहायक होंगे। मेरा कहना यह है कि यदि सरकार इन प्रमाणोंको निरापद तौरपर प्रकाशित नही कर सकती तो उसे नजरबन्दोंको छोड़ देना चाहिए और छूटने के पश्चात जो पुन: अपराध करते अथवा अपराधोंको बढ़ावा देते पकड़े जायें उनको दण्ड देना चाहिए। सरकारके पास असीम शक्ति है। उसे ऐसे आरोपोंका सहारा नहीं लेना चाहिए जिन्हे सिद्ध करना असम्भव हो।

७६. हम देखते हैं कि यद्यपि अभियोग-पत्र एक सरकारी प्रकाशन है, परन्तु मैंने केवल इसके अज्ञात लेखककी ही आलोचना इस आशासे की है कि भारत सरकार के विभिन्न कर्णधारोने उन मूल दस्तावेजोंको नही पढा है जिनपर यह अभियोग-पत्र आधारित है। कारण, मेरी यह धारणा है कि यदि उन्होने स्वयं मूल दस्तावेज पढ़े होते तो वे अनुमानों और व्यंग्योक्तियोंसे भरपूर इस अभियोग-पत्रको अपना अनुमोदन कभी न देते।

७७. अन्तमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि अभियोग-पत्रका विश्लेषण करने में मैंने कही कोई भूल की है और मुझे इस भूलसे अवगत कराया जायेगा तो उसे मै सहर्ष सुधार लूँगा। अभी तो मैंने जो अनुभव किया है वही लिख दिया है।

आपका,

मो० क० गांधी

[पुनश्च :][1]

निवेदन है कि परिशिष्टोंको उत्तरका अभिन्न अंग माना जाये।

मो० क० गां०

१. यह पश्चात्-लेख गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ९१ से लिया गया है। कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी के अनुसार, "श्री गांधीके उत्तरके आवरणपर यह निवेदन लिखा हुआ था।" पश्चात्-लेख और परिशिष्ट फोटो-नकलवाले साधन-सूत्रमें उपलब्ध नहीं हैं। गांधीजी के जो लेख, भाषण या वक्तव्य पूरेके-पूरे उद्धृत किये गये हैं वे यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं; क्योंकि वे सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय के खण्डोंमें तारीखवार दे दिये गये हैं।

परिशिष्ट १

अंग्रेजोंकी भारतसे वापसी

आरम्भमें श्री गांधीके "भारत छोड़ो" प्रस्तावका यही लक्ष्य था और सब जगह इसका यही तात्पर्य भी समझा गया था कि यह भारतसे अंग्रेजोंके और सभी मित्र-राष्ट्रों तथा अंग्रेजी सेनाओंके शारीरिक रूपसे हट जाने का एक प्रस्ताव है (अभियोग-पत्र पृ० २)।

(ए) एक भ्रम[1]

(बी) जन-सम्पर्कसे दूर[2]

(सी) स्वतन्त्र भारत सबसे अच्छी तरह सहायता कर सकता है[3]

एक संवाददाताके इस प्रश्नका जवाब देते हुए कि क्या आपके लेखोंमें व्यक्त आपकी मौजूदा नीति आपकी ही इस घोषणाको व्यर्थ नहीं कर देती कि आप चीनके मित्र हैं, गांधीजी ने कहा :

"मेरा स्पष्ट जवाब है 'नहीं'। मैं चीनका वैसा ही उत्साही मित्र हूँ जैसा होने का मैंने हमेशा दावा किया है। मैं जानता हूँ कि स्वतन्त्रता खो जाने का क्या अर्थ होता है। इसलिए मैं अपने बिलकुल निकटके पड़ोसी चीनकी विपत्तिमें उसके साथ सहानुभूति रखे बिना नहीं रह सकता। और यदि मैं हिंसामें विश्वास करता होता और भारतपर प्रभाव डाल पाता तो मेरे पास जितनी भी ताकत होती, उसे चीनकी तरफसे उसकी स्वतन्त्रताकी रक्षामें लगा देता। इसलिए ब्रिटिश सत्ताके हटने का जो प्रस्ताव मैंने रखा, उसे रखते हुए मैंने चीनको नजरंदाज नहीं किया है। लेकिन चूँकि चीन मेरे ध्यानमें है, मुझे लगता है कि चीनकी मदद करने के लिए भारतके पास एकमात्र कारगर रास्ता यही है कि ब्रिटेनको इस बातके लिए राजी किया जाये कि वह भारतको स्वतन्त्र कर दे और स्वतन्त्र भारतको युद्ध-प्रयत्नोंमें अपना पूरा योगदान देने दे। तब स्वतन्त्र भारत नाराज और असन्तुष्ट होने के बजाय, सारे मानवसमाजके कल्याणके लिए एक जोरदार ताकत सिद्ध होगा। यह सही है कि मैंने जो हल पेश किया है वह अंग्रेजोंकी समझसे परे एक बहुत ही बहादुरी-भरा हल है। लेकिन ब्रिटेन, चीन और रूसका सच्चा मित्र होने के नाते मुझे उस हलको दबाना नहीं चाहिए जिसे कि मैं सर्वथा व्यावहारिक मानता हूँ और मेरे खयालसे तो यह हल स्थितिको सँभालने का तथा इस युद्धको, जो अभी तो मानवताके लिए संकट बना हुआ है, एक कल्याणकारी शक्तिमें परिवर्तित करने का एकमात्र उपाय है।

१ और २. इन शीर्षकोंके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० १३२ और १५४-५।

३. देखिए खण्ड ७६, पृ० १७९-८०।

मैं जापानके पक्षमें नहीं हूँ

"कल मुझे पण्डित नेहरूने बताया कि उन्होंने लाहौर और दिल्लीमें लोगोंको यह कहते सुना है कि मैं जापानियोंके पक्षमें हो गया हूँ। मैं इस बातपर हँस ही सकता था, क्योंकि यदि स्वतन्त्रताके लिए मेरी उत्कण्ठा सच्ची है तो मैं जान-बूझकर या अनजानेमें ऐसा कोई कदम नहीं उठा सकता जिससे भारत सिर्फ मालिक बदलने की स्थितिमें फँस जाये। जापानी खतरेका प्रतिरोध मैं अपनी सम्पूर्ण आत्मासे कर रहा हूँ; यदि उसके बावजूद वह दुःखद घटना, जिसकी सम्भावनासे मैंने कभी इनकार नहीं किया है, घट जाती है, तो दोष पूरी तरह ब्रिटेनका होगा। मुझे इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं है। मैंने ऐसा कोई सुझाव नहीं रखा है जो सैनिक दृष्टिसे भी, ब्रिटिश या चीनी सत्ताके लिए जरा भी खतरनाक हो। यह स्पष्ट है कि भारत को चीनके पक्षमें अपना पूरा जोर लगाने की सुविधा नहीं दी जा रही है। यदि भारतसे ब्रिटिश सत्ता व्यवस्थित ढंगसे हटा ली जाती है तो ब्रिटेनको भारतमें शान्ति बनाये रखने के बोझसे राहत मिल जायेगी और साथ ही उसे स्वतन्त्र भारतके रूपमें एक मित्र मिल जायेगा, जो साम्राज्यकी रक्षा या विस्तारमें तो उसका मित्र नहीं होगा, क्योंकि ब्रिटेन तब अपने साम्राज्यवादी मंसूबोंको पूरी तरह छोड़ चुका होगा, लेकिन मानव-स्वातन्त्र्यकी नकली नहीं बल्कि सच्ची प्रतिरक्षामें उसका मित्र होगा। इस बातपर मैं जोर देता हूँ और मेरे हालके लेखोंमें बार-बार यही बात कही गई है और मैं ऐसा तबतक करता रहूँगा जबतक कि ब्रिटिश सत्ता मुझे करने देगी।

कोई गोपनीयता नहीं है

"अब अपनी योजनाके बारेमें आपको क्या कहना है — बताया जाता है कि आपने कोई बड़ा आन्दोलन छेड़ने की योजना पक्की तरहसे बना ली है?" यह था अगला प्रश्न जिसका गांधीजी ने निम्न उत्तर दिया:

"मैंने कभी भी गोपनीयतामें विश्वास नहीं किया है और न ही अब करता हूँ। निश्चय ही मेरे दिमागमें कई योजनाएँ चल रही हैं। लेकिन अभी तो मैं उन्हें अपने दिमागमें केवल चलने दे रहा हूँ। मेरा पहला काम तो जहाँतक मुझे करने दिया जाता है, भारतके जनमानस तथा विश्वमतको शिक्षित करना है। और जब मैं यह काम सन्तोषजनक रूपसे पूरा कर चुकूँगा तब शायद मुझे कुछ करना होगा। और यदि कांग्रेस मेरे साथ हुई और जनता मेरे साथ हुई तो वह कोई बहुत बड़ी चीज हो सकती है। लेकिन मैं जो-कुछ करना चाहूँगा, उसे शुरू करने से पहले ब्रिटिश अधिकारियोंको उसकी पूरी जानकारी मिल जायेगी। स्मरण रखें कि मुझे अभी मौलाना साहबसे मिलना है। पण्डित नेहरूके साथ मेरी बातचीत अभी समाप्त नहीं हुई है। मैं कह सकता हूँ कि बातचीत पूरी तरह मित्रतापूर्ण थी और कलकी अधूरी बातचीत से भी हम एक दूसरेके ज्यादा करीब आ गये हैं। स्वाभाविक है कि मैं, यदि ले जा सकूँ तो पूरी कांग्रेसको साथ लेकर चलना चाहता हूँ, जैसे कि मैं पूरे भारतको साथ लेकर चलना चाहता हूँ। क्योंकि स्वतन्त्रताकी मेरी कल्पना कोई संकीर्ण कल्पना नहीं

है। वह मानवमात्रकी पूर्ण गरिमासे युक्त स्वतन्त्रताकी सहगामिनी है। इसलिए मैं पूरी तरह सोच-विचार किये बिना कोई कदम नहीं उठाऊँगा।"

गुलामोंके मालिकोंका प्रतिरोध कैसे करें

"... हम अंग्रेजोंको यहाँसे बाहर निकालने में किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?" यह प्रश्न सबसे पहले पूछा गया।

"हम अंग्रेज लोगोंको यहाँसे भगाना नहीं चाहते। हम तो अंग्रेज शासकोंसे कह रहे हैं कि वे शान्तिपूर्वक यहाँसे हट जायें। हमें तो अपने देशसे ब्रिटिश प्रभुताका उठ जाना अभीष्ट है। हमारा अंग्रेजोंसे कोई झगड़ा नहीं, कितने ही अंग्रेज मेरे मित्र हैं। किन्तु हम चाहते हैं ब्रिटिश शासनका पूरी तरह अन्त हो जाये, क्योंकि यह एक ऐसा विष है जिसके सम्पर्कमें जो-कुछ भी आता है दूषित हो जाता है तथा जो हर प्रकारकी प्रगतिमें बाधक है।

"और इसके लिए दो बातें आवश्यक है — एक तो यह ज्ञान हो जाना कि विदेशी प्रभुतासे बढ़कर बुराईकी कल्पना नहीं की जा सकती। और दूसरे कि इससे हमें छुटकारा पाना है चाहे इसके लिए हमें कुछ भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। यह ज्ञान इतना आवश्यक है क्योंकि ब्रिटिश सरकार हमारे ऊपर अपनी सत्ताको अनेक प्रकारके सूक्ष्म और कपटपूर्ण ढंगोंसे लागू करती है कि कभी-कभी यह पहचानना भी कठिन हो जाता है कि हमारे हाथ-पैर बिलकुल बँधे हुए हैं। इसके बाद आती है, अपनी जंजीरों, अपनी बेड़ियोंको तोड़-फेंकने की इच्छा-शक्ति। इसके लिए हमें अपने अन्दर केवल यह इच्छा-शक्ति जागृत करनी है कि हम शासकोंकी आज्ञाका पालन न करें। क्या यह बहुत कठिन बात है? भला कोई गुलामी मानने को बाध्य कैसे हो सकता है? मैं मालिककी आज्ञा मानने से बिलकुल इनकार कर देता हूँ। अपनी आज्ञा मनवाने के लिए वह मुझे यन्त्रणा दे, मेरी हड्डियोंको चूर-चूर कर दे, यहाँतक कि मुझे मार भी दे। पर इससे उसे मेरा शव ही तो प्राप्त होगा, उसे मेरी आज्ञाकारिता तो नहीं मिलेगी। इसलिए अन्तमें वह नहीं, मैं ही विजेता होऊँगा क्योंकि शासक मुझसे वह काम करवाने में असफल रहा जो वह चाहता था।

"इसी बातको मैं उनपर भी जताने की कोशिश कर रहा हूँ जिनका भारतसे वापस जाना मुझे इष्ट है और उन लोगोंपर भी जो दासताके बन्धनमें बँधे हैं। इस कामके लिए मैं अपनी पूरी शक्तिका उपयोग करूँगा किन्तु मैं हिंसाको नहीं अपनाऊँगा — मात्र इसलिए कि मुझे हिंसापर बिलकुल विश्वास नहीं है। ...

"परन्तु मैं धैर्यसे काम लूँगा। मैं आप लोगोंके साथ न कोई जल्दबाजी करूँगा और न ही आपको इस कार्यके लिए धकेलूँगा। अभी तो मैं इस कार्यके लिए एक वातावरण तैयार करने में व्यस्त हूँ। और मैं जो-कुछ भी करूँगा अपनी जनताकी सामर्थ्य-सीमाको ध्यानमें रखकर करूँगा। मैं जानता हूँ कि शासक और जनता दोनों ही मेरे प्रस्तावोंके गूढ़ार्थोंको नहीं समझते हैं।"

एक मित्रने पूछा "परन्तु क्या हमें इस बातका ध्यान नहीं रखना है कि इलाज कहीं रोगसे भी बदतर न हो? प्रतिरोधके दौरान हमारी प्रबल इच्छाके बावजूद भी

दंगे और उनके फलस्वरूप अराजकताकी परिस्थिति होगी। क्या वह अराजकता इस वर्त्तमान अराजकतासे भी गई-बीती नहीं होगी जिसे आपने व्यवस्थित अराजकता कहा है?"

"यह एक बहुत समीचीन प्रश्न है। पिछले २२ वर्षोंके लम्बे अरसेमें इसी कठिनाईका विचार मेरे सामने रहा है। मैं इस बातका इन्तजार करता रहा हूँ कि देश विदेशी सत्ताके जुएको उतार फेंकने योग्य अहिंसाकी पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ले। परन्तु अब मेरे रुखमें परिवर्त्तन आ गया है। मुझे लगता है कि मैं अब इन्तजार नहीं कर सकता। यदि मैं इन्तजार करता रहा तो मुझे कयामत तक इन्तजार ही करते रहना पड़ेगा। जिस तैयारीके लिए मैं प्रार्थना करता रहा हूँ और जिसके लिए मैं मेहनत करता रहा हूँ वह सम्भवतः कभी पूरी ही न हो और इस बीच मैं भी उन लपटोंसे बुरी तरह घिर जाऊँ जिससे आज हम सभी भय-भीत हैं। यही कारण है कि मैंने निश्चय किया है कि मुझे लोगोंको दासताका विरोध करनेके लिए कहना ही चाहिए, यद्यपि प्रकट ही इसमें बहुत-से खतरे हैं। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यह तैयारी भी अहिंसक व्यक्तिकी आस्थाकी दृढ़तापर निर्भर है। मुझे तो केवल इस बातका ज्ञान है कि मेरे अन्दर किसी लुके-छुपे कोनेमें भी, कहीं भी हिंसाका लेशमात्र नहीं है तथा पिछले ५० वर्षोंसे मैं सचेतन रूपसे अहिंसाकी जो साधना करता रहा हूँ वह मुझे इस नाजुक घड़ीमें धोखा नहीं देगी। जन-सामान्यमें मेरे जैसी अहिंसाकी भावना नहीं है तो भी मेरी अहिंसा उनकी सहायता करेगी। हमारे चारों ओर आज व्यवस्थित अराजकताका राज्य है। मुझे विश्वास है कि अंग्रेजोंके हट जाने से अथवा यदि वे हमारी बात सुनने से इनकार कर दें तो उनके प्रभुत्वकी अवज्ञा करने के हमारे निश्चय के फलस्वरूप जो अराजकता जन्म लेगी वह वर्त्तमान अराजकतासे किसी प्रकार भी बदतर नहीं होगी। आखिरकार निहत्थी जनता कोई भयंकर हिंसा या अराजकता तो नहीं फैला सकती, तथा मेरा विश्वास है कि इस प्रकारकी अराजकतामें से विशुद्ध अहिंसा उत्पन्न होगी। परन्तु सम्भावित विदेशी आक्रमणके प्रतिरोधके नामपर जो भयंकर हिंसा की जा रही है उसे एक जड़ दर्शकके रूपमें देखते रहना मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि ऐसा करूँगा तो मुझे अपनी अहिंसाको लेकर लज्जित होना पड़ेगा। मेरी अहिंसा इससे कठोर धातुसे बनी है ('हरिजन', ७-६-१९४२, पृ० १८३-४)।

(डी) अहिंसक असहयोग क्यों[1]

"मान लीजिए कि मेरे सुझावपर नहीं, बल्कि सिर्फ रणनीतिके खयालसे अंग्रेज हिन्दुस्तानसे हट जायें — जैसा कि बर्मासे उन्हें करना पड़ा — तब क्या होगा? हिन्दुस्तान उस हालतमें क्या करेगा?"

"ठीक यही बात हम आपसे समझने आये हैं। निश्चय ही हम यह जानना चाहेंगे।"

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० २१३-१७ भी।

"बस, यहीं मेरी अहिंसा काम आयेगी, क्योंकि दूसरे हथियार तो हमारे पास हैं नहीं। यह याद रखिए, हम यह मान लेते हैं कि संयुक्त अमेरिकी और ब्रिटिश सेनाओंके प्रधान सेनापतिने यह फैसला कर लिया है कि युद्ध-संचालनके लिए अड्डेके रूपमें हिन्दुस्तान किसी कामका नहीं है, और उन्हें यहाँसे हटकर किसी और अड्डेपर अपनी सेनाको केन्द्रित करना चाहिए। इसमें हम तो कुछ भी नहीं कर सकते। तब जो-कुछ भी शक्ति हमारे पास है, हमें उसीका आधार होगा। हमारे पास न सेना है, न युद्ध-सामग्री है, और न कोई उल्लेखनीय युद्ध-कौशल ही है। केवल अहिंसा ही हमारे पास है जिसका हम आश्रय ले सकते हैं। सिद्धान्ततः मैं आपके सामने यह सिद्ध कर सकता हूँ कि हमारा अहिंसक असहयोग पूरी तरह सफल हो सकता है। एक भी जापानीको मारने की जरूरत नहीं है, हम केवल उनको रत्ती-भर भी सहयोग नहीं देंगे।"

श्री चैपलिनने पहले जो प्रश्न पूछा था उसी सिलसिलेमें पूछा, "फर्ज कीजिए, अंग्रेज यह निश्चय कर लेते हैं कि जबतक हिन्दुस्तानमें एक आदमी भी बाकी है, वे बराबर लड़ते रहेंगे, तो क्या आपके अहिंसक असहयोगसे जापानको मदद नहीं मिलेगी?"

"अगर हमारा अहिंसक असहयोग अंग्रेजोंके खिलाफ होता, तो आपकी बात ठीक थी। लेकिन अभी हम उस हदतक नहीं आये हैं। मैं जापानियोंकी किसी भी हालतमें मदद नहीं करना चाहता — हिन्दुस्तानकी आजादीकी खातिर भी नहीं। हिन्दुस्तानने पिछले ५० सालके अपने स्वतन्त्रता-आन्दोलनसे अगर कोई पाठ सीखा है, तो वह देशभक्तिका है, 'किसी भी' विदेशी ताकतके आगे सिर झुकाने का नहीं है। परन्तु जब अंग्रेज अपना हिंसक युद्ध चला रहे हैं, तब अगर हम अपना अहिंसक-युद्ध — अहिंसक कार्यवाही — चलायें, तो उसका सारा असर निष्फल हो जायेगा। जो लोग सशस्त्र मुकाबलेमें और अंग्रेजोंको फौजी मदद देने में विश्वास करते हैं, वे तो आज भी उन्हें मदद दे रहे हैं, और देते रहेंगे। श्री एमरी कहते हैं कि उन्हें धन-जनकी जितनी मदद चाहिए, वह सब मिल रही है, और उनका यह कहना ठीक भी है। क्योंकि हिन्दुस्तानके करोड़ों गरीब लोगोंकी प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस जितना रुपया सालोंमें इकट्ठा नहीं कर सकी, उतना इन लोगोंने 'तथाकथित' स्वैच्छिक चन्देसे एक दिनमें इकट्ठा कर लिया। कांग्रेस तो अहिंसक सहायता ही दे सकती है। लेकिन अगर आपको पता न हो, तो मैं बतलाता हूँ कि वैसी सहायताकी अंग्रेजोंको जरूरत नहीं है, और न उनके नजदीक उसकी कोई कीमत ही है। परन्तु उनके नजदीक उसकी कीमत हो या न हो, अहिंसक और हिंसक, दोनों मुकाबले साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिए हिन्दुस्तानकी अहिंसा ज्यादासे-ज्यादा यही कर सकती है कि मौन धारण करे — अंग्रेजोंकी फौजी कार्रवाईमें रुकावट न डाले और जापानियोंको तो कोई मदद नहीं ही दे।"

"परन्तु अंग्रेजोंको आप मदद तो नहीं देंगे न?"

"क्या आप देखते नहीं कि अहिंसा और कोई मदद दे ही नहीं सकती ?"

"लेकिन आप रेलकी हड़ताल तो नहीं करायेंगे ? इसी तरह आवश्यक सेवाओंको भी बन्द करना नहीं चाहेंगे ?"

"वे जैसी आज चल रही है उन्हें उसी तरह चलने दिया जायेगा।"

"तो आप रेल और दूसरी आवश्यक सेवाओंको न छेड़कर क्या अंग्रेजोंकी मदद नहीं करते ?"

"बेशक, हम करते हैं। यह हमारी परेशान न करने की नीति है।"

एक बुरा काम

"लेकिन इसके लिए हिन्दुस्तानके नेताओंको और यहाँकी जनताको कुछ करके दिखाना चाहिए न ? तभी यह काम आगे बढ़ सकता है।"

"क्या आप चाहते हैं कि देशमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक सब जगह विद्रोह भड़क उठे ? नहीं। मैंने अंग्रेजोंसे यहाँ से चले जाने का जो निवेदन किया है, वह थोथा निवेदन नहीं है। उसे पूरा कराने के लिए हमें कुरबानी करनी होगी। लोकमतको क्रियाशील होना होगा, और वह अहिंसक रीतिसे ही कार्य कर सकता है।"

"क्या इसमें हड़तालें वर्जित होंगी ?" श्री बेल्डनने यह कुतूहल व्यक्त किया।

गांधीजी ने कहा : "नहीं। हड़तालें अहिंसक हो सकती है, और हुई हैं। अगर रेलका उपयोग हिन्दुस्तानपर अंग्रेजोंकी जकड़को और मजबूत करने के लिए ही किया जाये, तो उसमें सहायता देने की जरूरत नहीं है। लेकिन इस तरह की कोई जबरदस्त कार्रवाई करने से पहले मुझे यह दिखाने की कोशिश करनी चाहिए कि मेरी माँग न्यायसंगत है। जिस घड़ी यह माँग मंजूर कर ली जायेगी, उसी घड़ीसे हिन्दुस्तान रुष्ट न रहकर मित्र बन जायेगा। आपको यह याद रखना चाहिए कि जापानियोंको हिन्दुस्तानसे दूर रखने में मेरा स्वार्थ अंग्रेजोंके मुकाबले कहीं अधिक है, क्योंकि अगर अंग्रेज हिन्दुस्तानके समुद्रमें हार जाते हैं, तो वे 'सिर्फ हिन्दुस्तानको गँवाते हैं', लेकिन अगर जापान जीतता है, तो हिन्दुस्तानका 'सर्वस्व' चला जाता है।"

निर्णायक कसौटी

अगला प्रश्न था : "जिस तरह अमेरिकी फौजको आप हिन्दुस्तानपर लादी हुई मानते हैं, उसी तरह क्या अमेरिकी तकनीकी मिशनको भी मानेंगे ?"

"पेड़की परीक्षा उसके फलसे होती है।" गांधीजी ने सार-रूपमें कहा। "मैं डॉ० ग्रेडीसे मिला था। और हमारे बीच मैत्रीपूर्ण बातचीत हुई थी। अमेरिकियों के प्रति मेरे मनमें कोई द्वेष नहीं है। अमेरिकामें मेरे यदि हजारों नहीं तो सैकड़ों दोस्त तो होंगे ही। हो सकता है कि तकनीकी मिशनके मनमें हिन्दुस्तानके लिए सद्भाव ही हो। लेकिन मेरा कहना तो यह है कि जो-कुछ हो रहा है, वह हिन्दुस्तानके कहने पर या उसकी इच्छासे नहीं हो रहा है। इसलिए उन सबके बारेमें सन्देह तो रहता ही है। हम इन बातोंको स्थितप्रज्ञकी-सी शान्तिसे नहीं देख सकते,

क्योंकि जैसा कि मैं कह चुका हूँ, हमारी आँखोंके सामने रोज जो-कुछ हो रहा है उसकी तरफसे हम आँखें नहीं मूँद सकते। गाँवके-गाँव खाली कराये जा रहे हैं, उनकी जगह फौजी छावनियाँ खड़ी की जा रही हैं, और गरीब रिआयासे कहा जा रहा है कि वह अपना बन्दोबस्त खुद करे। बर्मासे लौटते हुए अगर हजारों नहीं तो सैकड़ों लोग तो भूखे-प्यासे ही मर गये; और उन अभागे लोगोंको भी घृणित भेद-भावका अनुभव करना पड़ा। गोरोंका रास्ता जुदा था, कालोंका जुदा! गोरोंके लिए रहने-खानेका पूरा बन्दोबस्त था, कालोंके लिए कुछ भी नहीं था! और हिन्दुस्तान पहुँचने पर भी वही भेदभाव है! जापानियोंका अभी कहीं पता नहीं है, पर हिन्दुस्तानियोंको अभीसे बुरी तरह पीसा और अपमानित किया जा रहा है। यह सब हिन्दुस्तानकी हिफाजतके लिए तो हरगिज नहीं है; भगवान् जाने किसकी हिफाजतके लिए है। इन्हीं सब कारणोंसे एक दिन मेरा मन यह निश्चय कर बैठा कि मैं अंग्रेजोंसे पूरी ईमानदारीसे यह माँग करूँ: 'भगवानके लिए हिन्दुस्तानको अब उसके हालपर छोड़ दो। हमें आजादीकी साँस लेने दो। हो सकता है कि वह आजादी हमें उन गुलामोंकी तरह, जिन्हें अचानक आजाद कर दिया गया था, परेशानीमें डाल दे, या हमारा दम घोंट दे। लेकिन आजका यह ढोंग और पाखण्ड तो खत्म होना ही चाहिए।'

"लेकिन ये तमाम बातें तो आप अंग्रेजी फौजको ध्यानमें रखकर ही कह रहे हैं, अमेरिकीको तो नहीं न?"

"मैं इन दोनोंमें कोई फर्क नहीं पाता। नीति तो समूची वही है, उसमें कोई भेद नहीं किया जा सकता।"

"क्या आपको उम्मीद है कि ब्रिटेन कुछ सुनवाई करेगा?"

"मैं तो इस उम्मीदको लेकर ही मरूँगा। और अगर मैं लम्बी उम्रतक जी सका, तो मुमकिन है कि इसे सफल होते भी देख लूँ। क्योंकि मेरे सुझावमें अव्यावहारिक कुछ भी नहीं है, न कोई ऐसी कठिनाई ही है जो दूर न की जा सके। साथ ही, मैं यह भी कह दूँ कि अगर ब्रिटेन सच्चे दिलसे यह सब करनेको तैयार न हो, तो वह इस लड़ाईमें जीतने के लायक भी नहीं है" ('हरिजन', १४-६-१९४२, पृ० १८५-७)।

(इ) अंग्रेजोंके हट जाने का तात्पर्य[1]

(एफ) 'हट जाने' का मतलब[2]

(जी) उनके हट जाने पर ही[3]

(एच) जान-बूझकर विकृतीकरण[4]

(के) एक समस्या[5]

१–४. इन शीर्षकोंके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ११६-१७, २३८, २३६ और २६२। 'इ' और 'एच' शीर्षक भेंट-वार्ताओंके रूपमें प्रकाशित हुए थे। 'आई' और 'जे' के अन्तर्गत दिये गये शीर्षक साधन-सूत्रमें उपलब्ध नहीं हैं।

५. देखिए खण्ड ७६, पृ० २६६ भी।

मेरे पहले लेखमें (मित्र-राष्ट्र सेनाओंके सम्बन्धमें) स्पष्ट ही एक कमी थी। अपने एक मुलाकातीके साथ बातचीतमें ज्यों ही मुझे उसका पता चला, मैंने उसकी पूर्ति कर दी। अहिंसा सौ फी सदी ईमानदारीकी अपेक्षा रखती है चाहे उसके लिए कोई भी कीमत चुकानी पड़े। अतएव लोगोंको मेरी कमजोरीको, अगर इसे कमजोरी कहा जाये तो, सहना ही होगा। मैं मित्र-राष्ट्रोंको ऐसी किसी कार्रवाईकी सलाह देने का दोषी नहीं हो सकता था जिसके फलस्वरूप वे निश्चित रूपसे हार जायें। मैं ऐसी किसी अचूक अहिंसक कार्रवाईका विश्वास नहीं दिला सकता था जो जापानको निश्चय हो हिन्दुस्तानसे दूर रख सके। मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाके अचानक विदा हो जाने का एक नतीजा यह हो सकता है कि जापान हिन्दुस्तानपर अधिकार कर ही ले और चीन निश्चित रूपसे हार जायें। तब मुझे तनिक भी कल्पना नहीं थी कि मेरी योजनाके कारण ऐसी विपत्ति आ सकती है। इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि मेरे सुझावको मंजूर करने के बावजूद अगर मित्र-राष्ट्र यह अनुभव करें कि जापानके कब्जेको रोकने के लिए उनका यहाँ रहना जरूरी है, तो उन्हें रहना चाहिए। अलबत्ता, अंग्रेजी सत्ताके विदा होने पर जो राष्ट्रीय सरकार देशमें बनेगी, उसके द्वारा तय की गई शर्तोंके अनुसार ही वे यहाँ रह सकेंगे ('हरिजन', २८-६-१९४२ पृ० २०४-५)।

(एल) एक भूल[1]

(एम) सेनाओंका प्रश्न![2]

स्वतन्त्र हिन्दुस्तानका मैंने जो यह मोहक चित्र खींचा था कि उसमें एक भी अंग्रेज सिपाही नहीं होगा, उसको मुझे भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। मित्रोंका इस बातका पता लगने पर परेशानी हो रही है कि मेरे प्रस्तावके अनुसार अंग्रेज सैनिकों को ही नहीं, बल्कि अमेरिकी सैनिकोंको भी किन्हीं सूरतोंमें हिन्दुस्तानमें रहने दिया जा सकता है। . . .

यह बताया गया है कि युद्धके दौरान मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको हिन्दुस्तानमें न रहने देने का अर्थ होगा, हिन्दुस्तान और चीनको जापानके हवाले कर देना, और मित्र-राष्ट्रोंका निश्चित रूपसे हारना। ऐसी बात मैं सोच ही नहीं सकता था। इसलिए इसका जवाब सिर्फ यही हो सकता था कि हम अपने देशमें मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाकी मौजूदगीको सहन कर लेंगे, लेकिन आजकी तरह नहीं, बल्कि इससे बिलकुल उलटी परिस्थितियोंमें। . . .

मेरे प्रस्तावमें सब प्रकारके डर और अविश्वासकी बात समाई हुई है। अगर हममें आत्मविश्वास है, तो फिर न तो हम देशमें मित्र-राष्ट्रोंकी फौजकी मौजूदगीसे डरेंगे, और न उनके बारेमें सन्देह करेंगे।

अगर ब्रिटेन ईमानदारीके साथ हिन्दुस्तानसे अपनी सत्ता हटा ले और सत्ता हटाने के अन्तर्गत जो भी बातें आती हैं उन सबका पालन करे, तो निश्चय ही

१. इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० २८३-८४।

२. देखिए खण्ड ७६, पृ० २८१-८२ भी।

वह इस शताब्दीकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना होगी और सम्भव है कि इससे युद्धकी सारी दिशा ही बदल जाये। . . .

जैसा कि मैं 'हरिजन' के पिछले अंकमें पहले ही कह चुका हूँ अगर अंग्रेजोंने मेरे प्रस्तावको स्वीकार कर लिया, तो हो सकता है कि सिर्फ इसीकी बदौलत सुलहका एक निहायत बाइज्जत रास्ता खुल जाये और, परिणामस्वरूप विदेशी फौजें अपने-आप यहाँसे हट जायें। . . .

तब यह अहिंसा असहयोग इत्यादिका रूप नहीं धारण करेगी बल्कि इसका रूप यह होगा कि हमारे राजदूत धुरी-राष्ट्रोंके पास सुलहकी याचनाके लिए नहीं, बल्कि उन्हें यह समझाने जायेंगे कि एक सम्मानपूर्ण ध्येयकी प्राप्तिके लिए युद्ध निरर्थक है। यह तभी हो सकेगा जब ब्रिटेन उस हिंसाके फलको छोड़ने के लिए तैयार हो जाये जो शायद दुनियाकी अबतककी सबसे संगठित और सफल हिंसा है।

मुमकिन है कि यह सब न हो पाये। पर मुझे इसकी परवाह नहीं। यह ध्येय ऐसा है जिसके लिए प्रयत्न करना और राष्ट्रके सर्वस्वकी बाजी लगा देना योग्य है ('हरिजन', ५-७-१९४२, पृ० २१२)।

(एन) भारतमें फ्रेण्ड्स एम्बुलेन्सका दस्ता[1]

प्रो० अलेक्जेंडरने मृदु भावसे मुस्कराते हुए कहा: "हम सोच रहे थे कि जब आप अंग्रेजोंको वापस लौटने के लिए कह रहे हैं, एक अंग्रेज मण्डलीका भारत आना क्या ठीक होगा। एगथाने सुझाव दिया कि हम भारतसे कुछ लोगोंको अपने साथ काम करने के लिए ले सकते हैं। और अपनी मण्डलीको मिश्रित मण्डली बना सकते हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया: "मुझे लगता है कि मेरे पहले लेखने इस तरहकी आशंकाको जन्म दिया। ऐसा इसलिए हुआ कि मैंने अपने मनके विचारको पूरा व्यक्त नहीं किया था। किसी सम्पूर्ण चीजको सोचकर एकसाथ तैयार कर लेना और प्रस्तुत करना मेरा स्वभाव नहीं है। जैसे ही मुझसे एक सवाल पूछा गया मैंने यह बात साफ कर दी कि मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि यहाँसे हरएक अंग्रेजको चले जाना है; मेरा अभिप्राय तो इतना ही था कि भारतसे ब्रिटिश प्रभुत्व हट जाना चाहिए। और इसलिए भारतमें हर-एक अंग्रेज अपने-आपको एक मित्रके रूपमें बदल सकता है—जैसे कि आप मित्रोंकी तरह आये हैं—और वह यहाँ बना रह सकता है। शर्त यह है कि हर अंग्रेजको जिस घोड़ेपर वह सवार है उससे उतरना होगा और यह भूल जाना होगा कि वह इस विशाल भू-खण्डका राजा है। उसे हममें से छोटे-से-छोटे व्यक्तिसे अपना तादात्म्य स्थापित करना होगा। ज्योंही वह ऐसा करेगा वह इस परिवारका एक सदस्य समझा जाने लगेगा। शासक जातिके एक सदस्यके नाते उसकी जो भूमिका है वह हमेशाके लिए समाप्त होनी चाहिए। इसलिए जब मैंने कहा 'हटो' तो मेरा अर्थ था 'मालिकोंके रूपमें हटो।' हटने की माँगके पीछे एक

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० २७०-७२ भी।

और अर्थ भी था। आपको यहाँसे किसी की भी इच्छाका खयाल किये बिना हट जाना है। किसी गुलामको आजादी देने के लिए उसकी सहमतिकी जरूरत नहीं पड़ती। गुलाम अक्सर गुलामीकी जंजीर जोरसे पकड़ लेता है। वह उसकी देहका अंग बन जाती है। आपको वे जंजीरें बिलकुल तोड़कर फेंक देनी है। आपको हटना ही चाहिए। क्योंकि ऐसा करना आपका कर्त्तव्य है और उसके लिए आपको भारतके सभी वर्गों या दलोंकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

अतः आपके लिए समयके गलत होने का कोई सवाल ही नहीं है। इसके विपरीत यदि आप मेरे प्रस्तावको हृदयंगम कर सकते हों तो यह भारतमें आपके आने की सबसे ज्यादा ठीक घड़ी है। आप यहाँ अनेक अंग्रेजोंसे मिलेंगे। उन लोगोंने शायद जो मैंने कहा है उसे बिलकुल गलत रूपमें समझा हो और आपको उन्हें समझाकर बताना है कि उनसे मैं क्या कराना चाहता हूँ।

". . . और शायद, यह अच्छी बात है कि आपका कार्य मुझसे शुरू होता है। आपके मनको जो भी प्रश्न विचलित कर रहे हों उन सबको मुझसे पूछकर और मेरा ठीक क्या आशय है, उसका पता लगाकर आप अपना काम शुरू कीजिए।"

इन बातोंको सुनकर दोनों मित्र निश्चित हो गये और इनके प्रभावसे वे गांधीजी की मनःस्थितिकी पूरी पृष्ठभूमि समझने का यत्न करने लगे। इस सिलसिलेमें मैं एक अद्भुत किन्तु बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्यका उल्लेख करना चाहता हूँ। सर स्टैफर्ड क्रिप्सके दूतके रूपमें आने की घोषणा होने के उपरान्त प्रोफेसर होरेस अलेक्जेंडर और कुमारी एगथा हैरिसनने गांधीजी को एक तार भेजा था जिसमें उन्होंने स्वयं गांधीजी द्वारा प्रयुक्त एक वाक्यांशकी उन्हें याद दिलाई थी यथा 'एन्ड्रयूजकी विरासत'। उनका तात्पर्य था कि भारत और इंग्लैण्डके सर्वोत्तम व्यक्ति आपसमें मिलकर परामर्श करें और दोनों देशोंके बीच एक स्थायी समझौतेकी रचना करें। उनके तारका फलितार्थ यही निकलता दीखता था कि "इस समय अत्यन्त उत्कृष्ट कोटिका एक अंग्रेज भारत आ रहा है। यह समझौतेका एक भारी सुअवसर है, उसके ही साथ कुछ समझौता कर लेना बहुत भला रहेगा।"

क्रिप्स मिशनके असफल हो जाने के बाद शीघ्र ही गांधीजी ने प्रो० होरेस अलेक्जेंडरको एक लम्बा पत्र[1] भेजा जिसमें उन्होंने पहले-पहल अंग्रेजोंके भारतसे हट जाने की माँगकी अभिव्यक्ति की थी। उन्होंने तबतक इस बातपर किसी भी व्यक्तिसे कोई चर्चा नहीं की थी। किन्तु दिल्लीसे लौटने के बादसे ही उनके मनमें जो विचार उमड़-घुमड़ रहा था पत्र लिखते समय वह लेखनीसे उतरता चला गया। उन्होंने पत्रमें कहा था: "सर स्टैफर्ड आये और चले गये। कितना अच्छा होता यदि वे यह निरर्थक काम लेकर न आये होते।. . . इस नाजुक घड़ीमें ब्रिटिश सरकार इस तरहका बरताव आखिर कैसे कर सकी? मुख्य पक्षोंसे बातचीत किये बिना उसे प्रस्ताव भला क्यों भेजने चाहिए थे? एक भी पक्ष सन्तुष्ट नहीं हो सका। सबको प्रसन्न करने की चेष्टामें प्रस्तावोंने किसीको भी प्रसन्न नहीं किया। लेकिन

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ६७-६८।

मैंने उनसे खुले दिलसे बात की, लेकिन मित्रके नाते ही, जो कमसे-कम एन्ड्रयूजका खयाल रखते हुए जरूरी था। मैंने उनसे कहा कि मैं आपसे एन्ड्रयूजकी आत्माको साक्षी मानकर बात कर रहा हूँ। मैंने सुझाव दिये पर उस सबसे कुछ न बना। हमेशाकी तरह उन्हें यह कहकर उड़ा दिया गया कि वे व्यावहारिक नहीं हैं। मैंने जाना नहीं चाहा था। 'युद्ध-मात्रका विरोधी' होनेके कारण मुझे कुछ कहना ही नहीं था। मैं गया इसलिए कि वे मुझसे मिलनेको उत्सुक थे। मैं यह सब इसलिए बता रहा हूँ कि तुम्हें पृष्ठभूमिका पता चल जाये। कार्य-समितिके साथ बातचीतमें मैं पूरे समय उपस्थित भी नहीं रहा। मैं तो वापस आ गया था। नतीजा क्या हुआ सो तुम्हें मालूम ही है। वह अनिवार्य था। जो हुआ उससे मन खिन्न-सा हो गया है।"

इसके उपरान्त वह अनुच्छेद आता है जिसमें मूल तथ्य है। "मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजोंको इसी समय व्यवस्थित ढंगसे भारत छोड़ देना चाहिए और वह जोखिम नहीं उठानी चाहिए जो उन्होंने सिंगापुर, मलाया और बर्मामें उठाई। ऐसे कदमका अर्थ होगा उच्च कोटिका साहस, मानवीय सीमाओंकी स्वीकृति और भारतके प्रति न्याय करना।"

गांधीजी का वार्त्तालाप उस पत्रके उद्धृत अंशोंका लगभग एक भाष्य ही था। "आप देखेंगे कि मैंने 'सुव्यवस्थित रूपसे हटने' के लिए कहा है। जब मैंने इन शब्दोंका प्रयोग किया था, मेरे दिमागमें बर्मा और सिंगापुर थे। वहाँसे अव्यवस्थित रूपसे हटा गया था, क्योंकि उन्होंने बर्मा और मलायाको न तो ईश्वरके हाथोंमें छोड़ा, न अराजकताके, बल्कि जापानियोंके हाथोंमें छोड़ दिया। यहाँ मैं यह कह रहा हूँ कि 'उस कहानीको आप यहाँ मत दुहराइए। भारतको जापानके हाथोंमें न छोड़िए, बल्कि व्यवस्थित ढंगसे भारतीयोंके हाथोंमें छोड़िए।' उन्होंने बातचीत समाप्त करते हुए इस प्रकार कहा। यह पूरा वार्त्तालाप और यहाँतक कि वह पत्र जिसे मैंने यहाँ उद्धृत किया है दोनों ही के पीछे प्रेरक-शक्ति सी० एफ० एन्ड्रयूजकी स्मृति ही थी। भारतसे अंग्रेजोंको हट जाने के लिए कहने का विचार आत्यन्तिक मैत्रीपूर्ण भावनासे ही उत्पन्न हुआ था, क्योंकि यह सब सी० एफ० एन्ड्रयूज तथा उनके महान कार्योंको स्मरण करके ही किया गया था। गांधीजी ने कहा, "इस तरह आपको अब वह काम करना है जो एन्ड्रयूजने किया — मुझे समझिए, बेमुरव्वतीसे मुझसे सवाल जवाब कीजिए और फिर यदि आपको मेरी बातपर यकीन हो जाये तो मेरे सन्देश-वाहक बनिए।" इसपर प्रोफेसर अलेक्जैंडर अभिभूत हो गये और बोले "एन्ड्रयूजकी जगह भरने का साहस तो हम नहीं कर सकते। हम तो केवल प्रयत्न कर सकते हैं" ('हरिजन', ५-७-१९४२, पृ० २१४-५)।

(ओ) 'हरिजन' बन्द किया गया तो[1]

(पी) वर्धाकी भेंट[2]

१. इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ३२०-२२।

२. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३२७-३१ भी।

एक जन-आन्दोलन

ए० पी० (अमेरिका)के प्रतिनिधिने प्रश्न किया: "क्या आप यह बता सकेंगे कि आगामी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें कार्य-समितिका यह प्रस्ताव मंजूर हो जाने के बाद आप क्या करेंगे?"

"क्या आपका यह प्रश्न थोड़ा असामयिक नहीं है? अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने इस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया, तो सारी परिस्थिति ही बदल जायेगी। लेकिन आप यह समझ लीजिए कि जो आन्दोलन छिड़ेगा, वह शुद्ध अहिंसक ढंगका जन-आन्दोलन होगा। अब इसकी तफसीलको आप अपनी कल्पनासे पूरा कर सकते हैं। जन-आन्दोलनमें जो-कुछ हो सकता है, सो सब इस आन्दोलनमें होगा।"

"क्या इसमें शराबकी और विदेशी कपड़ोंकी दूकानें बन्द करने की बात भी शामिल होगी?"

"सो तो परिस्थितिपर निर्भर करेगा। मैं नहीं चाहता कि इस आन्दोलनके परिणामस्वरूप देशमें कहीं भी दंगे हों। लेकिन तमाम एहतियातोंके बावजूद अगर दंगे हुए ही, तो उसका कोई इलाज नहीं।"

यदि गिरफ्तार हो जायें तो?

"क्या आप जेल जायेंगे?"

"मैं खुद तो जेल जाना पसन्द नहीं करूँगा। इस संघर्षमें जेल जाने की बात शामिल नहीं है। वह तो एक बहुत मामूली बात है। इसमें शक नहीं कि अबतक हमने जेल-यात्राको अपना एक कार्यक्रम बनाया था, लेकिन इस बार वैसी कोई बात नहीं होगी। अबकी बार तो मैं सारे आन्दोलनको भरसक बहुत ही थोड़ेमें और जल्दी ही खत्म करना चाहता हूँ।"

"इसपर फौरन ही यह प्रश्न पूछा गया: "अगर आप जेल भेजे गये तो क्या वहाँ उपवास करेंगे?"

"जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इस बार मेरा इरादा जेल जाने का नहीं है। लेकिन अगर मुझे जेलमें ठेला ही गया, तो कह नहीं सकता कि वहाँ पहुँचकर मैं क्या करूँगा। किन्तु मैं उपवास कर सकता हूँ, जैसा कि पहले भी कर चुका हूँ, वैसे मैं भरसक कोशिश तो यही करूँगा कि ऐसा कोई सख्त कदम मुझे उठाना न पड़े।"

समझौतेकी बातचीत

"हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको मान लेने पर क्या स्वतन्त्र हिन्दुस्तान तुरन्त ही अपना काम शुरू कर देगा?"

"जी हाँ, उसी क्षणसे, क्योंकि यह स्वतन्त्रता कागजी नहीं, अमली होगी। लेकिन इसके बाद आप सहज ही दूसरा सवाल यह पूछ सकते हैं कि 'स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अपना कामकाज कैसे चलायेगा?' और चूँकि यह गाँठ मौजूद थी, इसलिए मैंने कहा था कि 'हिन्दुस्तानको भगवानके या अराजकताके भरोसे छोड़ दो।' लेकिन व्यवहारमें जो होगा, वह यह है कि अगर अंग्रेजोंने पूर्ण सद्भावके साथ सत्ता छोड़

दी, तो सारा परिवर्त्तन बिना किसी अशान्तिके हो जायेगा। लोगोंको बिना गड़बड़ मचाये ही अपना प्रबन्ध खुद कर लेना होगा। देशके जिम्मेदार वर्गोंके बुद्धिमान लोग आपसमें मिलेंगे और एक अस्थायी सरकारका निर्माण कर लेंगे। उस दशामें न अराजकता होगी, न व्यवधान, बल्कि सर्वत्र जय-जयकार ही होगा।"

भावी सरकारका स्वरूप

"क्या आपने यह सोचा है कि उस अस्थायी सरकारका स्वरूप कैसा होगा?"

"मुझे आज उसकी कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती। लेकिन इतना तो मैं स्पष्ट ही समझता हूँ कि वह किसी एक दलकी सरकार नहीं होगी। कांग्रेस सहित सभी दल अपने-आप भंग हो जायेंगे। निस्सन्देह बादमें और दल पैदा हो सकते हैं। और तब मुमकिन है कि वे एक-दूसरेके पूरक बनकर काम करें और अपने विकासके लिए परस्पर आश्रित रहें। उस दशामें, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, तमाम अवास्तविकताएँ उसी तरह गायब हो जायेंगी जिस तरह उगते सूरजके सामने कुहरा गायब हो जाता है — कैसे, सो हम नहीं जानते, हालांकि इस दृश्यको हम रोज ही देखते हैं।" इसपर दो हिन्दुस्तानी संवाददाता कुछ अधीरतासे बोले:

"लेकिन अंग्रेजोंके पिछले सारे इतिहासको देखते हुए, क्या यह मुमकिन है कि वे समझौता करने की अक्लमन्दी दिखाएँ?"

"क्यों नहीं? आखिर तो वे भी मनुष्य हैं, और मनुष्य-स्वभावकी ऊर्ध्वगामिताके बारेमें मुझे कभी सन्देह नहीं रहा है। दूसरे, अबतक किसी और राष्ट्रको स्वतन्त्रताके किसी ऐसे आन्दोलनका कभी सामना नहीं करना पड़ा है जो मुख्यतः नहीं, बल्कि पूर्णतः अहिंसक रहा हो।" . . .

"क्या आपके आन्दोलनसे मित्र-राष्ट्रोंके चीन-सम्बन्धी प्रयत्नोंमें रुकावट नहीं पैदा होगी?"

"नहीं, क्योंकि आन्दोलनका हेतु तो मित्र-राष्ट्रोंके साथ मिलकर काम करने का है। इसलिए उसके कारण उनके प्रयत्नोंमें कोई बाधा नहीं पहुँचनी चाहिए।"

"लेकिन अगर अंग्रेज अपनी मर्जीसे नहीं गये, तो उपद्रव जरूर होंगे?"

"आप जानते हैं कि लोगोंमें सरकारके खिलाफ दुर्भावना तो मौजूद है ही। वह दिन-दूनी बढ़ेगी। लेकिन अगर अंग्रेज सहयोगका रुख दिखाएँ, तो आन्दोलनके शुरू होते ही लोगोंकी दुर्भावना सद्भावनामें बदल सकती है। लेकिन अगर अंग्रेज सहयोगका रुख नहीं दिखाते तो भी, जब एक समूचा राष्ट्र अपनेको विदेशी जुएसे मुक्त करने की कोशिशमें लग जायेगा, तो फिर उसकी दुर्भावनाको अभिव्यक्तिके लिए दूसरे मार्गोंकी कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। उस हालतमें आजके अवांछनीय रूपकी जगह वह एक वांछनीय रूप धारण कर लेगा।" . . .

स्वतन्त्र भारतका योगदान

श्री एडगर स्नोने अन्तिम प्रश्न पूछा: "आप मित्र-राष्ट्रोंकी सहायता करने के लिए हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता चाहते हैं। तो क्या स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अपनी पूरी

मानव-शक्तिके साथ सशस्त्र युद्धमें भाग लेगा और सर्वांगीण युद्धके तरीकोंको अपनायेगा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया : "प्रश्न तो आपका उचित है, लेकिन मैं उसका जवाब नहीं दे सकता। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंके साथ मिलकर काम करेगा। आज मैं यह नहीं कह सकता कि आजाद होने के बाद हिन्दुस्तान फौजी तरीकोंको अपनायेगा या अहिंसाके मार्गपर चलना पसन्द करेगा। लेकिन यह मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि अगर मैं हिन्दुस्तानको अहिंसक बना सका, तो मैं निश्चय ही वैसा करूँगा। अगर मैं ४० करोड़ नर-नारियोंको अहिंसक बनाने में सफल हो सका, तो वह एक महान चीज होगी, एक आश्चर्यजनक कायाकल्प!"

"लेकिन आप सविनय अवज्ञा द्वारा सशस्त्र युद्ध-प्रयत्नोंका विरोध तो नहीं करेंगे?" श्री स्नोने समीचीन रूपसे पूछा।

"ऐसा कोई खयाल मेरे दिलमें नहीं है। मैं सविनय अवज्ञा द्वारा स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी इच्छाका विरोध नहीं कर सकता। वैसा करना अनुचित होगा।" ('हरिजन', १९-७-१९४२, पृ० २३३-४)।

(क्यू) अमेरिकी जनमतका रुख शायद विपरीत हो जाये[1]

. . . श्री स्टीलने कहा : "एक अमेरिकीकी हैसियतसे मैं कह सकता हूँ कि बहुत-से अमेरिकियोंपर इस प्रस्तावकी प्रतिक्रिया यह होगी कि इस मौकेपर स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन शुरू करने में बुद्धिमानी नहीं है। क्योंकि इससे हिन्दुस्तानमें कई ऐसी जटिलताएँ पैदा हो जायेंगी जो युद्ध-कार्यको अच्छी तरह चलाने में रुकावट पैदा करेंगी।"

गांधीजी ने उत्तर दिया : "यह तो एक अज्ञानमूलक मान्यता है। अगर अंग्रेज सरकार आज यह ऐलान कर दे कि हिन्दुस्तान बिलकुल स्वतन्त्र है, तो इससे कौन-सी आन्तरिक जटिलता पैदा हो जायेगी। मेरी रायमें, युद्ध-प्रयत्नकी दृष्टिसे मित्र-राष्ट्रोंके लिए यह कमसे-कम खतरेकी बात होगी। मैं तो इस बातके लिए तैयार बैठा हूँ कि मुझे इस सम्बन्धमें समझाया जाये। अगर कोई मुझे यकीन दिला सके कि युद्ध-प्रयासको बाधा पहुँचाये बिना युद्धके दौरान अंग्रेज सरकार हिन्दुस्तानकी आजादीका ऐलान नहीं कर सकती, तो मैं उसकी उन दलीलोंको सुनना चाहूँगा। अभीतक तो मैंने ऐसी कोई उपयुक्त दलील सुनी नहीं।"

सहमत होने को तत्पर

"अगर कोई आपको इस बातका विश्वास दिला सके, तो क्या आप इस आन्दोलनको रोक लेंगे?"

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३३५-३८ भी।

"जी हाँ, जरूर। मुझे शिकायत तो यह है कि मेरे ये भले आलोचक मुझपर व्यंग्य करते हैं, मुझे बुरा-भला कहते हैं, लेकिन मेरे साथ बातचीत करने की मेहरबानी कभी नहीं करते।" . . .

. . . श्री स्टीलने बात काटते हुए कहा: "यानी अगर हिन्दुस्तानमें चालीस करोड़ गांधी हों तो।"

गांधीजी बोले: "बस, अब हम मुद्देकी बातपर आये। इसका मतलब यह है कि अभी हिन्दुस्तान पर्याप्त रूपसे अहिंसक नहीं है। अगर हम सभी अहिंसक होते, तो यहाँ न तो इतने दल होते और न जापानी आक्रमण ही होता। मै जानता हूँ कि हमारी अहिंसा संख्या और गुण दोनोंकी दृष्टिसे मर्यादित है। लेकिन इन दोनों मर्यादाओंके रहते हुए भी उसने देशकी जनतापर जबर्दस्त असर डाला है और उसमें एक ऐसी जान फूंक दी है जो पहले नहीं थी। ६ अप्रैल, १९१९ को देशमें जो जागृति देखी गई, वह हरएक हिन्दुस्तानीको दंग कर देनेवाली थी। उस समय हिन्दुस्तानके कोने-कोनेसे, जहाँ पहले कभी कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता पहुँचा तक न था, हमें जो उत्साहपूर्ण जवाब मिला, उसका आज मैं कोई कारण नहीं दे सकता। उस वक्ततक न तो हम जनताके बीच गये थे और न हम यही जानते थे कि हम उसके पास पहुँच सकते हैं और उससे बातचीत कर सकते हैं।" . . .

अन्तरिम सरकार

"क्या आप मुझे यह बतायेंगे कि अस्थायी सरकारके गठनमें पहल कौन करेगा? आप, कांग्रेस या मुस्लिम लीग?"

"मुस्लिम लीग जरूर कर सकती है, और कांग्रेस भी कर सकती है। अगर सब-कुछ ठीक चला तो संयुक्त नेतृत्व सामने आयेगा। यह नहीं हो सकता कि सिर्फ एक ही दल नेतृत्व करे।"

"तो क्या उसकी रचना मौजूदा संविधानके ढाँचेके अन्दर की जायेगी?"

गांधीजी बोले: "वह संविधान तो मर चुका होगा। १९३५ का भारत सरकार अधिनियम खत्म हो चुका है। इंडियन सिविल सर्विस वालोंको हट जाना होगा। उसके बाद हो सकता है कि देशमें अराजकता फैल जाये। लेकिन अगर अंग्रेज सद्भावपूर्वक हट जायें, तो कोई कारण नहीं कि देशमें अराजकता फैले। स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकार बाहरवालोंकी किसी दस्तन्दाजीके बिना हिन्दुस्तानकी अपनी प्रतिभाके अनुरूप एक संविधान तैयार कर लेगी। . . . हमारी समझदारी ही एकताका कारण होगी — बाहरकी कोई ताकत नहीं। और मैं मानता हूँ कि ऐसी समझदारीका परिचय हम भरपूर देंगे।"

"तो क्या फिर वाइसराय वाइसराय नहीं रह जायेंगे?"

"'उस हालतमें भी हम' मित्र रहेंगे, लेकिन वह मित्रता बराबरीकी होगी। मुझे इसमें शक नहीं कि लॉर्ड लिनलिथगो उस दिनका स्वागत करेंगे जिस दिन वे देशकी जनतामें से एक होंगे।"

आज ही क्यों न हो?

श्री एमनोने पुनः प्रश्न-बाण छोड़ा: "ब्रिटिश हुकूमतके बिना हटे आज ही यह सब क्यों नहीं हो सकता?"

"इसका जवाब तो बिलकुल सीधा है। एक कैदी वह काम क्यों नहीं कर सकता जो एक स्वतन्त्र आदमी कर सकता है? आप तो शायद जेलके सीखचोंके अन्दर कभी बन्द नहीं हुए होंगे, लेकिन मैं हुआ हूँ और मैं जानता हूँ। जेल-जीवन का अर्थ है, नागरिकके नाते मनुष्यकी मृत्यु। और मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि नागरिकके नाते सारा हिन्दुस्तान मरा पड़ा है। ब्रिटिश सरकार उसके श्वासोच्छ्वासका भी नियमन करती है। इसके अलावा एक अनुभव और है जो आपको न हुआ होगा। आप सदियोंतक गुलाम रहनेवाले राष्ट्रके नागरिक नहीं रहे हैं। हमारी 'यह आदत बन गई है' कि हम कभी आजाद नहीं हो सकते। श्री सुभाष बोसकी मिसाल आपके सामने है ही। उनका त्याग महान् रहा है। अगर वे इंडियन सिविल सर्विसमें रहते, तो वहाँ बहुत नाम कमाते। लेकिन आज वे देशसे निर्वासित हैं, क्योंकि वे इस असहाय अवस्थाको सह नहीं सकते और वे यह महसूस करते हैं कि इसका प्रतिरोध करने के लिए उन्हें जर्मनी और जापानकी मदद लेनी ही चाहिए।" . . . ('हरिजन', २६-७-१९४२, पृ० २४२-३)।

(आर) अमेरिकी मित्रोंसे[1]

. . . मेरा दावा है कि मैं बचपनसे ही सत्यका पुजारी रहा हूँ। मेरे लिए यह अत्यन्त स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्तिभावयुक्त खोजके कारण मुझे "ईश्वर ही सत्य है" के प्रचलित वचनके बदले यह दिव्य वचन प्राप्त हुआ कि "सत्य ही ईश्वर है।" इस वचनके कारण मैं मानो ईश्वरको अपने सामने साक्षात् खड़ा पाता हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि वह मेरे रोम-रोममें व्याप्त है। अपने और आपके बीच इसी सत्य को साक्षी रखकर, मैं बलपूर्वक यह कहता हूँ कि अगर मुझे सहसा यह बोध न हुआ होता कि ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंके हितके लिए यह जरूरी है कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान को बन्धनमुक्त करने के अपने कर्त्तव्यका साहसपूर्वक पालन करे, तो मैंने अपने देशको यह सलाह कभी न दी होती कि वह ब्रिटेनको हिन्दुस्तानसे अपनी हुकूमत उठा लेने और इसके खिलाफ पेश की जानेवाली किसी भी माँगकी परवाह न करने को कहे। जबतक ब्रिटेन न्यायका यह कार्य नहीं करता, जिसे करने में उसने काफी ढील की है, तबतक वह संसारकी मूक अन्तरात्माके सामने, जिसके अस्तित्वमें कोई सन्देह नहीं है, अपनी स्थितिको न्यायपूर्ण सिद्ध नहीं कर सकता। सिंगापुर, मलाया और बर्मासे मैंने यह सबक सीखा कि वहाँकी दारुण विपत्ति हिन्दुस्तानमें दोहराई नहीं जानी चाहिए। मैं दावेके साथ यह कहता हूँ कि अगर अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानकी जनताका विश्वास न किया और उसे अपनी स्वतन्त्रताका उपयोग मित्र-राष्ट्रोंके पक्षमें न करने दिया, तो यह संकट किसी तरह टाला नहीं जा सकेगा।

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३९९–४०२ भी।

लेकिन अगर ब्रिटेनने न्यायका यह सर्वोत्तम काम लिया, तो आज हिन्दुस्तानमें उसके खिलाफ जो असन्तोष बढ़ रहा है, उसकी कोई वजह न रह जायेगी। अपने इस कार्य द्वारा वह बढ़ते हुए दुर्भावको सक्रिय सद्भावमें बदल डालेगा। मेरा निवेदन यह है कि इससे वैसी ही मदद मिलेगी जैसी उन तमाम जंगी जहाजों और हवाई जहाजोंसे मिल रही है जिन्हें आप अपने अद्भुत करामाती इंजीनियरों और आर्थिक साधनोंकी बदौलत पैदा कर सकते हैं।

. . . हम कहते हैं: 'हिन्दुस्तानकी आजादीको मान लेने का यही मनोवैज्ञानिक मुहूर्त है।' क्योंकि तब और केवल तभी जापानी आक्रमणका दुर्निवार प्रतिरोध किया जा सकता है। अगर हिन्दुस्तानके लिए इसका अत्यन्त महत्त्व है, तो मित्र-राष्ट्रोंके हितकी दृष्टिसे भी इसका उतना ही महत्त्व है। हिन्दुस्तानकी आजादीको मान लेने के रास्तेमें जो भी कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं, कांग्रेसने उन सबका पहलेसे ख्याल कर लिया है और उनके उपाय भी सुझाये हैं। मैं चाहता हूँ कि आप यह समझ लें कि हिन्दुस्तानकी आजादीको तुरन्त ही मंजूर कर लेना अव्वल महत्त्वका युद्ध-प्रयत्न होगा।' ('हरिजन', ९-८-१९४२, पृ० २६४)।

(एस) विवेकसे काम लीजिए

. . . अमेरिका और ब्रिटेनका यह उन्मत्त प्रलाप शायद आनेवाले दमनका सूचक है। सम्भव है कि इस दमनके कारण लोग कुछ समयके लिए दब जायें, लेकिन एक बार जब विद्रोहकी ज्योति जल उठेगी, तो फिर वह किसीके बुझाये न बुझ सकेगी। . . .

कांग्रेसकी माँगका औचित्य

हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश हुकूमतको खत्म करने की माँगके औचित्यके बारेमें तो किसीको कोई एतराज नहीं है। लेकिन उसको पूरा कराने के लिए जो समय चुना गया है, उसपर हमला किया गया है। कार्य-समितिके प्रस्तावमें यह साफ-साफ समझाया गया है कि क्यों यही मौका चुना गया है। मैं यहाँ थोड़ी व्याख्या किये देता हूँ। इस युद्धमें हिन्दुस्तान कोई ऐसा काम नहीं कर पा रहा है जो कारगर साबित हो। इस हकीकतकी वजहसे हममें से कुछको बड़ी शर्म मालूम होती है। इससे भी बड़ी बात यह कि हम महसूस करते हैं कि अगर हम विदेशी जुएसे मुक्त होते, तो इस विश्वयुद्धमें, जो अभी अपनी चरम सीमापर नहीं पहुँचा है, न सिर्फ योग्य, बल्कि निर्णायक योग देते। हम जानते हैं कि अगर हिन्दुस्तान 'इसी समय' आजाद न हुआ, तो लोगोंका छिपा असन्तोष, जापानियोंके हिन्दुस्तानकी जमीनपर कदम रखने पर, उनके स्वागतके रूपमें फूट पड़ेगा। हम महसूस करते हैं कि अगर ऐसा हुआ, तो वह इस देशके लिए बहुत बड़ी विपत्ति होगी। अगर हिन्दुस्तान आजादी हासिल कर ले, तो हम इस विपत्तिको टाल सकते हैं। इस सीधी-सादी, सहज और ईमानदारीकी घोषणापर विश्वास न करना खुद आफतको न्योता देना है।

मौलाना आजादके वक्तव्यका हवाला

लेकिन आलोचक पूछते हैं : 'हिन्दुस्तानको छोड़ते समय ब्रिटिश शासक देशकी बागडोर किसके हाथोंमें सौंपकर जायें?' यह एक अच्छा सवाल है। इसके जवाबमें कांग्रेसके अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजादने जो कहा है सो यह है: "कांग्रेस हमेशा से तीन बातोंपर कायम रही है: एक, उसकी सहानुभूति लोकतान्त्रिक देशोंके साथ रही है; दूसरे, वह ब्रिटेनको किसी तरह परेशान नहीं करना चाहती, न उसके युद्ध-प्रयत्नोंमें रुकावट डालना चाहती है; तीसरे, वह जापानी हमलेका विरोध करने के लिए कमर कसे हुए है। कांग्रेस अपने लिए नहीं, बल्कि देशके सभी लोगोंके लिए सत्ता चाहती है। अगर कांग्रेसके हाथोंमें सच्ची सत्ता सौंप दी जाये, तो वह निश्चय ही दूसरे पक्षोंके पास जायेगी और उन्हें मुल्ककी हुकूमतमें शामिल होने के लिए राजी करेगी।" कांग्रेस अध्यक्षने आगे चलकर यह भी कहा: "अगर ब्रिटेन मुस्लिम लीगको या दूसरे किसी पक्षको देशकी हुकूमत सौंप दे, तो मुझे कोई एतराज न होगा, बशर्ते कि वह सच्ची आजादी हो। उस पक्षको दूसरे पक्षोंके पास जाना पड़ेगा, क्योंकि कोई एक पक्ष दूसरे पक्षोंके सहयोगके बिना ठीकसे काम चला ही नहीं सकेगा।"

इसके लिए जरूरी चीज सिर्फ यह है कि बिना किसी शर्तके देशकी समूची हुकूमत देशवासियोंके हाथमें सौंप दी जाये। अपवाद सिर्फ एक रहे कि लड़ाईके दरम्यान मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें हिन्दुस्तानमें रहकर जापानी या धुरी-राष्ट्रोंके आक्रमणोंका प्रतिकार करेंगी। लेकिन उन्हें हिन्दुस्तानके मामलोंमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा; हिन्दुस्तान भी ब्रिटेनकी तरह ही स्वतन्त्र होगा।

हील-हुज्जत करने की गुंजाइश नहीं

निश्चय ही, इसमें किसीके लिए हील-हुज्जत करने की कोई गुंजाइश नहीं है। जो पक्ष या पक्षोंका समूह देशकी हुकूमतको अपने हाथोंमें लेगा, उसे अपनी हुकूमतको बनाये रखने के लिए बाकी पक्षोंका सहयोग प्राप्त करना ही पड़ेगा। देशके विभिन्न पक्षोंको जबतक अपने समर्थन और अस्तित्वके लिए एक-दूसरेका मुँह देखने के बजाय, बाहरवालेका मुँह देखना पड़ता है, तबतक उनके एक होने या मिलकर काम करने की कोई उम्मीद नहीं है। वाइसरायकी परिषद्के बहुत सारे हिन्दुस्तानी सदस्योंमें से एक भी ऐसा नहीं है जो अपने पदके लिए वाइसरायको छोड़ और किसीपर निर्भर हो। एक-दूसरेकी सहायता व समर्थनके बिना देशके छोटे या बड़े प्रतिनिधि दल अपना काम कर ही किस तरह सकते हैं?

आजाद हिन्दुस्तानमें तो कांग्रेस-जैसा दल तक, छोटे-से-छोटे दलके समर्थनके अभावमें, एक दिन भी अपना काम कुशलतापूर्वक नहीं कर सकेगा। क्योंकि आजाद हिन्दुस्तानमें, कमसे-कम अगले कुछ समयतक, देशके सबसे शक्तिशाली दलको भी फौजी शक्तिका समर्थन नहीं मिलेगा। उसका समर्थन करने के लिए देशमें कोई फौज ही नहीं होगी। शुरूके दिनोंमें तो, यदि मौजूदा पुलिस राष्ट्रीय सरकारकी नौकरी उसकी

अपनी शर्तोंपर करने को तैयार न हुई तो, अधकचरे पुलिसके जवान ही काम करते रहेंगे। लेकिन इसमें शक नहीं कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयमें जो भी मदद दे पायेगा, वह अपने-आपमें बहुत कीमती होगी। उसकी सम्भावनाओंका तो कोई पार ही न रहेगा, और तब देशमें जापानी फौजोंका स्वागत करने की कोई वजह भी न रह जायेगी।

इसके विपरीत, यदि उस समयतक समूचा हिन्दुस्तान अहिंसक न बन गया तो, लोग जापानियोंके या दूसरे किसी देशके हमलेको रोकने के लिए मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंसे मददकी उम्मीद रखेंगे। बहरहाल, मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें तो हिन्दुस्तानमें आज भी हैं, कल भी होंगी और युद्धके अन्ततक रहेंगी — चाहे हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिए उनकी जरूरत हो या न हो।

कांग्रेसकी माँगके फलितार्थोंका यह भाष्य यदि मित्र-राष्ट्रोंके समाचारपत्रों या स्वयं मित्र-राष्ट्रोंको नहीं जँचता है, तो खतरनाक एक-जुटताके साथ संगठित किये जा रहे उस माँगके उग्र विरोधकी ईमानदारीमें शक करना हिन्दुस्तानके जन-सेवकोंके लिए उचित ही है। इस विरोधसे तो हिन्दुस्तानका सन्देह और उसका प्रतिरोध और प्रबल ही होगा। ('बॉम्बे क्रॉनिकल', ३-८-१९४२, यह अंश 'हरिजन', २-८-१९४२, पृ० २५२ पर प्रकाशित एक लेखसे उद्धृत है)।

(टी) एक महत्त्वपूर्ण भेंट-वार्त्ता[1]

. . . उन मित्रोंने कुछ चिढ़कर पूछा: "लेकिन अंग्रेज किससे कहें कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र है?"

गांधीजी ने एक क्षणकी भी हिचकिचाहटके बिना, सीधे कहा: "दुनियासे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि हिन्दुस्तानी फौजें तभी भंग कर दी जायेंगी, और अंग्रेज जल्दीसे-जल्दी हिन्दुस्तान छोड़कर जाने का निश्चय करेंगे। अथवा वे यह ऐलान कर सकते हैं कि वे हिन्दुस्तानको तो लड़ाई खत्म होने पर ही छोड़ेंगे, लेकिन हिन्दुस्तानसे किसी तरहकी मददकी आशा नहीं रखेंगे, उसपर कर नहीं लगायेंगे, रंगरूट भरती नहीं करेंगे — सिर्फ उतनी ही मदद लेंगे जितनी हिन्दुस्तान अपनी मर्जी और खुशीसे देगा। हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंका शासन उसी क्षणसे खत्म हो जायेगा, फिर भले ही हिन्दुस्तानका जो होना हो सो हो। आज तो जो भी कुछ है, सब ढोंग और असत्य है। मैं इसे खत्म कर देना चाहता हूँ। इस असत्यके मिटने पर ही नई व्यवस्था हो सकेगी।"

गांधीजी ने बातचीतका अन्त करते हुए कहा: "प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रताकी रक्षा करने का जो दावा आज ब्रिटेन और अमेरिका कर रहे हैं, वह निराधार नहीं है। एक पूरे राष्ट्रको गुलामीमें जकड़े रखने की इस भयंकर दुःखद स्थितिके रहते इस तरह का दावा करना गलत है।"

प्र०: "आपकी माँगको मंजूर कराने के लिए अमेरिका क्या कर सकता है?"

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० २१८ भी।

उ०: अगर अमेरिका यह मानता है कि मेरी माँग बिलकुल युक्तियुक्त और न्यायपूर्ण है, तो उसे चाहिए कि जबतक इसे मंजूर न कर लिया जाये, वह ब्रिटेनको धनकी और अप्रतिम कौशलसे निर्मित तरह-तरहके युद्ध-यन्त्रोंकी मदद देने से इनकार कर दे। जो धन देता है, वह काम करने की रीति भी ठहरा सकता है। चूँकि अमेरिका मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयमें उनका एक बड़ा भागीदार बन गया है, इसलिए ब्रिटेनके पापमें भी उसका हिस्सा हो गया है। जबतक वे पृथ्वीके एक अत्यन्त सुन्दर भाग और अत्यन्त प्राचीन राष्ट्रको गुलाम बनाये हुए हैं, तबतक मित्र-राष्ट्रोंको यह कहने का कोई हक नहीं है कि उनका ध्येय नाजियोंके ध्येयसे नैतिक दृष्टिसे श्रेष्ठ है। ('हरिजन', १४-६-१९४२, पृ० १८७)।

(यू) हिन्दुस्तानमें विदेशी सिपाही[1]

परिशिष्ट २

जापानियोंके पक्षमें नहीं हूँ

हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अंग्रेजोंके भारतसे चले जाने के बाद जापानी आक्रमण होने पर (जिसे सम्भव भी मान लिया गया था) वह (अर्थात् मैं) जापानियोंकी माँगें स्वीकार करने को तैयार थे। (अभियोग-पत्र पृ० ८)।

(ए) सचमुच यही मंशा है तो?[1]

(बी) दोस्ताना सलाह[2]

"... आप कहते हैं कि आप सब जोखिम उठाने को तैयार हैं। हर वीर पुरुषकी यही वृत्ति होगी। परन्तु इसके साथ ही क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि आप ऐसा वातावरण तैयार करें जिससे, जहाँतक हो सके, हमें कम जोखिम उठानी पड़े? उदाहरणार्थ, हमें लोगोंके दिलोंसे कायरता हटानी चाहिए और उनमें यह भाव पैदा करना चाहिए कि वे अपने पैरोंपर खड़े हो सकते हैं। उन्हें जापानी सहायताकी रंचमात्र भी इच्छा नहीं करनी चाहिए, जैसी कि कितने ही लोग आज कर रहे हैं।" ...

जैसा कि इस साप्ताहिकके पाठक जानते हैं, मुझे जो सत्य लगता है, उसे पूरी तरह ध्यानमें रखकर मैं पहले ही अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए वह सब कोशिश कर रहा हूँ जो इन्सानके लिए मुमकिन है। मैं जानता हूँ कि मेरी यह कल्पना इतनी नई किस्मकी है, खास तौरपर आजकी इस घड़ीमें, कि इससे कई लोग भौंचक्के हैं। मगर मेरे पास इसके सिवा कोई चारा न था। चाहे कोई मुझे पागल ही क्यों न कहे, पर यदि मुझे अपने प्रति सच्चा रहना था, तो मैं सच्ची बात ही कह सकता था। मैं मानता हूँ कि मेरा यह कदम युद्धमें और इस

१ और २. इन शीर्षकोंके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ५५-५६ और ५७।

३. देखिए खण्ड ७६, पृ० १५३-५४ भी।

समय उपस्थित तथा आनेवाले खतरेसे हिन्दुस्तानको छुटकारा दिलाने में एक ठोस योगदान है। साम्प्रदायिक एकताके लिए भी मेरा यह एक सच्चा योगदान है। पर आज किसीके लिए भी यह कहना मुश्किल है कि उस एकताका क्या रूप होगा। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि हमारी अबतककी एकताकी तरह वह दिखावटी नहीं होगी। अबतक उसका असर थोड़ेसे राजनीतिक विचारोंवाले लोगोंतक ही सीमित रहा है। आम जनता उससे बिलकुल अछूती रही है।

इसलिए यद्यपि परिस्थितिकी गम्भीरताको ध्यानमें रखते हुए मैं हर वह एहतियात बरतूँगा जिसकी कल्पना की जा सकती है, पर मैं इस बातका यकीन नहीं दिला सकता कि आगे कोई कदम बढ़ाने से पहले मैं जनतामें से बुजदिलीको पूरी तरह निकाल सकूँगा। इसके लिए तो हमें सम्भवतः बड़ी-बड़ी अग्नि-परीक्षाओंमें से गुजरना होगा। साथ ही जनतामें द्वेषका भाव ठंडा होने तक राह नहीं देखी जा सकती। इन्सानको गिरानेवाले द्वेषके इस चक्रसे देशको छुड़ाने का एकमात्र उपाय यही है कि घृणाकी पात्र अंग्रेजी सत्ता यहाँसे उठ जाये। कारणके दूर हो जाने से द्वेषाग्नि अपने-आप ठंडी पड़ जायेगी।

निःसन्देह, अंग्रेजी हुकूमतसे छुटकारा पाने के लिए लोगोंको किसी भी सूरतमें जापानका सहारा नहीं लेना चाहिए। वह इलाज मर्जसे भी बदतर साबित होगा। लेकिन, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, इस संघर्षमें हमें अपनेको अपने इस सबसे बड़े रोगसे मुक्त करने के लिए हर किस्मकी जोखिम उठानी होगी। इस रोगने हमें निर्वीर्य बना दिया है और हम लगभग यह समझने लगे हैं कि हम हमेशा मानो गुलाम ही रहेंगे। यह चीज बरदाश्त नहीं की जा सकती। मैं जानता हूँ कि इसके इलाजके लिए हमें भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। लेकिन स्वतन्त्रताके लिए कोई भी कीमत महँगी नहीं कही जा सकती। ('हरिजन', ३१-५-१९४२, पृ० १७२)।

(सी) अगर वे आ जायें[1]

(डी) रेडियो सन्देशोंके विषयमें[2]

(ई) यदि जापानी आयें तो?[3]

(एफ) प्रश्नोत्तर[4]

(जी) अमेरिकाके साथ अन्याय?[5]

(एच) लॉर्ड लिनलिथगोके नाम मीराबहनका पत्र

नजरबन्दी कैम्प
आगाखाँ महल, पूना
२४ दिसम्बर, १९४२

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

गांधीजी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके विषयमें कुछ अंग्रेजी अखबारोंमें कतिपय मिथ्या बातें प्रकाशित हुई हैं, जिनका सरकारकी ओरसे कोई खण्डन नहीं किया

१-५. इन शीर्षकोंके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० १९९-२००, २३९-४०, ३५९, १८६-८७ और १८१-८२।

गया है। अंग्रेज माता-पिताकी सन्तान होने के नाते मुझे इस मिथ्या प्रचारके कारण जो दुख हुआ है उसीकी वजहसे मैं आपको यह पत्र लिख रही हूँ।

मेरे पास जो थोड़े-से अखबार पहुँचते हैं उनसे मैं ब्रिटिश समाचारपत्रोंमें बढ़ते हुए कांग्रेस-विरोधी प्रचारको देखती रही हूँ। जो अनेक मिथ्या बातें प्रचारित की जा रही हैं, इस पत्रमें मैं उनमें से केवल एककी चर्चा करना चाहती हूँ और वह है यह मिथ्या दोषारोपण कि गांधीजी और कांग्रेस जापान-समर्थक हैं। मेरे ध्यानमें इस प्रकारका जो प्रचार आया है, उसके नमूनोंके रूपमें मैं २९ नवम्बर, १९४२ के 'बॉम्बे क्रॉनिकल वीकली', पृ० २२, और १९ दिसम्बर, १९४२ के 'हिन्दू' (डाक संस्करण) पृ० ४, स्तम्भ ३ की चर्चा करूँगी।

'बॉम्बे क्रॉनिकल वीकली' में जो उद्धरण और अनुकृतियाँ दी गई हैं, उनमें ५ अगस्त, १९४२ के लन्दन 'डेली स्केच' के प्रथम पृष्ठकी एक फोटो है, जिसमें एक पृष्ठकी पूरी चौड़ाईका एक शीर्षक दिया गया है, जो इस प्रकार है: "गांधीज इंडिया-जैप पीस प्लान एक्सपोज्ड", तथा उसी पृष्ठपर नीचेकी ओर मेरा एक फोटो है, जिसपर यह उप-शीर्षक दिया गया है: "इंग्लिश वुमन गांधीज जैप-पीस एनवॉय"। 'पंच' के कार्टूनोंकी अनुकृतियाँ भी दी गई हैं। ये कार्टून तो और भी लज्जाजनक हैं। 'हिन्दू' में श्री क० मा० मुंशीका एक विरोध-पत्र छपा है, जिसे देखने पर लगता है कि यह अपवादजनक प्रचार लन्दन 'डेली हेरल्ड' तकमें फैल चुका है।

अब इस मामलेको आपके ध्यानमें लाने का मेरा उद्देश्य यह है कि अप्रैल महीनेमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी इलाहाबाद बैठकके बाद जब मैं उड़ीसामें थी उस दौरान गांधीजी और मेरे बीच जो पत्राचार हुआ वह मेरे पास है। इन पत्रोंसे यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाता है कि गांधीजी शत-प्रति-शत जापान-विरोधी हैं।

ऊपर मैंने जिस पत्र-व्यवहारका जिक्र किया है उसकी प्रतियाँ मैं साथमें संलग्न कर रही हूँ। इसमें एक गोपनीय रिपोर्ट शामिल है, जिसके साथ सम्भावित जापानी हमलेसे सम्बन्धित एक प्रश्नावली भी संलग्न है। यह रिपोर्ट और प्रश्नावली मैंने एक विशेष पत्रवाहकके हाथों उड़ीसासे गांधीजीके पास भेजी थी। मुझे गांधीजी ने सामान्य रूपसे कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंकी सहायता करने के लिए उड़ीसा भेजा था — खास तौरसे इसलिए कि पूर्वी तटपर किसी भी समय जापानी हमला होने की आशंका थी।

मेरे पास जो रिपोर्ट है वह मूल मसौदा है और मेरी ही लिखावटमें है। इस पर तारीख या हस्ताक्षर नहीं है, क्योंकि तारीख और हस्ताक्षर तो भेजी जानेवाली टाइपशुदा प्रतिपर डाल दिये गये थे। लेकिन यह गांधीजी के ३१ मई, १९४२ के उस उत्तरसे ३ या ४ दिन पहलेका होगा जो उन्होंने स्वर्गीय महादेव देसाईको बोल-कर लिखवाया था और फौरन लौटते हुए पत्र-वाहकके हाथों भिजवा दिया था। इस उत्तरकी मूल प्रति मेरे पास है, जो स्व० महादेव देसाईकी लिखावटमें है और जिस पर गांधीजी ने "बापू" हस्ताक्षर किया है। पत्रके प्रथम अनुच्छेदमें जिस भेंटका जिक्र है वह भेंट वह है जो मैंने २५ मई, १९४२ को उड़ीसा सरकारके मुख्य सचिव श्री वुडके साथ की थी और जिसमें श्री मैंन्सफील्ड भी उपस्थित थे।

यह देखते हुए कि कोई भी धर्मभीरु शासक शान्त मनसे अपने ही लोगों द्वारा उन लोगोंके विरुद्ध उपर्युक्त निन्दात्मक प्रचार बिना रोक-टोक जारी नहीं रहने देगा — खास तौरसे जब उसे इस प्रकारके प्रचारके मिथ्या होने का निर्विवाद प्रमाण मिल गया हो — जिन्हें उस शासकने स्वयं ऐसी स्थितिमें डाल दिया है कि वे जवाब न दे सकें। मैं यह विश्वास करती हूँ कि आप इस पत्रके साथ ही संलग्न पत्र-व्यवहारको प्रकाशित कर देंगे और इन ब्रिटिश पत्र-पत्रिकाओंके दावोंका खण्डन करेंगे।

मैं यह भी कह दूँ कि चूँकि मैं कार्य-समितिके सदस्योंसे व्यक्तिगत रूपसे परिचित हूँ और चूँकि मैंने उनके साथ इन मामलोंपर खुलकर चर्चा की है, इसलिए मैं विश्वासपूर्वक कह सकती हूँ कि उनकी भावनाएँ बराबर असन्दिग्ध रूपसे जापान-विरोधी और फासीवादी-विरोधी रही हैं।

हृदयसे आपकी,
मीराबहन

(आई) जापानके आशंकित आक्रमण और आधिपत्यके बारेमें मीराबहनके प्रश्न

हम ऐसा मान सकते हैं कि जापानी लोग उड़ीसाके तटीय प्रदेशमें किसी स्थान पर उतरेंगे। शायद उनके उतरने के समय कोई बमबारी या गोलाबारी नहीं होगी, क्योंकि तटीय क्षेत्रमें कोई सुरक्षात्मक व्यवस्था नहीं है। तटीय क्षेत्रसे वे तेजीके साथ सूखे हुए धानके समतल खेतोंसे होते हुए आगे बढ़ेंगे, जहाँ रास्तेमें रुकावटके नामपर केवल नदियाँ और खाइयाँ हैं, और ये भी इस समय अधिकांश सूखी पड़ी हैं और दुर्गम नहीं हैं। जहाँतक हम समझ सके हैं, जापानी सेनाकी बाढ़को रोकने का कोई गम्भीर प्रयत्न उस समयतक नहीं किया जायेगा जबतक कि वह उड़ीसा राज्यके पहाड़ी और जंगली इलाकेतक नहीं पहुँच जाती। ऐसी सूचना है कि जो-कुछ सुरक्षा सेना है वह इन इलाकोंके जंगलोंमें छिपी हुई है। यह सुरक्षा सेना शायद जमशेदपुर रोडकी रक्षा करने की जबरदस्त कोशिश करेगी, लेकिन इसमें उसे सफलता मिलने की सम्भावना बहुत ही कम होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि हम उड़ीसाके उत्तर-पश्चिम में युद्धकी सम्भावना मान सकते हैं, जिसके बाद जापानी सेना बिहारमें प्रवेश कर जायेगी। उस समयतक जापानी लोग देशमें व्यापक स्तरपर बिखरे हुए नहीं होंगे, बल्कि अपनी आगे बढ़ती हुई फौज और समुद्रके बीच सम्पर्क-रेखापर केन्द्रित होंगे। ब्रिटिश शासन इससे पहले ही उस क्षेत्रसे हट चुका होगा।

हमारे सामने समस्या यह है कि ये सारी चीजें घटित होने की स्थितिमें हमें क्या करना है?

खेतों और गाँवोंको पार करके आगे बढ़ती हुई जापानी सेना जनताकी शत्रुके रूपमें नहीं, बल्कि ब्रिटिश और अमेरिकी सेनाओंका पीछा करके उनका नाश करनेवाली सेनाके रूपमें आगे बढ़ेगी। जहाँतक जनताका सवाल है, उसकी भावनाएँ अस्पष्ट हैं। सबसे प्रबल भावना अंग्रेजोंके प्रति अविश्वासकी है, और जनताके साथ जैसा व्यवहार किया जा रहा है उसके कारण यह भावना दिनों-दिन प्रबलतर होती जा

रही है। कोई भी चीज, जो ब्रिटिश नहीं है, लोगोंको स्वीकार्य है। एक मजेदार उदाहरण है। कुछ भागोंमें गाँववाले कहते हैं: "ओह, बहुत ज्यादा आवाज करनेवाले विमान तो अंग्रेजोंके हैं, लेकिन बिना आवाजवाले विमान भी हैं, और ये विमान महात्माके हैं।" मैं समझती हूँ कि इन भोले-भाले लोगोंके लिए एक ही रवैया सीख सकना सम्भव है और वह रवैया तटस्थताका है, क्योंकि वास्तवमें यही एक स्थिति है जो उनकी समझमें आ सकती है। अंग्रेज लोग न इन लोगोंको बमबारी आदिकी स्थिति में अपनी रक्षा कैसे की जाये यह बताये बिना ही इन्हें छोड़ कर जा रहे हैं, बल्कि वे उनके लिए ऐसे आदेश जारी कर रहे हैं कि उनका यदि पालन किया गया तो युद्ध होने से पहले ही वे मारे जायेंगे। वैसी स्थितिमें वे भला उन जापानियोंका रास्ता उत्साहपूर्वक रोकने के लिए किस प्रकार तैयार हो सकते हैं जो घृणित ब्रिटिश राजको खदेड़ रहे है — खास तौरसे तब जब कि जापानी लोग यह कहते हैं: "हम तुम लोगोंसे लड़ने नहीं आये है?" लेकिन मैंने पाया है कि गाँववाले तटस्थताकी स्थिति अपनाने को तैयार हैं। तात्पर्य यह कि वे जापानियोंको अपने खेतों और गाँवोंसे होकर गुजर जाने देंगे और जहाँतक बनेगा उनके सम्पर्कसे बचने की कोशिश करेंगे। वे अपने खाने-पीनेकी चीजें और धन छिपा देंगे और जापानियोंकी सेवासे इनकार कर देंगे। लेकिन कुछ भागोंमें ब्रिटिश राजके प्रति लोगोंके मनमें इतनी घृणा है कि उन्हें इस हदतक प्रतिरोध करने के लिए राजी कर सकना भी मुश्किल है, और वे ब्रिटेन-विरोधी किसी भी चीजका बाहें फैलाकर स्वागत करेंगे। मैं समझती हूँ कि हमें यह पता चलाने की कोशिश करनी चाहिए कि औसत लोग ज्यादासे-ज्यादा कितना प्रतिरोध करेंगे, 'करना जारी रखेंगे', और इसीको हम अपनी सुनिश्चित स्थिति मान लें। एक सुस्थिर लगातार कायम रखी जानेवाली स्थिति, भले ही वह शत-प्रति-शत प्रतिरोधकी न हो, एक ऐसी कड़ी स्थितिके मुकाबले अन्ततः ज्यादा प्रभावकारी साबित होगी जो जल्दी ही टूट जाये।

यह ज्यादासे-ज्यादा समयतक कायम रखी जा सकनेवाली स्थिति, जिसकी कि हम आम आदमीसे अपेक्षा कर सकते है, सम्भवतः यह है:

१. जापानियों द्वारा कोई भूमि, मकान या चल सम्पत्ति अधिगृहीत किये जाने का दृढ़तापूर्वक और पूरे अहिंसात्मक ढंगसे प्रतिरोध करें।

२. जापानियोंके लिए कोई बेगार न करें।

३. जापानियोंके मातहत कोई प्रशासनिक सेवा न करें। (कुछ किस्मके शहरी लोगों, अवसरवादी सरकारी कर्मचारियों और अन्य हिस्सोंसे लाये गये भारतीयोंके मामलेमें इस चीजको रोक सकना कठिन हो सकता है।)

४. जापानियोंसे कोई चीज न खरीदी जाये।

५. उनकी मुद्रा और अपना राज जमाने की उनकी किसी कोशिशको अस्वीकार किया जाये। (कार्यकर्त्ताओंकी कमी और समयकी कमी इस कार्यको बहुत कठिन बना रही है। हमें बाढ़को किसी-न-किसी तरह रोकना है।)

अब उन कठिनाइयों और प्रश्नोंको लें जो पैदा होते हैं:

१. जापानी लोग मजदूरों, खाद्य पदार्थों और अन्य सामग्रीकी कीमत ब्रिटिश मुद्राके जरिये अदा करना चाहें तो वैसी स्थितिमें क्या लोगोंको अच्छी कीमतपर चीजें बेचने से इनकार कर देना चाहिए या अच्छी मजदूरी मिलने पर भी काम करने से इनकार कर देना चाहिए? कई महीने खिचनेवाले लम्बे प्रतिरोधकी दृष्टिसे इस चीजको रोक सकना शायद कठिन होगा। जबतक वे खरीदने और जापानियोंकी "सेवा" लेने से इनकार करते रहेंगे तबतक शोषणका खतरा टला रहेगा।

२. जिन पुलों, नहरों आदिको अंग्रेज बारूदसे उड़ा देंगे उनके पुर्ननिर्माणके बारेमें क्या किया जायेगा? पुलों और नहरोंकी जरूरत तो हमें भी होगी। तो क्या हम इनको फिरसे बनाने का काम उठा लें, भले ही इसका मतलब जापानियोंके साथ मिलकर काम करना हो, अथवा हमें जापानी पुल-निर्माताओंके आने पर अलग हट जाना चाहिए?

३. जो भारतीय सैनिक सिंगापुर और बर्मामें बन्दी बना लिये गये थे, यदि वे जापानी आक्रामक सेनाके साथ उतरते हैं, तो उनके प्रति हमारा रवैया क्या होना चाहिए? क्या हमें उनके प्रति वैसा ही तटस्थताका भाव रखना है जैसा कि जापानियोंके साथ होगा, या क्या हमें उन्हें अपने पक्षमें करने की कोशिश करनी चाहिए?

४. (बढ़ते हुए जापानियोंके सामनेसे) ब्रिटिश राजके पीछे खिसकने के बाद हम मुद्राके बारेमें क्या करेंगे?

५. मुठभेड़ें हो चुकने के बाद और जापानी सेनाके आगे बढ़ जाने के बाद रण-भूमि मृतकों और घायलोंसे भरी हुई होगी। मेरा ख्याल है कि मृतकोंको जलाने और दफनाने तथा घायलोंको उठाने और उनकी सेवा करने के काममें हमें बिना हिचक जापानियोंके साथ-साथ काम करना चाहिए। जापानी लोग शायद अपने मामूली तौरपर घायल लोगोंकी देख-भाल करेंगे और शत्रु पक्षके मामूली तौरपर घायल लोगोंको बन्दी बना लेंगे, लेकिन [गम्भीर रूपसे] घायलोंको वे शायद छोड़ जायेंगे, और इन लोगोंकी सेवा करना हमारा पवित्र कर्त्तव्य होगा। इसके लिए हम अभीसे स्थानीय डाक्टरोंके निरीक्षणमें स्वयंसेवकोंको प्रशिक्षित करने की योजना बना रहे हैं। इन स्वयंसेवकोंकी सेवाएँ आन्तरिक उपद्रव होने, महामारी फैलने आदिकी स्थितिमें भी काममें लाई जा सकती हैं।

६. समर-भूमिमें मृतकों और घायलोंके अलावा बहुत सारी राइफलें, रिवाल्वर और अन्य छोटे हथियार भी शायद पड़े रह जायें, जिन्हें जापानी लोग न उठायें। अगर इन चीजोंको उठाकर इकट्ठा करने की तरफ हम ध्यान नहीं देंगे तो ये हथियार डाकुओं, चोरों और बदमाशोंके हाथोंमें पड़ सकते हैं, जो लड़ाईके बाद समर-भूमिमें लूटपाट करने के लिए बाजोंकी तरह झपट पड़ते हैं। भारत-जैसे निःशस्त्र देशमें इसके कारण बहुत उत्पात हो सकते हैं। इस प्रकारके अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा करने पर हम उनका क्या करें? मेरी सहज बुद्धि तो कहती है कि हम उन्हें ले जाकर समुद्रमें फेंक दें। कृपया हमें बतायें कि आपकी क्या सलाह है।

(जे) ऊपर उद्धृत पत्रका मेरा उत्तर[1]

सेवाग्राम, बरास्ता वर्धा
३१ मई, १९४२

तुम्हारा बहुत ही पूर्ण और ज्ञानप्रद पत्र मिला। भेंटकी रिपोर्ट अनिंद्य है और तुम्हारे उत्तर सीधे, स्पष्ट और साहसपूर्ण थे। ऐसा कुछ नहीं है जिसकी मैं आलोचना करूँ। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि 'जो कर रही हो किये जाओ'। मैं यह बिलकुल समझ रहा हूँ कि तुम ठीक वक्तपर ठीक जगह गई हो। इसलिए मैं और कुछ न करके सीधे तुम्हारे प्रश्नोंपर ही आऊँगा। प्रश्न सब अच्छे और उपयुक्त हैं।

(१) मेरे ख्यालसे हमें लोगोंको बता देना चाहिए कि उन्हें क्या करना है। वे अपनी शक्तिके अनुसार करेंगे। अगर हम उनकी शक्तिका अन्दाज लगाकर उसके अनुसार निर्देश देंगे, तो हमारे निर्देश दुविधापूर्ण और हमारे आदर्शसे हटकर होंगे। ऐसे वे हरगिज नहीं होने चाहिए। इसलिए तुम मेरी हिदायतोंको इस दृष्टिसे पढ़ना। याद रखो कि हमारा रवैया जापानी सेनाके साथ पूर्ण असहयोगका है। इसलिए हमें उन्हें किसी तरहकी कोई मदद नहीं देनी चाहिए और न उनसे लेन-देन करके फायदा उठाना चाहिए। इसलिए हम उन्हें कोई चीज बेच नहीं सकते। अगर लोग जापानी सेनाका सामना करने में असमर्थ होंगे, तो वे वही करेंगे जो सशस्त्र सैनिक करते हैं, यानी जब अधिक शक्ति देखेंगे तो पीछे हट जायेंगे। और अगर वे ऐसा करते हैं तो जापानियोंके साथ किसी लेन-देनका सवाल ही नहीं उठता और उठना भी नहीं चाहिए। लेकिन अगर लोगोंमें जापानियोंका मरते दमतक मुकाबला करने की हिम्मत नहीं है और जापानियोंका जिस प्रदेशपर आक्रमण हो उसे खाली करने का साहस और सामर्थ्य भी नहीं है, तो वे इन हिदायतोंको ध्यानमें रखकर जो-कुछ उनसे हो सकता है सो करेंगे। एक बात उन्हें कभी नहीं करनी चाहिए — यानी खुशीसे जापानियोंकी बात मानना। यह कायरताका काम होगा और स्वतन्त्रता-प्रेमी लोगोंको शोभा नहीं देगा। उन्हें एक आगसे बचने के लिए दूसरी आगमें, जो शायद अधिक भयंकर होगी, नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए उनका रवैया तो सदा जापानियोंका विरोध करना ही होना चाहिए। इसलिए ब्रिटिश नोट या जापानी सिक्के स्वीकार करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। वे जापानियोंकी किसी चीजको हाथ नहीं लगायेंगे। जहाँतक हमारे अपने ही लोगोंके साथ लेन-देनका प्रश्न है, वे या तो चीजोंकी अदला-बदली करेंगे या जो ब्रिटिश सिक्के उनके पास होंगे उन्हें काममें लेंगे। वे यह आशा रखेंगे कि जो राष्ट्रीय सरकार ब्रिटिश सरकारका स्थान ले सकती है, वह अपनी शक्तिके अनुसार लोगोंसे सारे ब्रिटिश सिक्के स्वीकार कर लेगी।

२. पुल बनाने में सहयोग देने के सवालका जवाब उपर्युक्तमें आ जाता है। इस तरहके सहयोगका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

३. अगर भारतीय सैनिकोंका हमारे लोगोंसे सम्पर्क हो और उनका सद्भाव हो, तो हमें उनसे भाईचारेका बरताव करना चाहिए और उनसे यथासम्भव राष्ट्रका

1. देखिए खण्ड ७६, पृ० १९१-९३ भी।

साथ देने को कहना चाहिए। सम्भवतः उन्हें यह वचन देकर लाया गया है कि वे देशको विदेशी जुएसे छुड़ाएँगे। विदेशी जुआ नहीं रहेगा तो उनसे आशा रखी जायेगी कि वे जनताके मित्र बनें और ब्रिटिश सरकारकी जगह जो राष्ट्रीय सरकार कायम हो उसकी आज्ञा मानें। अगर अंग्रेज भारतीयोंके हाथोंमें सब-कुछ छोड़कर व्यवस्थित ढंगसे चले जायेंगे, तो सारी बातें खूबीके साथ हो सकेंगी और जापानियोंके लिए भारत या उसके किसी भी हिस्सेमें शान्तिसे जमकर बैठना कठिन हो सकता है; क्योंकि उनका वास्ता ऐसी आबादीसे पड़ेगा, जो दिलमें नाराज और मुकाबलेके लिए तैयार होगी। क्या-क्या हो सकता है, यह कहना कठिन है। अगर लोगोंको प्रतिरोधकी शक्ति जगाने की शिक्षा दे दी जाये, तो वह काफी होगा। भले ही सत्ता जापानियोंकी हो या अंग्रेजोंकी।

४. इसका जवाब (१)में आ गया है।

५. सम्भव है ऐसा अवसर ही न आये, पर अगर आया तो सहयोग किया जा सकता है और वह जरूरी भी होगा।

६. रास्तेमें पड़े पाये गये शस्त्रास्त्रके बारेमें तुम्हारा उत्तर अत्यन्त आकर्षक और पूरी तरह तर्कसंगत है। इसके अनुसार बरता जा सकता है। परन्तु यह कल्पना भी की जा सकती है कि वे भले आदमियोंको मिल जायें और ऐसे लोग सम्भव हो तो उन्हें सुरक्षित स्थानपर जमा रखें। अगर उन्हें जमा करके रखना और शरारती लोगोंसे बचाये रखना असम्भव हो, तो तुम्हारी योजना आदर्श है।

(के) मेरे अन्दर धधकती आग[1]

कुछ दिन हुए एक पत्रकार यहाँ आये हुए थे। . . . वे अपने प्रान्तकी घटनाओंका खूब वर्णन कर रहे थे। . . .

उन्होंने अपने प्रान्तके लोगोंकी भावनाका जिक्र किया और बोले: "जापानके प्रति पक्षपातके मुकाबले लोगोंमें ब्रिटिश-विरोधी भाव ज्यादा है। लोग अस्पष्ट रूपसे यह सोचने लगे हैं कि यह हुकूमत तो हम बहुत देख चुके हैं, और मौजूदा हालतकी अपेक्षा दूसरी कोई भी हालत अच्छी होगी। जब लोग रेडियोपर सुभाष बाबूको यह कहते सुनते हैं कि आपमें और उनमें कोई मतभेद नहीं है और अब आप किसी भी कीमतपर देशकी आजादीके लिए लड़ने को कमर कस चुके हैं, तो उन्हें खुशी ही होती है।"

गांधीजी ने कहा: "लेकिन मेरा खयाल है कि आप यह जानते हैं कि सुभाष बाबूकी यह बात गलत है। वे मेरी जो प्रशंसा कर रहे हैं, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। 'किसी भी कीमतपर आजादी' का जो अर्थ वे करते हैं, मेरा अर्थ उससे बिलकुल ही भिन्न है। मेरे कोशमें 'किसी भी कीमत' शब्दोंके लिए कोई स्थान नहीं है। उदाहरणके लिए, मैं इसका यह मतलब हरगिज नहीं करता कि अपनी आजादी हासिल करने के लिए, हम विदेशियोंको देशमें लायें और उनकी मदद लें।

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३६६-६८ भी।

मुझे इसमें कोई शक नहीं कि इसका मतलब एक तरहकी गुलामीके बदले दूसरी तरहकी गुलामीको अपनाना है, जो शायद पहलीसे भी बदतर हो। लेकिन निःसन्देह हमें अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड़ना है, और उसके लिए जो भी कुरबानी करनी पड़े, करनी है। अमेरिका और ब्रिटेनके तमाम अनुप्रेरित अखबारोंने जिस पाखण्डका परिचय दिया है, उसके बावजूद मैं अपनी बातपर मजबूतीसे डटा हुआ हूँ। यहाँ पाखण्ड शब्दका उपयोग मैं जान-बूझकर कर रहा हूँ। क्योंकि अब वे यह साबित कर रहे हैं कि हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताकी जो बातें वे किया करते थे, वे सिर्फ बातें ही थीं। जहाँतक मेरा सवाल है, मुझे अपने कार्यके औचित्यमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है। मुझे तो यह स्वयंसिद्ध-सा मालूम होता है कि अगर मित्र-राष्ट्रोंने हिन्दुस्तानके साथ यह प्राथमिक न्याय नहीं किया, और इस तरह अपने पक्षको नितान्त निर्दोष नहीं बना लिया, तो वे इस बार हारे बिना नहीं रहेंगे। अगर वे यह न्याय नहीं करते, तो उन्हें उन लोगोंके विरोधका सामना करना ही होगा जो अब उनकी हुकूमतको बरदाश्त नहीं कर सकते, और उससे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए मरने को भी तैयार हैं। यह एक स्वर्णसूत्र है कि 'बढ़ते हुए द्वेष-भावको सद्भावमें बदल दो'। उन्हें यह कहने का कोई हक नहीं कि चूँकि युद्ध चल रहा है, इसलिए हमें अपनी अन्तरात्माका गला घोंट देना चाहिए और चुपचाप हाथपर-हाथ धरे बैठे रहना चाहिए। यही वजह है कि मैंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया है कि ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ अहिंसक विद्रोह करते हुए यदि देशके लाख-दस लाख आदमी बहादुरीके साथ गोलीके शिकार भी बन जायें, तो वह अच्छा ही होगा। हो सकता है कि उस अराजकतामें से सुव्यवस्था पैदा करने में हमें बरसों लग जायें। लेकिन तब हम दुनियाको मुँह दिखा सकेंगे, आज तो हम उसे अपना मुँह भी नहीं दिखा सकते। निश्चय ही सभी राष्ट्र अपनी-अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं। जर्मनी, जापान, रूस, चीन पानीकी तरह अपना खून और पैसा बहा रहे हैं। लेकिन 'हमारा' क्या हाल है? आप कहते हैं कि अखबारवाले लड़ाईके कारण खूब कमा रहे हैं। इस तरह सरकारके दबावमें आकर अपने मुँहपर ताला लगा लेना और उसके हाथों बिक जाना शर्मकी बात है। ईमानदारीके साथ रोटी कमाने के बहुत-से तरीके हैं। अगर अंग्रेजोंका पैसा, जो कि हमारा ही पैसा है, हमें इस तरह खरीद सकता है, तो फिर भगवान ही इस देशका मालिक है! . . .

"जब सुभाष बाबू मेरे कामको ठीक बताते हैं, तो मैं उससे फूल नहीं उठता। जिस अर्थमें वे ऐसा कहते हैं, उस अर्थमें वह ठीक नहीं है। क्योंकि वे मुझपर जापानका प्रेमी होने की भावना मढ़ रहे हैं। अगर किसी तरह मुझे यह मालूम हो जाये कि किसी गलत अन्दाजमें फँसकर मैं यह नहीं समझ पाया था कि मैं जापानियोंको हिन्दुस्तानमें घुसने के काममें मदद पहुँचा रहा हूँ, तो मैं अपने कदम पीछे हटाने में जरा भी नहीं झिझकूँगा। जहाँतक जापानियोंका सम्बन्ध है, मैं निश्चित रूपसे यह मानता हूँ कि हमें अपनी जान देकर भी उनका विरोध करना चाहिए — उसी तरह जिस तरह कि हम अंग्रेजोंका विरोध करना चाहते हैं।

"लेकिन यह आदमीका काम न होगा। यह तो एक ऐसी अदृश्य और असीम शक्तिका काम होगा, जो अक्सर हमारी सारी योजनाओंको उलटकर अपना काम करती है। मैं पूर्ण श्रद्धाके साथ उसीपर भरोसा रखता हूँ। अन्यथा इन झल्लाहट पैदा करनेवाली टीकाओंकी झड़ीके सामने मैं तो पागल हो गया होता। ये टीकाकार मेरे मनकी व्यथाको नहीं जानते, और मैं भी शायद मरकर ही उसे व्यक्त कर सकता हूँ।"

गांधीजी ने इन पत्रकार मित्रसे कहा कि क्या इन उद्‌गारोंके बाद किसीको तनिक भी यह शंका हो सकती है कि ब्रिटेनको पराजित देखने के लिए और हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश सत्ताको मिटाने के लिए मैं धुरी-राष्ट्रोंकी विजय चाहता हूँ? अगर उनके दिलमें ऐसा कोई खयाल हो, तो उसे बिलकुल मिटा दें।

"ब्रिटिश सत्ताका नाश जापान या जर्मनोंकी सशस्त्र सेनाओंपर निर्भर नहीं करता। अगर वह उनपर निर्भर करता है, तो उसमें गर्व करने की कोई बात नहीं है, अलबत्ता उस हालतमें सारी दुनियांपर एक अमंगलकी छाया छा जायेगी। लेकिन मेरी दृष्टिसे महत्त्वकी बात यह है कि अगर कोई बाहरसे आकर मेरे दुश्मनको खदेड़ देता है, तो उससे मुझे कोई सुख या गर्व नहीं हो सकता। उसमें मैंने किया ही क्या? ऐसी कोई चीज मुझमें उत्साह नहीं पैदा कर सकती। मैं तो उस सुखको लूटना चाहता हूँ, जो अपने घरमें घुसे हुए दुश्मनसे लड़ने के लिए आवश्यक कुरबानी करने से प्राप्त होता है। अगर मुझमें वह ताकत नहीं है, तो मैं दूसरेको घरमें आने से रोक नहीं सकता। अतः मेरे लिए यह जरूरी है कि मैं नये दुश्मनको अन्दर आने से रोकने के लिए कोई बीचका रास्ता ढूंढ़ लूं। मुझे विश्वास है कि ईश्वर उस मार्गकी प्राप्तिमें मेरी मदद करेगा।

"मुझे ईमानदारीसे की गई कड़ी और स्वस्थ आलोचना बुरी नहीं लगती। लेकिन जिस तरहकी बनावटी आलोचना आज मैं देख रहा हूँ, वह तो निरी मूर्खता है, जो मुझे आतंकित करने और कांग्रेसजनोंकी हिम्मत तोड़ने के लिए अपनाई गई है। यह एक गन्दा खेल है। वे नहीं जानते कि मेरे अन्दर कैसी आग धधक रही है। अपने मान-अपमानके बारेमें मेरे मनमें भ्रम नहीं है। किसी निजी हेतुसे प्रेरित होकर मैं ऐसा कोई काम कभी कर ही नहीं सकता जिसके विषयमें मैं निश्चयपूर्वक यह जानता हूँ कि उसके कारण सारा देश एक भीषण दावानलमें घिर जानेवाला है।" ('हरिजन', २-८-१९४२, पृ० २५७-८)।

(एल) पत्र: च्यांग काई-शेकको[1]

परिशिष्ट १ के अन्तर्गत दिये गये इन निम्नलिखित शीर्षकोंमें भी इसी विषयकी और चर्चा उपलब्ध है।

(बी) जन-सम्पर्कसे दूर
(सी) "मैं जापानियोंके पक्षमें नहीं हूँ"
(ई) अंग्रेजोंके हट जाने का तात्पर्य

१. इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० २४७-५०।

(के) एक समस्या
(एल) एक भूल
(क्यू) अमेरिकी जनमतका रुख शायद विपरीत हो जाये
(आर) अमेरिकी मित्रोंसे
(एस) "कांग्रेसकी माँगका औचित्य"
,, "मौलाना आजादके वक्तव्यका हवाला"
,, "हील-हुज्जत करने की गुंजाइश नहीं"

परिशिष्ट ३

कांग्रेस सत्ता-लोलुप नहीं है

पिछले अनुच्छेदमें यह कहा गया है कि कांग्रेसका इरादा इस सरकारको अपने आधिपत्यमें रखने का था। इस धारणाकी पुष्टिमें मुस्लिम जनताकी इस सर्वसम्मत रायपर भी ध्यान दिलाया गया है कि कांग्रेसके इस कदमका लक्ष्य भारतपर कांग्रेस अर्थात् हिन्दू आधिपत्यकी स्थापना था। (अभियोग-पत्र, पृ० १२)।

(ए) ठीक नहीं[1]

प्र० : क्या हमारा यह सोचना ठीक है कि आप कांग्रेस और जनतासे यह आशा रखते हैं कि वह जल्दीसे-जल्दी देशका शासन अपने हाथमें लेने के योग्य हो जाये और पहला अवसर मिलते ही वैसा करे?

उ० : आपका सोचना ठीक नहीं है। कांग्रेसकी तरफसे तो मैं बोल नहीं सकता। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि कोई भी संस्था या व्यक्ति शासन अपने हाथमें लेने के योग्य बने। अहिंसक तरीकेमें तो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अहिंसामें सत्ता हाथमें लेने की बात नहीं रहती। लेकिन अगर जनता हमें सत्ता सौंपे तो उसका बोझ हमारे ऊपर आता है। अराजकताकी स्थितिमें तमाम उपद्रवी तत्त्व सत्तापर कब्जा करने की कोशिश करेंगे। परन्तु जो लोग जनताकी सेवा करना चाहते हैं, और अराजकतामें से शान्ति और व्यवस्था पैदा करना चाहते हैं, वे अराजकताको मिटाने में अपने-आपको होम देंगे। और अगर इसके बाद भी वे रहेंगे, तो हो सकता है कि लोकमत शासनकी बागडोर उनके सुपुर्द कर दे। परन्तु आपकी कल्पनामें और इस चीजमें जमीन-आसमानका फर्क है। जो लोग सत्ताको हथियाने की कोशिश करते हैं, वे आम तौरपर असफल रहते हैं।" ('हरिजन', ३१-५-१९४२, पृ० १७३)।

(बी) मुसलमानोंका क्या होगा?[2]

प्र० : लेकिन जैसा कि जिन्ना साहब कहते हैं, अगर मुसलमानोंको हिन्दुओंका शासन मंजूर न हो, तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तानका क्या अर्थ रह जायेगा?

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० १४७-४८ भी।
२. देखिए खण्ड ७६, पृ० २१७-१८ भी।

उ० : मैं ब्रिटेनसे यह नहीं कहता कि वह हिन्दुस्तानको कांग्रेसके या हिन्दुओंके हाथोंमें सौंपकर जाये। वे उसे भगवानके भरोसे छोड़ जायें, अथवा, आजकलकी भाषामें कहें तो, अराजकताके हाथोंमें छोड़ जायें। फिर या तो सभी दल आपसमें कुत्तोंकी तरह लड़ेंगे, या जब देखेंगे कि जिम्मेदारी सचमुच ही उनके सिर आ पड़ी है, तो युक्तियुक्त समझौतेका कोई रास्ता निकाल लेंगे। मैं आशा रखता हूँ कि उस अराजकतामें से अहिंसाका उदय होगा। ('हरिजन', १४-६-१९४२, पृ० १८७)।

(सी) मुसलमान पत्र-लेखकोंसे[1]

. . . मैं सोचता हूँ कि चाहे सारे नहीं लेकिन अगर एक बड़ी तादादमें भी लोग अपने हिस्से आनेवाली किसी भी कुरबानीके लिए तैयार हो जायें, तो अंग्रेज शासकों पर उसका यह असर तो पड़ेगा ही कि अब वे हिन्दुस्तानको अपना गुलाम नहीं रख सकते। मैं यह भी मानता हूँ कि इतनी तादादमें लोग हमें मिल जायेंगे। यह कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे लोगोंका अपना विश्वास कुछ भी क्यों न हो, पर उन्हें अपना व्यवहार अहिंसक रखना होगा। फौजी आदमीको भी अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्रायः अपने विश्वासके विरुद्ध चलना पड़ता है। इस संग्रामकी कल्पना समूचे हिन्दुस्तानके हितको ध्यानमें रखकर की गई है। इसमें शामिल होकर लड़नेवालों को उतना ही लाभ होगा जितना कि एक गरीबसे-गरीब भारतीयको हो सकता है— उससे ज्यादा नहीं। ये लोग सत्ताको हथियाने के लिए नहीं, बल्कि विदेशी प्रभुत्वको समाप्त करने के लिए लड़ेंगे—फिर चाहे उसके लिए उन्हें कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े। . . .

हो सकता है कि कांग्रेस और लीग, जो देशकी सबसे ज्यादा संगठित संस्थाएँ हैं, आपसमें समझौता कर लें और एक ऐसी अस्थायी सरकार कायम करें जो सबको मंजूर हो। और इसके बाद विधिवत निर्वाचित संविधान-सभा अस्तित्वमें आ जाये। ('हरिजन', १२-७-१९४२, पृ० २२०)।

(डी) एक मौजूँ सवाल[2]

(ई) सच हो तो अशोभनीय[3]

. . . हिन्दुस्तान उन सब लोगोंका है जो यहाँ पैदा हुए और पले हैं और जो दूसरे किसी मुल्कका आसरा नहीं तक सकते। इसलिए वह जितना हिन्दुओंका है उतना ही पारसियों, यहूदियों, हिन्दुस्तानी ईसाइयों, मुसलमानों और दूसरे गैर-हिन्दुओंका भी है। आजाद हिन्दुस्तानमें राज हिन्दुओंका नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियोंका होगा, और वह किसी धार्मिक पंथ या सम्प्रदायके बहुमतपर नहीं, बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभावके निर्वाचित समूची जनताके प्रतिनिधियोंपर आधारित होगा। मैं एक ऐसे मिले-जुले बहुमतकी कल्पना कर सकता हूँ जो हिन्दुओंको अल्पमत बना दे। वे

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३०८-९ भी।
२. इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ३९५-९६।
३. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४४४-४५ भी।

प्रतिनिधि अपनी सेवा और योग्यताके आधारपर ही चुने जायेंगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीतिमें कोई स्थान नहीं होना चाहिए। विदेशी हुकूमतकी वजह से देशमें जो अस्वाभाविक परिस्थिति पैदा हो गई है उसीकी बदौलत हमारे यहाँ धर्मके अनुसार इतने अस्वाभाविक विभाग हो गये हैं। जब देशसे विदेशी हुकूमत उठ जायेगी, तो हम इन झूठे नारों और आदर्शोंसे चिपके रहनेकी अपनी इस बेवकूफीपर खुद ही हँसेंगे।

जिस भाषणका जिक्र है, वह निश्चय ही बेहूदा है। अंग्रेजोंको "निकाल बाहर करने"का कोई सवाल ही नहीं है। जबतक हमारे पास उनसे भी बढ़ी-चढ़ी हिंसक ताकत न हो, हम उन्हें देशसे निकाल नहीं सकते। अगर मुसलमान हिन्दुओंके अधीन रहना मंजूर न करें, तो उन्हें मार डालनेका खयाल पुराने जमानेमें चाहे सही रहा हो, आज तो वह बिलकुल बेमानी है। अगर अंग्रेजोंकी जगह देशमें हिन्दुओंकी या दूसरे किसी सम्प्रदायकी हुकूमत ही कायम होनेवाली हो तो अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेकी पुकारमें कोई बल नहीं रह जाता। वह स्वराज्य नहीं होगा। स्वराज्यका मतलब तो जरूरी तौरपर यही है कि उसमें आजाद और अक्लमन्द लोग अपना राज खुद अपनी मर्जीसे चलायें। मैंने 'अक्लमन्द' शब्दका इस्तेमाल इसलिए किया है कि मुझे उम्मीद है कि आजाद हिन्दुस्तान मुख्यतः अहिंसक होगा। ('हरिजन', ९-८-१९४२, पृ० २६१)।

परिशिष्ट १ के निम्नलिखित शीर्षकोंमें भी इसी विषयपर और चर्चा उपलब्ध है :

(एफ) "हट जाने"का मतलब

(जी) उनके हट जाने पर ही

(पी) "समझौतेकी बातचीत"

,, "भावी सरकारका स्वरूप"

(एस) "मौलाना आजादके वक्तव्यका हवाला"

,, "हील-हुज्जत करनेकी गुंजाइश नहीं"

परिशिष्ट ४

अहिंसाके सम्बन्धमें

श्री गांधीको मालूम था कि भारतमें प्रारम्भ किया गया कोई भी जन-आन्दोलन एक हिंसापूर्ण आन्दोलन होगा। (अभियोग-पत्र, पृ० ३९)।

(ए) कार्य-साधकता[1]

(बी) अहिंसक असहयोग[2]

प्र० : सुना गया है कि आपने अहिंसक असहयोग द्वारा हिन्दुस्तानकी विदेशी आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए कोई नई योजना तैयार की है, जिसे आप 'हरिजन'के

१. इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० १३।

२. देखिए खण्ड ७६, पृ० १२४-२५ भी।

किसी लेखमें प्रकट करना चाहते हैं। क्या आप हमें उसके बारेमें कुछ बता सकेंगे?

उ० : आपको गलत खबर मिली है। मेरे मनमें कोई योजना नहीं है। अगर होती, तो उसे आपके सामने जरूर रखता। परन्तु मुझे लगता है कि शुद्ध अहिंसक असहयोगकी आवश्यकताके सम्बन्धमें जो-कुछ मैं पहले कह चुका हूँ, उसके बाद कुछ भी कहने को नहीं रहता। अगर सारा हिन्दुस्तान साथ दे और एक होकर असहयोग करे, तो मैं यह दिखा सकता हूँ कि रक्तकी एक बूंद भी गिराये बिना जापानी शस्त्रबलको — या किसी भी संयुक्त शस्त्रबलको — बेकार बनाया जा सकता है। इसके लिए शर्त यह है कि हिन्दुस्तान किसी भी हालतमें, रंचमात्र भी, अपने संकल्पसे न हटनेका दृढ़ निश्चय कर ले और लाखों मनुष्योंकी आहुति देनेको तैयार रहे। लेकिन मेरी दृष्टिमें यह एक सस्ता सौदा होगा, और इस कीमतपर हासिल की हुई जीत शानदार जीत होगी। हो सकता है, यह सच हो कि शायद हिन्दुस्तान इतनी कीमत देनेको तैयार न हो। मुझे आशा है कि यह सच नहीं है; लेकिन किसी भी देशको, जो अपनी आजादी कायम रखना चाहता है, इस तरहकी कोई कीमत तो देनी ही होगी। रूसियों और चीनियोंने जो कुरबानी दी है, वह बहुत बड़ी है, और वे अपना सर्वस्व तक स्वाहा करनेको तैयार हैं। यही बात दूसरे देशोंके बारेमें भी कही जा सकती है, फिर चाहे वे चढ़ाई करनेवाले हों या आत्म-रक्षा करनेवाले। उन्हें भारी कीमत देनी पड़ रही है। इसलिए हिन्दुस्तानके सामने अहिंसक तरीका रखकर मैं उसे उससे बढ़कर कोई जोखिम उठानेको नहीं कह रहा, जो दूसरे देश आज उठा रहे हैं, या जो हिन्दुस्तानको, अगर वह सशस्त्र विरोध करता, तो उठानी पड़ती।

प्र० : "परन्तु विशुद्ध अहिंसक असहयोग" अंग्रेजी सल्तनतके आगे सफल नहीं हुआ, तो नये आक्रमणकारीके सामने वह कैसे सफल होगा?

उ० : मैं आपके इस कथनका पूर्णतया खण्डन करता हूँ। मुझे अभीतक किसीने यह नहीं कहा कि विशुद्ध अहिंसक असहयोग असफल रहा है। हाँ, यह सच है कि ऐसा असहयोग किया नहीं गया। इसलिए आप यह कह सकते हैं कि जो अबतक किया नहीं गया वह हिन्दुस्तानपर जापानी चढ़ाई होनेपर एकाएक किया भी नहीं जा सकेगा। मैं तो यही उम्मीद करूँगा कि जब सचमुच खतरा सामने आ जायेगा, तब हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोगके लिए आजसे ज्यादा तैयार मिलेगा। शायद हिन्दुस्तान बहुत वर्षोंसे अंग्रेजी हुकूमतका इतना आदी हो गया है कि भारतीय मानस या भारतकी जनताको जितना किसी नई सत्ताका आना चुभेगा, उतना मौजूदा सरकारका रहना नहीं चुभता। लेकिन आपने सवाल अच्छा पूछा है। सम्भव है कि मौका आने पर हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोग न कर सके। परन्तु ठीक यही शंका सशस्त्र प्रतिरोधके बारेमें भी उठाई जा सकती है। इस किस्मके कई प्रयत्न किये जा चुके हैं, और वे असफल रहे हैं। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि यह जापानियोंके सामने भी असफल रहेगा। इससे हम इस बेहूदे नतीजेपर पहुँचते हैं कि

हिन्दुस्तान कभी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तैयार ही नहीं होगा। लेकिन चूँकि मैं इस बातको मानने के लिए तैयार नहीं हूँ, इसलिए जबतक हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोग के आह्वानपर अमल करने को तैयार नहीं हो जाता तबतक मैं तो बार-बार प्रयत्न करता रहूँगा। लेकिन अगर वह इस आह्वानपर अमल न करे तो फिर यह जरूरी है कि वह हिंसक तरीकेपर चलनेवाले किसी नेता या संगठनके आह्वानपर अमल करे। उदाहरणके लिए, आज हिन्दू महासभा हिन्दुओंके मानसको सशस्त्र युद्धके लिए तैयार कर रही है। देखना है कि उसका यह प्रयत्न सफल होता है या नहीं। मैं तो नही मानता कि वह सफल होगा।" ('हरिजन', २४-५-१९४२, पृ० १६७)।

(सी) सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति[1]

प्र० : क्या आप जनताको सलाह देंगे कि वह अहिंसक असहयोग द्वारा सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिका विरोध करे? अन्न और पानीके साधनोंको नष्ट करने की कोशिश का क्या आप विरोध करेंगे?

उ० : हाँ, ऐसा वक्त आ सकता है, जब मैं इस तरहका विरोध करने की सलाह अवश्य दूँ; क्योंकि मैं ऐसी कार्रवाईको विनाशक, आत्मघातक और अनावश्यक मानता हूँ — फिर चाहे हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोगमें विश्वास रखता हो, चाहे हिंसा में। रूस और चीनके उदाहरणका मुझपर कोई असर नहीं होता। जिन तरीकोंको मैं अमानुषिक समझता हूँ उनकी नकल मुझे महज इसलिए नहीं करनी चाहिए कि दूसरे देशोंने वैसा किया है। अगर मुझे अपनी फसल इसलिए छोड़नी पड़ती है कि मैं उसकी रक्षा नहीं कर सकता या करने को तैयार नहीं हूँ, और दुश्मन आकर उसे इस्तेमाल करता है, तो मुझे वह सह लेना चाहिए। इसके समर्थनमें हमारे पास एक अच्छा दृष्टान्त भी है। एक सज्जनने मुझे इस्लामी साहित्यका एक अवतरण भेजा था, जिसमें बताया गया है कि किस तरह खलीफाने मुस्लिम फौजोंको सख्त ताकीद दी थी कि वे उपयोगी सेवाओंको नष्ट न करें और न बूढ़ों, स्त्रियों या बच्चोंको सतायें। इन मानवतापूर्ण आदेशोंके पालनके कारण इस्लामकी फौजोंका कोई नुकसान तो नहीं हुआ।

प्र० : लेकिन कारखानों, और खासकर युद्ध-सामग्री तैयार करनेवाले कारखानोंके बारेमें आप क्या कहते हैं?

उ० : अगर ये कारखाने आटा पीसने या तेल पेरने के हों, तब तो मैं उन्हें नष्ट नहीं करूँगा। लेकिन अगर युद्ध-सामग्रीके हों तो उन्हें नष्ट करूँगा, क्योंकि अगर मेरी चली तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तानमें मैं उन्हें बर्दाश्त नहीं करूँगा। कपड़ेकी मिलोंको मैं नष्ट नहीं करूँगा, और मैं इस तरहके सारे विनाशका विरोध करूँगा। लेकिन इस सवालका निर्णय तो हमें अपनी विवेकबुद्धि द्वारा ही करना होगा।

अंग्रेजोंके यहाँसे हट जाने की अपनी माँगके सम्बन्धमें मैंने अपनी सारी-की-सारी योजनाको इसी दम अमल में लाने की सलाह नहीं दी है। हाँ, मेरी कल्पनामें

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० १२५-२६ भी।

वह है तो सही। लेकिन यदि मुझे लोकमतको तैयार और शिक्षित करते रहने दिया गया, तो मैं यह दिखाने की कोशिश कर रहा हूँ कि मेरी इस माँगकी तहमें कोई द्वेष या वैरभाव नहीं है। मेरा सुझाव बिलकुल तर्कयुक्त है। इसमें सबका हित है और चूँकि इसमें शुद्ध मित्र-भाव ही है, इसलिए मैं बहुत सावधानीसे चल रहा हूँ, और फूंक-फूंककर हरएक कदम उठा रहा हूँ। मैं उतावलेपनमें कुछ नहीं करूँगा। परन्तु मेरे हरएक कामके पीछे मेरा यह दृढ़ निश्चय तो है ही कि अंग्रेजोंको यहाँसे अवश्य चले जाना चाहिए।

मैंने अराजकताका जिक्र किया है। मुझे अब यह विश्वास हो गया है कि हमारी आजकी हालत व्यवस्थित अराजकताकी है। आज जो शासन हिन्दुस्तानमें चल रहा है, उसे लोकहितकारी कहना भाषाका दुरुपयोग करना होगा। इसलिए यह व्यवस्थित और अनुशासित अराजकता खत्म होनी चाहिए, और अगर इसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानमें पूर्ण अव्यवस्था फैल जाती है, तो मैं उसका खतरा भी उठा लूंगा। वैसे मेरा यह विश्वास है, और मैं यह विश्वास करना चाहूँगा कि हिन्दुस्तानकी जनताको अहिंसक नीतिकी तालीम देने का हमारा पिछले २२ सालका सतत प्रयत्न व्यर्थ नहीं जायेगा, और अराजकतामें से जनता सच्ची जनवादी व्यवस्थाकी स्थापना कर सकेगी। इसलिए, अगर मैं देखूंगा कि मेरे सारे अच्छेसे-अच्छे प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं, तो मैं अवश्य ही लोगोंको यह सलाह दूंगा कि वे अपनी सम्पत्तिके विनाशका विरोध करें। ('हरिजन', २४-५-१९४२, पृ० १६७)।

(डी) स्वतन्त्र भारत क्या करेगा?[1]

गांधीजी बारम्बार कह चुके हैं कि अंग्रेजोंके व्यवस्थित रूपसे हट जाने से यह रुष्ट भारत उनका मित्र और सहायक बन जायेगा। इन अमेरिकी मित्रोंने अब उस सम्भव मैत्रीके निहितार्थोंको समझना चाहा और उन्होंने पूछा: "क्या स्वतन्त्र भारत जापानके खिलाफ लड़ाईका ऐलान करेगा?"

"स्वतन्त्र भारतको इसकी कोई जरूरत नहीं होगी। वह तो काफी पुराना ऋण चुका देने के बदलेमें कृतज्ञताकी भावनासे ही मित्र-राष्ट्रोंका साथी बन जायेगा। बाकी मनुष्यका स्वभाव कुछ ऐसा है कि कर्जदार जब उसका कर्ज अदा कर देता है, तो वह उसमें भी कृतज्ञताका अनुभव करता है।"

"लेकिन तब इस मित्रताके साथ भारतकी अहिंसाका मेल कैसे बैठेगा?"

"यह एक अच्छा सवाल है। आज समूचा भारत अहिंसक नहीं है। अगर समूचा भारत अहिंसक होता, तो न मुझे ब्रिटेनसे अपील करनी होती, न जापानके हमलेका ही डर होता। लेकिन मेरी अहिंसाके माननेवाले शायद मुट्ठी-भर ही हैं, या शायद वे करोड़ों मूक लोग हैं, जो स्वभाव ही से अहिंसक हैं। लेकिन उनके बारेमें भी यह पूछा जा सकता है कि उन्होंने आखिर कर क्या दिखाया?" मैं कबूल करता हूँ कि करके तो कुछ भी नहीं दिखाया। लेकिन हो सकता है कि जब कड़ी कसौटी

१. देखिए खण्ड ७९, पृ० २१७ भी।

का समय आये, तो वे कुछ कर दिखायें, शायद न भी दिखा सकें। अंग्रेजोंके सामने रखने के लिए करोड़ोंकी अहिंसा तो मेरे पास है नहीं। और जो-कुछ हमारे पास है, उसे अंग्रेजोंने कमजोरोंकी अहिंसा कहकर नगण्य बना दिया है। इसलिए मैंने शुद्ध न्यायके बलपर ही अंग्रेजोंसे यह माँग की है, जिससे कि वह उनके हृदयमें गूँज पैदा कर सके। यह माँग नैतिक स्तरपर की गई है। भौतिक क्षेत्रमें तो ब्रिटेनने न जाने कितनी बार बिना झिझक साहसके काम किये हैं और बड़े-बड़े खतरे उठाये हैं। एक बार वह नैतिक क्षेत्रमें भी दुःसाहससे काम ले और हिन्दुस्तानकी माँगका विचार किये बिना आज ही उसे स्वतन्त्र घोषित कर दे।" ('हरिजन', १४-६-१९४२, पृ० १८७)।

(ई) एक चुनौती[1]

सचाई यह है कि अहिंसा ठीक उसी तरह काम नहीं करती जिस तरह हिंसा करती है। उसका तरीका उलटा है। सशस्त्र आदमी स्वभावतः अपने शस्त्रों पर भरोसा रखता है। जो मनुष्य जान-बूझकर निःशस्त्र बन जाता है, वह उस अदृश्य शक्तिपर भरोसा रखता है जिसे कवि 'ईश्वर' और वैज्ञानिक 'अज्ञात' कहते हैं। लेकिन 'अज्ञात' का अर्थ 'अस्तित्वहीन' ही हो यह जरूरी नहीं है। सभी ज्ञात और अज्ञात शक्तियोंका आधार ईश्वर है। जिस अहिंसाका इस आधारभूत शक्तिमें विश्वास नहीं वह अहिंसा कूड़े-करकटकी तरह निकम्मी चीज है।

मुझे आशा है कि आलोचक सज्जन अपने प्रश्नमें निहित भूलको अब समझ सकेंगे, और साथ ही यह भी अनुभव करेंगे कि जिस सिद्धान्तने मेरे जीवनका मार्गदर्शन किया है, वह निष्क्रियताका नहीं, बल्कि अतिशय क्रियाशीलताका सिद्धान्त है। दरअसल तो उन्हें अपना सवाल इन शब्दोंमें रखना चाहिए था:

'आप बाईस वर्षोंसे अधिक समयसे हिन्दुस्तानमें काम कर रहे हैं, फिर भी क्या वजह है कि अबतक काफी तादादमें ऐसे सत्याग्रही नहीं हैं जो बाहरी और भीतरी संकटोंका सामना कर सकें?' इसके जवाबमें मैं यह कहूँगा कि एक राष्ट्रको अहिंसक शक्तिके विकासकी तालीम देने के लिए बाईस सालका समय कुछ भी नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि उचित अवसर आने पर बहुत-सारे लोग इस शक्तिका परिचय नहीं देंगे। वह अवसर अब आया प्रतीत होता है। इस युद्धमें सैनिकोंके साथ आम जनताकी और हिंसाके साथ अहिंसाकी भी समान रूपसे परीक्षा हो रही है। ('हरिजन', २८-६-१९४२, पृ० २०१)।

(एफ) [अ० भा० चरखा संघ और इसी तरहकी अन्य संस्थाएँ][2]

. . . इसलिए सर्वश्रेष्ठ नियम तो यही है कि हर कीमतपर जो सही हो वही करने की हिम्मत की जाये। लेकिन इसमें किसी प्रकारका छद्मावरण, गोपनीयता, छलकपट नहीं होना चाहिए। . . . ('हरिजन', १२-७-१९४२, पृ० २२७)।

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० २५७ भी।
२. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३११।

(जी) गुरु गोविन्दसिंह[1]

. . . पर जहाँतक उनके युद्ध-सम्बन्धी विश्वासका सम्बन्ध है, वे (गुरु गोविन्दसिंह, लेनिन, कमाल पाशा इत्यादि) मुझ-जैसे एक निष्ठावान अहिंसाधर्मीके जीवनमें मार्गदर्शक नहीं हो सकते। कृष्णको मैं शायद इन लेखकसे भी ज्यादा मानता हूँ। पर मेरा कृष्ण जगन्नायक, अखिल विश्वका स्रष्टा, संरक्षक और संहारक है। वह संहार भी कर सकता है, क्योंकि वह उत्पत्ति करता है। पर मित्रोंके साथ यहाँ मैं अवश्य ही किसी दार्शनिक या धार्मिक विवादमें पड़ना नहीं चाहता। मैं इस योग्य नहीं हूँ कि अपने जीवन-सम्बन्धी तत्वज्ञानकी शिक्षा दे सकूँ। मुझमें अपने अंगीकृत सिद्धान्तोंका पालन करने की योग्यता भी मुश्किलसे है। मैं तो एक अति साधारण, प्रयत्नरत प्राणी हूँ और मन, वाणी और कर्मसे बिलकुल भला, सच्चा और अहिंसक बनने के लिए लालायित हूँ। किन्तु मैं जिस आदर्शको सत्य मानता हूँ, उसतक पहुँचने में सदा विफल रहता हूँ। मैं मानता हूँ और अपने क्रान्तिकारी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यह चढ़ाई बहुत कष्टप्रद है; परन्तु यह कष्ट मेरे लिए निश्चित रूपसे सुखप्रद हो गया है। एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि मेरी शक्ति बढ़ी है और मैं अब अगली सीढ़ीपर पैर रखने योग्य हूँ। पर यह तमाम कष्ट और आनन्द मेरे अपने लिए हैं। क्रान्तिकारी लोग चाहें तो मेरे इन सब विचारोंको खुशीसे न मानें। मैं तो उनके सम्मुख केवल एक ही उद्देश्यके लिए काम करनेवाले साथीके रूपमें अपने अनुभव उसी तरह प्रस्तुत करता हूँ, जैसे मैंने अली-भाइयोंके और दूसरे कितने ही मित्रोंके सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। और मैं उसमें सफल हुआ हूँ। वे मुस्तफा कमाल पाशा और शायद डी वालेरा और लेनिनके कार्योंका अभिनन्दन कर सकते हैं और करते हैं; परन्तु वे मेरी ही तरह यह भी मानते हैं कि भारतकी स्थिति टर्की, आयरलैण्ड या रूसके जैसी नहीं है और उसमें, सदा नहीं तो कमसे-कम इस समय, क्रान्तिकारी आन्दोलनका अर्थ आत्मघात होगा; क्योंकि हमारा देश बहुत विशाल है, उसमें बहुत फूट है, लोग बेहद गरीबीमें डूबे हुए हैं और भयभीत हैं। ('हरिजन', १२-७-१९४२, पृ० २१९)।

(एच) आग[2]

(के) बीमार पड़ने पर[3]

. . . पर सच तो यह है कि जबतक बुद्धि स्वस्थ और निर्मल है, तबतक शारीरिक अस्वस्थताकी वजहसे अहिंसक आन्दोलनको चलाने में कोई रुकावट पैदा नहीं

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३००-१ भी।

२ और ३. इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये पाठके लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ३०४-५ और ३२२। साधन-सूत्रमें शीर्षक "आई" तथा "जे" नहीं दिये गये हैं।

होती। अहिंसक आचरणकी तहमें यह अटल विश्वास रहता है कि मनुष्य जो-कुछ भी करता है, ईश्वरकी प्रेरणासे करता है — जो अदृष्ट है और जिसको बिना अदम्य श्रद्धाके कोई अनुभव भी नहीं कर सकता। फिर भी सत्यके अन्वेषक और प्रयोगकर्त्ता के नाते मैं जानता हूँ कि एक अहिंसक व्यक्तिके लिए तो शारीरिक अस्वस्थता और थकावट भी दोष माना जाता है। सत्य और अहिंसाके उपासक इस सूत्रको अक्षरशः मानते हैं कि स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रह सकता है। लेकिन यह तो पूर्ण मनुष्योंकी बात हुई। खेद है कि जिस पूर्णताको मैंने अपना लक्ष्य बनाया है, उससे मैं अभी दूर हूँ। ('हरिजन', १९-७-१९४२, पृ० २२९)।

(एल) अहिंसक आन्दोलनमें उपवासका स्थान[1]

(एम) अहिंसाका क्या होगा?[2]

(एन) दूसरी बातचीत[3]

इस अंकके एक दूसरे स्तम्भमें भारतानन्दजी[4] का पाठकोंसे परिचय कराया जायेगा। गांधीजी ने जब उनके देशवासियों अर्थात् पोलैण्डवासियोंकी प्रशंसा की तो उन्होंने कुछ एतराज करते हुए कहा: "आप कहते हैं कि पोल लोग 'लगभग अहिंसक' थे। मैं ऐसा नहीं समझता। पोल लोगोंके हृदयमें तीव्र घृणा थी और मैं नहीं समझता कि वे इस प्रशंसाके योग्य हैं।"

"मैं जो-कुछ कहता हूँ, उसका इतना शब्दशः अर्थ मत लगाइए। यदि दस सिपाही पूरी तरह शस्त्रास्त्रोंसे लैस एक हजार सिपाहियोंका प्रतिरोध करते हैं तो वे लगभग अहिंसक ही हैं, क्योंकि उनमें उन हजार सिपाहियोंके अनुपातमें तो हिंसाकी कोई क्षमता है ही नहीं। लेकिन मैंने जो लड़कीका दृष्टान्त दिया है वह अधिक उपयुक्त है। एक लड़की, जो अपने ऊपर हमला करनेवाले पर — यदि उसने नाखून बढ़ा रखे हों तो नाखूनोंसे, या दाँत हों तो अपने दाँतोंसे — हमला करती है, लगभग अहिंसक ही है, क्योंकि उसमें पहलेसे सोची हुई कोई हिंसा नहीं है। उसकी हिंसा बिल्लीके मुकाबले चूहेकी हिंसा है।

"तब बापूजी, मैं आपको एक उदाहरण दूँगा। एक जवान रूसी लड़कीपर एक सिपाहीने हमला किया। उसने अपने नाखूनों और दाँतोंका प्रयोग किया और कहना चाहिए कि उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। क्या वह लगभग अहिंसक थी?"

१ और २. देखिए खण्ड ७६, पृ० ३५४-५६ और २३८-३९।
३. देखिए खण्ड ७२, पृ० ४८२-८३।
४. मॉरिस फ्रिडमैन, एक पोलैण्डवासी इंजीनियर

मैं[1] बीचमें ही बोल पड़ा: "यदि उसने जो-कुछ किया वह उससे तत्क्षण जो बन पड़ा सो ही था तो उसके इस आचरणको, महज इसलिए कि वह अपने प्रयत्नमें सफल हो गई, अहिंसाका नाम देने में कोई बाधा क्यों होनी चाहिए?"

गांधीजी लगभग असावधानीमें ही कह गये, "नहीं; कोई बाधा नहीं है।"

इसपर भारतानन्दने कहा, "यह सुनकर तो मैं चकरा गया। आप कहते हैं कि कोई पहलेसे सोची हुई हिंसा नहीं होनी चाहिए और हिंसा कर सकने की वैसी क्षमता नहीं होनी चाहिए। लेकिन इस मामलेमें तो अपनी सफलतासे उसने सिद्ध कर दिया कि उसमें क्षमता थी।"

गांधीजी ने कहा, "मुझे खेद है कि मैंने असावधानीके कारण महादेवसे सहमति प्रकट करते हुए 'नहीं' कह दिया। उसमें हिंसा थी और मात्रामें वह बराबरी की थी।"

भारतानन्दजीने कहा: "लेकिन तब क्या अन्ततोगत्वा हिंसा और अहिंसाकी कसौटी आचरणके पीछे विद्यमान इरादा ही नहीं है? एक शल्य-चिकित्सक अपने चाकूका प्रयोग अहिंसक भावसे करता है। इसी तरह, जिसपर समाजमें शान्ति बनाये रखने की जिम्मेदारी है वह भी समाजकी रक्षाके लिए दुराचारियोंके विरुद्ध शक्तिका प्रयोग करता है। कहना होगा कि वह भी यह कार्य अहिंसक भावसे करता है।"

"इरादेका निर्णय कौन करेगा? हम नहीं कर सकते। हमारे लिए तो ज्यादातर बाहरी कार्य ही कसौटी होता है। साधारणतया हम कार्यको देखते हैं, इरादेको नहीं। इरादा तो केवल ईश्वर ही जानता है।"

"तब तो सिर्फ ईश्वर ही जानता है कि हिंसा क्या है और अहिंसा क्या है।"

"हाँ, केवल ईश्वर ही अन्तिम निर्णायक है। ऐसा हो सकता है कि हम जिसे अहिंसाका कार्य समझते हों वह ईश्वरकी निगाह में हिंसाका हो। लेकिन हमारे लिए रास्ता निर्धारित है। और फिर आपको मालूम होना चाहिए कि अहिंसाके सच्चे आचरणका अर्थ यह भी है कि उसका आचरण करनेवाले मनुष्यकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र और अन्तरात्मा खूब जागरूक होनी चाहिए। ऐसे मनुष्यके लिए गलती करना कठिन है। जब मैंने पोलैण्डके लिए उन शब्दोंका प्रयोग किया और जब मैंने अपने-आपको लाचार माननेवाली लड़कीको यह सुझाव दिया कि वह हिंसाका दोषी बने बगैर अपने नाखूनों और दाँतोंका प्रयोग कर सकती है तब आपका ध्यान इस बातपर होना चाहिए कि मेरे मनमें मेरे उक्त कथनका क्या अर्थ है। ये दोनों आक्रमणकारीकी जबरदस्त ताकतके आगे यह जानते हुए भी झुकने से इनकार करते हैं कि इसका परिणाम अनिवार्य मृत्युके सिवा और कुछ नहीं है। पोल लोगोंको मालूम था कि वे धूलमें मिला दिये जायेंगे, फिर भी उन्होंने जर्मन सेनाओंका मुकाबला किया। इसलिए मैंने इसे लगभग अहिंसा कहा।" ('हरिजन', ८-९-१९४०, पृ० २७४)।

१. गांधीजी के निजी सचिव महादेव देसाई

परिशिष्ट १ के निम्नलिखित शीर्षकोंमें भी इसी विषयपर और चर्चा उपलब्ध है :

सी. "कोई गोपनीयता नहीं है"

" "गुलामोंके मालिकोंका प्रतिरोध कैसे करें"

डी. अहिंसक असहयोग क्यों?

के. एक समस्या

एल. एक भूल

एम. सेनाओंका प्रश्न

क्यू.[1] "सहमत होने को तत्पर"

परिशिष्ट ५

(ए) इलाहाबादमें पत्रकार-संघके सामने दिये गये पण्डित जवाहरलाल नेहरू के भाषणके अंश

"हम ब्रिटेन, रूस या चीनपर आये हुए संकटका फायदा नहीं उठाना चाहते और न हम धुरी-राष्ट्रोंकी विजय चाहते हैं। हमारा इरादा जापानको रोकना है और चीनकी, तथा लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताके व्यापक हितोंकी सहायता करना है। किन्तु हमारे ही नहीं, हमारे कारण चीनके लिए भी अब ऐसा विकट संकट उत्पन्न हो गया है कि हम उसका सामना करने के लिए इस युद्धको जन-युद्धमें बदल देना चाहते हैं, जैसा कि चीनने किया है। भारत सरकारकी तैयारी बिलकुल अपर्याप्त है। हम शत्रुका प्रतिरोध करने के लिए राष्ट्रमें संकल्प-बल पैदा करना चाहते हैं।

मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया

"हम वर्तमान स्थितिका मुकाबला करना चाहते हैं, भले ही हमें ऐसा करने में जोखिम उठानी पड़े। हम तात्कालिक खतरेसे अपनी रक्षा करना चाहते हैं। हम स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए किसी स्थितिका लाभ नहीं उठाना चाहते। यदि हम निष्क्रिय रहे तो ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध जन-भावना धीरे-धीरे टूट जायेगी, और इसका परिणाम यह होगा कि लोगोंकी प्रतिरोध करने की इच्छा भी खत्म हो जायेगी। कोई कहना चाहे तो बेशक कहे कि हम भाग्यके साथ जुआ खेलना चाहते हैं—और यह हम बहादुरीके साथ करेंगे।"

पण्डित नेहरूने कहा कि यह संघर्ष कोई लम्बा चलनेवाला नहीं है; इसका निपटारा तो अल्प कालमें और द्रुत गतिसे होगा। लेकिन मैं यह नहीं जानता कि निपटारा कितने अल्प कालमें और कितनी द्रुत गतिसे होगा, क्योंकि यह बात मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंपर निर्भर करती है। "हमारा संगठन कोई सशस्त्र सेना तो है नहीं। हमारी लड़ाई तो चन्द करोड़ लोगोंकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियापर निर्भर करती है।"

१. किन्तु साधन-सूत्रमें "पी" है।

एक अमेरिकी पत्रकारके प्रश्नके उत्तरमें पण्डित नेहरूने कहा: "हम जो-कुछ करेंगे उससे आन्दोलनको लाभ होगा, और सरकार जो करेगी उससे आन्दोलनमें तेजी आ सकती है।"

गांधीजी ने 'हरिजन' में बताया है कि क्या कदम उठाये जायेंगे, और पहला कदम अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक होने के एक पखवाड़ेके अन्दर उठाया जा सकता है। यह कदम तैयारीका कदम ही हो सकता है; हाँ, सरकार अगर कोई ऐसी कार्रवाई कर बैठे जिसके फलस्वरूप हमें जो करना है वह और जल्दी करना पड़ जाये तो बात दूसरी है।

पण्डित नेहरूने कहा कि मौजूदा फैसला तैशमें आकर नहीं किया गया है। मौजूदा विश्व-राजनीति और युद्धमें ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाये गये तरीकेका बारीकीसे विश्लेषण करने के बाद ही हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि जब कांग्रेस स्वाधीनताकी बात करती है तो समझा जाता है कि इसके पीछे उसका इरादा सौदेबाजी करने का है। इसलिए भारतसे ब्रिटिश सत्ताको हटा लेने की माँगने अंग्रेजोंको चिढ़ा दिया है। पण्डित नेहरूने कहा कि यह माँग तो राष्ट्रवादी आन्दोलनमें ही निहित है। हमसे कहा गया है कि 'भारत छोड़ो' की माँग नाजायज फायदा उठाने की कोशिश है, और भारतको तबतक इन्तजार करना चाहिए जबतक युद्धके बाद स्थिति साफ नहीं होती।

पण्डित नेहरूने आगे कहा कि हमने इतने वर्षोंतक इन्तजार किया और १९४० में कांग्रेस सत्याग्रह आरम्भ करने ही वाली थी, लेकिन तभी फ्रान्सका पतन हो गया, और चूँकि हम इंग्लैण्डके सामने उपस्थित इस गम्भीर संकटकी स्थितिमें उसे परेशान नहीं करना चाहते थे, अतः हमने सत्याग्रह नहीं छेड़ा। हम जहाँतक सम्भव हो, वहाँतक संकटका सामना करना चाहते हैं। हम भारतपर जापानी आक्रमणको रोकना और चीनकी मदद करना चाहते हैं। मैं ब्रिटेनके पक्षमें अपनी शक्ति इस कारण नहीं लगा सकता क्योंकि ब्रिटिश नीतिकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि हम उसमें कुछ नहीं कर सकते। उस नीतिमें कारगर ढंगसे काम कर सकने की कोई गुंजाइश नहीं है। कांग्रेस चाहती है कि भारत मात्र एक निष्क्रिय दर्शक न रहे।

अन्तमें पण्डित नेहरूने कहा कि भारतमें औसत आदमी नेतृत्वके लिए कांग्रेसकी ओर देखता है और यदि कांग्रेस यह नेतृत्व प्रदान करने में विफल हुई तो जनताका ऐसा जबरदस्त आध्यात्मिक मोह-भंग होगा कि उसकी आत्मशक्ति ही शायद समाप्त हो जाये। अतः हमारे सामने एक यही विकल्प बचा है कि हम लोगोंके उत्साहको झिझोड़कर जाग्रत करने का खतरा उठायें और सारे यूरोप और अमेरिकाको यह महसूस करा दें कि यह युद्ध स्वतन्त्रताका युद्ध है। (यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया, 'बॉम्बे क्रॉनिकल', १-८-१९४२)।

(बी) इलाहाबादमें तिलक-दिवस समारोहमें दिये गये पण्डित जवाहरलाल नेहरूके भाषणके अंश

"मेरे मनमें यह बिलकुल स्पष्ट है कि हमारा निर्णय सही है। यह बात मैं कार्य-समितिके एक सदस्यकी हैसियतसे पूरी गरिमा और अधिकारके साथ कह सकता हूँ। मेरा मन शान्त है। हमारे सामने जो रास्ता है उसे मैं साफ-साफ देख सकता हूँ। इसपर हम निर्भयतापूर्वक और बहादुरीसे चल सकते हैं।"

धुरी-राष्ट्रोंके साथ कोई वास्ता नहीं

पण्डित नेहरूने कहा, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जापानकी मदद करने या चीनका अहित करने का हमारा कोई इरादा नहीं है। उन्होंने कहा :

"अगर हम सफल हो गये तो स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रकी रक्षा करने के लिए बहुत ही जबरदस्त आत्मिक शक्तियाँ पैदा होंगी और उनके कारण जापान और जर्मनीका प्रतिरोध करने की शक्ति बहुत बढ़ जायेगी। इसके विपरीत, यदि हम विफल हुए तो जापानसे अपने तरीके से लड़ने का काम ब्रिटेनका रह जायेगा।"

"सही नारा"

"गांधीजी का नारा 'भारत छोड़ो' हमारे विचारों और भावोंका सही प्रतिनिधित्व करता है। इस संकटकी घड़ीमें हमारा निष्क्रिय रहना आत्मघातक होगा। इससे हमारी प्रतिरोध करने की इच्छा-शक्ति बिलकुल ही समाप्त हो जायेगी। यह निष्क्रियता हमें नष्ट और पौरुषहीन कर देगी। हमारे इस कदमका हेतु सिर्फ स्वाधीनताका प्रेम ही नहीं है। हम यह कदम अपनी रक्षा करने के लिए, प्रतिरोध की अपनी इच्छा-शक्तिको और सुदृढ़ करने के लिए, युद्धको एक नई दिशा प्रदान करने के लिए, युद्ध करने और चीन तथा रूसकी सहायता करने के लिए उठाना चाहते हैं। हमारे लिए यह कदम उठाना एक तात्कालिक और फौरी आवश्यकता है।"

जन-युद्ध

"आप जापानके विरुद्ध कैसे लड़ेंगे?"—इस प्रश्नका उत्तर देते हुए पण्डित नेहरूने कहा :

"हम हर सम्भव ढंगसे, अहिंसात्मक उपायोंसे और हथियारोंसे लड़ेंगे। हम इसे जन-युद्ध बनाकर लड़ेंगे; लोक-सेना संगठित करके लड़ेंगे; उत्पादन बढ़ाकर और औद्योगीकरण करके लड़ेंगे। हम इस युद्धको अपना सबसे पहला और सबसे प्रबल ध्येय मानकर लड़ेंगे। हम रूस और चीनकी तरह लड़ेंगे, और आक्रमणकारीके विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के लिए हमें कितनी ही बड़ी कीमत चुकानी पड़े, वह हमारे लिए कम ही होगी।"

श्री एमरी और सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा अभी हाल ही में दिये गये वक्तव्योंकी जोरदार शब्दोंमें आलोचना करते हुए पण्डित नेहरूने कहा, "संघर्ष—शाश्वत संघर्ष। यह मेरा उत्तर है श्री एमरी और सर स्टैफर्ड क्रिप्सको।"

उन्होंने आगे कहा, "भारतके राष्ट्रीय आत्म-सम्मानको लेकर सौदेबाजी नहीं की जा सकती। मेरा मन यह देखकर दुःख और क्रोधसे भर उठता है कि मैं कई वर्षोंसे कोई-न-कोई समझौता करना चाहता था, क्योंकि मैं समझता था कि ब्रिटेन कष्टमें है। उसे बहुत कष्ट और दुःख उठाने पड़े हैं। मैं चाहता था कि मेरा देश एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें उसके साथ कदमसे-कदम मिलाकर चले। लेकिन ऐसे वक्तव्यों का भला कोई क्या करे!" ('बॉम्बे क्रॉनिकल', ३-८-१९४२)।

(सी) जब्त किये गये दस्तावेजोंके सम्बन्धमें पण्डित नेहरूका वक्तव्य

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके कार्यालयपर छापा मारकर पुलिसने कुछ दस्तावेज बरामद किये थे। उन्हें सरकारने जिस विज्ञप्तिमें प्रकाशित किया है उसे मैंने अभी-अभी पहली बार देखा है। यह हैरानीकी बात है कि सरकारकी हालत इतनी ज्यादा नाजुक हो गई है कि उसे ऐसी निन्द्य और गर्हित चालोंका सहारा लेना पड़ा है। सामान्यतः ऐसी चालोंका कोई उत्तर नहीं दिया जाता। लेकिन चूँकि इससे गलतफहमी होने की सम्भावना है इसलिए मैं कुछ बातें स्पष्ट करना चाहूँगा।

हमारे बीच कार्य-समितिकी बैठकोंका विस्तृत विवरण रखने का रिवाज नहीं है। केवल अन्तिम निर्णय ही लिखे जाते हैं। इस बार सहायक मन्त्रीने अपनी याददाश्तकी खातिर अनधिकृत रूपसे संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखीं। ये टिप्पणियाँ अत्यन्त संक्षिप्त और परस्पर एक-दूसरेसे असम्बद्ध हैं और इनमें कई दिनोंकी उस लम्बी बहसकी बातें लिखी गई हैं जिसमें मैंने विभिन्न अवसरोंपर दो अथवा तीन घंटेतक भाषण दिया होगा। सहायक मन्त्रीने इसमें से केवल कुछ वाक्य ही लिये हैं और वे जिस सन्दर्भमें कहे गये हैं उसका कोई वर्णन नहीं किया है। उन्हें पढ़ने से अक्सर गलत-फहमी होती है। हममें से किसीको भी उन टिप्पणियोंको पढ़ने अथवा उनमें संशोधन करने का अवसर नहीं मिला। यह प्रलेख बहुत असन्तोषजनक और अपूर्ण और इसलिए बहुत-सी जगहोंमें गलत है।

हमारी बातचीतके दौरान महात्मा गांधी उपस्थित नहीं थे। हमें समस्याके हर एक पहलूपर अच्छी तरहसे विचार करना और प्रस्तावोंके मसौदेमें लिखे गये शब्दों और वाक्योंका क्या असर होगा, इसका भी ध्यान रखना था। यदि गांधीजी वहाँ होते तो इस बहससे काफी हदतक बचा जा सकता था, क्योंकि वे हमारे सम्मुख अपना दृष्टिकोण ज्यादा अच्छी तरह रख सकते थे।

महत्त्वपूर्ण छूट

इस तरह जब अंग्रेजोंके भारतसे चले जाने के प्रश्नपर विचार किया गया तो मैंने कहा कि अगर सशस्त्र सेनाओंको अचानक ही हटा लिया जाता है तो जापान आगे बढ़कर और बिना किसी विघ्न-बाधाके भारतपर आक्रमण कर सकता है। लेकिन बादमें गांधीजी के यह कहने पर कि आक्रमणको रोकने के लिए ब्रिटिश और अन्य सशस्त्र सेनाएँ भारतमें बनी रह सकती हैं, इस समस्याका समाधान भी हो गया।

जहाँतक गांधीजी के उस वक्तव्यका ताल्लुक है जिसमें उन्होंने धुरी-राष्ट्रोंके विजयी होने की संभावना व्यक्त की है, उसमें एक महत्त्वपूर्ण बातको छोड़ दिया गया है। उन्होंने जो एक बात बार-बार कही है और जिसका मैंने जिक्र किया है वह यह है कि अगर भारत और अपने उपनिवेशोंके सम्बन्धमें ब्रिटेन अपनी सारी नीतिको नहीं बदलता तो वह विनाशकी ओर अग्रसर हो रहा है। उन्होंने आगे यह भी कहा है कि यदि ब्रिटेन अपनी इस नीतिमें अनुकूल परिवर्तन करता है और यदि युद्ध सचमुचमें सभी लोगोंकी स्वाधीनताके लिए किये जानेवाले युद्धका रूप धारण कर लेता है तब मित्र-राष्ट्रोंकी निश्चित रूपसे विजय होगी।

महात्माका मार्ग

जापानके साथ समझौतेकी बातचीत की जो चर्चा मिलती है वह भी गलत है और सन्दर्भसे कटी हुई है। गांधीजी हमेशा संघर्ष आरम्भ करने से पहले अपने प्रतिपक्षीको उसकी सूचना देते हैं। वैसी हालतमें वे न केवल जापानसे भारतसे दूर रहने के लिए कहते बल्कि यह भी कहते कि वह चीन आदिसे अपनी सेनाएँ हटा ले। वे किसी भी हालतमें भारतपर आक्रमण करनेवाले हर व्यक्तिका प्रतिरोध करने के लिए कृतसंकल्प थे और उन्होंने हमारे देशके लोगोंको प्राणोंकी बाजी लगाकर भी ऐसा करने की सलाह दी। लोगोंको कभी भी आत्म-समर्पण नहीं करना था।

यह कहना बेहूदा है कि हममें से किसीने जापानको मार्ग आदि देनेका अधिकार देने की कोई योजना बनाई। मैंने तो यह कहा था कि जापान ऐसा जरूर चाहेगा, लेकिन हम इस बातपर कदापि सहमत नहीं हो सकते। हमारी नीति हमेशा आक्रमणका कड़ेसे-कड़ा प्रतिरोध करने की रही है। (एसोशिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया – 'बॉम्बे क्रॉनिकल', ५-८-१९४२)।

(डी) अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें दिये गये पण्डित नेहरूके भाषणके अंश

७ अगस्त, १९४२

यदि ब्रिटिश सरकार प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है तो इससे आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिमें हर तरहसे सुधार होगा। चीनकी स्थिति सुधर जायेगी। उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास है कि भारतमें जो-कुछ भी परिवर्तन आयेगा वह बेहतरीके लिए होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको मालूम है कि महात्मा गांधी भारतमें रहनेवाले अंग्रेजोंको और सशस्त्र सेनाओंको रहने देने की बातपर सहमत हो गये हैं, ताकि भारतीय सीमापर जापानकी कार्रवाई सुगम न बन पाये। जो लोग परिवर्तन लाना चाहते हैं उन्हें यह बात मान लेनी चाहिए।

अमेरिकामें यह आलोचना हो रही है कि कांग्रेस ब्लैकमेल कर रही है; इस बातकी चर्चा करते हुए पण्डित नेहरूने कहा कि यह विचित्र और अद्भुत आरोप है। यह आश्चर्यकी बात है कि जो लोग अपनी स्वतन्त्रताकी बात करते हैं वे उन लोगों पर ऐसा आरोप लगा रहे हैं जो स्वतन्त्र होने के लिए जूझ रहे हैं। यह उन लोगोंके

प्रति लगाया गया एक अनोखा आरोप है जो पिछले २०० वर्षोंसे दुःख झेल रहे हैं। यदि यह ब्लैकमेल है तो "अंग्रेजी भाषाकी हमारी समझ दोषपूर्ण है।"

अन्तमें उन्होंने कहा कि मैं अब और खतरा मोल नहीं ले सकता और अब हमें आगे बढ़ना होगा, भले ही इसमें कितने ही विघ्न और बाधाएँ क्यों न हों।

सरकारका दृष्टिकोण पराजयवादी है। अब मैं इसे सहन नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि मेरा एकमात्र उद्देश्य पराजयवादियोंके स्थानपर वीर योद्धाओंको आगे लाने का है। ('बॉम्बे क्रॉनिकल', ८-८-१९४२)।

परिशिष्ट ६

अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें दिये गये मौलाना अबुल कलाम आजादके भाषणके अंश

७ अगस्त, १९४२

आज भारतके सम्मुख जो असाधारण खतरा मुँह बाये खड़ा है उसका हम तबतक सामना नहीं कर सकते जबतक हमारे हाथमें शासनकी बागडोर न हो। खतरा भारतके दरवाजे खटखटा रहा है और शत्रुके हमारे दालानमें कूद पड़ने के साथ ही हमें उसे दबोच लेने की पूरी तैयारियाँ कर लेनी चाहिए। लेकिन ऐसा तभी हो सकता है जब हम अपनी सारी ताकत लगा दें। इलाहाबादमें यह निश्चय किया गया था कि अगर जापान भारतभूमि पर कदम रखेगा तो हम अपनी समस्त अहिंसक शक्तिके साथ उसका मुकाबला करेंगे, लेकिन पिछले तीन महीनोंसे संसार स्थिर नहीं रहा है। घटनाचक्र बहुत तेजीके साथ घूम रहा है। युद्धके नगाड़ोंकी आवाज हमारे देशके समीप आती चली जा रही है, जब कि उधर संसारमें रक्तकी नदियाँ बह रही हैं और राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता रूपी अमूल्य निधिकी रक्षाके लिए संघर्ष कर रहे हैं और अपना जीवन-रक्त बहा रहे हैं।

कांग्रेसने ब्रिटिश सरकारके सम्मुख बार-बार भारतके लोगोंको स्वाधीनता प्रदान करने के प्रस्ताव रखे हैं ताकि वे लोग आक्रामकसे लड़ सकें। हमने शासन की कुंजी इसलिए नहीं माँगी है कि हम आरामसे बैठकर आनन्द-विनोद करें। आज समस्त संसारका यह मार्ग नहीं है। सारा संसार गुलामीकी जंजीरोंको तोड़कर स्वतन्त्रताकी ओर भाग रहा है। ऐसी परिस्थितियोंमें यदि हम यह महसूस करते हैं कि भारतमें भी परिवर्त्तन होना चाहिए, यदि हम यह महसूस करते हैं कि हमारी मुक्ति आमूल-चूल परिवर्त्तन करने और लाने में है तब हमें इस दिशामें कदम उठाने चाहिए। इसके साथ ही, हमारे इस कदमका समस्त संसारपर क्या प्रभाव हो सकता है उसका भी हमें विचार करना होगा। हमें अपने कार्य और अपनी निष्क्रियताके परिणामोंको सावधानीपूर्वक तौलना होगा।

जब भारतीय लड़ेंगे

इसलिए अपनी जिम्मेदारियों, अपने कर्त्तव्यों और अपने कार्यके परिणामों और हम अपने लक्ष्यको किस तरह प्राप्त कर सकते हैं — इन सब बातोंपर अच्छी तरहसे विचार करने के बाद कार्य-समितिने तीन सप्ताह पूर्व एक प्रस्ताव पास किया था। समितिके सदस्योंकी राय थी कि यदि स्थितिमें तुरन्त कोई परिवर्तन नहीं किया जाता तो बर्मा, मलाया और सिंगापुरका जो हाल हुआ वही भारतका भी होगा। यदि हम भारतकी सुरक्षा, स्वाधीनता और सम्मानके लिए लड़ना चाहते हैं तो आज गुलामीकी जो बेड़ियाँ हमें जकड़े हुए हैं उन्हें तोड़ डालना और आलस्यको छोड़ पूर्णतया नये उत्साहके साथ काम करना जरूरी है। जब इस देशके लोग यह महसूस करेंगे कि वे एक ऐसी चीजके लिए लड़ रहे हैं जिसे वे अत्यन्त पवित्र मानते हैं तब वे लोग पूरे दिलसे लड़ेंगे और अपनी सारी शक्ति लगा देंगे, अपना रक्त बहायेंगे और अपने प्राणोंकी बलि देंगे। हमने सरकारसे बार-बार यह परिवर्तन करने का अनुरोध और अपील की है और चूँकि हम अपने प्रयासमें असफल रहे हैं इसलिए हमारा यह फर्ज हो गया है कि हम निश्चित कदम उठायें। इस कदमको उठाने में हमें निश्चय ही मुश्किलोंका सामना करना होगा, लेकिन हम लोग जबतक मुश्किलोंका सामना करने और त्याग करने के लिए तैयार नहीं होंगे तबतक हम कुछ नहीं कर सकेंगे। हम केवल दुःख और कष्ट झेल करके ही कुछ हासिल कर सकेंगे। १४ जुलाईके प्रस्तावका यही अर्थ है। इन तीन हफ्तोंमें हमारा सन्देश भारत-भरमें फैल गया है। प्रस्तावमें उसी बातको दोहराया गया है जो हम हमेशासे कहते रहे हैं। तीन साल पहले ही कांग्रेसने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी थी और फासीवादके विरुद्ध प्रजातन्त्रके पक्षमें अपना मत दिया था। उसके बादसे हमने ऐसी कोई बात नहीं की है जो इस मूलभूत स्थितिसे मेल न खाती हो। हमने हमेशा यही कहा है कि यदि हम स्वतन्त्र होंगे तो हम प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रताके उद्देश्यमें पूरी-पूरी मदद करेंगे। स्वाधीनताके लिए हम प्रतीक्षा कर सकते हैं। लेकिन इस समय तो प्रश्न स्वाधीनताका नहीं, वरन् हमारे अस्तित्वका है। यदि हम बच गये और जिन्दा रहे तो हमें स्वाधीनता मिल सकती है। लेकिन अब तो स्थिति यह है कि हम स्वाधीनता पाये बिना जीवित बचे ही नहीं रह सकते।

दो बार आजमाया हुआ

भाषण जारी रखते हुए कांग्रेस-अध्यक्षने कहा कि हम ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रों के सम्मुख जो माँग रख रहे हैं उसकी जाँच केवल एक ही कसौटीपर की जानी चाहिए और वह कसौटी यह है कि भारतकी सुरक्षाके लिए, उसके अस्तित्वके लिए स्वाधीनता जरूरी है या नहीं। भारत एक महत्त्वपूर्ण रणक्षेत्र बन गया है। यदि भारत स्वाधीन होता तो वह देश-भरमें एक नई ज्योति प्रदीप्त कर देता और देशके कोने-कोनेसे विजयकी पुकार सुनाई देने लगती। कोई भी सेना तबतक सतत युद्ध नहीं चला सकती जबतक उसकी पीठपर ऐसी सरकारका वरद-हस्त न हो जिसे जनता

का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो। यदि कोई हमें यह दिखा सके कि हम जो कर रहे हैं उससे स्वतन्त्रताकी पक्षधर शक्तियोंकी पराजयमें मदद मिलेगी तो हम अपना रुख बदल देंगे। लेकिन यदि वह तर्क केवल एक ऐसी धमकी है जिसमें युद्ध और गड़बड़ीका हौआ दिखाया जा रहा है तो मैं उनसे कहूँगा: "गृह-युद्ध करना हमारा अधिकार है, अव्यवस्थाका सामना करने की जिम्मेदारी हमारी है।"

आगे बोलते हुए कांग्रेस-अध्यक्षने कहा कि इस तरह अपने माँग रूपी स्वर्णको एक बार कसौटीपर कसने के बाद हमने उस चमकीले स्वर्णको एक बार फिर कसौटी पर कसा और वह कसौटी है: "क्या ऐसा करके हम दूसरे लोगोंकी पराजयमें, दूसरोंकी बदकिस्मतीमें सहायक तो नहीं हो रहे हैं?"

यदि हमारी माँगसे स्वतन्त्रताकी पक्षधर शक्तियोंको बल न मिलता होता तथा अपनी स्वाधीनताके लिए इतनी बहादुरीसे लड़नेवाले देशोंके उद्देश्यको बढ़ावा न मिलता होता, तो हम अपनी माँग कभी पेश नहीं करते। हमने इस प्रश्नपर पूरे नौ दिन तक विचार किया है। कांग्रेस-अध्यक्षने कहा कि "हमारी माँग दो बार क़सौटीपर कसा गया खरा सोना है।" उन्होंने पूछा कि "क्या ब्रिटिश सरकार अपने कार्यों और नीतियोंको उपरोक्त कसौटियोंपर कसने को तैयार है?"

कांग्रेसके आलोचकोंको उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि मैंने जिन कसौटियोंको तर्कसंगत ठहराया है कोई भी सही ढंगसे सोचनेवाला व्यक्ति उन्हें मानने से इनकार नहीं करेगा। आलोचकोंका यह कर्त्तव्य है कि वे हमारी सही स्थितिको समझें और इसे नाहक बदनाम न करें।

इस सिलसिलेमें कांग्रेस-अध्यक्षने सर स्टैफर्ड क्रिप्सके उस वक्तव्यकी चर्चा की जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि कांग्रेसकी माँगको स्वीकार कर लिया जाता है तो वाइसरायसे लेकर सिपाहीतक सारी ब्रिटिश सरकारको भारत छोड़कर जाना होगा। अध्यक्षने कहा कि यह हद दरजेकी गलतबयानी है। हमारे प्रस्तावमें स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा गया है कि ब्रिटेन अथवा मित्र-राष्ट्रों द्वारा भारतकी स्वाधीनताकी घोषणा किये जाने के तुरन्त बाद भारतकी शासन-व्यवस्था चलाने और विजयके लिए युद्ध-संचालनके लिए भारत ब्रिटेनके साथ सन्धि करेगा। हमने यह नहीं कहा कि सभी सरकारी अधिकारियोंको अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर भारतसे चले जाना चाहिए और इंग्लैण्ड पहुँचने के बाद समझौता-वार्त्ताके लिए भारत लौटना चाहिए। गांधीजी ने बार-बार यह बात कही है कि "भारत छोड़ो" माँगका अर्थ केवल ब्रिटिश सत्ताका हटाया जाना है, उसका अर्थ ब्रिटिश अधिकारियों, प्रशासकों और सेनाके कर्मचारियोंको हटाना नहीं है। वे सब-के-सब, जिनमें ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ भी शामिल हैं, भारतमें बने रहेंगे — फर्क सिर्फ इतना ही होगा कि वे हमारे साथ हुए समझौते के अधीन यहाँ रह सकेंगे, हमारी इच्छाके विरुद्ध नहीं, जैसा कि आज है। इस स्पष्ट बातको न समझना आत्मघाती मूर्खता है।

दोनों प्रश्नोंपर एकसाथ निर्णय किया जाना चाहिए

मौलाना आजादने बताया : "एक समय था जब केवल वादे किये जा सकते थे। लेकिन १४ जुलाईके प्रस्तावमें एक बात स्पष्ट रूपसे कही गई है, और वह यह कि आज भारत और संसारकी ऐसी स्थिति हो गई है कि हर चीजको तुरन्त कार्यान्वित करना लाजिमी हो गया है। ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंसे हमारी जो माँग है उसे एकदम अभी पूरा किया जाना चाहिए। भविष्यके सम्बन्धमें किये जानेवाले वादों पर हमें कोई विश्वास नहीं है। वादे करने और तोड़ने के हमें कड़वे अनुभव हैं। उन्हें हमारे इस वचनपर भी सन्देह है कि हम उनके साथ मिलकर धुरी-राष्ट्रोंके साथ युद्ध करेंगे। आज हमें और ब्रिटिश सरकारको एक होकर दोनों समस्याओंपर — भारतकी स्वाधीनता और भारतका युद्ध-प्रयत्नोंमें पूरी तरहसे शामिल होना — एक साथ विचार करना चाहिए। भारतकी स्वाधीनताकी घोषणा और मित्र-राष्ट्रों तथा भारतके बीच एक सन्धिपर हस्ताक्षर — ये दोनों काम साथ-साथ होने चाहिए। यदि आप लोगोंका हमपर विश्वास नहीं है तो हम भी आपपर भरोसा नहीं कर सकते।"

भाषणके अन्तमें मौलाना आजादने कहा कि ऐसे नाजुक समयमें भी, जब एक-एक पल महत्त्वपूर्ण है, हमने अन्तिम क्षणमें मित्र-राष्ट्रोंसे अपील करके यह दिखाने का निश्चय किया है कि भारत और मित्र-राष्ट्रोंका उद्देश्य एक ही है, हम दोनोंके हित समान हैं, और भारतकी माँगकी पूर्ति होने से मित्र-राष्ट्रोंका कल्याण होगा। लेकिन यदि मित्र-राष्ट्र दुराग्रह करेंगे और सारी अपीलोंको अनसुना कर देंगे तो यह हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है कि हम स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जो-कुछ कर सकते हैं, करें। ('बॉम्बे क्रॉनिकल', ८-८-१९४२)।

परिशिष्ट ७

सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा दिये गये सार्वजनिक भाषणके अंश

२ अगस्त, १९४२

(ए) चौपाटी, बम्बईमें

युद्ध भारतके समीप आता चला जा रहा है और मलाया, सिंगापुर और बर्माके पतनके बाद भारतको गिरने से बचाने के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिए, इस पर विचार करना जरूरी हो गया है।

गांधीजी और कांग्रेसका विचार है कि यदि अंग्रेज लोग भारतसे चले जाते है तभी भारतको बचाया जा सकता है। शत्रुको दूर रखने के लिए जनताकी सहानुभूति और सहयोग आवश्यक है। यदि अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाते हैं तो भारतके लोगोंमें शक्तिका संचार किया जा सकता है और उन्हें रूस व चीनके लोगोंकी तरह लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

गांधीजी का यह भी विश्वास है कि जबतक भारतमें एक साम्राज्यवादी सत्ता रहेगी तबतक किसी दूसरी साम्राज्यवादी सत्ताका भी इसे हड़पने का मन हो सकता

है और साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाओंके इस भँवर-जालमें युद्ध फैलेगा और जारी रहेगा। इसको रोकने का एकमात्र उपाय साम्राज्यवादी शासनको खत्म करना है।...

कांग्रेस अराजकता अथवा ब्रिटिश सरकारकी पराजय नहीं चाहती। लेकिन हम असहाय हैं। और ज्यादा नुकसान होने से पहले ही, अब यह अध्याय खत्म होना चाहिए। यदि देशकी स्वाधीनता प्राप्त कर ली जाती है तो कांग्रेस अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगी। हम यह भी वचन देने को तैयार हैं कि यदि हमें अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है तो हम कांग्रेस संगठनको भंग कर देंगे।... ('बॉम्बे क्रॉनिकल', ३-८-१९४२)।

(बी) सूरतमें

सरदार पटेलने आज यहाँ एक सार्वजनिक सभामें कहा कि यदि ब्रिटेन भारतीयोंके हाथों, फिर चाहे वह मुस्लिम लीग हो अथवा अन्य कोई दल, शासनकी बागडोर सौंप देता है तो कांग्रेस अपनेको भंग करनेको तैयार है। सरदार पटेलने आगे कहा कि कांग्रेसकी स्थापना भारतकी स्वाधीनताके मुख्य और एकमात्र लक्ष्यको ध्यानमें रखकर की गई थी, और एक बार इस लक्ष्यको प्राप्त कर लेने के बाद यह संस्था स्वेच्छासे ही काम करना बन्द कर देगी (एसोशिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया — 'बॉम्बे क्रॉनिकल', ३-८-१९४२)।

(सी) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें

७ अगस्त, १९४२

कोई गुप्त योजना नहीं

कांग्रेसके विरुद्ध जो यह आरोप लगाया जाता है कि कांग्रेसकी अपनी गुप्त योजना है, उसकी चर्चा करते हुए सरदार वल्लभभाईने कहा कि कांग्रेसकी कोई गुप्त योजना नहीं है। भारतकी स्वाधीनताको प्राप्त करनेके लिए क्या साधन अपनाये जाने चाहिए, इसको लेकर कार्य-समितिके सदस्योंमें परस्पर कोई मतभेद नहीं है।

जापान भारतके प्रति प्रेम दिखा रहा है और भारतको स्वाधीनता दिलाने का वादा कर रहा है। लेकिन भारत धुरी-राष्ट्रोंके इन प्रसारणोंके बहकावेमें नहीं आने वाला है। यदि जापान सचमुच भारतको स्वाधीनता दिलाना चाहता है तो फिर जापान सरकार चीनके विरुद्ध अबतक युद्ध क्यों जारी रखे हुए है? भारतकी स्वाधीनताकी बात करनेसे पहले चीनको आजाद करना जापानका फर्ज है?

महात्माके मार्गका अनुसरण करें

आगे आनेवाले संघर्षकी चर्चा करते हुए सरदार वल्लभभाईने कहा कि यह विशुद्ध रूपसे अहिंसक होगा। कार्यक्रमका ब्योरा जानने के लिए कई लोग उत्सुक हैं। समय आने पर गांधीजी राष्ट्रके सम्मुख कार्यक्रम रखनेवाले हैं। राष्ट्रसे उसका अनुकरण करनेके लिए कहा जायेगा। नेताओंके गिरफ्तार होने पर प्रत्येक भारतीयका यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपना मार्ग-दर्शन खुद करे। इस बातको ध्यानमें रखा जाना

चाहिए कि बलिदान किये बिना किसी राष्ट्रको स्वतन्त्रता नहीं मिली है। ('बॉम्बे क्रॉनिकल', ८-८-१९४२)।

परिशिष्ट ८

बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें दिये गये डॉ० राजेन्द्र प्रसादके भाषणके अंश

३१ जुलाई, १९४२

वर्त्तमान वर्धा-प्रस्तावके फलितार्थोंके बारेमें बताते हुए डॉ० राजेन्द्र प्रसादने इस बातपर जोर दिया कि इस बार सिर्फ जेल ही नहीं जाना होगा। इस बार कहीं अधिक भयंकर आन्दोलन छिड़ेगा और सरकार उसे दबाने के लिए भयंकरसे-भयंकर दमन-चक्र चलायेगी — गोलीबारी, बमबारी, सम्पत्तिकी जब्ती, यह सभी-कुछ सम्भव है। इसलिए कांग्रेसियोंको इस बातको ध्यानमें रखकर आन्दोलनमें भाग लेना होगा कि उन्हें इन सब चीजोंका सामना करना पड़ सकता है। हमारी नई योजनामें विशुद्ध अहिंसापर आधारित हर प्रकारका सत्याग्रह शामिल है, और यह भारतकी स्वाधीनता के लिए अन्तिम संघर्ष होगा। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि हम सत्याग्रहके शस्त्रागारके सबसे बड़े हथियार अहिंसाके द्वारा संसारके सारे सैन्यबलका मुकाबला कर सकते हैं।

लेकिन कांग्रेस अब इस निर्णयपर पहुँची है कि जबतक अंग्रेज लोग भारत से चले नहीं जाते तबतक हममें परस्पर एकता नहीं हो सकती। देशकी राजनीतिमें विदेशी तत्व ऐसी नई समस्याएँ पैदा कर देता है कि उनका समाधान ढूँढ़ निकालना मुश्किल हो गया है। अब महात्मा गांधीकी यह निश्चित राय है कि स्वराज्यके बिना देशमें एकता नहीं हो सकती, हालाँकि पहले उनका मत इससे विपरीत था। उनकी यह राय उनको हुए कड़वे अनुभव और क्रिप्स मिशनका जो परिणाम निकला है उस पर आधारित है।

भाषणके अन्तमें डॉ० राजेन्द्र प्रसादने इस बातको दोहराया कि कांग्रेसका किसी से कोई झगड़ा नहीं है। कांग्रेस अपने कष्ट-सहन और त्यागके द्वारा अपने विरोधी का हृदय-परिवर्त्तन करने की आशा करती है। मुझे विश्वास है कि भारतकी स्वाधीनता को प्राप्त करने के महान उद्देश्यमें विरोधी पक्ष भी कांग्रेसका साथ देगा ('बॉम्बे क्रॉनिकल', साप्ताहिक, २-८-१९४२)।[1]

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ७६-२१३, और कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ३४-१११। पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३८५) से भी; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

१. अन्तिम परिशिष्ट ९ के लिए देखिए खण्ड ७६, पृ० ४४८-५३। अतिरिक्त गृह-सचिवके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ६।

३६. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

१६ जुलाई, १९४३

अतिरिक्त सचिव
गृह-विभाग
भारत सरकार

महोदय,

दैनिक समाचारपत्रोंसे मालूम होता है कि अफवाह लगातार जारी है कि मैंने वाइसराय महोदयको पत्र लिखकर अ० भा० कांग्रेस कमेटीका गत ८ अगस्तका प्रस्ताव वापस ले लिया है। मैं यह भी देखता हूँ कि इस अफवाहके आधारपर काफी अटकलें लगाई जा रही हैं। मेरा सुझाव है कि सरकार इस अफवाहका प्रतिवाद जारी करे। क्योंकि मुझे न तो उस प्रस्तावको वापस लेने का कोई अधिकार प्राप्त है और न उसे वापस लेने की मेरी कोई इच्छा है। मेरी निजी राय यह है कि यदि कांग्रेसको मनुष्य-जातिकी स्वतन्त्रताके उद्देश्यमें, जो भारतकी अविलम्ब स्वतन्त्रतासे जुड़ा हुआ है, कोई कारगर योगदान देना था तो यही एकमात्र प्रस्ताव था जो अ० भा० कांग्रेस कमेटी पास कर सकती थी।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ३२ से। पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३७९ ए) से भी; सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

१. २९ जुलाईको इसके उत्तरमें अतिरिक्त गृह-सचिवने सूचित किया कि भारत सरकार "इस अफवाहका प्रतिवाद जारी करना जरूरी नहीं समझती।" ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ४, पृ० ९७ के अनुसार, भारत मन्त्रीके नाम भेजे एक तारमें वाइसरायने यह सूचित किया था कि समाचारपत्रोंकी पृच्छाओंके उत्तरमें सरकारने बताया कि "इन बातोंका कहीं कोई आधार नहीं" है।

३७. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

१० सितम्बर, १९४३

अतिरिक्त सचिव
गृह-विभाग

महोदय,

भारत सरकारने 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' शीर्षकसे जो पुस्तिका प्रकाशित की है, उसका उत्तर[1] लिखकर मैंने १५ जुलाईको इस कैम्पके अधीक्षक महोदयको आपको भेजनेके लिए दे दिया था। मैं अपने इस उत्तरको पुस्तिकामें मेरे विरुद्ध लगाये हुए आरोपोंका पूर्ण खण्डन मानता हूँ, किन्तु मुझे उसका उत्तर तो कौन कहे, उसकी प्राप्तिकी सूचनातक अभी प्राप्त नहीं हुई है।[2]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० १११-१२

३८. पत्र : अरदेशिर ईदुलजी केटलीको[3]

१६ सितम्बर, १९४३

मेहरबान केटली साहब,

आपने मुझे खबर दी है कि मध्य प्रान्त सरकारकी कैदी होनेके कारण मध्य प्रान्त सरकार मुझे रिहा करना चाहती है, लेकिन यदि मैं अपनी खुशीसे यहाँ रहना चाहूँ तो वर्त्तमान प्रतिबन्धोंमें यहाँ रह सकती हूँ। इसका उत्तर आपने मुझसे माँगा है। तो इसका उत्तर यह है कि मैं यहाँ श्रीमती कस्तूरबाकी सेवाके लिए आई हूँ और उन्हें जबतक मेरी सेवाओंकी जरूरत होगी तबतक मैं यहाँ रहना चाहूँगी। इसलिए वर्त्तमान प्रतिबन्ध मुझे स्वीकार है।

सच पूछा जाये तो इस बारेमें मेरे पिताजीकी क्या राय है, यह मुझे मालूम होना चाहिए। लेकिन मेरा खयाल है कि वे मुझे [बाकी] सेवाके लिए यहीं रखना

१. देखिए पृ० १०३-२१३।

२. अतिरिक्त गृह-सचिवने अपने २० सितम्बरके पत्रमें लिखा कि उत्तर "अभी भी विचाराधीन है"।

३. इस पत्रका मसौदा गांधीजी ने जयसुखलाल गांधीकी पुत्री मनु गांधीके लिए तैयार किया था।

चाहेंगे। और मैं समझती हूँ कि अगर मैं रिहा होना चाहूँ तो हो सकती हूँ। इसलिए मुझे [इस विषयमें] मेरे पिताजीकी इच्छा जाननेकी भी जरूरत नहीं है, लेकिन जब मैं उन्हें पत्र लिखूँगी तब उन्हें यहाँ रहनेकी अपनी इच्छासे अवगत करवा दूँगी।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम०/यू०/२४) से

३९. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

व्यक्तिगत

नजरबन्दी कैम्प
२७ सितम्बर, १९४३

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आप भारतसे प्रस्थान करनेवाले हैं। इस अवसरपर मैं आपसे दो शब्द कहना चाहता हूँ।

आजतक जितने भी उच्च पदाधिकारियोंको जाननेका सौभाग्य मुझे मिला है, उनमें से आपके कारण मुझे जितना गहरा दुःख पहुँचा है उतना किसी औरके कारण नहीं। मुझे आपके बारेमें यह सोचनेको विवश होना पड़ा है और इस बातसे मुझे मर्मान्तक पीड़ा पहुँची है कि आपने असत्यका अनुमोदन किया है और वह भी ऐसे व्यक्तिके मामलेमें जिसे आप किसी समय अपना मित्र समझते थे। मैं आशा और प्रार्थना करता हूँ कि प्रभुकी प्रेरणासे आप किसी दिन समझ जायेंगे कि एक महान राष्ट्रके प्रतिनिधिके रूपमें आपसे एक गम्भीर भूल हुई।

शुभकामनाओं सहित,[1]

आपका मित्र,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३९४) से। सौजन्य : ब्रिटिश उच्चायोग, नई दिल्ली

१. ७ अक्टूबरको इसके उत्तरमें लॉर्ड लिनलिथगोने लिखा : "मुझे अफसोस है कि मेरे अमुक कार्यों या शब्दोंके कारण आपको वैसा महसूस हुआ जैसा आपने अपने पत्रमें बताया है। लेकिन मैं यथासम्भव नरमसे-नरम शब्दोंमें यह बात स्पष्ट कर देने की इजाजत चाहूँगा कि सम्बन्धित घटनाओंका आप जो अर्थ लगाते हैं उसे स्वीकार करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। जहाँतक समय और चिन्तनकी भूल दिखाने की क्षमताका सम्बन्ध है, स्पष्ट ही वह सबपर समान रूपसे लागू होती है और बुद्धिमत्ताका तकाजा यही है कि कोई भी उसके सत्प्रभावको नकारे नहीं।"

४०. पत्र : अरदेशिर ईदुलजी केटलीको[1]

२ अक्टूबर, १९४३

श्री खान बहादुर साहब,

बम्बई सरकारने मेरे पत्रका जो उत्तर दिया है उसकी नकल आपने मुझे भेजी है। प्यारेलालजीने मुझे इसका अनुवाद बताया है। मैंने तो बम्बई सरकारके पहले पत्रका अर्थ अपनी बुद्धिके अनुसार किया था। लेकिन अब मुझे समझमें आया कि एक बार यहाँ रहने का इरादा करने के बाद मैं अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्त्तन नहीं कर सकती। इसमें 'स्वेच्छा' का पूरे अर्थोंमें पालन नही होता। लेकिन मैं तो सेवा करने के निमित्त ही आई हूँ और सेवाके लिए ही रह-रही हूँ। इसलिए मेरे पत्रके उत्तरमें जो शर्तें रखी गई हैं उन्हें मैं स्वीकार करती हूँ और वे मुझे ठीक ही लगती हैं। सेविका क्या 'स्वेच्छा' से काम करने का विचार तक कर सकती है? जबतक पूजनीया कस्तूरबा यहाँ हैं, तबतक मैं भी यहीं हूँ।[2]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

४१. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प

२६ अक्टूबर, १९४३

अतिरिक्त सचिव
गृह-विभाग

महोदय,

आपका १४ अक्टूबरका पत्र[3] मुझे १८ अक्टूबरको प्राप्त हुआ।

२. आपके पत्रसे स्पष्ट है कि सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' में मुझपर जो आरोप लगाये गये हैं उनका मेरा दिया उत्तर[4] अपना प्रयोजन — अर्थात् सरकारके सम्मुख मेरी निर्दोषिता — सिद्ध नही कर पाया है। मेरी नेकनीयतीतक पर प्रहार किया गया है।

३. मैं यह भी देखता हूँ कि सरकार इन आरोपोंपर "टिप्पणी" नही चाहती। ऐसे मामलोंमें सरकारकी पहलेकी घोषणाओसे तो मैंने कुछ और ही समझा था। जो भी हो, आपका प्रस्तुत पत्र कुछ ऐसा है कि उसका उत्तर देना जरूरी लगता है।

१. इसका मसौदा गांधीजी ने मनु गांधीके लिए तैयार किया था।
२. देखिए "पत्र : अरदेशिर ईदुलजी केटलीको", पृ० २१५-१६ भी।
३. देखिए परिशिष्ट ६।
४. देखिए पृ० १०३-२१३।

४. आपके इस पत्रमें जिन आरोपोंका उल्लेख है, मैं समझता हूँ, अपने १५ जुलाईके पत्रमें उन सबका उत्तर मैं बिलकुल स्पष्ट शब्दोंमें दे चुका हूँ। भारतके स्वाधीनता-संग्रामके दौरान मैंने जो-कुछ किया या कहा है, उसपर मुझे कोई खेद नही है।

५. जहाँतक ८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस-प्रस्तावका सम्बन्ध है, मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि मेरा विश्वास है, वह अहानिकर ही नहीं, बल्कि सभी दृष्टियोंसे लाभकारी है; लेकिन उसमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन करने का मुझे कोई वैध अधिकार प्राप्त नहीं है। उस प्रस्तावमें कोई परिवर्त्तन केवल वही संस्था कर सकती है जिसने उसे पास किया है, अर्थात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, जिसका मार्ग-दर्शन निस्सन्देह उसकी कार्य-समिति करती है। सरकार जानती ही है कि मैंने उसके सामने यह प्रस्ताव रखा था कि अगर वह चाहे तो परिस्थितिपर चर्चा करने और उसपर कार्य-समितिके सदस्योंकी राय जानने के लिए मैं उनसे मिलने को तैयार हूँ,[1] किन्तु सरकार ने उस प्रस्तावको ठुकरा दिया। मेरा विचार था और अब भी है कि उनके साथ मेरी बातचीतका सरकारी दृष्टिकोणसे कुछ महत्त्व हो सकता है। इसी कारण मैं दुबारा यह प्रस्ताव रखता हूँ।[2] लेकिन जबतक सरकारको मेरी नीयतमें सन्देह है तबतक शायद उसका ऐसा कोई महत्त्व न हो। किन्तु इस अड़चनके बावजूद, जो बात मै युद्ध-प्रयत्नोंके लिए लाभकर और तात्कालिक महत्त्वकी समझता हूँ उसे मुझे सत्याग्रही होने के नाते दोहराना ही है। किन्तु यदि मेरे इन विचारोंके कायम रहते मेरा प्रस्ताव सरकारको स्वीकार्य नहीं हो सकता और यदि सरकारकी रायमें मेरा ही कुप्रभाव लोगोंको गुमराह करता है तो मेरा यही निवेदन है कि कार्य-समितिके सदस्यों तथा अन्य नजरबन्दोंको रिहा कर दिया जाये। यह एक अकल्पनीय बात है कि जब करोड़ों भारतवासी निवार्य भुखमरीसे पीड़ित हैं और हजारों लोग भूखसे मर रहे हैं तब केवल सन्देहके आधारपर हजारों स्त्री-पुरुषोंको कैद रखा जाये। उन नजरबन्दोंकी शक्ति और उन्हें जबरन् कैद रखने में व्यय होनेवाले धनका उपयोग तो इस संकटकी घड़ी में लोगोंकी तकलीफ दूर करने के लिए किया जा सकता है। मैं गत १५ जुलाईके पत्र में कह चुका हूँ कि गुजरातकी पिछली भयंकर बाढ़के समय और बिहारके उतने ही भयंकर भूकम्पके समय कांग्रेसजनोंने अपनी प्रशासनिक, रचनात्मक और लोकोपकारी योग्यताका भरपूर प्रमाण दिया था। मुझे जिस विशाल भवनमें भारी पहरेके बीच

१. देखिए पृ० ४८ और ४९।

२. अतिरिक्त सचिवने इस प्रस्तावको पुनः नामंजूर करते हुए अपने १८ नवम्बरके पत्रमें लिखा: "आपके २६ अक्टूबरके पत्रके उत्तरमें मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि चूँकि ८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस-प्रस्तावके बारेमें आपके रवैयेमें कोई अन्तर नहीं आया है और सरकारको ऐसी कोई सूचना नहीं मिली है कि कार्य-समितिके किसी भी सदस्यकी राय आपकी रायसे भिन्न है, अतः आप लोगोंकी मुलाकातसे कोई लाभ नहीं होगा। आप और वे सदस्य उन शर्तोंसे अवगत हैं जिनपर इस प्रकारके प्रस्तावको स्वीकार किया जा सकता है। मुझे यह भी कहने का आदेश हुआ है कि आपके पत्रके अन्य मुद्दोंको ध्यानमें रख लिया गया है।"

नजरबन्द रखा जा रहा है उसे मै सार्वजनिक धनका अपव्यय मानता हूँ। मै तो किसी भी सामान्य कारागारमें सन्तोषपूर्वक अपने दिन काट सकता हूँ।

६. अपने "अच्छे आचरण" के "सन्तोषजनक आश्वासनों" के विषयमें मै इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे तो पता नही कि मैने कभी भी अयोग्य आचरण किया हो। मै समझता हूँ, मेरे आचरणके बारेमें सरकारकी रायका सम्बन्ध 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' में जिसे मैने संक्षेपमें अभियोग-पत्र कहा है, उल्लिखित आरोपोंसे है। और चूँकि मैने सभी आरोपोंका समग्र रूपसे पूर्णत: खण्डन ही नहीं किया है प्रत्युत सरकारपर प्रत्यारोप लगाने का साहस भी किया है, मेरे विचारमें सरकारको इन दोनोंको एक निष्पक्ष न्यायाधिकरणके सम्मुख पेश करने को राजी हो जाना चाहिए। आरोप मात्र किसी व्यक्तिपर नही बल्कि एक विशाल राजनीतिक संगठनपर लगाये गये है, इस कारण मेरी राय है कि युद्ध-प्रयत्नोका यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग होगा कि यदि सरकारको आपसी चर्चा और प्रयास अवाछनीय या निष्प्रयोजन प्रतीत हो तो इस मामलेपर एक न्यायाधिकरणसे निर्णय ले लिया जाये।

७. आपके पत्रमें मेरे इस निवेदनको तो अस्वीकार कर दिया गया है कि मेरे साथ न्याय करना चाहे तो मेरा १५ जुलाईका पत्र प्रकाशित कर दिया जाये,[1] किन्तु साथ ही आपने सूचित किया है कि मेरे इस निवेदनकी अस्वीकृतिके बावजूद "सरकार मेरे द्वारा उसे स्वेच्छासे लिखे गये पत्रमें की गई विभिन्न स्वीकारोक्तियोंका चाहे जब और जिस रूपमें उपयोग करने को स्वतन्त्र है।" मै तो केवल यही आशा करता हूँ कि इसका अर्थ यह नही है कि मेरे पत्रमें से उद्धरण लेकर उन्हें तोड़-मरोड़कर छाप दिया जाये, जैसा कि 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' में किया गया है। मेरा अनुरोध यह है कि यदि सरकारको किसी भी समय मेरे पत्रका सार्वजनिक रूपसे उपयोग करने की आवश्यकता जँचे तो उसे पूरा-का-पूरा प्रकाशित किया जाये।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ११४-१५। पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३८०) से भी; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

१. इसे भारत सरकारने २१ जून, १९४४ को प्रकाशित किया था।

४२. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१६ नवम्बर, १९४३

अतिरिक्त सचिव
भारत सरकार (गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

डॉ० नैयरको,[1] जिन्हें भारत सरकार या सम्भवत: वम्बई सरकारने मेरे साथ रखा है, इसी १२ तारीखको अपने भाईका[2], जो नई दिल्लीमें रेलवे कर्मचारी है, एक तार प्राप्त हुआ। तारमें बताया गया है कि उनकी पत्नीने शल्यक्रिया द्वारा एक शिशुको जन्म दिया है और पत्नीको अत्यधिक रक्तस्राव हो जाने के कारण उन्होंने डॉ० नैयरकी अस्थायी रिहाईके लिए अर्जी दी है। तारपर तिथिकी मुहरसे पता चलता है कि तार यरवडा ५ तारीखकी सुबह पहुँच गया था। दूसरा तार, जो नई दिल्लीसे इसी ९ तारीखको भेजा गया था और उसी दिन दोपहरको यरवडा पहुँच गया था, डॉ० नैयरको १५ तारीखको दिया गया। इस तारमें रोगिणीकी मृत्युकी खबर है। डॉ० नैयर पहले तारके देरीसे दिये जाने की शिकायत भेज चुकी है। जैसा कि स्वाभाविक है वे शोकसे अवसन्न हो गई हैं, किन्तु उनका शोक तारोंके देरीसे दिये जाने के कारण और भी बढ़ गया है। मेरा तो खयाल नहीं कि यदि वे दण्डित वन्दी होतीं तो भी किसी प्रियजनकी मृत्युका समाचार इस प्रकार रोककर रखा जाता और वह भी, जहाँतक मैं समझता हूँ, विलकुल अकारण ही। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पास जिन्हें रखा गया है उन्हें मात्र मेरे साथ रहने के ही कारण अतिरिक्त कष्ट भोगने पड़ते हैं। कारण, केवल डॉ० नैयरको कष्ट भोगना पड़ा हो, ऐसी बात नहीं; औरोंके साथ भी ऐसा ही होता है। उदाहरणके लिए, डॉ० गिल्डरको अपनी बीमार पत्नी या पुत्रीतक से मिलने नहीं दिया जाता। नंन्हीं मनु गांधी न अपने पितासे और न अपनी वहनोंसे मिल सकती है; और मेरी पत्नी अपने पुत्रों या पोते-पोतियोंसे नहीं मिल सकती। मैं यह नहीं मान सकता कि यदि मनुको प्रतिवन्ध अरुचिकर लगते तो वह यहाँसे वाहर आ सकती थी। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरे पुत्र रामदास को उसकी माताकी गम्भीर रुग्णावस्थामें ही उससे मिलने दिया गया था। इन लोगों को कैदियोंके सामान्य अधिकारोंसे इस प्रकार वंचित रखा जाना मैं समझ नहीं पाता हूँ। सरकारकी मुझपर विशेष कोपदृष्टि होने के कारण मुझपर जो प्रतिवन्ध लगे हैं

१. डॉ० सुशीला नैयर
२. मोहनलाल नैयर; देखिए पृ० २२६ ।

वे तो मेरी समझमें आ सकते हैं, किन्तु दूसरोंपर लगे हुए प्रतिबन्धोंको समझना मुश्किल है। हाँ, अगर यह मान लिया जाये कि सरकारको हमारी निगरानीके लिए रखे अधिकारियोंपर भरोसा नहीं है तो बात और है। इसके अतिरिक्त इसका और कोई कारण समझमें नहीं आता कि जैसे तारोंका मैंने उल्लेख किया है वैसे तारों और मेरे सहबन्दियोंके मुलाकातियोंके बारेमें हमारे कैम्पके अधीक्षक या महानिरीक्षक खुद निर्णय क्यों नहीं ले सकते।

मेरा अनुरोध है कि इन मामलोंमें शीघ्र राहत प्रदान की जाये।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२२) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ४६, पृ० ५से भी

४३. पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१६ नवम्बर, १९४३

सचिव
बम्बई सरकार (गृ० वि०)
बम्बई

महोदय;

इसके साथ भारत सरकारके नाम एक पत्र[2] प्रेषणके लिए रख रहा हूँ, किन्तु यदि उसमें उल्लिखित मामलोंको बम्बई सरकार खुद ही निपटा सके तो पत्र आगे प्रेषित करने की आवश्यकता नहीं। मेरा उद्देश्य तो यथाशीघ्र राहत प्राप्त करना ही है।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२३)से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ४६, पृ० १७ से भी

१. बम्बई सरकारका दिनांक २३ नवम्बरका उत्तर इस प्रकार था: "सरकारको खेद है कि सुश्री नैयरके नाम आये हुए दो तार इतने अधिक विलम्बके बाद उनके पास पहुँचे। अब तारोंको अधिक शीघ्रतासे पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है। . . . डॉ० गिल्डरकी अपने परिवारके सदस्योंसे मुलाकातोंके विषयमें हालमें उनकी पुत्रीका एक पत्र आया है, जो भारत सरकारको भेज दिया गया है। इसी सिलसिलेमें आपके इस पत्रकी प्रतिलिपि भारत सरकारको भेज दी गई है। . . ." भारत सरकारका गांधीजी के नाम ३० नवम्बरका पत्र इस प्रकार था: "डॉ० गिल्डरको कुछ विशिष्ट परिस्थितियोंमें अपनी पत्नी और पुत्रीसे भेंट करने की अनुमति देने को भारत सरकार सहमत है। और आपके साथ नजरबन्द आपके दलके दूसरे सदस्य भी यदि विशेष आवश्यकता पड़ने पर उचित अवस्थामें इसी प्रकारसे मुलाकात करने का निवेदन करें तो भारत सरकार उसपर विचार करने को तैयार है।"

२. देखिए पिछला शीर्षक।

४४. बातचीत : मीराबहनके साथ

१८ नवम्बर, १९४३

मैंने जब बापूजी से पूछा कि खतरनाक वन्य पशुओं, जैसे बाघ, भालू, चीते इत्यादिके साथ और साँप-बिच्छुओंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए तो वे बोले :

यह एक कठिन प्रश्न है। यदि अमल किये जाने के लिए मुझे कोई निश्चित उत्तर देना है तो मुझे कुछ समय इसपर मनन करना होगा।

मैंने बापूजी से कहा कि इस प्रश्नका समाधान हमें शीघ्र ही राष्ट्रव्यापी स्तर पर तय करना होगा, अतः वे दो-तीन दिन सोच-विचार लें, फिर मैं दोबारा उनसे पूछूँगी। दूसरी बार पूछने पर बापूजी ने उत्तर दिया :

यदि मेरे सामने किसी बाघ या साँपको मारने या उसके द्वारा स्वयं मारे जाने का विकल्प हो तो मैं उसकी जान लेने के बजाय स्वयं मारा जाना पसन्द करूँगा। किन्तु यह एक व्यक्तिगत दृष्टि है, जिसे दूसरोंके अमल करने के लिए पेश नहीं किया जा सकता। यदि मुझमें अपने प्रेम और संकल्पके बलपर इन जन्तुओंको अपने वशमें करने की निर्भीक शक्ति होती और दूसरोंको भी ऐसा करना सिखा सकता तो मुझे अधिकार होता कि दूसरोंको अपने दृष्टान्तका अनुकरण करने की सलाह दूँ।

किन्तु मुझमें वह शक्ति नहीं है। इसी कारण मैं दूसरोंको यह सलाह दूँगा कि मानव-जीवनके लिए खतरनाक सभी जन्तुओं, जैसे बाघ, भालू, साँप, बिच्छू इत्यादिको मार डालें; उनके साथ-साथ पिस्सू, मक्खी-मच्छर आदि मनुष्यके लिए हानिकर कीट-पतंगों तथा चूहोंको और फसलोंके लिए नुकसानदेह दूसरे कीट-पतंगोंको भी नष्ट कर दिया जाये। यह काम अधिकतम दयापूर्ण ढंगसे किया जाये। और कीड़े-मकोड़ोंके बारे में, जो बहुधा लापरवाही और गन्दगीके कारण पैदा होते हैं, यही कहूँगा कि हमें इस प्रकार स्वच्छतासे रहना चाहिए कि कीड़े पैदा ही न हो सकें।

मैंने उत्तर दिया : "तो इसका मतलब यह हुआ कि अब आपको इस बातसे सन्तोष नहीं है कि साँप, चूहों इत्यादिको पकड़कर किसी दूसरे स्थानपर ले जाकर छोड़ दिया जाये, जैसा कि सेवाग्राम और अन्य स्थानोंपर किया जाता है।"

यही बात है। यदि हम स्वयं इन जीवोंके सान्निध्यमें रहने को तैयार नहीं हैं तो हमें कोई अधिकार नहीं कि इन्हें ले जाकर दूसरोंकी जमीनपर छोड़ आयें, क्योंकि इसका परिणाम तो यही निकलता है। हम उन्हें आश्रमसे हटाकर किसी जंगली स्थानमें छोड़ आ सकते हैं, किन्तु वह जंगली स्थान भी तो किसीका है, और स्त्रियों और बच्चोंके गोबर बटोरने और लकड़ी बीनने के निमित्त वहाँ जाने की पूरी सम्भावना होती है। और यदि हम चूहोंको वहाँ ले जाकर छोड़ आते हैं तो वे निश्चय ही राह ढूँढ़कर निकटके खेतोंमें घुस जायेंगे। या तो हमें इन जीवोंके साथ

रहना है या उन्हें मार देना है। यही नही, अपने स्थानको कीड़े-मकोड़ोंकी शरण-स्थली बना देना अपने पड़ोसियोके प्रति भी तो न्याययुक्त आचरण नही होगा। अतएव स्वच्छता और सावधानीसे रहना चाहिए और यदि ये जीव फिर भी उत्पन्न हो जायें तो उन्हें नष्ट कर देना होगा।

इसपर मैंने बापूजी से पूछा, "चूँकि बाघ, भालू इत्यादिको मारना जरूरी है और वह भी अत्यन्त दयापूर्ण ढंगसे, इसलिए प्रत्येक गाँवमें किसी उपयुक्त व्यक्तिको बन्दूकसे लैस करना क्या उचित नहीं होगा?"

यह सवाल टेढ़ा है। यदि एक व्यक्ति बन्दूक रख सकता है तो बन्दूक चलाने में दक्ष दूसरे सब लोग भला क्यों न बन्दूक रखें? खैर, जो भी हो, यदि बन्दूकका प्रयोग करना है और इस कामके लिए एक व्यक्तिको चुनना है तो मेरे विचारमें उसे सभी ग्रामीण मिलकर चुनें।[1]

यह सही तो है, किन्तु कागजपर लिखा हुआ पढ़ने में यह जैसा लगता है, उससे मै सन्तुष्ट नही हूँ।

बापू[2]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१०३) से

४५. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१ दिसम्बर, १९४३

सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

यह पत्र मैं अपने १६ नवम्बर, १९४३ के पत्रके सन्दर्भमें[3] लिख रहा हूँ। सरकारको मालूम है कि डॉ० नैयरकी भाभी, जिनकी प्रसूतिके लिए पेटकी शल्यक्रिया हुई थी, एक सप्ताहका शिशु छोड़कर मृत्युको प्राप्त हो गईं। इस परिवारमें एक मात्र महिला सदस्य डॉ० नैयरकी विधवा वृद्ध माता ही है, जो बहुत दिनोसे बराबर बीमार रहती है। डॉ० नैयरको १६ नवम्बर, १९४३ को नई दिल्लीसे अपने भाईका यह तार मिला था:

१. मूलमें इसके बादका अंश गांधीजी के स्वाक्षरोंमें है।
२. साधन-सूत्रमें यह देवनागरीमें है।
३. देखिए पृ० २२०-२१।

> यदि सरकार अनुमति दे तो शिशुको प्रकाशके साथ तुम्हारे पास भेजना चाहता हूँ। तार द्वारा सहमति भेजो। मैं सरकारसे निवेदन कर रहा हूँ, तुम भी स्वयं एक निवेदन भेजो।

इस तारका उन्होंने १७ नवम्बर, १९४३ को निम्नलिखित उत्तर भेजा था:

> अभी-अभी तार मिला। अनुमति मिलना असम्भवप्राय है। अतः मेरी सलाह है कि जबतक शिशु खतरेसे बाहर न हो जाये, प्रकाश और सत्या बारी-बारीसे माताजीके पास रहें।

उन्हें अभीतक अपने भाईका कोई उत्तर नहीं मिला है। किन्तु उन्हें अब अपनी चचेरी बहन डॉ० प्रकाश नैयरका पत्र मिला है। डॉ० प्रकाश बेतिया राज (बिहार) अस्पतालमें असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट हैं। वे शोकग्रस्त परिवारकी सहायताके विशेष उद्देश्यसे दिल्ली गई थीं। उनका कहना है कि उनके लिए ज्यादा समयतक दिल्ली रहना असम्भव है और उनका पक्का विचार है कि इस मातृविहीन शिशुका डॉ० नैयरके पास रहना सबसे अच्छा है। डॉ० सत्यवती मल्होत्रा (सत्या) भी रिश्तेकी बहन हैं और वे क्वेटाके लेडी डफरिन अस्पतालमें काम करती हैं। पिछले महीनेकी २९ तारीखको उनका एक पोस्टकार्ड आया, जिसमें उन्होंने बताया है कि आगामी जनवरीसे पूर्व उन्हें दिल्ली जाने की छुट्टी नहीं मिल सकती। डॉ० नैयरने मुझसे कहा है कि यदि सरकार आवश्यक अनुमति दे सके तो वे बच्चेका जिम्मा सहर्ष स्वीकार करेंगी। स्वाभाविक है कि बच्चेके विषयमें पूरी जिम्मेदारी सिर्फ उन्हीं की होगी। इस समस्यासे निबटने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय होगा। और यदि सरकार यह अनुमति देने में असमर्थ है तो इसके बाद दूसरा उपाय यह हो सकता है कि सरकार डॉ० नैयरको अल्पकालीन (कोई दो मासके) पैरोलपर रिहा कर दे, ताकि वे आरम्भिक अवस्थामें शिशुकी देखभाल कर सकें और उसकी भावी देख-रेखका भी कुछ प्रबन्ध कर सकें। ३० अगस्त, १९४२ की सरकारी विज्ञप्तिके अनुसार डॉ० नैयरको यहाँ मेरी खातिर रखा गया है। वे कई सालोंसे एक चिकित्सककी हैसियतसे मेरी तथा मेरी पत्नीकी सेवा करती रही हैं। वे तथा उनके भाई हमारे लिए अपने ही बच्चोंके समान हैं। इस कारण उनकी थोड़े दिनोंकी अनुपस्थिति भी हमारे लिए कष्टकर होगी। डॉ० गिल्डरको यहाँ मेरे उपवासके दिनोंमें लाया गया था। उनके विस्तृत ज्ञान तथा अनुभव दोनों कारणोंसे उनकी सहायता हमारे लिए अमूल्य है। किन्तु वे डॉ० नैयरका स्थान नहीं ले सकते, जिसके कारण स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त साचिविक काम-काजमें भी वे अपने भाईका हाथ योग्यतापूर्वक बँटा रही हैं। मैं जानता हूँ कि सरकार हमें दोनों डाक्टरोंकी सेवासे मुक्त करने को स्वतन्त्र है। मैं तो जो तथ्य हैं उन्हींका उल्लेख कर रहा हूँ, ताकि सरकारको सही निर्णयपर पहुँचने में सहायता मिले। यदि उस शिशुको यहाँ डॉ० नैयरके पास नहीं रखा जा सकता तो मैं तथा मेरी पत्नी, दोनों चाहेंगे कि डॉ० नैयरको पैरोलपर छोड़ दिया जाये, चाहे इससे हमें जो भी असुविधा हो।

मेरा अनुरोध है कि इस विषयपर शीघ्र निर्णय हो जाये, क्योंकि हमें भारी असमंजस और दुश्चिन्ता है और शिशुका जीवन भी अधरमें टँगा हुआ है। यदि बम्बई सरकारको यह निर्णय लेनेका अधिकार नहीं हो तो इस पत्रको भारत सरकार के नाम ही सम्बोधित माननेकी कृपा की जाये और टेलीफोन द्वारा निर्णय प्राप्त कर लिया जाये।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई, फाइल नं० १११० (१०८), पृ० १३। सौजन्य: महाराष्ट्र सरकार

४६. बातचीत: निर्मला गांधी तथा देवदास गांधीके साथ[2]

७ दिसम्बर, १९४३

दिनके ३-३० से ४-३५ तक

घरेलू मामलोंपर चर्चा हुई और सम्बन्धियों, मित्रों तथा सेवाग्राम आश्रमके कुछ व्यक्तियोंके स्वास्थ्यके बारेमें पूछताछ की।

श्रीमती रामदासने आगाखाँ पैलेसमें नजरबन्द दूसरे लोगोंके स्वास्थ्यके विषयमें पूछताछ की।

श्रीमती रामदासने बताया कि डॉ० दिनशा मेहताने, जिनके घर वे इस समय टिकी हुई हैं, सन्देश भेजा है कि यदि सरकार अनुमति दे तो वे श्रीमती गांधीके उपचारके लिए अपनी सेवाएँ पेश करनेको तैयार हैं। . . .

श्री गांधीने उनसे श्री रामदासको यह सूचित करनेको कहा कि फिलहाल उन्हें नागपुरसे आने की कोई आवश्यकता नहीं है।

सायं ४-४५ से ६-४५ तक

परिवारके सदस्योंके विषयमें आपसमें पूछताछ करनेके बाद श्री देवदासने पूनासे आनेसे पूर्व दिल्लीमें सर रिचर्ड टॉटनमके साथ हुई अपनी वार्त्ताका उल्लेख किया,

१. सचिवने अपने ११ दिसम्बर, १९४३ के उत्तरमें कहा था: "खेद है कि दोनोंमें से कोई भी अनुरोध स्वीकार नहीं किया जा सकता।"

२. यह तथा अगला शीर्षक आगाखाँ पैलेसमें नजरबन्द लोगोंकी देखरेखके लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा ९-१२-१९४३ को बम्बई सरकारके गृह-विभागके सचिवके नाम लिखे एक गोपनीय पत्रके साथ संलग्न रिपोर्टसे उद्धृत है। पत्रमें बताया गया था कि मुलाकातोंके समय ही बातचीतका यह विवरण लिख लिया गया था।

जिसमें इन विषयोंपर बातचीत हुई थी : (१) नैयरका परिवार, (२) उनके [भाई] मोहनलाल नैयरका नवजात शिशु, और (३) देवदास अपने पिताके साथ कुछ राजनीतिक मामलोंपर चर्चा कर सकते हैं या नहीं। श्री देवदासने कहा कि सर रिचर्डने उन्हें राजनीतिक मामलोंपर चर्चा करने की अनुमति नहीं दी।

इसके बाद वे उस शिशुकी देख-भालके बारेमें और उसकी देख-भालके लिए कहाँ और कैसे प्रबन्ध किया जाये, इस विषयपर तथा पैरोलपर डॉ० नैयरकी रिहाईके सम्बन्धमें विस्तारसे बातचीत करते रहे। पैरोलकी चर्चाके दरम्यान श्री गांधीने कहा कि रिहा हो जाने पर भी प्रत्येक सत्याग्रहीका कर्त्तव्य है कि वह दुबारा सत्याग्रह करके गिरफ्तार होने का प्रयत्न करे। उन्होंने यह भी कहा कि वे उस शिशुके बारेमें और इस कैम्पके अन्य बन्दियोंके लिए नियमित रूपसे मासिक मुलाकातोंके विषयमें सरकारसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं।[1] बंगालके अकालपर कुछ बातचीत हुई और श्री देवदासने कहा कि इधर कुछ अच्छा प्रबन्ध किया जा रहा है तथा एकत्रित चन्देका उपयोग सरकार नहीं, बल्कि सार्वजनिक संस्थाओंके माध्यमसे किया जा रहा है।

श्री देवदासने अपने पितासे पूछा कि वे अपना समय कैसे बिताते हैं। श्री गांधीने उत्तर दिया कि वे डॉ० नैयर और कुमारी मनुको संस्कृत पढ़ाते हैं और उनका अधिक समय विभिन्न अखबारोंमें से सभी विषयोंपर सांकेतिका तैयार करने और अखबारोंमें से कतरनें काटकर उनकी फाइलें तैयार करने में व्यतीत होता है।[2]

श्री गांधीने कहा कि "कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी" (कांग्रेसके उत्तरदायित्व) के विषयमें उनका भारत सरकारसे कुछ पत्र-व्यवहार चल रहा है और उन्होंने सरकारसे उसके प्रकाशनका अनुरोध किया था,[3] जो अस्वीकृत हो गया।

सरकारसे प्राप्त उत्तरोंसे मैं समझता हूँ कि मुझे पाँच साल और हिरासतमें रखा जायेगा। . . .

उन्होंने इन व्यक्तियोंके स्वास्थ्यके विषयमें पूछा : पृथ्वीसिंह, जयप्रकाश, पण्डित गोविन्द मालवीय, वल्लभभाई तथा मेहरअली।

[अंग्रेजीसे]

चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई, फाइल नं० ७६-१, सीक्रेट, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), १९४३-४४। सौजन्य : महाराष्ट्र सरकार

१. देखिए पृ० २२०-२१ और पिछला शीर्षक।

२. गांधीजी की आगाखाँ पैलेसकी दिनचर्याके विस्तृत विवरणके लिए देखिए परिशिष्ट ७।

३. देखिए पृ० २१७-१९।

४७. बातचीत : देवदास गांधीके साथ[1]

९ दिसम्बर, १९४३
सायं ४-१५ से ५-२० तक

श्री देवदासने अपनी माताके स्वास्थ्यके विषयमें सर रिचर्ड टॉटनमको जो तार भेजा है, उसके बारेमें अपने पिताको बताया।

उन्होंने अपने पितासे पूछा कि क्या उन्हें 'फ्री प्रेस', 'सोशल रिफॉर्मर' और 'इण्डियन एक्सप्रेस' नामक अखबार मिलते हैं?

श्री गांधीने उत्तर दिया कि उन्हें ये अखबार नहीं दिये जाते, हालांकि सप्ताह के दरम्यान 'रिफॉर्मर' की एक प्रति आई थी।

प्रभुदास गांधी, नरहरि परीख, किशोरलाल मशरूवाला तथा राजाजीके स्वास्थ्यके बारेमें पूछताछ की।

मीराबहनकी बीमारीके बारेमें श्री गांधीने कहा कि पिछले छह मासमें उनकी पीठ और बाँहमें बहुत तेज दर्द होता है। डाक्टरों, सिविल सर्जनों तथा रोग विशेषज्ञोंने भी उनका परीक्षण और इलाज किया है, किन्तु कोई आराम दिखाई नहीं देता। . . .

[अंग्रेजीसे]
चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई; फाइल नं० ७६-१, सीक्रेट, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), १९४३-४४। सौजन्य : महाराष्ट्र सरकार

४८. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१४ दिसम्बर, १९४३

भारत सरकारके अतिरिक्त सचिव
गृह-विभाग
नई दिल्ली

महोदय,

मेरे १ दिसम्बरके डॉ० नैयर-सम्बन्धी पत्रका[2] आपका ६ दिसम्बरका उत्तर मिला। बारह दिनोंकी दुविधा और दुश्चिन्ताके बाद बम्बई सरकारके पत्रके साथ आपका पत्र कल दोपहर बाद प्राप्त हुआ था। मुझे दुःख है कि मेरे वैकल्पिक सुझाव

१. देखिए पा० टि० २, पृ० २२५।
२. देखिए पृ० २२३-२५।

में निहित सदयताकी भावनाको सरकार समझ नहीं सकी। [सरकारके] इस अप्रत्याशित निर्णयके लिए कोई कारण नहीं बताया गया है, जिससे मेरे इस निष्कर्षकी और भी पुष्टि होती है कि इस निर्णयके फलस्वरूप नैयर-परिवारको जो दण्ड भुगतना पड़ा है, उसका कारण डॉ० नैयरका मेरे साथ रखा जाना है। सरकारके निर्णयसे पहुँचनेवाला दुःख थोड़ा-बहुत इसी कारण कम हुआ है कि जहाँतक समझमें आता है, शिशु अब भी जीवित है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई, फाइल नं० १११० (१०८), पृ० २७। सौजन्य: महाराष्ट्र सरकार

४९. बातचीत: मीराबहनके साथ[1]

२४ दिसम्बर, १९४३

अहिंसाका मूल तत्व है सम्यक् विचार।

पूछा जा सकता है कि "सम्यक् विचार क्या है?" सम्यक् विचार सम्यक् चिन्तन अथवा सम्यक् आयोजना नहीं है। यह तो मूल तत्त्वोंकी सम्यक् अवधारणा है। उदाहरणार्थ, "ईश्वर है", यह तो सम्यक् विचार हुआ; किन्तु "ईश्वर नहीं है", यह असम्यक् विचार हुआ। "मुझे ईमानदार होना चाहिए", यह सम्यक् विचार है, और "मैं बेईमानी कर सकता हूँ", यह असम्यक् विचार है।

जब मन सम्यक् विचार करने का अभ्यस्त हो जाता है तो उससे सम्यक् कर्म भी स्वतः स्फूर्त होता है। किन्तु जब मन असम्यक् विचारकी ओर उन्मुख होता है तो उससे स्फूर्त कर्म भी असम्यक् ही होता है और यदि परिस्थितियाँ किसीको सम्यक् कर्ममें प्रवृत्त कर दें तब भी यदि उसका मन असम्यक् विचारका अभ्यस्त है तो उस सम्यक् कर्ममें भी दूसरोंमें विश्वास जगाने की शक्ति नहीं होगी और कर्त्ताको उसका सम्पूर्ण फल भी नहीं मिलेगा।[2]

सम्यक् विचारके बिना अहिंसामें आस्थाकी, या कहें दूसरोंके हृदयमें विश्वास जगाने की जीवनदायिनी शक्ति कदापि नहीं होगी। और जिसे सम्यक् विचारकी आदत न हो वह सम्यक् कर्मकी कामना रखते हुए भी अपने ऊपर भरोसा नहीं रख सकता कि किसी खास मौकेपर सम्यक् कर्म अवश्य कर सकेगा।

उपर्युक्त अंश २४ दिसम्बर, १९४३ को प्रातःकाल टहलते समय बापूजी के साथ हुई मेरी बातचीतका सार है।

१. इस बातचीतकी रिपोर्ट मीराबहनने तैयार की थी।
२. इस वाक्यमें गांधीजी की लिखावटमें दो-तीन शाब्दिक परिवर्तन हैं।

सम्यक् विचारके मर्मकी चर्चा करनेके बाद बापूजी ने उसे देशकी वर्तमान परिस्थितिपर घटाकर अपनी बात स्पष्ट की। उन्होंने बताया कि किस प्रकार सम्यक् विचारके अभावमें लोग (ब्रिटिश सत्ता-रूपी) दुष्ट तत्वके साथ सहयोग करके भारतका हित-साधन करना चाहते हैं। वे झूठी आशाओं और खोखले वादोंके पीछे भागते हैं। और उनके मनमें जो मुसलमानोंकी बढ़ती हुई शक्ति भयका संचार करती है उसका कारण भी असम्यक् विचार ही है। ये तमाम चीजें भ्रान्तियाँ हैं, जिनके पीछे और जिनसे दूर वे इसलिए भागते हैं कि उनमें मूल तत्त्वोंकी सम्यक् अवधारणाका अभाव है।

बातचीतके दरम्यान बापूजी ने एक निक्षिप्त वाक्यमें एक अद्भुत बात कह डाली। असम्यक् विचारके दृष्टान्तके रूपमें, "मैं बेईमानी कर सकता हूँ" का उल्लेख करने के बाद उन्होंने कहा :

बेशक, 'मैं बेईमानी करूँ ही', इस तरहकी कोई बात नहीं है।[1]

सही। २९ दिसम्बर, १९४३

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नक़ल (जी० एन० ९१०४) से

५०. पत्र : एगथा हैरिसनको[2]

नजरबन्दी कैम्प
२९ दिसम्बर, १९४३

प्रिय एगथा,[3]

कल तीसरे पहर तुम्हारा अप्रत्याशित पत्र पाकर सच्चा सुख प्राप्त हुआ। डॉ० गिल्डर और मीरा तथा प्यारेलाल और सुशीलाने भी उसे पढ़ा। बा को मैंने उसका सार बताया। वह तो जीवन-मृत्युके बीच झूल रही है। रोग बहुत जटिल और गम्भीर हो गया है। नजरबन्दी कैम्पमें जितनी परिचर्या मिल सकती है, उसे सब मिल रही है।

१. इसके बादका अंश साधन-सूत्रमें गांधीजी की लिखावटमें है।

२. जी० एन० साधन-सूत्रके अनुसार एगथा हैरिसनने लिखा है: "पहले गांधीजी के कारावासके दौरान तो उन्हें पत्र भेजना सम्भव था, किन्तु अब यह सम्भव नहीं था। इस कारण मैंने इंडिया ऑफिससे अनुमति माँगी कि उनके जरिये वाइसरायके मार्फत मैं गांधीजी को कुछ पत्र भेजूँ। मेरे जिस पत्रका गांधीजी ने यह उत्तर भेजा उसमें मैंने कांग्रेस-प्रस्ताव इत्यादिके बाद इंग्लैण्डमें उत्पन्न स्थितिको जैसा मैंने समझा था उसके अनुसार लिख भेजा था।" पत्रके अंशके लिए देखिए परिशिष्ट ८।

३. सोसाइटी ऑफ फ्रेंड्सके सदस्यों और कुछ दूसरे लोगों द्वारा १९३१ में स्थापित इंडिया कॉन्सिलिएशन ग्रुपकी सचिव

रही बात तुम्हारे पत्रके विषयकी तो मैं बिलकुल वैसा ही हूँ जैसा तुमने मुझे जाना है। एन्ड्रयूजकी आत्मा सदा मेरे साथ रहती है। किन्तु उच्चाधिकारियोंको मेरे अभिप्राय सन्देहास्पद लगते हैं और मेरे शब्दोंपर घोर अविश्वास किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मेरा उठाया हुआ प्रत्येक कदम निरर्थक सिद्ध हो जाता है। फिर भी, मैं तो धीरजके साथ बैठा हुआ सब देख रहा हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ। सत्य और अहिंसा, आज पहलेसे भी बढ़कर, मेरे अवलम्ब हैं। उन्हींसे मुझे जीवनी-शक्ति मिलती है। चारों ओर घिरे अन्धकारमें से प्रकाश फूट पड़ेगा, यह आशा मैंने छोड़ी नहीं है।

तुम्हें और हमारे सब मित्रोंको बहुत-सा प्यार।

तुम्हारा,
बापू

कुमारी एगथा हैरिसन
२, क्रेनबोर्न कोर्ट
एल्बर्ट ब्रिज रोड
लन्दन एस० डब्ल्यू० ११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५२४) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० १३-१, पृ० १३ से भी

५१. पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२९ दिसम्बर, १९४३

सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

कैम्पके अधीक्षकने कल दोपहर बाद मुझे एगथा हैरिसनका एक पत्र दिया। उनके पत्रमें लिखा है कि उन्होंने परम माननीय भारत मन्त्रीकी अनुमतिसे यह पत्र लिखा है। उस पत्रका उत्तर[1] एगथा हैरिसनको भेजने के लिए मैं इसके साथ संलग्न कर रहा हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२४) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट; स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० १३-१, पृ० ११ से भी

१. देखिए पिछला शीर्षक।

५२. पत्र: अरदेशिर ईदुलजी केटलीको

नजरबन्दी कैम्प
६ जनवरी, १९४४

भाई खान बहादुर,

अपने पुत्र चि० देवदास गांधीके साथ आज बातचीत करने के बाद मैंने कस्तूरबा की इच्छाओंको जैसा समझा है वह इस प्रकार है:

१. कनु गांधी[1] यदि यहाँ बीमारीके बीच नहीं रह सकता तो उसे रोज एक घंटा आने की अनुमति दी जानी चाहिए, ताकि वह मरीजको भजन-कीर्तन सुना सके, और उसकी कुछ सेवा भी कर सके। यह तो आप जानते ही हैं कि मरीजका आग्रह चि० कनुको पूरी तरह अपनी सेवामें रखने का है।

२. चि० जयावहनके लड़के-लड़कियाँ और चि० धीरेन गांधी, जिन सबके नाम मैंने पहले ही दे दिये हैं, जब-जब भजन-कीर्तन सुनाने के लिए आ सकें तब-तब उन्हें आने की छूट होनी चाहिए।

३. मेरे पिता छः भाई थे। उनके वंशज और दामाद प्रचलित रिवाजके अनुसार बहुत करीबी रिश्तेदार माने जायेंगे। चि० देवदास गांधी, अथवा चि० शामलदास गांधी अथवा चि० जमनादास गांधी उनमें से जिन लोगोंके नाम दें उन्हें कस्तूरबासे मिलने आने की अनुमति दी जानी चाहिए। इसके पीछे उद्देश्य यह है कि यदि कोई भी रिश्तेदार सप्ताहमें एक बार आकर मिल जायेगा तो उससे मरीजको कुछ शान्ति मिलेगी। जो आ सकें वे सब साथ ही मिलें, यह भी जरूरी है। एकसाथ आयें। मरीजको मुलाकातियोंकी संख्याके बारेमें कोई आपत्ति नहीं है। जितने ज्यादा लोग होंगे उन्हें उतनी ही खुशी होगी।

४. मुझे कहना होगा कि मरीजका मन बहुत दुर्बल हो गया है। वे जीने की उम्मीद खो बैठी हैं और मौतकी रट लगाये हुए हैं। यदि उनकी तबीयत एक दिन थोड़ी अच्छी होती है तो दूसरे दिन बहुधा खराब होती है। उनकी स्थिति दयाजनक है। मुलाकातके लिए सरकारसे अनुमति माँगने का उद्देश्य यही है कि सम्बन्धियोंके मिलने से मरीजको कुछ शान्ति मिलेगी।

५. मैं समझता हूँ कि आया रखने का प्रयोग निष्फल गया है। श्रीमती प्रभावती जयप्रकाश नारायणने मरीजकी पहले बहुत सेवा की है। वे हमारे लिए पुत्रीके

१. नारणदास गांधीके छोटे पुत्र, जो 'कनैयो' नामसे भी जाने जाते हैं।

समान हैं। उनके पिताने बचपनसे उन्हें आश्रममें ही रखा था। यदि उन्हें यहाँ भेजा जाये तो बहुत अच्छा होगा।

आपका,
मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२५) से

५३. सन्देश : विजयलक्ष्मी पण्डितको

[१४ जनवरी, १९४४ के पश्चात्][1]

श्री देवदास गांधी जब अपनी माताकी रुग्णावस्थाके सिलसिलेमें महात्मा गांधीसे मिले तो गांधीजी ने उनके मार्फत श्रीमती पण्डितके पतिके निधनपर समवेदना-सन्देश भेजा। महात्मा गांधी उन्हें स्वयं पत्र नहीं लिख सकते थे, क्योंकि उन्हें लगता है कि वे नियमोंसे मजबूर हैं। उन्होंने श्रीमती पण्डितसे यह याद रखने को कहा कि भविष्यमें उनके कार्योंमें ही श्री पण्डितकी स्मृति जीवित रहेगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १९-२-१९४४

५४. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२४ जनवरी, १९४४

सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

मुझे एक सूचना-पत्र[2] दिया गया है, जिसमें मेरी नजरबन्दीका कारण बताया गया है और मुझे बताया गया है कि आदेशके विरुद्ध प्रार्थनापत्र देने का मुझे अधिकार है। इस प्रकार मुझे जो अधिकार दिया गया है उसका उपयोग करते हुए मैं यह कहना चाहता हूँ :

१. विजयलक्ष्मी पण्डितके पति रणजीत पण्डितके निधनके उल्लेखसे। उनका निधन १४ जनवरी, १९४४ को लखनऊमें हुआ था; देखिए "पत्र : विजयलक्ष्मी पण्डितको", १-२-१९४४ भी।

२. बम्बई सरकारके गृह-सचिव द्वारा जारी किया गया यह सूचना-पत्र इस प्रकार था : "१९४४ के तीसरे अध्यादेशके सातवें खण्डके अनुसार आप मोहनदास करमचन्द गांधीको सूचित किया जाता है कि आपकी नजरबन्दीका कारण यह था कि आपने ८ अगस्त, १९४२ के उस कांग्रेस-प्रस्तावके पारित किये जाने में प्रमुख रूपसे भाग लिया जिसमें एक ऐसा जन-आन्दोलन छेड़ने की स्वीकृति दी गई जिसकी मंशा

मैं यह मानता हूँ कि ८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस-प्रस्तावके पारित किये जाने में मैंने प्रमुख रूपसे भाग लिया। किन्तु इस बातका मैं जोरदार खण्डन करता हूँ कि कांग्रेसने जो जन-आन्दोलन छेड़ने की स्वीकृति दी थी "उसकी मंशा युद्धके सफल संचालनमें बाधा डालना था।" इसके अतिरिक्त कांग्रेसकी बैठकके सम्मुख दिये अपने भाषणोंके आधारपर तथा अन्य प्रकारसे मैं निर्णायक रूपसे सिद्ध कर सकता हूँ कि उस आन्दोलनके एकमात्र सूत्रधारकी हैसियतसे मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था कि उसे तत्काल छेड़ दूँ, और जैसा कि मैंने सार्वजनिक रूपसे घोषित कर दिया था, उस प्रस्तावित आन्दोलनको टालने के निमित्त मेरा इरादा वाइसरायसे पत्र-व्यवहार शुरू करने का था। यदि पत्र-व्यवहार निष्फल हो गया होता तो अहिंसाके दृढ़ और तपे-परखे पुजारीके नाते मैं आन्दोलनको संयत रखने की हर प्रकारकी सावधानी बरतता।

सरकारने उतावलेपनमें मुझे तथा कांग्रेसजनोंको गिरफ्तार करके जो गलत कदम उठाया उससे उत्तेजित होकर भीड़ने ऐसे-ऐसे काम किये जो वह अन्यथा कभी नहीं करती। इस प्रकार सरकारने मित्र-राष्ट्रोंके हितोंको हानि पहुँचाई। सरकार अपनी अगस्त १९४२ की खेदजनक नीतिपर टिके रहने का दुराग्रह रखकर अपने तथा जनता के बीच मौजूद कटुता और बढ़ा रही है। यह बात मैं इस तथ्यके बावजूद कहता हूँ कि सरकार सेनाके वास्ते पर्याप्त रंगरूट और धन प्राप्त कर पा रही है।

मेरे प्रार्थनापत्रकी न्याययुक्त या निष्पक्ष सुनवाई होगी, यह आशा मुझे नहीं है। सरकारने कांग्रेसजनोंका तथा मेरा पक्ष सुने बिना ही अपनी पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' द्वारा हमें दोषी ठहरा दिया है। उस पुस्तिकामें गलत बातें तथा निराधार कथन भरे पड़े हैं।

उपर्युक्त बातोंके आधारपर मैं माँग करता हूँ कि एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण द्वारा कांग्रेस संस्था, कांग्रेसजनों और मेरे ऊपर लगाये हुए आरोपों तथा सरकारपर लगाये गये हमारे प्रत्यारोपोंकी खुली जाँच कराई जाये, या फिर नजरबन्द कांग्रेसजनोंको तथा मुझे रिहा कर दिया जाये।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६४२) से

युद्धके सफल संचालनमें बाधा डालना था, और यह मानने का उचित आधार था कि अगर आपको नजरबन्द नहीं किया जाता तो आप उस आन्दोलनके सूत्र-संचालनमें सक्रिय हिस्सा लेंगे। (२) आपको सूचित किया जाता है कि जिस आदेशके अधीन आपको नजरबन्द रखा गया है उसके विरुद्ध लिखित प्रार्थनापत्र देने का आपको अधिकार है। अगर आप ऐसा प्रार्थनापत्र देना चाहते हैं तो आपको अधोहस्ताक्षरीके नाम देना चाहिए और उसे आपकी नजरबन्दीकी जगहके कार्यभारी अधिकारीके मार्फत यथासम्भव शीघ्र भेजना चाहिए।" (फाइल नं० ३/४१/४४। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार)।

१. यह पत्र २६ जनवरीको रिचर्ड टॉटनमको भेज दिया गया, जिन्होंने १७ फरवरीको बम्बई सरकारको गांधीजी को यह उत्तर भेजने की सलाह दी: "सरकारने आपके प्रार्थनापत्रपर विचार कर लिया है और यह निर्णय किया है कि जिस आदेशके अन्तर्गत आपकी नजरबन्दी हुई है उसे रद्द न किया जाये। अतएव यदि उस आदेशको अवधिसे पूर्व रद्द न किया गया या अध्यादेश ३ के खण्ड ७ के अधीन उस अवधिको बढ़ा न दिया गया तो वह १५ जुलाई, १९४४ तक लागू रहेगा।" (फाइल नं० ३/४१/४४। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार)।

५५. बातचीत : देवदास गांधीके साथ[1]

२६ जनवरी, १९४४

श्री देवदासने मुझे सुझाव दिया कि उनकी माताके लिए कोई देशी औषधि आजमाई जाये। उन्हें (कस्तूरबाको) आयुर्वेदिक चिकित्सकोंमें विश्वास है। श्री गांधी ने उत्तर दिया कि देवदास इस दिशामें प्रयत्न करें और सरकारको लिखें कि वह किसी वैद्यको चिकित्सा करने की अनुमति दे दे। और उन्होंने यह भी कहा कि वे सरकारको लिखेंगे कि दिनशा मेहता[2] तथा लाहौरके शिव शर्माको श्रीमती गांधीका उपचार करने की अनुमति दी जाये।

श्री देवदासने कहा कि श्री प्यारेलाल और कुमारी नैयर अपनी मातासे मुलाकात करने की अनुमति माँगने के लिए कोई आवेदन-पत्र नहीं दे रहे हैं।... (देवदास) स्वयं उनकी माताकी ओरसे मुलाकातकी अनुमतिके लिए भारत सरकारको तीन बार अर्जी दे चुके हैं, किन्तु उनका अनुरोध ठुकरा दिया गया। श्री गांधीने उत्तर दिया कि इस विषयपर वे सरकारको एक बार लिखे चुके हैं,[3] अब फिरसे लिखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६); फाइल नं० ७६-१, १९४३-४४

५६. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२७ जनवरी, १९४४

अतिरिक्त सचिव
भारत सरकार (गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

कुछ दिन हुए, श्रीमती कस्तूरबा गांधीने जेल-महानिरीक्षक और कर्नल शाहसे कहा था कि उनके इलाजमें मदद देने के लिए पूनावाले डॉ० दिनशा मेहताको बुलाया

१. यह बातचीत आगाखाँ पैलेसके कार्यभारी अधिकारी द्वारा बम्बई सरकारके गृह-सचिवको लिखे २७ जनवरी, १९४४ के पत्रसे उद्धृत की गई है।

२. पूनाके प्राकृतिक चिकित्सालयके

३. शायद यहाँ तात्पर्य गांधीजी द्वारा बम्बई सरकारके गृह-सचिवको दिये गये इस सुझावसे है कि डॉ० सुशीला नैयरको दो महीनेके लिए पैरोलपर छोड़ दिया जाये; देखिए पृ० २२३-२५।

जाये। लगता है, उनके अनुरोधका कोई नतीजा नही निकला है। अब इस बातपर उनका बड़ा आग्रह हो गया है और उन्होंने मुझसे पूछा है कि इस सम्बन्धमें मैंने सरकारको लिखा या नही। इसलिए मेरा अनुरोध है कि डॉ० मेहताको यहाँ लाने की अनुमति अविलम्ब दी जाये। उन्होंने अपने लड़के और मुझसे यह भी कहा है कि उन्हें कोई वैद्य देख ले तो अच्छा।[1] मेरा सुझाव है कि जेल-महानिरीक्षकको जब उनसे अनुरोध किया जाये तब ऐसी सहायताकी अनुमति देने का अधिकार दिया जाये।

२. अबतक मेरे इस अनुरोधका[2] मुझे कोई उत्तर नही मिला है कि श्री कनु गांधीको, जिन्हे मरीजसे हर तीसरे दिन मिलने की इजाजत है, कैम्पमें पूरे समय उनकी सेवामें रहने की अनुमति दी जाये। मरीजमें सुधारका कोई लक्षण नही दिखाई देता है और रातकी परिचर्या अधिकाधिक कठिन होती जा रही है। कनु गांधी आदर्श परिचारक हैं; उन्होंने पहले भी मरीजकी सेवा की है। इससे भी बड़ी बात यह है कि वे वाद्य संगीत और भजन द्वारा मरीजको शान्ति दे सकते हैं। मेरा अनुरोध है कि मौजूदा दबावको कम करने के लिए जल्दी राहत दी जाये। इस मामलेको ऐसा समझा जाये जो अविलम्ब निबटारेका तकाजा रखता है।

३. कैम्पके अधीक्षकने मुझे बताया है कि जब मुलाकाती आयें उस समय मरीजकी सेवामें कोई एक ही व्यक्ति रह सकता है। अबतक जरूरत पड़ने पर एकाधिक परिचारक सेवा करते रहे हैं। जरूरत कब है और कब नही, यह अधीक्षक अपनी समझसे तय करते थे। लेकिन जब कठिनाई उपस्थित हुई तब मैंने जेल-महानिरीक्षकसे निवेदन किया। फलतः यह आदेश जारी किया गया कि परिचारकके अतिरिक्त एक डाक्टर भी मौजूद रह सकता है। मेरा निवेदन है कि यह आदेश मरीजकी हालतकी ठीक जानकारीके बिना या उनकी अवस्थाका कोई ख्याल किये बिना जारी किया गया है। उन्हें अक्सर एकाधिक व्यक्तियोंकी सहायताकी जरूरत पड़ती है। इसलिए मेरा अनुरोध है कि परिचारकोंकी संख्यापर कोई पाबन्दी न लगाई जाये।

४. यदि मैं इस तथ्यका जिक्र न करूँ कि मरीजको दी जानेवाली सुविधाओंके पीछे शोभा और उदारताका नितान्त अभाव रहा है तो यह गलत होगा। परिचारकोंसे सम्बन्धित आदेश चुभनेवाली बातोंका सबसे ज्वलन्त उदाहरण है; इसके अलावा इससे वह प्रयोजन तो विफल हो ही जाता है जिसको ध्यानमें रखकर रिश्तेदारोंके मिलने आने के समय परिचर्याकी अनुमति दी गई है। फिर, मेरे तीन लड़के पूनामें है। सबसे बड़े लड़के हरिलालको, जिसे हम लगभग गँवा ही बैठे है, कल मिलने की अनुमति नहीं दी गई, जिसका कारण यह था कि जेल-महानिरीक्षकको उसे फिर आने देने का निर्देश नही मिला था। लेकिन मरीज उससे मिलने को बहुत उत्सुक थीं। चुभनेवाली बातका एक और उदाहरण यह है कि जिन लोगोंको मुलाकातकी अनुमति मिली हुई है वे भी जब कभी मिलने आते है तो उन्हें बम्बई-स्थित सर-

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. देखिए पृ० २३१।

कारी कार्यालयमें अनुमतिके लिए अर्जी देनी पड़ती है। नतीजा यह है कि अनावश्यक विलम्ब और कुढ़न होती है। मेरा खयाल है, कठिनाईका कारण यह है कि न तो अधीक्षकको और न जेल-महानिरीक्षकको ही सिवाय इसके कि वे मेरे अनुरोधोंको बम्बई भेज दें, और कोई जिम्मेदारी नहीं सौंपी गई है।

५. मुझे मालूम है कि श्रीमती कस्तूरबा सरकारी मरीज हैं, और उनके पतिके रूपमें भी मुझे उनके सम्बन्धमें कुछ कहने-सुनने का हक नहीं है। लेकिन चूंकि सरकार ने कृपापूर्वक यह कहा है कि उन्हींके हितको ध्यानमें रखकर उन्हें रिहा करने के बजाय मेरे साथ रखा जा रहा है, इसलिए उनकी इच्छाओं और भावनाओंको समझकर मैं शायद ऐसा काम कर रहा हूँ जिसे सरकार वांछनीय मानेगी और सराहना की नजरसे देखेगी। वे स्वस्थ हो जायें या जीवन-मृत्युके बीच झूलते उन्हें कमसे-कम मानसिक शान्ति मिले, यह सरकार भी चाहती है और मैं भी। खटकनेवाली कोई भी बात उनपर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२६) से

५७. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२७ जनवरी, १९४४

सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

साथमें भारत सरकारके नाम एक पत्र[1] है, जिसे उसके पास भेज देना है, लेकिन अगर बम्बई सरकार उसमें उल्लिखित मामलोंको स्वयं निपटा सके तो भेजने की आवश्यकता नहीं है। चूंकि पत्रका प्रयोजन शीघ्रातिशीघ्र राहत प्राप्त करना है, अतः आवश्यकता हो तो केन्द्रीय सरकारसे टेलीफोनपर निर्देश प्राप्त किये जा सकते हैं।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२७) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ७६, पृ० १७९ से भी

१. देखिए पिछला शीर्षक।

५८. बातचीत : रामदास गांधीके साथ[1]

२८ जनवरी, १९४४

श्री रामदासने कहा कि सरकार श्रीमती गांधीको हिरासतमें रखकर अनावश्यक जोखिम उठा रही है। वृद्ध (गांधीजी)ने उत्तर दिया कि उन्हें रिहा करने में तो और भी जोखिम है। रिहा कर दिये जाने पर यदि श्रीमती गांधीकी मृत्यु हो जाये तो सरकारको उन्हें भी रिहा करने को बाध्य होना पड़ेगा और सरकार यह जोखिम उठाना नहीं चाहती।

श्री रामदासने कहा कि उन्हें ऐसा लगता है कि हरिलाल गैर-जिम्मेदार व्यक्ति होने के कारण अखबारमें आगाखाँ पैलेसके बारेमें ऐसा-वैसा कुछ भी छपवा सकते हैं, शायद इसी कारण सरकार उन्हें बार-बार मुलाकात करने की अनुमति नहीं देती। श्री गांधी हँसने लगे और बोले :

शायद मैं ही हरिलालकी कमजोरीका लाभ उठाकर उसे अपने लिए कुछ करने को कह दूँ।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० ७६-१, १९४३-४४

५९. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
३१ जनवरी, १९४४

सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

इसी २७ तारीखको मैंने भारत सरकारके नाम एक ऐसा पत्र[2] भेजा था जिसके बारेमें अविलम्ब कार्रवाई किये जाने की आवश्यकता थी। लेकिन अभीतक उसका कोई

१. यह बातचीत आगाखाँ पैलेसके कार्यभारी अधिकारी द्वारा बम्बई सरकारके गृह-सचिवको २९ जनवरी, १९४४ को लिखे एक पत्रमें से उद्धृत की गई है।

२. देखिए पृ० २३४-३६।

उत्तर नहीं मिला। मरीजकी हालतमें कोई सुधार नहीं है। परिचारक श्रमसे टूट चले हैं। केवल चार व्यक्ति सेवा कर सकते हैं — वारी-वारीसे हर रात दो व्यक्ति रहते हैं। इन चारोंको दिनमें भी जुटे रहना पड़ता है। मरीज खुद भी अधीर होती जा रही हैं, और पूछती हैं, 'डॉ० दिनशा कब आयेंगे?' क्या मैं शीघ्रातिशीघ्र — सम्भव हो तो कल ही — जान सकता हूँ कि:

१. क्या श्री कनु गांधी पूरे समयके लिए परिचर्याके निमित्त आ सकते है?

२. क्या फिलहाल डॉ० दिनशाकी सेवाएँ ली जा सकती है, और

३. क्या मुलाकातके समय परिचारकोंकी संख्यापर लगाया प्रतिबन्ध हट सकता है?

मैं यही मना रहा हूँ कि ऐसा कहने की नौबत न आये कि राहत बहुत देरीसे पहुँची।[1]

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२८) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ७६, पृ० २१५ से भी

६०. पुर्जा: नजरबन्दी कैम्पके अधीक्षकको — मौन-दिवसपर[2]

[३१ जनवरी, १९४४][3]

उनके ध्यानमें कोई विशेष वैद्य नहीं है, किन्तु मेरे पुत्र देवदासने लाहौरके वैद्यराज शर्माका नाम सुझाया है। जो भी चिकित्सक बुलाया जायेगा वह डॉ०

१. गृह-सचिव द्वारा ३ फरवरी, १९४४ को दिया गया इसका उत्तर निम्न प्रकार था: "(१) सरकार इस बातपर रजामन्द है कि श्रीमती गांधीकी परिचर्यामें सहायता देने के लिए कनु गांधी आगाखाँ पैलेसमें ही रहें, बशर्ते कि वे नजरबन्दी कैम्पकी सुरक्षाकी दृष्टिसे नजरबन्द कैदियोंपर लागू विनियमोंका पालन करने को तैयार हैं। सरकारके विचारमें, कनु गांधीके रहने से शुश्रूषाकी भरपूर व्यवस्था हो जायेगी, और इससे अधिक सहायताके निवेदन सरकारको स्वीकार्य नहीं होंगे। (२) सरकारका निर्णय है कि बाहरके डाक्टर केवल उसी हालतमें बुलाये जायेंगे जब सरकारी डाक्टर चिकित्साकी दृष्टिसे उनको बुलाना नितान्त आवश्यक समझें।... (३) निकट सम्बन्धियोंको श्रीमती गांधीसे मुलाकात करने की अनुमति दी जा चुकी है। सरकारको इन मुलाकातोंके समय आपकी उपस्थितिपर कोई एतराज नहीं है, किन्तु अन्य बन्दियोंमें से केवल वे ही मौजूद रहें जिनकी उपस्थिति श्रीमती गांधीकी अवस्थाको देखते हुए आवश्यक हो।..." (गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २२८)। और अधिक डाक्टरी सहायताके लिए कर्नल भण्डारीके नाम डॉ० सुशीला नैयर तथा डॉ० एम० डी० डी० गिल्डरके संयुक्त पत्रके लिए देखिए परिशिष्ट ९।

२ और ३. प्यारेलालके अनुसार, "सोमवार, मौन-दिवस" पर, शामके ४ बजे जब "कैम्पके अधीक्षक" ने गांधीजी को सरकारका यह सन्देशा दिया कि "वह जानना चाहती है कि श्रीमती गांधीके ध्यानमें क्या कोई विशेष वैद्य है और क्या वे डॉ० दिनशा मेहताके अलावा एक और चिकित्सक चाहती हैं" तब गांधीजी ने तुरन्त यह पुर्जा लिखकर उन्हें दे दिया।

दिनशा मेहताके अलावा ही होगा, और वह भी तभी आयेगा जब डॉ० मेहताके उपचारसे सन्तोष प्राप्त नहीं होगा। उन्होंने [श्रीमती गांधीने] बार-बार किसी आयुर्वेदिक चिकित्सकसे जाँच कराने की इच्छा प्रकट की है। यदि अनुमति दी जाये तो वह सामान्य ढंगकी होनी चाहिए। उनकी इच्छा-शक्ति छीजती जा रही है, और जबतक मुझे उनकी मानसिक शान्तिकी — क्योंकि उनकी जैसी अवस्था है उसमें उन्हें मानसिक शान्ति देने के अलावा उनके लिए कुछ किया भी नहीं जा सकता — जिम्मेदारी उठाने की छूट है तबतक मुझे ही इसका निर्णय करना है कि अनेक प्रकारकी सलाहोंमें से कौन-सी ठीक है।

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २२६

६१. पत्र: विजयलक्ष्मी पण्डितको[1]

आगाखाँ पैलेस
१ फरवरी, १९४४

मार्फत — बम्बई सरकार

प्रिय बेटी,

कल दिनके दो बजे मुझे तुम्हारा पत्र[2] मिला। मैं तुम्हें क्या लिखूँ? अखबारों में खबर पढ़कर मैंने बा को पढ़ सुनाई तो आँखोंमें आँसू भरकर वह बोली, "हे राम! मैं तो यमके द्वारपर खड़ी हूँ, मुझे नहीं ले जाता और रणजीतको ले गया! सरूपका क्या होगा?" किन्तु मेरे मनमें ऐसे भाव नहीं आये। तुम्हें लाचार नहीं बनना है। तुम तो बहादुर बापकी बहादुर बेटी हो और वैसे ही बहादुर भाईकी बहादुर बहन। रणजीतका रोग ही ऐसा था कि उसे असमय ही जाना पड़ा। उसका शरीर कारावास भोगने योग्य नहीं था। किन्तु यह सब तो मेरी कल्पनाएँ हैं। सत्य यह है कि ईश्वर हमें जन्म देता है और जब भी वह चाहे उठा ले जाता है। और यह सब केवल देहके साथ होता है। आत्मा तो न जन्म लेती है, न मरती है। तुमने रणजीत नामक आत्मासे विवाह किया था। तुम कभी विधवा नहीं हो सकती। तुमने बिलकुल उचित कहा है कि तुम रणजीतके सब गुणोंकी प्रतिनिधि बनोगी। ईश्वर तुम्हारी यह कामना फलीभूत करे। तुम्हें अपने शरीरकी देखभाल करनी चाहिए और कर्त्तव्य-निमग्न हो जाना चाहिए।

१. मूल पत्र हिन्दीमें था, जो उपलब्ध नहीं है। उसका जेल-अधिकारियोंने अंग्रेजीमें जो अनुवाद किया था यहाँ उसीका हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

२. १५ जनवरीका, जिसमें श्रीमती पण्डितने अपने पतिकी मृत्युका समाचार दिया था।

यह अच्छा है कि रीता[1] तुम्हारे पास है। चाँद[2] और ताराको[3] मेरा आशीर्वाद भेजना। कृष्णा,[4] फिरोज[5] और इन्दुको[6] भी मेरा आशीर्वाद देना। तुमपर ईश्वर का अनुग्रह रहे।

नियमोंके[7] विपरीत मुझे तुम्हारा पत्र दिया गया है और यह पत्र भी नियमों के विपरीत ही पहुँचा दिया जायेगा। कारागारसे यह मेरा पहला पत्र है।

बा मृत्युकी आशामें अपने दिन गिन रही है।

तुम्हें
हम दोनोंके आशीर्वाद

श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित
२, मुकर्जी रोड
इलाहाबाद

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० १३-१ (५), पृ० ४७

६२. पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
३ फरवरी, १९४४

सचिव
बम्बई सरकार
बम्बई

महोदय,

श्रीमती कस्तूरबा कल मुझसे पूछ रही थी कि डॉ० दिनशा कब आयेंगे और क्या कोई वैद्य उन्हें देखकर कुछ औषधि दे सकता है। मैंने उन्हें बताया कि मैं दोनों बातोंके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, किन्तु हम लोग बन्दी है, इसलिए हमें इच्छा-नुसार तो सब-कुछ नहीं मिल सकता। तबसे मुझसे बार-बार पूछ रही हैं कि क्या मैं इस मामलेमें कुछ जल्दी नही करा सकता। उनकी कल रात फिर बेचैनीमें बीती। खैर, इस समय यह तो उनके लिए कोई नई बात नहीं है। मेरा अनुरोध

१. विजयलक्ष्मी पण्डितकी छोटी पुत्री
२ और ३. विजयलक्ष्मी पण्डितकी पुत्रियाँ — चन्द्रलेखा और नयनतारा
४. विजयलक्ष्मी पण्डितकी बहन कृष्णा हठीसिंह
५ और ६. फिरोज गांधी और इन्दिरा गांधी
७. जिनके अनुसार राज्यकी सुरक्षाकी दृष्टिसे जेलमें रखे गये लोगोंको केवल अपने सगे-सम्बन्धियोंसे ही पत्र-व्यवहार करने की अनुमति थी

है कि डॉ० दिनशा तथा लाहौरके वैद्यराज शर्माके विषयमें फौरन आदेश दिये जायें। वैद्यराजको तो आने में कुछ समय लगेगा, किन्तु यदि बुलाने का अधिकार मिल जाये तो डॉ० दिनशा तो आज ही आ सकते हैं।

मुझे कहना पड़ता है कि जब एक रोगीके जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित है, और समय रहते सहायता मिल जाने से प्राण बच भी सकते हैं; उस समय इस देरी का कारण मेरी समझसे बाहर है। आखिर, रोगीके लिए तो कष्टसे छुटकारा उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोई उच्चतम राजकीय प्रसंग।[1]

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९२९) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ७६, पृ० २२९ से भी

६३. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प

७ फरवरी, १९४४

सचिव

बम्बई सरकार (गृह-विभाग)

बम्बई

महोदय,

२९ दिसम्बर, १९४३ को मैंने कुमारी एगथा हैरिसनके नाम [२][2] क्रेनबोर्न कोर्ट, एल्बर्ट ब्रिज रोड, लन्दनके पतेपर, आपको एक पत्र[3] भेजा था। क्या मैं जान सकता हूँ कि वह पत्र कुमारी हैरिसनको भेज दिया गया है या नहीं?

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३०) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० १३-१, पृ० २१ से भी

१. गृह-सचिवके इसी तारीखके जवाबके लिए देखिए पृ० २३८, पा० टि० १।

२. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है।

३. देखिए पृ० २२९-३०।

६४. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
७ फरवरी, १९४४

सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

अपनी नजरबन्दीके विरुद्ध आवेदन करने का जो अधिकार मुझे दिया गया था उसके अनुसार मैंने २४ जनवरी, १९४४ को एक आवेदनपत्र[1] भेजा था। क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझे उसका उत्तर कब दिया जायेगा?

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३१)से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० १३-१, पृ० २३ से भी

६५. पुर्जा : बम्बईके जेल-महानिरीक्षकको[2]

नजरबन्दी कैम्प
११ फरवरी, १९४४

एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिसे भिन्न किसी दूसरे प्रकारके चिकित्सकको सहायताके लिए बुलाने में जिम्मेदारी पूरी तरह मेरी ही होगी और उस चिकित्साका यदि कोई दुष्परिणाम हुआ तो सरकार उससे मुक्त रहेगी। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि ऐसे वैद्यों या हकीमोंकी दी हुई सलाह मैं स्वीकार ही कर लूँगा, लेकिन

१. देखिए पृ० २२३-२३।

२. साधन-सूत्रमें इस पत्रकी पृष्ठभूमि बताते हुए प्यारेलालने लिखा है: "श्रीमती कस्तूरबा गांधीके लिए आयुर्वैदिक चिकित्सककी व्यवस्था करने के अनुरोधके सिलसिलेमें ११ फरवरी, १९४४ की सुबह गांधीजी ने जेल-महानिरीक्षकसे बातचीत की। उसके बाद जो-कुछ वे पहले ही जेल-अधिकारियोंको बतला चुके थे उसकी पुष्टि करते हुए उन्होंने यह पुर्जा लिखा।"

अगर करूँगा और नुस्खेसे कोई लाभ न होगा तो मैं यह अधिकार सुरक्षित रखना चाहूँगा कि उस हालतमें दुबारा वही इलाज शुरू करा दूँ जो इस समय चल रहा है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २२९

६६. पत्र : बम्बईके जेल-महानिरीक्षकको

अविलम्बनीय

नजरबन्दी कैम्प
१४ फरवरी, १९४४

जेल-महानिरीक्षक
पूना

महोदय,

कल मैंने आपको बताया था कि पिछली रात श्रीमती कस्तूरबाकी हालत इतनी विगड़ गई थी कि डॉ० नैयरने घबराकर डॉ० गिल्डरको जगाया। मैंने तो समझा कि उनका अन्त आ गया है। स्वभावतः दोनों डाक्टर लाचार थे। इस कारण डॉ० नैयरको अधीक्षक महोदयको जगाना पड़ा, जिन्होंने कृपापूर्वक वैद्यराजको फोन किया। उस समय रातका लगभग १ बज रहा था। यदि वे महलमें होते तो अवश्य ही कुछ राहत पहुँचाते। इसी कारण मैंने आपसे अनुरोध किया था कि उन्हें रातमें कैम्पमें ही रहने दिया जाये। लेकिन आपने मुझे बताया कि सरकारके आदेशमें रातमें उनके यहाँ रहने की कोई बात नही है; फिर भी रातमें उन्हें बुलाया जा सकता है। मैंने आपका ध्यान विलम्ब होने के खतरे की ओर खींचा। किन्तु आपने खेद प्रकट किया कि आदेशानुसार आप इससे अधिक कुछ नही कर सकते। मेरी यह दलील भी बेकार गई कि जब सरकारने वैद्यराजको बुलाने का अधिकार इस शर्तपर दिया कि आयुर्वेदिक उपचारके किसी भी दुष्परिणामके दायित्वसे मैं उसे मुक्त मानूँगा तब जबतक मरीजके हितमें जरूरी हो तबतक कैम्पमें चिकित्सकके बने रहने पर कोई प्रतिबन्ध लगाने का विचार सरकारके मनमें नही हो सकता। जब आपने मेरे अनुरोधको ठुकरा दिया तब मुझे वैद्यराजको यह तकलीफ देनी पड़ी कि वे फाटकके सामने अपनी कारमें ही विश्राम करें, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बुलाया जा सके। उन्होंने दया करके यह तकलीफ कबूल कर ली। उन्हें बुलाने की आवश्यकता पड़ी और वे जरूरी राहत भी दे सके। सकटकी स्थिति अभी बीती नही है। इस-लिए मैं अपना अनुरोध दोहराते हुए अविलम्ब राहतकी माँग कर रहा हूँ। यदि सम्भव हो तो मैं पिछली रातके अनुभवसे बचना चाहूँगा। मैं तो यही चाहता हूँ कि

मरीजके उपचारसे सम्बन्धित मेरे अनुरोधोंकी स्वीकृतिमें विलम्ब होने से जो परेशानियाँ होती है उनका अन्त हो जाये। डॉ० मेहता तथा वैद्यराज दोनोंको काफी विलम्बके बाद ही यहाँ आने दिया गया। कीमती समय गँवाया गया, जिससे मरीजके स्वस्थ होने की सम्भावना पहलेसे ज्यादा अनिश्चित हो गई है। मुझे आशा है कि आप ऐसा अधिकार प्राप्त कर सकेंगे कि यदि मरीजकी हालतको देखते हुए आवश्यक हो तो वैद्यजी रातको कैम्पमें ठहर सकें। मरीजको बराबर देखभालकी जरूरत है।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३२) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ७६, पृ० २९९ से भी

६७. पत्र: बम्बईके जेल-महानिरीक्षकको

अविलम्बनीय

नजरबन्दी कैम्प
१६ फरवरी, १९४४

जेल-महानिरीक्षक
पूना

महोदय,

मैं अपने १४ फरवरीके पत्रके[1] क्रममें यह पत्र लिख रहा हूँ।

जब मैंने वैद्यराजकी माँग की थी[2] और श्रीमती कस्तूरबाका इलाज बदलने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी[3] और सरकारी चिकित्सकको हर प्रकारकी जिम्मेदारी से बरी कर दिया था तब स्वाभाविक रूपसे मैंने ऐसा मान लिया था कि वैद्यराज इलाजके सिलसिलेमें जो-कुछ भी सुविधाएँ आवश्यक समझेंगे वे उन्हें दी जायेंगी। मरीजकी दिनकी अपेक्षा रातें कहीं ज्यादा बुरी बीतती हैं और वस्तुतः रातमें ही लगातार उनके देख-रेखकी जरूरत होती है। वैद्यराजको लगता है कि मौजूदा परिस्थितिमें उन्हें इलाजके लिए ठीक सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं।

बुलाने पर तुरन्त पहुँच सकें, इस दृष्टिसे वैद्यराज पिछले तीन दिनोंसे रातके समय इस कैम्पके फाटकके बाहर अपनी कारमें ही सोते है और हर रात उन्हें कमसे-कम एक बार बुलाना ही पड़ा है। यह अत्यन्त अस्वाभाविक स्थिति है और हालाँकि वैद्यराजमें मरीजकी खातिर स्वयं असुविधा सहने की अपार क्षमता दिखाई देती है,

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२ और ३. देखिए पृ० २३४-३६, २३८-३९ और २४२-४३।

तथापि उनकी उदारताका अनुचित लाभ उठाना मेरे लिए मुनासिब नही है। इसके अलावा इससे अधीक्षक महोदय और उनके कर्मचारियों (बल्कि वस्तुतः पूरे कैम्प)के आराममें रातमें एक या अधिक बार खलल पड़ता है। उदाहरणके लिए, पिछली रात श्रीमती गांधीको अचानक कँपकँपीके साथ बुखार आ गया। वैद्यराजको, जो रात साढ़े दस बजे ही अहातेसे बाहर गये थे, आधी रातको बारह बजे बुलाना पड़ा। वे तो मरीजके पास और अधिक देर रहना चाहते थे, किन्तु मुझे शीघ्र ही उनसे बाहर जाने को कहना पड़ा, क्योंकि वे जितनी देर वहाँ रुकते उतनी देर अधीक्षक महोदय और उनके कर्मचारियोंको भी जागते रहना पड़ता, जिसमें सम्भवतः पूरी रात ही बीत जाती। और ऐसा मैं अपनी जीवन-संगिनीतक को बचाने के लिए नही कर सकता, विशेष रूपसे जब मैं यह जानता हूँ कि इसका एक मानवोचित उपाय भी है।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वैद्यराज मरीजकी देख-भाल लगातार करते रहना आवश्यक मानते हैं। वे उनकी दशाके अनुसार क्षण-क्षण दवा बदलते रहते हैं। डॉ० गिल्डर तथा डॉ० नैयरकी सेवा मुझे हर समय उपलब्ध है, क्योंकि वे मित्रोंसे भी बढ़कर है और मरीजके लिए यथाशक्य सब-कुछ करने को तैयार रहते है। किन्तु मैं पिछले पत्रमें लिख चुका हूँ कि उनकी चिकित्सा-पद्धतिसे एक नितान्त भिन्न चिकित्सा-पद्धतिके चालू रहते वे कुछ कर नही सकते। उनका ऐसा करना स्वभावतः अव्यावहारिक तो है ही, साथ ही वह मरीजके प्रति और वैद्यराज तथा स्वयं उनके अपने प्रति भी अन्याय होगा।

इसलिए मैं निम्नलिखित तीन वैकल्पिक सुझाव पेश करता हूँ :

१. वैद्यराज मरीजके हितमें जितने दिनतक आवश्यक समझें, उन्हें कैम्पमें दिन-रात रहने दिया जाये।

२. यदि सरकार इससे सहमत न हो तो मरीजको पैरोलपर रिहा कर दिया जाये, ताकि वे वैद्यके इलाजका पूरा लाभ उठा सकें।

३. यदि सरकारको दोनोंमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकार्य नही हो तो मेरा अनुरोध है कि मुझे मरीजकी देख-भालकी जिम्मेदारीसे मुक्त कर दिया जाये। यदि पतिके नाते जैसा वह चाहती है या जो मैं आवश्यक समझता हूँ वह सहायता मैं उसके लिए प्राप्त नही कर सकता तो मेरा अनुरोध है कि मुझे सरकार अपनी पसन्दकी किसी और जेलमें भेज दे। मरीज जो घोर कष्ट सह रही है उसका असहाय दर्शक बनने को मुझे मजबूर न किया जाये।

मरीजके बार-बार अनुरोध करने पर सरकारने कृपापूर्वक डॉ० मेहताको उसे देखने आने की अनुमति दी है। उनकी सहायता तो बहुमूल्य है, लेकिन वे दवा नही देते। डॉ० मेहता जो शरीर-उपचार करते हैं उसकी मरीजको आवश्यकता है और उससे उसे काफी आराम भी मिलता है, किन्तु दवाओंके बिना भी उसका गुजारा नही। और दवाएँ तो डाक्टर या वैद्यराज ही दे सकते है। डाक्टरी इलाज तो पहले ही बन्द हो चुका है। यदि इस पत्रका शामतक सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला

तो मुझे वैद्यराजका उपचार भी रोक देना पड़ेगा। मरीजको जिस औषधोपचार की आवश्यकता है, यदि वह उसे पूरा-पूरा नहीं मिल सकता तो उसे बिलकुल ही बन्द कर देना मुझे इष्ट होगा।

यह पत्र मैं रातके दो बजे मरीजके बिस्तरके पास बैठा हुआ लिख रहा हूँ। वह जीवन-मृत्युके बीच झूल रही है। यह बताने की जरूरत नहीं कि उसे इस पत्रकी कोई जानकारी नहीं है। अब वह स्वयं कोई निर्णय करने की स्थितिमें नहीं रह गई है।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३३) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ७६, पृ० ३११-१३ से भी

६८. तार: भारत सरकारके वित्त सदस्यको

एक्सप्रेस तार

नजरबन्दी कैम्प
१६ फरवरी, १९४४

माननीय वित्त सदस्य[1]
नई दिल्ली

गांधी-अर्विन समझौतेकी नमक-सम्बन्धी धारापर आपका वक्तव्य[2] पढ़ा। इस सम्बन्धमें सर जॉर्ज शुस्टर[3] द्वारा जारी की गई उस विज्ञप्ति की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ जिसमें उस धाराके

१. सर जेरेमी रेजमैन

२. केन्द्रीय विधान-सभामें केन्द्रीय उत्पादन-शुल्क-सम्बन्धी कानूनमें संशोधन करने के लिए वित्त सदस्य द्वारा प्रस्तुत विधेयकपर बहसके दौरान १४ फरवरीको टी० टी० कृष्णमाचारी (नेशनेलिस्ट पार्टी) ने एक संशोधन पेश किया, जिसमें उस प्रथाको कानूनी स्वीकृति प्रदान करने का अनुरोध किया गया था जो घरेलू इस्तेमालके लिए बनाये जानेवाले नमकके सम्बन्धमें ३ मार्च, १९३१ के गांधी-अर्विन समझौतेके समयसे ही कायम थी। वित्त सदस्यने कहा था कि "सरकारका इरादा गांधी-अर्विन समझौतेकी शर्तोंसे पीछे हटने का नहीं है और अगर कोई वैधानिक कठिनाई न हो तो वह सदनकी इच्छाको स्वीकार करने को तैयार है।" वित्त सदस्यने यह भी कहा था कि "सरकार किसी भी व्यक्ति द्वारा घरेलू उपयोगके लिए नमक एकत्र करने या बनाने पर कोई पाबन्दी लगाने की बात नहीं सोच रही है" (*इंडियन एनुअल रजिस्टर*, १९४४, जिल्द १, पृ० १३४)।

३. उस समयके वित्त सदस्य; उनके तथा उनके उत्तराधिकारी सर जेम्स ग्रिगके साथ १९३४ में गांधीजी के पत्र-व्यवहारके लिए देखिए खण्ड ५७ और ५८।

फलितार्थोंकी व्याख्या की गई थी। कोई भी नया सुधार उस विज्ञप्तिके अनुरूप ही होना चाहिए।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० १३-२, पृ० ५

६९. पत्र : लॉर्ड वैवेलको

१७ फरवरी, १९४४

प्रिय मित्र,

मुझे अभीतक आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, फिर भी मैं जान-बूझकर आपको "प्रिय मित्र" कहकर सम्बोधित कर रहा हूँ। ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधिगण मुझे अंग्रेजोंका, यदि सबसे बड़ा नहीं तो एक बड़ा शत्रु अवश्य ही मानते हैं। चूँकि मैं अपने-आपको मानव-जातिका, जिसमें अंग्रेज भी शामिल हैं, मित्र और सेवक मानता हूँ, इसलिए अपनी सद्भावनाके प्रतीक-स्वरूप मैं आपको, अर्थात् भारतमें अंग्रेजोंके सर्वप्रमुख प्रतिनिधिको, अपना "मित्र" कहकर संम्बोधित कर रहा हूँ।

२. कुछ अन्य लोगोंके साथ-साथ मुझे भी एक सूचना-पत्र मिला है, जिसमें पहली बार मुझे मेरी नजरबन्दीका कारण बताया गया है और नजरबन्दीके विरुद्ध आवेदन भेजने का अधिकार भी मुझे दिया गया है। मैंने अपना उत्तर[2] विधिवत् भेज दिया है, किन्तु अभीतक सरकारकी ओरसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है। तेरह दिनोंकी प्रतीक्षाके बाद एक स्मरण-पत्र[3] भी भेजा है।

३. मैंने ऊपर कहा है कि कुछ लोगोंको ही सूचना-पत्र मिले हैं। ऐसा मैंने इसलिए कहा है कि इसी कैम्पके हम छः व्यक्तियोंमें से केवल तीनको सूचना-पत्र मिले हैं। मैं मानता हूँ कि सभीको यथासमय सूचना-पत्र प्राप्त हो जायेंगे। किन्तु मेरे मनमें यह शंका घर कर गई है कि ये सूचनाएँ मात्र औपचारिकताके निर्वाहके

१. वित्त सदस्यके पत्रमें, जो बम्बई सरकारके २५ फरवरीके पत्रके साथ गांधीजी को भेजा गया, बताया गया था कि "सदनमें बहसके बाद यह तय पाया गया कि १९३१ की विज्ञप्तिके अनुसार इस मामलेकी जो व्यवस्था अबतक चली आ रही है, उसीको कायम रहने देना सबसे अच्छा रास्ता है, और सरकार उस विज्ञप्तिकी शर्तोंका पालन बड़ी सावधानीसे करती रही है। इसलिए किसी संशोधनकी आवश्यकता नहीं है।"

२ और ३. देखिए पृ० २३२-३३ और २४२।

लिए भेजी गई हैं, इनका प्रयोजन न्याय प्रदान करना नहीं है। मैं दलीलोंसे इस पत्रको बोझिल नहीं बनाना चाहता। मैं तो केवल उसी बातको दोहराना चाहता हूँ जो आपके पूर्वाधिकारीसे पत्र-व्यवहारके दौरान कह चुका हूँ[1] — अर्थात् यह कि कांग्रेस और मैं, हमारे ऊपर लगाये गये आरोपोंके सम्बन्धमें पूर्णतः निर्दोष हैं। सचाई सामने लाने का एकमात्र उपाय एक ऐसे निष्पक्ष न्यायाधिकरणकी नियुक्ति है जो सरकारके पक्षकी और सरकारके विरुद्ध कांग्रेसके पक्षकी छानबीन करे।

४. हालमें विधान-सभामें रिहाई प्रस्ताव[2] और श्रीमती सरोजिनी देवीपर लगाये हुए जबानबन्दी आदेशके[3] सम्बन्धमें सरकारकी ओरसे जो भाषण हुए हैं वे मेरी दृष्टिमें आगसे खेलने के समान ही हैं। मैं जापानी फौजोंकी पराजय और मित्र-राष्ट्रोंकी विजयमें भेद मानता हूँ। मित्र-राष्ट्रोंकी विजयमें भारतकी विदेशी दासतासे मुक्ति भी समाहित होनी चाहिए। भारतकी आत्मा विदेशी प्रभुत्वसे पूर्ण मुक्ति चाहती है और इसलिए वह ब्रिटेन या किसी अन्य देशके प्रभुत्वके समान ही जापानके प्रभुत्वका भी प्रतिरोध करेगी। कांग्रेस उस राष्ट्र-भावनाका पूरी तरह प्रतिनिधित्व करती है। अब कांग्रेस एक ऐसी संस्थाके रूपमें विकसित हो चुकी है जिसकी जड़ें भारत भूमिमें बहुत गहरी फैल चुकी हैं। इसलिए मैं यह पढ़कर भौंचक्का रह गया कि जो स्थिति चल रही है, सरकार उससे सन्तुष्ट है। सरकारको भारतसे जितने सैनिक, या जितने धनकी अपेक्षा है वह सब-कुछ मिल ही रहा है। सरकारका तन्त्र भी निर्विघ्न चल रहा है। यदि शीघ्र ही ब्रिटेनके उच्च पदस्थ लोग इस आत्म-सन्तोषके स्थानपर अपने हृदयोंको टटोलना शुरू नहीं करते तो यह आत्म-सन्तोष ब्रिटेन, भारत और विश्वके लिए अनिष्ट सम्भावनाओंसे भरा हुआ है।

५. आज जब कि एक ऐसा विश्व-संघर्ष चल रहा है जिसकी लपेटमें सभी राष्ट्रों और इस प्रकार सम्पूर्ण मानव-जातिका भाग्य आ गया है, भविष्यके लिए दिये जानेवाले वचनोंका कोई मूल्य नहीं है। यदि इस युद्धका अन्त इससे भी अधिक रक्तरंजित-युद्ध — यदि इससे भी अधिक रक्तरंजित-युद्ध सम्भव हो तो — की तैयारी के रूपमें नहीं, बल्कि विश्व-शान्तिकी स्थापनाके रूपमें होना है तो समयकी आकुल

१. भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको लिखे पत्रोंमें; देखिए पृ० १५९ और २१९।

२. ८ फरवरीको केन्द्रीय विधान-सभामें लालचन्द नवलरायका राजनीतिक बन्दियोंकी रिहाईका प्रस्ताव अस्वीकार हो गया। गृह-सदस्य सर रेजिनल्ड मैक्सवेलने अपने भाषणमें कहा कि "यदि सरकारसे कांग्रेसी नेताओंको रिहा करने को कहा जाये तो उसे यह भरोसा भी तो दिलाना चाहिए कि यह रिहाई भारत और युद्ध-प्रयत्नोंके लिए लाभदायक सिद्ध होगी" (इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९४४, जिल्द १, पृ० १३१)।

३. भारत सुरक्षा नियमोंके अन्तर्गत २६ जनवरीको सरोजिनी नायडूके खिलाफ जारी किये गये इस आदेशके लिए सरकारकी निन्दाके निमित्त ७ फरवरीको ए० सी० दत्तने एक स्थगन-प्रस्ताव पेश किया, जिसे विधान-सभाने अस्वीकार कर दिया। निषेधाज्ञाके पक्षमें सफाई देते हुए सर रेजिनल्ड मैक्सवेलने अपने भाषणमें कहा कि श्रीमती नायडूको भाषण-स्वातन्त्र्य देना कांग्रेस कार्य-समितिके उन अन्य सदस्योंके प्रति अन्याय होगा जो इस स्वतन्त्रतासे वंचित हैं। (वही)।

आवश्यकता है कि इसी क्षण कुछ किया जाये। इसलिए सच्चा युद्ध-प्रयत्न यही होगा कि भारतकी माँग पूरी की जाये। "भारत छोड़ो" प्रस्ताव उसी माँगकी जीवन्त अभिव्यक्ति है, और भारत सरकारने बिना किसी आधारके इस प्रस्तावके पीछे जिस दुष्टतापूर्ण और जहरीले उद्देश्यका आरोप लगाया है वैसा कुछ उसमें नही है। इन शब्दोंमें सम्पूर्ण मानवताके सन्दर्भमें ब्रिटेनके प्रति अधिकसे-अधिक मैत्रीका भाव भरा हुआ है।

६. मुझे इतना ही कहना था। मैंने सोचा कि यदि मैं अंग्रेजोंका मित्र होने का दावा करता हूँ — और मैं सचमुच ऐसा दावा करता भी हूँ — तो अपने गहनतम भावोंसे आपको अवगत कराने में मुझे किसी भी कारणसे चूकना नही चाहिए। मुझे इस कैम्पमें रहना कोई सुखद नहीं लगता, जहाँ मेरे कुछ भी प्रयास किये बिना मेरे लिए सब सुख-सुविधाएँ जुटा दी जाती है, जब कि मैं जानता हूँ कि बाहर करोड़ों लोग अन्नाभावके कारण भुखमरीकी दशामें है। किन्तु यदि मुझे वह आहार न मिल सके जिसको पाकर ही जीना सार्थक होता है तो मैं बाहर जाकर भी सर्वथा असहाय महसूस करूँगा।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ११८। सी० डब्ल्यू० १०५०५ से भी; सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

७०. पत्र : बम्बईके जेल-महानिरीक्षकको

नजरबन्दी कैम्प
१८ फरवरी, १९४४

जेल-महानिरीक्षक
पूना

महोदय,

वैद्यराज श्री शिव शर्माने खेदपूर्वक मुझे सूचना दी है कि अपनी सामर्थ्य-भर सभी उपाय करने के बाद भी वे श्रीमती कस्तूरबाकी दशामें कोई ऐसा सुधार लाने में असमर्थ रहे हैं जिससे उन्हे रोगिणीके स्वास्थ्य-लाभकी आशा दीख पड़े। वैद्यराजका इलाज तो मात्र यह देखने के लिए था कि आयुर्वेदिक उपचारसे कुछ ज्यादा लाभ पहुँचना सम्भव है या नही। इसलिए अब मैंने डॉ० गिल्डर तथा डॉ० नैयरसे अपना स्थगित उपचार फिरसे शुरू करने को कहा है। डॉ० मेहताकी सहायता तो पूरे समय जारी रही और आगे भी रोगिणीके स्वास्थ्य-लाभ करने या मृत्यु होने तक चलेगी।

१. २५ फरवरीके अपने उत्तरमें लॉर्ड वेवेलने कहा कि सूचना-पत्र दिये जाने के सवालपर "फौरन विचार किया जायेगा।" उन्होंने १७ फरवरीको विधानमण्डलके सम्मुख दिये हुए अपने भाषणकी प्रतिलिपि भी साथ भेजी और कहा कि उससे "उनका दृष्टिकोण" स्पष्ट हो जाता है। इस भाषणपर गांधीजी की टिप्पणीके लिए देखिए "पत्र: लॉर्ड वेवेलको" ९-३-१९४४।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि वैद्यराजने अत्यधिक परिश्रम और ध्यानसे इस अत्यन्त कठिन रोगका उपचार किया है और यदि वे चाहते तो मैं सहर्ष उन्हें इलाज जारी रखने देता। किन्तु अपने हालके नुस्खेका अपेक्षित परिणाम न निकलते देखकर अब उपचार जारी रखना उन्हें इष्ट नही है। डॉ० गिल्डर तथा डॉ० नैयरने मुझे बताया है कि वे लोग शामक, रेचक आदि औषधियोंके मामलेमें वैद्यराजकी मदद लेना चाहते हैं। डाक्टरों तथा रोगिणी दोनोंकी दृष्टिसे ये औषधियाँ लाभदायक सिद्ध हुई हैं। आशा है, इसके लिए वैद्यराजके यहाँ आने पर सरकारको कोई आपत्ति नहीं होगी। कहने की जरूरत नहीं कि इस परिवर्तित परिस्थितिमें उनके रातमें आने की आवश्यकता नहीं रहेगी। मैं दुःखके साथ यह कहने को विवश हूँ कि वैद्यराज और डॉ० मेहताकी सेवा प्राप्त करने के मेरे अनुरोधको स्वीकार करने में यदि सर्वथा अनावश्यक विलम्ब न किया गया होता तो रोगिणीकी अवस्था आज जितनी बिगड़ गई है उतनी न बिगड़ी होती। मैं भली-भाँति जानता हूँ कि ईश्वरकी इच्छाके बिना कुछ भी नही होता, लेकिन मनुष्य अपनी आँखोंसे जो परिणाम देखता है उसके सिवाय उस इच्छाका अर्थ लगाने का उसके पास और कोई साधन नहीं है।

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३४) से। बॉम्बे सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ७६, पृ० ३३५ से भी

७१. तार: शीरींबाई जालभाई रुस्तमजीको[1]

अविलम्बनीय

[२१ फरवरी, १९४४ या उसके पूर्व][2]

शीरीबाई जालभाई रुस्तमजी
बॉक्स १६१०, डर्बन
दक्षिण आफ्रिका

धन्यवाद। बा धीरे-धीरे अन्तकी ओर जा रही है। मणिलाल और सुशीला अपने काममें जुटे रहें। स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स: होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० ७६-१, १९४३-४४

१. यह कस्तूरबा गांधीके नाम शीरींबाईके उस तारके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें उन्होंने कस्तूरबाकी बीमारीपर दुःख प्रकट करते हुए कहा था कि यदि वे चाहें तो मणिलाल और सुशीला गांधीके भारत जाने का प्रबन्ध कर दे सकती हैं।

२. यह तार बम्बई सरकारने भारत सरकारके गृह-विभागको २१ फरवरी, १९४४ को अग्रेषित किया था।

७२. कस्तूरबाके अन्तिम संस्कारके सम्बन्धमें सरकारसे निवेदन[1]

[२२ फरवरी, १९४४][2]

१. शव मेरे पुत्रों और सम्बन्धियोंको सौंप दिया जाये, जिसका मतलब यह है कि अन्त्येष्टि-क्रिया सार्वजनिक रूपसे होगी, जिसमें सरकारकी ओरसे कोई हस्त-क्षेप नहीं होगा।

२. यदि यह सम्भव न हो तो अन्तिम संस्कार उसी तरह किया जाये जिस तरह महादेव देसाईका किया गया था।[3] यदि सरकार दाह-संस्कारके अवसरपर केवल सम्बन्धियोंको ही उपस्थित रहने दे तो मैं यह कृपा केवल इसी शर्तपर स्वीकार करूँगा कि सभी मित्रोंको, जो मेरे लिए सम्बन्धियोंके तुल्य ही हैं, उप-स्थित रहने दिया जाये।

३. यदि सरकारको यह भी मान्य न हो तो जिन लोगोंको कस्तूरबाको देखने के लिए आने दिया गया है उन सबको मैं विदा कर दूँगा और केवल कैम्पके निवासी (नजरबन्द लोग) ही दाह-संस्कारके अवसरपर उपस्थित रहेंगे।

मैं इस बातके लिए बहुत फिक्रमन्द रहा हूँ — और इसके आप साक्षी होंगे — कि अपनी जीवन-संगिनीकी इस अत्यन्त कठिन बीमारीसे कोई राजनीतिक लाभ न उठाऊँ। किन्तु मैंने हमेशा यह चाहा है कि सरकार जो-कुछ भी करे शालीनतासे करे। लेकिन कहना पड़ेगा कि अबतक शालीनताका अभाव ही रहा है। यह आशा रखना कोई बहुत बड़ी बात तो न होगी कि अब रोगिणीका देहान्त हो जाने पर सरकार अन्त्येष्टिसे सम्बन्धित जो निर्णय करे वह शालीनतापूर्वक किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २३३

१ तथा २. इस तिथिको शामको ७.३५ पर कस्तूरबा गांधीका देहान्त हो गया। साधन-सूत्रमें प्यारेलालने बताया है कि "२२ फरवरी, १९४४को रातमें ८ बजकर ७ मिनटपर जेल-महानिरीक्षकने सरकारकी ओरसे कस्तूरबाकी अन्त्येष्टि-क्रियाके सम्बन्धमें गांधीजी से उनके विचार पूछे थे। गांधीजी द्वारा बोलकर लिखाया गया उत्तर उन्होंने लिपिबद्ध कर लिया।" देखिए "पत्र: भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको" ४-३-१९४४ भी।

३. महादेव देसाईकी मृत्यु १५ अगस्त, १९४२ को हुई थी। उनका दाह-संस्कार आगाखाँ पैलेसके अहातेमें ही हुआ था और अग्नि-संस्कार स्वयं गांधीजी ने किया था।

७३. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२६ फरवरी, १९४४

अतिरिक्त सचिव
गृह-विभाग

महोदय,

श्रीमती सरोजिनी देवीपर लगाई गई निषेधाज्ञाको लेकर केन्द्रीय विधान-सभामें जो बहस[1] हुई उसके दौरान माननीय गृह-सदस्य द्वारा दिया गया भाषण मैंने पढ़ा है। उस भाषणमें अन्य बातोंके साथ-साथ श्रीमती मीराबाई और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहार तथा उसके प्रकाशनके बारेमें सरकारके इनकारका भी उल्लेख है। भाषणका प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है:

> उन्होंने (श्रीमती सरोजिनी देवीने) कुमारी स्लेड द्वारा श्री गांधीको लिखे गये पत्रका[2] और श्री गांधी द्वारा दिये गये उसके उत्तरका[3] उल्लेख किया है, और इस मामलेको बहसमें भी उठाया गया है और मुझसे पूछा गया है कि उस पत्रका प्रचार क्यों नहीं किया गया। कांग्रेसी नेताओंकी नजरबन्दीसे बहुत पहले वह पत्र तथा उसका उत्तर लिखा गया था। यदि श्री गांधी उस पत्रका प्रचार करना चाहते तो ऐसा करने की उन्हें स्वयं पूरी स्वतन्त्रता थी। किन्तु उनके नाम वह एक गोपनीय पत्र था, और सरकार इस प्रकारके गोपनीय पत्रका प्रकाशन करे, इसका कोई कारण मुझे नहीं दीखता। मैं यह भी कह दूँ कि उसका प्रकाशन कांग्रेसके पक्षकी दृष्टिसे लाभदायक नहीं होगा।
>
> यह भी कहा गया है कि श्रीमती नायडू जापानकी हिमायती होने के परोक्ष आरोपके विरुद्ध कांग्रेसका बचाव पेश करना चाहती हैं। सरकारने कभी भी यहाँ, अथवा विलायतमें, कांग्रेसपर जापान-समर्थक होने का आरोप नहीं लगाया है। 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' नामक पुस्तिकामें उसका जो संकेत है वह स्वयं पण्डित नेहरूके एक वक्तव्यके उद्धरणसे सम्बन्धित है। वह पूरा उद्धरण

१. देखिए पृ० २४८, पा० टि० ३।
२ और ३. देखिए पृ० १८६-९०।

पढ़कर सुनाने का समय मेरे पास नहीं है, किन्तु यदि माननीय सदस्यगण 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' नामक पुस्तिकामें उस उद्धरणको देखेंगे तो उन्हें वह विचाराधीन अंश आसानीसे मिल जायेगा।

यदि यह रिपोर्ट सही है तो बहुत विचित्र है।

पहली बात तो यह कि जहाँतक श्रीमती मीराबाई और मेरे बीच हुए इस पत्र-व्यवहारको प्रकाशित न करने का सम्बन्ध है, जबतक मेरे जापान-समर्थक होने के आरोपका प्रचार नहीं किया गया था मेरे द्वारा उसका प्रकाशन अनावश्यक था।

दूसरे, जब दोनों पत्र-लेखकोंने पत्र-व्यवहारके प्रकाशनका स्वयं अनुरोध किया है तब सरकारको "गोपनीय" पत्रोंके प्रकाशनमें संकोच क्यों महसूस होता है?

तीसरे, जब माननीय गृह-सदस्यके अनुसार इस पत्र-व्यवहारके प्रकाशनसे कांग्रेस का कोई भला नहीं होगा तो फिर मेरी समझमें नहीं आता कि सरकार उसे प्रकाशित क्यों नहीं करना चाहती।

चौथे, सरकार द्वारा एक बड़ा प्रासंगिक तथ्य इरादतन या बेइरादतन दबा दिया गया है। वह तथ्य यह है कि श्रीमती मीराबाईने लॉर्ड लिनलिथगोको एक पत्र[1] लिखा था, जिसमें उन्होंने उस समय लन्दनके अखबारोंमें मुझपर जापान-समर्थक होने के आरोप लगाते हुए मेरे खिलाफ अपवादपूर्ण प्रचार किये जाने की ओर उनका ध्यान खींचा था और उनसे अनुरोध किया था कि वे इन आरोपोंका खण्डन करें। लॉर्ड लिनलिथगोके नाम पत्रके साथ मीराबाईने उपर्युक्त पत्र-व्यवहारकी प्रति भी भेजी थी और उसे प्रकाशित करने को कहा था। मीराबाईका पत्र २४ दिसम्बरको अर्थात् सरकार द्वारा प्रकाशित 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' नामक पुस्तिकाके प्रकाशन से बहुत पहले लिखा गया था, क्योंकि पुस्तिकापर १३ फरवरी, १९४३ की तारीख है।

पाँचवें, कार्य-समितिके सम्मुख पण्डित जवाहरलाल नेहरूके कथित वक्तव्यके विषयमें मैं पहले ही सरकारी पुस्तिकाका उत्तर[2] देते हुए स्पष्ट दर्शा चुका हूँ कि इलाहाबादमें कार्य-समितिकी बैठकमें हुई बहसकी अनधिकृत रिपोर्टका पण्डित नेहरूने दैनिक समाचारपत्रोंमें जोरदार खण्डन[3] प्रकाशित किया था, और इस खण्डनके बावजूद सरकारने उसका उपयोग करके सर्वथा गलत काम किया है।

माननीय गृह-सदस्यका भाषण और सरकारका उन कांग्रेसजनोंके विरुद्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष आरोप लगाते जाना जिन्हें कैद करके उन आरोपोंका उत्तर देने में अक्षम बनाया जा चुका है, मेरे लिए समझ पाना कठिन है। अतएव मैं सरकारसे आशा करता हूँ कि वह कमसे-कम उक्त पत्र-व्यवहार, अर्थात् लॉर्ड लिनलिथगोके नाम श्रीमती

१. देखिए पृ० १८४-८६।
२ और ३. देखिए पृ० ११३-१४ और २०६-७।

मीराबहनका २४ दिसम्बर, १९४२ का पत्र तथा उसके साथ भेजे दूसरे पत्र, प्रकाशित कर देगी।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ११६-१७

७४. पुर्जा: मनु गांधीको – मौन-दिवसपर

[२७ फरवरी, १९४४][2]

चि० मनुड़ी,

क्या तू ठीकसे सोई नही? तुझे और प्रभावतीको यहाँ रखने के बारेमें मैंने कल लम्बा पत्र तो लिखा, लेकिन रातको विचारोंके मारे नींद न आई। आखिर प्रकाश दिखाई दिया। हम ऐसी माँग नही कर सकते। अगर करें, तो फिर जेल कैसी? हमें वियोग सहना ही पड़ेगा। तू तो समझदार है न। दुःख भूल जा। तुझे तो मेरा काम करना है। रोना छोड़ देना। खुश हो जा। जेलसे बाहर जाकर जो सीख सके, सीखना। इतनी सेवा करने के बाद तेरा तो हर स्थितिमें कल्याण ही है।

ज्यादा जब मौन खुलेगा तब कहूँगा। तेरी माँ तो मैं ही हूँ। इतना समझ लेगी तो काफी होगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

इस पत्रको सँभालकर रखना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१. सर रिचर्ड टॉटनमने ११ मार्चको इसका उत्तर देते हुए लिखा: "...मुझे यह कहने का निर्देश मिला है कि सरकारकी रायमें विचाराधीन पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करने से कोई लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। जहाँतक सरकारकी बात है, गृह-सदस्यके भाषणमें यह कथन पहले ही मौजूद है: 'सरकारने कभी भी यहाँ, अथवा इंग्लैण्डमें, कांग्रेसपर जापान-समर्थक होने का आरोप नहीं लगाया है।' सरकारकी समझमें नहीं आता कि इसको 'सरकारका कांग्रेसजनोंके विरुद्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष आरोप लगाते जाना' भला किस प्रकार माना जा सकता है। और पण्डित जवाहरलाल नेहरूके सम्बन्धमें मैं आपका ध्यान फिरसे अपने १४ अक्टूबर, १९४३ के पत्रके दूसरे अनुच्छेदकी ओर दिलाना चाहूँगा, जिसमें स्पष्ट कर दिया गया है कि उन्होंने अपने सार्वजनिक वक्तव्यमें उन शब्दोंका खण्डन नहीं किया था जो कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी नामक पुस्तिकामें उद्धृत किये गये हैं और जिनपर आपने १५ जुलाई, १९४३ के अपने पत्रके १८ वें अनुच्छेदमें आपत्ति प्रकट की है। अतएव उनके खण्डनके बावजूद सरकार द्वारा उस अंशका उपयोग किये जाने का सवाल ही नहीं उठता।"

२. मनु गांधीकी डायरीके अनुसार यह पुर्जा उन्हें २७ फरवरीको मिला था।

७५. पुर्जा : मनु गांधीको – मौन-दिवसपर

आगाखाँ पैलेस
२७ फरवरी, १९४४

चि० मनुड़ी,

मुझे तेरे बारेमें बहुत चिन्ता होती है। तुझ-जैसी तो तू ही है। भोली, सरल और परोपकारी है। सेवा करना तेरा धर्म बन गया है। लेकिन तू अनपढ़ है और मूर्ख भी है। यदि तू अनपढ़ ही रही तो तू पछतायेगी और यदि मैं जीवित रहा तो मैं भी पछताऊँगा। तेरे बिना मुझे अच्छा नही लगेगा, लेकिन तुझे अपने पास रखना भी पसन्द नही है, क्योकि यह दोष और मोह माना जायेगा। तुझे तो अभी राजकोट ही जाना चाहिए। वहाँ तुझे नारणदासका सत्संग मिलेगा। ऐसा संग तुझे और कही नही मिलेगा। वहाँ तू कार्य करने की कला सीखेगी, संगीत तो सीखेगी ही; गुजराती भी सीखेगी। बाकी जो हो सो ठीक है। यदि तू वहाँ कमसे-कम एक वर्ष रहेगी तो तेरा फूहड़पन दूर हो जायेगा। परिपक्व होने पर तू कराची जाये अथवा जहाँ मन चाहे वहाँ जाये तो तुझे सब-कुछ मिलेगा। कराचीमें अब गुरुदयालजी[1] तो नही रहनेवाले है। इसलिए वहाँ तो केवल तू शिक्षा ही प्राप्त कर सकेगी। यह भी उपयोगी है। बहुत सारी लड़कियोमें रहना अच्छा है, लेकिन जो बात राजकोटमें है वह कहीं नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

७६. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
४ मार्च, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार (गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

विधान-सभामें उठाये गये एक प्रश्नके उत्तरमें माननीय गृह-सदस्यने यह कहा बताते है :

> श्री गांधी तथा आगाखाँ पैलेसमें उनके साथ नजरबन्द दूसरे लोगोंके खर्चके लिए लगभग ५५० रुपये मासिककी व्यवस्था की गई है।[2]

१. गुरुदयाल मलिक

२. यह वक्तव्य सर रेजिनल्ड मैक्सवेलने २ मार्चको केन्द्रीय विधान-सभामें के० सी० नियोगी द्वारा उठाये गये एक प्रश्नके उत्तरमें दिया था।

गत २६ अक्टूबरके अपने पत्रमें मैंने आपको लिखा था:

> मुझे जिस विशाल भवनमें भारी पहरेके बीच नजरबन्द रखा जा रहा है उसे मैं सार्वजनिक धनका अपव्यय मानता हूँ। मैं तो किसी भी सामान्य कारागारमें सन्तोषपूर्वक अपने दिन काट सकता हूँ।

माननीय गृह-सदस्यका उपर्युक्त उत्तर मेरे लिए इस बातकी सख्त चेतावनी है कि ऊपर मैंने अपने जिस कथनका उल्लेख किया है, उसके विषयमें मुझे आगे कुछ करना चाहिए था। खैर, भूल तो जब सुधार ली जाये तभी ठीक। अतः मैं इस मामले को अब उठाता हूँ।

मेरे साथियों और मुझपर होनेवाला व्यय मात्र ५५० रुपये ही नहीं है। इसमें इस विशाल इमारतका (जिसका एक हिस्सा ही हमारे लिए खुला हुआ है) किराया, बाहर बिठाये गये भारी पहरेका खर्च और अधीक्षक, जमादारों और सिपाहियोंके रूपमें भीतरके कर्मचारियोंका व्यय भी जोड़ना होगा। इसके अतिरिक्त यहाँ रहनेवाले लोगोंकी सेवा और बगीचेकी देखभालके लिए यरवडासे लाये गये बन्दियोंका जो भारी दस्ता है वह अलग। मेरे दृष्टिकोणसे लगभग यह सारा व्यय पूर्णतः अनावश्यक है; और जब लोग भूखों मर रहे हैं, उस समय यह सब व्यय भारतीय जनताके प्रति लगभग एक अपराध ही है। मैं चाहता हूँ कि मुझे तथा मेरे साथियोंको सरकार अपनी पसन्दके किसी भी सामान्य कारागारमें भेज दे। अन्तमें मैं कहना चाहूँगा कि मैं इस दुखद विचारसे मुक्त नहीं हो सकता कि यह सारा खर्च भारतकी बेजबान जनतासे वसूल किये गये करोंसे पूरा किया जाता है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २६८-६९.

७७. पत्र: भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
४ मार्च, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार (गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

अपनी दिवंगत पत्नीके विषयमें यह पत्र लिखते हुए मुझे खेद और संकोच का अनुभव होता है; फिर भी सचाईका तकाजा है कि मैं यह पत्र लिखूँ।

१. देखिए पृ० २१७-१९।

अखबारोंकी खबरके अनुसार श्री बटलरने[1] २ मार्च, १९४४ को कॉमन्स-सभामें कहा :

"... उन्हें अपने नियमित परिचारकोंसे ही नहीं, बल्कि उनके परिवारवालोंने जिन लोगोंको चाहा उन सब लोगोंके हाथों हर सम्भव चिकित्सा और शुश्रूषाकी सुविधा मिल रही थी। ..."

मैं यह बात कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि उनकी नियमित परिचर्या करनेवाले लोगोंने जो-कुछ सम्भव था वह सब किया, लेकिन यह भी कहना चाहता हूँ कि दिवंगताकी या उनकी ओरसे मेरी माँगपर यदि कुछ सहायता मिली भी तो वह लम्बी प्रतीक्षाके बाद मिली और आयुर्वेदिक चिकित्सकको तभी आने दिया गया जब मुझे जेल-अधिकारियोंको यह बता देना पड़ा[2] कि यदि मैं रोगिणीको वे जो चाहें या जो मैं जरूरी समझूँ वह उपचार नहीं दिला सकता तो मुझे उनसे दूर भेज दिया जाये और उनके दारुण कष्टका असहाय दर्शक न बनाया जाये। और तब जेल-महानिरीक्षकको एक पत्र[3], जिसकी नकल साथमें भेज रहा हूँ, लिखने के बाद ही वैद्यराजकी सेवाओंका पूरा उपयोग मैं कर पाया। २७ जनवरी, १९४४ को मैंने डॉ० दिनशा मेहताको बुलाने के लिए लिखित रूपसे आवेदन किया।[4] उसके लगभग एक मास पूर्व से ही दिवंगता डॉ० दिनशा मेहताकी सहायताके लिए जेल-महानिरीक्षकसे बार-बार कह रही थीं। लेकिन डॉ० मेहताको ५ फरवरी, १९४४ से ही आने दिया गया। फिर, नियमित चिकित्सकों अर्थात् डॉ० नैयर तथा डॉ० गिल्डरने कलकत्ताके डॉ० विधानचन्द्र रायके साथ परामर्श करने के निमित्त ३१ जनवरी, १९४४ को लिखित आवेदन भेजा।[5] उनके लिखित निवेदन और बादके मौखिक अनुरोधोंकी तो सरकारने उपेक्षा ही कर दी।

श्री बटलरने यह भी कहा बताते हैं कि

श्रीमती गांधीकी रिहाईके लिए कोई आवेदन नहीं प्राप्त हुआ और भारत सरकारका विश्वास है कि उन्हें आगाखाँ पैलेससे हटाना उनके प्रति या उनके परिवारके प्रति दयापूर्ण आचरण नहीं होता।

यह तो सच है कि उन्होंने स्वयं या उनकी ओरसे मैंने ऐसा कोई अनुरोध नहीं किया (सत्याग्रही बन्दी होने के नाते यह अशोभनीय होता), किन्तु क्या यह उचित न होता कि सरकार श्रीमती गांधीके सामने या मेरे और उनके पुत्रोंके सम्मुख उनकी रिहाईका प्रस्ताव रखती? रिहाईके प्रस्ताव-मात्रसे उनके मनपर मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा कोई प्रस्ताव कभी नहीं किया गया।

१. शिक्षा बोर्डके अध्यक्ष आर० ए० बटलरने कॉमन्स-सभामें ब्रिटिश सरकारकी ओरसे श्रीमती कस्तूरबा गांधीकी मृत्युपर दुःख प्रकट किया था।

२. देखिए पृ० २४४-४६।

३. देखिए पृ० २४९-५०।

४. देखिए पृ० २३४-३६।

५. देखिए परिशिष्ट ९।

जहाँतक अन्त्येष्टि क्रियाका सवाल है, श्री बटलरने यह कहा बताते हैं:

मुझे सूचना मिली है कि श्री गांधीके आग्रहपर पूनाके आगाखाँ पैलेसके अहातेमें ही दाह-संस्कार किया गया और मित्रगण तथा रिश्तेदार वहाँ उपस्थित थे।

किन्तु मेरा वास्तविक अनुरोध,[1] निम्नलिखित रूपमें था, जिसे मैंने २२ फरवरी, १९४४ की रातमें ८ बजकर ७ मिनटपर जेल-महानिरीक्षकको बोलकर लिखवाया था। . . .

इस बातको सरकार शायद स्वीकार करेगी कि अपनी पत्नीकी लम्बी बीमारीको लेकर और इस सिलसिलेमें मुझे सरकारकी ओरसे जिन अड़चनोंका अनुभव हुआ उनको लेकर कोई राजनीतिक लाभ न उठाने की मैंने पूरी ईमानदारीसे कोशिश की है और अब भी मैं ऐसा कोई लाभ नहीं उठाना चाहता। किन्तु उनकी स्मृतिके प्रति, खुद अपने प्रति और सत्यके प्रति न्याय करने के लिए मैं सरकारसे कहता हूँ कि वह अब भी जो भूल-सुधार कर सकती हो करे। यदि अखबारी समाचार महत्त्वपूर्ण तथ्योंकी दृष्टिसे गलत है, अथवा इस सारे प्रसंगकी सरकारकी अपनी एक अलग व्याख्या है तो इस समूचे प्रसंगका सही विवरण और उसकी सरकारी व्याख्या, दोनों मुझे दिये जायें। यदि मेरी शिकायतको न्यायसंगत माना जाये तो मुझे विश्वास है कि भारत सरकारके अमेरिका-स्थित एजेंटका जो विचित्र वक्तव्य[2] अखबारोंमें आया है, उसमें भारत सरकार यथोचित संशोधन कर लेगी।[3]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २३३-३५

१. देखिए पृ० २५१।

२. खबर थी कि सर गिरिजाशंकर वाजपेयीने अमेरिकी जनताको सूचित किया था कि: "भारत सरकारने कई बार उनके (कस्तूरबाके) स्वास्थ्यका खयाल करके उनकी रिहाईका विचार किया, किन्तु वे अपने पतिके पास ही रहना चाहती हैं, इसलिए उनकी इच्छा मान ली गई। इसके अतिरिक्त आगाखाँ पैलेसमें रहने के कारण उन्हें महलमें ही रहनेवाले एक गण्यमान्य डाक्टरकी देखरेखका भी लाभ मिल रहा है।" (हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, जिल्द २, पृ० ७७६)।

३. सरकारके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट १० और पृ० २६८-७१ भी।

७८. पत्र : जनरल कैण्डीको

नजरबन्दी कैम्प
७ मई, १९४४

प्रिय जनरल कैण्डी,[1]

आपके शोकमें मेरी गहरी समवेदना आपके साथ है। मैं हालके अपने अनुभवसे जानता हूँ कि जीवन-संगिनीकी मृत्यु बच रहनेवाले के लिए कितनी दुःखद होती है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २३४३) से

७९. पत्र : लॉर्ड वेवेलको

९ मार्च, १९४४

प्रिय मित्र,

मेरे १७ फरवरीके पत्रके तत्परतापूर्ण उत्तरके[2] लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए। इससे पहले कि मैं और कुछ लिखूं, आपने तथा लेडी वैवेलने मेरी पत्नीके देहान्तपर जो समवेदना प्रकट की है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। वैसे, उनकी खातिर मैंने उनकी मृत्युका स्वागत किया है, क्योंकि उन्हे घोर यन्त्रणासे मुक्ति मिल गई लेकिन यह क्षति मैंने जितना सोचा था उससे ज्यादा अखर रही है। हम एक असामान्य दम्पति थे। हमने १९०६ में पारस्परिक सहमतिसे और कुछ अचेतन प्रयोगोके बाद आत्म-संयमको निश्चित रूपसे अपने जीवनके एक नियमके रूपमें अपना लिया था। यह मेरे लिए बहुत हर्षकी बात हुई कि इसके फलस्वरूप हम दोनों एक-दूसरेके इतने निकट हो गये जितने पहले कभी नही थे। हमारे अलग-अलग अस्तित्व नही रह गये। मेरे चाहे बिना ही उन्होंने स्वेच्छासे अपने-आपको मुझमे लीन कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे वास्तवमें मेरी अर्धांगिनी से भी बढकर हो गईं। वे हमेशासे प्रबल इच्छाशक्ति-सम्पन्न स्त्री थी, किन्तु आरम्भ के दिनोंमें मैं भूलसे उसे उनका हठीलापन समझता था। किन्तु उसी प्रबल इच्छा-

१. बम्बई सरकारके सर्जन-जनरल
२. देखिए पृ० २४९, पा० टि० १।

शक्तिके बलपर वे अनजाने ही अहिंसक असहयोगकी कला और उसके आचरणमें मेरी मार्ग-दर्शिका बन गईं। उसका आचरण मेरे अपने परिवारसे शुरू हुआ। १९०६ में जब मैंने राजनीतिक क्षेत्रमें उसका प्रयोग आरम्भ किया तो वह सत्याग्रहके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो एक अधिक व्यापक अर्थवाला तथा विशेष रूपसे उसीके लिए गढ़ा गया नाम था। दक्षिण आफ्रिकामें जब भारतीयोंकी गिरफ्तारीका सिलसिला शुरू हुआ तब सविनय प्रतिरोधियोंमें श्री कस्तूरबा भी शामिल थीं। उन्होंने मुझसे अधिक शारीरिक कष्ट भोगे। हालाँकि वे कई बार कारावास भोग चुकी थीं, किन्तु इस बारका कारावास, जिसमें उन्हें सभी शारीरिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त थी, उन्हें अच्छा नहीं लगा। अन्य अनेक व्यक्तियोंके साथ-साथ मेरी गिरफ्तारी और फौरन बाद ही उनकी अपनी गिरफ्तारीसे उनके मनको जबरदस्त धक्का लगा और उनका मन कड़वाहटसे भर गया। वे मेरी गिरफ्तारीके लिए बिलकुल तैयार नहीं थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकारको मेरी अहिंसावृत्तिपर विश्वास है और जबतक मैं स्वयं अपनेको गिरफ्तार न कराऊँ तबतक वह मुझे कभी गिरफ्तार नहीं करेगी। उन्हें वास्तवमें इतना गहरा आघात पहुँचा था कि गिरफ्तारीके बाद उन्हें बहुत सख्त अतिसार हो गया और यदि डॉ० सुशीला नैयरने, जो उनके साथ ही गिरफ्तार हुई थीं, उनकी चिकित्सा और देख-भाल न की होती तो इस नजरबन्दी कैम्पमें मेरे पास पहुँचने से पहले ही शायद उनका देहान्त हो गया होता। मेरा साथ पाकर उनका मन शान्त हो गया और बिना किसी नई दवा-दारूके उनका अतिसार ठीक हो गया। किन्तु उनके मनकी कड़वाहट नहीं गई। उसीके कारण उनका मन विक्षुब्ध रहने लगा, जिसके फलस्वरूप कष्टप्रद रूपसे, धीरे-धीरे उनका शरीर घुलता गया।

२. इन सब बातोंको देखकर आप शायद मेरी उस पीड़ाको समझ सकेंगे जिसका अनुभव मुझे सरकारकी ओरसे दिये गये वक्तव्यकी अखबारी रिपोर्ट पढ़कर हुआ। मैं मानता हूँ कि उस वक्तव्यमें उस व्यक्तिके सम्बन्धमें बड़ी दुःखद रीतिसे सत्यका त्याग कर दिया गया जो मेरे लिए असीम मूल्यवान थी। आपसे मैं अनुरोध करता हूँ कि मैंने भारत सरकार (गृह-विभाग)के अतिरिक्त सचिवको इस सम्बन्धमें जो शिकायत लिख भेजी है,[1] आप कृपया उसे मँगवाकर पढ़ें। कहते हैं कि युद्धमें सबसे पहली और भारी हानि सत्यकी ही होती है। काश, इस युद्धमें मित्र-राष्ट्रोंके मामलेमें बात इससे विपरीत होती!

३. अब मैं आपके विधान-मण्डलके सम्मुख दिये हुए भाषणकी बात लेता हूँ, जिसकी एक प्रति आपने कृपापूर्वक मुझे भेजी थी। जब वे अखबार प्राप्त हुए जिनमें वह छपा था, उस समय मैं दिवंगताकी मृत्यु-शय्याके पास था। श्री मीराबाईने एसोशिएटेड प्रेसकी रिपोर्ट मुझे पढ़कर सुनाई थी, किन्तु मेरा ध्यान कहीं और था। इसलिए इस बातसे खुशी हुई कि आपका भाषण आसानीसे पढ़े जाने लायक रूपमें मिल गया। अब मैंने उसे खूब ध्यानसे पढ़ा है। पढ़ने के बाद इच्छा हो उठी है कि उसके बारेमें दो-एक बातें कहूँ, खास तौरसे इसलिए और भी कि आपने कहा

१. देखिए पृ० २५६-५८।

है, जो विचार आपने व्यक्त किये है उन्हे "अन्तिम मान लेना जरूरी नही है।" मैं कामना करता हूँ कि यह पत्र पढ़कर आप अपने कुछ विचारोंको बदल सकें!

४. दूसरे पृष्ठके मध्यमें आपने "भारतीय जातियो" के कल्याणकी बात कही है। मैंने वाइसराय-पदसे की जानेवाली कई घोषणाओंमें पाया है कि भारतवासियोंका उल्लेख "भारतीय जाति" के रूपमें हुआ है। क्या ये दोनों शब्द् समानार्थक है?

५. पृष्ठ १३ पर भारत द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के सम्बन्धमें आपने कहा है:

> मेरा दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटेनवासियोंकी यह मात्र सच्ची कामना ही नहीं है, बल्कि वे इस लक्ष्यको शीघ्र ही पूरा हुआ देखना चाहते हैं। इसपर कोई मर्यादा है तो इस दृढ़ संकल्पकी है कि जर्मनी और जापानको शीघ्रातिशीघ्र परास्त करने की राहमें कोई रुकावट न आने दी जाये और फिर इस संकल्पका कि संवैधानिक समस्याका समाधान निकालते समय उन सबके हितोंका पूरा ध्यान रखा जाये जिन्होंने इस युद्धमें और पहले सभी मौकोंपर वफादारी से हमारा साथ दिया है — अर्थात् सैनिक लोग, जिन्होंने समान ध्येयमें योग दिया है; वे लोग जिन्होंने हमारे साथ काम किया है; देशी राज्योंके राजा और वहाँकी जनता, जिनके प्रति हम वचनबद्ध हैं; वे अल्पसंख्यक वर्ग जिनका हमपर विश्वास रहा है कि हम उन्हें उचित न्याय दिलायेंगे . . . लेकिन जबतक भारतके कमसे-कम दो प्रमुख दल आपसमें कोई समझौता नहीं कर लेते तबतक मुझे प्रगतिकी कोई आशा अभी तो नहीं दिखती।

आपकी उक्तिपर तर्क-वितर्क किये बिना मैं उसका भावानुवाद पेश करने का साहस कर रहा हूँ। "हम अंग्रेज लोग उन भारतीय सैनिकोंका साथ निभायेंगे जिन्हें भारतमें अपने शासन और अपनी स्थितिको सुदृढ़ बनाने के लिए हमने भरती और प्रशिक्षित किया है, और अनुभवसे यह पाया है कि वे अन्य राष्ट्रोंके विरुद्ध होनेवाली किसी भी लड़ाईमें प्रभावकारी ढंगसे हमारी मदद कर सकते है। हम देशी नरेशोंका भी साथ देंगे, जिनमे से कितने तो हमारे ही बनाये हुए है और जिनमें से सब-के-सब अपनी वर्तमान स्थितिके लिए हमारे ऋणी हैं — यहाँतक कि यदि वे अपनी प्रजाकी उमंगोंपर अंकुश लगायें या उन्हें सचमुच कुचले डालें तब भी हम उनका साथ देंगे। इसी प्रकार हम अल्पसंख्यकोंका भी पक्ष लेगें, क्योंकि जब भी भारतके विशाल बहुसंख्यक वर्गने हमारे शासनका प्रतिरोध करने की चेष्टा की है तब हमने अल्पसंख्यकोंको प्रोत्साहन देकर बहुसंख्यकोंके विरुद्ध उन्हें खड़ा करके उनका उपयोग किया है। इस बातका कोई महत्त्व नही कि बहुसंख्यक वर्ग हमारे शासनके स्थानपर सम्पूर्ण भारतके जनमतका शासन लाना चाहता है। और जबतक हिन्दू और मुसलमान आपसी समझौता करके हमारे सम्मुख नहीं आते तबतक तो हम किसी हालतमें भी सत्ता-हस्तान्तरण नही करेंगे।" मैंने जिस अनुच्छेदको उद्धृत करके व्याख्या की है उसमें आपने जो स्थिति अपनाई है वह कोई नई बात नहीं है। इसमें परिस्थितिको जिस प्रकार देखा-समझा गया है वह मेरे मतमें निराशाजनक है और मेरा दावा है कि भारतके जन-सामान्यका भी यही मत है। ऐसी निराशाजनक परिस्थितिको देख-

कर ही "भारत छोड़ो" की व्यथित पुकार फूट उठी थी। अपने सुविचारित लेखोंमें "भारत छोड़ो" सिद्धान्तकी जो परिभाषा मैंने दी थी, देशमें रोज-रोज होनेवाली घटनाओंसे मुझे उसका पूरा समर्थन होता दिखाई पड़ता है।

६. आपका भाषण पढ़ते हुए मैंने लक्ष्य किया है कि आप "भारत छोड़ो" सिद्धान्त के प्रणेताओंको बहिष्कार-योग्य नहीं मानते। आप उन्हें मनस्वी व्यक्तियोंके रूपमें देखते हैं। तब फिर आप उनके साथ यदि इसी दृष्टिसे व्यवहार करें और उनके सिद्धान्तकी उनकी अपनी व्याख्यापर भरोसा रखें तो आपसे कोई भी गलती नहीं होगी।

७. क्रिप्स-प्रस्तावके आशयको स्पष्ट करने के बाद आपने पृष्ठ १६ पर अनुच्छेदके बीचमें कहा है :

> . . . नजरबन्द नेताओंकी रिहाईकी माँग तबतक बिलकुल व्यर्थ रहेगी जबतक वे सहयोग करने की इच्छाका कुछ संकेत नहीं देते। जिस "भारत छोड़ो" प्रस्ताव और नीतिके इतने दारुण परिणाम निकले, उससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने और आगामी महान् कार्योंमें सहयोग करने का फैसला करने के लिए नजर-बन्द लोगोंमें से किसीको न तो किसीसे परामर्श करने की जरूरत है, और न किसी और बातकी जरूरत है; उसे तो इस निर्णयके लिए मात्र अपनी अन्तरात्मासे ही पूछना है।

फिर उसी विषयको दोबारा उठाते हुए आपने पृष्ठ १९-२० पर इस प्रकार कहा है :

> देशका एक महत्त्वपूर्ण वर्ग अपने-आपको अलग रखे हुए हैं; मैं मानता हूँ कि उसमें कितनी योग्यता और मनस्विता है; किन्तु मुझे खेद है कि उसकी वर्त्तमान नीति और कार्य-पद्धतियाँ व्यर्थ और अव्यावहारिक हैं। भारतकी वर्त्तमान और भावी समस्याओंको सुलझाने में मैं इस वर्गका सहयोग चाहूँगा। यदि इसके नेतागण ऐसा मानते हैं कि वर्त्तमान सरकारमें वे शरीक नहीं हो सकते तो भी भावी समस्याओंपर विचार करने में मदद देना तो उनके लिए सम्भव हो सकता है। किन्तु ८ अगस्त, १९४२ की घोषणाके लिए जो लोग जिम्मेदार हैं उन्हें तबतक रिहा करने का मुझे कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता जबतक मुझे यह विश्वास न हो जाये कि असहयोगकी, बल्कि उससे बढ़कर विघ्न-बाधा डालने की नीति वापस ले ली गई है। इसके लिए मैं किसी घोर पश्चात्तापकी अभिव्यक्तिकी अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि उससे किसीको भी लाभ नहीं होगा। इतना ही पर्याप्त है कि उस नीतिको गलत और अहितकर मान लिया जाये।

८. आप-जैसे प्रसिद्ध सैनिक तथा दुनियादार व्यक्तिकी ऐसी राय देखकर मुझे आश्चर्य होता है। काफी बहस-मुबाहसे और गहरे विचार-विमर्शके बाद सैकड़ों स्त्री-पुरुषों द्वारा सम्मिलित रूपसे अपनाये गये प्रस्तावको वापस लेना किसीकी अपनी अन्तरात्माका सवाल कैसे हो सकता है? सम्मिलित रूपसे अपनाये गये किसी प्रस्तावको ईमानदारीके साथ, विवेकपूर्वक और उचित रीतिसे तो संयुक्त चर्चा और विचार-

विमर्शके बाद ही वापस लिया जा सकता है। व्यक्तियोंकी अपनी अन्तरात्माका सवाल तो इस आवश्यक कार्रवाईके बाद ही उठ सकता है, उसके पहले नहीं। क्या बन्दीको अपनी अन्तरात्माके अनुसार चलने की स्वतन्त्रता होती है? क्या उससे यह आशा रखना न्यायसंगत और उचित है?

९. फिर, एक ओर आप मानते हैं कि जो लोग कांग्रेस संस्थाका प्रतिनिधित्व करते हैं वे "बहुत योग्य और मनस्वी" हैं, और दूसरी ओर आप उनकी वर्तमान नीति और पद्धतिको "व्यर्थ तथा अव्यावहारिक" मानकर खेद व्यक्त करते हैं। क्या आपका दूसरा कथन पहले कथनका खण्डन नहीं करता? योग्य और मनस्वी लोग गलत निर्णय तो कर सकते हैं, किन्तु मैंने आजतक कभी नहीं सुना कि ऐसे लोगोंकी नीति और पद्धति "व्यर्थ तथा अव्यावहारिक" बताई जाये। क्या यह आपका काम नहीं है कि कोई फतवा देने से पहले आप उनके साथ उनकी नीतिके पक्षापक्षपर चर्चा कर लें — खासकर जब वे निर्विवाद रूपसे अपने लाखों-करोड़ो देशवासियोंके प्रतिनिधि हैं? क्या एक सर्वशक्तिमान सरकारके लिए शोभनीय है कि वह निहत्थे स्त्री-पुरुषोंको, जिन्हें सिर्फ अपने-जैसे ही निहत्थे, बल्कि अहिंसा-व्रती लोगोंका ही समर्थन प्राप्त है, रिहा करने के परिणामोंसे आशंकित हो? इसके अतिरिक्त, आपको उनके विचारों और प्रतिक्रियाओंको जानने में भला हिचकिचाहट क्यों होनी चाहिए?

१०. आपने "भारत छोड़ो" प्रस्तावके "दारुण परिणामों" का जिक्र किया है। सरकारी पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' के उत्तरमें[1], कांग्रेसको इन परिणामोंके लिए जिम्मेदार ठहरानेवाले आरोपका खण्डन करते हुए, मैं काफी-कुछ कह चुका हूँ। यदि अबतक आपने वह पुस्तिका और मेरा उत्तर नहीं पढ़ा हो तो अब आपसे उन्हें पढ़ने को कहता हूँ। यहाँ मैं उन बातोंपर सिर्फ जोर देना चाहूँगा जो पहले ही कह चुका हूँ। यदि सरकारने मेरे और कार्य-समितिके सदस्योंके भाषण पढ़ने तक अपने हाथ रोक रखे होते तो इतिहासने कुछ और ही मोड़ लिया होता।

११. आपने इस बातको बहुत उछाला है कि आपकी कार्यकारिणी परिषद् मुख्य रूपसे भारतीय सदस्योंसे बनी हुई है। भारतीय होने से ही वे सदस्य किसी गैर-भारतीयसे अधिक प्रातिनिधिक नहीं हो जाते। इसके विपरीत यदि कोई गैर-भारतीय भारतीय जनताके मतोंसे चुना जाता है तो वह भारतका सच्चा प्रतिनिधि हो सकता है। यदि भारत सरकारका प्रधान कोई विशिष्ट भारतीय हो लेकिन वह जनताके स्वतन्त्र मतसे चुना हुआ न हो तो उसका भारतीय होना भी कोई सन्तोषकी बात नहीं होगी।

१२. खेदके साथ कहना पड़ता है कि भारतीय सेनाओंको "स्वैच्छिक" भरतीके आधारपर तैयार किया गया बताने की आम भूलके शिकार आप भी हो गये हैं। जो व्यक्ति पेशेके रूपमें सैनिकका काम करता है वह तो बाजार भावसे कीमत मिलने पर कहीं भी भरती हो जायेगा। कुछ प्रसंगोंसे जुड़े होने के कारण स्वैच्छिक भरती एक ऐसे

१. देखिए पृ० १०३-२१३।

अर्थका बोधक हो गई है जो भारतीय सिपाहियोंकी भरतीके तरीकेसे जुड़े अर्थसे बहुत अधिक ऊँचा और उदात्त है। जिन लोगोंने जलियाँवाला नरसंहारमें आदेशोंका पालन किया वे क्या स्वयंसेवक थे? जिन भारतीय सिपाहियोंको भारतसे बाहर ले जाया गया है और जो वहाँ अद्वितीय वीरताका परिचय दे रहे हैं वे ही अपने मालिक ब्रिटिश सरकारके आदेशपर अपने ही देशभाइयोंपर अपनी बंदूकोंका अचूक निशाना बेझिझक बाँध देंगे। क्या वे स्वयंसेवककी सम्मानजनक संज्ञाके पात्र होंगे?

१३. आप भारत-भरका हवाई दौरा कर रहे हैं। बंगालके [दुर्भिक्ष-पीड़ित] नर-कंकालों के बीच जाने में भी आपको कोई संकोच नहीं होता। क्या मैं यह अनुरोध कर सकता हूँ कि अपनी अनुसूचित उड़ानोंमें थोड़ा परिवर्तन करके आप अहमदनगर और आगाखाँ पैलेसमें उतरने का कष्ट करें, ताकि अपने बन्दियोंके हृदयोंका अवगाहन कर सकें? हम ब्रिटिश सरकार और उसके भारत-स्थित तंत्रकी चाहे जितनी आलोचना करें, किन्तु हम सब अंग्रेजोंके मित्र हैं। अगर आप हमारा विश्वास करें तो आप पायेंगे कि नाजीवाद, फासीवाद, जापानवाद आदिके विरुद्ध संघर्षमें हम अधिकसे-अधिक सहायक हैं।

१४. अब फिर आपके २५ फरवरीके पत्रपर आता हूँ। श्री मीराबाईको और मुझे अपने आवेदन-पत्रोंके उत्तर मिल गये हैं। बाकी नजरबन्दोंको सूचना-पत्र मिले हैं। जो उत्तर मुझे प्राप्त हुआ है उसे मैं एक उपहास मानता हूँ, और श्री मीराबाईको प्राप्त उत्तर एक अपमान है। केन्द्रीय विधान-सभामें एक प्रश्नके गृह-सदस्य द्वारा दिये गये उत्तरकी जो खबर छपी है, उसके अनुसार हमें प्राप्त उत्तर कोई उत्तर नहीं है। खबर है, उन्होंने कहा कि "इन मामलोंपर विचार करने की 'अवस्था' अभी नहीं आई है। अभी सरकार कैदियोंसे सिर्फ उनके आवेदन-पत्र प्राप्त कर रही है।" अगर सरकारी सूचना-पत्रोंके उत्तरमें दिये गये आवेदन-पत्रोंपर उस कार्यकारिणीको ही विचार करना है जिसने उन लोगोंको बिना मुकदमा चलाये बन्दी बना रखा है तो यह तो मात्र एक तमाशा या धोखेकी टट्टी ही होगा, जिसका प्रयोजन शायद विदेशियोंको भ्रमित करना हो सकता है लेकिन जो न्याय करने की इच्छाका द्योतक नहीं हो सकता। सरकार मेरे विचारोंसे अवगत है। मुझे बहुत दुराग्रही आदमी माना जा सकता है, हालाँकि मैं कहूँगा कि ऐसा मानना बिलकुल गलत ही होगा। लेकिन श्री मीराबाईके बारेमें क्या कहूँ? आप जानते ही हैं कि वे एक एडमिरल[1] और इन समुद्री क्षेत्रोंके भूतपूर्व नौसेनाध्यक्षकी पुत्री हैं। लेकिन उन्होंने सुख-सुविधाके जीवनका त्याग करके मेरे साथ काम करने का फैसला किया। मेरे पास आने की उनकी प्रबल इच्छा को देखते हुए उनके माता-पिताने उन्हें पूर्ण स्वस्ति और आशीर्वाद दिया। वे जन-सेवामें अपना समय व्यतीत करती हैं। वे मेरे अनुरोधपर उस संकटग्रस्त प्रदेश उड़ीसाकी जनताकी दुरवस्थाको देखने-समझने के लिए वहाँ गईं। वहाँकी सरकार को हर घड़ी जापानी आक्रमणकी आशंका थी। कागज-पत्रोंको या तो हटा लिया

१. सर एडमंड स्लेड

जाना था या जला दिया जाना था, और तटवर्ती क्षेत्रसे सिविल प्राधिकरणको हटा लेने का विचार किया जा रहा था। श्री मीराबाईने चौड़वार (कटक) हवाई अड्डे को अपना सदर मुकाम बनाया, और स्थानीय सेनाध्यक्ष उनके द्वारा दी जा सकने-वाली सेवाओंसे बहुत प्रसन्न थे। बादमें वे नई दिल्ली गईं और जनरल सर एलन हार्टली[1] और जनरल मोल्सवर्थसे[2] मिलीं। दोनोंने उनके कार्यकी सराहना की और अपने ही वर्ग और जातिकी सदस्याके रूपमें उनका स्वागत किया। इसलिए उनका कारावास मेरी समझमें नहीं आता। उन्हें जीते-जी इस तरह गाड़ देने का मेरी समझ में तो एक यही कारण आता है कि उन्होंने मेरे साथ सम्बद्ध होने का अपराध किया। मेरा निवेदन है कि आप या तो उन्हें तुरन्त रिहा कर दें या उनसे मिलकर फैसला करें। यह भी बता दूँ कि उन्हें जो तकलीफ है और जिसके इलाजके लिए सरकारने मेरे अनुरोधपर कप्तान सिमकॉक्सको[3] भेजा वह तकलीफ अभी दूर नहीं हुई है। अगर वे नजरबन्दीके दौरान सदाके लिए अपंग हो गईं तो यह भारी अनर्थ होगा। मैंने श्री मीराबाईके मामलेका उल्लेख इसलिए किया है कि यह ऐसे अन्याय-पूर्ण मामलोंका विशिष्ट उदाहरण है।

१५. पत्र जितना मैंने निश्चय किया था उससे बहुत लम्बा हो गया है, इसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। यह बहुत व्यक्तिगत और अनौपचारिक भी हो गया है। लेकिन मित्रोंके प्रति मेरी वफादारीका तो ढंग ही यही है। मैंने बिना किसी दुराव-छिपावके लिखा है। आपके पत्र और भाषणसे मेरे लिए द्वार खुल गया है। मुझे आशा है कि भारत, इंग्लैण्ड और मानवताकी खातिर आप इसे अपने भाषणका ईमानदारी-भरा और मैत्रीपूर्ण — हालाँकि कुछ स्पष्टवादितासे युक्त — उत्तर मानेंगे।

१६. वर्षों पूर्व दक्षिण आफ्रिकाके टॉल्स्टॉय फार्ममें बच्चोंको पढ़ाते हुए मुझे उनको वर्ड्सवर्थकी कविता "कैरेक्टर ऑफ द हैपी वारियर" पढ़कर सुनाने का अवसर मिला था। यह पत्र लिखते समय मुझे वह याद हो आई है। उस योद्धाको आपमें मूर्ति-मन्त होते देखकर मुझे प्रसन्नता होगी। यदि यह युद्ध अन्तमें मात्र पशुबलके द्वंद्वका ही रूप ले लेता है तब तो धुरी-शक्तियों तथा मित्र-राष्ट्रोंके तौर-तरीकोंमें कोई अन्तर ही नहीं रह जायेगा।[4]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २५६-६२

१. मार्च १९४२ से भारतके प्रधान सेनाध्यक्ष
२. लेफ्टिनेंट-जनरल जॉर्ज नोबल मोल्सवर्थ, भारतके जनरल स्टाफके उप-प्रधान, १९४१-४२; सचिव, सैनिक विभाग, इंडिया ऑफिस, १९४३-४४
३. रॉयल आर्मी मेडिकल कोरके
४. लॉर्ड वेवेलके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ११।

८०. पत्र : अरदेशिर ईदुलजी केटलीको

नजरबन्दी कैम्प
१६ मार्च, १९४४

प्रिय खान बहादुर,

आपने मुझे निम्नलिखित ज्ञापन दिया है :

> **श्री गांधी अपने रिश्तेदारोंसे प्राप्त समवेदना-सन्देशोंका उत्तर दे सकते हैं और यदि वे चाहें तो सरकार दूसरे पत्र-लेखकोंको सूचित कर देगी कि उनके सन्देश श्री गांधी तक पहुँचा दिये गये हैं।**

इसके उत्तरमें मेरा यही निवेदन है कि यदि मुझे रिश्तेदारों और गैर-रिश्तेदारोंका भेद किये बिना सभी समवेदना-सन्देश भेजनेवालों को उत्तर भेजने की अनुमति नही है तो मै सरकार द्वारा कृपापूर्वक दी गई इस सुविधाका उपभोग करना नही चाहूँगा। रही बात दूसरे सन्देशोंकी, तो इस विषयमें ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसके सिवा मेरी कोई और इच्छा नही है। मेरे नाम भेजे हुए सन्देशोंका अखबारोंमें जो उल्लेख है उससे मुझे ज्ञात होता है कि अबतक मुझे सभी सन्देश नही दिये गये हैं। ज्ञापनपर से मैं समझता हूँ कि वे यथासमय मुझे दे दिये जायेंगे। शायद यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि जो सन्देश मेरे पुत्र देवदासकी उपस्थितिमें प्राप्त हुए थे और मुझे दिये गये थे वे मैंने उसे ही सौंप दिये थे।

आपका,
मो० क० गांधी

खान बहादुर केटली
अधीक्षक, नजरबन्दी कैम्प

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३५) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच (६), फाइल नं० ६७, पृ० १३ से भी

८१. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२० मार्च, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार (गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

मेरी दिवंगता पत्नीको जो डाक्टरी तथा अन्य प्रकारकी सुविधाएँ दी गईं उनके विषयमें केन्द्रीय विधान-सभामें सरकारकी ओरसे दिये गये उत्तरको मैंने दुःखके साथ पढ़ा है। मैंने ४ मार्च, १९४४ को जो पत्र[1] लिखा था उसके विषयमें, यह मानते हुए कि जिस समय यह उत्तर दिया गया उस समय वह सरकारके हाथोंमें था, मैंने ज्यादा अच्छे उत्तरकी आशा की थी। उस पत्रमें मैंने गलतबयानियोंके अनेक दृष्टान्त दिये थे। सरकारने अपने वक्तव्यमें केवल एक यह बात स्वीकार की[2] कि दिवंगताके सामने रिहाईका प्रस्ताव कभी नही रखा गया। इसके अलावा और कोई भूल-सुधार नहीं किया गया। इसके विपरीत, एक गलत बात और जोड़ दी गई कि "उन्हें प्रशिक्षित परिचारिकाएँ दी गईं। . . ." न तो किसी प्रशिक्षित परिचारिका की फरमाइश की गई, न ही कोई भेजी गई। हाँ, मेरी पत्नीने श्रीमती प्रभावती देवी और श्री कनु गांधीको बुलवाने की जो माँग की थी, उनके बजाय एक आया अवश्य भेजी गई। और वह आया हफ्ता बीतने से पहले ही चली गई, क्योंकि उसे जो काम सौंपा गया था उसे करने में उसने अपने-आपको अयोग्य पाया। तब जाकर कुछ और विलम्ब करने के बाद तथा कई बार कनु गांधीके बारेमें अनुरोध किये जाने पर उन दोनोंको आने की अनुमति दी गई। सुविधाओंका ब्योरा यों दिया गया है जैसे वे बड़ी तत्परताके साथ सहर्ष प्रदान की गई थी। तथ्य यह है कि अधिकांश सुविधाएँ देने से इनकार कर दिया गया और जो दी गईं वे बहुत बेमनसे और काफी देर हो जाने पर दी गईं।

इस पत्रको लिखने में मेरा उद्देश्य यह शिकायत (जो यों बहुत उचित है) करना नहीं है कि सुविधाएँ बहुत ही देरीमें प्राप्त हुईं। मेरी शिकायत तो यह है

१. देखिए पृ० २५६-५८।

२. यह स्वीकारोक्ति केन्द्रीय विधान-सभामें श्री के० एस० गुप्त द्वारा पूछे गये एक प्रश्नके उत्तरमें परराष्ट्र-विभागके सचिव सर ओल्फ कैरोने १३ मार्चको की थी।

कि सरकारने मेरे ४ मार्च, १९४४ के निवेदनके बावजूद नग्न सत्य पेश करने के बदले उसका लिपा-पुता स्वरूप ही पेश करना उचित समझा।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २४२-४३। सी० डब्ल्यू० १०५०७ से भी; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

८२. पत्र: भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१ अप्रैल, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार (गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

आपका दिनांक २१ मार्चका पत्र[2] मुझे २७ मार्चको दिया गया।

चिकित्सा-सम्बन्धी अतिरिक्त सहायताके विषयमें मैं कहना चाहता हूँ कि दिवंगताने सर्वप्रथम पिछले दिसम्बर महीनेमें किसी दिन डॉ० अडवानीसे[3] डॉ० दिनशा मेहताकी सेवाओंके लिए मौखिक अनुरोध किया था। जब कई बार दोहराने पर भी मौखिक अनुरोधका कुछ भी असर नहीं हुआ या बहुत थोड़ा असर हुआ, तब मुझे २७ जनवरी, १९४४ को भारत सरकारके नाम एक लिखित अनुरोध[4] भेजना पड़ा। ३१ जनवरीको मैंने बम्बई सरकारको याद दिलाने के लिए एक पत्र[5] (संलग्न पत्र 'ए') भेजा और डॉ० नैयर तथा डॉ० गिल्डरने भी जेल-महानिरीक्षकके नाम इसी सम्बन्धमें एक पत्र[6] (संलग्न पत्र 'बी') भेजा। मैंने फिर ३ फरवरीको बम्बई सरकारके नाम एक पत्र[7] (संलग्न पत्र 'सी') भेजा जिसका उत्तर[8] (संलग्न

१. अतिरिक्त गृह-सचिवने ३० मार्चके अपने उत्तरमें यह बात फिर दोहराई कि "विधान-सभामें दिया गया उत्तर. . . तत्वतः सही था।"

२. देखिए परिशिष्ट १०।

३. उन दिनों कर्नल भण्डारीके स्थानपर डॉ० अडवानी सरकारी डाक्टरके रूपमें कार्य कर रहे थे।

४. देखिए पृ० २३४-३६।

५. देखिए पृ० २३७-३८।

६. देखिए परिशिष्ट ९।

७. देखिए पृ० २४०-४१।

८. देखिए पृ० २३८, पा० टि० १।

पत्र 'डी') प्राप्त हुआ। उसके फलस्वरूप पिछली ५ फरवरीको, अर्थात् प्रथम अनुरोध की तिथिसे लेकर छः सप्ताहसे भी अधिक समयके बाद डॉ० दिनशाको बुलाया गया। और अनुमति देने के बाद भी वे कितनी बार आयें या उपचारमें कितना समय लगायें, इसपर प्रतिबन्ध रखा गया। कुछ कठिनाईके बाद ही ये प्रतिबन्ध कुछ ढीले किये गये और बादमें हटा दिये गये।

आपके पत्रमें डॉ० गिल्डर-सम्बन्धी जो उल्लेख है वह मैंने उन्हें दिखा दिया है। उसके उत्तरमें उन्होंने सरकारके नाम एक पत्र[1] लिखकर मुझे दिया है कि मैं आपको भेज दूं, अतएव वह पत्र सलग्न है (सलग्न पत्र 'इ')। उस पत्रसे प्रकट होता है कि डॉ० गिल्डरने वह राय कभी भी जाहिर नहीं की जो उनके मत्थे मढ़ी गई है, लेकिन यह दुःखद तथ्य अपनी जगह कायम रहता है कि डॉ० दिनशाकी सेवाएँ सुलभ करानें में छः सप्ताहसे भी अधिक समयका विलम्ब किया गया।

गत दिसम्बरके आरम्भमें मेरा पुत्र यहाँ आया था[2] और उसने ही सर्वप्रथम स्पष्ट रूपसे और विधिवत् जेल-महानिरीक्षकके सम्मुख प्रस्ताव रखा था कि किसी गैर-एलोपैथिक चिकित्सकको बुलाया जाये। जब कर्नल भण्डारीने मेरे पुत्र द्वारा उनसे किये गये अनुरोधका जिक्र किया, तब मैंने कहा कि यदि मेरे पुत्रकी राय है कि किसी गैर-एलोपैथिक चिकित्सककी भी आजमाइश की जाये तो सरकारको इसकी अनुमति दे देनी चाहिए। मेरे पुत्रके अनुरोधका सवाल विचाराधीन था, तभी रोगिणीकी दशा बिगड़ने लगी और वे स्वयं आयुर्वेदिक चिकित्सकको बुलवाने का आग्रह करने लगी। उन्होंने कई बार जेल-महानिरीक्षक और कर्नल शाहसे बात की, किन्तु कोई फल न निकला। तब हताश होकर मैंने २७ जनवरी, १९४४ को भारत सरकारको पत्र[3] लिखा। ३१ जनवरीको इस कैम्पके अधीक्षकने सरकारकी ओरसे अन्य बातोंके साथ-साथ यह भी पूछा कि क्या दिवंगताके मनमें किसी वैद्य-विशेषका खयाल था। अपना मौन-दिवस होने के कारण इस प्रश्नका मैंने लिखकर उत्तर[4] दिया (संलग्न पत्र 'एफ')। चूँकि इस बातचीतके बावजूद कोई सहायता नहीं मिली और चूँकि रोगिणीकी हालत ऐसी हो गई थी कि विलम्बका अवकाश नहीं था, अतः मैंने ३ फरवरीको भारत सरकारको एक अविलम्बनीय पत्र[5] भेजा (संलग्न पत्र 'सी')। ११ फरवरीको एक स्थानीय वैद्यको बुलाया गया और १२ फरवरीको वैद्यराज शर्मा लाये गये। इस प्रकार गैर-एलोपैथिक चिकित्साके लिए प्रथम अनुरोध और वास्तवमें उस चिकित्साके सुलभ कराये जाने के बीच आठ सप्ताहसे भी अधिक समयका अन्तराल पड़ गया।

१. देखिए परिशिष्ट १२।
२. देखिए पृ० २३४।
३. देखिए पृ० २३५-३६।
४. देखिए २३८-३९।
५. देखिए पृ० २४०-४१।

वैद्यराज शर्माके आने से पहले मुझसे कहा गया कि मैं लिखित रूपसे आश्वासन[1] दूं (जो मैंने सहर्ष दिया भी) कि वैद्यराजकी चिकित्साका चाहे जो परिणाम निकले, उसकी जिम्मेदारीसे मैं सरकारको पूर्णतः मुक्त करता हूँ (संलग्न पत्र 'एच')। इस प्रकार कुछ समयके लिए रोगिणीकी चिकित्सा पूरी तरह वैद्यराजके ऊपर ही रही। कोई भी व्यक्ति यही उचित समझेगा कि यदि किसी रोगीके उपचारका पूरा उत्तरदायित्व किसी एक चिकित्सकपर हो तो उसे रोगीके पास आने और उसपर पूरी निगाह रखने की जितनी आवश्यकता दिखे, उसकी उसे पूरी सुविधा मिलनी चाहिए। किन्तु उन्हें ये सुविधाएँ दिलाने में अपार झंझटोंका सामना करना पड़ा। मेरे ४ मार्च, १९४४ के पत्रके[2] साथ संलग्न पत्रमें[3] और फिर संलग्न पत्र 'जी'[4] में इनका उल्लेख किया गया है। . . .

इस बीच रोगिणी भयंकर कष्ट भोग रही थी और उनकी दशा इतनी तेजीसे बिगड़ती जा रही थी कि विलम्बके हर क्षणके साथ-साथ उनके स्वस्थ होने की सम्भावना क्षीण होती जा रही थी।

रोगिणीको और मुझे बार-बार जिन विलम्बों और कठिनाइयोंसे वास्ता पड़ा वे चाहे सरकारके किसी विभाग-विशेषने पैदा की हों या स्वयं सरकारी डाक्टरोंने, उनका उत्तरदायित्व तो निःसन्देह केन्द्रीय सरकारपर ही है।

मैंने लक्ष्य किया है कि डॉ॰ नैयर तथा डॉ॰ गिल्डरने डॉ॰ विधानचन्द्र राय को सलाहके लिए बुलवाने का जो लिखित अनुरोध किया था (और मौखिक रूपसे भी कई बार याद दिलाकर उसपर जोर दिया था) उस विषयमें सरकार पूर्णतः मौन रही है और उस अनुरोधको स्वीकार न करने का कोई कारण देने तक का भी कष्ट नहीं किया है।

मैंने अपने २० मार्च, १९४४ के पत्रमें[5] लिखा था कि विधान-सभामें माननीय गृह-सदस्यका यह कथन सत्य नहीं है कि प्रशिक्षित परिचारिकाएँ रोगिणीकी परिचर्या कर रही थीं। आपने अपने पत्रमें इस बारेमें भी कुछ नहीं कहा है। सच तो यह है कि प्रशिक्षित परिचारिकाएँ वहाँ कभी भी नहीं थीं। इतना और कह दूं कि दिवंगताने जिन परिचारकोंको चाहा था उन्हें भी, विशेषतः श्री कनु गांधीको, काफी विलम्बके बाद ही आने की अनुमति मिली।

मैं आशा करता हूँ कि तथ्योंके इस कोरे विवरणको और सम्बद्ध पत्र-व्यवहार की संलग्न प्रतियोंको शान्त भावसे पढ़ने के बाद यह स्वीकार कर लिया जायेगा कि भारत सरकारका यह दावा अनुचित है कि सरकारने दिवंगताकी रुग्णावस्थामें जैसा मैंने चाहा वैसा ही इलाज सुलभ कराने का "हर सम्भव उपाय" किया। श्री बटलर

१. देखिए पृ० २४२-४३।
२. देखिए पृ० २५६-५८।
३. देखिए पृ० २४९-५०।
४. देखिए पृ० २४३-४४।
५. देखिए पिछला शीर्षक।

के दावेका औचित्य तो उससे भी कम है, क्योंकि उन्होंने तो और भी आगे बढ़ कर कहा कि "उन्हें अपने नियमित परिचारकोसे ही नही, बल्कि 'उनके परिवारवालोने जिन लोगोंको चाहा' उन सब लोगोके हाथों हर सम्भव चिकित्सा और शुश्रूषाकी सुविधा मिल रही थी।" क्या उपरोक्त दावोका खण्डन बम्बई सरकारके इस कथन (संलग्न पत्र 'डी') से नही हो जाता कि "सरकारने निश्चय किया है कि जबतक स्वय सरकारी डाक्टर चिकित्साके निमित्त बाहरी डाक्टरोको बुलाना अत्यावश्यक न समझे तबतक उन्हे बुलाने की अनुमति नही दी जानी चाहिए।"

रिहाईके प्रश्नपर और सरकारको जो मेरे पुत्रकी अपनी माँके साथ हुई "खानगी बातचीत" की रिपोर्ट मिली उसके विषयमें तो यही कहूँगा कि कोई बन्दी किसी बाहरी व्यक्तिके साथ "खानगी" बातचीत तो कर ही नही सकता। अतएव जहाँतक मेरा सवाल है, सरकारको पूरी छूट है कि वह मेरे पुत्रसे उस बातचीतके विषयमें पूरी दरियाफ्त करके (और ऐसे मामलोमें ऐसा करना सामान्य और अनिवार्य है) उस बातचीतका उपयोग करे। जो-कुछ भी हो, सरकारने यदि रिहाईका प्रस्ताव रखा होता और मुझपर ही इस निर्णयका भार डाल दिया होता कि मेरी पत्नीके लिए "सबसे अच्छा और मानवीयतापूर्ण" उपाय क्या है तो सरकारपर किसी प्रकारका दोष नही आता।

दाह-सस्कारकी व्यवस्थाके विषयमें मेरा वास्तविक अनुरोध जेल-महानिरीक्षकने मेरे बोलते-बोलते ही लिपिबद्ध कर लिया था और सरकारके नाम मेरे ४ मार्च, १९४४ के पत्रमें वह उद्धृत भी है। उस पत्रकी सारी बातें अपने-आपमें स्पष्ट है। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि सरकारको "पूछताछ" के बाद यह "सूचना मिली" कि मेरे पत्रमें उल्लिखित "प्रथम दो विकल्पोंमें से किसी एकके लिए" मेरा "विशेष आग्रह नही था।" सरकारको दी गई सूचना सरासर गलत है। यह तो सोचा भी नही जा सकता कि यदि विकल्प मेरे हाथोमें होता तो मेरा मन कभी इस बातको गवारा कर पाता कि पवित्र श्मशान-भूमिके बजाय किसी जेलके अहातेमें (और यह कैम्प आज जेल ही तो है) किसी प्रियजनका दाह-संस्कार हो।

ऐसे निजी मामलोंके विषयमें सरकारको लिखना मेरे लिए कुछ सुखद या सहज नही है। किन्तु जो बासठ वर्षसे अधिक लम्बी अवधितक मेरी निष्ठावान संगिनी रही, उसकी पुण्य-स्मृतिकी खातिर ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। अब मैं यह निर्णय सरकारपर ही छोड़ता हूँ कि जो बन्दी श्रीमती कस्तूरबा-जैसी अच्छी स्थितिमें नही है उन बन्दियोंपर क्या बीतती होगी।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न : ए से एच

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३६) से। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २३७-४०

१. देखिए अगला शीर्षक भी।

८३. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२ अप्रैल, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार
नई दिल्ली

महोदय,

यह पत्र भारत सरकारके नाम मेरे कलके पत्रके[1] क्रममें है; क्योंकि कैम्पके अधीक्षकको पत्र सौंपने के बाद अखबार पढ़ते समय ३०-३-१९४४ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में मैंने यह विस्मयकारी रिपोर्ट पढ़ी :

> नई दिल्ली, बुधवार [२९ मार्च, १९४४] — आज केन्द्रीय राज्य परिषद् में लाला रामसरनदासने यह प्रश्न पूछा कि क्या महात्मा गांधीने सरकारसे अनुरोध किया था कि प्रतिष्ठित आयुर्वेदिक चिकित्सक पण्डित शिव शर्माको श्रीमती गांधीका इलाज करने की अनुमति दी जाये, और यदि किया था तो कब।
>
> इसका उत्तर देते हुए गृह-सचिव श्री कॉनरन-स्मिथने कहा कि पण्डित शर्माकी सेवा प्राप्त करने के लिए भारत सरकारसे सर्वप्रथम स्पष्ट अनुरोध ९ फरवरीको किया गया था, जिसकी स्वीकृति १० फरवरीको दे दी गई। मेरा खयाल है कि इसके एक या दो दिन बाद पण्डित शर्मा वहाँ पहली बार गये।
>
> — एसोशिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया

तथ्य यह है कि वैद्यराज शिव शर्माका नाम सरकारके सम्मुख सर्वप्रथम ३१ जनवरी, १९४४ को रखा गया था, न कि ९ फरवरी को। किन्तु मेरे कलके पत्रसे और भी स्पष्ट हो जायेगा कि किसी गैर-एलोपैथिक चिकित्सकके लिए सबसे पहला अनुरोध दिसम्बर, १९४३ के आरम्भमें ही किया गया था। क्या मैं उपर्युक्त कथनके भूल-सुधारकी आशा रखूँ?[2]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २४२

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. इस पत्रके और पिछले पत्रके जवाबके लिए देखिए पृ० २७७, पा० टि० ३।

८४. पत्र : मदनगोपाल भण्डारीको

नजरबन्दी कैम्प
२ अप्रैल, १९४४

प्रिय कर्नल भण्डारी,

मेरे नाम भारत सरकारके २१[1] मार्च, १९४४ के पत्रमें[2] ये दो अनुच्छेद हैं :

> भारत सरकारको २८ जनवरीको सर्वप्रथम सूचना मिली कि श्रीमती गांधीने डॉ० दिनशा मेहताके उपचारकी माँग की है। . . . डॉ० दिनशा मेहताको पहले न बुलाने का कारण यह था कि कर्नल भण्डारी तथा डॉ० गिल्डर दोनोंने आरम्भमें यह राय जाहिर की कि उनकी सेवाओंसे कोई लाभ नहीं होगा, किन्तु जैसे ही सरकारी डाक्टरोंने अपनी राय बदली, उन्हें बुलवाया गया।
>
> यहाँ यही समझा गया है कि दाह-संस्कारकी व्यवस्था आपकी इच्छाके अनुरूप की गई। सरकारने जब इस विषयमें पूछताछ की तो उसे सूचित किया गया कि आपके पत्रमें उल्लिखित प्रथम दो विकल्पोंमें से किसी एकके लिए आपका विशेष आग्रह नहीं था।[3]

डॉ० गिल्डरको बिलकुल याद नहीं है कि उन्होंने कभी भी इस तरहकी राय जाहिर की हो।[4] और दिवंगताका अग्नि-संस्कार पवित्र सार्वजनिक श्मशान-भूमिपर हो या इस कैम्प-रूपी जेलके अहातेमें, इस विषयमें मैंने कभी भी उदासीनता व्यक्त नहीं की। क्या आप इन असंगतियोंका कुछ स्पष्टीकरण कर सकते हैं ?

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २४१

१. साधन-सूत्रमें '३१' है।
२. देखिए परिशिष्ट १०।
३. देखिए पृ० २५१।
४. देखिए परिशिष्ट १२ भी।

८५. पत्र : लॉर्ड वेवेलको

९ अप्रैल, १९४४

प्रिय मित्र,

आपका २८ मार्चका पत्र[1] ३ तारीखको प्राप्त हुआ। इसके लिए कृपया मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

मैं सामान्य मामलेको पहले लेता हूँ।

आपने मुझे एक स्पष्ट उत्तर भेजा है। मै भी आपके सौजन्यके उत्तरमें पूर्ण स्पष्टवादिता बरतूँगा। सच्ची मित्रताके लिए स्पष्टवादिता आवश्यक है, चाहे वह कभी-कभी अप्रिय ही क्यों न लगे। यदि मेरी कोई बात आपको अप्रिय लगे तो उसके लिए मैं अभीसे क्षमा-प्रार्थी हूँ।[2]

दु:खकी बात है कि अपने पत्रमें मैंने जो महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाये थे उनपर आपने कुछ भी नही लिखा है।

आपके पत्रका मुद्दा यह है कि कांग्रेस वर्त्तमान शासन-व्यवस्थामें सहयोग दे, या फिर भविष्यकी योजनामें ही सहयोग दे। मेरे विचारमें, इसके लिए दोनों पक्षोंके बीच बराबरीका दर्जा और पारस्परिक विश्वास अपेक्षित है। किन्तु यहाँ बराबरीका अभाव है और कांग्रेसके प्रति अविश्वास तो कदम-कदमपर नजर आता है। और इसके परिणामस्वरूप सारी जनतामें सरकारके प्रति अविश्वासका भाव है। इसके साथ ही कांग्रेसजनोंको बिलकुल विश्वास नहीं है कि सरकार भारतका भावी हित सुनिश्चित करने में सक्षम है। विश्वासके इस अभावका आधार भारतमें ब्रिटिश शासनके विगत और वर्त्तमान रवैयेका कटु अनुभव है। क्या समय नहीं आ गया है कि भारतवासियोंसे सहयोगकी अपेक्षा रखने के बजाय आप उनके निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी मार्फत उनसे सहयोग करें?

अगस्त-प्रस्तावमें यह सब निहित था। प्रस्तावमें की गई माँगको शक्ति देने वाला तत्त्व हिंसा नही बल्कि कष्ट-सहन था। किसी भी व्यक्तिने, चाहे वह कांग्रेसी हो या कोई और, यदि इस आचार-नियमके विपरीत कार्य किया हो तो उसे अपने कार्योंके लिए कांग्रेसके नामकी आड़ लेने का कोई अधिकार नहीं था। किन्तु मैं देखता हूँ कि यह प्रस्ताव लॉर्ड लिनलिथगोके समान ही आपको भी अप्रिय लगा है। आप जानते हैं कि इसपर मैंने आपत्ति प्रगट की है। तबसे मुझे अपना विचार बदलने का

१. देखिए परिशिष्ट ११।

२. ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ४, पृ० ८९८ के अनुसार भारत-मन्त्रीके नाम अपनी रिपोर्टमें लॉर्ड वेवेलने कहा था: "गांधीने मेरे पत्रके उत्तरमें एक क्रोध-भरा पत्र भेजा है। मैं आपको उसकी नकल भेज रहा हूँ और आगे पत्र-व्यवहार बन्द कर रहा हूँ।"

कोई कारण नही मिला है। आपने कृपापूर्वक मुझे "बुद्धि", "अनुभव" और "सूझ-बूझ" से युक्त होने का श्रेय दिया है। मैं यह कहने की इजाजत चाहता हूँ कि इन तीनों गुणोंके बावजूद मैं यह समझने मे असमर्थ हूँ कि कांग्रेस-प्रस्तावका असर "निश्चित रूपसे युद्ध-प्रयत्नोमे बाधा डालेगा।" जल्दबाजीमें की गई कांग्रेसजनोंकी गिरफ्तारियों के उपरान्त जो-कुछ हुआ उसके लिए केवल सरकार ही जिम्मेदार है, क्योंकि इस प्रस्तावके प्रणेताओंने नही बल्कि स्वयं सरकारने संकटकी स्थितिको बुलावा दिया।

आपने मुझे याद दिलाया है कि आप उस समय मुख्य सेनापति थे। यदि आपने विद्रोहकी आशंकासे प्रेरित होकर नही, बल्कि अपने अपार सैन्यबलपर भरोसा रखकर कोई कदम उठाया होता तो वह सभी पक्षोंके लिए कितना हितकर होता! यदि सरकारने उस समय अपना हाथ रोक लिया होता तो उन महीनोके दौरान जो रक्तपात हुआ वह कभी नही हुआ होता। और इस बातकी भी काफी सम्भावना थी कि जापानी आक्रमणका संकट भी बीती बात बन जाता। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नही होना था, और वह संकट अभी भी बना हुआ है। इतना ही नही, सरकार अब भी स्वातन्त्र्य और सत्यके दमनकी नीतिपर चल रही है। नजरबन्दीके सम्बन्ध में नवीनतम अध्यादेशका अध्ययन करते हुए मुझे १९१९ के रौलट अधिनियमका स्मरण हो आता है। उस अधिनियमको काले कानूनकी उचित संज्ञासे अभिहित किया गया था। आप तो जानते ही हैं कि उसके परिणामस्वरूप अभूतपूर्व आन्दोलन हुआ। किन्तु आज वाइसरायकी गद्दीसे जनतापर अध्यादेशोंकी जो बौछार की जा रही है उसके सामने वह काला कानून फीका पड़ जाता है। १९१९ में तो केवल एक प्रान्त में फौजी कानून लागू था, किन्तु आज तो व्यवहारतः सारे भारतपर फौजी कानून लागू है। हालत बदसे बदतर ही होती जा रही है।

आप कहते हैं: "मेरे सामने यह बात स्पष्ट है कि आपको ब्रिटिश सरकारकी भारतकी रक्षा कर सकने की सामर्थ्यपर विश्वास नही रहा था और आप हमारी कल्पित विकट सैन्य-स्थितिका राजनीतिक लाभ उठाने को तैयार थे।" मैं इन दोनों आरोपोसे इनकार करता हूँ। मैं यह कहने का साहस कर रहा हूँ कि आप सुनहरे नियमका पालन करें और अपना वक्तव्य वापस ले ले, और जबतक एक निष्पक्ष न्यायाधिकरणके सम्मुख आप अपने पास उपलब्ध सब प्रमाण पेश करके उसका निर्णय प्राप्त नहीं कर लेते तबतक इस मामलेमें आप कोई फैसला मत दीजिए। यह सही है कि मैं यह अनुरोध बहुत आशान्वित होकर नही कर रहा हूँ। उसका कारण यह है कि कांग्रेसवालों तथा दूसरोके साथ निपटते हुए सरकारने अभियोक्ता, न्यायाधीश और जेलर—तीनोंके काम एक ही व्यक्तिको सौंप दिये हैं, जिसके फलस्वरूप अभियुक्तके लिए अपना उचित बचाव पेश करना असम्भव हो गया है। अदालतके निर्णयोंको भी नये अध्यादेशोंके द्वारा निरर्थक किया जा रहा है। इस असाधारण स्थितिमें किसी व्यक्तिकी स्वतन्त्रता सुरक्षित नही कही जा सकती। आप शायद जवाबमें कहेंगे कि यह तो युद्धसे उत्पन्न एक अनिवार्य स्थिति है। पता नही!

आज जब मैं भारतको देखता हूँ तो वह मुझे एक विराट् कारागार-जैसा दिखाई पड़ता है, जिसमें चालीस करोड़ मनुष्य बन्द है। आप उसके एकमात्र अभिरक्षक

है। विभिन्न सरकारी कारागार इस विराट् कारागारके भीतर बने हुए कारागार है। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि अपने पत्रमें आपने जो विचार व्यक्त किये हैं उनपर जबतक आप कायम हैं तबतक सरकारी कारागार ही मुझ-जैसे व्यक्तिके लिए उपयुक्त स्थान रहेगा और जबतक सरकारका हृदय-परिवर्तन नही होता और उसके विचारो तथा नीतिमें बदलाव नही आता तबतक मैं आपका बन्दी बने रहने में ही सन्तोष मानूँगा। मैं केवल यही आशा करता हूँ कि आप उचित माध्यमोंसे की गई मेरी इस प्रार्थनापर ध्यान देंगे कि मुझे तथा मेरे सह-बन्दियोंको किसी ऐसे दूसरे कारागार में भेज दिया जाये जहाँ हमारे कारावासका व्यय हमारे ऊपर इस समय होनेवाले व्ययका दसवाँ भाग भी नही बैठेगा।

श्री बटलरके वक्तव्य और तदुपरान्त गृह-सचिवके वक्तव्यके सम्बन्धमें मैंने जो शिकायत की थी उसके उत्तरमें गृह-विभागसे दो पत्र प्राप्त हुए है।[1] मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि वे मुझे अत्यन्त असन्तोषजनक लगे है। उनमें स्पष्ट तथ्योंकी उपेक्षा की गई है और एक सर्वथा अराजनीतिक मामलेमें भी सचाईको देखने से इनकार करने की जिद दिखाई पड़ती है। गृह-विभागके साथ मेरा पत्र-व्यवहार जारी है। यदि आप कुछ समय दे सकें और उस विषयमें दिलचस्पी ले सकें तो मैं आपका ध्यान उसकी ओर खींचना चाहता हूँ।

मुझे इस बातकी खुशी है और मैं इसके लिए आभारी हूँ कि श्री मीरा-बाई (कु० स्लेड)के विषयमें मैंने अपने पत्रमें[2] जो-कुछ लिखा था उसको ध्यानमें रखकर उनके मामलेपर विचार किया जा रहा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

वाइसराय महोदय
वाइसराय कैम्प

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २६४-६६, और **कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी**, पृ० १२४-२५। सी० डब्ल्यू० १०५०३ से भी; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

१. देखिए पृ० २५६-५८ और २६७-६८।
२. देखिए पृ० २६४-६५।

८६. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
१३ अप्रैल, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार
नई दिल्ली

महोदय,

आपका ३० मार्चका पत्र[1] मुझे ६ अप्रैलको प्राप्त हुआ था। भारत सरकारको इस समूची परिस्थितिके सम्बन्धमें कितनी गलत सूचना थी, उसका यह पत्र खासा प्रमाण है।

"प्रशिक्षित परिचारिकाओं" के बारेमें सरकारके इस वक्तव्यकी ओर मैं आपका ध्यान खीचना चाहता हूँ कि "थोड़े समयके लिए उनकी सेवाएँ सुलभ कराई गई थी।" मेरी पत्नीको प्रशिक्षित परिचारिकाके बजाय आया अधिक पसन्द थी, उसका इस सवालसे कोई सम्बन्ध नही है कि वास्तवमें प्रशिक्षित परिचारिकाएँ दी गई या नही। इसलिए मुझे स्पष्ट लगता है कि इस भूलको सार्वजनिक रूपसे स्वीकार करने की जरूरत है।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे १ अप्रैल, १९४४ के पत्रमें[2] उल्लिखित दूसरे मामलों पर मुझे सन्तोषजनक उत्तर[3] प्राप्त होगा।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २४४-४५

१. देखिए पृ० २६८, पा० टि० १।

२. देखिए पृ० २६८-७१।

३. २९ अप्रैलका सरकारी उत्तर इस प्रकार था: "भारत सरकारने आपके २ और १३ अप्रैलके पत्रोंको खेदके साथ पढ़ा है। उसका विश्वास है कि आपने उसके खिलाफ जो शिकायतें की हैं उनकी पुष्टि किसी भी स्वतन्त्र जाँचसे नहीं हो सकती। साथ ही उसे लगता है कि इस शोक-संतप्त अवस्थामें आपसे यह आशा नहीं की जा सकती कि आप इस बातको स्वीकार करेंगे कि जो अनुरोध उससे किये गये उन्हें पूरा करने के लिए उसने हर उचित उपाय किया। इसलिए इस पत्र-व्यवहारको आगे जारी रखने से कोई लाभ नहीं होनेवाला है।"

८७. पत्र : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२१ अप्रैल, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार
(गृह-विभाग)
नई दिल्ली

महोदय,

४ मार्चको मैंने आपको एक पत्र[1] लिखा था, जिसमें मैंने सरकारसे अनुरोध किया था कि इस कैम्पके नजरबन्दोंको किसी ऐसी जेलमें भेज दिया जाये जहाँ हमें नजरबन्द रखने पर होनेवाला खर्च काफी कम हो जाये। मेरा अनुरोध है कि इस विषयमें शीघ्र निर्णय किया जाये।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २६९

८८. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
३ मई, १९४४

सचिव, बम्बई सरकार
(गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

कल श्री जमनादास गांधी आये थे। यह पूछे जाने पर कि क्या मैं उनसे मुलाकात करूँगा, मैंने इस खयालसे मिलना स्वीकार कर लिया कि यथासम्भव कमसे-कम निराशा हो। आगेके लिए मेरी स्थिति यह है कि सरकारी अनुमति प्राप्त कर लेनेवाले जो सम्बन्धी यहाँ आ पहुँचें उनसे मिलने में मुझे आनन्द तो अवश्य होगा, किन्तु मैं अपने लिए बनाये हुए इस नियमको नहीं तोड़ सकता कि जबतक सरकार

१. देखिए पृ० २५५-५६।

मुझे केवल सम्बन्धियोंसे मिलने देती है और आश्रमवासियों तथा उसी श्रेणीमें आनेवाले दूसरे व्यक्तियोंको मुझसे मिलने की अनुमति नहीं देती तबतक मैं अपनेको सम्बन्धियोंसे मिलने के सुखसे वंचित रखूंगा। उन सबको मैं अपने सम्बन्धियोंके तुल्य ही समझता हूँ। पिछले वर्ष मेरे उपवासके[1] दिनोंमें सरकारने कृपापूर्वक सबको मिलने की अनुमति दे दी थी और जहांतक मुझे पता है, उसका कोई बुरा परिणाम नहीं हुआ था। लक्षण ऐसे दीख रहे हैं कि मेरे स्वास्थ्य-लाभमें[2] काफी समय लगेगा, अतः क्या सरकार इस अवधिमें पिछले वर्ष-जैसी ही व्यवस्था नहीं कर सकती?

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३७) से

८९. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प

प्रातः ७ बजकर ४५ मिनट, ६ मई, १९४४

सचिव, बम्बई सरकार
(गृह-विभाग)
बम्बई

महोदय,

जेल-महानिरीक्षकने मुझे बताया है कि आज प्रातःकाल ८ बजे इस कैम्पके सब नजरबन्द रिहा हो जायेंगे। मैं इस बातको लिपिबद्ध कर देना चाहता हूँ कि जिस स्थलपर पहले श्री महादेव देसाईके और फिर कस्तूरबाके शवका दाह-संस्कार हुआ था वह स्थल, जो बाड़से घेर दिया गया है, अग्नि-संस्कारोंके कारण पवित्र भूमि बन गया है। हमारे दलके लोग प्रतिदिन वहाँ दो बार जाकर उन दिवंगत आत्माओंको पुष्पांजलि अर्पित करते रहे हैं और प्रार्थना करते रहे हैं। मुझे आशा है कि सरकार उस स्थलको अपने हाथमें ले लेगी और महाविभव आगाखांके अहाते

१. १० फरवरीसे ३ मार्च, १९४३ तक।

२. २ मईतक भी सरकारकी योजना यह थी कि गांधीजी को अहमदनगर स्थानान्तरित कर दिया जाये, क्योंकि वह स्थान मलेरियासे मुक्त था। किन्तु गांधीजी का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया। डॉक्टरोंकी रायमें कॉरोनरी और सेरिब्रल थ्रॉम्बोसिसका खतरा पैदा हो गया था। सरकारको डर लगा कि कहीं नजरबन्दीमें उनकी मृत्यु न हो जाये। अतः वाइसरायने ४ मईको भारत-मन्त्रीसे गांधीजी को रिहा कर दिये जाने की सिफारिश की और मन्त्रिमण्डल तथा स्वयं चर्चिलने इसकी अनुमति दे दी — विशेषतः इसलिए भी कि वाइसराय और उनके सलाहकारोंने राय व्यक्त की थी कि भविष्यमें गांधीजी की राजनीतिमें कोई सक्रिय भूमिका नहीं रह पायेगी। (ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ४, पृ० ९४८-५३)।

में से होकर वहाँ पहुँचने की सुविधा भी प्राप्त कर लेगी, ताकि जो भी सम्बन्धी और मित्रगण वहाँ जाना चाहें वे जब भी चाहें वहाँ जा सकें। यदि सरकारकी अनुमति मिले तो मैं उस पुण्यस्थलकी देखभाल और वहाँ दैनिक प्रार्थनाका प्रबन्ध करना चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस अनुरोधके सम्बन्धमें सरकार आवश्यक व्यवस्था कर लेगी। मेरा पता होगा: सेवाग्राम, बरास्ता वर्धा (मध्य प्रान्त)।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३८) से

९०. तार: मदनमोहन मालवीयको[2]

६ मई, १९४४

आपने तो एक ही बारमें पच्चीस वर्ष घटा दिये।[3] आप अपनी आयुमें पच्चीस जोड़ लीजिए।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल। महात्मा गांधी – द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० १४ से भी

१. इस पत्रके उत्तरमें ७ जुलाई, १९४४ को सरकारने इस प्रकार लिखा था: "...सरकारके लिए कानूनी तौरपर यह असम्भव है कि भूमि-अधिग्रहण कानूनके अन्तर्गत वह जबरन उस स्थलको अपने हाथोंमें ले ले। सरकारके विचारमें, यह मामला आपके और महाविभव आगाखाँके बीच निजी रूपसे तय किया जाना चाहिए।...आपका अनुरोध महाविभव आगाखाँ तक पहुँचा दिया गया है और समझा जाता है कि वे उसपर विचार कर रहे हैं। सरकारको पता चला है कि फिलहाल श्रीमती गांधी तथा श्री महादेव देसाईके सम्बन्धियों या आपके कहे हुए दूसरे व्यक्तियोंके महलके अहातेमें से होकर दाह-संस्कार-स्थलतक जाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है...।" (गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २७१)।

२. प्यारेलालके अनुसार यह मालवीयजीके निम्नलिखित तारके उत्तरमें था: "भगवानकी कृपा है कि उसने लाखों-करोड़ोंकी विनती सुन ली है और आपको खुली हवामें सांस लेने के लिए मुक्त कर दिया है। पूरी आशा है कि वह आपको मातृभूमि और मानव-जातिकी सेवाके लिए शतायु बनायेगा।"

३. प्यारेलालके अनुसार, "यहाँ गांधीजी ने अगस्त, १९४२ में अपनी गिरफ्तारीसे पूर्व अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सम्मुख दिये गये अपने अन्तिम भाषणकी ओर संकेत किया है, जिसमें उन्होंने १२५ वर्षतक जीवित रहकर देशकी सेवा करने की कामना की थी।"

९१. तार: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको[1]

पर्णकुटी
यरवडा हिल, पूना
६ मई, १९४४

चि० राजगोपालाचारी
वाजुलुल्ला रोड
मद्रास

तुम्हारा तार मिला। चिकित्सक, तू अपना रोग तो ठीक कर। स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल। महात्मा गांधी – द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० १४ से भी

९२. तार: डॉ० खानसाहबको

पर्णकुटी, पूना
६ मई, १९४४

डॉ० खानसाहब[2]
पेशावर

बादशाहके[3] स्वास्थ्यकी सूचना तारसे दें। स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. प्यारेलाल लिखते हैं कि राजगोपालाचारीने, "जिनका खुदका स्वास्थ्य कभी भी बहुत अच्छा नहीं रहता था", गांधीजी के स्वास्थ्यके बारेमें पूछा था और उनके रिहा होने पर प्रसन्नता प्रकट की थी।

२. पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके कांग्रेसी नेता

३. डॉ० खानसाहबके भाई खान अब्दुल गफ्फार खाँ

९३. बातचीत : एक मित्रके साथ[1]

[६ मई, १९४४ के पश्चात्][2]

गांधीजी ने इस कथनपर आपत्ति की कि तोड़-फोड़की कार्रवाई अहिंसात्मक कार्यक्रमका अंग हो सकती है अथवा अहिंसाके सिद्धान्तकी उनकी जो समझ है, उससे ऐसा कार्यक्रम उद्भूत हो सकता है। किन्तु मित्र महोदयने इसी बातपर आग्रह रखा कि किसीको पसन्द हो या नापसन्द हो, लेकिन तोड़-फोड़की नीति तो अब रहेगी।

गांधीजी : बिना सोचे-विचारे की हुई भविष्यवाणियोंसे किसीको कोई लाभ नहीं होता। असली सवाल तो यह है कि इस सम्बन्धमें हमारी क्या स्थिति है, उसके प्रति हमारा क्या रुख होगा?

मित्र : क्या सरकारी सम्पत्तिका विनाश हिंसा थी? आप कहते हैं कि किसीको पराई सम्पत्तिका नाश करने का अधिकार नहीं है। किन्तु यदि ऐसी बात है तो क्या सरकारी सम्पत्ति मेरी अपनी ही नहीं है? मैं तो मानता हूँ कि मेरी ही है और इसलिए मैं उसे नष्ट भी कर सकता हूँ।

आपकी दलीलमें दोहरी भूल है। पहली बात यह कि यह मान भी लिया जाये कि सरकारी सम्पत्ति राष्ट्रीय सम्पत्ति है — जो वह इस समय वास्तवमें नहीं है — तो भी सरकारके प्रति असन्तुष्ट होने के कारण मुझे उस सम्पत्तिको नष्ट करने का हक नहीं है। लेकिन अगर सरकार राष्ट्रीय ही हो और उसमें हर आदमी सरकारके कुछ कार्योंको नापसन्द करने के कारण पुलों, संचार-साधनों, सड़कों आदिको नष्ट करने के अधिकारका दावा करने लगे तो वह सरकार भी एक दिन भी टिक नहीं सकेगी। इसके अलावा, बुराई तो स्वयं मनुष्योंमें है, न कि पुलों, सड़कों इत्यादि-जैसे जड़ तत्त्वोंमें। हमें तो मनुष्योंसे ही निपटना होगा। सुरंग लगाकर पुलों इत्यादिको

१ और २. प्यारेलालकी लिखी यह रिपोर्ट "ए पॉइंटर फॉर द फ्यूचर" (भविष्यके लिए संकेत) शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी। प्यारेलालने इसमें स्पष्ट किया था कि "एक मित्र" ने गांधीजी से पूछा था कि "टेलीग्राफके तार काटना किस प्रकार अहिंसाके विपरीत है?" एक दूसरे मित्रने जिनसे गांधीजी की मुलाकात आगाखाँ पैलेस छोड़ने के कुछ समय बाद हुई थी, यह समस्या रखी थी : "आजकल हमारे युवावर्गमें दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। एक विचारधाराके लोग मानते हैं और खुलेआम यह कहते हैं कि क्रियात्मक कार्यक्रमके रूपमें अब अहिंसाका कोई स्थान नहीं रहा। वह अपने हिस्सेका काम कर चुकी है, अर्थात् जन-समुदायको उसने जागृत कर दिया है और इस प्रकार आजादीके आखिरी संघर्षके लिए उसने जमीन तैयार कर दी है। इस संघर्षमें शस्त्र-बलको छोड़ा नहीं जा सकता। दूसरी विचारधाराके लोग अहिंसामें आस्था व्यक्त करते हैं, किन्तु उसमें परिवर्तन, सुधार और उसकी कार्य-प्रणालीमें विस्तार तथा विविधताकी गुंजाइश मानते हैं। वे मानते हैं कि हमारे संघर्षके अगले चरणकी विशेषता सुनियोजित और व्यापक तोड़-फोड़की कार्रवाई होगी।"

उड़ा देने से उस बुराईपर कोई असर नही पड़ता, बल्कि जिस बुराईका अन्त हमें अभीष्ट है उसके स्थानपर उससे भारी बुराई उभर आती है।[1] बुराईको निष्प्रभाव बनाने के लिए हमें विध्वंस नही प्रत्युत विशुद्धतम प्रकारके आत्म-दाहकी आवश्यकता है, ताकि यह सिद्ध हो जाये कि सत्यरूपी परमात्माके सामने समर्पित जन-संकल्पको सरकार तोड़ तो सकती है किन्तु झुका नही सकती।

मैं मानता हूँ कि बुराई पुलमें नहीं है, क्योंकि उसका प्रयोग अच्छे उद्देश्यके लिए भी हो सकता है और बुरे उद्देश्यके लिए भी, और यह भी मानता हूँ कि बुराई तो हम मनुष्योंके भीतर ही है। मैं इससे भी सहमत हूँ कि उसे उड़ा देनेके फलस्वरूप प्रबलतर प्रतिहिंसाका उदय होगा। किन्तु आन्दोलनकी सफलताके लिए युद्ध-नीतिकी दृष्टिसे और जनताको हताशासे बचाने के लिए तोड़-फोड़ कार्रवाई जरूरी हो सकती है।

यह तो एक पुराना तर्क है। पहले आतंकवादके समर्थनमें भी यह सुनने में आता था। तोड़-फोड़की कार्रवाई एक प्रकारकी हिंसा है। लोगोंने शारीरिक हिंसाकी निष्फलताको तो समझ लिया है, किन्तु लगता ऐसा है कि कुछ लोगोंके विचारमें तोड़-फोड़की कार्रवाईके रूपमें उसीके बदले हुए रूपका यह सफल प्रयोग हो सकता है।[2] उसमें अहिंसाके सद्गुणोंका अभाव है और वह पूर्णरूपेण सशस्त्र संघर्षका स्थान भी नहीं ले सकती। . . . हमें एक ऐसी शक्तिसे जूझना है जो कभी भी हार न मानने का गर्व रखती है। ब्रिटिश शासनके आरम्भिक कालमें कई जबरदस्त विद्रोह हुए थे। कई स्थानोंपर वास्तवमें अंग्रेजोंकी हार भी हुई, किन्तु अन्ततः वे विजयी रहे। एक ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कहा करता था, "मैं लकड़ीकी बन्दूकोंमें आस्था नही रखता।" राष्ट्रीय संघर्षमें "लकड़ीकी बन्दूकों" के सहारे विजय नहीं प्राप्त होती।

मेरा विश्वास है कि सम्पूर्ण जनता वीरता और निर्भयताके जिस ऊँचे धरातल पर पहुँच गई है वहाँ वह पूर्ण अहिंसाके प्रयोगके बिना नहीं पहुँच सकती थी। हम अभी इस बातसे अनभिज्ञ हैं कि अहिंसा किस प्रकार काम करती है। किन्तु यह तथ्य अपनी जगह कायम है कि प्रत्यक्ष असफलताओं और पराजयोंके बावजूद अहिंसा के प्रभावसे हम उत्तरोत्तर अधिक शक्ति-सम्पन्न होते गये हैं। किन्तु इसके विपरीत, आतंकवादके परिणामस्वरूप लोगोंका उत्साह भंग हुआ, साहस टूटा। जल्दबाजीका नतीजा बरबादी ही होता है।

आपने "भारत छोड़ो" आन्दोलनको एक अहिंसात्मक विद्रोहकी संज्ञा दी है। क्या अहिंसात्मक विद्रोह सत्तापर कब्जा करने का ही कार्यक्रम नहीं है?

नहीं। अहिंसात्मक विद्रोह सत्तापर कब्जा करने का कार्यक्रम नहीं है। वह तो सम्बन्धोंके रूपान्तरका एक ऐसा कार्यक्रम है जिसकी परिणति सत्ताके शान्तिपूर्ण

१ और २. अनुच्छेदका शेष अंश महात्मा गांधी—द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३८ से लिया गया है।

हस्तान्तरणमें हो जायेगी। . . . उसमें बल-प्रयोग कदापि नही होगा। विपरीत विचार रखनेवालों को भी उसके अन्तर्गत पूरा संरक्षण मिलेगा।[1]

हमने देखा है कि जिस व्यक्तिको हिंसात्मक कार्योंका कुछ प्रशिक्षण प्राप्त होता है वह ऐसे अनुभवसे बिलकुल वंचित किसी व्यक्तिकी तुलनामें सच्ची अहिंसाके अधिक निकट पहुँच जाता है।

यह बात केवल इस अर्थमें सही हो सकती है कि बार-बार हिंसाका प्रयोग करके वह व्यक्ति उसकी निष्फलताका अनुभव कर लेता है, बस इतना ही। क्या आप ऐसा मानेंगे कि जिस व्यक्तिको दुर्गुणोंका कोई अनुभव न हो, उसकी अपेक्षा दुर्गुणोंके स्वादका अनुभवी व्यक्ति सदाचारके अधिक निकट पहुँच जाता है? आपके तर्कका अन्ततः यही अर्थ निकलता है।[2]

यदि कोई व्यक्ति साहसपूर्वक अपने कियेका परिणाम भुगतनेको तैयार हो तो उसमें गोपनीयताकी कोई बात नहीं। उसे तो अपने लक्ष्यको प्राप्त करने के लिए ही दुरावका सहारा लेना पड़ता है। वह बादमें मुकदमेके समय होनेवाली जिरहमें भाग लेने से इनकार कर सकता है। उसे झूठा बयान देने की कोई आवश्यकता नहीं।

कोई भी गुप्त संस्था, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, कुछ भला नहीं कर सकती। गोपनीयताका उद्देश्य है अपनी रक्षाके निमित्त अपने चारों ओर एक दीवार खड़ी करना। अहिंसा ऐसी आत्म-रक्षाको तुच्छ समझती है। वह प्रकटमें कड़ीसे-कड़ी कठिनाइयोंके बीच कार्य करती है। हमें एक ऐसे विशाल जन-समुदायको कारंवाईके लिए संगठित करना है जो शताब्दियोंसे अवर्णनीय निरंकुशताके पैरों तले कुचला जाता रहा है। उनका संगठन केवल बिलकुल प्रकट, सत्यमय साधनोंसे ही हो सकता है। मैं दुराव-छिपावके प्रति घृणा-भाव रखते-रखते ही ७६ की अवस्थातक पहुँच गया हूँ। हमें आदर्शको जरा भी नीचे नहीं लाना चाहिए। यदि हम अपने सिद्धान्तपर पूरी तरह आरूढ़ नहीं रहेंगे तो हम जरा भी प्रगति नहीं कर सकेंगे।

मैं जानता हूँ कि हमने सदा ही अपने आदर्शोंका पालन नहीं किया है; उसमें गम्भीर चूकें हुई हैं। यदि हमारे साधन कम दोषपूर्ण होते तो हम अपने लक्ष्यके और निकट पहुँच गये होते। किन्तु हमारे अपने आदर्शके सम्बन्धमें समझौता करने के बावजूद अहिंसाने लाखों-करोड़ों मूक जनताके बीच चुपचाप व्यापक प्रभाव डाला है। इसका यह अर्थ नही कि हम हमेशा ऐसा ही करते रह सकते हैं। हम गतिहीन नहीं रह सकते। हमें आगे बढ़ना ही होगा, अन्यथा हम पीछे चले जायेंगे।

तब क्या आपकी यह राय है कि अगस्त-प्रस्तावसे स्वाधीनताके संघर्षको धक्का पहुँचा है? हमारी जनताने उसके दौरान जिस वीरता और साहसका परिचय दिया वह सब क्या निरर्थक था?

१ और २. ये दोनों अनुच्छेद महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३८-३९ से लिये गये हैं।

नहीं, मैं यह नहीं कहता। ऐतिहासिक प्रक्रियाकी दृष्टिसे देखें तो पता चलेगा कि हर प्रकारके संघर्षके माध्यमसे, अगस्तकी उथल-पुथलके माध्यमसे भी, देशने स्वाधीनताकी दिशामें प्रगति ही की है। मैंने तो केवल इतना ही कहा है कि यदि हमने मेरी कल्पनाकी अहिंसात्मक वीरता दिखाई होती तो प्रगति इससे भी कहीं अधिक हुई होती। इस दृष्टिसे देखा जाये तो तोड़-फोड़की कार्रवाईने देशकी स्वाधीनताके मार्गमें रुकावट पैदा की है। लोगोंके, उदाहरणके लिए जयप्रकाश नारायण-जैसे लोगोंके, साहस, राष्ट्र-प्रेम और आत्म-बलिदानकी भावनाके प्रति मेरे मनमें अतीव प्रशंसाका भाव है, किन्तु जयप्रकाश मेरे लिए आदर्श नहीं हो सकते। यदि वीरता के लिए कोई तमगा देना हो तो मैं वह जयप्रकाशको नहीं, बल्कि उनकी पत्नीको दूंगा, जो सीधी-सादी और राजनीतिसे अनभिज्ञ होते हुए भी विशुद्धतम सत्याग्रहकी ऐसी प्रतिमूर्ति है जिसके सामने जयप्रकाशको भी झुकना पड़ता है। अगस्त आन्दोलन के विषयमें मैंने जो-कुछ कहा है, वह बीती घटनाओंकी आलोचना नहीं है — मैंने बराबर उसकी निन्दा करने से इनकार किया है — बल्कि भविष्यके लिए मार्ग-दर्शन के निमित्त ही है।

हमारी जनतामें अहिंसापर आस्था तो है, किन्तु उसे गतिमान कैसे बनाया जाये, यह उसे नहीं मालूम। इस असफलताका क्या कारण है?

विगत कष्टपूर्ण वर्षोंके दौरान अहिंसापर लगातार जोर देते रहने के बाद अब जनताको अहिंसाकी शक्तिका भान होने लगा है, किन्तु उसने अभीतक इसकी पूर्णता और सौन्दर्यके दर्शन नहीं किये हैं। अहिंसाको प्रभावकारी रूपसे संगठित करने के लिए जो कदम उठाने थे, यदि जनताने वे सब कदम उठाये होते और अट्ठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रमके सब अंगोंको पूर्णरूपसे कार्यान्वित किया गया होता तो हमारा आन्दोलन हमें लक्ष्यतक पहुँचा देता, किन्तु आज रचनात्मक कार्यमें हमारी आस्था इतनी दुर्बल है कि हमारा मन उलझनकी स्थितिमें पड़ गया है। फिर भी, मैं जानता हूँ कि कठिनाइयोंकी परवाह न करते हुए हमें आगे बढ़ते जाना है।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-२-१९४६

१. इसी विषयपर एक कार्यकर्त्री और अप्पा पंतके साथ हुई गांधीजी की बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट १३।

९४. उत्तर : मुलाकातियोंको

पूना
७ मई, १९४४

मेरे स्वास्थ्य अथवा जीवनके बारेमें चिन्ता मत कीजिए।[1] वह परमात्माके हाथमें है। वह असीम करुणामय है, और वह वही करेगा जो उसे सबसे अच्छा लगेगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ८-५-१९४४

९५. तार : तेजबहादुर सप्रूको

पर्णकुटी, पूना
८ मई, १९४४

सर तेजबहादुर सप्रू
इलाहाबाद

धन्यवाद। शीघ्र स्वस्थ होने का हर सम्भव प्रयत्न कर रहा हूँ। लेकिन होना तो वही है जो ईश्वरको मंजूर है। आशा है आप स्वस्थ होंगे।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. साधन-सूत्रके अनुसार गांधीजी ने "यह बात उन सभीसे कही थी, जिन्होंने उनके स्वास्थ्यके बारेमें पूछा था।" गांधीजी के स्वास्थ्यसे सम्बन्धित वाइसरायकी संक्षिप्त रिपोर्टके लिए देखिए पृ० २७९, पा० टि० २।

९६. तार : अमतुस्सलामको

पूना
९ मई, १९४४

अमतुस्सलाम
मार्फत हुमायूं कबीर
२६, अमीरअली एवेन्यू
कलकत्ता

धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहा हूँ। दैनिक बुलेटिन पढ़ा करो। अच्छी हो जाओ। प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७५) से

९७. तार : फ्रैंक मोरेसको

पर्णकुटी, पूना
९ मई, १९४४

मोरेस
मार्फत 'टाइम्स ऑफ इण्डिया'
बम्बई

धन्यवाद। कुछ इन्तजार करें। स्वस्थ होते ही लिखूंगा।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

९८. तार : मैसूर राज्य कांग्रेसके अध्यक्षको[1]

[१३ मई, १९४४ के पूर्व][2]

धन्यवाद, किन्तु वहाँ जाना ठीक नहीं होगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १५-५-१९४४

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह तार मैसूर राज्य कांग्रेसके अध्यक्षके निमन्त्रणके उत्तरमें था। उन्होंने गांधीजी को स्वास्थ्य-लाभ व आरामके लिए नन्दी हिल आने का निमन्त्रण दिया था।
२. यह तार दिनांक "बंगलौर, १३ मई" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

९९. तार : अमतुस्सलामको

बम्बई
१३ मई, १९४४

अमतुस्सलाम
मार्फत पायनियर बैंक
कोमिल्ला

धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहा हूँ। चिन्ताका कोई कारण नहीं। दूनी शक्तिसे तुम अपना उत्तम काम[1] जारी रखोगी, ऐसी अपेक्षा है। प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७६) से

१००. तार : आनन्द तोताराम हिंगोरानीको

बम्बई
१३ मई, १९४४

आनन्द हिंगोरानी
सदर विला
फैजाबाद रोड
लखनऊ

असहाय अनुभव करने की इजाजत नहीं है।[2] ईश्वर हमारा शाश्वत साथी है। तुम कानका इलाज हो जाने के बाद यहाँ आ सकते हो।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा आनन्द तो० हिंगोरानी

१. बापूके पत्र-८ : बीबी अमतुस्सलामके नाम में अमतुस्सलामने स्पष्ट किया है कि जिस समय उन्हें तार मिला उस समय वे पूर्वी बंगालमें नोरकामाता नामक स्थानपर कस्तूरबा सेवा मन्दिरमें काम कर रही थीं। देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", पृ० ३०० भी।

२. आनन्द हिंगोरानीकी पत्नीका देहान्त हो गया था। देखिए "पत्र : आनन्द तोताराम हिंगोरानीको", २-६-१९४४ भी।

१०१. उत्तर: एक मित्रको[1]

[१४ मई, १९४४][2]

यदि आपने कल मुझसे यह प्रश्न पूछा होता तो मैं उसका उत्तर न दे पाता। किन्तु आज मै कह सकता हूँ कि मैं अच्छा हूँ, क्योंकि पिछली रात मुझे वह चीज वापस मिल गई जिसे मैंने कुछ समयके लिए खो दिया था अर्थात् ईश्वरमें जीवन्त आस्था। ईश्वर ही महावैद्य है — महाचिकित्सक।

[अंग्रेजीसे]
महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० १५

१०२. तार: इनायतुल्ला खाँ मशरिकीको[3]

[१५ मई, १९४४ या उसके पूर्व][4]

मैंने पिछले वर्ष कायदे-आजम जिन्नासे जो अनुरोध[5] किया था उस पर मैं कायम हूँ, और स्वास्थ्य सुधरते ही हिन्दू-मुस्लिम समझौतेके सवालपर चर्चा करने को तैयार हूँ।[6]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १७-५-१९४४

१. प्यारेलाल बताते हैं कि गांधीजी ने यह उत्तर जब वे जुहूमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे उन दिनों दिया था। वे वहाँ ११ मईको पहुँचे थे। प्रश्न था, "आप कैसे है?"

२. विषय-वस्तुसे स्पष्ट है कि गांधीजी ने यह उत्तर इसी दिन मध्याह्नसे १५ दिनोंका मौन लेने के पूर्व दिया था। देखिए "पुर्जा: चिकित्सकोंको — मौन-दिवसपर", पृ० २९० भी।

३. इनायतुल्ला खाँ खाकसार (एक उग्रपंथी मुसलमान संगठन) के नेता थे। गांधीजी ने उनके ९ मईके निम्नलिखित तारके उत्तरमें यह तार भेजा था: "आपकी रिहाईसे प्रसन्नता हुई। हम आपके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभकी कामना करते हैं। कायदे-आजम जिन्नासे अनुरोध कर रहा हूँ कि आपके पिछले वर्षके अनुरोधको स्वीकार कर आपसे जल्दी मिलना तय कर लें। यदि आवश्यकता हो तो मैं भी उनके साथ चला जाऊँ। कृपया तार भेजिए कि सम्भावित भेंटकी क्या शर्तें है?"

४. यह तार दिनांक "लाहौर, १५ मई" के अन्तर्गत छपा था।

५. देखिए पृ० ७१-७२।

६. देखिए "पत्र: इनायतुल्ला खाँ मशरिकीको", १८ जून, १९४४ भी।

१०३. पुर्जा : चिकित्सकोंको — मौन-दिवसपर[1]

[१५ मई, १९४४][2]

मैं परेशान मनके बोझसे नहीं था, बल्कि डाक्टरोंके नियन्त्रणसे था — अब यह नियन्त्रण चाहे मेरी कल्पनाकी उपज हो या वास्तविक हो। मैं मानता हूँ, मैंने अपनेको डाक्टरोंके नियन्त्रणसे मुक्त कर लिया है। यह मुक्ति काल्पनिक या कल्पित है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझपर असर तो वही पड़ा है। अब मैं जो भी करूँ वह या तो मेरी कमजोरी या ताकतके कारण होगा। अगले पखवाड़े हम सबको मालूम हो जायेगा कि मेरे और हम सबके भाग्यमें क्या है। इसके प्रति मैं अनासक्त दृष्टिसे देख रहा हूँ। अन्तर यही है। अगर मुझमें मनोबल है तो जो घोषणा मैंने कल की, वह कायम रहेगी। अगर मेरा मन कमजोर हो गया है तो कह नहीं सकता, मैं किस सीमातक जा पाऊँगा।

यदि दवा सबसे कम महत्त्वकी चीज है तो आप भी निरापद हैं और मैं भी। मुलाकातियोंके सम्बन्धमें मैं डाक्टरों [की सलाह] से भी ज्यादा कड़ाई बरतूँगा।

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० १४४-४५ के बीच प्रकाशित अनुकृतिसे

१०४. तार : अजमेरके केन्द्रीय कारागारके अधीक्षकको

पाम बन, जुहू
१७ मई, १९४४

अधीक्षक
केन्द्रीय कारागार
अजमेर

अभी-अभी श्रीमती बालकृष्ण कौलसे पता चला कि उनके पति[3] आपकी जेलमें भूख-हड़तालपर हैं। कृपया मेरी ओरसे उनसे भूख-

१. प्यारेलाल बताते हैं कि इस और ऐसे ही अन्य पुर्जोंसे "डाक्टरोंके साथ गांधीजी की खींचतानका कुछ पता चलता है।"

२. पखवाड़े-भरके मौनके उल्लेखसे। मौनकी घोषणा गांधीजी ने १४ मई, १९४४ को की थी।

३. बालकृष्ण कौल, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके एक सदस्य, जो अगस्त १९४२ से जेलमें थे। उन्होंने २५ अप्रैल, १९४४ से उपवास शुरू किया था। गांधीजी के अनुरोधपर उन्होंने उपवास समाप्त किया; देखिए "भेंट : समाचारपत्रोंको" १४-७-१९४४ भी।

हड़ताल समाप्त करने का अनुरोध करें। आशा है, इसका क्या कारण है, यह लिखने की अनुमति उन्हें दी जायेगी।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१०५. तार : श्रीमती बालकृष्ण कौलको

पाम बन, जुहू
१७ मई, १९४४

श्रीमती बालकृष्ण कौल
श्रीनगर रोड
अजमेर

अधीक्षकको तार भेज दिया है।[१] उपवासका कारण लिखिए।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१०६. पत्र : रं० रा० दिवाकरको

१८ मई, १९४४

तुम्हारा पत्र बहुत अच्छा है। तुम सही थे, और मैं भी — दोनो अपने-अपने ढंगसे।[२] इसलिए तुम्हे वही करना चाहिए जो तुम्हारे दिल और दिमागको ठीक लगे। अब मैं यह सीख गया हूँ कि किसीको उसके किसी ऐसे कार्यके लिए दोष न दूँ जो उसने अपने हृदयकी प्रेरणापर किया है; तुम्हारा और बहुत-से अन्य साथी कार्यकर्त्ताओंका काम भी ऐसा ही है।[३] मेरा विचार तुम्हे मालूम हो गया। अब इसपर गौर करो और अपनी समझके मुताबिक काम करो। इतनेसे तुम्हें सन्तोष

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३५ में प्यारेलालने इस सम्बन्धमें बताया है कि कुछ भूमिगत कार्यकर्त्ताओंको, जिनमें दिवाकर भी शरीक थे, ठीक उसी निष्कर्षपर पहुँचना पड़ा था जो गांधीजी ने उन्हें दी गई अपनी सलाहमें सुझाया था; देखिए परिशिष्ट १३ और १४ भी।

३. प्यारेलालके अनुसार दिवाकरने गांधीजी को बताया था कि "शायद बाहर रहने की अपनी कोशिशसे प्रभावित होकर ही मैंने कार्यकर्त्ताओंको यह समझाने का प्रयत्न नहीं किया कि कोई कार्रवाई कर चुकने के बाद वे गिरफ्तार हो जायें। गिरफ्तार हुए बिना काम करते जाना तोड़-फोड़की कार्रवाईका अंग बन गया।"

हो जाना चाहिए। मुझसे आदेशोंकी अपेक्षा मत रखो — खासकर ऐसी हालतमें जब मैं रोग-शय्यापर पड़ा हुआ हूँ।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

महात्मा — लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी, जिल्द ६, पृ० ३२८-२९ के बीच प्रकाशित अनुकृतिसे

१०७. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

जुहू
२० मई, १९४४

प्रिय भाई,

अभी-अभी बापासे[1] आपकी भारी क्षतिके[2] बारेमें मालूम हुआ। भला अकेले मैं ही क्यों मृत्युके हाथों किसी प्रियजनकी क्षति सहन करूँ। यदि आपको अपने तत्त्व-ज्ञानके बावजूद इसकी आवश्यकता पड़े तो आपके प्रति मेरी भरपूर सहानुभूति है।

मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है मानों मैं बियाबानमें भटक रहा हूँ। यह तथाकथित स्वतन्त्रता मनको खटक रही है। किन्तु ईश्वर हमारा सम्बल है, और यही सोचकर मैं हिम्मत बाँध लेता हूँ।

सस्नेह।

आपका,
छोटा भाई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८८२१) से। लेटर्स ऑफ द राइट ऑनरेबिल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, पृ० ३५८-५९ से भी

१. हरिजन सेवक संघके मन्त्री अमृतलाल वि० ठक्कर
२. श्रीनिवास शास्त्रीके भाई वी० एस० रामस्वामी शास्त्रीकी मृत्यु हो गई थी।

१०८. पत्र : मुकुन्दराव रामचन्द्र जयकरको[1]

जुहू
२० मई, १९४४

प्रिय डॉ० जयकर,

देशने तो मुझसे बहुत-सी आशाएँ बाँध रखी हैं। मैं नहीं जानता कि मेरी इस रिहाईके सम्बन्धमें आप क्या सोचते हैं; लेकिन मुझे तो इसकी बिलकुल भी खुशी नहीं है। यहाँतक कि मुझे तो लज्जाका भी अनुभव होता है। मुझे बीमार नहीं पड़ना चाहिए था। मैंने बीमार न पड़नेकी बहुत कोशिश की, लेकिन अन्ततः असफल रहा। मुझे लगता है कि जैसे ही मैं इस कमजोरीसे छुटकारा पा लूँगा, मुझे दुबारा गिरफ्तार कर लिया जायेगा। और यदि वे मुझे गिरफ्तार न करें तो भी मैं कर ही क्या सकता हूँ? मैं अगस्त-प्रस्तावको वापस नहीं ले सकता। आपने बिलकुल ठीक ही कहा है, यह प्रस्ताव निर्दोष है। उसके पीछे जो शक्ति थी, उसके विषय में सम्भव है कि आपकी राय मुझसे भिन्न हो। मेरे लिए तो वह प्राण-वायुके समान है। २९ मई तक मेरा मौन है। इस बीच क्या मैं प्यारेलालको आपके पास भेजूँ? यह भी आपके स्वास्थ्यपर निर्भर है।

मुझे मालूम है कि आपका स्वास्थ्य भी आजकल ठीक नहीं है।[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधी-जयकर पेपर्स : फाइल नं० ८२६, पृ० १। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. यह पत्र बॉम्बे क्रॉनिकल, १-६-१९४४ में, प्यारेलालकी इस टिप्पणीके साथ प्रकाशित हुआ था : "अखबारमें इस पत्रका बिगाड़ा गया और अनधिकृत पाठ प्रकाशित किया गया है। इसलिए गांधीजी ने डॉ० जयकरके नाम लिखे पूरे पत्रको छपवाने का मुझे आदेश दिया है। . . . गांधीजी आशा करते हैं कि उनके इस पत्रसे, जो प्रकाशनके लिए नहीं था और छोटा-सा था, कोई गम्भीर अर्थ नहीं निकाला जायेगा।"

२. मुकुन्दराव जयकरने २१ मईको इसके जवाबमें लिखा था : "आपके पत्रके लिए धन्यवाद। उसमें आपकी मनोव्यथा प्रकट हुई है। यदि मैं आपकी व्यथा कम करने में कुछ भी मदद कर सकूँ तो बहुत सुख मानूँगा। कृपया प्यारेलालको मेरे पास भेजने का कष्ट मत कीजिए। अब मैं काफी अच्छा हूँ और यदि आपके डाक्टरोंकी अनुमति हो तो जुहू आकर आपसे मिल सकता हूँ। कृपया मुझे बताइए कि आपकी क्या इच्छा है।"

१०९. पत्र : विजया म० पंचोलीको

जुहू
२० मई, १९४४

चि० विजया,

मैं आजसे कुछ पत्र लिखने की छूट ले रहा हूँ।[1] मै जुहूमें कमसे-कम २९ तारीखतक हूँ। बादमें कदाचित तीन-एक हफ्ते पूना रहूँगा। मौन २९ तारीखको छूटेगा। लेकिन यहाँ जरूर आ जाओ। तुम्हे यहाँ रखना कदाचित् मुश्किल होगा। मैं एक झोंपड़ीमें रहता हूँ। इसलिए तुम कही अन्यत्र ठहरना। मै लाचार हूँ। सेवाग्राममें तो सब समा जाते है। नानाभाई[2] छूट गये, यह अच्छा हुआ। मेरा तू जैसा लिखती है वैसा ही समझ।

तुम सबको
बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१४८) से। सी० डब्ल्यू० ४६४० से भी; सौजन्य: विजया म० पंचोली

११०. पत्र : दुर्गा म० देसाईको

जुहू
२० मई, १९४४

चि० दुर्गा,[3]

मुझे तो फिलहाल पंगु समझो। महात्माके अहंकारको भी ईश्वर निभने नही देता। ये पंक्तियाँ सबके लिए है। जब मै पत्र लिखने लगूँगा तब हर कोई मुझसे पत्रकी अपेक्षा रखेगा, लेकिन इससे पहले कि मै उनकी ख्वाहिश पूरी करूँ, कौन जाने मैं उन सबके पास पहुँच जाऊँ? मुझे सविस्तार लिखना। जो लोग लिखना चाहें वे लिखें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

१. जब गांधीजी जेलमें थे, सरकारने यह बन्दिश लगा रखी थी कि वे अपने परिवारके सदस्योंके अलावा और किसीको पत्र नहीं लिख सकते। इसपर गांधीजी ने २१ महीनोंतक किसीको पत्र न लिखने की प्रतिज्ञा ली। उपर्युक्त पत्र प्रतिज्ञा खत्म होने के बाद लिखे गये पत्रोंमें से एक है।

२. नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट, सनोसराकी लोक भारतीके प्रिंसिपल

३. महादेव देसाईकी पत्नी

१११. पत्र : नारणदास गांधीको

जुहू
२० मई, १९४४

चि० नारणदास,

तुम्हारी वार्षिक रिपोर्ट मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया। अभी मैंने कुछ लिखना शुरू नहीं किया है। मात्र रोगियोंको तीन पत्र लिखे हैं। लेकिन दरिद्रनारायण-जैसा रोगी समस्त संसारमें नहीं है। तुम तो उसके अनन्य भक्तोंमें से हो। मेरी जयन्ती मनाने के लिए प्रति वर्ष रेंटियाबारस[1] मनाते हो और हर साल अपनी सेवा कठिन बनाते जाते हो। इस बारकी परीक्षा सबसे कठिन है। ईश्वर करे तुम उसमें सफल हो। जेलमें इस बार मार्क्सके बारेमें और मार्क्सवादके अन्तर्गत रूसमें होनेवाले महान प्रयोगके बारेमें जो साहित्य मेरे हाथ लगा, मैं उसे पढ़ गया। कहाँ वह प्रयोग और कहाँ हमारा यह चरखा? हमारी तरह वहाँ भी सारी जनताको यज्ञमें शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। लेकिन यहाँके यज्ञमे और वहाँके यज्ञमें पूर्व और पश्चिम अथवा उत्तर और दक्षिण जितना भेद है।

कहाँ हमारा चरखा और कहाँ वहाँके भाप और बिजलीसे चलनेवाले यन्त्र? तिसपर भी मुझे चरखेकी कछुए-जैसी धीमी चाल पसन्द है। चरखा अहिंसाका परिचायक है। और अन्ततः विजय तो अहिंसाकी ही है। लेकिन यदि उसके पुजारी, अर्थात् हम लोग, मन्द हुए तो इसमें हमारी लाज जायेगी और हम अहिंसाको भी लजायेंगे। तुम्हारी प्रवृत्ति उत्तम है। लेकिन अब तुम्हें उसमें नूतनता लानी चाहिए। यन्त्रोंके समान चरखेका भी शास्त्र है। चरखेकी 'तकनीक' का अभी हमने पूरा विकास नहीं किया है। उसके लिए गहरे अध्ययनकी जरूरत है।

जैसे श्रद्धा-विहीन ज्ञान व्यर्थ है, उसी तरह ज्ञान-विहीन श्रद्धा अन्धी श्रद्धा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८६०७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. गांधीजी के जन्म-दिवस के उपलक्ष्यमें नारणदास गांधी द्वारा आरम्भ किया गया कताई यज्ञ; इसे 'रेंटिया यज्ञ' के नामसे भी जाना जाता था, जिसमें विक्रम संवत्के अनुसार गांधीजी के जन्म-दिन भाद्रपद बदी १२ से लेकर ईस्वी सन्के अनुसार उनके जन्म-दिन २ अक्टूबरतक अखण्ड कताईका कार्यक्रम चलता था। देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९ भी।

११२. पत्र : नारणदास गांधीको

जुहू
२० मई, १९४४

चि० नारणदास,

मैंने लेटे-लेटे तुम्हारे लिए एक लेख लिखा। मुझे डर था कि इसमें बहुत गलतियाँ होंगी। लेकिन वैसा नहीं हुआ। फिरसे स्याहीसे लिखने की इच्छा नही हुई। मेरे लेखमें यदि कुछ फेर-बदल करवाना चाहो तो मुझे वापस भेज देना। तुम्हारे संशोधनको देखने के बाद दूसरा लिख भेजूंगा। समय तो अभी है।

दूसरी बात मनु (जयसुखलालकी)के बारेमें। तुम उसे जानते ही हो। मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ हूँ। अपने परिवारमें इस जैसी सहज भावसे सेवा करने वाली दूसरी लड़की मैंने और कोई नहीं देखी है। इसने जिस भावसे बा की सेवा की है उसने मेरा मन हर लिया है। वह तो अभी भी मेरे पास रह सकती है, लेकिन मैं ऐसा नहीं चाहता। मै तो अब टूटा हुआ जहाज हूँ, उसे कुछ नही दे सकता। दूसरे लोग अपने काममें व्यस्त है और वे उसे अभी क्या दे सकते है? उसका विद्याभ्यास नियमपूर्वक चलना चाहिए। वह तो तुम्हारे पास ही हो सकता है। तुम्हें बुरी लगे ऐसी लड़की वह नही है। भोली है, पढ़ने में सुस्त है, गला अच्छा है, स्वास्थ्य भी ठीक ही कह सकते हैं। अपने शरीरकी देखभाल करना नही जानती। सेवामें अपना सब-कुछ भूल जाती है। आज्ञाकारी है। तुम्हारा तो सब काम करेगी ही। उसकी संस्कृत और गुजराती अच्छी हो, ऐसा मैं जरूर चाहूँगा। उसे 'गीता' मैंने ही सिखाई है। उच्चारण ठीक कर सकती है। पुरुषोत्तम[1] अथवा तुम उसका उच्चारण और अधिक सुधार सकते हो। यदि तुम्हें उसका खर्च लेना उचित जान पड़े तो वह जयसुखलालसे लिया जा सकता है। तुम उसे अपने यहाँ ले सकते हो या नहीं, इसके बारेमें तार देना। पहला साथ मिलते ही मेरा उसे भेजने का इरादा है। इन्कार करना हो तो संकोच न करना।[2]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैंने इसे दोबारा पढा नहीं है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८६०८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. नारणदास गांधीके पुत्र

२. देखिए "पुर्जा : मनु गांधीको — मौन-दिवसपर", पृ० २५५ भी।

११३. पत्र : गगनबिहारी मेहताको

२० मई, १९४४

भाई श्री गगन,

महादेवके बारेमें तुम्हारा लेख पढ़ा। तुम जबतक हो तबतक क्या मैं महादेव का एक काम तुम्हे सौंप सकता हूँ? नारायणको[1] स्कूल अथवा कालेज अच्छा नही लगता और उसने जो-कुछ सीखा है वह महादेवसे सीखा है। मै अपनी वर्त्तमान स्थितिमें उसे कुछ भी नही दे सकता। स्वस्थ होने पर मेरा खयाल है कि मै मुक्त रहूँगा [और उसे समय दे सकूँगा]। मै जबतक [जेलसे] बाहर हूँ तबतक वह मेरे पास ही रहना चाहता है। तुम यदि कुछ समय उसे दे सको तो अच्छा हो। तुम उसे अर्थशास्त्र, संस्कृत, बगला आदि पढ़ा सकते हो। यदि विचार करने पर तुम्हें यह भार-स्वरूप जान पड़े तो न पढ़ाना। तुम्हारे लेखमें महादेवके प्रति तुम्हारा प्यार छलक रहा है, इसीसे मैंने यह माँग की है।

दूसरे, श्रीमती सौदामिनीने[2] प्रेमपूर्वक मुझसे कहा था कि मुझे यदि कोई मददकी जरूरत हुई तो वह देगी। चि० उमाको[3] यदि सेवाकी कोई जरूरत न हो तो वह [सौदामिनी] भले ही मुझे कुछ समय दे। वह क्या दे, इसपर मैं विचार करूँगा। कितना और कब, यह भी देख लूँगा। हो सकता है तुम दोनों ही समय न निकाल सको। मैं तो सत्संगका भूखा हूँ। इसलिए जितना और जहाँसे मिलता है वहाँसे माँग लेता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

१. महादेव देसाईके पुत्र, जिन्हें बाबलो नामसे भी पुकारा जाता था
२. गगनबिहारी मेहताकी पत्नी
३. गगनबिहारी मेहताकी पुत्री उमा रांदेरिया

११४. तार : मदनमोहन मालवीयको

पाम बन, जुहू
२१ मई, १९४४

भारतभूषण मालवीयजी
बनारस

आपका कृपापूर्ण तार मिला।[1] ऐसी यात्राके लिए चिकित्सकोंकी स्वीकृति नही मिलेगी। महीनेके अन्तके बाद सन्देशवाहकके जरिये बातचीत करने का सुझाव देता हूँ। तबतक पूरी तरह मौन रख रहा हूँ।[2]

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

११५. पत्र : अशफाक हुसैनको

जुहू
२१ मई, १९४४

प्रिय अशफाक,

तुम्हारा सुखद पत्र मिला। मैं सिर्फ प्रेम-पत्र ही लिख सकता हूँ। मेरे सेवाग्राम पहुँचने पर — यानी कि अगर कभी पहुँच भी पाऊँ तो — वहाँ जरूर आना।

मुझे कुछ समय और चिकित्सकोंकी देख-भालमें रहना पड़ेगा।

सभी दोस्तोंको प्यार।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. २० मईका तार जिसमें मालवीयजीने लिखा था : "यदि चिकित्सक अनुमति दें तो मैं आपको इलाहाबादमें दो महीने रुकने की सलाह देना चाहता हूँ। महत्त्वपूर्ण विषयपर आपसे विचार-विमर्श आवश्यक है। आपका स्वास्थ्य इस लायक हो जाने पर आपसे मिलना चाहता हूँ।"

२. देखिए "पत्र : मदनमोहन मालवीयको", पृ० ३०० भी।

११६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२१ मई, १९४४

चि० कृष्णचन्द्र,

तुम्हारा पत्र पढ़ सका हूँ। फिलहाल मैं ज्यादा नही लिख सकता, इसलिए थोड़ेसे सन्तोष मानना। मेरा एकको पत्र लिखना सबको लिखने के बराबर समझना। बलवन्तसिंह और अमतुस्सलामके झगड़ेके बारेमें मैं कुछ नही जानता। मुन्नालालका चले जाना ही उचित लगता है। वह कही स्थिर होकर बैठ जाये तो अच्छा है। लेकिन उसका मन अशान्त है, इसलिए वह बैठेगा नही। ईश्वर उसे निभा लेता है, क्योंकि उसका इरादा नेक है। पारनेरकर[1] क्या करता है? उसकी तबीयत कैसी है?

मैं भले ही न लिखूँ, लेकिन जो लिखना चाहे वह मुझे लिख सकता है।

मैं वहाँ आने में जल्दबाजी नही करूँगा। मेरा मन तो वहीं है। अब तो ठण्ड होने पर ही वहाँ आऊँगा। मौन २९ तारीखको टूटेगा। उसके बाद दो-तीन हफ्ते डॉ० मेहताके आरोग्य-गृहमें बिताने की तीव्र इच्छा है।

सबको आशीर्वाद। शंकरन क्यों नाराज है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

११७. पत्र : छगनलाल गांधीको

जुहू
२१ मई, १९४४

चि० छगनलाल,

अब मैं थोड़ा लिख सकता हूँ। इसलिए तुम-जैसे लोगोको लिखता हूँ। तुमने जो पत्र लिखा है उसमें मुझे कोई खराबी दिखाई नही देती। अनजाने ही भूल होने पर भी तुम्हें लिखते रहना चाहिए। अनेक बार तो हम भूलें करके ही भूलोसे बचना सीखते हैं। हम तो प्रयत्न ही कर सकते है; फल तो ईश्वरके हाथ है। जो

१. सेवाग्राम आश्रम डेरीके कार्यकर्त्ता यशवन्त महादेव पारनेरकर

हो उससे हमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। यह सब तो तुम्हें लिखने की जरूरत नहीं है। मेरी चिन्ता न करना। आज मौन चल रहा है जो २९ तारीखको टूटेगा।

सबको
बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२१२) से। सौजन्य : छगनलाल गांधी

११८. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

२१ मई, १९४४

पूज्य भाई साहब,

ऐसे खत लिखने की सम्मती दाक्तरोंने दी है। आपके प्रेमके पात्र मैं कहां हुं? मै जानता हुं कि आपकी इच्छाकी पूर्ती मैं नहीं कर पाता हुं।[1]

दाक्तरोंकी संमती लंबी मुसाफरी करने की नहि मिल सकती है। बात्र यह भी है कि जेल बहार हुं ऐसी प्रतीती मुझे नहि होती है। बीमारीके कारण छूटना छूटना हि कहां है? देखें अच्छा होने पर ईश्वर मुझे क्या मार्ग बतायेगा।

आपका छोटा भाई

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

११९. पत्र : अमतुस्सलामको

जुहू
२२ मई, १९४४

प्यारी बेटी,

तेरे तार और खत मिले हैं। प्यारेलालने उनका जवाब दिया है। कुछ लोगोंको ऐसे खत लिखने की छूट मुझे मिली है। इसलिए यह लिखता हूँ। तेरा शरीर काम दे तो वहाँ[2] जो सेवा हो सके वह करना। अगर शरीर काम न दे तो सेवाग्राम जाना। मुझे ठीक शक्ति आ रही है। तेरेसे तो मेरी तबीयत अच्छी ही मानी जायेगी। लेकिन मुझे कौन काम करने देगा और मैं काम करनेवाला भी कहाँ हूँ?

कान्ति कल यहाँ आया। मजेमें है। यहाँसे दो-तीन दिनमें मैसूर लौटेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७७) से

१. देखिए पृ० २९८, पा० टि० १।
२. कस्तूरबा सेवा मन्दिर, बोरकामाता; देखिए "तार : अमतुस्सलामको", पृ० २८८।

१२०. पत्र : गोमती कि० मशरूवालाको

जुहू
२२ मई, १९४४

चि० गोमती,

आज तुम्हें लिखने का मन हो रहा है। यह पत्र सबके लिए है। विजयाबहन आदि आकर मुझसे मिल गये है। मंजु भी आई थी।

किशोरलालकी[1] चिन्ता तो मैं करता ही नहीं। उन्होंने तो चुपचाप दुःख-सुख सहन करने के लिए जन्म लिया है।

तुम्हारे बारेमें भी खबरें मिलती रहती हैं। सन्तोषजनक हैं।

दुर्गासे कहना कि शान्तिकुमारके[2] निमन्त्रणको मान देकर, भले आये। लीलावती का कहना है कि वह [दुर्गा] यहाँ दुःखी रहती है। हमें दुःखी नहीं होना चाहिए। लेकिन यह तो दर्शनकी बात हुई। हकीकत तो यह है कि वह दुःखी है। इसलिए वह भले यहाँ आये। उसे यहाँ अपेक्षाकृत शान्ति मिलेगी। बाबलो यही है, यहाँ आने का यह भी एक कारण है। फिर मैं तो हूँ ही। अब जैसा उसे उचित लगे वैसा करे।...[3]

उससे कहना कि वह मुझे सविस्तार लिखे। अपनी गतिविधियोंके बारेमें भी बताये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३) से

१२१. पत्र : मुकुन्दराव रामचन्द्र जयकरको

२३ मई, १९४४

प्रिय डॉ० जयकर,

मेरे पत्रका जवाब जल्दी देने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।[4] जैसे ही चिकित्सक मुझे अनुमति देंगे, मैं आपको यहाँ आने का कष्ट दूंगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

गांधी-जयकर पेपर्स : फाइल नं० ८२६, पृ० ३। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. गोमतीबहन मशरूवालाके पति
२. शान्तिकुमार न० मोरारजी
३. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ छूट गया है।
४. देखिए पृ० २९३, पा० टि० २।

१२२. पत्र : प्राणलाल देवकरण नानजीको

मथुरादासके हाथ

जुहू
२३ मई, १९४४

भाई प्राणलाल,

तुम जो माँगते हो वह आशीर्वाद तो है ही। यदि मैं इस चीजको तटस्थ भावसे ग्रहण नहीं करता तो मेरा इस कोषमें[1] भाग लेना लज्जाकी बात होगी। लज्जित न होकर मैं जितनी दिलचस्पी ले सकता हूँ उतनी मैं इस कोषकी सफलता में ले रहा हूँ। भला एक ऐसा कोष कैसे सफल नही होगा जिसकी अपीलपर तुम जैसे धनवान लोगोंके हस्ताक्षर हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्री प्राणलाल देवकरण नानजी
बम्बई

[गुजरातीसे]
प्राणलाल देवकरण नानजी अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० १४-१५ के बीच प्रकाशित अनुकृतिसे

१२३. पुर्जा : मथुरादास त्रिकमजीको – मौन-दिवसपर

[२३ मई, १९४४][2]

मै उससे [डाक्टरसे] पूछूँगा। तू भी पूछना। वह यदि अनुमति दें तो तू जरूर रोज आ। मुझे तो अच्छा ही लगेगा। मुझे इस तरह हैरान करते ही रहना।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० १९८

१. कस्तूरबा स्मारक कोष

२. साधन-सूत्रमें मथुरादास त्रिकमजीने बताया है कि गांधीजी के ११ मईको जुहू आ जाने के बाद वे सातवें और तेरहवें दिन गांधीजी से मिलने गये थे। यह पुर्जा दूसरी मुलाकातके समय लिखा गया था।

१२४. पुर्जा: मथुरादास त्रिकमजीको – मौन-दिवसपर

२३ मई, १९४४

तूने जो लिखा है[1] वह बात बिलकुल सच है। मेरा कहना यह है कि मैं उसी दिशामें काम कर रहा हूँ। मैं जल्दबाजी नहीं करूँगा। बिना सोचे-समझे इसमें नही उतरूँगा। ज्यादातर तो मैं मौन ही रहता हूँ।

[गुजरातीसे]
बापुनो प्रसादी, पृ० २००

१२५. पत्र: दिनकरको

जुहू
२३ मई, १९४४

चि० दिनकर,

मुझे थोड़े-से और छोटे-छोटे पत्र लिखने की अनुमति मिली है। अतः यह केवल प्यार बताने के लिए ही लिख रहा हूँ। मैंने मान लिया है कि जो-कुछ हुआ है वह ठीक ही हुआ है। गहराईमें उतरने लायक जब स्वास्थ्य हो जायेगा तब देखा जायेगा। तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर रहा है, यह पढ़कर प्रसन्नता हुई। मुझे मालूम है कि तुम्हारा शरीर मुझसे भी निर्बल है। यहाँ आने के लोभका संवरण करके तुमने ठीक ही किया है। आजकल तो मेरा अखण्ड मौन चल रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. तात्पर्य मथुरादास त्रिकमजीके २० मईके पत्रसे है, जिसमें उन्होंने लिखा था कि गांधीजी द्वारा सरकारके प्रति कांग्रेसकी नीति निर्धारित कर दिये जाने के बाद ही हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नको हाथमें लेना उचित होगा।

१२६. पत्र : दादूभाई देसाईको

जुहू
२३ मई, १९४४

भाई दादूभाई,

तुम्हारा प्यारा पत्र मिला। मेरा सम्पूर्ण जीवन ही प्रयोगोंसे परिपूर्ण है और उन्हींपर फल-फूल रहा है। लेकिन चिन्ता मत करना। मैं मानता हूँ कि मेरे प्रयोग के पीछे ईश्वरका हाथ रहा है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जबतक ईश्वर मुझसे काम लेना चाहेगा तबतक वह इस शरीरको सुरक्षित रखेगा। यहाँ न आने के लिए अपने मनको समझाकर तुमने बहुत ही अच्छा किया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१२७. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

जुहू
२३ मई, १९४४

प्रिय भगिनि,

तुम्हारे खतसे बड़ा आनंद हुआ। मुझे बहुत लिखने को छुटी तो नहीं मिली है। धीरे-धीरे अच्छा हो रहा हूं। शक्ति आने में कुछ देर तो होगी ही।

वहांके कामोंसे फुरसद मिलने पर अवश्य आना। मैं सेवाग्राम पहोंचु तब।

तुम्हारा स्वस्थ अच्छा होगा।

दोनोंको
बापुके आशीर्वाद

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू
श्रीनगर
कश्मीर[1]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८००४) से। सी० डब्ल्यू० ३१०४ से भी; सौजन्य : रामेश्वरी नेहरू

१. मूलमें पता अंग्रेजीमें है।

१२८. पत्र : मूलचन्दको

जुहू
२३ मई, १९४४

भाई मूलचंदजी,

तुम्हारा खत मिला।

जो हुआ उसमें कुछ शिकायतका कारण नहि पाता। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्तिके अनुकुल ही चल सकता है।

तुम्हारा कार्य ठीक चलता होगा।

मुझको थोड़ा ही लिखने की इजाजत है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८४३) से

१२९. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

जुहू
२३ मई, १९४४

चि० इन्द्र,

दिल चाहे तब आओ। लेकिन आजकलकी मुसाफरीकी कठिनाईमें सिर्फ देखने के लिए तकलीफ क्यों उठाना? मेरा मौन चलता है। २९ ता० को खुलेगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२०६) से। सी० डब्ल्यू० ४८६४ से भी; सौजन्य: चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

१२६. पत्र : दादूभाई देसाईको

जुहू
२३ मई, १९४४

भाई दादूभाई,

तुम्हारा प्यारा पत्र मिला। मेरा सम्पूर्ण जीवन ही प्रयोगोंसे परिपूर्ण है और उन्हींपर फल-फूल रहा है। लेकिन चिन्ता मत करना। मैं मानता हूँ कि मेरे प्रयोग के पीछे ईश्वरका हाथ रहा है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जबतक ईश्वर मुझसें काम लेना चाहेगा तबतक वह इस शरीरको सुरक्षित रखेगा। यहाँ न आने के लिए अपने मनको समझाकर तुमने बहुत ही अच्छा किया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१२७. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

जुहू
२३ मई, १९४४

प्रिय भगिनि,

तुम्हारे खतसे बड़ा आनंद हुआ। मुझे बहुत लिखने को छुटी तो नहीं मिली है। धीरे-धीरे अच्छा हो रहा हूं। शक्ति आने में कुछ देर तो होगी ही।

वहांके कामोंसे फुरसद मिलने पर अवश्य आना। मैं सेवाग्राम पहोंचु तब।

तुम्हारा स्वस्थ अच्छा होगा।

दोनोंको
बापुके आशीर्वाद

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू
श्रीनगर
कश्मीर[1]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८००४) से। सी० डब्ल्यू० ३१०४ से भी; सौजन्य : रामेश्वरी नेहरू

१. मूलमें पता अंग्रेजीमें है।

१२८. पत्र : मूलचन्दको

जुहू
२३ मई, १९४४

भाई मूलचंदजी,

तुम्हारा खत मिला।

जो हुआ उसमें कुछ शिकायतका कारण नहिं पाता। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्तिके अनुकुल ही चल सकता है।

तुम्हारा कार्य ठीक चलता होगा।

मुझको थोड़ा ही लिखने की इजाजत है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८४३) से

१२९. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

जुहू
२३ मई, १९४४

चि० इन्द्र;

दिल चाहे तब आओ। लेकिन आजकलकी मुसाफरीकी कठिनाईमें सिर्फ देखने के लिए तकलीफ क्यों उठाना? मेरा मौन चलता है। २९ ता० को खुलेगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२०६) से। सी० डब्ल्यू० ४८६४ से भी; सौजन्य: चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

१३०. पत्र : ए० कालेश्वर रावको

जुहू
२४ मई, १९४४

प्रिय कालेश्वर राव,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। ऋषि अधिक सख्त धातुसे बने होते हैं।

मैं तो जो हूँ, मुझे वही रहने दो — अर्थात् भारतका और उसके माध्यमसे मानवताका एक साधनारत सेवक।[2]

आशा है, तुम स्वस्थ होगे।

तुम्हारा,
बापू

श्री ए० कालेश्वर राव
नन्दीग्राम, कृष्णा जिला

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१३१. पत्र : तारा और रमणीकलाल मोदीको

जुहू
२४ मई, १९४४

चि० तारा और रमणीकलाल,

'सीताराम' की तरह 'तारा' पहले होना चाहिए न? मेरी गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। ईश्वरने मेरा गर्व चूर कर दिया है, सो ठीक ही हुआ। मैं स्वयं को तुम सबसे अधिक स्वस्थ मानता था। अब तो ऐसा है कि जो गति तेरी सो गति मेरी! कहा जा सकता है कि इतनी शक्ति तो आ ही गई है [कि यह लिख सका]।

किसीको यहाँ दौड़े आने की आवश्यकता नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

१७ शान्ति नगर
आश्रम रोड
साबरमती

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. अ० भा० कांग्रेस कमेटीके और मद्रास विधान-सभाके भी सदस्य

२. रेमिनिसेंसेज ऑफ गांधीजी, पृ० १४१, में चन्द्रशंकर शुक्लने बताया है कि ए० कालेश्वर रावने अपने पत्रमें "गांधीजी को ऋषि कहा था और यह कामना की थी कि इस धरतीपर अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए वे ११६ वर्ष जियें"।

१३२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२४ मई, १९४४

चि० कृष्णचन्द्र,

जाने-अनजाने भूल करने पर यदि हम मिट जाते हैं तो फिर बेचारे चित्रोंके मिट जानेमें आश्चर्यकी क्या बात है? इससे हम जो पाठ ग्रहण कर सकें वह पाठ ग्रहण करके हमें आश्वस्त होना चाहिए। शेष प्यारेलालके पत्रसे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४४०) से

१३३. सन्देश : चीनको[1]

२५ मई, १९४४

चीनके प्रति, जिससे विश्व बड़ी-बड़ी आशाएँ रखता है, मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएँ। मुझे खेद है कि मैं चीनी भाषा लिखना नहीं जानता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-५-१९४४; *हिन्दू*, २७-५-१९४४ भी

१३४. पत्र : कृष्ण वर्माको

जुहू
२५ मई, १९४४

भाईश्री कृष्ण वर्मा,[2]

मैंने तुम्हें बताया है कि मैं 'दिव्य जीवन' ध्यानपूर्वक पढ़ा करता था। मुझे उसमें कुछ नहीं मिला। [इसके आधारपर] पाठक कोई प्रयोग नहीं कर सकता।

१. *हिन्दू* में प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार "सन्ध्या कालकी प्रार्थनाके बाद छह चीनियोंका दल गांधीजी से मिला। वे लोग एक अलबम लाये थे, जिसमें गांधीजी की भी कुछ तस्वीरें थीं। गांधीजी ने उसपर हस्ताक्षर किये। इसके बाद मुलाकातियोंने आपसमें कुछ धन-राशि एकत्र करके हरिजन-कोषके लिए गांधीजी को भेंट की।"

२. बम्बईके उपनगर मलाडमें स्थित प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रके संचालक

उसमें शास्त्रीय ज्ञान नहीं है। महादेव प्रसादको तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कौन जाने, उनका ज्ञान छीज ही न गया हो। उनका लेख तो ऐसा ही लगा। यह पत्र उन्हें भी पढ़वा देना। तुम दोनों या तो इस मासिकमें ज्ञानका समावेश करो अथवा इसे बन्द ही कर दो, यही बताने के लिए मैंने यह पत्र लिखा है।

नैसर्गिक उपचारका मैं पुजारी हूँ। लेकिन उपचारक मेहनत नहीं करते। वे गहराईमें नहीं उतरते; अपने विषयके दीवाने नहीं होते, न अभ्यास करते हैं और न समन्वयका प्रयत्न करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१३५. पत्र: एस० के० वैद्यको

२५ मई, १९४४

भाई वैद्य,

मेरी यह तीव्र इच्छा है कि तुम किसी भी प्रकारके सेवाकार्यमें जुट जाओ — यदि किसी और भावनासे नहीं तो क़मसे-कम इस भावनासे कि ऐसा करके तुम गरीबोंके साथ तादात्म्य स्थापित कर रहे हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७५४) से

१३६. पत्र: अमृतकौरको

[२६ मई, १९४४][1]

प्रिय अमृत,

तुम मुझसे पत्रोंकी आशा मत रखना, किन्तु प्यार तुम्हें भेज सकता हूँ। आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२०२) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७८३८ से भी

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र सुशीला नैयर द्वारा अमृतकौरको लिखे गये २६ मई, १९४४ के पत्रके शीर्ष भागपर लिखा हुआ है।

१३७. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

जुहू
२६ मई, १९४४

प्रिय सी० आर०,

मैंने तुम्हारा पोस्टकार्ड और पत्र दोनों पढ़े। तुम मेरा मजाक[1] ठीक समझ गये, मेरे लिए इतना ही काफी है। तुम्हारे पत्रसे पता चलता है कि तुम्हारा शारीरिक स्वास्थ्य मुझसे भी बुरा है। वैसे तो तुम जब भी चाहो आ सकते हो, किन्तु जबतक मैं लम्बी बातचीत कर सकने के लायक नही हो जाता तबतक आने का आग्रह नही करूँगा। इस बीच तुम्हे जो-कुछ कहना हो, लिखकर भेज सकते हो। आजकल तो मैं कुछ ऐसी चीजें पढ़ रहा हूँ जिन्हें मैंने अभीतक नही पढ़ा था और प्यारेलाल जो पत्र मुझे दिखाना चाहता है उन्हें भी पढ़ लेता हूँ।

आशा है, पापा[2] और नरसिंहन्[3] खूब अच्छे होंगे।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०९४) से

१३८. पुर्जा : बड़े गुलाम अली खाँको[4]

२६ मई, १९४४

मुझे ईश्वरका गुणगान करनेवाले गीत अच्छे लगते है। मुझे संगीतका ज्यादा ज्ञान नहीं है और न ही मैंने बहुत-से उस्तादोंको सुना है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-५-१९४४; **हिन्दू**, २८-५-१९४४ भी

१. देखिए पृ० २८१ ।

२ और ३. राजगोपालाचारीकी पुत्री, नामगिरि तथा पुत्र

४. हिन्दू की रिपोर्टके अनुसार "गांधीजी ने यह टिप्पणी लाहौरके गुलाम अली खाँ द्वारा प्रस्तुत शास्त्रीय संगीत और भजनोंकी प्रशंसामें एक पर्चीपर लिखी थी।"

१३९. पत्र : ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम्‌को

जुहू
२७ मई, १९४४

प्रिय आर्यनायकम्,

तुम बच गये, इसके लिए ईश्वर और उसके साधन-रूप आशाको धन्यवाद देता हूँ। तुम्हें मौतके मुँहसे बचा लाने में उसने सावित्रीकी भूमिका अदा की है। भगवान तुम दोनोंको सुखी रखे। ऐसा फिर मत करना। सावित्रीकी भी अपनी सीमा होती है। तुम फिरसे अपने कामपर लग गये हो। नहीं, मै गलत कह रहा हूँ। तुम तो बीमारीमें लगे हुए थे।

इसका जवाब देने में समय बर्बाद मत करना।

तुम्हें प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१४०. पत्र : मगनभाई प्र० देसाईको

जुहू
२७ मई, १९४४

चि० मगनभाई,

तुम्हारा पत्र[1] पढ़ा। लेना हो तो ले ले। उसीके हैं न? "जगद्‌गुरुकी जैसी इच्छा", इस भजनका ध्यान करना।[2] अपनी दुनियाका गुरुदेव कौन हो सकता है? उसके ऊपर भी कोई है। उसे भजने का मन्त्र तो अलग ही है। "तेन त्यक्तेन भुंजीथा।"[3]

मगनभाई देसाई
विद्यापीठ
अहमदाबाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. पत्रके अनुसार सरकार गुजरात विद्यापीठके भवनोंको अपने अधिकारमें लेना चाहती थी।
२. 'जे गमे जगत-गुरु देव जगदीशने'; देखिए खण्ड ४४, पृ० ४६१-६२।
३. ईशोपनिषद्, ५-१।

१४१. पत्र : संयुक्ता गांधीको

जुहू
२७ मई, १९४४

चि० युक्ति,[1]

. . .[2] दुःख और मृत्यु तो जन्मसे ही हमारे साथ हैं। दोनों . . .[3] अपने कर्मोंके फल हैं। इन्हें धैर्यपूर्वक भोगना चाहिए।

युक्तिबहन
सेवाग्राम

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१४२. पत्र : अमतुस्सलामको

जुहू
२७ मई, १९४४

बेटी,

तेरा पत्र दुःखसे भरा हुआ है। अस्वस्थ होते हुए भी गाड़ी खींचती चली जा रही है, इससे मुझे आश्चर्य होता है। और दुःख भी होता है; क्योंकि तुझ जैसी सेविका बीमार ही क्यों पड़े? लेकिन तू तो तू ही है। अन्तमें काम करते हुए ही तुझे देह-त्याग करना है। तूने मुन्नालालको बुलवाया है, सो किसलिए? इतनी बीमारीमें वहाँ रहकर तू कितना काम कर सकेगी? अच्छा यही है कि आश्रममें जाकर स्वस्थ हो जा। यह लिखता हूँ और सोचता हूँ कि तुझे रास्ता बतानेवाला मैं कौन होता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

आशा है, मेरी लिखावट समझ जायेगी।

अमतुलबहन

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. जयसुखलाल गांधीकी पुत्री और मनु गांधीकी बड़ी बहन
२ और ३. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ छोड़ दिया गया है।

१४३. पत्र : मनु गांधीको

पाम बीच, जुहू
२७ मई, १९४४

यदि मैं भला-चँगा होता तो तुझे जाने न देता बल्कि मुझसे जो बन पड़ता मैं तुझे देता। लेकिन मेरे लिए तो अब यही कहा जायेगा कि मैं टूट चुका हूँ। स्वस्थ होने के बाद वे लोग मुझे बाहर नहीं रहने देंगे, इसलिए तेरा भला इसीमें है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी राजकोट चली जा। तेरी पढ़ाईके बारेमें मैं नारणदासको लिखूँगा। युक्ति जो चीजें मँगवाना चाहती हैं वे उसे भेजी जा सकती हैं। तू मँगा लेना। [रेलोंकी] इस भीड़में आभाके[1] साथ भी तुझे भेजने की मेरी इच्छा नहीं होती। इससे समझ लेना कि मेरे कहने का तात्पर्य क्या है। ईश्वर तेरा अवश्य भला करेगा। तेरी सेवा कदापि व्यर्थ नहीं जा सकती। इस पत्र को सँभालकर रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१४४. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

२७ मई, १९४४

चि० कान्ति,

मैंने तेरा काम कर दिया है। तू दोनोंकी ओरसे धन्यवादका एक छोटा-सा पत्र लिख देना। पत्र हिन्दीमें लिखना और यह लिखना कि हम दोनों आपकी उदारताके योग्य बनने का प्रयत्न करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

श्री कान्ति गांधी
१८८२-४ वेजले रोड
बस स्टैंडके पास
मैसूर

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३६८) से। सौजन्य : कान्तिलाल गांधी

१. अमृतलाल चटर्जीकी लड़की

१४५. एक पत्र

जुहू
२७ मई, १९४४

मैंने तो समाचारपत्र नहीं देखे है। लेकिन सुशीलाबहनने मुझे बताया है कि आपने अपने बुलेटिनपर नाथूभाईके हस्ताक्षर लिये हैं। नाथूभाईने महादेवके मार्फत मेरे जीवनमें सबसे अन्तमें प्रवेश किया। लेकिन जीवराज और पुरुषोत्तम पटेल आपसे भी पहले आये। बादमें देशमुख आये और उनके बाद नेरूलकर।

दलाल तो गये। नाथूभाईको मित्रके रूपमें मैंने उलाहना दिया है कि वे क्यों नहीं आये? अब यदि नाथूभाई डाक्टरके रूपमें हस्ताक्षर करें तो आपको देशमुख और नेरूलकरको भी लपेट लेना चाहिए। मै जानता हूँ कि इसमें डॉ० गिल्डरने आपको खीचा। इसलिए मै यह आपके विरोधमें नहीं बल्कि उस मेयरके विरोधमें लिख रहा हूँ। बुलेटिन तो जारी नही करना है। लेकिन मेरे रक्तचापका एक कारण यह भी है। अन्य कारण भी हैं, लेकिन उनको लेकर मै आपको परेशान नही करूँगा। रक्तचाप तो नीचे आयेगा ही और एक दिन ऐसा आयेगा जब मुझे भी उसी राह जाना होगा जिस राह दलाल गये हैं। [चिकित्सा] की विभिन्न शाखाओंमें [विशेषज्ञता] हासिल करने के बावजूद किसी-न-किसी बहाने मुझे और हम सबको जाना ही पड़ेगा। इसीसे तो कहता हूँ कि आप जबतक मृत्युपर विजय प्राप्त नही कर लेते तबतक मुझे परेशान करते रह सकते हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७१९) से। सौजन्य: नाथूभाई पटेल

१४६. पत्र: गुलजारीलाल नन्दाको

[२७ मई, १९४४ के पश्चात्][1]

चि० गुलजारीलाल,

प्यारेलालके नाम तुम्हारा पत्र पढ़ा। डॉ० दास कभी-कभी आते रहते हैं। डॉ० चुगकी मुझपर कोई छाप नही पड़ी; लेकिन डॉ० दासकी पड़ी। वे मुझे कोई दवा नही देना चाहते। जो अन्य नाम तुमने दिये है उनमें से किसीको लाना चाहो तो अवश्य ला सकते हो। होमियोपैथी तथा बायोकेमिक चिकित्सापर विश्वास जमाना चाहता हूँ, लेकिन जमता ही नही। अब मै एमीबा जीवाणु और अंकुशकृमि

१. साधन-सूत्रमें इसे २७ मई और ४ जून, १९४४ के पत्रोंके बीच रखा गया है।

निकालने के लिए डाक्टरकी दवा लेने का विचार कर रहा हूँ। तुम्हारा काम अच्छी तरह चल रहा मालूम होता है। क्या यह कहा जा सकता है कि तुम पूर्ण स्वस्थ हो गये हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१४७. सन्देश : नेशनलिस्ट क्रिश्चियन पार्टीको[1]

२८ मई, १९४४

आप सबने जुहू आने का कष्ट किया और मेरे स्वास्थ्यके लिए प्रार्थनाएँ कीं, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यदि अब भी परमात्माको मुझसे कोई कार्य सम्पन्न करवाना है तो मुझे पूरा विश्वास है कि आपकी व अन्य अनेक देशोंके कितने ही लोगोंकी प्रार्थनाओंकी सुनवाई होगी। परमात्मा आप सबको सुखी रखे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ४-६-१९४४

१४८. सन्देश : फ्रैंक मोरेसको[2]

जुहू
२९ मई, १९४४

जो आरोप लगाये गये हैं, उन सबके पूरे-पूरे और स्पष्ट जवाब मेरे पास हैं। अच्छा होते ही — और यदि तब भी मुझे मुक्त छोड़ दिया गया तो — मैं इन प्रश्नोंके उत्तर दूँगा।

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र "नेशनलिस्ट क्रिश्चियन पार्टी द्वारा संयोजित ४०० ईसाइयोंकी एक सभाको दिया गया था। . . . सभामें महात्माजीके स्वास्थ्य तथा विश्व-शान्तिके लिए प्रार्थनाएँ की गई थीं"।

२. यह सन्देश रातको नौ बजकर पाँच मिनटपर फोनपर दिया गया था।

१४९. पत्र : बलवन्तसिंहको

जुहू
३१ मई, १९४४

चि० बलवंतसिंह,

तुमारा खत मिला। थोड़े शब्द तो तुमको भी लिखुं क्योंकि थोड़ा थोड़ा प्रिय-जनोंको लिखता हूं। तुम्हारा वहां ठीक जम गया है। सतीश बाबूको मदद मिलती है। देनी चाहिये। अच्छे रहो। मेरे पास आने की इच्छाको रोको।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९४४) से

१५०. तार : मनुभाई पंचोलीको

जुहू
१ जून, १९४४

मनुभाई
ग्राम, दक्षिणामूर्ति
आम्बला, सोनगढ़

पन्द्रहतक जुहूमें हूँ।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१५१. पत्र : आनन्द तोताराम हिंगोरानीको

जुहू
२ जून, १९४४

प्रिय आनन्द,

तुमने अंग्रेजीमें पत्र लिखा है, इसलिए मैं उत्तर भी अंग्रेजीमें ही दे रहा हूँ। तुम शोक करना छोड़ दो। तुमने आजतक जो-कुछ पढ़ा है और आत्मसात् किया है, उस सबका आवाहन अपने सम्बलके रूपमें करो। एक महिलाने मुझे एक बड़ा सच्चा विचार[1] भेजा है, जो तुम्हें भेजता हूँ। उसे मनमें बसा लो। विद्याकी[2] मृत्यु नहीं हुई है, वह तो केवल जिस देहमें वास कर रही थी उसीको छोड़कर कहीं और सिधार गई है और अपनी स्थितिके अनुसार उसने दूसरी उपयुक्त देह धारण कर ली है।

बेशक इलाजका दौर पूरा होते ही तुम यहाँ आ जाओ। मेरी तबीयत धीरे-धीरे सुधर रही है।

बापू

सदर विला
फैजाबाद रोड
लखनऊ

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा आनन्द तो० हिंगोरानी

१५२. पत्र : सरोलाको

पाम बन, जुहू
२ जून, १९४४

प्रिय सरोला,

तुम्हारा तार मुझे मिल गया था। प्यारेलालने तारकी पहुँच भी तुम्हें भेजी थी। अबतक तो मिल गई होगी। स्वस्थ होने पर मेरा क्या होगा, कह नहीं सकता।

१. कस्तूरबाका निधन होने पर अमेरिकासे ग्लेन ई० स्लाइडर नामक महिलाने गांधीजीको जेम्स व्हाइटकॉम्ब राइली (१८४९-१९१६) की एक अंग्रेजी कविता भेजी थी, जिसका भाव यह था कि देह छोड़ने पर मनुष्य मरता नहीं, केवल दूर चला जाता है।

२. आनन्द तो० हिंगोरानीकी पत्नी

रोग-शय्यापर से तो मैं तुम्हारा मार्गदर्शन नहीं कर सकता। अभी तो मुझे बहुत थोड़ा-सा पत्र-व्यवहार करने की इजाजत दी गई है। मै तो यही कह सकता हूँ कि जो भी राष्ट्रीय सेवा करने का अवसर मिले उसे करती जाओ। दीपक कैसा है?

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१५३. पत्र : अमृतकौरको

जुहू
३ जून, १९४४

प्रिय अमृत,

मेरे पत्रके[1] उत्तरमें तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा पहला पत्र मुझे मिला ही नहीं। सुशीला तुम्हें विस्तारसे लिखेगी। मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे किन्तु लगातार सुधर रहा है। तुम चिन्ता मत करना। यदि परमात्मा मुझसे और सेवा करवाना चाहता है तो वह निश्चय ही मुझे जीवित रखेगा और अपना कार्य सम्पन्न करवाने के लिए पर्याप्त शक्ति भी देगा। तुम्हारा क्या हाल है? शम्मी[2] और बेरिल कैसे है? जो बातें तुम्हें लिखने की अनुमति है उनके बारेमें मुझे सविस्तार लिखो। क्या सभी पुराने नौकर तुम्हारे पास ही हैं?

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१४४) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७७७९ से भी

१. देखिए पृ० ३०८।
२. अमृतकौरके बड़े भाई ले० कर्नल कुँवर शमशेर सिंह

१५४. पत्र : शारदाबहन गोरधनदास चोखावालाको

जुहू
३ जून, १९४४

चि० बबुड़ी,

तेरा पत्र मिला। गठियेकी कृपासे ही मुझे तेरे बारेमें समाचार मिल सका। एक समय तो मैंने तेरी आशा ही छोड़ दी थी। गोरधनदास[1] यदि रिहा न हुए होते तो आज कदाचित् तू जीवित भी न होती। कह सकते हैं कि उनकी मेहनत और सावधानीसे तू बच गई। भगवान करे, तुम दोनों दीर्घायु हो। तुझे देखने के लिए मैं भी उत्सुक हूँ, लेकिन हम दोनोंको संयमसे काम लेना होगा। जब मैं स्वस्थ होकर सेवाग्राम जाऊँगा तब आना और इस बीच बिलकुल अच्छी हो जाना। तूने गलत समयपर इतनी बीमारी झेली। मेरे स्वास्थ्यमें दिन-ब-दिन सुधार हो रहा है। मुझे लिखती रहना। आनन्द[2] तो इतना बड़ा हो गया होगा कि पहचाना ही न जा सके।

तीनोंको
बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००४५) से। सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला

१५५. पत्र : कौशल्या मलहोत्राको

जुहू
४ जून, १९४४

चि० कौशल्या,

क्या तुम हिन्दी या कोई और भारतीय भाषा नहीं जानती? तुम अपनी मातृभाषा सीख और लिख सको, इसके लिए तुम्हें अंग्रेजीको भुलाने की जरूरत नहीं है।

१ और २. शारदा गो० चोखावालाके पति और पुत्र

मैंने तुम्हारा पत्र तो पढ़ लिया है, लेकिन मेरी बात अपनी जगह कायम है। अगर तुम अपने प्रति ईमानदार बनना चाहती हो तो गुड़िया बने बिना और अपने जीवन-साथीके साथ मिलकर देशकी सेवा करने के निमित्त विवाह कर लो।

सस्नेह।

बापू

कु० कौशल्या मलहोत्रा
मार्फत एच० आर० मलहोत्रा
जम्मू व कश्मीर सरकारके मुख्य सचिव
श्रीनगर, कश्मीर

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१५६. पत्र : माणेकलाल अमृतलाल गांधीको

जुहू
४ जून, १९४४

चि० माणेकलाल,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। उम्रमें तुम मुझसे बहुत आगे नहीं हो। लेकिन तुमने अपने स्वास्थ्यको ठीक बनाये रखा है और कह सकते हैं कि तुमने काम भी ठीक किया है। भगवान करे, तुम मुझसे आगे निकल जाओ।

मेरी गाड़ी धीरे-धीरे चल रही है। मनु युक्तिकी खातिर सेवाग्राम गई है। स्टीमरमें जाने के लिए दोनों बहनें वहाँसे २३ तारीखको आयेंगी। मनुको अब अपने पास रखने का मतलब उसका जीवन खराब करना होगा। बा को उसकी सेवाकी जरूरत थी। मुझे भी उसकी सेवा अच्छी तो लगती है, लेकिन उसकी जरूरत नहीं है। अब उसे पढ़ाई करनी ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

श्री माणेकलाल अमृतलाल गांधी
थाना देवली
काठियावाड़

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ८९१) से। सौजन्य : माणेकलाल अमृतलाल गांधी

१५७. पत्र : इन्दु नरहरि पारेखको

जुहू
४ जून, १९४४

चि० इन्दु,

तेरा पत्र मिला। तूने ठीक ही सोचा है। विवाहके बाद ही तू स्थिर होगी। कभी-न-कभी विवाह तो करना ही है। अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन सरल नहीं है। लेकिन विवाह करके संयमी बनना अपेक्षाकृत सरल है अथवा फिर थोड़ा कठिन है। स्वास्थ्य मत बिगड़ने देना।

अभी मुझसे पहले-जितना काम नहीं हो सकता।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१५८. पत्र : मुकुन्दराव रामचन्द्र जयकरको

जुहू
५ जून, १९४४

प्रिय डॉ० जयकर,

मुझे खुशी है कि आप वापस आ गये हैं। जो कागजात आपको भेजने का मेरा विचार था, वे एक-दो दिनमें भेज देने की आशा रखता हूँ। मेरा सुझाव है कि आप ये कागजात पढ़ लें। उसके बाद हमारी मुलाकात हो।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधी-जयकर पेपर्स : फाइल नं० ८२६, पृ० ८। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१५९. पत्र : शैलेन्द्रनाथ चटर्जीको

जुहू
५ जून, १९४४

प्रिय शैलेन,[1]

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। जबतक मैं मुक्त हूँ, आभा मेरे साथ रहेगी। वह बहुत कमजोर हो गई है, किन्तु चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

जब मैं सेवाग्राम होऊँगा, तब हम तुम्हारी दिक्कतोंके बारेमें बात करेंगे।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४९४) से। सौजन्य : अमृतलाल चटर्जी

१६०. पत्र : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्याको

जुहू
५ जून, १९४४

चि० भगवानजी,

तुम्हारी भेजी हुई गजल[2] पढ़ गया। यह मेरी समझमें तो आती है, लेकिन उसका तुम्हारे मनपर जो असर हो सकता है वह मेरे मनपर नहीं होता। मैंने मणिभाईकी बहुत सारी रचनाएँ पढ़ी हैं। वे मेरे प्रोफेसर थे।

तुम्हारी नाव ठीक चल रही जान पड़ती है। यहाँ आनेका लोभ छोड़ना। मुझे अन्य कागजात भी दिखाये गये थे। अपने कामका ब्योरा लिख भेजना।

बापूके आशीर्वाद

श्री भगवानजी पुरुषोत्तम
हरिजन आश्रम
वढवान सिटी

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३९८) से। सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद

१. अमृतलाल चटर्जीके पुत्र
२. गुजरातीके सुप्रसिद्ध कवि और विचारक मणिलाल नभुभाई द्विवेदीकी लिखी हुई

१६१. पत्र : कृष्णचन्द्रको

जुहू
५ जून, १९४४

चि० कृष्णचंद्र,

तुम्हारा दर्दसे भरा हुआ खत पढ़ा। बार बार प्रयत्न करने से स्वच्छता आती ही है। ['गीता' के] ६ ठा और १२वां[1] अध्यायका मनन करो। और तो मिलने पर।

शंकरन् बहुत व्यग्रचित है और उसका पिता बीमार है तो उसको जाने देने चाहिये ऐसा मुझे लगता है।

पारनेरकर क्या काम करते थे?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४४१) से

१६२. तार : अमतुस्सलामको

बम्बई
७ जून, १९४४

अमतुस्सलाम
१०५ हैरिसन रोड
कलकत्ता

बापूजीने आपका पोस्टकार्ड पढ़ लिया है। वे अगले हफ्ते पूना रवाना हो रहे हैं। वे कहते हैं कि आप सेवाग्राम चली जायें। आपको आशीर्वाद भेजते हैं।

शान्तिकुमार

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७८) से

१. सम्भवतः गांधीजी भूलसे १२ वें अध्यायके स्थानपर २० वाँ अध्याय लिख गये थे।

१६३. पत्र : मनु गांधीको

८ जून, १९४४

चि० मनु,

तुझे अब मनु कहने के बजाय मृदुलाबहन[1] कहना चाहिए। अभी तो तूने बम्बई भी नही छोडा और आज्ञा-भंग कर दिया है। इस तरह तू मेरी शिक्षाएँ कितनी मानेगी? तूने स्वय एक कौड़ी कमाई नही। उदार पिता मिल गये हैं, इसलिए उनका पैसा उड़ाती रहती है। बेबीको[2] तू बिगाड़ना चाहती है? लेकिन मेरे देखते तू उसे नही बिगाड़ सकती। यदि तू समझती है कि चाँदीके घुँघरू और प्याले तुझे शोभा देते हैं, तो वे तुझे मुबारक हों। अथवा तुझे न चाहिए तो तेरे-जैसा जो हो उसे दे देना। मेरी इच्छा तो यह है कि तू इन्हे अपनी मूर्खताके चिह्न-स्वरूप अपने पास सँभालकर रखना। प्याला और घुँघरू साथमें लौटा रहा हूँ।[3]

दु:खी बापूके राम राम

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१६४. पत्र : विट्ठलदासको

८ जून, १९४४

भाई विट्ठलभाई,

तुम्हारा पत्र पढ गया। मेरा दिमाग चकरा गया है। दोनों पक्षोंकी बात सुनने पर स्थितिपर कुछ प्रकाश पड़ेगा। मेरी इस समय जो हालत है उसमें क्या ऐसा सम्भव होगा? मेरी सलाह यह है कि तुम सबको यह समझकर कि मैं अभी जेलमें हूँ, जो उचित लगे, वह करना चाहिए। और यदि ऐसा नही हो सकता तो मैं समय निकालकर दोनों पक्षोंकी बात सुनूँगा और उसके बाद निर्णय दूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९८०५) से

१. मनु गांधीका पूरा नाम
२. नन्दिनी, प्यारेलालके भाई मोहनलालकी पुत्री
३. देखिए "पत्र : जयसुखलाल गांधीको", पृ० ३३१ भी।

१६५. पत्र: कानम गांधीको

८ जून, १९४४

चि० कानम,[1]

तेरा भेजा नक्शा मिला। तेरी लगनके सम्बन्धमें सुना। यह भी सुना कि तू दादीकी अच्छी सेवा कर रहा है। जब हमारे बुजुर्ग न रहें तो भी हम उनकी सेवा कर सकते हैं। ऐसी सेवामें अधिक शुद्धता भी हो सकती है। यह पत्र लिखने का मेरा हेतु कुछ और ही है। तू अपनी पढ़ाई-लिखाईमें मस्त रहता है, यह अच्छा है; लेकिन इसकी मर्यादाका भी ध्यान रखना है। वह मर्यादा यह है कि जैसे बुद्धिका विकास आवश्यक है, वैसे ही आत्मा और शरीरका विकास भी आवश्यक है। यह बात हम अक्सर भूल जाते हैं। तू मत भूलना। शेष मिलने पर। मिलने में समय लग सकता है, ऐसी आशंका है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१६६. भाषण: जुहूमें

८ जून, १९४४

मैंने तो समझा था कि आप सब भले लोग हैं और प्रार्थनामें आपको श्रद्धा है। किन्तु मेरे पास जो खबर पहुँची है यदि वह सच्ची है तो मैं नहीं समझता कि आप वैसे लोग हैं। यदि इसमें मैं गलतीपर होऊँ तो आप उसे सुधार सकते हैं। आप लोग बिना बुलाये यहाँ जबरदस्ती घुस आये हैं। यदि ऐसा ही है तो मैं आपके दर्शन करना नहीं चाहता, न आपको अपने दर्शन देना चाहता हूँ। वर्षा होने लगी तो मैंने बाहर निकलकर आपसे प्रार्थना की कि आप मुझे क्षमा करें। मैंने समझा कि आपमें से कोई भी बाहर बाकी नहीं है। किन्तु आप देरीसे पहुँचे,[2]

१. रामदास गांधीके पुत्र

२. रिपोर्टमें कहा गया था: "मौसम अच्छा न होने के कारण गांधीजी समयसे कुछ पूर्व ही समुद्र-तटपर स्थित दैनिक प्रार्थना-स्थलपर पहुँच गये और उन्होंने सबसे क्षमा-याचना कर ली। निश्चय किया गया कि अहातेके अन्दर ही प्रार्थना की जाये।..." हिन्दू, १०-६-१९४४ की रिपोर्टमें कहा गया है कि "एक घंटा प्रतीक्षा करने के बाद दर्शनार्थियोंको बताया गया कि छोटे-छोटे समूहमें बँटकर बारी-बारीसे गांधीजी के दर्शन करने अन्दर जा सकते हैं। किन्तु भीड़-की-भीड़ अन्दर घुस आई।..."

हालाँकि दैनिक प्रार्थनाके लिए तो आप समयपर पहुँच गये थे। इस कारण मैं लाचार हो गया। मैंने सोचा कि यदि सरोजिनी देवीने आपको अनुमति दी है और आप शान्तिपूर्वक आते जायें तो मुझे कोई एतराज नही होना चाहिए। इसके बदले आपने शोर मचाया और फाटक तोड़कर अन्दर घुस आये। आपको देखकर मैं प्रसन्न तो हूँ, किन्तु आपके आने के ढगसे मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा है। आशा है, आप दोबारा कभी ऐसा नही करेंगे। मैं और कुछ नही कहना चाहता। बिना हल्ला-गुल्ला किये आप चले जायें तो मै आभारी होऊँगा।

इतना बोलना ही मेरी शक्तिसे बाहर है और डाक्टरोंके आदेशके विरुद्ध है। किन्तु मै इस कारण बोला कि मुझे लगा, यदि मै अपनी व्यथा व्यक्त नही करूँगा तो मै शान्तिसे सो नही सकूँगा। आप जबरदस्ती घुस आये, जिससे मुझे पीड़ा पहुँची है। यदि आप शान्तिपूर्वक चले जायें तो मेरा क्लेश कुछ कम हो जायेगा। किन्तु यदि आप शान्त नही रहेंगे और व्यवस्थित ढंगसे बाहर नही जायेंगे तो मुझे दोबारा आना पडेगा।

आपमें से जो लोग हरिजन-कोषके लिए कुछ देना चाहें, अवश्य दे सकते हैं। किन्तु आप मुझसे यहाँ खड़े रहने की आशा न रखें। ऐसा करना मेरी शक्तिके बाहर है।[1]

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ९-६-१९४४

१६७. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

९ जून, १९४४

प्रिय सर तेज,

आपका कृपा-पत्र[2] मिला। मुझे खुशी है कि आपका पुत्र तेजीसे स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है। कश्मीरका प्रवास उन्हें पूर्ण स्वस्थ कर देगा, ऐसी कामना करता हूँ।

डॉ० जयकरके नाम लिखे मेरे पत्रका[3] प्रकाशन अनिवार्य हो गया था। आप आश्वस्त रहें कि जबतक डाक्टर मुझे काम-चलाऊ रूपसे स्वस्थ घोषित नही कर देते तबतक मैं कोई वक्तव्य[4] देने की जल्दबाजी नही करूँगा। आपसे सेवाग्राममें

१. रिपोर्टके अन्तमें कहा गया था कि "गांधीजी के वापस मुड़ने के बाद कुछ लोगोंने कोषके लिए चन्दा दिया और सबके-सब शान्तिपूर्वक अहातेसे बाहर चले गये।"

२. दिनांक ४ जून, १९४४ का

३. देखिए पृ० २९३।

४. तेजबहादुर सप्रूने अपने पत्रमें गांधीजी को लिखा था कि "इस समय कोई वक्तव्य देने से . . . सामान्य समझौता कराने के कार्यमें कुछ अड़चन पड़ सकती है" और यह भी कहा था कि "मिलने पर मैं आपको अपने सुझाव दूँगा"।

मिलने की उत्सुकता रहेगी। १५ तारीखसे लेकर एक पखवाड़ेतक मैं डॉ० दिनशाके सैनेटोरियममें रहूँगा, और बादमें शायद पंचगनी जाना पड़े।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधी-सप्रू पेपर्स; सौजन्य: नेशनल लाइब्रेरी। जी० एन० ७५७६ से भी

१६८. पत्र : अरुणा आसफ अलीको

९ जून, १९४४

तुम्हारे साहस और वीरताके लिए मेरे मनमें अतीव प्रशंसाका भाव रहा है। मैंने तुम्हें सन्देश भेजे है कि तुम्हें भूमिगत अवस्थामें मरना नहीं है।[1] तुम घुलकर कंकाल-मात्र रह गई हो। प्रकट होकर आत्म-समर्पण कर दो और अपनी गिरफ्तारीके लिए नियत पुरस्कार प्राप्त करो। पुरस्कारकी राशि तुम हरिजन-कार्यके लिए रख छोड़ना।

[अंग्रेजीसे]
महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३६

१६९. पत्र : अन्नदा चौधरीको

९ जून, १९४४

मेरी रायमें गोपनीयता पाप है, और हिंसाका लक्षण है। इसलिए निश्चय ही इससे बचना चाहिए — विशेष रूपसे ऐसी स्थितिमें जब हमारा उद्देश्य करोड़ों मूक लोगोंकी स्वतन्त्रताका हो। इसलिए मैं सभी भूमिगत प्रवृत्तियोंको वर्जित मानता हूँ। फिर भी, मेरा कहना यह है कि चाहे नीतिके रूपमें हो या सिद्धान्तके तौर पर, हिंसा और अहिंसाके तत्त्वका निर्णय हर कार्यकर्त्ताको अपनी बुद्धि और हृदयके निर्देशपर करना चाहिए। और जब बुद्धि और हृदयके बीच संघर्ष होता है तो विजय हृदयकी होती है।

मैं आन्दोलनके नेताकी हैसियतसे नहीं बोल रहा हूँ। मुझे अभी भी कैदी माना जाये, जिसे अपनी राय देने की स्वतन्त्रता है, लेकिन निर्देश देने की नहीं।

[अंग्रेजीसे]
ग्लिम्प्सेज ऑफ गांधीजी, पृ० ७४-७५

१. प्यारेलालने लिखा है: "अरुणा आसफ अली सख्त पेचिशसे पीड़ित थीं। भूमिगत रहकर अस्त-व्यस्त जीवन बिताने के कारण यह कष्ट और भी बढ़ गया था।"

१७०. पत्र : मंगलदास पकवासाको

९ जून, १९४४

तुमसे तो मैं ही बाजी मार ले गया। तुम तो केवल हस्ताक्षर ही कर पाये। लेकिन मैंने तो दो पंक्तियाँ लिख भी डाली।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७८२) से। सौजन्य : मंगलदास पकवासा

१७१. पत्र : होमी पी० मोदीको[2]

सुन्दर बन, जुहू
१० जून, १९४४

प्रिय मित्र,

इस पत्रके साथ मैं यरवडामें महाविभव आगाखाँके महलमें अपनी नजरबन्दीके दौरान भारत सरकार या बम्बई सरकारके साथ हुए अपने पत्र-व्यवहारकी नकलोंकी दो जिल्दें भेज रहा हूँ।

दूसरी जिल्द 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' शीर्षक से प्रकाशित भारत सरकारकी पुस्तिकाका मैंने जो उत्तर[3] भेजा था, उसकी नकल है। मेरे उस उत्तरको लेकर तथा सार्वजनिक महत्त्वके अन्य विविध मामलोंके सम्बन्धमें जो पत्र-व्यवहार हुआ, उनकी नकलें पहली जिल्दमें संगृहीत हैं।

मैंने कृपालु मित्रोंकी सहायतासे पत्रोंकी ये नकलें साइक्लोस्टाइल करवा ली हैं। सेंसरकी अड़चनोंकी आशंकासे मैंने उन्हें किसी मुद्रणालयमें छपवाने की कोशिश नहीं की। किन्तु भारत सरकारके विचारमें इन पत्रोंमें सामरिक दृष्टिकोणसे कहीं कुछ आपत्तिजनक अंश न हो, यह सोचकर मैं इसकी प्रतियाँ व्यक्तिगत उपयोगके लिए केवल उन मित्रोंको भेज रहा हूँ जिन्हें, मेरे विचारमें, दोनों सरकारों और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहारके स्वरूपसे अवगत होना चाहिए। आप अपने जिन मित्रोंको

१. प्यारेलालने मंगलदास पकवासाके पत्रका जो उत्तर लिखा था उसीके अन्तमें ये पंक्तियाँ गांधीजी ने जोड़ दी थीं। मंगलदास पकवासा उन दिनों बीमार थे और इसलिए वे अपने पत्रपर केवल हस्ताक्षर ही कर पाये थे।

२. गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट में इसे "गांधीजी के प्रस्तावनात्मक सहपत्र" के रूपमें शामिल किया गया है।

३. देखिए पृ० १०३-२१३।

अपनी प्रति दिखाना चाहें, दिखा सकते है, बशर्ते कि जो सावधानीकी शर्तें आपपर लागू है, उसका पालन किया जाये।

इस पत्र-व्यवहारके बारेमें, विशेषतया भारत सरकारकी पुस्तिकाके मेरे उत्तर से पैदा होनेवाले मुद्दोंके बारेमें, आप यदि अपनी प्रतिक्रिया मुझे लिख भेजें तो मै उपकार मानूँगा। मैंने सरकारी अभियोग-पत्रमें से प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बातका उत्तर देने का प्रयास किया है। यदि आपको किन्ही मुद्दोंके स्पष्टीकरणकी आवश्यकता प्रतीत हो तो मुझे वह भी बताइएगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे: एच० पी० मोदी पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। जी० एन० ११९२, और गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पाठेतर सामग्रीका पृ० २७ से भी

१७२. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

१० जून, १९४४

प्रिय भाई,

आपका प्रेम-पत्र[1] एक अत्यन्त प्रिय सन्देशवाहकके हाथों मिला है। मैं बुनियादी बातोंपर आपसे सहमत हूँ, किन्तु मैं समझता हूँ कि आप कमसे-कम १५ तारीख तक तो पूनामें ही रहेंगे। मैं उसी तारीखको पूना पहुँचूँगा। क्या आप अपना प्रस्थान एक दिनके लिए टाल नही सकते? तब तो हम आमने-सामने बातचीत कर सकते हैं। इस पत्रके साथ आपको एक पार्सल[2] मिलेगा, जो अपनी कहानी स्वयं बतायेगा।

स्नेह।

आपका छोटा भाई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८८२२) से। लेटर्स ऑफ द राइट ऑनरेबल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, पृ० ३६१-६२ से भी

१. देखिए परिशिष्ट १५।

२. तात्पर्य शायद गांधीजी और सरकारके बीच हुए पत्र-व्यवहारकी नकलोंकी दो पुस्तकाकार जिल्दोंके पार्सलसे है; देखिए पिछला शीर्षक।

१७३. पत्र : नारणदास गांधीको

१० जून, १९४४

चि० नारणदास,

आभाके टासिल कटवा दिये है। आज वह ठीक है। अभी थोडा खून निकलता है। मै कनैयोके साथ बातचीत कर रहा हूँ। आभासे मैंने बातचीत की है। मेरा विचार तो उनका विवाह अभी कर देने का है। मै पूना होऊँ तो वहाँ, सेवाग्राम होऊँ तो वहाँ। मेरे खयालसे तुम लोगोके अथवा अमृतलाल[1] आदिके उपस्थित रहने की कोई जरूरत नही है। लेकिन यदि तुम्हारी अथवा जमनाकी[2] उपस्थित रहने की इच्छा है तो मै रोकना नही चाहूँगा। यही बात अमृतलालपर लागू होती है। यदि दोनों पूर्णतया सहमत हुए तो तारीख और स्थान निश्चित करके तुम्हे लिखूंगा। उपस्थित रहने की अपनी इच्छाकी सूचना मुझे समयपर देना। हम १५ तारीखको पूना जायेंगे। आभा साथ ही होगी। जबतक मै बाहर हूँ तबतक वह मेरे साथ ही रहेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८६०९ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

१७४. पत्र : पूरणचन्द्र जोशीको

जुहू
११ जून, १९४४

प्रिय जोशी,[3]

मै आशा कर रहा था कि हमारी मुलाकातके[4] दौरान मैंने जो प्रश्न उठाये थे उनका उत्तर आप तत्काल भेजेंगे। इस बीच कुछ और प्रश्न उभर आये है, जिनका उत्तर कृपया मेरे पहले प्रश्नोके साथ ही दे दें।

१. अमृतलाल चटर्जी
२. नारणदास गांधीकी पत्नी
३. कम्युनिस्ट पार्टीके महा-सचिव
४. पूरणचन्द्र जोशीके अनुसार गाधीजी के साथ उनकी भेंट जूनके आरम्भमें हुई थी।

१. "जन-युद्ध" (पीपुल्स वार) में "जन" (पीपुल) से क्या मतलब है? क्या इसका मतलब यह है कि यह युद्ध भारतके करोड़ों लोगोंके हितार्थ है या यह कि यह पूर्वी, दक्षिणी या पश्चिमी आफ्रिकाके नीग्रो लोगोंकी खातिर है अथवा अमेरिकाके नीग्रो लोगोंके लिए है या इन सभीके हितार्थ है? क्या मित्र-राष्ट्र ऐसे ही संघर्ष में भाग ले रहे हैं?

२. आप जिस कम्युनिस्ट पार्टीका प्रतिनिधित्व करते है, क्या उसके आय-व्यय की सार्वजनिक जाँच होती है? यदि हाँ, तो क्या मैं उसे देख सकता हूँ?

३. कहा जाता है कि पिछले दो वर्षोंमें कम्युनिस्ट पार्टीने श्रमिक हड़तालोंके नेताओं और संगठनकर्त्ताओंको गिरफ्तार करवाने में सरकारी अधिकारियोंकी सक्रिय सहायता की है।

४. कहते हैं, कम्युनिस्ट पार्टीने कांग्रेसका अहित करने के उद्देश्यसे कांग्रेस संगठन में घुसपैठ करने की नीति अपनाई है।

५. क्या कम्युनिस्ट पार्टीकी नीतिका संचालन विदेशसे नहीं होता?[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स बिटविन महात्मा गांधी एंड पी० सी० जोशी, पृ० २

१७५. तार: प्रफुल्लचन्द्र रायको

[१२ जून, १९४४ या उसके पूर्व][2]

आशा करता हूँ कि आप कमसे-कम शतक पूरा करने का आग्रह रखेंगे।[3]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-६-१९४४

१. इसके उत्तरमें पूरणचन्द्र जोशी द्वारा लिखे गये पत्रके अंशोंके लिए देखिए परिशिष्ट १६।

२. साधन-सूत्रमें बताया गया है कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र रायको यह तार १२ जूनको मिला था।

३. सर प्रफुल्लचन्द्र राय उस समय बीमार थे और १६ जूनको उनकी मृत्यु हो गई।

१७६. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

१२ जून, १९४४

चि० जयसुखलाल,

यह पत्र मनुके जाने के बाद तुरन्त लिखना था, परन्तु लिख न सका। मनुने जाते-जाते मुझे बहुत निराश किया। मेरा खयाल था कि वह सब समझ गई है और वचनके अनुसार काम करेगी। पर मैंने भूल की। उसने जाते-जाते प्यारेलालके भाईकी लड़कीके लिए चाँदीका खिलौना और चाँदीका प्याला खरीदकर भेजा। मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने सारा दुःख उसे लिखे हुए पत्रमें[1] उँडेल दिया और चीजें लौटा दीं। यह सब तुमने जान लिया होगा। तुम्हें अब सावधान रहना होगा। उसके महान् गुणोंका अधिक विकास हो और दोष दूर हों, इस आशासे मनुको एक वर्ष राजकोट रहने का मैंने सुझाव दिया था। परन्तु मनु वहाँ जाने को बहुत उत्सुक न थी। कराचीके, शिक्षक का उल्लासभरा पत्र मिलने पर वह तो पागल ही हो गई, अतः उसे कराची भेज दिया।

मेरे मनमें तुम्हारे बारेमें जो विचार आये सो कह दूँ। क्या तुम्हारे पास इतना अधिक पैसा है कि तुमने मनुको करोड़पतियों-जैसी खर्चीली बनना सिखाया? लड़कियोंके प्रति तुम्हारे प्रेमकी मैं बहुत कद्र करता हूँ। लेकिन सवाल यह पैदा हुआ कि तुम्हारे पास इतना पैसा आया कहाँसे? खादी-कार्यसे तो बचत होती नहीं। तो क्या वहाँकी नौकरीसे सचमुच इतना रुपया बचा सकते हो? तुमने हिसाब रखा हो तो मैं उसे अवश्य देखना चाहूँगा। मेरे मनमें जो सन्देह पैदा हो गया है, उसे तुमसे कैसे छुपाऊँ? जब मैं बिगड़ा तब शान्तिकुमार मौजूद थे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा सिन्धियासे तो इतनी बचत हो नहीं सकती और जयसुखलालपर शकका कोई कारण ही नहीं। हमारे यहाँ ऐसी व्यवस्था है कि रिश्वतको कोई अवकाश नहीं है। अब मुझे जवाब लिखना।

युक्तिके बारेमें सुशीलाने लिखा होगा। उसका ध्यान रखना। मनुकी आँखें बहुत खराब हैं। सावधानी रखने से ही बच सकती है, नहीं तो थोड़े वर्षमें वह ऐसी हो जायेगी कि वह लिख-पढ़ भी न सकेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१. देखिए पृ० ३२३।

१७७. सन्देश : बम्बई केरलीय समाजको[1]

१२ जून, १९४४

मुझे खुशी है कि आपने मेरे पास आने और मुझे हरिजनोंके लिए एक थैली देनेका कष्ट उठाया है। आशा करता हूँ कि देशके दरिद्रोंके लिए आप जो प्रयत्न कर रहे हैं वे सफल होंगे। ईश्वर आपकी सहायता करे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-६-१९४४

१७८. भेंट : पत्रकारोंको — मौन-दिवसपर[2]

बम्बई
१२ जून, १९४४

आमीन। भगवान हमारी सहायता करे। हमारा समझौता यह है कि दोनों पक्ष मौनका पालन करें। इस मौनसे ही आप जो-कुछ समझ सकें समझ लें।

फिर कई मिनटोंतक मौन छाया रहा। गांधीजी से पूछा गया कि वे लोग कितनी देरतक रुक सकते हैं? उन्होंने उँगलीसे संकेत करके बताया कि भेंटका समय दस मिनट होगा। पत्रकारोंने उत्तर दिया कि चूँकि गांधीजी के जुहू पहुँचने के बादसे ही वे लोग लगभग प्रतिदिन इसीकी प्रतीक्षामें जुहूमें अपना समय बिताते रहे हैं इसलिए इस 'मौन-भेंटका' समय और लम्बा होना चाहिए। गांधीजी ने उत्तरमें लिखा :

१. साधन-सूत्रमें बताया गया है कि "बम्बई केरलीय समाजके कोई सौ से अधिक सदस्योंने . . . गांधीजी के शीघ्र स्वास्थ्य-लाभके लिए प्रार्थना की . . . और उन्हें ५०१ रुपयेकी थैली भेंट की। इन लोगोंका नेतृत्व श्री के० सुब्रह्मणियमने किया।"

२. रिपोर्टके अनुसार : "आज शामको महात्मा गांधीने . . . अपनी जुहू-स्थित कुटियामें तीस पत्रकारोंसे भेंट की। आज उनका साप्ताहिक मौन-दिवस था और गुरुवारको वे बम्बईसे पूना जानेवाले हैं, इस कारण उन्होंने आज पत्रकारोंसे मिलना स्वीकार किया। वे अपनी विशिष्ट मुद्रामें एक गद्दीपर पालथी मारकर बैठे हुए व्यस्ततापूर्वक कुछ लिख रहे थे। पत्रकार उन्हें घेरकर बैठ गये। फिर किसीने उन्हें एक पुर्जा दिया, जिसमें लिखा था कि पत्रकार 'इस मौन भेंट' से सन्तुष्ट नहीं हैं और उत्सुकतासे उस दिनकी राह देख रहे हैं जब गांधीजी पूर्ण स्वस्थ होकर उनसे पहलेके समान ही बातचीत करेंगे। महात्मा गांधीने उसी पुर्जेपर उत्तर लिख दिया।"

यदि आपमें से कोई अच्छा गायक हो तो आप कुछ और समय ले सकते हैं; अन्यथा आपके समय नष्ट करने से क्या लाभ? पत्रकारोंके लिए मौन-जैसी कोई वस्तु तो है ही नही।

इस अनुरोधपर पत्रकार हक्के-बक्के रह गये। किन्तु एक पत्रकार अपनी मण्डलीकी सहायताके लिए आगे आया। उसने एक गाना सुनाया, जिससे महात्मा गांधी खुश दिखाई दिये। एक और महाशयने भी गाना सुनाने का प्रस्ताव रखा तो सबको आश्चर्य हुआ। किन्तु महात्मा गांधीने लिखा :

मैं तो बड़ी प्रसन्नतासे और संगीत सुनता, किन्तु मेरे बीमार होते हुए भी मेरा सारा समय राष्ट्रको अर्पित है।[1]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-६-१९४४

१७९. पत्र : होमी पी० मोदीको

सुन्दर बन, जुहू
१२/१३ जून, १९४४

भाई होमी मोदी,[2]

आपके ९ जूनके अत्यन्त कृपापूर्ण पत्रका मैंने लिखित उत्तर देने का वादा किया था।[3] यह रहा मेरा उत्तर।

भविष्यका विचार करने के लिए जो सम्मेलन हो रहे है उन्हें मैं महायुद्धकी विभीषिकाओंकी ओरसे जनताका ध्यान बँटाने के तरीकोंमें से एक मानता हूँ।[4] भविष्यका निर्णय सम्मेलनो द्वारा नही, बल्कि प्रमुख अभिनेताओंके वर्त्तमान व्यवहार द्वारा ही हो सकता है। अतएव हमें वर्त्तमानका नियन्त्रण करना है, ताकि भविष्य भी उसके अनुरूप ही हो। हम जैसा बोयेंगे वैसा ही काटेंगे। यथार्थ यह है कि हम आँखें बन्द और/या खुली रहने पर भी अपना शोषण होने देते हैं।

मुझे लगता है कि मै इसका उपाय तो जानता हूँ, किन्तु मैं लाचार हूँ, और मेरी लाचारी केवल मेरी बीमारीके कारण नही, बल्कि मुख्यत: इस कारण है कि

१. रिपोर्टके अन्तमें लिखा है: "इसके बाद पत्रकारोंने हरिजन-कोषके लिए कुछ रुपये इकट्ठे किये और गांधीजी को देकर कुटियासे बाहर चले गये।"

२. साधन-सूत्रमें सम्बोधन और गांधीजी के हस्ताक्षर गुजरातीमें हैं।

३. होमी मोदीने ९ तथा ११ जूनको गांधीजी से बातचीत की थी।

४. होमी मोदीने अपने पत्रमें (सी० डब्ल्यू० ४८९१) लिखा था: "भारत तो दर्शकके समान दूर-दूरसे सब-कुछ देख रहा है। जब किसी सम्मेलनमें भारतके प्रतिनिधि बुलाये भी जाते हैं तो भी उनकी स्थिति ब्रिटिश राष्ट्रकुलके एक अवरसदस्यकी ही होती है। . . ."

सेंसर मुझे नागपाशकी तरह जकड़े हुए है। मैं हृदयसे ईश्वरसे मना रहा हूँ कि इस पाशसे छुटकारा पाने की मुझे राह सुझाये।

मैं उतावलीमें कोई कदम नही उठाऊँगा। कोई भी कदम उठाने से पहले मैं वाइसराय महोदयसे अवश्य पत्र-व्यवहार करूँगा।

रही बात साम्प्रदायिक एकताकी, तो उससे तो मै अभिन्न रूपसे जुड़ा हुआ हूँ। मै इतना ही कह सकता हूँ कि कोई न्यायसंगत समाधान निकालने के लिए मैं जो-कुछ भी योगदान कर सकता हूँ उसमें कोई कसर नहीं छोड़ूँगा।[1]

आपके पूरे पत्रमें एक निराशाकी ध्वनि गूँज रही है। काश, मैं आपको भी अपनी आशावादितामें भागीदार बना सकूँ! समय कभी भी किसी न्याययुक्त महोद्देश्य के विपरीत नहीं जाता, विशेषतः जब उस उद्देश्यको उतने ही न्याययुक्त साधनोंका सहारा हो।

जो भी हो, आप मेरी ओरसे हताश न हों, भले ही समान हितोंकी बातोंमें हमारे बीच मतभेद ही क्यों न हो।

आपका,
मो० क० गांधी

सर होमी मोदी
बम्बई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८८२) से। सौजन्य: होमी पी० मोदी

१८०. पत्र: अमृतकौरको

जुहू
१३ जून, १९४४

चि० अमृत,

यह कारोबारी पत्र नहीं, बल्कि मात्र प्रेम-पत्र है। कारोबारी पत्र तो प्यारेलाल और सुशीलासे मिलेंगे। डॉ० सेनके मार्फत तुम्हारा पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैं शायद उनसे मिल नही सकूँगा, क्योंकि कल मैं पूना जा रहा हूँ। तुम्हारे वार्षिक

१. होमी मोदीने लिखा था: "... मुसलमानोंकी माँगकी स्वीकृति या स्वराज्यको अनिश्चित कालतक टालते रहने की कीमतपर भी भारतकी राजनीतिक एकताको कायम रखने का संकल्प, यही दो विकल्प दिखाई देते हैं। ... मुसलमानोंकी पाकिस्तानकी माँगकी शक्तिको कम करके आँकने की एक प्रवृत्ति नजर आती है, और ऐसे लोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है जो मानते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम समस्याके समाधानको टालते जाने से कोई लाभ नहीं होनेवाला है। ... वर्तमान गतिरोधको कायम रखने का थोड़ा-बहुत औचित्य तभी हो सकता है जब ऐसी आशा करने के ठीक कारण हों कि धीरजसे प्रतीक्षा करते रहने से राजनीतिक एकता और आजादी दोनोंको हासिल करना सम्भव है।"

उपहार भी मुझे मिले है। मैंने तुम्हारी धोतियाँ पहननी शुरू भी कर दी है। मेरे लिए इन धोतियोंकी चौड़ाई बहुत ज्यादा है, किन्तु कोई हर्ज नही। उनकी बुनाई अच्छी है। शाल भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। मुझे पता नही था कि तुमने ऊन कातना भी आरम्भ कर दिया है।

तुम सबको प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१४५) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७७८० से भी

१८१. पत्र : कानम गांधीको

जुहू
१४ जून, १९४४

चि० कानम,

तेरा पत्र मिला, लेकिन तेरे अक्षर बहुत ही खराब कहे जायेंगे। तुझे हर मामलेमें सुघड़ होना चाहिए। शब्दोके बीचमें अन्तर रखना चाहिए और विराम-चिह्नोंका प्रयोग करना चाहिए। तू गुजराती लिपिको बिलकुल भूल जाना तो नही चाहता न?

जब हम मिलेंगे तो नक्का-जोड़ी अवश्य खेलेंगे। लेकिन तेरे खेलोंमें तो व्यायाम होना चाहिए। तेरे अंग्रेजीके अक्षर भी सुधरने चाहिए। हिंसा और अहिंसा, दोनों पर विश्वास कैसे हो सकता है? क्या कोई एक ही समय दो घोड़ोंपर सवार हो सकता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१८२. पत्र : जितेन्द्र भाटियाको[1]

[१५ जून, १९४४ के पश्चात्][2]

मेरे जुहू-निवासके दौरान स्वयसेवकोंने बड़ी लगनके साथ सेवा की। केवल ईश्वर ही उन्हें इसका प्रतिदान दे सकता है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २१-६-१९४४

१. गांधीजी के जुहू-निवासके दिनोंमें गांधीजी की कुटियापर पहरा देनेवाले स्वयंसेवकोंके प्रधान
२. साधन-सूत्रके अनुसार गांधीजी ने यह पत्र पूनासे, जहाँ वे १५ जूनको पहुँचे थे, हिन्दुस्तानीमें लिखकर भेजा था।

१८३. पत्र : मोतीचन्दको

पूना
१६ जून, १९४४

भाई मोतीचन्द,

तुम्हारी भेंट प्राप्त हो गई है। इस बंडलकी सभी पुस्तकें तो अपने साथ नही लाया; एक लाया हूँ। लेकिन मैं देखता हूँ कि शायद मैं किसी भी साहित्यके अध्ययनमें समय न दे सकूँगा। अभी तो मैं प्यारेलाल द्वारा संगृहीत सामग्री भी नहीं पढ़ पाया हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१८४. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

पूना
१६ जून, १९४४

प्रिय भगिनी,

तुम्हारा खत मिला। मुंबई, पुना, पंचगनी और इर्दगिर्दकी जगह छोडकर कहीं जाने को दिल ही नहीं होता है। हां सेवाग्राम तो दाक्तरोंसे छुट्टी मिले तब जाना ही है। काश्मीर जाने का दिल करुं तो अवश्य तुमारे साथ रहूं। तुमने तो बोज उठा लिया है उस बारेमें बिरलाजीने मुझे सुनाया। ईश्वर तुम्हें सफलता देवे।

मैं अच्छा हो रहा हूं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८००५) से। सी० डब्ल्यू० ३१०५ से भी; सौजन्य : रामेश्वरी नेहरू

१८५. पत्र : लॉर्ड वैवेलको

नैसर्गिक उपचार-गृह
६, टोडीवाला रोड, पूना
१७ जून, १९४४

प्रिय मित्र,

यदि यह पत्र एक ऐसे ही कामके सम्बन्धमें न होता जिसमे आप व्यस्त है, तो मैं आपको पत्र लिखकर कभी कष्ट न देता।

हालाँकि इसकी कोई वजह नही है, फिर भी देश-भरके लोग और शायद कुछ विदेशी भी सबकी भलाईके लिए मुझसे कोई ठोस योगदान करने की उम्मीद रखते हैं। खेद है कि मुझे स्वास्थ्य-लाभ करने में बहुत समय लगने की सम्भावना है। लेकिन, बिलकुल स्वस्थ होने पर भी मैं कांग्रेस कार्य-समितिके विचार जाने बिना बहुत कम या कुछ भी नही कर सकता। कैदीकी हैसियतसे मैंने उससे मिलने की इजाजत माँगी थी।[1] अब एक आजाद व्यक्तिकी हैसियतसे फिर मैं उससे मिलने की इजाजत माँगता हूँ। यदि इस विषयमें कोई फैसला करने से पहले आप मुझसे मिलना मंजूर करें तो ज्यों ही चिकित्सक लोग मुझे लम्बी यात्रा करने की इजाजत देंगे, आप जहाँ भी चाहेंगे वही आने के लिए मैं खुशीसे तैयार हो जाऊँगा।

मेरी नजरबन्दीके दौरान मेरे और अधिकारियोके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसे मैंने कुछ मित्रोके बीच निजी उपयोगके लिए वितरित कर दिया है। परन्तु मैं महसूस करता हूँ, मेरे साथ इन्साफका तकाजा है, कि सरकार उन पत्रोको प्रकाशित करने की इजाजत दे दे।[2]

३० तारीखतक मेरा पता वही होगा, जो ऊपर लिखा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २-७-१९४४

१. देखिए पृ० ४८ और ४९।

२. अपने २२ जूनके पत्रमें वाइसरायने गांधीजी के दोनों अनुरोधोंको अस्वीकार करते हुए लिखा: "स्वास्थ्य-लाभ करने और आगे विचार करने के उपरान्त यदि भारतके कल्याणके लिए आपको कोई निश्चित और रचनात्मक नीति सुझानी हो तो मैं उसपर खुशीसे विचार करूँगा।...चूँकि यह पत्र-व्यवहार...समाचारपत्रोंमें...प्रकाशित हो गया है, इसलिए मैंने आपकी नजरबन्दीके दौरान लिखे सारे राजनीतिक पत्रोंके प्रकाशनका निर्देश दे दिया है।" देखिए "तार: वाइसरायके निजी सचिवको", पृ० ३५७ भी।

१८६. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

१७ जून, १९४४

भाई रणछोड़दास,

आपका पत्र मुझे अच्छा लगा, लेकिन आपने अंग्रेजीमें लिखा, यह बिलकुल अच्छा नहीं लगा। आप तो गुजराती जानते हैं, और मैं भी जानता हूँ। तब हम एक-दूसरेको मातृभाषामें क्यों नहीं लिख सकते?

आपके विचारोंमें जो परिवर्त्तन आया है, उसे मैं समझता हूँ।[1] मेरी इच्छा है कि मैं ठीक हो जाऊँ, उसके बाद आप मुझसे सेवाग्राममें मिलें। मैं आपसे बहुत अच्छा काम ले सकता हूँ। जब आप मेरे विरुद्ध लिखते और बोलते थे तब भी मेरे मनमें आपके प्रति सम्मान ही था, क्योंकि मैं जानता था कि मेरे प्रति आपके मनमें किसी प्रकारका द्वेष नही है। आप मानते थे कि मैं देशका नुकसान कर रहा हूँ। अत: अपना धर्म समझकर आपने मेरा विरोध किया।

जो-कुछ मुझे लिखना चाहें, खुलकर लिखें।

मो० क० गांधीके वन्देमातरम्

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१८७. पत्र : सुरेन्द्रको

[१७ जून, १९४४ के पश्चात्][2]

चि० सुरेन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। वहाँ कुत्तोंका डर है क्या? गीदड़ों का भी? पागल लोमड़ियोंका? साँपोंका? घर कैसा है? क्या उसका आधार ऊँचा है? ओसारा है क्या? कितनी कोठरियाँ हैं? छत कैसी है? क्या पढ़ते हो? कुछ व्यायाम करते हो? लोगोंके बीच किस प्रकारका काम कर रहे हो? सार्वजनिक गतिविधियोंमें भाग नही लेते, इस सम्बन्धमें मुझे कुछ नहीं कहना है। यह अच्छा कर रहे हो कि तुम मेरे पास आने का लोभ संवरण कर रहे हो। जब मैं सेवाग्राम पहुँच जाऊँ उस समय यदि मेरे पास चक्कर लगाने की इच्छा हो तो उसे मत

१. पहले रणछोड़दास पटवारीने गांधीजी के अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका विरोध किया था। देखिए खण्ड ५३, पृ० १४-२४।

२. साधन-सूत्रमें इसे १७ और २१ जून, १९४४के पत्रोंके बीच रखा गया है।

दवाना। नाथजी[1] मिले थे। वे यहाँ आयेंगे। मैं यहाँ ३० तारीखतक हूँ। ठीक चल रहा है। अब दो प्रकारके कीड़े[2] तो मुझमें घर करके बैठे हुए ही हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१८८. पत्र : इनायतुल्ला खाँ मशरिकीको[3]

१८ जून, १९४४

यह तो मैं बेझिझक कह सकता हूँ कि हमारे दफ्तरसे ऐसी कोई खबर प्रसारित नहीं की गई है कि आप गांधीजी से मिलने आ रहे हैं। वे आपके इस विचारका निश्चय ही समर्थन करते हैं कि उन्हें कायदे-आजमसे ही मिलने की कोशिश करनी चाहिए। स्वर्गीय डॉ० अंसारीकी मार्फत उन्हें दी हुई आपकी चेतावनीका उन्हें कोई स्मरण नहीं है। यदि आप अपने उत्तराधीन पत्रको प्रकाशित करना चाहें तो उन्हें कोई एतराज नहीं है। किन्तु आपका पत्र जिस प्रकारका है उस प्रकारका पत्र-व्यवहार सार्वजनिक रूपसे चलाया जाये, इस बातके औचित्यमें उन्हें बहुत सन्देह है। ऐसे पत्रके समयसे पूर्व प्रकाशित कर दिये जाने से वह अपने वास्तविक मूल्य और उपयोगसे वंचित हो जाता है और उसे प्रकाशित करनेवाला आत्म-विज्ञापनके आरोपका भी पात्र बन जाता है।

[अंग्रेजीसे]
फाइल नं० ५१/४/४४। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. किशोरलाल मशरूवालाके गुरु केदारनाथ कुलकर्णी
२. अंकुशकृमि और एमीबा; देखिए पृ० ३१३-१४।
३. यह पत्र प्यारेलालने गांधीजी के नाम इनायतुल्ला खाँके १२ जूनके उस पत्रके उत्तरमें लिखा था। जिसमें उन्होंने अन्य बातोंके अलावा यह भी कहा था कि "आपको याद होगा कि किन शब्दोंमें मैंने आपको १९३० में चेतावनी दी थी . . . जबतक मैं आपको कायदे-आजमसे मिलवाने की हर सम्भव कोशिश करके देख न लूँ, तबतक मुझे आपसे बम्बईमें मिलने आने से बचना चाहिए। . . . मुझे मालूम हुआ है, हालमें आपके कार्यालयसे ऐसी खबर जारी की गई कि हिन्दू-मुस्लिम समझौतेपर बात करने मैं आपसे मिलने आ रहा हूँ। . . . मैं अब भी जनाब जिन्नाको ही ऐसा उपयुक्त व्यक्ति समझता हूँ जिनसे आपको मिलना चाहिए, बशर्ते कि वे आपसे मिलने से बिल्कुल इनकार ही न कर दें।" देखिए "तार : इनायतुल्ला खाँ मशरिकीको", पृ० २८९ भी।

१८९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१८ जून, १९४४

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र आज मिला। तू जैसी जल्दबाज थी वैसी ही आज भी है। जब तेरी इच्छा हो तब आ जाना। यहाँ तो द्वारपाल मैं ही हूँ। लोग मेरी प्रार्थना स्वीकार करके आते ही नही हैं। जिन्हें मैं बुलाऊँ वे ही या जिन्होंने आने की माँग की हो और मैंने मान ली हो वे ही आते है। मुझसे जाँच कराये बिना किसी अफवाह पर विश्वास करना ही नही चाहिए। ढीठ बनकर इस बार यहाँ कोई नही आ सका। यदि तेरे पास [ऐसे लोगोंके] नाम हों तो मुझसे पूछ लेना। जुहूके बारेमें भी पूछना हो तो पूछ लेना।[1] तेरे पत्रोंको कोई नही रोकता।

प्रो० लिमयेसे[2] मिलने का संकल्प लेकर ही मैं यहाँ आया हूँ। जिन्हें वे लाना चाहें, ला सकते है। अभी तो प्रोफेसर खुद ही बीमार हैं। जो काम मैं जुहूमें नही कर सका वह यहाँ कर लेना चाहता हूँ। प्रो० लिमये [मेरी इजाजतके लिए] तेरे द्वारा पुछवाये, इसे मैं अपने लिए शर्मकी बात मानता हूँ। उनके लिए मेरे मनमें बहुत आदर है।

आज तो इतना काफी है न? देशपाण्डेजीके[3] बारेमें अलगसे लिखने की जरूरत नही रह जाती न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४३०) से। सी० डब्ल्यू० ६८६९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१. सरोजिनी नायडूने जुहूमें प्रेमाबहन कंटकको गांधीजी से मिलने नहीं दिया था।

२. विधायक समितिके प्रोफेसर वी० पी० लिमये

३. जी० ए० देशपाण्डे उर्फ तात्यासाहब, महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस कमेटीके मन्त्री

१९०. पत्र : बालकृष्ण भावेको

पूना
१८ जून, १९४४

चि० बालकृष्ण,

कृष्णचन्द्रने लिखा है कि किसी व्यक्ति द्वारा छले जाने के फलस्वरूप तुमने एक समयके दूधका परित्याग कर दिया है और अपने ऊपर प्रहार भी किया। ये दोनो बातें उपयुक्त अवसरपर अवश्य की जा सकती हैं, लेकिन तुमने जो किया है क्या यह उसके लिए उपयुक्त अवसर था? इस बारकी जेलकी अवधिमें मैंने यह सीखा है कि हमें अपने साथियोंके कार्यपर तुरन्त कोई निर्णय नही दे देना चाहिए। सम्बद्ध व्यक्तिके सम्मुख विचारार्थ दूसरा पक्ष भी रखना चाहिए और उस व्यक्तिको ही निर्णय करने देना चाहिए। तुमने जो किया उसपर इस दृष्टिसे विचार करना।

मुझे लिखने में संकोच न करना।

मेरे वहाँ जाने में विलम्ब होता जा रहा है। जुलाईके अन्तमें यदि वहाँ पहुँच सका तो सौभाग्य समझूँगा। इतना जरूर कर सकता हूँ कि अगस्तके बाद प्रतीक्षा नही करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ८०९) से। सौजन्य : बालकृष्ण भावे

१९१. पत्र : आर० के० प्रभुको

पूना
१९ जून, १९४४

प्रिय प्रभु,

आशा है तुम्हे मेरा पत्र मिल गया होगा। क्या इसी २८ तारीख (बुधवार) को शाम ५ बजेका समय तुम्हारे लिए ठीक होगा? मै इससे पहले तुम्हें कोई समय[1] नही दे सकता। मै सबकुछ आरामसे करना चाहता हूँ।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२२७) से

१. आर० के० प्रभु और यू० आर० राव द्वारा द माइंड ऑफ महात्मा गांधी के संकलनके निमित्त। यह संकलन मार्च, १९४५ में ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया। देखिए "पत्र : गणेश वि० मावलंकरको", पृ० ३७६ भी।

१९२. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

पूना
१९ जून, १९४४

प्रिय भाई,

आशा है, मैंने पूनाके पतेपर जो पत्र[1] भेजा था, आपको मिल गया होगा। आपका १७ तारीखका पत्र उसका उत्तर नहीं मालूम होता।

निःसन्देह, आप जिस समय भी आ सकें, यदि आपका शरीर इजाजत दे तो, मुझे बहुत ही अच्छा लगेगा। हमारी मुलाकातकी चर्चा काफी होगी और उससे भी अधिक अटकलें लगाई जायेंगी, किन्तु वह सब तो अपरिहार्य है।

अतीतकी सोचने की मुझे कोई जरूरत नही, किन्तु वर्त्तमानका क्या होगा?[2] जो वर्त्तमान मेरे सामने है, क्या वही भविष्यका निर्माण नहीं करेगा? यदि मुझे भविष्य में अपने शरीरका कल्याण चाहिए तो क्या मुझे अंकुशकृमि और एमीबासे अभी ही छुटकारा नही पा लेना चाहिए? उसपर विचार कर लीजिए और मिलने पर इसका उत्तर दीजिएगा। हाँ, यदि आप अन्यथा चाहें तो और बात होगी।

इन दोनों शत्रुओंके बावजूद मेरी दशामें ठीक सुधार हो रहा है।

स्नेह।

आपका,
छोटा भाई

[पुनश्च :]

क्या आप मुझसे टाइप किये हुए पत्र पाना ज्यादा पसन्द करेंगे?

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८८२३) से। लेटर्स ऑफ द राइट ऑनरेबल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, पृ० ३६२-६३ से भी

१. देखिए पृ० ३२८।

२. श्रीनिवास शास्त्रीने अपने पत्रमें लिखा था : "आपके साथ भारी अन्याय किये गये हैं और वे पुकार-पुकारकर कहते हैं कि उनका मार्जन हो। किन्तु इस समय भविष्यका महत्त्व अतीतसे कहीं अधिक है। मैं यह तो नहीं कहता कि आप अपनी पुनःस्थापना न करें, किन्तु मैं पूरे हृदयसे आपसे विनती करता हूँ कि विश्व-शान्तिकी माँगपर ध्यान दें। क्या पता कि भारतके और आपके उद्देश्यकी सिद्धिका यही सबसे अच्छा मार्ग न हो।"

१९३. पत्र : कमला देवीको

पूना
१९ जून, १९४४

प्रिय कमला देवी,[1]

यदि मेरा कोई ऐसा शरारत-भरा इरादा होता कि आपको सबक सिखाऊँ, तो मै आपको इसी महीनेकी २६ तारीखका समय दे देता। आपने मुझे लिखते समय पंचांग नही देखा। यह तो मेरा मौन-दिवस है। लेकिन मै नेकी बरतूंगा। आप २७ तारीखकी शामको पाँच बजे आकर मुझसे मिल सकती है।

सस्नेह।

बापू

श्रीमती कमला देवी
८४, नेपियन सी रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१९४. पत्र : क० मा० मुंशीको

पूना
१९ जून, १९४४

भाई मुंशी,

हम २४ तारीखको ५ बजे मिलेगे। हमारी बैलगाड़ी अपनी गतिसे चल रही है।

सबको
बापूके आशीर्वाद

श्री कनु मुंशी
एडवोकेट
२६, रिज रोड
बम्बई

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७६७४) से। सौजन्य: क० मा० मुंशी

१. सम्भवतः कमला देवी चट्टोपाध्याय, अखिल भारतीय महिला सम्मेलनकी अध्यक्षा

१९५. पत्र : शारदाबहन गोरधनदास चोखावालाको

पूना
१९ जून, १९४४

चि० बबुडी,

तेरा पत्र मिला। अपनी खातिर तो मैं तुझे आने देता। देखकर आँखें ठंडी हो जातीं। लेकिन तेरी खातिर तुझे रोका। भले ही तेरी हालत अब सूरतसे बम्बई आने जैसी हो गई हो। लेकिन संयम रखने से तू इससे भी ज्यादा अच्छी हो जायेगी। और फिर तूने तो मुझसे संयम रखना सीखा है न? मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी तुझसे लाड़ किया हो; तेरे विवाहके अवसरपर भी नहीं।

चोखावालाके कन्धे तो विशाल हैं और वह सिपाही है। आनन्द तो आनन्द ही है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००४६) से। सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

१९६. पत्र : मनु गांधीको

पूना
१९ जून, १९४४

चि० मनुड़ी,

तेरा पत्र मिला। जैसा तूने लिखा है यदि तू उसके अनुसार आचरण करेगी तो मुझे बहुत खुशी होगी। तू सिनेमा नहीं गई, यह अच्छा ही किया। मैं न लिखूं तो भी तू लिखती रहना। युक्तिको वहाँकी आबोहवा यदि माफिक आ जाये तो बहुत अच्छा हो। वहाँकी आबोहवा सामान्यतया अच्छी ही कही जाती है।

मेरा स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१९७. पत्र : आनन्द तोताराम हिंगोरानीको

पूना
२० जून, १९४४

चि० आनन्द,[1]

तुम्हे विद्याकी मृत्युपर हमेशा सोचते नही रहना चाहिए और न विषण्ण होना चाहिए। यदि वह अपने जीवन-कालमें तुम्हारी प्रेरणा थी तो अब उसके चिर-निद्रामें लीन हो जाने के बाद उसे तुम्हारे लिए और बड़ी प्रेरणा होनी चाहिए। इसीको मैं आत्माओंका सच्चा मिलन मानता हूँ। इसका ज्वलन्त उदाहरण ईसाका है और आधुनिक युगमें रामकृष्णका। मरणोपरान्त उनका प्रभाव और भी बढ़ गया। उनकी आत्माकी मृत्यु नही हुई, न ही विद्याकी आत्माकी हुई है। इसलिए तुम शोक करना छोड़ दो और अपने सम्मुख प्रस्तुत कर्त्तव्यका विचार करो। जबतक तुम्हारा इलाज चल रहा है और मेरा इलाज भी चालू है तबतक मेरे पास दौड़ आने का विचार मत करना। मेरे सेवाग्राम पहुँचने के बाद ही मेरे पास आना।[2]

स्नेह ।

बापू

[पुनश्च :]

हिन्दुस्तानीमें लिखने की कोशिश करो।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा आनन्द तो० हिंगोरानी

१९८. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

२० जून, १९४४

वालजीभाई,

यह पढ़नेमें तो अच्छा लग रहा है,[3] लेकिन पूरेपर दोबारा विचार करने की जरूरत लगती है। इस लेखका अनर्थ भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, इस युद्धमें

१. साधन-सूत्रमें भी यह देवनागरीमें है।

२. देखिए पृ० २८८ तथा पृ० ३१६ भी।

३. तात्पर्य वालजी गोविन्दजी देसाई द्वारा अपने लेख द क्विंटेसेंस ऑफ गांधीज्म में से, जो २२-१-१९२५ के यंग इंडिया में छपा था, निकाले गये अंशोंके संकलनसे है। इसके कुछ अंशोंके सम्बन्धमें उनका कहना था कि "वे दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास के आवरण पृष्ठपर सूत्र-वाक्योंके रूपमें छापने लायक हैं।" इन अंशोंके लिए देखिए परिशिष्ट १७।

ही आदमी क्या करे? तुम्हारे कथनानुसार, तटस्थ तो रहा ही नहीं जा सकता। अतः वह या तो इसमें भाग ले अथवा फिर छलांग लगाकर हाराकिरी करे, जेल जाये — यही न? उत्तर इतना सरल नहीं है जितना कि हम मान सकते हैं।

दूसरा भाग तो बहुत विचार करने योग्य है।

क्षमा क्या वीर ही कर सकता है? वीर कोई दिखता नहीं। अतः तुम्हारे वचन सच्चे तो हैं, लेकिन भैंसको 'भागवत' सुनाने, अथवा सुअरको मोतियोंका हार पहनाने या फिर गधेको सुनहला झूल पहनानेजैसा लगता है।

यह सब तो जो-कुछ मेरे दिमागमें आया, वही निकाल फेंका है। यह तुम्हारे समझने के लिए ही है। इस परिस्थितिमें चुपचाप काम करते जाना ही उचित है।

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१९९. पत्र: भागीरथी देवी उपाध्यायको

पूना
२० जून, १९४४

चि० भागीरथी,

तुम्हारा खत पाकर मुझे आनंद हुआ। हरिभाऊके[1] बारेमें पढकर इतना ही दुःख हुआ। मुझे लिखा करो।

मैं पूनामें ता० ३० तक हूं। सेवाग्राम जाने में कमसे-कम देढ़ मास तो लगेंगे। मैं धीरे-धीरे अच्छा हो रहा हूं। पूरी शक्ति आने में कुछ देर होगी ऐसा डाक्तर लोग सुनाते हैं। मेरे बारेमें जरासी भी चिंताका कारण नहीं है।

दुर्गाबहन, नारायण, आर्यनायकम् मेरे साथ है। प्यारेलाल, सुशीलाबहन, कनु तो हैं ही। आभा बीमार थी इसलिये वह भी है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. भागीरथी देवीके पति

२००. पत्र : गणेश वि० मावलंकरको

पूना
२१ जून, १९४४

भाई मावलंकर,[1]

तुमने जो कागजात भेजे थे उन सबको प्यारेलाल निबटा नही सका। वह हमारी बातचीत इतनी ध्यानके साथ नही सुन रहा था। इसके अतिरिक्त उसने इस मामलेमें कभी हाथ भी नही लगाया है। इसलिए इस मामलेमें मुझे जो उचित लगा वह मैंने ही किया है। मैं और भी ज्यादा लिख सकता था, लेकिन तुम्हारे लिए इतना ही काफी है। इसमें यदि तुम्हें कहीं ज्यादा स्पष्टीकरणकी जरूरत महसूस हो तो पूछना। मै तुरन्त खुलासा कर दूंगा। कस्तूरबा कोषके बारेमें तुमने जो दो प्रश्न पूछे है उन्हें दूसरी तरहसे पूछा जा सकता था। लेकिन मैंने उन्हें हाथ नही लगाया, क्योंकि मै अपना समय बचाना चाहता था। कापीराइटके बारेमें थोड़ा-सा फेरबदल किया है और वह आसानीसे समझमें आ सकता है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मगनभाईका पत्र इसके साथ नत्थी है। जैसा हमने परस्पर तय किया था, उन्हें तो तुम ही सारी बात समझाओगे न?[2]

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२४९) से

२०१. पत्र : मगनभाई प्र० देसाईको

पूना
२१ जून, १९४४

चि० मगनभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। जुहूमें मण्डली जुटी थी। उसमें यह तय किया गया कि मेरे सामने जो सवाल आयें उन्हें मै अमुक नामोमें से जो मुझे ठीक लगे उसे सौंप दूं। उसके बाद अगर सवाल फिर मेरे सामने लाया जाये तो भले लाया जाये।

तदनुसार मैंने दादा मावलंकरके पास तुम्हारा पत्र भेजा है। अगर वे तुम्हें पैसे न दें तो ८००० रुपये मुझसे ले लेना। उसमें तुम्हे समय नही गँवाना है।

१. १९३७ से १९४५ तक बम्बई विधान-सभाके अध्यक्ष; बादमें केन्द्रीय विधान-सभा और लोक सभाके अध्यक्ष

२. देखिए अगला शीर्षक भी।

[गुजरात] विद्यापीठके सम्बन्धमें मैंने विद्याबहनको[1] जवाब दिया है; उसकी नकल भेज रहा हूँ। मुझे सूझा नहीं कि इस विषयमें तुमसे पूछूँ। वैसे, सूझना चाहिए था। लेकिन शायद मेरा जवाब तुम्हें ठीक लगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२०२. पत्र : नृसिंहप्रसाद का० भट्टको

२१ जून, १९४४

भाई नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मनुभाई[2] और विजयासे[3] भी मुझे काफी जानकारी मिली है। पृथ्वीसिंहके सम्बन्धमें [उन्हें] कुछ कठिनाई-सी लग रही है। उन्होंने तुम्हारे अनुभवके बारेमें जानकारी माँगी है। इस सम्बन्धमें तुम्हारी जिम्मेदारीका सवाल ही नही उठता। तुमने अति शुद्ध हृदयसे बात की थी और उसमें भी तुम ठगे गये, तो इसमें दु:खकी क्या बात है? यदि किसीका विश्वास ही न किया जाये तो यह दुनिया चले कैसे? मनुभाईके बताने पर मैं तुम्हारा दु:ख समझ सका; और उसी आधारपर यह सब लिख दिया।

तुम्हारे नाम लिखा मेरा पहलेका पत्र तुम्हें नही मिला तो कोई बात नही। मै सेवाग्राम पहुँचूं तो और उसके बाद ही तुम आना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२०३. पत्र : परचुरे शास्त्रीको

पूना

२१ जून, १९४४

भाई परचुरे शास्त्री,[4]

तुम्हारा पो० का० मैंने सुरक्षित कर रखा है। तुम्हारी विद्वत्ताका पूर्ण उपयोग देशको नहीं मिल सकता है उसका दु:ख मुझे हमेशा रहा है। मैंने तो उपाय ढूंढे लेकिन नहीं मिला। तुम्हारे साधना करके ढूढ़ना चाहिये। बाकी तो हम मिलेंगे

१. विद्यागौरी रमणभाई नीलकण्ठ

२ और ३. मनुभाई और विजया पंचोली

४. एक कुष्ठ रोगी, जो नवम्बर १९३९ में सेवाग्राम आये थे और अपनी मृत्युपर्यन्त ५ सितम्बर, १९४५ तक वहीं रहे थे।

तब। जुलाईके अंत तक वहां पहोचना असंभव-सा है। भाई मनोहरकी[1] तपश्चर्या अद्वितीय है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२०४. पत्र : हरिभाऊ फाटकको

पूना
२२ जून, १९४४

प्रिय हरिभाऊ,

जब बाबूराव यहाँ मिलने आया उस समय तुम्हारा अमूल्य पत्र ढूंढे नही मिला। वह तुम्हारा भेजा हुआ आदमी था, इस कारण मैंने उससे भेंट कर ली। उसके पास कहने को कुछ नही था। उसके[2] वापस जाने के बाद तुम्हारा पत्र मिल गया।

मुझे पता नही था कि यहाँ बोर्ड है ही नही। तुम उसका जिम्मा सँभाल लो, इस बातसे मैं बिल्कुल सहमत हूँ, बल्कि मै तो चाहता भी यही हूँ। तुम्हें मालूम ही है कि इस समूची योजनाका जिम्मा संघका[3] है। बापा १ जुलाईको यहाँ आयेंगे। शायद आज भी यहाँ हों। मेरी सलाह है कि तुम उनसे मिलो और यह पत्र उन्हें दिखा दो। अपनी सेवाएँ देने में तुम्हें कोई संकोच नही होना चाहिए। बाबूरावके जैसे मामलोंमें सहायता अवश्य ही और वह भी तत्काल दी जानी चाहिए।

यहाँ जितना चन्दा इकट्ठा हो, उसका उपयोग यदि समूचा नही तो कमसे-कम बड़ी मात्रामें यहाँ पूनामें ही या शायद खास महाराष्ट्रमें ही होना चाहिए। और यह भी संघकी मार्फत ही होना चाहिए। संघ तो कोई एतराज किये बिना ही मेरी सिफारिश मान लेता है। सिफारिश मैं कर दूंगा।

क्या तुम रविवारको शाम ४.३० बजे आ सकते हो?

तुमने मिठाईके साथ जो पत्र भेजा था उसकी मैंने पहुँच लिखी या नही, मुझे याद नहीं आता। मिठाई तो मैंने अभीतक नही चखी है।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८०३) से। सौजन्य : छगनलाल गांधी

१. मनोहर दीवान, जिन्होंने अपना जीवन कुष्ठ रोगियोंकी सेवामें लगा दिया था; देखिए खण्ड ७३, पृ० ११०-११।

२. साधन-सूत्रमें "तुम्हारे" है।

३. हरिजन सेवक संघ

२०५. पत्र : लक्ष्मीबाई अभ्यंकरको

पूना
२२ जून, १९४४

प्रिय बहन,

बेशक मुझे आपके पतिकी बहुत ठीक याद है। जिस विषयको उन्होंने बिलकुल अपना बना लिया था उसके प्रति ईमानदारी और उनके सर्वथा यथार्थ दृष्टिकोणसे मैं बहुत प्रभावित हुआ था।

अभी केवल दो दिन पहले ही मुझे डॉ० बेलवलकरसे मिलने और 'भगवद्-गीता' पर आपके पतिकी लिखी जिल्दें प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था।

इसलिए मुझे आपके बेटे और उषा बेलवलकरके आगामी पाणिग्रहण-संस्कारके अवसरपर उन्हें आशीर्वाद देते हुए बहुत प्रसन्नता हो रही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीमती लक्ष्मीबाई अभ्यंकर
सरदार गृह
बम्बई

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२०६. पत्र : कंचन मु० शाहको

पूना
२२ जून, १९४४

चि० कंचन,

मैंने बम्बईमें तेरी राह देखी। यदि तू मुझे बम्बईमें मिली होती तो कमसे-कम पूनातक मेरे साथ आ सकती थी। अब तुझे यहाँ नहीं बुलाया जा सकता। तुझे बुलाऊँ तो अमतुस्सलामको क्यों नहीं? अन्य बहनें जो आना चाहती हों उन्हें क्यों नहीं बुलाऊँ? वसुमती भी मिलने को बेताब है। पंचगनीमें ही मिलनेवाली बहनों की संख्या बहुत बड़ी है। जब मैं वहाँ आऊँगा तब तुम सबका पेट भर दूँगा। इसी-लिए मैं वहाँ आने के लिए अधीर हो रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि तू मेरी स्थिति

को अच्छी तरह समझेगी और धीरजसे काम लेगी। यहाँ मेरी मदद करने के लिए तो बहुत सारे लोग है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२६८) से। सी० डब्ल्यू० ७१७४ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल गं० शाह

२०७. पत्र: गोखलेको

पूना
२३ जून, १९४४

प्रिय गोखले,

मेरी निश्चित राय है कि आपको प्लूरिसीका इलाज कराना ही चाहिए। अभीसे चार-पांच महीने बादकी बात सोचना बेकार है। वह समय आयेगा तो उस समयकी परिस्थितिके अनुसार काम कीजिएगा। यदि मैं बाहर रहा तो आप मुझे पत्र लिखिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२०८. पत्र: मनु गांधीको[1]

पूना
२३ जून, १९४४

चि० मनुड़ी,

तू जाते ही बीमार पड़ गई, इसने मुझे हिला दिया है। यदि मेरी कही हुई बातों का अक्षरशः पालन करे तो तू बीमार पड़ ही नहीं सकती। पढ़ने का निश्चय अच्छी बात है, लेकिन परीक्षा पास करने के लोभसे हरगिज नहीं। आँखोंको बचाकर जितना पढ़ा जा सके पढ़ना। तू अधीर है। सभी बच्चे ऐसे होते हैं। लेकिन मैं तो तुझसे धीरज की आशा रखता हूँ। मैंने तुझमें जो गुण देखे हैं, वे सब लड़कियोंमें नहीं होते। इन गुणोंको ध्यानमें रखकर तुझमें जरा-सा भी दोष देखता हूँ, तो वह पहाड़-जैसा लगता है और मुझसे सहन नहीं होता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१. गांधीजी ने जयसुखलाल गांधीको जो पत्र (देखिए पृ० ३३१) लिखा था उससे मनु गांधी परेशान हो उठी थीं और उन्होंने गांधीजी से क्षमा-याचना की।

२०९. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको

पूना
२४ जून, १९४४

प्रिय अमृतलाल,

तुम्हें सिर्फ यह बताने के लिए दो शब्द लिख रहा हूँ कि मैंने आभा और कनुके साथ लम्बी बातचीत की। यदि तुम्हारा और तुम्हारी पत्नीका आशीर्वाद मिल जाये तो वे हमारे पंचगनीसे वापस लौटने पर विवाह करने को तैयार हैं। नारणदास और जमनाबहनने अपनी स्वीकृति दे दी है। नारणदास विवाह-संस्कारके समय उपस्थित नहीं होंगे।[1] कनु अपनी माँको समझाने का प्रयत्न कर रहा है कि वह भी न आयें। आशा करता हूँ कि तुम दोनो भी इस विषयमें संयम बरत सकोगे। केवल एक भावनाकी खातिर पैसे खर्च करने में क्या लाभ? किन्तु यदि तुम मनपर नियन्त्रण न रख सको तो बेशक आ जाना। लौटती डाकसे मुझे अपनी इच्छा सूचित कर दो। मुझे पचगनी[2], जिला साताराके पतेपर पत्र भेजना। आभा और कनु मेरे साथ होंगे। आशा है, तुम सब कुशल होगे।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४९५) से। सौजन्य : अमृतलाल चटर्जी

२१०. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

पूना
२४ जून, १९४४

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। तुमने सारा ब्योरा लिख भेजा, यह अच्छा किया। परन्तु इसके बारेमें फिर कभी लिखूंगा। मनुको राजकोट भेजने की कोई जरूरत नहीं। वहाँ भी वह मेरी अनुमतिसे ही आई है। वह तो अच्छी होकर पढ़ना शुरू करे। झट पास होने की जल्दी न करे। घरका काम करना तो उसे आता ही है। इसलिए उसमें थोड़ा समय दे। नौकरकी तंगीके कारण कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा। अगर वहाँ

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", पृ० ३२९ भी।
२. गांधीजी ४ जुलाईको वहाँ पहुँचे थे।

बीमार ही रहा करे तो उसका स्थान मैं सेवाग्राम समझूँगा। लेकिन यदि वह मेरे कहे अनुसार चलेगी तो हरगिज बीमार नही पड़ेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। यहाँके वैद्यकी दवा युक्तिको अनुकूल आ जाये और मनुको वह कोई औषधि देना चाहे तो भले ही वह ले। उसका शरीर अच्छा है और वह बिगड़ना नही चाहिए। आँखोंका ध्यान रखकर ही पढ़ाई करनी है।[1]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्हारा पत्र शान्तिकुमारको पढ़ाने का मेरा विचार है। तुमने जो लिखा है वह उसे मालूम होना चाहिए।[2]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

२११. पत्र : विजय आनन्दको

पूना
२५ जून, १९४४

प्रिय विजय आनन्द,[3]

तुम्हारा प्यारा-सा पत्र मिला। इतनी स्पष्टतासे मुझे लिखकर तुमने ठीक किया। मैंने तुम्हारे लिए दस अलबमोंपर हस्ताक्षर कर दिये हैं। आशा है, महारानीजी स्वस्थ होंगी। तुम सबको स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१ और २. देखिए "पत्र : जयसुखलाल गांधीको", पृ० ३३१ और "पत्र : मनु गांधीको", पृ० ३५१।

३. विजयनगरम्के महाराज कुमार

२१२. पत्र : वी० पी० लिमयेको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा[1]
२५ जून, १९४४

प्रिय आचार्य लिमये,

मैंने सूचना-पत्रकी एक प्रति देखी है। वह पढ़ने में बहुत ही बुरी लगी। उसमें से ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे यह कोई सार्वजनिक समारोह[2] हो। क्या आपने उसे देखा है? और उसमें समय भी ४ से ६ तकका दिया गया है। यह तो मुझे अपनी शक्तिसे बाहर दीखता है। कुल मिलाकर आधे घंटेसे अधिक समय नहीं लगना चाहिए। यदि प्रश्नोंकी संख्या कमसे-कम रखी जाये तो मैं कुछ ही मिनटोंमें सब-कुछ निपटा सकता हूँ। जो काम किये गये हैं उनका एक विस्तृत विवरण और प्रश्नोंकी सूची मुझे काफी पहले भिजवा दीजिए। इस सभामें आमन्त्रित लोगोंकी एक सूची भी मुझे भेज दीजिए, जिसमें उनका पता और संस्थामें उनकी हैसियत भी उल्लिखित हो। आशा करता हूँ कि प्रो० जावदेकर तथा भागवतके नाम भी उस सूचीमें शामिल होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९९९) से। सौजन्य : वी० पी० लिमये

२१३. पत्र : वी० पी० लिमयेको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा[3]
२६ जून, १९४४

प्रिय आचार्य,

आपको क्षमा-याचना करने की कोई जरूरत नहीं। आरम्भिक गलती तो मेरी थी। मैंने अपनी शक्तिको ज्यादा आँका, और सुशीला मेरे पास नहीं थी कि मेरी अति उत्साही प्रवृत्तिपर अंकुश रखती। तदुपरान्त जो-कुछ हुआ वह तो क्षम्य है।

१. स्थायी पता

२. तात्पर्य गांधीजी की महाराष्ट्र कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके साथ पूनामें २९ जूनको होनेवाली मुलाकातसे है; देखिए "भाषण : पूनामें कांग्रेसियोंके समक्ष", पृ० ३५९-६३।

३. स्थायी पता

जो-कुछ भी हुआ, अनजाने हुआ और उसमें नेकनीयती ही थी। अब तो मुझे चिन्ता इस बात की है कि आगामी सभाका यथासम्भव अधिकसे-अधिक लाभ उठाया जाये और इसलिए उसके निमित्त पहलेसे भलीभाँति तैयारी कर ली जाये। कल मैं बहुत व्यस्त रहूँगा, अतः यदि मैं आपसे न मिल सका तो आप प्यारेलालके साथ पूरी बातचीत कर ले।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९९८) से। सौजन्य: वी० पी० लिमये

२१४. पत्र : दूनीचन्दको

पूना
२६ जून, १९४४

प्रिय लाला दूनीचन्द,

मैंने आपका पत्र देख लिया है।

मेरी सलाह है कि आपको ये शर्तें नहीं माननी चाहिए। जेल जाना इससे बेहतर है।

बंगालकी विपत्तिके बारेमें तो यही कहना है कि मैं अपनी बीमारीके कारण लाचार हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल से : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल। जी० एन०.५५९४ से.भी

२१५. पत्र : अमृतकौरको[1]

[२६ जून, १९४४][2]

इतना व्यस्त हूँ कि तुम्हें सिर्फ प्यार भेज सकता हूँ और वह तो तुम जितना ढो सको उतना तुम्हारा है।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२००) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७८३६ से भी

२१६. पत्र : दिनशा मेहताको

२६ जून, १९४४

भाई दिनशा,

तुम्हारे साथ थोड़ी-सी ही चर्चा हुई है। लेकिन मैं तो इतने दिनों तक नैसर्गिक उपचारके सम्बन्धमें ही सोचता रहा हूँ। परिणाम यह है :

यह संस्था कुछ-एक सुधारोंके साथ ज्यों-की-त्यों रहे, क्योंकि यह तुम्हारी कृति है। इसका विस्तार मत करो।

तुम्हारी देख-रेखमें एक गाँवके निकट एक हजार एकड़तक जमीन खरीदी जाये। इसमें रोगियोंके स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए एवं स्वस्थ लोगोंके रोग-रहित बने रहने के लिए पर्याप्त स्थान हो। इसमें गरीब और अमीर एक ही तरह रहें। उनके लिए आवश्यक खुराककी पैदावार वहीं की जाये। लगभग सभी चीजें वहीं पैदा की जायें। उपचार मिट्टी, पानी, धूप, वायु एवं आकाश द्वारा किया जाये। ऐसा प्रबन्ध किया जाये जिससे गरीब रोगीको आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध हो सकें। इसमें से जैसे-जैसे सेवक तैयार होकर निकलते जायेंगे वैसे-वैसे इस प्रकारकी नई संस्थाएँ खुलती जायेंगी। ऐसी व्यवस्था की जाये जिससे संस्था अपना चालू खर्च स्वयं निकाल सके।

जबतक प्रजाके हाथमें सत्ता न आये, तबतक इसमें सरकारी सहायता न ली जाये।

१ और २. गांधीजी ने ये पंक्तियाँ डॉ० सुशीला नैयर द्वारा अमृतकौरको लिखे दिनांक "पूना, २६ जून, १९४४" के पत्रके अन्तमें लिखी थीं। उस पत्रमें लिखा था : "मैं कल बम्बई गई थी . . . और रातको वापस लौटने पर पता चला कि हमारे 'प्रिय मित्र' [मुहम्मद अली जिन्ना] का उत्तर आ गया है। उन्होंने साफ 'ना' कर दी है। कहना पड़ेगा कि हमने उनसे अधिक आशा तो नहीं की थी, फिर भी ऐसे उत्तरके लिए तो हम तैयार नहीं थे। अब अन्त स्पष्ट हो गया है। अब तो बस कुछ हफ्तोंकी बात है . . .।"

इस सम्बन्धमें प्राकृतिक चिकित्सकोंकी एक सभा बुलाकर विचार-विमर्श किया जाये। इनमें से सेवक मिलें तो लेने चाहिए।

इस संस्थाका तथा नई खुलनेवाली संस्थाका न्यास बनाया जाये, जिसमें कमसे-कम तुम, घनश्यामदास तथा मैं न्यासी होों। इस संस्थाके निमित्त तुम्हें जो फीस लेनी हो वह लो। लेकिन तुम्हारे खर्च-भरके लिए जो रकम निश्चित हो वही लो, बाकी सारी-की-सारी इस संस्थाके खर्चमें जाये।

नैसर्गिक उपचारके अन्तर्गत क्या-क्या विषय आयें, इसकी व्याख्या की जाये तथा उस विषयपर सामान्य ज्ञानकी पुस्तकें लिखी जायें।

इसमें भविष्यकी बाट जोहने की बात ही नहीं है। जबतक मैं [जेलसे] बाहर रहूँ और जीता-जागता रहूँ तबतक इसकी देख-रेखकी जिम्मेदारी मेरी रहेगी। लेकिन यह संस्था तो मेरी अनुपस्थितिमें भी चलती रहे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए।

मैंने घनश्यामदासके साथ बातचीत शुरू कर दी है। मैं जैसा कहूँ वैसा करने के लिए वे राजी हो गये है।

तुम इसपर विचार करना। इसमें कुछ संशोधन-परिवर्धन जरूरी लगे तो बताना। इसकी तुम्हें पूरी छूट है। इस काममें तुम्हारी बुद्धि और हृदय, दोनों का मेल सधे तभी यह चल सकता है। मेरी दृष्टि तुमपर लगी है। यदि यह तुम्हारे गले न उतरे तो मुझे इसे भूल जाना चाहिए। इस संस्थाके लिए जो मदद चाहिए वह मिल सकेगी, ऐसा मैं मानता हूँ।

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२१७. तार: वाइसरायके निजी सचिवको

पूना
२७ जून, १९४४

वाइसरायके निजी सचिव
वाइसराय कैम्प

हालमें हुए हमारे पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें निरन्तर पूछ-ताछ हो रही है, इस कारण मेरा सुझाव है कि उसे प्रकाशित कर दिया जाये।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ४

१. यह पत्र-व्यवहार १ जुलाई, १९४४ को नई दिल्लीमें प्रकाशनके लिए अखबारोंको दे दिया गया।

२१८. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

पूना
२७ जून, १९४४

प्रिय भाई,

पत्रोंकी ये संलग्न नकलें[1] अपनी बात खुद सुनायेंगी। वाइसरायके उत्तरसे मैं हतोत्साह नहीं हुआ हूँ। इसके सिवाय और किसी उत्तरकी मुझे आशा भी नहीं थी। फिर भी इस उत्तरसे यह साफ पता चलता है कि डाक्टरों द्वारा स्वस्थ घोषित किये जाने के बाद सरकार मुझे मुक्त नहीं रहने देगी।[2] क्योंकि आज जनताको जैसी जलालतमें रखा जा रहा है, उसके कायम रहते मुझे सहयोगकी कोई सूरत नजर नहीं आती। खाद्य-सम्बन्धी राहत भी केवल कहने-भरको है। लेकिन भेंट होने पर हम सारी बातोंकी चर्चा करेंगे। जब भी आपका स्वास्थ्य इस लायक हो जाये, आप पंचगनी आइए। लेकिन स्वास्थ्य इस लायक होने पर ही। सार्वजनिक रूपसे कोई घोषणा करने की मुझे जल्दी नहीं है। मैं तो जो भी जानकारी मिलती है उसे इकट्ठा करके उसपर मनन ही कर रहा हूँ।

सस्नेह,
आपका छोटा भाई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८८२४) से

२१९. पत्र : गजानन कानिटकरको

पूना
२८ जून, १९४४

प्रिय बालू काका,

और बातोंको अलग रखें तब भी मैं आपसे दयाकी याचना करता हूँ। मुझे एक पलकी भी फुर्सत नहीं है। आपसे सच कहता हूँ, मैं आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहा था कि आपका लड़का[3] मेरे पास आये और मुझे अपनी उन्नत तकलीपर कातना

१. लॉर्ड वैवेलके नाम लिखा गांधीजी के १७ जूनके पत्र तथा उसके उत्तरकी नकलें; देखिए पृ० ३३७।

२. यद्यपि गांधीजी को इसकी सूचना नहीं थी, भारत सरकार उनको फिरसे गिरफ्तार करने की सम्भावनापर सरगरमीके साथ विचार कर रही थी और भारतमंत्री तथा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलसे उनके लिए उपयुक्त जेलके सम्बन्धमें परामर्श भी कर रही थी; देखिए ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ४ (पृ० १०५७, १०६१, १०८२ और ११०४)।

३. धुंडिराज कानिटकर; देखिए "पत्र : धुंडिराज गजानन कानिटकरको", पृ० ३८४।

सिखाये। मगर मुझे यह कोशिश छोड़नी पड़ी। इसलिए दोस्तीका खयाल करके मुझे क्षमा कीजिए। आपको जो-कुछ भी कहना हो, लिख भेजिए। आपके या मेरे कारण कांग्रेस पर आँच नहीं आ सकती। अगर उसपर आँच आयेगी तो उसके सदस्योंके ऐसे सामूहिक कार्योंके कारण आयेगी जिनका परिणाम कुल मिलाकर अश्रेयस्कर हो। आपने जिन सम्मान्य मित्रोंका उल्लेख किया है उनसे अवश्य मिलें। मुझसे भेंट न होने से आपके कामपर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए।

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९७१) से। सौजन्य: गजानन कानिटकर

२२०. भाषण: पूनामें कांग्रेसियोंके समक्ष[1]

२९ जून, १९४४

भाइयो और बहनो,

जब आप लोगोंमें से कुछ लोग जुहू आये थे, तब डाक्टरोंकी मनाहीके कारण मैं आपसे कुछ भी बात न कर सका। मुझे उसका बहुत दुःख रहा। जब पूना आया तो मैंने सोचा कि यहाँ आप लोगोंसे मिल लूंगा। आज भी मैं बीमार तो हूँ, मगर काफी लोगोंसे मिल लेता हूँ, बातें कर लेता हूँ। तो आपसे क्यों नहीं? मुझे आशा थी कि आपको ज्यादा समय दे सकूँगा। मगर डाक्टरोंने आधे घंटेकी मर्यादा रखी है। मैंने कह दिया है कि मैं आधे घंटेसे ज्यादा समय नहीं लूंगा। इसलिए प्रास्ताविक चीजोंको छोड़ देता हूँ।

आपकी रिपोर्ट मैं पढ़ गया हूँ। आप लोगोंके नाम, अधिकार, स्थान इत्यादिकी फेहरिस्त भी मैं देख गया। आपके प्रश्न भी ध्यानपूर्वक पढ़ गया। मैंने सोचा कि सब प्रश्नोंका उत्तर देना चाहूँ, तो वह आधे घंटेमें सब पूरा नहीं कर पाऊँगा। इसलिए अच्छा होगा कि मोटी बातें कह दूँ।

आज आपके सामने मैं किसी अधिकारसे नहीं बैठा। सत्याग्रहकी भाषामें कांग्रेस का दिया हुआ अधिकार जेल जाने पर खत्म हो गया। मैं अनायास बीमारीके कारण छूटा हूँ। सत्याग्रहीके लिए बीमार होना शर्मकी बात है। मेरी रिहाई आपकी सत्ता या मेरे आत्म-बलके कारण नहीं हुई है। अतएव जो अधिकार मैं खो चुका हूँ, वह वापस नहीं आ सकता।

१. महाराष्ट्रके करीब पचास प्रतिनिधि कांग्रेसी गांधीजी से डॉ० दिनशा मेहताके नैसर्गिक उपचार-गृहमें मिले थे।

कुछ वकील मित्रोकी[1] मैंने सलाह ली। विचार करके उन्होंने बताया कि कानूनी दृष्टिसे भी मेरे पास कोई अधिकार नही है। तो आज मेरा स्थान क्या है? आप लोग कांग्रेसमें कुछ अधिकार रखते हैं। मेरे पास वह भी नही है। मै कांग्रेस का एक मामूली चार आना मेम्बर भी नही हूँ। सत्याग्रहके सूक्ष्म कानूनको लागू करने के लिए कई वर्षोंसे मै कांग्रेसमें से निकल गया हूँ। मुहब्बत कम हो गई थी, इस कारण नहीं। मुहब्बत तो आज भी जैसीकी वैसी ही है। कांग्रेसके क्षेत्रमें मुझे अधिकार नही है। मगर मुहब्बत खीचती है। आप मुझपर विश्वास रखते है। मैं जो-कुछ कहूँ उसपर ध्यान देते है। मगर मै इतना स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आज मेरा कहना इतनी ही कीमत रखता है, जितना कि किसी औरका। आज्ञा करने का मुझे कोई अधिकार नही है। मै जो भी कहूँगा वह अभिप्राय मात्र है, आज्ञा नही। आपके दिये हुए सब कागजात पढ़ लेने पर मेरे मनमें अनेक विचार उठे। मगर जो हो चुका है उसकी चर्चामें पड़ूँ तो आज जो करना है वह विषय रह जायेगा।

जो-कुछ काम मैंने हिन्दुस्तानमें और जगतमें किया है तथा कर रहा हूँ वह सत्य और अहिंसापर निर्भर है। सत्य और अहिंसाको दिन-प्रतिदिनके जीवनमें दाखिल करना, यह मेरा निजी प्रयोग है। कुछ लोग मानते है कि सत्य और अहिंसाका व्यवहारमें और राजनीतिमें कोई स्थान नही है। मैं यह नही मानता। मेरा हमेशा यह विश्वास रहा है कि अगर सत्य और अहिंसाका प्रयोग व्यक्तिगत ही है तो ये मेरे लिए निकम्मी चीजें है। मुझे केवल अपने लिए स्वर्ग भी नही चाहिए। मैं किसी शास्त्रका गुलाम नहीं हूँ। मेरा कोई गुरु नही है। अगर मुझे कोई गुरु मिल जाये तो मै उसे प्रणाम करूँगा। मै गुरुकी आवश्यकताको मानता हूँ। मेरा धर्म मुझे यह सिखाता है। मगर आज तो मेरा अन्तःकरण ही मेरा गुरु है। आज मैं धार्मिक प्रवचन करने के लिए आपके सामने नहीं बैठा हूँ। मै कहना तो यह चाहता हूँ कि अगर सत्य और अहिंसामें से आपका विश्वास उठ गया है तो आपकी निराशाका इलाज मेरे पास नहीं है। मैं जेलमें था तो अखबारोंमें पढ़ता था और बाहर आकर सुनता हूँ कि देशमे सब जगह मायूसी छा रही है। मगर मेरे दिलमें न जेलमें मायूसी थी न अब है। कांग्रेसवालोंको अगर निराशा है तो उसका कारण सत्य और अहिंसामें उनके विश्वासकी कमी ही है। आप अपने मनको टटोलिए। क्या आपका विश्वास कम हुआ है? कांग्रेसमें रहकर अगर आप सत्य और अहिंसामें विश्वास नही रखते तो आप निकम्मे हैं। अज्ञानके वश होकर कांग्रेसमे रहे है।

कांग्रेसवाले कौन है? क्या जो कांग्रेसके रजिस्टरपर है वे ही कांग्रेसवाले है? फैजपुरमें[2] दास्ताने और देव दृढतासे कहते थे कि यहाँ कांग्रेसका इतना काम हुआ

१. भूलाभाई देसाई, बी० एफ० तारापोरवाला और क० मा० मुंशी। इनकी रायके लिए देखिए परिशिष्ट १८।

२. दिसम्बर १९३६ में

है कि बयान नहीं हो सकता। वहाँपर बहुत बड़ी संख्यामें लोग इकट्ठे हुए थे। मगर उनमें से कांग्रेसके रजिस्टरपर यत्किंचित् मात्र ही मिलते थे।

फैजपुरमें मैंने देखा कि वहाँसे छुआछूत भी नहीं गई थी। गाय कुएँसे पानी पी सकती थी, मगर अछूत नहीं। देव और दास्तानेने यह नहीं देखा, मगर मेरी आँखोंने देख लिया। बचपनसे ही मेरी यह साधना रही है कि मैं लोगोंका रहूँ। अकेला नहीं हूँ। करोड़ोंमें से एक हूँ। इससे मैं उनमें प्रवेश कर सका हूँ और उन्हें पहचान सका हूँ। राउंड टेबल कान्फ्रेंसमें मैंने कहा था कि मैं सारे हिन्दुस्तानका प्रतिनिधि हूँ। जो कांग्रेसको मानते हैं उनका भी और जो कांग्रेसको नहीं मानते उनका भी। चूँकि कांग्रेस सबकी सेवा करने का दावा रखती है, इसलिए वह सबकी प्रतिनिधि है। कांग्रेस गरीब, मूक और जिनकी आँखें आज तेजहीन हैं उन करोड़ों की प्रतिनिधि अधिक है। उनकी आँखोंका तेज आज क्यों चला गया है, इस विषयमें मैं आज नहीं पड़ना चाहता। आज तो मैं यही कहूँगा कि आप उनके प्रतिनिधि हैं और उनके प्रतिनिधि आप [तबतक] बन नहीं सकते, जबतक कि आप सत्य और अहिंसाके पुजारी नहीं बनते।

अनुभवसे मैंने यह देख लिया है कि जिस हदतक सत्य और अहिंसाका प्रयोग हुआ है, उसी हदतक हमें सफलता मिली है। इसका हिसाब आप गणितशास्त्रसे कर सकते हैं। पिछले पचीस वर्षोंमें जनतामें जितनी जागृति हुई है, वह सत्य और अहिंसाके प्रयोगसे ही हुई है। असत्य और हिंसासे देशका नुकसान ही हुआ है। जो घाटा हुआ है वह अहिंसा और सत्यमें विश्वासकी कमीके कारण ही हुआ है। मगर आज मैं आपका न्यायाधीश नहीं बनना चाहता। मैं तो आज अपने दृढ़ विश्वासको आपके सामने रखना चाहता हूँ। आपका मुझपर इतना विश्वास है कि मैं उससे डर जाता हूँ। मुझपर इतनी आशाएँ बाँधी जाती हैं, मगर मैं जादूगर नहीं हूँ। मेरे पास दो ही शक्तियाँ हैं — सत्य और अहिंसा। और अगर मैं कुछ भी प्रस्ताव रखता हूँ तो वह मात्र सत्य और अहिंसाका पुजारी होने के कारण ही। ऐसे आदमीके पीछे आप चलना चाहते हैं। छोटी-छोटी चीजें भी मुझसे पूछ लेते हैं, जिससे कि मैं हैरान हो जाता हूँ। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि आपके मनमें निराशा है तो आप विचार करें कि क्या आपकी श्रद्धा, सत्य और अहिंसामें कमी हुई है? अगर हुई है तो उसे बढ़ाया जाये।

चारों तरफ काले बादल दिखाई देते हैं। सल्तनत सख्त बनकर बैठी है। कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। कौमी झगड़ा तो खड़ा ही है। कई लोग मुझे गालियाँ देते हैं। मगर तो भी मुझे निराशा नहीं होती। मेरी निराशा, मेरी अपूर्णता तथा मेरी श्रद्धाकी कमीके कारण ही हो सकती है। जबतक निराशा नहीं है तबतक हिन्दुस्तानका प्रेम है। अगर मैं आपकी निराशा निकाल सकूँ तो मेरा आज आपके सामने आना सफल होगा।

आप मुझे पूछेंगे सल्तनतका क्या? कौमी झगड़ेका क्या? भुखमरीका क्या? इन सबका उत्तर मेरे पास है। मगर आज मैं उसमें पड़ना नहीं चाहता हूँ। इतना

स्पष्ट है कि सच्ची सत्ताके बिना हिन्दुस्तानके दु:खोका निवारण नही हो सकता। मेरी शक्ति है कि दस-बीसको खिला दूँ। करोड़पतियोंके पास बैठता हूँ। उनकी खुशामदके लिए नही, मगर उनके पाससे गरीबोंको भाग पड़ाने [दिलाने] के लिए। यह वे भी जानते है। मगर उनका पैसा लेकर मैं क्या करूँ? दस बीसको खिलाकर भुखमरी मिट नही सकती।

भुखमरी क्या है? लड़ाईके नामसे सल्तनत इतना पैसा लूट रही है कि जिसका कोई हिसाब नही। मै मानता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान आजाद रहता तो उसे लड़ाई में उतरना ही नही पड़ता और अगर जापान हमला करता तो हम उसे बहुत जल्दी हरा देते। मै जापानको यहाँ लाना नहीं चाहता। एक मालिकसे दूसरा करने की मुझे इच्छा नही है। मुझे तो मेरी स्वतन्त्रता चाहिए, मुझे मेरा हिन्दुस्तान काफी है। और अगर हिन्दुस्तान मेरी बातको पूरी तरह समझ ले तो आज स्वतन्त्रता आ सकती है।

आप लोगोंने सरकारके साथका पत्र-व्यवहार पढ़ा होगा। भूख और भीख तो बढ़ती ही जाती है। हिन्दुस्तानसे करोड़ों रुपये बाहर जा रहे है। कुछ लोग लाखों कमाते हैं। मगर वह लाखों कहाँसे आते है? इंग्लैण्ड और अमेरिकासे नही। गरीबो की जेबसे। मैं अर्थशास्त्री हूँ। मगर किताबका नही। मै हिन्दुस्तानके दर्दको पहचाननेवाला हूँ। हिन्दुस्तानकी भूख और भीख चन्द आदमियोंको खिलाकर आप क्या मिटानेवाले थे? हिन्दुस्तानमें सात लाख देहात कहे जाते है। उनमें से कई तो नाममात्र रह गये हैं। उनका हिसाब किसके पास है? मै देहाती हूँ। मैं देखकर पहचान सकता हूँ कि यहाँपर देहात था। वह कहाँ गया? देहाती कहाँ गये? अगर इसमें कोई शंका उठावे तो मैं उनके साथ घूमकर उन्हें यह सब दिखा सकता हूँ। उसके लिए मेरे शरीरमें शक्ति भी ईश्वर भेज देगा। बंगाल, कर्नाटक और दूसरे स्थानोंपर अगणित लोग बीमारी और भूखसे मर रहे है। उनका हिसाब तो सरकार के दफ्तरोंमें दिखाई देता है। वह तो यत्किंचित् होते हुए भी हमें चौंका देता है। मगर हिन्दुस्तानके देहातोके विस्तृत सत्यानाशके सामने तो ये बिलकुल तुच्छ है। यह सत्यानाश क्यो? क्योंकि गरीबोका खून चूसा जा रहा है। जो कोई एक निवाला भी आवश्यकतासे अधिक लेता है वह गरीबोंका खून चूसता है। इंग्लैण्ड और अमेरिकामें जो धन जाता है वह आपका नही है, गरीबोंका है। इसका निवारण क्या है? हिन्दुस्तानका खून चूसनेवालोंका सामना करना। पापके सामने असहयोग करना। हमारे पास सबसे बड़ा शस्त्र अहिंसा है वह किस चिड़ियाका नाम है? पशु है या पक्षी है? कार्यरूपमें परिणित होने पर सविनयभंग और असहयोगका रूप लेता है। सविनयभंग जल्द [असर करनेवाला] शस्त्र है। हरएक उसे इस्तेमाल नही कर सकता। उसके लिए तालीम चाहिए। हृदयबल चाहिए। वरना यह बेकार है। मगर असहयोगका प्रयोग हरएक कर सकता है। असहयोगके तालीम क्षेत्र मैं बता चुका हूँ। असहयोगकी प्रवृत्ति को आपने छोड़ा न होता तो आज निराशाका यह वातावरण न होता।

मुझपर एक ओरसे उत्साहसे भरे हुए पत्र आते है, तो दूसरी ओरसे निराशामें डूबे हुए भी आते हैं। कई कांग्रेसवाले भी लिखते है हमें कुछ तो करना चाहिए।

भुखमरीके सम्बन्धमें क्या हम सरकारके साथ सहयोग करें? किसी तरह इस डेड-लॉकको तो मिटाना चाहिए। मैं सरकारकी भाषा इस्तेमाल करके कहता हूँ कि डेडलॉक है कहाँ? सरकार हमारे साथ नहीं खेलती तो न खेले। मुल्क तो हमारा है ना? हम उनकी मदद न करें तो वह एक दिनमें बैठ जाये। मगर हम उनके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। पैसेके खातिर, दरमाहीके खातिर। जो लोग जालमें घुसते हैं उनके कारण सबको सहन करना पड़ता है। मगर सहन करनेके लिए तो हम पैदा हुए हैं। हमारी सहनशक्ति क्षीण नहीं होनी चाहिए। कई लोग मानते हैं कि सरकारके पाससे तीन सौ का दरमाया लेकर उसमें से दो सौ नब्बे गरीबोंको दे दिया तो गरीबोंकी सेवा की है। मगर यह सच्ची बात नहीं है। जो आदमी सरकारके साथ असहयोग करके बाकीके दस रुपये भी छोड़ देता है और भूखोंके साथ भूखा मरना पसन्द करता है, वह गरीबोंकी सबसे बड़ी सेवा करता है।

इससे ज्यादा मार्गदर्शन मैं आज नहीं करा सकता। मैंने जो-कुछ कहा है, उसे पूरी तरह समझकर आप चलें तो आपका रास्ता साफ है। विगतोंमें उतरने की आज मेरी शक्ति नहीं है। अगस्तका प्रस्ताव तो पड़ा ही है। उसमें से मैं एक अल्पविराम भी हिला नहीं सकता, हिलाना चाहता भी नहीं। आप लोग भी वर्किंग कमेटीके बिना वह कर नहीं सकेंगे। उस प्रस्तावके अन्तिम वाक्यमें आपके लिए सुनहरा मार्गदर्शन है। नेताओंकी गिरफ्तारीके बाद हरएक कांग्रेसवाला अपना सरदार है। कैद सिर्फ दो चीजोंकी है — सत्यकी और अहिंसाकी मर्यादा। आज तो आप एक-दूसरेसे मिलकर सलाह-मशविरा कर सकते हैं। मगर वास्तवमें उसकी भी आवश्यकता नहीं। बड़े शास्त्रार्थकी भी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता सिर्फ एक ही चीज की है। 'न' करना सीखना। लॉर्ड विलिंग्डन कहा करते थे कि "आप सब 'हाँ, साहब' करनेवाले हैं।" उसे छोड़ना होगा। मेरा हाथ पकड़कर कोई मेरे सिरपर रखकर मुझसे सलामी करावे तो वह सलामी नहीं है। और बात तो यह है कि अगर मुझमें बल हो तो मेरा हाथ पकड़कर भी कोई मुझसे वह करा नहीं सकता। मेरा हाथ हट जायेगा। हमारी इच्छाके विरुद्ध कोई हमसे कुछ भी करा नहीं सकता; हमारी इच्छाके विरुद्ध कोई हमें गुलाम रख नहीं सकता।

महाराष्ट्रके कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके साथ महात्मा गांधीकी बातचीत

२२१. पत्र : अरुणा आसफ अलीको

पूना
३० जून, १९४४

चि० बेटी अरुणा,[1]

अभी-अभी तुम्हारा पत्र पढ़ा है। तुम्हारी अवस्थाके बारेमें सोचकर मेरा मन व्याकुल हो उठा है। मैं मानता हूँ कि मैं किसीसे भी कोई ऐसा काम करने को नही कह सकता जिससे उसके स्वाभिमानको चोट पहुँचती हो — तुमसे तो और भी नही।[2] अगर तुम आत्म-समर्पण करोगी तो अपनेको और अपने देशको ऊँचा उठाने के लिए करोगी। वह समर्पण तुम्हारी दुर्बलतासे नही, बल्कि तुम्हारी शक्तिसे उद्-भूत होगा। यह संघर्ष रोमांचक घटनाओं और वीरतासे परिपूर्ण रहा है। तुम उसकी केन्द्रीय पात्र हो। तुम इतनी नजदीक हो, इसलिए तुमसे मिलकर बड़ी खुशी होगी। इसलिए आ सको तो आ जाओ। यदि न आ सको तो मेरी सलाह यह है: यदि तुम्हें यह नही लगता कि आत्म-समर्पण बेहतर रास्ता है तो मैं नही चाहता कि तुम आत्म-समर्पण करो। मैं तो यह मानने लगा हूँ कि अहिंसाके प्रयोगमें गोपनीयता पाप है। लेकिन इस सिद्धान्तका पालन यान्त्रिक रीतिसे नही किया जा सकता। मैं करोड़ों मूक और पद-दलित जनोके लिए और उन्हीके नामपर काम कर रहा हूँ। उन्हें गोपनीयताकी कलाका मेरी ही तरह कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए क्या सही है, यह तो सबसे अच्छी तरह तुम ही तय कर सकती हो। और क्या ८ अगस्त, १९४२ के उस महान प्रस्तावके आखिरी वाक्यमें कांग्रेसका भी अन्तिम सन्देश यही नहीं है? हर कांग्रेसजन खुद कांग्रेसके सन्देशका वाहक है और हर कांग्रेसी स्त्री-पुरुषको उसका अमल, सत्य और अहिंसाके दायरेमें रहते हुए, अपनी इच्छानुसार करना है। मेरे बाहर रहने से मुझे निर्देश देने का अधिकार नहीं मिल गया है। इस बारीकीमें न भी जायें तो भी मुझे सचमुच नहीं मालूम कि मैं तुम्हारा मार्ग-दर्शन कैसे करूँ।

१. यह देवनागरीमें है।

२. **महात्मा गांधी — द लास्ट फेज,** जिल्द १, भाग १, पृ० ४०-४१ से ज्ञात होता है कि भूमिगत कार्यकर्ताओंके साथ गांधीजी की चर्चा (देखिए परिशिष्ट १४) का परिणाम यह हुआ कि ऐसे कार्यकर्ताओंने या तो आत्म-समर्पण कर दिया था खुलेआम सविनय अवज्ञा करके अपनेको गिरफ्तार करवा दिया। लेकिन अरुणा आसफ अली तथा अच्युत पटवर्धन अपने मनको ब्रिटिश सत्ताधारियोंके आगे आत्म-समर्पणके लिए तैयार नहीं कर पाये। बादमें गांधीजी की रायका खयाल करके पटवर्धनने तो भूमिगत प्रवृत्तियोंसे अलग हो जाने का फैसला किया, किन्तु अरुणा आसफ अली बागी बनी रहीं। अन्तमें जब १९४६ के आरम्भमें दोनोंके नामके वारंट रद्द हो गये तब दोनों बाहर आये।

ईश्वर ही तुम्हारा एकमात्र मार्ग-दर्शक हो और तुम उसीके आदेशका पालन करो। हाँ, इतना मैं वादा करता हूँ: तुम कुछ भी करो, मैं तुमपर फतवा नहीं दूँगा।

शेष अगर मिले तो।

बापूका ढेर-सा प्यार

[अंग्रेजीसे]
लिंक, ६-१०-१९६८ में प्रकाशित अनुकृतिसे

२२२. तार: बृजलाल नेहरूको

१ जुलाई, १९४४

बृजलाल नेहरू
श्रीनगर (कश्मीर)

तार मिला। चिन्ता न करें। लिख रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२२३. भाषण: पूनामें[1]

१ जुलाई, १९४४

गांधीजी ने कहा, जब मैंने नजरबन्दी कैम्पमें अखबारोंमें यह समाचार देखा कि मुझे न्यासका अध्यक्ष बनाया गया है तो मुझे आश्चर्य हुआ, लेकिन फिर यह सोचकर मनको मना लिया कि मुझे अध्यक्ष बनाने के प्रस्तावके पीछे विचार शायद यह रहा हो कि रिहा होने पर मैं कोषका उद्देश्य निर्धारित करने और समय-समयपर उसके प्रयोगका नियमन करने में न्यासियोंका मार्ग-दर्शन करूँगा। मेरा यह विश्वास, यह देखकर और पक्का हो गया कि इस योजनाके मुख्य उद्भावक नारणदास गांधी थे, जिन्होंने काठियावाड़में हाथ-कताई आन्दोलन और उससे जुड़ी प्रवृत्तियोंके प्रसारमें सहायता देने के लिए मुख्यतः काठियावाड़से ही उगाही गई थैली मुझे भेंट करने का दस्तूर आरम्भ कर दिया है। लेकिन मैं नियमित रूपसे न्यासकी बैठकमें शरीक होने और उसके रोजमर्राके काममें मार्ग-दर्शन देने की जिम्मेदारी नहीं उठा सकता। असली अध्यक्ष तो उपाध्यक्ष सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास हैं।

१. गांधीजी ने कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक कोषकी एक बैठककी अध्यक्षता करते हुए यह भाषण गुजरातीमें दिया था।

अभी यह कोष रूपाकृति ही ग्रहण कर रहा था कि कस्तूरबाका निधन हो गया। एक राष्ट्रीय स्मारकका विचार जनताके मनमें घर कर गया, और उसके उद्भावकने थैलीको स्मारकके साथ जोड़कर और उसे उसके साथ एकीकृत करके जनताके इस उत्साहका उत्तर दिया। इस प्रकार वर्तमान कोषकी स्थापना हुई। कस्तूरबा एक सरल महिला थीं — ग्राम-जीवनमें अनुरक्त, वस्तुतः ग्रामीणोंके बीच रहने और उनकी सेवा करनेवाली। इस कोषका उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं और बच्चोंका कल्याण है, जो उचित ही है। अच्छा होगा कि न्यासी और दाता भारत के असंख्य गाँवोंकी महिलाओं और बच्चोंके कल्याणके सम्बन्धमें मेरा पूरा विचार जान लें। मेरी कल्पनाके कल्याण-कार्यमें गाँवोंकी महिलाओं और बच्चोंके सम्पूर्ण जीवनका समावेश है। इसलिए इसमें प्रसवादि, स्वास्थ्य-सफाई रोगोंका इलाज और शिक्षा सब-कुछ आ जाता है। शिक्षाका मतलब है हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी बुनियादी शिक्षा। इसलिए इस कोषमें इस बातके लिए गुंजाइश नहीं है कि इसका उपयोग शहरों और नगरोंमें या विदेशोंमें अथवा भारतके विश्वविद्यालयोंमें भी दी जानेवाली शिक्षाके निमित्त हो। आप इस बातको सहज ही स्वीकार कर लेंगे कि यद्यपि ७५ लाखकी राशि किसी स्मारकके लिए काफी बड़ी प्रतीत होती है, तथापि उसकी जिस व्याप्तिका संकेत मैंने दिया है उसको देखते हुए यह उपहासास्पद रूपसे न्यून है। और अगर कोषकी व्याप्तिके सम्बन्धमें न्यासी मुझसे सहमत नहीं हैं तब तो मैं बिलकुल निकम्मा अध्यक्ष या मार्ग-दर्शक ही होऊँगा।

गांधीजी ने आगे कहा कि यह अफवाह भी उड़ी है कि मैंने कहा है, यह राशि केवल पूँजीपतियोंसे इकट्ठी की जानी चाहिए और सामान्य जनताको इसमें योग देने की कोई जरूरत नहीं है। यह कहना तो सत्यका उपहास है। जो प्रमुख लोग देहाती क्षेत्रोंमें पैसा उगाहने की व्यवस्था कर सकते हैं वे तो सीखचोंके अन्दर बन्द हैं। मैं स्वयं अक्षम हूँ। इसलिए मैं अपने धनी मित्रोंसे आशा करता हूँ कि वे अपना भरपूर योग देंगे। मैं तो ऐसा सोचनेतक की गलती नहीं कर सकता कि कांग्रेसी तथा अन्य-कार्यकर्त्ता निष्क्रिय बैठे रहें। यह स्मारक तो एक राष्ट्रीय स्मारक होगा, जिसके लिए प्रत्येक व्यक्तिसे, चाहे वह किसी भी राजनीतिक दलका क्यों न हो, भरसक प्रयास करने की आशा की जाती है। यदि चन्दा मात्र पूँजीपतियों तक ही सीमित रखा जाये तो यह स्मारक वास्तविक स्मारक नहीं होगा। सच तो यह है कि मृदुलाबहन, जो एक अत्यन्त सक्रिय सेविका हैं, गुजरातमें चन्दा इकट्ठा करने के बारेमें मुझसे सलाह लेने के लिए भी मिल गई हैं।

दादासाहब मावलंकर मुझसे कुछ चर्चा करने आये थे। हमारी जो बातचीत हुई उसके फैल जाने से एक निराधार किन्तु क्षम्य सन्देह उत्पन्न हो गया दीखता है। मैंने उनसे कहा था आपका धनवान लोगोंपर जितना प्रभाव है उतना और किसीका नहीं है, इसलिए आप तो उसी क्षेत्रमें कार्य करें। वे भी मेरे समान ही बीमार

आदमी हैं। मैं नहीं चाहता कि दादासाहब मावलंकर घर-घर घूमकर चन्दा इकट्ठा करने के कठिन काममें स्वास्थ्य गँवा बैठने का खतरा मोल लें। अभी भी कुछ कार्यकर्त्ता उपलब्ध हैं, जो आसानीसे इस कार्यका संयोजन कर सकते हैं।

यह तो बहुत ही खेदकी बात होगी कि स्मारकके ध्येयमें विश्वास रखनेवाले लोग इस गलतफहमीके शिकार हो जायें कि मैं तो पूँजीपतियोंके अलावा औरोंको इस स्मारकमें योग देने से अलग ही रखना चाहता हूँ, और इसलिए वे न अपने हिस्सेका चन्दा दें और न मित्रोंसे दिलवायें। वस्तुतः मैं इसे बड़ा शुभ लक्षण मानता हूँ कि सरकारने जिस व्यक्तिको नजरबन्दीका दण्ड दिया है उसकी दिवंगता पत्नीके स्मारकके निमित्त योग-दान देने में भारतके इतने सारे लखपती और करोड़पती लोग शरीक हो गये हैं और उन्होंने अपने इस कार्यसे होनेवाली किसी वास्तविक या काल्पनिक हानिके भयसे उससे मुँह नहीं मोड़ा हैं। अध्यक्ष होने के नाते मेरे लिए यह भारी सन्तोषकी बात है।

गांधीजी ने कहा कि बेशक मैं धनवान लोगोंको भी अपने मित्रोंमें गिनता हूँ। मुझे मालूम है कि ऐसे आलोचकोंकी कमी नहीं है जो धनवान लोगोंके साथ मेरे सम्बन्धको मेरी कमजोरीका चिह्न मानते हैं, जो एक सत्य और अहिंसाके पुजारीके लिए शोभनीय नहीं है। किन्तु इसके विपरीत, मैं इस सम्बन्धको तत्त्वतः अपनी अहिंसाका एक लक्षण मानता हूँ। पूँजीपतियोंके साथ मेरे इस सम्बन्धके पीछे क्या मंशा है, उससे मेरे अनेक मित्र भली-भाँति परिचित हैं। मैं उनसे अपने अनेक रचनात्मक कार्योंके लिए धन-राशि प्राप्त करता हूँ और इनमें से अनेक कार्य परम लोकोपकारी भी हैं। अखिल भारतीय चरखा संघ और ग्रामोद्योग संघ तथा हिन्दु-स्तानी तालीमी संघ द्वारा निर्धारित बुनियादी शिक्षा और इसी प्रकारके अन्य उद्देश्यों के लिए मैं जो माँग पेश करता हूँ उसे वे पूरा करते हैं। जहाँतक मुझे मालूम है, मेरे साथ सम्पर्क रखने में धनाढ्योंका कोई स्वार्थ नहीं सिद्ध होनेवाला है। उनके साथ मेरा सम्पर्क तो तभी स्थापित हुआ है जब वे लोग व्यवसायियोंके रूपमें अपनी सफलता सिद्ध कर चुके थे। पूँजीपतियोंको लाखों बेकारोंका मित्र या संरक्षक बनाना ही मेरा ध्येय नहीं है। मैं तो उन्हें ऐसा बनाना चाहता हूँ कि वे खुशी-खुशी जनताके साथ बाँटकर अपने धनका उपभोग करें।

गांधीजी ने आगे कहा, मैंने देखा है कि कुछ लोगोंको सन्देह है कि इस एकत्र राशिका उपयोग कहीं राजनीतिक क्षेत्रमें तो नहीं किया जायेगा। इस सम्बन्धमें मैं बेखटके यह आश्वासन दे सकता हूँ कि मेरा ऐसा कोई विचार नहीं है। अखिल भारतीय चरखा संघ तथा अभी-अभी मैंने जिन संस्थाओंका उल्लेख किया है उनका सूत्रपात कांग्रेस द्वारा अवश्य हुआ था, किन्तु उनमें कोई राजनीतिक पुट नहीं है।

श्री गांधीने यह भी कहा कि स्मारक-सम्बन्धी प्रवृत्तिका सूत्रपात कांग्रेस या किसी कांग्रेसीने नहीं किया है, बल्कि गैर-कांग्रेसियोंने किया है और विशुद्ध रूपसे लोकोपकारी हेतुसे प्रेरित होकर किया है। उदात्त अर्थमें कह सकते हैं कि कोई

भी हिन्दुस्तानी, चाहे वह राजनीतिके क्षेत्रमें हो या न हो, कोई महान् कार्य करेगा तो उसका कुछ-न-कुछ राजनीतिक महत्त्व तो बनेगा सही। इसमें मेरा मतलब साहित्य, विज्ञान और दर्शनके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले भारतीयोंकी प्रवृत्तियोंसे है।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-७-१९४४

२२४. पत्र : दिनशा मेहताको

३ जुलाई, १९४४

भाई दिनशा,

मकान देखे। मुझे गन्दे लगे। तुम्हें ध्यान देना चाहिए। उपचार-गृहोंमें गन्दगी हो, यह कैसे सहन किया जा सकता है? रोगियोंको भी इसका उपयोग करना सिखाना चाहिए। तुम्हारे सहायकोंको भी यह बात जाननी चाहिए। मजदूरोंके घर जरा भी अच्छे नहीं हैं। उनके घर सादेसे-सादे होने चाहिए, लेकिन ऐसे कि जिनमें हम खुद भी रह सकें। उनका पाखाना तो तुमने अपनी आँखों देखा और बदबू भी देखी। इस सुधारमें बहुत खर्च नहीं बैठेगा। इस सुधारको आप यहाँ आते ही हाथमें ले लो। रसोईघरमें भी सुधारकी गुंजाइश है। इस सबपर जबतक तुम खुद ध्यान नहीं दोगे, तबतक सुधार नहीं होंगे।

तुम्हारी प्रबन्ध-शक्ति मुझे बहुत भाई। संस्थामें अच्छी शान्ति है। कोई ऊँचा नहीं बोलता। तुम खुद भी मितभाषी और धीमा बोलनेवाले हो। आम तौरपर तो हम गला फाड़कर ही बोलते हैं।

नई योजनाके बारेमें जल्दी ही और लिखने की आशा रखता हूँ।

गुलबाईकी[2] सेवा याद आती रहती है।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. रिपोर्टमें यह भी कहा गया था कि गांधीजी के भाषणपर हुई चर्चाके उपरान्त "स्मारक कोषके उद्देश्यकी उनकी परिभाषाको सर्वसम्मतिसे स्वीकार कर लिया गया. . . और निश्चय किया गया कि . . . कोषके उद्देश्योंकी परिभाषावाले पूर्ववर्ती प्रस्तावको सुधारा जाये और उसके उद्देश्योंको ग्रामवासी स्त्री-समाज और बच्चोंके कल्याण तथा शिक्षणतक ही सीमित रखा जाये।"

२. दिनशा मेहताकी पत्नी

२२५. भेंट: स्टुअर्ट गेल्डरको–१[1]

४ [से ६] जुलाई, १९४४

मैं गांधीजी से ४ जुलाईको पंचगनीमें मिला। मैंने उनसे कहा: "मेरे सम्पादक भारतमें राजनीतिक गतिरोधका समाधान ढूँढ़ने में सहायता देना चाहते हैं। मैं दिल्ली गया था, किन्तु वहाँ निराश होना पड़ा। आशा है आप मुझे निराश नहीं करेंगे।" मैंने पूछा: "मान लें कि आपका वाइसरायसे मिलना हो तो आप उनसे क्या बात करेंगे?" उन्होंने फौरन उत्तर दिया:

मैं उनसे कहूँगा कि मैंने मुलाकातका समय मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें बाधा डालने के लिए नहीं, बल्कि मदद ही पहुँचाने के लिए माँगा है। किन्तु मैं कार्य-समितिके सदस्योंसे मिले बिना कुछ नही कर सकता, क्योंकि मै मानता हूँ कि अगस्त प्रस्तावके अनुसार मुझे जो अधिकार सौंपा गया था, मेरी गिरफ्तारीके साथ ही उसका अन्त हो गया। मेरे रिहा होने से मुझे वह फिर मिल गया, ऐसी बात नही। आपको मेरे निजी विचारोंमें कोई दिलचस्पी नही हो सकती, किन्तु यदि मैं प्रतिनिधिके रूपमें बोलूं तो आप अवश्य दिलचस्पी लेंगे।

बीचमें ही मैंने उनसे कहा: "वाइसराय और अन्य सभी लोगोंको आपके विचारोंमें दिलचस्पी है, क्योंकि भारतके जन-सामान्यपर आपका प्रभाव है।" उन्होंने उत्तर दिया:

मैं तो लोकतन्त्रवादी हूँ और अपने उस प्रभावका मैं केवल उस संघटनके जरिये ही उपयोग कर सकता हूँ जिसके निर्माणमें मेरा हाथ रहा है।

मैंने फिर बात काटते हुए कहा: "आपको कार्य-समितिसे मिलने की अनुमति देने से पहले वाइसराय जानना चाहेंगे कि कार्य-समितिके सदस्योंके सम्मुख आप अपने क्या विचार रखेंगे।" उन्होंने कहा:

इतिहासकी पुनरावृत्ति नही होती। १९४२ में जो परिस्थिति थी वह आज नही है। पिछले दो वर्षोंमें विश्व बहुत बदल गया है। पूरी स्थितिपर नये सिरेसे विचार करना होगा। इसलिए कार्य-समितिसे मेरी चर्चाका प्रयोजन यह जानना है कि रिहाईके पश्चात् मुझे जो स्थितिकी जानकारी मिली है उसपर उसकी क्या प्रतिक्रिया है।

१. यह न्यूज क्रॉनिकल में, जिसके प्रतिनिधि गेल्डर थे, गांधीजी द्वारा प्रकाशनार्थ तैयार किये गये "विवरण" के रूपमें दिनांक "पंचगनी, १२ जुलाई" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। यह भेंट-वार्ता तीन दिन चली थी; देखिए "तार: एस० सदानन्दको", १२-७-१९४४ और "वक्तव्य: समाचार-पत्रोंको", १२-७-१९४४।

सरकारने १९४२ में जिस सूत्रको तोड़ दिया था, मुझे उसीसे शुरुआत करनी है। मुझे पहले सरकारसे बातचीत करनी थी और उसमें असफल होने के बाद यदि आवश्यक समझता तब सत्याग्रह करना था। मैं वाइसरायसे विनती करना चाहता हूँ, और वह मैं तभी कर सकता हूँ जब मुझे कार्य-समितिके विचारोंकी जानकारी हो जाये।

किन्तु मैं आपको यह बता दूं कि हम सबके बीच सामान्य रूपसे यही चर्चा है कि व्यक्तिगत रूपसे वाइसराय कुछ भी चाहें, उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें कोई अधिकार नहीं है। श्री चर्चिल किसी प्रकारका समझौता नहीं चाहते। यदि उन्होंने जो कहा है उसकी रिपोर्ट सही है तो वे मुझे कुचल डालना चाहते हैं।[1] और उन्होंने कभी उस रिपोर्टका खण्डन भी नहीं किया है। मेरी दृष्टिसे देखें तो इसकी खूबसूरती और उनकी दृष्टिसे देखें तो इसका खेदपूर्ण पहलू यह है कि सत्याग्रहीको कोई कुचल नहीं सकता; क्योंकि अपने शरीरको तो वह स्वेच्छासे बलि-वेदीपर अर्पित कर देता है और फलतः उसकी आत्मा मुक्त हो जाती है।[2]

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-७-१९४४

२२६. भेंट: स्टुअर्ट गेल्डरको–२[3]

४ [से ६][4] जुलाई, १९४४

मैं महात्मा गांधीसे ४ जुलाईको पंचगनीमें मिला। मैंने उनसे कहा: "मेरे सम्पादक भारतमें राजनीतिक गतिरोधका समाधान ढूंढ़ने में सहायता देना चाहते हैं। मैं दिल्ली गया था, किन्तु वहाँ निराश होना पड़ा। आशा है, आप मुझे निराश नहीं करेंगे।" मैंने पूछा: "मान लें आपका लॉर्ड वैवेलसे मिलना हो तो आप उनसे किस प्रकार बातचीत शुरू करेंगे? आप उनसे क्या कहेंगे?"

१. *दिस वाज बापू*, पृ० १३९, में आर० के० प्रभुने इस कथनकी पृष्ठभूमिपर प्रकाश डालते हुए बताया है कि २३ फरवरी, १९३१ को वेस्ट एसेक्स यूनियनिस्ट एसोशिएशनकी कौंसिलके समक्ष गांधी-अर्विन वार्ताका उल्लेख करते हुए अपने भाषणमें चर्चिलने यह कहा बताते हैं: "इनर टेम्पलके वकील श्री गांधीको, जो अब एक राजद्रोही फकीर बन गये हैं — जैसे कि पूर्वी देशोंमें बहुत देखनेको मिलते हैं, सम्राट्के प्रतिनिधिसे समानताके स्तरपर वार्ता करने के लिए अधनंगी अवस्थामें वाइसराय भवनकी सीढ़ियाँ चढ़ते देखना बहुत चिन्ताजनक और साथ ही जुगुप्सामय बात है, क्योंकि इसके साथ ही दूसरी ओर वे चुनौती-भरे सविनय अवज्ञा आन्दोलनका संगठन और संचालन भी कर रहे हैं। मैं इन वार्ताओंके खिलाफ हूँ।... सच तो यह है कि गांधीवाद और जिन चीजोंका वह प्रतिनिधित्व करता है उन सबसे जूझना होगा और उन्हें कुचल देना होगा।"

२. देखिए "पत्र: विन्स्टन चर्चिलको", १७-७-१९४४ भी।

३ और ४. यह भेंट-वार्ता "सेकण्ड स्टेटमेंट" शीर्षकसे गांधीजीवाले विवरणके बाद प्रकाशित हुई; देखिए पिछला शीर्षक।

उन्होंने फौरन उत्तर दिया, मैं वाइसरायसे कहूँगा कि मैंने मुलाकातका समय मित्र-देशोंके लिए बाधा उपस्थित करने के लिए नहीं बल्कि उन्हें मदद पहुँचाने के लिए माँगा है, और इसीलिए कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंसे मिलने की भी अनुमति माँगी है। उन्होंने कहा, मुझे कांग्रेसकी ओरसे कुछ भी करने का अधिकार नहीं है। सत्याग्रहके नियमोंके अनुसार सत्याग्रहीके गिरफ्तार होते ही उसे सौंपे हुए अधिकारोंका खुद ही अन्त हो जाता है। इसी कारण मेरा कार्य-समितिके सदस्योंसे मिलना आवश्यक है।

मैंने कहा : "चूँकि आप अगस्तवाले प्रस्ताव और सत्याग्रह-रूपी अस्त्रके कट्टर समर्थक हैं इसलिए वाइसरायको लग सकता है कि कार्य-समितिके सदस्योंसे आपके मिलने का एक ही परिणाम होगा, और वह यह कि वे दोबारा आपको कांग्रेसके नाम पर सत्याग्रह चलाने का अधिकार सौंप देंगे, और इसका नतीजा यह होगा कि मुलाकात करके बाहर आते ही आप वाइसरायपर जैसे पिस्तौल तानकर कहेंगे : 'ऐसा करो, नहीं तो मैं सत्याग्रह शुरू करता हूँ।' और उससे तो स्थिति आजसे भी बदतर हो जायेगी।" गांधीजी ने जवाब दिया :

इस सन्देहके पीछे मेरे इस कथनके प्रति पूरा अविश्वास झलकता है कि मैं अंग्रेजोंका मित्र हूँ और सदा मित्र ही रहा हूँ। इसलिए युद्धके दौरान मैं सविनय अवज्ञा-रूपी अस्त्रका प्रयोग कभी नही कर सकता। हाँ, अगर इसके लिए कोई बहुत गम्भीर कारण हो — जैसे भारतके स्वतन्त्रताके स्वाभाविक अधिकारको अवरुद्ध करना — तो बात और है।

मेरा अगला प्रश्न था : "मान लें कि कार्य-समितिके सदस्य कल ही जेलसे रिहा हो जायें और सरकार भारतकी माँग पूरी करने से इनकार कर दे तो क्या आप सविनय अवज्ञा शुरू कर देंगे?" गांधीजी ने उत्तर दिया :

यदि कार्य-समितिके सदस्य रिहा हो जायें तो वे परिस्थितिका लेखा-जोखा लेंगे और आपसमें तथा मेरे साथ उसपर चर्चा करेंगे। इतना तो मैं आपको बतला दूँ कि आज सविनय अवज्ञा करने का मेरा कोई इरादा नही है। मैं देशको वापस १९४२ की स्थितिमें नही ले जा सकता। इतिहासको दोहराना असम्भव है। यदि मेरी इच्छा हो तो आज भी जनतापर मेरा जो प्रभाव माना जाता है उसका सहारा लेकर मैं सत्याग्रह शुरू कर सकता हूँ। किन्तु ऐसा करना तो ब्रिटिश सरकारको परेशान करना होगा और वह मेरा ध्येय नही है।

लेकिन जब जनता कष्ट भोग रही हो, उस समय कार्य-समिति भी निष्क्रिय नही बैठी रहेगी। मेरा पक्का विश्वास है कि जबतक सत्ता और उत्तरदायित्व अंग्रेजों के हाथोसे हटकर भारतीयोके हाथो में नही आ जाता तबतक हम स्थितिका पूरी तरह सामना और जनताका कष्ट-निवारण नही कर सकते। जबतक यह परिवर्त्तन नही होता तबतक यदि कांग्रेसवाले जनताके कष्ट दूर करने के प्रयत्न करेंगे तो अधिक सम्भावना यही है कि उनका सरकारके साथ झगड़ा हो जायेगा।

मैंने बीचमें उनको टोकते हुए कहा: "आजकी स्थितिको देखते हुए मुझे तो विश्वास नहीं होता कि सत्ताका हस्तान्तरण इस समय होगा, यानी जबतक युद्ध चालू है तबतक सरकार स्वाधीनताकी माँग स्वीकार नहीं करेगी।"

गांधीजी ने उत्तर दिया कि १९४२ में उन्होंने जो माँग की थी और आज जो माँग करेंगे उसमें अन्तर है। आज तो वे ऐसी राष्ट्रीय सरकारसे सन्तोष मानेंगे जिसका नागरिक प्रशासनपर पूर्ण नियन्त्रण हो। १९४२ में ऐसा नहीं था। इस सरकारकी रचना निर्वाचित केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्यों द्वारा चुने हुए व्यक्तियोंको लेकर होगी। "इसका मतलब होगा युद्ध-कालमें उपर्युक्त शर्तके साथ, भारतकी स्वाधीनता की घोषणा।"

१९४२ की स्थितिकी तुलनामें यह स्थिति मुझे ज्यादा अच्छी लगी। मैंने उनसे पूछा कि क्या रेल, बन्दरगाह इत्यादि सेनाके नियन्त्रणमें रहेंगे।

गांधीजी ने उत्तर दिया कि राष्ट्रीय सरकार सेनाको दरकार सभी सुविधाएँ देगी। लेकिन नियन्त्रण राष्ट्रीय सरकारका ही रहेगा। अध्यादेशोंके जरिये शासनके स्थानपर राष्ट्रीय सरकारका सामान्य प्रशासन आ जायेगा।

मैंने पूछा, "क्या वाइसराय रहेंगे?" [गांधीजी ने उत्तर दिया:]

हाँ, किन्तु उनकी स्थिति इंग्लैण्डके राजा-जैसी ही होगी और जिम्मेदार मन्त्रियों की मन्त्रणापर वे चलेंगे। सभी प्रान्तोंमें स्वभावतः जन-निर्वाचित सरकारकी पुनः स्थापना हो जायेगी, और इस प्रकार प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनों सरकारें भारतकी जनताके प्रति उत्तरदायी होंगी। जहाँतक सैनिक कार्रवाइयों का सवाल है, वाइसराय तथा प्रधान सेनापतिको उनपर पूरा-पूरा नियन्त्रण प्राप्त होगा। किन्तु राष्ट्रीय सरकारके लिए सेनासे सम्बन्धित मामलोंमें भी सलाह देना और उनकी आलोचना करना सम्भव होना चाहिए।

इस प्रकार प्रतिरक्षा विभाग राष्ट्रीय सरकारके अधीन होगा, जिसकी देशकी रक्षा में सच्ची रुचि होगी, और जो नीति-निर्धारणमें भी बहुत सहायता कर सकती है।

मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ भारत-भूमिपर अपनी कार्रवाई जारी रख सकेंगी। मैं जानता हूँ कि इसके बिना वे जापानको पराजित नहीं कर सकते।

गांधीजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि मित्र-राष्ट्रोंकी भारत-भूमिपर होनेवाली फौजी कार्रवाईयोंका खर्च भारत नहीं उठायेगा। मैंने पूछा: "यदि राष्ट्रीय सरकार बनी तो क्या आप कांग्रेसको उसमें भाग लेनेकी सलाह देंगे?"

गांधीजी ने इसकी हामी भरी। मैंने पूछा: "इसका मतलब तो यह हुआ कि यदि राष्ट्रीय सरकार बनी तो कांग्रेस उसमें शामिल होगी और युद्ध-कार्योंमें सहायता देगी। तब आपकी क्या स्थिति होगी?" [गांधीजी ने उत्तर दिया:]

मैं तो पूर्ण रूपसे शान्तिका प्रेमी हूँ। यदि आजादीकी बात पक्की हो जाये तो मैं सम्भवतः कांग्रेसका सलाहकार नहीं रहूँगा और युद्धका पूर्ण विरोधी होनेके नाते मुझे अलग हट जाना होगा। किन्तु मैं राष्ट्रीय सरकार या कांग्रेसका किसी प्रकारका प्रतिरोध नहीं करूँगा। मेरा सहयोग यही होगा कि मैं भारतके जन-जीवनकी समरसतामें

कोई व्यवधान न पैदा करूँ। मैं इसी आशासे काम करूँगा कि मेरा/इतना प्रभाव हमेशा रहेगा कि भारतका मानस शान्तिवादी बना रहे और सभी जातियो और रंगोके लोगोके बीच भाईचारा रहे।

इसके बाद मैंने पूछा: "मान लीजिए कि असैनिक और सैनिक अधिकारियोंके बीच कोई विवाद हो जाये तो उसका निपटारा किस प्रकार होगा? उदाहरणार्थ, असैनिक अधिकारी २००० टन खाद्यान्न रेल द्वारा भेजना चाहते हों और सैनिक अधिकारी युद्ध-सामग्री भेजने के लिए रेलका उपयोग करना चाहते हों तो आप क्या सलाह देंगे?" उत्तरमें गांधीजी ने कहा:

मैंने पहले ही कहा है कि ऐसी बातोंपर मुझे सलाह देने की कोई आवश्यकता नही होगी। लेकिन मान लीजिए कि ऐसी आवश्यकता हो तो उस हालतमें तो सेनाको प्राथमिकता देने की जरूरतकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। किन्तु मान लें कि सेना जनताकी जानकी परवाह न करते हुए कुछ ठिकानोंको बमसे उड़ाना चाहे या युद्धाभ्यास करना चाहे तो मैं साफ मना कर दूँगा।

बात यह है कि यदि पारस्परिक विश्वास हो तो ऐसी कठिनाइयाँ उठेंगी ही नही और यदि उठी भी तो आसानीसे उनका समाधान हो जायेगा। यदि विश्वास न हो तो मैं कुछ भी नही कर सकता। यदि मुझपर विश्वास न रखा जाये तो मैं मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके लिए काम नही कर सकूँगा। और यदि विश्वास हो तो सुगमतासे कोई समझौता हो जायेगा। भारतकी आजादीसे एशियाई तथा अन्य शोषित देशोंको आशा बँधेगी। इस समय नीग्रो लोगोंका कोई भविष्य नही है। लेकिन भारतकी आजादीसे उनमें आशाका संचार होगा।

अन्तमें मैंने पूछा: "हिन्दू-मुस्लिम मतभेदोंका क्या होगा?" गांधीजी बोले:

यदि अंग्रेजोंकी नीयत नेक हो तो कोई अड़चन नही आयेगी।

गांधीजी ने बातचीतके अन्तमें कहा:

हममें से अधिकांश लोगोंकी यही धारणा है कि व्यक्तिगत रूपसे वाइसरायकी चाहे जो इच्छा हो, उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें कोई अधिकार नही है। श्री चर्चिल कोई समझौता नही चाहते। उन्होंने जो कहा है उसकी रिपोर्ट यदि सही है तो वे मुझे कुचल डालना चाहते हैं।[1] उन्होने उस रिपोर्टका कभी खण्डन भी नही किया है। और मेरी दृष्टिसे देखें तो इसकी खूबसूरती तथा उनकी दृष्टिसे देखें तो इसका खेदपूर्ण पहलू यह है कि सत्याग्रहीको कोई कुचल नही सकता, क्योंकि अपने शरीरको तो वह सहर्ष बलि-वेदीपर अर्पित कर देता है, और फलत: उसकी आत्मा मुक्त हो जाती है।

स्थितिको स्पष्ट करनेवाले अपने वक्तव्यके दौरान महात्मा गांधीने कहा कि अंग्रेज पत्रकारसे अपनी पूरी बातचीतके दौरान वे इस बातपर खास जोर देते रहे

१. देखिए पृ० ३७०, पा० टि० १।

कि वे जो-कुछ कह रहे थे, व्यक्तिगत हैसियतसे और उन बातोंसे कांग्रेसको किसी भी तरह जोड़े बिना कह रहे थे। उन्होंने यह भी कहा :

मैं नहीं कह सकता कि आज मैं कार्य-समितिके सदस्योंके विचारोंका कहाँतक प्रतिनिधित्व करता हूँ। और जहाँतक हिन्दू-मुस्लिम फार्मूलेका सम्बन्ध है, जिसका कि इन दो वक्तव्योंसे कोई सरोकार नहीं है, मै एक हिन्दूके नाते नहीं बोला हूँ। मैं सबसे पहले और सबसे अन्तमें भी एक भारतीयके नाते ही बोला हूँ। मेरा हिन्दुत्व मेरा अपना है — मैं खुद मानता हूँ कि उसमें सभी धर्मोंका समावेश है। इसलिए हिन्दुओंके प्रतिनिधिके रूपमें बोलने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। और मै जन-मानसके प्रति संवेदनशील हूँ तथा जनता मुझे सहज संबुद्धिसे ही जान लेती है, यह तो ऐसा तथ्य है जिसके सम्बन्धमें कोई विवाद ही नही हो सकता, लेकिन मैंने अपने पक्षको इस आधारपर खड़ा नही किया है।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-७-१९४४

२२७. पत्र : रामनाथनको

पंचगनी

५ जुलाई, १९४४

प्रिय रामनाथन,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यदि अखिल भारतीय चरखा संघके किसी सदस्यने सदस्यकी हैसियतसे आन्दोलनमें भाग लिया तो वह संघके संविधान और मेरे निर्देशके विरुद्ध था। मेरा निर्देश था कि भाग लेने का विचार रखनेवाले लोग सदस्यतासे इस्तीफा दे दें।

जहाँतक तोड़-फोड़ इत्यादिका सवाल है, मै उनके विरुद्ध तथा गोपनीयताके विरुद्ध भी अपना मत व्यक्त कर चुका हूँ।[2]

तुमने जिन खास बातोंका उल्लेख किया है, उनके सम्बन्धमें मैं चाहूँगा कि यदि मैं सेवाग्राम पहुँच जाऊँ और इस बीमारीसे मुक्त घोषित कर दिया जाऊँ तो तुम सेवाग्राम आकर मुझसे मिलो।

तुम्हारा,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२५८) से। सी० डब्ल्यू० ३०७५ से भी

१. देखिए "भेंट : समाचारपत्रोंको", १२-७-१९४४ भी।

२. देखिए "पत्र : अन्नदा चौधरीको", पृ० ३२६; और परिशिष्ट १३ तथा १४ भी।

२२८. पत्र : थैकर एण्ड कम्पनी और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसको — मसौदा[1]

५ जुलाई, १९४४

बहुत अधिक सोच-विचार करने के बाद ही मैंने अपनी रचनाओंका एक न्यास बनाने की घोषणा की थी। मैंने देखा था कि न्यासके अभावमें टॉल्स्टॉयकी रचनाओका किस तरहसे दुरुपयोग किया गया। इस तरह मैंने उस दोषको दूर करने के साथ ही स्वत्वाधिकार अर्थात् अपने लेखनसे व्यक्तिगत लाभ उठाने की वृत्तिके प्रति अपनी अरुचिके पीछे निहित विचारकी भी रक्षा कर ली है। इसके पीछे विचार यह भी था कि प्रकाशक लोग मेरी रचनाओका अनुचित लाभ न उठायें अथवा जाने-अनजाने उन्हे तोड़ा-मरोड़ा न जाये या वे गलत रूपमें पेश न की जायें। मैंने नवजीवन ट्रस्टसे अनुरोध किया है कि वह आपको श्री प्रभुके सकलनको प्रकाशित करने की अनुमति और माँगके अनुसार उसके संस्करणोंको बार-बार प्रकाशित करने का अधिकार दे दे, लेकिन इस शर्तपर कि आप पुस्तकका मूल्य कमसे-कम रखेंगे, जिससे आपको पाँच प्रतिशतसे ज्यादा लाभ न हो और उसमें से भी आधी रकम श्री प्रभुको उनके परिश्रमके लिए मानदेयके रूपमें दी जायेगी। प्रत्येक संस्करणकी एक सौ प्रतियाँ नवजीवन ट्रस्टको मुफ्त दी जानी चाहिए। नवजीवन ट्रस्टको भारतमें — इसमें बर्मा और लंका भी शामिल है — बिक्रीके लिए (अंग्रेजी अथवा किसी भी भारतीय भाषामें) सस्ता संस्करण प्रकाशित करने का अधिकार होगा। यदि उसमें संयोगवश कोई लाभ होगा तो वह आपकी पेढ़ी, श्री प्रभु और नवजीवन ट्रस्टके बीच बराबर-बराबर बाँट दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
संस्मरणो, पृ० १६४-६५

१. यह अगले शीर्षकका संलग्न पत्र था।

२२९. पत्र : गणेश वि० मावलंकरको

पंचगनी
५ जुलाई, १९४४

भाई मावलंकर,

भाई प्रभुके साथ मेरी बातचीत[1] हुई। उन्होंने स्वार्थसे वशीभूत होकर कुछ किया है, ऐसा मुझे नही लगा। उनके द्वारा लिखे गये पत्रोंको मैं देख गया। हमने जो पत्र उन्हें भेजे थे उनकी प्रतियाँ मेरे पास नहीं हैं। आने पर उन्हें देख जाऊँगा। लेकिन भविष्यके लिए उनकी कोई जरूरत नहीं है। इसलिए दोनों प्रकाशन-संस्थाओंको भेजे जानेवाले पत्रका मसौदा[2] मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। यदि यह तुम्हें स्वीकार हो तो उसके अनुसार पत्र लिख भेजूँ। यदि तुम कोई संशोधन करना चाहो तो बताना।

पुस्तकके आवरण पृष्ठपर लिखने के बारेमें मैं बातचीत कर रहा हूँ। इसमें यदि तुम्हें कुछ कहना हो तो कहना। ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकके नामके बारेमें विचार कर रहा हूँ। ऐसे विषयपर विचार करने में तुम कदाचित् समय नष्ट न करना चाहो।

कस्तूरबा स्मारक कोषके सम्बन्धमें जो-कुछ हुआ है उसपर यदि तुम कुछ सुझाव अथवा टीका करना चाहो तो करना। दस ट्रस्टियोंके नामोंके बारेमें क्या कुछ कहना चाहोगे?

यहाँकी हवामें नमी है। इसकी यदि कोई खूबी हुई तो वह बादमें पता चलेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७१९) से

१. २८ जूनको; देखिए पृ० ३४१।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२३०. पत्र : जॉन हेन्स होम्सको

सेवाग्राम, बरास्ता वर्धा[1]
६ जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

आपका १० मईका पत्र पढ़कर अभिभूत हो गया।

मेरी पत्नीके शरीरान्तसे मेरा जीवन और भी समृद्ध हो गया है, क्योंकि अब मुझे केवल उसके महान सद्‌गुण ही याद हैं। उसकी कमियाँ तो उसके शरीरके साथ जलकर नष्ट हो गईं।

जहाँतक मेरे स्वास्थ्यका सवाल है, वह धीरे-धीरे लेकिन लगातार प्रगतिपर है।

हम सब बड़े कठिन समयसे गुजर रहे हैं। आप-जैसे मित्रोंकी सहानुभूति ही अनिष्टकर शक्तियोंसे संघर्षमें मुझे बल देती है।

मीराबहन स्वास्थ्य-लाभके खयालसे हिमालयकी ओर गई हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० जॉन हेन्स होम्स[2]
१० पार्क एवेन्यू
न्यूयॉर्क १६ एन० वाई०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०९६५) से; सौजन्य : एस० पी० के० गुप्त। अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. स्थायी पता

२. १८७९-१९६४; अमेरिकी पादरी; अमेरिकन सिविल लिबर्टीज यूनियन (अमेरिकी नागरिक स्वतन्त्रता संघ) और नेशनल एसोशिएशन फॉर द एडवान्समेन्ट ऑफ कलर्ड पीपुल (अश्वेत जन प्रगति-सम्बन्धी राष्ट्रीय संघ) के संस्थापक सदस्य; यूनिटी के सम्पादक; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें अक्टूबर १९४७ से जनवरी १९४८ तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्मारक अतिथि प्राध्यापक; माई गांधी तथा धर्म और सामाजिक विषयोंसे सम्बन्धित कई पुस्तकोंके लेखक

२३१. पत्र : डॉ० जोसिया ओल्डफील्डको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा[1]
६ जुलाई, १९४४

प्रिय ओल्डफील्ड,

आपका पत्र पढ़कर बहुत ही पुरानी व मीठी यादें ताजा हो आई हैं। निस्सन्देह आप ऐसी बहुत-सी चीजें बता सकते हैं जिन्हें मैंने अपने लेखनमें छोड़ दिया। मैं आत्मकथा तो लिख नहीं रहा था। मैंने तो सत्य-सम्बन्धी अपने प्रयोगोंके बारेमें लिखा है।[2] मैंने जो-कुछ भी इस प्रयोजनके लिए जरूरी समझा और याद कर सका, उसे मैंने लिख डाला।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४५१८) से। सौजन्य: डॉ० जोसिया ओल्डफील्ड

२३२. पत्र : मनुबहन सुरेन्द्र मशरूवालाको

पंचगनी
[६ जुलाई, १९४४][3]

चि० मनुड़ी,

क्या तू मुझसे नाराज है? मुझसे नाराज होकर कहाँ जायेगी और फिर भला बच्चे माँ-बापसे नाराज हो सकते हैं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०६२) से। सौजन्य: सुरेन्द्र मशरूवाला

१. स्थायी पता
२. देखिए खण्ड ३९।
३. साधन-सूत्रमें यह पत्र मनुबहनको लिखे किशोरलाल मशरूवालाके ६ जुलाई, १९४४ के पत्रके नीचे लिखा हुआ है।

२३३. पत्र : मनु गांधीको

पंचगनी
६ जुलाई, १९४४

चि० मनुड़ी,

तेरा पत्र अच्छा है। जो काम तूने शुरू किया है वह उत्तम है। लेकिन उससे तेरी पढाईमे विघ्न पड़ेगा। भले ही पड़े, लेकिन इससे तेरी आँखें बच जायेंगी। *आँखोको बिगाड़े बिना जितना पढ़ा जा सके पढ़ना।* *सेवा-शक्ति तो तुझे ईश्वरने दी* ही है, इसलिए ऐसा काम तुझे मिल ही जाता है। फिजूलखर्ची छोड़ देना। हरएक चीज जैसे गरीब सँभालकर रखता है वैसे सँभालकर रखना और काममें लाना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

जयसुखलालको बादमें लिखूंगा।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

२३४. पत्र : गिरिराज किशोरको[1]

पंचगनी
६ जुलाई, १९४४

अब तो मेरे आशीर्वादसे ही संतोष मानो।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७७२) से

१. यह प्यारेलाल द्वारा गिरिराज किशोरको लिखे पत्रके नीचे लिखा हुआ था।

२३५. पत्र : आर० आर० काइथानको

पंचगनी
७ जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

मुझे उम्मीद है, आपका आयोजन सफल होगा। सत्य और प्रेमके बीस सच्चे अनुयायी भी असंख्य अन्यमनस्क लोगोंके बराबर, बल्कि शायद उनसे बढ़कर ही हैं।

स्नेह।

बापू

रेवरेंड आर० आर० काइथान[1]
१५६, बनवरघट्टी रोड
बंगलौर सिटी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२३६. पत्र : पुरुषोत्तम का० जेराजाणीको

पंचगनी
७ जुलाई, १९४४

भाई काकुभाई,

पिताजीके[2] स्वर्गवाससे हम लोगोंकी अपार क्षति हुई है। वे तो भारमुक्त हो गये। उनसे मेरा परिचय तो कम था, लेकिन उनके खादी-प्रेमके सम्बन्धमें मैंने बहुत-कुछ सुना था। उनके वियोगसे होनेवाली क्षतिको पूरा करने का सीधा और अच्छा मार्ग यही है कि वहाँ रहनेवाले उनके प्रेमका अनुकरण करें।

बापूके आशीर्वाद

खादी भण्डार
बम्बई

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. भारतमें कार्यरत एक अमेरिकी मिशनरी और सामाजिक कार्यकर्ता
२. कानजीभाई जेराजाणी

२३७. पत्र : क० मा० मुंशीको

पचगना
८ जुलाई, १९४४

भाई मुंशी,

तुम्हारी राय[1] मिली। तुमने जो लिखा है उन परिस्थितियोंमें इसे प्रकाशित करना वाछनीय नही है। मै इसे सहेजकर रखूँगा। तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नही जायेगा, क्योंकि मै अपने कार्यके लिए इसका उपयोग कर रहा हूँ। तुम्हारे इस पत्रके साथ मैं सरलाके[2] लिए एक पुर्जा रख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७६७६) से। सौजन्य: क० मा० मुंशी

२३८. पत्र : गुणोत्तम हठीसिंहको

८ जुलाई, १९४४

चि० राजा,

मै तो २० तारीखकी वाट ही जोह रहा हूँ। यहाँकी जलवायुसे डरने का कोई कारण नही है, क्योंकि यदि जलवायु अनुकूल न पड़े तो वापस आया जा सकता है। निश्चय ही मृत्यु आदमीका एक ही बार नाश करती है, जब कि डर हजारों बार। फिर, वचन निभाने के लिए भी एक बार आ जाना अच्छा है। इतना कहने के बावजूद यदि मन झिझकता हो तो मत आना। यह आश्चर्यकी बात है कि कृष्णा[3] स्वयंको भी नही सँभाल सकती। उसे तो इन्दुके[4] लिए रहना ही चाहिए; नही तो मैं तुम दोनोको खीचूँगा। अपना अन्तिम निर्णय मुझे सूचित करना।

बापूके आशीर्वाद

हठीसिह
बम्बई

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. देखिए परिशिष्ट १८।
२. क० मा० मुंशीकी पुत्री सरला सेठ
३. गुणोत्तम हठीसिंहकी पत्नी
४. इन्दिरा गांधी

२३९. पत्र : भारती साराभाईको

[८ जुलाई, १९४४ के पश्चात्][1]

चि० भारती,

प्यारेलालसे हुई बातचीत तो मैं भूल गया। लेकिन मुझे तेरी पुस्तक[2] अच्छी लगी। इसकी विषयवस्तु तो सुन्दर है ही। इसमें तुम्हारे ही हृदयका जो प्रतिबिम्ब मिला वह सबसे अच्छा लगा। भाषाकी परीक्षा मुझसे नहीं हो सकती। मैंने थोड़ा ही काव्य पढ़ा है। समझ तो बहुत ही कम सकता हूँ। मुझे भाषा कृत्रिम लगी। फिर, मेरी इच्छा यह भी है कि तेरी काव्य-प्रतिभा गुजरातीमें ही चमके। अंग्रेजीके भक्तोंकी कमी है क्या? गुजरातीके भक्त कितने हैं?

बापूके आशीर्वाद

बी० साराभाई
अहमदाबाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२४०. पत्र : यतीन्द्रनाथको

पंचगनी
९ जुलाई, १९४४

प्रिय यतीन्द्रनाथ,

तुम्हारा पत्र पढ़ लिया है। पढ़कर दुःख हुआ। अपनी बीमारीके कारण बहुत मदद नहीं कर सकूँगा। लेकिन जो-कुछ बताया गया है वह अगर सच है तो सवाल उठता है कि जिन दो व्यक्तियोंपर नृशंसतापूर्ण हमला किया गया उन्होंने मरते दमतक प्रतिरोध क्यों नहीं किया। हमलावरको चोट पहुँचाये बिना अहिंसक प्रतिरोध सम्भव है। मैं जानता हूँ यह करने में उतना आसान नहीं है जितना कहने में है। लेकिन अगर हमें अहिंसाकी कला सीखनी है तो हमें जीते-जी अपने अपमानका निष्क्रिय साक्षी बनने से इनकार करना होगा। तुम इसे चाहे जिस मित्रको दिखा सकते हो। याद रखो कि मैं जीवितों पर कोई आक्षेप नहीं कर रहा हूँ। मेरा उद्देश्य तो इस घटनासे मिलनेवाले पाठकी ओर संकेत करना है।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. साधन-सूत्रमें इसे ८ जुलाई, १९४४ के पत्रोंके बाद रखा गया है।
२. १९४३ में प्रकाशित द वेल ऑफ द पीपुल

२४१. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

"दिलखुश", पचगनी
९ जुलाई, १९४४

सचिव, बम्बई सरकार (गृह-विभाग)
पूना
महोदय,

आगाखाँ पैलेसमें जिस स्थानपर श्री महादेव देसाई और श्रीमती कस्तूरबा गांधीका दाह-संस्कार किया गया था, उसके सम्बन्धमें मुझे आपका इसी ७ तारीखका पत्र[1] मिला। वर्तमान व्यवस्थासे मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। इसलिए मैं सरकार को धन्यवाद देता हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९३९) से

२४२. पत्र : प्रभाशंकर हरचन्दभाई पारेखको

पंचगनी
९ जुलाई, १९४४

भाई प्रभाशंकर,

आपका पत्र मिला। आपपर दु:खका पहाड़ टूट पड़ा है, लेकिन आप उसे धैर्यपूर्वक बरदाश्त कर रहे हैं। बहन चम्पाने[2] मुझे जो पत्र लिखे हैं उनपर से मुझे मालूम हुआ है कि आप [डॉ० मेहताके आर्थिक मामलोंका निपटारा करने के कार्यसे] मुक्त हो गये हैं। अब मैं किस कार्यके लिए पंच नियुक्त किया गया हूँ? मुझे तो इसका भान भी नहीं है। मेरा पंच बनना और बने रहना, यह केवल स्नेही मित्रोंपर निर्भर करता है। मैं किस तरहसे आपका मार्गदर्शन करूँ? कुछ समझमें नहीं आता। गहराईमें न जाकर केवल नैतिक सलाह तो मैं यही दूँगा कि चम्पा जो माँगे, उसे

१. गांधीजी के ६ मई, १९४४ के पत्रके उत्तरमें; देखिए पृ० २७९-८०।
२. प्रभाशंकर पारेखकी पुत्री और प्राणजीवन मेहताके पुत्र रतिलालकी पत्नी

दे दीजिए। आपके पास अब है क्या? आपको तो एकान्तमें बैठकर ईश्वरका भजन करना चाहिए और जितनी शरीरसे बन सके उतनी सेवा करनी चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री प्रभाशंकर हरचन्दभाई पारेख
डेरा शेरी
राजकोट सिटी
काठियावाड़

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२०) से

२४३. पत्र: धुंडिराज गजानन कानिटकरको

पंचगनी
९ जुलाई, १९४४

चि० धुंडिराज,

तुमारा खत मिला। मैं आशा करता था ऐसा अच्छा नही हो रहा हूं। इसलिये इच्छा होते हुए मैं अब तो नहि बुलाउंगा। दिन भर पाणी आती है। तुमारे लिये मेरे पास जगह भी नहि है। पिताजीसे कहो मुझे क्षमा देवे।[1]

बापुके आशीर्वाद

श्री धुंडिराज गजानन कानिटकर
हिन्दमाता मन्दिर
३४१, सदाशिवपेठ
पूना

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९७२) से। सौजन्य: गजानन कानिटकर

१. देखिए "पत्र: गजानन कानिटकरको", पृ० ३५८-५९।

२४४. एक पत्र

पचगनी

१० जुलाई, १९४४

बापाकी ६ जुलाईकी पृच्छाके[1] सम्बन्धमें मुझे यह कहना है कि नानजीभाईके[2] प्रस्तावित दानके सम्बन्धमें दी गई मेरी राय और बापा द्वारा उद्धृत मेरी पहली रायके बीच मुझे कोई असंगति दिखाई नही देती। मेरा कहना यह है कि किसी भी दाताको दानकी कुछ या पूरी राशि मनमाने तौरपर अपने पास नही रोक रखनी चाहिए। वह चाहे तो सिफारिश कर सकता है कि यह राशि अमुक प्रयोजनके लिए रखी जाये। अगर उससे हमारी शर्तें पूरी हो जाती है तो प्रयोजनकी ऐसी सिफारिश स्वीकार की जा सकती है। अगर मेरी राय ठीक मानी जाती है तो चौथी शर्तकी कोई जरूरत नही रह जाती।

इस प्रकार यद्यपि मेरी वर्त्तमान और विगत रायोमें मुझे कोई असंगति दिखाई नही देती, तथापि मेरी प्राथमिकतामें अन्तर आ गया है। अपने मनकी कमजोरीके कारण मैं इस बातके लिए बड़ा व्यग्र था कि चाहे जैसे हो, ७५ लाखकी राशि पूरी करनी ही है। अब मैं मनमें इतनी ताकत महसूस कर रहा हूँ कि उस लोभका संवरण कर सकूँ। दाताओंको स्थानीय मदोंके लिए राशियोंका निर्देश करने और बहुत-सी रकम अपने पास रख लेने की छूट देकर उन्हें दानकी राशिको बरबाद करने की सुविधा देने की अपेक्षा अगले २ अक्टूबरतक जितनी बन पड़े उतनी उगाही करके हम स्मारकके उद्देश्यको अधिक सफल बना सकते हैं। आम तौरपर रियासतोंमें गाँवोमें पैसा खर्च करने में हमे कठिनाईका अनुभव हो सकता है। यहाँ "देहाती क्षेत्रो" के बजाय "गाँवों" शब्दका प्रयोग मैं बेहतर मानता हूँ। देहाती क्षेत्र तो कलकत्तामें भी हो सकता है, लेकिन सम्भव है, उसमें शामिल गाँव सही अर्थोमें गाँव नही हो। सान्ता क्रुज उपनगरीय क्षेत्र है, लेकिन वह कोई गाँव नही है। यहाँ मैंने जो भेद किया है, आशा है, उसे लोग आसानीसे समझ जायेंगे।

फिर, हमारे बड़े-बड़े दाता तो शहरी लोग होंगे। स्वाभाविक है कि वे अपने दानको अपने तरीकेसे और अपने ही स्थानमें खर्च करना चाहेंगे। इससे तो स्मारक के प्रयोजनके ही विफल हो जाने की आशंका है।

मुझे ऐसे प्रश्नोंके बार-बार उठने के आसार दिखाई देते हैं। वे मुख्यतः व्याख्या से सम्बन्धित होंगे। मेरी बड़ी इच्छा है कि इस तरहकी बातोंमें बापाका समय न

१. कस्तूरबा स्मारक कोष न्यासके मन्त्रीकी हैसियतसे उनकी पृच्छा

२. नानजी कालिदास; देखिए खण्ड ७८, "पत्र: नानजी कालिदासको", २०-९-१९४४ भी।

लगे और इन बातोंसे उन्हें कोई परेशानी न हो। वे अपनी योग्यतानुसार निःसंकोच होकर व्यवस्थाओंकी व्याख्या करें और अगर अध्यक्षसे मतभेद होना हो तो होने दें। व्याख्याके सम्बन्धमें बापाका दृष्टिकोण निर्णायक होगा। इसका अपवाद सिर्फ वही प्रश्न होगा जो उन्होंने पहलेसे ही मेरी राय जानने के लिए मेरे पास पेश कर रखा होगा।

मैं चाहूँगा कि बने तो बापा मेरी गुजरातीसे सन्तोष करें। मैं जानता हूँ कि वृद्धावस्थामें बनी-बनाई आदतोंको बदलना बहुत कठिन होता है। जहाँ मातृभाषा या राष्ट्रभाषाका उपयोग सम्भव हो वहाँ अंग्रेजीके इस्तेमालपर मुझे घोर आपत्ति है। लेकिन यहाँ भी बापाकी इच्छा ही सर्वोपरि। वे सक्रिय योद्धा हैं। मैं तो रुग्ण योद्धाओंकी सूचीमें शामिल हूँ, और इसलिए मेरे पास प्राथमिकताओंकी बात सोचने का समय है।

बापा जहाँ भी हों, यह पत्र उन्हें भेज दिया जाना चाहिए। यह सर पुरुषोत्तमदासको भी दिखा दिया जाना चाहिए। अगर बापा द्वारा मुझसे पूछे प्रश्नपर उनका मतभेद हो तो मुझे वह मालूम होना चाहिए।[1]

इस रायका मसौदा कल तैयार किया गया और उसे टाइप आज किया गया। बापाका बमका गोला बादमें आया। आशा है, उसका विस्फोट नही होगा।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२४५. पत्र : अमृतकौरको

[१० जुलाई, १९४४][2]

चि० अमृत,[3]

मैं सोचता हूँ मेरे सम्मुख जो कार्य है उसीके लिए अपना समय और शक्ति बचाकर रखूँ तो अच्छा। तुम्हें देने लायक मेरे पास कोई खबर नही है। कामके

१. आगेका अंश मूल गुजरातीसे अनूदित है।

२. साधन-सूत्रमें यह पत्र अमृतकौरके नाम प्यारेलालके १० जुलाई, १९४४ के पत्रके अन्तमें लिखा हुआ था। प्यारेलालने अपने पत्रमें लिखा था: "यह पत्र आपके पास पहुँचने तक आपको अखबारोंसे सबसे ताजे विस्फोट अर्थात् राजगोपालाचारी तथा जिन्नाके बीच हुए पत्र-व्यवहारके बारेमें मालूम हो जायेगा। वह कल ही प्रकाशनके लिए भेजा गया है। उससे आपको चकित नहीं होना चाहिए। बापूने तो ४ अगस्त, १९४२ को चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको इस विषयपर लिखे पत्रमें ऐसा कोई समाधान खोज निकालने की तैयारीका आभास दे दिया था।..." चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके फार्मूले के लिए देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

३. सम्बोधन देवनागरीमें है।

ऐसे तकाजेके बीच मैं मनोविनोद करने का साहस कैसे कर सकता हूँ। और मुझमें तो दैनिक डाक निपटाने की भी पूरी शक्ति नही है।

सबको प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२०१) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७८३७ से भी

२४६. पत्र : वनमाला नरहरि परीखको

पंचगनी
१० जुलाई, १९४४

चि० वनमाला,

तेरा मोटापा बिलकुल भ्रम निकला न? मुझसे भी ज्यादा भ्रान्तिजनक। तू ठीक चपेटमें आ गई है। पहलेसे ही यदि तूने नमक आदि खाना छोड़ दिया होता, तो जैसे आज मजबूरीमें छोड़ना पड़ा वैसा न करना पड़ता। ठीक है, अब चार महीने शान्त रहकर शरीरको ठीक सुधार लेना। कदाचित् इस कसौटीसे तेरे कान भी ठीक हो जायें। कान डाक्टरको दिखाना। जो डाक्टर एक ही रोगका उपचार करता है वह डाक्टर झूठा है। अधिकांशत: रोगोंका मूल कारण एक ही होता है। मेरा यह थोथा दर्शन बिस्तरमें पड़े-पड़े तेरे मनोरंजनके लिए है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७९२) से। सी० डब्ल्यू० ३०१५ से भी; सौजन्य: वनमाला एम० देसाई

२४७. पत्र : ईश्वरलाल व्यासको

पंचगनी
१० जुलाई, १९४४

भाई ईश्वरलाल,

तुम्हारा पत्र मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया। अनेक बहनोंकी तो तुमने और पुरवाईने ही व्यवस्था की है और यही उचित भी है। मैं सेवाग्राम पहुँचूँ और यदि तुम्हें सुविधा हो और यदि तुम जरूरी समझो तो तुम दोनो आकर मिल जाना। काम करनेवालों के पास न तो समय बचता है और न पैसा। इसलिए मैं सबको रोकने का प्रयत्न करता हूँ। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें आश्वासनकी जरूरत होती है। ऐसे तो आते ही हैं। उड़ीसाकी बात बराबर मेरे मनमें थी, लेकिन मैं जान-

बूझकर ही उड़ीसाका नाम अपने होठोंपर नही लाया। वहाँ तो हमेशा अकालकी स्थिति रहती है। उसका रक्षक तो ईश्वर ही है। मेरा नाम लेने से कुछ विशेष नहीं हो जानेवाला है।

बापूके आशीर्वाद

श्री ईश्वरलाल जी० व्यास
पुरबाई आश्रम
पोस्ट ऑफिस सोरो
जिला बालासोर

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५०६१) से

२४८. तार : जियाउद्दीन अहमदको

पंचगनी
[१० जुलाई, १९४४ या उसके पश्चात्][1]

जियाउद्दीन चौधरी[2]
मार्फत एमडेसन्स
कराची

अगर पहलेकी लिखी बातें राजाजी के प्रस्तावसे मेल नही खाती है तो उन्हें निरस्त मानना चाहिए।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२४९. पत्र : मीर मुश्ताक अहमदको

११ जुलाई, १९४४

प्रिय मीर साहब,

मेरी स्पष्ट राय है कि शर्तें अपमानजनक और अस्वीकार्य हैं।

जो कैदी अपमानजनक शर्तोंके साथ सुविधाओंका लाभ उठाने से इनकार करते हैं वे ठीक ही करते हैं।

१. साधन-सूत्रमें इसे १९४४ की फाइलमें रखा गया है। तिथिका निर्धारण राजाजी के उस प्रस्तावके उल्लेखसे किया गया है जो १० जुलाईको प्रकाशित हुआ था। देखिए पृ० ३८६, पा० टि० २।

२. सर जियाउद्दीन अहमद, केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्य; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयके उपकुलपति

लेकिन मेरी राय कोई आधिकारिक राय नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मीर मुश्ताक अहमद साहब
३४, प्रेम हाउस
कनाट प्लेस
नई दिल्ली

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२५०. पत्र: एस० जहीरुल मुजाहिदको

पंचगनी
११ जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

आपने मुझे जो काम[1] सौंपा है उसे करने में मैं अपने-आपको पूरी तरह असमर्थ पाता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. भारतके प्रमुख मुस्लिम नेताओंकी जीवनी प्रकाशित करने के खयालसे एस० जहीरुल मुजाहिदने गांधीजी से जिन्नापर एक लेख लिखने का अनुरोध किया था।

२५१. पत्र: पी० जी० मैथ्यूको

पंचगनी
११ जुलाई, १९४४

प्रिय मैथ्यू,

मुझे खुशी है कि आखिरकार तुम कामसे लग गये हो। मैं तुम्हें बिलकुल नही भूला हूँ, लेकिन जिन लोगोंको मैं भूला नही हूँ, उन्हें भी मैंने पत्र नही लिखे है। आजकल जब लिखना अनिवार्य हो, तभी लिखता हूँ।

स्नेह।

बापू

प्रोफेसर पी० जी० मैथ्यू
एस० एच० कालेज
तेवर, वरास्ता एर्नाकुलम्

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५४४) से

२५२. तार: एस० सदानन्दको[1]

१२ जुलाई, १९४४

तुम्हारा तार[2] मिला। धन्यवाद। मुलाकातका विवरण सिर्फ आंग्ल-भारतीय समाचारपत्रोंमें[3] ही प्रकाशित हुआ, इसके लिए राष्ट्रवादी समाचारपत्रोंसे क्षमा चाहता हूँ। वह अनधिकृत विवरण था। 'न्यूज

१. फ्री प्रेस जर्नल (बम्बई) के प्रवन्ध सम्पादक

२. ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, (जिल्द ४, पृ० १०८६) के अनुसार वाइसरायके निजी सचिव ई० एम० जेन्किन्सने भारत-मन्त्रीके निजी सचिव एफ० एफ० टर्नबुलके नाम अपने १३ जुलाई, १९४४ के पत्रमें सूचित किया कि सदानन्दने गांधीजी को तार भेजकर "इस बातके लिए अपना विरोध प्रकट किया है कि उन्होंने राष्ट्रवादी समाचारपत्रोंके बजाय ब्रिटिश और आंग्ल-भारतीय समाचारपत्रोंके प्रतिनिधि गेल्डरको महत्त्वपूर्ण विषयोंके सम्बन्धमें अपने विचार बताये, और यह भी कहा कि अगर जिन्नाके नाम गांधीके [? प्रस्तावकी] ठीक खबर दी गई हो तो 'उसका मतलब कांग्रेस तथा राष्ट्रके साथ विश्वासघात है'।"

३. तात्पर्य ११-७-१९४४ के टाइम्स ऑफ इण्डिया से है, जिसमें न्यूज क्रॉनिकल के नाम स्टुअर्ट गेल्डरका तार प्रकाशित हुआ था; देखिए परिशिष्ट १९।

क्रॉनिकल' में प्रकाशनार्थ एक छोटी-सी मुलाकात[1] मैंने अवश्य दी थी, जिसका एक हिस्सा प्रकाशित हुआ है। तीन दिनोंके दौरान तीन घंटेतक चलनेवाली मेरी वह बातचीत[2] मुख्यतः गेल्डरके ज्ञानवर्धनके लिए थी। यद्यपि उनकी रिपोर्ट काफी सही है फिर भी उसमें सुधारकी गुंजाइश है। समाचारपत्रोंको जल्दी ही मुलाकात[3] देकर गलतबयानीको दुरुस्त करने की आशा रखता हूँ। मेरे विचार सिर्फ निजी विचार थे। उनसे देशकी भलाई होगी या नहीं, इस सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है। राजाजी के फार्मूलेका[4] साथ ही प्रकाशित होना आकस्मिक था। राजाजी के फार्मूलेको मैं राष्ट्रीय अखण्डतासे और अपनी रायको कांग्रेसके प्रस्तावकी भावनासे संगत मानता हूँ। अहिंसाके अन्तर्गत राष्ट्रीय इकाइयोंको जबरदस्ती एक साथ बाँधकर नहीं रखा जा सकता। सत्याग्रहकी व्याख्या करने की सबको छूट है। लेकिन १९०८ से ही मेरी अवधारणाका जो सत्याग्रह चला आ रहा है उसका एकमात्र व्याख्याता बनने की सुविधा मुझे ही दी जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-७-१९४४

२५३. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

[१२ जुलाई, १९४४][5]

मैंने भेंट-वार्त्ताके या उसके सारांशके भी प्रकाशनकी स्वीकृति नहीं दी थी। मैंने कहा था कि जबतक मैं प्रकाशनकी स्वीकृति न दूं तबतक उसे प्रकाशित न किया जाये, और यह तो मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि कोई अखबार इस भेंट-वार्त्ता पर अपना एकाधिकार मानकर उसे अकेले ही प्रकाशित करेगा। यदि उसका प्रकाशन होना ही था तो वह पूरे भारतमें प्रचारित किया जाना चाहिए था।

इसलिए अपने मनकी शान्तिके लिए और पत्रकारोंने जो मेरी इस इच्छाका आदर किया है कि मुझे चुपचाप अपना काम करने दें और अपनी जिस बातके

१. देखिए पृ० ३६९-७०।

२. देखिए पृ० ३७०-७४।

३. देखिए अगला शीर्षक तथा "भेंट: समाचारपत्रोंको", पृ० ४००-२।

४. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

५. गांधीजी ने यह वक्तव्य स्टुअर्ट गेल्डरके साथ हुई भेंट-वार्त्ताके संक्षिप्त विवरण (देखिए पृ० ३६९-७० और ३७०-७४) के साथ इसी तारीखको जारी किया था; लेकिन यह दिनांक "पंचगनी, १३ जुलाई" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ।

प्रकाशनका अधिकार मैंने नही दिया हो उसे प्रकाशित न करें, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मुझे सार्वजनिक रूपसे क्षमा-याचना करनी पड़ी।[1]

मुझे मालूम है कि कुछ बातें अनधिकृत रूपसे अखबारोंमें छपी हैं, किन्तु मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने अनुमतिके बिना सामान्यतः कुछ न छापकर मुझपर कृपा की है। पत्रकारोंसे मिलने में मेरा हेतु मात्र यही होता है कि जिस उद्देश्यके लिए मैं जी रहा हूँ, उसका हित-साधन कर सकूँ, और वह उद्देश्य है सत्य और अहिंसाके बलपर भारतको स्वतन्त्रता दिलाना।

मैं प्रचारके लिए ही अपना प्रचार नही कराना चाहता और यदि अज्ञात रह सकना सम्भव हो, तो मुझे लगता है कि मैं अज्ञात रहकर ज्यादा बेहतर सेवा कर सकूँगा। इसलिए मैंने गेल्डरको चेतावनी दे दी थी कि मेरी अनुमतिके बिना उन्हें कुछ भी प्रकाशित नही करना है। मुझे कोई सन्देह नही है कि उन्होंने जो-कुछ प्रकाशित किया है[2] वह अच्छे इरादेसे किया है, लेकिन फिर भी मुझे लगता है कि वे उद्देश्यकी जितनी अच्छी सेवा कर सकते थे वैसी उन्होने नही की है।

मैंने तीन दिनोंमें कुल मिलाकर लगभग तीन घंटेका समय उनके साथ बिताया, ताकि वे मेरे सभी विचारोंको अच्छी तरह समझ लें। उनके विषयमें मेरी यही मान्यता थी और अब भी है कि वे जैसे स्वदेश-प्रेमी हैं वैसे ही भारतके भी शुभ-चिन्तक है और मैंने उनकी इस बातपर पूरा भरोसा कर लिया कि वे मेरे पास मुख्यतया एक पत्रकारकी हैसियतसे नही, बल्कि एक ऐसे व्यक्तिकी हैसियतसे आये हैं जो राजनीतिक गतिरोधको खत्म होते देखना चाहता है।

मैंने अपने विचार पूरी तरह खुलकर व्यक्त किये, और साथ ही मैंने उनसे यह भी कहा कि उनका पहला कर्त्तव्य है कि वे दिल्ली जायें और यदि वाइसरायकी गद्दीतक उनकी पहुँच हो सके तो वाइसरायसे मिलकर[3] उन्हें बतायें कि उनके मन पर क्या छाप पड़ी है। वाइसरायके साथ भेंट कर पाने में मैं तो असफल रहा, किन्तु मैंने सोचा कि एक प्रमुख अंग्रेजी अखबारके संवाददाता होने के नाते वे हमारे उद्देश्य की कुछ सेवा शायद कर सकें।

दक्षिण आफ्रिकामें भी, जहाँ मैं प्रतिकूल वातावरणमें काम कर रहा था, मेरा यह सौभाग्य रहा कि वहाँके पत्रकारों और सम्पादकोंको जब मेरी सचाई और मेरे उद्देश्यकी न्याय्यताका यकीन हो गया तब उन्होंने मुझे मदद दी। दक्षिण आफ्रिकामें मैं वहाँ रहनेवाले भारतीयोंकी कठिनाइयोंके सम्बन्धमें कार्य कर रहा था।

इसलिए इस अवस्थामें [गेल्डर द्वारा] दो भेंट-वार्त्ताओंके सारांशका प्रकाशन मुझे तो व्यर्थ हो गया लगता है। अतः मैं आपको वे दो विवरण देना चाहता हूँ जिन्हें मैंने गेल्डरसे बातचीतके बाद तैयार किया था। मैंने उन्हें यह छूट दी थी कि उनमें से एक, अर्थात् संक्षिप्ततर विवरण, वे अपनी दिल्ली-यात्राके बाद अपने पत्रमें प्रकाशनार्थ भेज सकते है और दूसरेपर वे ऐसे किसी भी व्यक्तिके साथ एकान्तमें चर्चा कर

१. एस० सदानन्दको भेजे तारमें; देखिए पिछला शीर्षक।

२. देखिए परिशिष्ट १९।

३. वाइसरायने गेल्डरसे मिलने से इन्कार कर दिया था।

सकते है जो मुझे समझना चाहे या जिसे गेल्डरकी रायमें मेरे वर्तमान विचारोंसे अवगत होना चाहिए।

इन दोनों विवरणोंको पढने पर आप देखेंगे कि उन्होने इन दोनों विवरणोंको एकमें मिलाकर छपवा दिया है। आप देखेंगे कि प्रकाशित रिपोर्टमें कई स्पष्ट ग़लतियाँ भी हैं। किन्तु मेरी वातोंसे ऐसा न समझा जाये कि मैं गेल्डरपर तथ्योंको जान-बूझकर तोड़ने-मोड़ने का आरोप लगा रहा हूँ।

फिर भी अपने ५० वर्षसे अधिक लम्बे सार्वजनिक जीवनमे मैंने असंख्य बार यह पाया है कि मेरे कथनोको सुगमतासे संक्षिप्त नही किया जा सकता और न अन्य शब्दोंमें उनका ठीक आशय दिया जा सकता है। मैंने १८९६ मे एक पुस्तिका[1] लिखकर भारतमें उसका वितरण किया था। जब १८९७ में रायटरने उसका एक संक्षिप्त सारांश बनाकर भेजा तो मेरे प्राण ही संकटमें पड गये थे। सारांशमें मेरी लिखी वातोंको निस्सन्देह, अनजाने ही तोड-मरोड़कर रख दिया गया। क्रुद्ध भीड़ने मुझपर जो आक्रमण किया, उसमें सौभाग्यसे मेरी जान वच गई और वादमें मैंने यह सिद्ध कर दिया कि साराशके आधारपर मुझपर जो आरोप लगाया गया था, सरासर गलत था।

यहाँ संक्षिप्तीकरणके कुछ ऐसे अनिष्ट परिणाम नही निकले हैं। दक्षिण आफ्रिका के उस प्रसंगको तो मैंने आज अपनी वातकी पुष्टिके लिए दोहराया है। जीवन-भर मैं ऐसे ही उद्देश्योंके लिए काम करता रहा हूँ जिनकी कोई फिक्र करनेवाला नहीं दिखता था। मैं काफी सफल पत्रकार भी रहा हूँ, किन्तु मैंने आजीविकाके लिए वह धन्धा नही अपनाया था। उस प्रयत्नका प्रयोजन मात्र यह था कि जिस उद्देश्यको मैंने अपने हाथमें लिया है उसे विज्ञापित कर सकूँ; और अपने साथी पत्रकारोको वे दो वक्तव्य सौंपने से पहले यह लम्बी भूमिका मैंने इस आशासे पेश की है कि वे मेरी इस हार्दिक इच्छाका खयाल रखेंगे कि इस स्थितिसे निवटने में वे मेरे साथ सहयोग करेंगे, और मैं मानता हूँ कि यदि इस स्थितिसे ठीक ढंगसे निवटा जा सका तो उसके ऐसे परिणाम निकल सकते है जो मानव-जातिके लिए वहुत ही सम्भावना-युक्त होंगे।

मैं उस कठिन परीक्षाके लिए, जो मेरे सामने है, विलकुल तैयार नही था। मैं तो पंचगनीमें रहकर अपने टूटे हुए शरीरका जीर्णोद्धार करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। अपने स्वास्थ्यका खयाल करके भी मैंने तय किया था कि इस समय मैं अपने वक्तव्योंका प्रकाशन नही कराऊँगा। मैं शीघ्र ही स्वस्थ और पूरी तरह काम करने योग्य हो जाना चाहता हूँ। हालात कुछ ऐसे वनते जा रहे है कि शायद मेरी यह इच्छा पूरी नही हो सकेगी, क्योंकि वह वक्तव्य जनताके सामने आ चुका है और अव मुझे उसपर होनेवाली प्रतिक्रियाओंपर ध्यान देते रहना होगा और भ्रामक धारणाओंका निराकरण करना होगा।

आप सव महानुभावोंको मैंने अपनेसे दूर रखा है और आप मेरे प्रति वहुत दयालु रहे है। आप इस आशामें इन्तजार करते रहे है कि किसी दिन मैं आपकी स्वाभाविक जिज्ञासाको तुष्ट कर दूँगा। मुझे आशंका है कि आप शायद तुष्ट ही नही होंगे, अघा जायेंगे, क्योंकि यदि आपके प्रधान आपको यही रहने की आज्ञा देंगे तो

१. "ग्रीन पैम्फलेट", देखिए खण्ड २।

आप अखबारोंमें छपी प्रतिक्रियाओंका संक्षिप्त विवरण मुझे हर रोज देते रहेंगे। मुझे ऐसा तो नही दीखता कि मै उन सबका उत्तर देना चाहूँगा, किन्तु यदि गलतफहमियाँ होंगी और यदि मुझसे बना तो निराकरण मुझे करना होगा।

इस दौरान मैं इस तथ्यपर जोर देता रहा हूँ कि मैं केवल अपनी ओरसे बोल रहा हूँ और मेरी बातोसे कांग्रेस किसी प्रकार बँधी हुई नही है। इस समय मैं कार्य-समितिके सदस्योंके विचारोंका किस हदतक प्रतिनिधित्व करता हूँ, यह मै नही जानता।

रही बात हिन्दू-मुस्लिम फार्मूलेकी,[1] जिसका इन दोनों वक्तव्योंसे कोई सम्बन्ध नही है, तो उस विषयपर मैंने जो-कुछ कहा है, वह एक हिन्दूकी हैसियतसे नही कहा है। मैंने जो-कुछ कहा है, मात्र एक भारतीयकी हैसियतसे ही कहा है। मेरा हिन्दुत्व मेरा अपना हिन्दुत्व है और मेरी अपनी रायमें उसमें सभी धर्म समाहित है। अतएव मुझे हिन्दुओंके प्रतिनिधिके रूपमें बोलने का कोई अधिकार नही है।

यह तो निर्विवाद तथ्य है कि मै जनमतके प्रति सदा संवेदनशील रहा हूँ और जनता भी मुझे सहज संबुद्धिसे समझ लेती है, किन्तु मैंने अपना पक्ष इस चीजके आधारपर नही खड़ा किया है। अपनी कल्पनाके सत्याग्रहके प्रतिनिधिके नाते मै अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि एक अंग्रेजके सम्मुख, जिसका रुख मै सहानुभूतिपूर्ण मानता था और अभी भी मानता हूँ, अपना हृदय खोलकर रख दूँ। अपने विचारोके लिए मैं किसी और आधारका दावा नही करता। आपको मैंने जो दो वक्तव्य दिये हैं उनके प्रत्येक शब्दपर मैं कायम हूँ, किन्तु मै सिवाय अपने और किसीकी भी ओरसे नहीं बोल रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-७-१९४४

२५४. पत्र : होरेस जी० अलेक्जेंडरको

१२ [जुलाई][2], १९४४

प्रिय होरेस,

मुझे तुम्हारा लम्बा पत्र मिला — विषय-वस्तुकी दृष्टिसे लम्बा नही, किन्तु समय और जिस प्रकार उसे भेजना पड़ा उसे देखते हुए। तुमने मुझे जो-कुछ बताया है उसमें से कुछ बातोंका तो मुझे जेलसे बाहर आते ही पता चल गया था, और इनमें से कुछ तो चौंका देनेवाली हैं। तुम लिख रहे हो, इसलिए यह सब अच्छा है, यहाँतक कि

१. तात्पर्य राजाजी फार्मूलेसे है; देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

२. साधन-सूत्रमें "जून" लिखा है। किन्तु "गांधीजी की वाइसरायसे मिलने की या कार्य-समितिके सदस्योंसे मिलने की अनुमति लेने की" निष्फल चेष्टाके उल्लेखके आधारपर इसे जुलाई ही माना गया है; देखिए पृ० ३३७। इसके अतिरिक्त अमेरिकन फ्रेंड्स सर्विस कौंसिलके विदेश सेवा अनुभागके सेक्रेटरी डॉ० जेम्स वेल गांधीजी से जूनके अन्तिम सप्ताहमें मिले थे।

जिस अंशको मैं जानता हूँ कि गलत है, वह भी। किन्तु उस अंशसे तुम्हारी कही बातोंका महत्त्व घटता नही। तुम्हारे वर्णनमें जो त्रुटियाँ हैं, वे भी तुम्हारे सौजन्यका परिणाम है। यदि उन त्रुटियोंको तुम्हारे सौजन्यकी कीमत देकर ही हटाया जा सके तो उनके हटाये जाने के वजाय मैं तुम्हारा सौजन्य ही पसन्द करूँगा। तुम्हारे पत्रकी सराहनाको मैंने सिर्फ इसी आशंकासे मर्यादित कर दिया है कि दोष-दर्शनसे रहित सराहनाका तुम यह अर्थ मान लेते कि तुम्हारे विवरणमें से कोई भी हिस्सा अलग किये बिना मैं पूरे-के-पूरेको सही मान रहा हूँ। और जो हिस्सा मैंने अलग कर दिया है उसकी चर्चा, मैं जो कहना चाहता हूँ उसके लिए प्रासगिक नही है। तुम तसवीरके दूसरे पहलूको भी जानते हो। जनताका रोष क्षम्य था; प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित होकर जो अमानवीय कार्रवाइयाँ की गईं वे किसी भी प्रकार उचित नहीं मानी जा सकती। किन्तु इस विषयकी चर्चापर मैं तुम्हारा समय नही लूँगा।

तुम्हारी इस चिन्ताको मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि कमसे-कम भुखमरीके निवारणके लिए मैं सरकारको अपना सहयोग दूँ। मेरी कठिनाई यह है कि मैं यह सहयोग नही दे सकता, क्योकि कष्ट-निवारणका प्रयास दिखावटी है। इस विषयमें वाइसरायकी नेकनीयती सन्देहसे परे है। वे भारत पहुँचते ही जिस तत्परतासे बंगाल दौड़े गये वह तो उन-जैसे सैनिकके अनुरूप ही थी। किन्तु जिस तन्त्रके माध्यमसे उन्हे कार्य करना पडा और अभी भी करना पड़ रहा है उसका निर्माण ऐसे कष्ट-निवारणके लिए नही हुआ है। मैं जो-कुछ कह रहा हूँ उसके जवावमें तुम्हें अपने नेक कार्य और अनुभवका उदाहरण प्रस्तुत करने का अधिकार है। उससे यही सिद्ध होगा कि बुराई स्वयं अकेली या अपने-आपमें निष्प्राण है। उसे जीवित रहने के लिए भलाईका सहारा चाहिए। अस्पताल, सड़कें, रेलें अपने-आपमें तो सम्भवत: अच्छी चीजें हैं, किन्तु यदि वे बुराईके उपकरण बन जायें तो त्याज्य हैं। उस दशामें वे छिपे हुए जाल बन जाते हैं। अब तुम मेरा तात्पर्य कुछ-कुछ समझ गये होगे। इतना ही कहना काफी है कि आज भारत जितना पाशबद्ध है उतना पहले कभी नही था। उसका उपाय भारतकी ऐसी स्वाधीनता है जो मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंकी कार्रवाइयोंमें बाधक न हो। किन्तु दोनों ओर गहरा आपसी अविश्वास है। सरकारको कांग्रेसपर तथा मुस्लिम लीग-समेत सभी सार्वजनिक संस्थाओंपर अविश्वास है। लगभग हर कदमपर जनमतकी अवहेलना की जाती है। ऐसी हालतमें स्वैच्छिक सहयोग असम्भव हो जाता है। मैंने वाइसरायसे मिलने की या कार्य-समितिके सदस्योसे मिलने की अनुमति पाने की चेष्टा की, किन्तु असफल रहा। अब बताओ कि क्या करूँ। क्या नही करना चाहिए, यह तो मैं जानता हूँ। मैं ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वह सुझाये कि मुझे क्या करना चाहिए। तुम भी इसमें सहायक हो सकते हो।

मेरा जेम्स वेलके साथ सुखद मिलाप हुआ। जो मुझे याद करते है उन सबको मेरा प्यार।

तुम्हे प्यार।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४४०) से

२५५. पत्र : एगथा हैरिसनको

"दिलखुश", पंचगनी
१३ जुलाई, १९४४

प्रिय एगथा,

तुम्हारा १४ जूनका पत्र मिला। मैं जो-कुछ भी करता हूँ, सब निष्फल ही सिद्ध होता है। और जबतक मुझे "अविश्वसनीय" समझा जायेगा तबतक ऐसा ही होता रहेगा। यदि मैं अपना दोष स्वीकार कर सकता तो मैं तुरन्त अपने-आपको सुधार लेता। किन्तु इसके विपरीत, मुझे मालूम है कि मैंने ऐसा कोई काम नही किया है कि सरकारी हलकेका जो विश्वास मुझे कभी प्राप्त था वह उठ जाये।

तुम्हें मालूम है कि मैंने कार्य-समितिके सदस्योसे मिलने और इसमें विफल होने पर वाइसरायसे मिलने का कितना प्रयत्न किया। शायद मुख्य बाधा, खबरोंके अनुसार, श्री चर्चिल द्वारा मेरे प्रति प्रकट की गई राय है।[1] तुम उन बहूद्धृत कथनोसे तो परिचित ही हो जो उनके बताये जाते है। कहते है, मुझ "नंगे फकीरको" वे "कुचल डालना" चाहते है। शरीर ही कुचला जा सकता है, आत्मा तो कभी भी नही। किन्तु यदि यह खबर सच्ची है—और उसका खण्डन तो कभी नही किया गया है—तो मेरी तथाकथित असफलताओंका सुराग उसीसे मिल जाता है।

इतना तो मै तुम्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि मै न तो किसी बातसे घबराता हूँ, न ही हताश होता हूँ। मै जानता हूँ कि यदि मै सत्यका प्रतिनिधित्व करता हूँ और ईश्वरकी आज्ञाका पालन करता हूँ तो गलतबयानी और सन्देहकी यह दीवार भहराकर गिर पड़ेगी। बस, मेरे प्रति धैर्य रखो। तुम्हारे लिए और तुम्हारे जैसे मित्रोंके लिए मेरा मन भर आता है।[2]

१. देखिए पृ० ३७०, पा० टि० १।

२. अपने पत्रमें एगथा हैरिसनने गांधीजीको एन्ड्रयूज द्वारा दस वर्ष पूर्व भेजे गये एक तारका सारांश उद्धृत किया था, जो इस प्रकार था: "दो व्यक्तियोंके बिना किसी शर्तके आपसमें मिलने पर सुलहका रास्ता निकल आता है।" एगथा हैरिसनने पत्रमें यह भी बताया था कि इन दिनों उनके मनमें सबसे ज्यादा वाइसराय और गांधीजी की मुलाकात की ही बात रहती थी, क्योंकि उन्हें उम्मीद थी कि इससे शान्तिका रास्ता निकल सकता है। उन्होंने बल-प्रयोगके बिना विवादोंके समाधानके गांधीजी के पचास वर्षोंके अनुभवका वास्ता देते हुए लिखा था कि इस युद्ध-जर्जर विश्वमें यदि आप भारत और इंग्लैण्डके बीच शान्तिपूर्ण मार्गसे सम्मानजनक समझौता करवा सकेंगे तो यह दुनियाको आपकी सर्वोच्च देन होगी।

हेनरीने[1] अपने अमेरिका-प्रवासके दौरान समाचारपत्रोंको एक पत्र[2] लिखा था, जो हालमें किसीने मुझे भेजा है। उनसे मिलो तो उन्हे बता देना कि उस पत्रसे मुझे बहुत कष्ट पहुँचा है। मै यह सोच भी नही सकता था कि मुझसे पूछताछ किये बिना ही वे मेरे बारेमें कही गई मिथ्या बातोंपर विश्वास कर लेगे।

राजाजी कुछ दिनोसे मेरे पास ही है। उनके सहयोगसे मैंने साम्प्रदायिक समस्याके समाधानका जो प्रयत्न किया है, उसके विषयमें इस पत्रके पहुँचने से पहले ही तुम्हें अखबारोसे पता चल जायेगा।[3]

सब मित्रोको मेरा प्यार। मैंने म्यूरियलको एक पत्र भेजा था।

तुम्हारा,
बापू

कु० एगथा हैरिसन
२ क्रेनबोर्न कोर्ट
एल्बर्ट ब्रिज रोड
लन्दन एस० डब्ल्यू० ११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५२५) से

२५६. पत्र : जी० ई० बी० एबेलको

"दिलखुश", पंचगनी
१३ जुलाई, १९४४

प्रिय श्री एबेल,[4]

आपका बिना तारीखका पत्र, जिसके साथ मेरे नाम कुमारी एगथा हैरिसनका पत्र संलग्न था, प्राप्त हुआ, जिसके लिए आपको धन्यवाद।

१ और २. हेनरी सॉलोमन लियन पोलक (१८८२-१९५९) गांधीजी के सबसे पुराने साथियोंमें से थे। जब गांधीजी ने दक्षिण आफ्रिकामें फीनिक्स आश्रमकी स्थापना की तो पोलक और उनकी पत्नी दोनों गांधीजी के पास वहाँ रहने लगे। पोलक कई वर्षोतक इण्डियन ओपिनियन के सम्पादक रहे और १९१९ में उन्होंने लन्दनमें इण्डियन ओवरसीज एसोसिएशनकी स्थापना की। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४४-४७, पृ० ३४, में प्यारेलालने बताया है कि पोलकने उस पत्रमें युद्धके प्रति गांधीजी के रवैये और ब्रिटेनके संकटग्रस्त रहते "भारत छोड़ो" आन्दोलनमें उनकी भूमिकाकी आलोचना करते हुए कुछ बातें कही थीं।

३. तात्पर्य राजाजी फार्मूलेसे है; देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

४. वाइसरायके निजी उप-सचिव

क्या मेरा यह संलग्न उत्तर[1] भी कृपापूर्वक वाइसराय महोदयकी हवाई डाकके साथ ही भेजा जा सकेगा?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री जी० ई० बी० एबेल
वाइसरायका कैम्प
भारत

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ३३

२५७. पत्र : एस० सदानन्दको

"दिलखुश", पंचगनी
१३ जुलाई, १९४४

प्रिय सदानन्द,

तुम्हारा तार मिला। यह पत्र तुम्हें पत्रकारकी हैसियतसे और प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ, किन्तु मेरे उत्तरकी शैलीका आधार तुम्हारा यह दावा होगा कि तुम मेरे पुत्र हो — ऐसा दावा जिसे तुमने बार-बार दोहराया है।

तुमने शाब्दिक रूपसे मेरे भूल-सुधारको[2] स्वीकार कर लिया है, किन्तु व्यवहार-रूपमें उसे ठुकरा दिया है। अपने तारके आरम्भिक अंश दोबारा पढ़ो तो मेरा तात्पर्य समझ जाओगे। और यदि तुम समझ जाओ तो मेरे भूल-सुधारको स्वीकार करने में भी तुमने मेरा जो अपमान किया है उसको सार्वजनिक रूपसे तुम्हें स्वीकार करना चाहिए।

इसके ठीक विपरीत अपना यह सुखद अनुभव बता दूँ कि कल मुझे जिन चार रिपोर्टरोंसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ,[3] उन्होंने शालीनतापूर्वक मेरा भूल-सुधार स्वीकार किया और उसका फलितार्थ भी पूरी तरह समझ लिया।

तुम्हारे पूछे हुए प्रत्येक प्रश्नका मेरे पास सुस्पष्ट उत्तर है, किन्तु मुझे पूरा सन्देह है कि प्रश्न सच्चे हृदयसे नहीं पूछे गये हैं, बल्कि उनका हेतु तुम्हारी बहादुरी का विज्ञापन और एक अशोभनीय ढंगका अखबारी प्रचार है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. आर० के० प्रभुने बताया है कि फ्री प्रेस जर्नल, १२-७-१९४४, में राजाजी फार्मूलेकी चर्चा करते हुए कहा गया था कि गांधीजी "गुमराह" हो गये हैं। जब गांधीजी ने इस निराधार आक्षेपका "खानगी तौरपर विरोध किया" तो सदानन्दने "जैसी-तैसी एक क्षमा-याचना" कर दी।

३. देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० ३९१-९४।

१२ जुलाई, १९४४ के अंकमें प्रकाशित तुम्हारे लेख पढ़कर मुझे बहुत क्लेश हुआ। उनमें राजाजी पर दुष्टतापूर्ण प्रहार किया गया है और कुछ अन्य प्रतिष्ठित नेताओंपर अपेक्षाकृत कुछ हलकी चोट की गई है। राजाजी पर आक्षेप करके तुम अपने ही प्रति भारी अन्याय कर रहे हो और अपने राष्ट्रप्रेमको लज्जित कर रहे हो, क्योंकि जहाँतक मुझे मालूम है, राजाजी को अपना कोई स्वार्थ नही सिद्ध करना है और उन्होंने देशप्रेमकी खातिर अपना सब-कुछ त्याग दिया है और अपनी अन्तरात्मा के आदेशका पालन करके अपनी लोकप्रियता खो बैठने की जोखिम उठाई है। मैं तुम्हे बता दूं कि राजाजी ने अपने राजनीतिक विचारोंपर मेरे साथ कोई चर्चा नही की है। उनके राजनीतिक विचारोंको मैंने जैसा जेलमें समझा था, उस रूपमें उन विचारों से मेरी असहमति अब भी कायम है।

अब चूंकि मैं बिना इच्छाके और समयसे पहले राजनीतिक विवादमें घसीट लिया गया हूँ इसलिए उनसे उस विषयपर चर्चा अवश्य करूँगा, जैसा कि मैं अभी भी उनके साथ अपने भारी राजनीतिक मतभेदके बावजूद उनके प्रति पूरा आदरभाव रखते हुए कर रहा हूँ।

प्रतिपक्षियोंके प्रति शिष्टता और उनका दृष्टिकोण समझने की उत्सुकता तो अहिंसाका ककहरा है। किन्तु तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि वे मुझे अपने चुने हुए सीधे और सँकरे रास्तेसे डिगा नही सकते। उस मार्गपर चलने के मेरे संकल्पको वे लोग दृढतर ही बना सकते है, दुर्बल कभी भी नही।

यदि प्रमुख नेता या राजाजी-जैसे हमेशाके साथी मुझे गुमराह कर सकते है, तो मानना होगा कि नेताके रूपमें या अहिंसाके प्रतिपादकके रूपमें मैं नितान्त अयोग्य हूँ।

श्री गेल्डरकी ईमानदारी-भरी भूल — और उनके साथ हुई मुलाकातके संक्षिप्त विवरणका समयसे पूर्व प्रकाशन[1] ऐसी ही भूल प्रतीत होती है — एक प्रकारसे वरदान ही साबित हुई, क्योंकि उसके फलस्वरूप देशको पुन: एक मौका मिला है कि वह मेरे समझौतावादी स्वभावका अन्दाज पा ले। मेरे लिए उसपर लज्जित होने का कोई कारण नही है और उसको मैं अपनी कमजोरी नही, बल्कि शक्तिका लक्षण मानता हूँ।

यदि तुम मेरे योग्य पुत्र साबित होना चाहते हो तो तुम अपनी समूची नीतिको बदल डालोगे और सत्य और अहिंसाके माध्यमसे देश-सेवा करने में पत्रकारिताकी अपनी प्रतिभाका सदुपयोग करोगे।

पत्रकारके रूपमें अपने धन्धेसे तुम काफी कमा चुके हो। अब यदि आवश्यक हो तो निर्धन बनने का भी साहस करो और जनताको सनसनीखेज खबरें देने के बजाय उसके सामने सिर्फ खरी और सच्ची बातें रखो। और यदि वैसा करना तुम्हे नही

१. देखिए परिशिष्ट १९।

आता तो कोई हलका धन्धा अपना लो। उसमें तुम्हें कमसे-कम इतना श्रेय तो मिलेगा कि तुम कुछ अनिष्ट नही कर रहे हो।

आशा है, तुम इसे बिना किसी फेर-बदलके छाप दोगे।[१]

हृदयसे तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

दिस वाज बापू, पृ० १५२-५४

२५८. भेंट : समाचारपत्रोंको

पंचगनी

१३ जुलाई, १९४४

कुछ लोगोंने कहा है कि मैंने यह मान लिया है कि अगस्त-प्रस्ताव रद्द हो गया है। इतना ही नहीं कि मैंने ऐसा कभी नहीं कहा है, बल्कि इसके विपरीत पूनामें जो मित्र महाराष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंकी सभामें एकत्र हुए थे उनके सामने मैंने स्पष्ट कर दिया[२] कि प्रस्तावको पारित करनेवालों, अर्थात् कार्य-समिति और अन्तमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सिवाय और कोई भी उसके किसी विरामचिह्न तक में हेर-फेर नहीं कर सकता। मैंने जो कहा है और जिसे मैं फिर दोहराता हूँ वह यह है कि सत्याग्रहके नियमोंकी मेरी समझके अनुसार प्रस्ताव द्वारा मुझे सौंपा गया अधिकार निस्सन्देह रद्द हो गया है।

श्री गेल्डरके साथ हुई मेरी मुलाकातके उचित समयसे पूर्व ही छप जाने से[३] कांग्रेसवालोंके मनमें कुछ उलझन पैदा हो गई है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरे अधिकारके रद्द हो जाने का कांग्रेसके सामान्य क्रिया-कलापसे कोई सम्बन्ध नही है। कांग्रेसके नामपर जो एक चीज कोई नही कर सकता वह है जनव्यापी सविनय अवज्ञा, जिसका आरम्भ कभी किया ही नही गया और जिसे, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मैं इस समय अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे भी आरम्भ नही कर सकता।

१. आर० के० प्रभुने इसके बारेमें लिखा है: "फ्री प्रेस जर्नल, १९-७-१९४४ में सदानन्दके निम्नलिखित स्पष्टीकरणके साथ गांधीजी का यह पत्र प्रकाशित हुआ था: 'इन स्तम्भोंमें मेरे नाम गांधीजी का १३ जुलाईका पत्र, गांधीजी के नाम मेरा १४ जुलाईका तार, तथा १५ जुलाईका गांधीजी का उत्तर प्रकाशित हो रहे हैं। इनका प्रकाशन इससे पहले नहीं हो सका, क्योंकि मैं आज (ता० १८ को) ही तीसरे पहर दिल्लीसे लौटा हूँ। गांधीजी ने अपने प्रति मेरी पुत्रोचित वफादारीकी याद दिलाकर मेरा मान बढाया है। मैं आज भी वास्तवमें वफादार होने का दावा करता हूँ। गांधीजी जानते ही हैं कि मेरी मान्यताके अनुसार पुत्र पिताकी फटकारपर भी अपनी सफाई नहीं दे सकता। और इस अवसरपर उस सुनहले नियमको तोडने का मुझे कोई कारण नहीं दीखता'।"

२. देखिए पृ० ३५९-६३।

३. देखिए परिशिष्ट १९।

"भारत छोड़ो" प्रस्तावको मैं नितान्त हानि-रहित मानता हूँ। "भारत छोड़ो" प्रस्तावकी जो व्याख्या मैंने की है — और उस प्रस्तावके संयुक्त प्रणेताकी हैसियतसे उसकी व्याख्या करने का मुझे अधिकार है — उससे गेल्डरके साथ मेरी मुलाकातके जो विवरण[1] अब प्रकाशित हुए हैं वे किसी भी तरह असंगत नहीं हैं।

मेरे सम्मुख और अखिल भारतीय [कांग्रेस कमेटी] के सम्मुख प्रश्न यह है कि इस समय अर्थात् प्रस्तावके पारित होने के लगभग दो वर्ष बाद उसपर किस प्रकार अमल किया जाये। गेल्डर भेंट-वार्त्ताके विवरणोंसे मालूम होता है कि पूर्ण सम्मानजनक रीतिसे यह कार्य किस प्रकार किया जा सकता है। मैंने जो स्थिति अपनाई है उसे पसन्द करनेवाले लोग स्वभावतः ही उसका समर्थन करेंगे। जिन लोगोंको इसमें कोई कठिनाई है वे अवश्य मुझसे पूछ सकते हैं। किन्तु मेरी अपनाई हुई स्थितिका अनुमोदन कांग्रेसके सामान्य क्रिया-कलापका स्थगन नहीं है और यदि सरकारकी ओरसे कांग्रेसके ऐसे क्रिया-कलापमें हस्तक्षेप किया जाता है तो उपर्युक्त वक्तव्यसे व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाका सहज अधिकार किसी भी प्रकार रद्द नहीं होता। ये वक्तव्य राजनीतिक गतिरोधको दूर करने के निमित्त मेरे व्यक्तिगत और निजी प्रयासके हैं। उनमें जनताके बजाय सरकारको सम्बोधित किया गया है। यदि उनका हृदयसे और अनुकूल उत्तर मिल जाये तो व्यक्तिगत या अन्य प्रकारकी सविनय अवज्ञा करने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

एक रिपोर्टरके यह पूछने पर कि क्या क्रिप्स-प्रस्तावोंकी गांधीजी के हालके वक्तव्यसे तुलना हो सकती है, महात्मा गांधीने उत्तर दिया :

मेरा प्रस्ताव सर्वथा भिन्न है। क्रिप्स-प्रस्ताव मुझे महज इसलिए मान्य नहीं थे कि उनमें भारतके चिर-विभाजनकी तजवीज थी और भारतकी आजादीके मार्गमें वे एक वास्तविक बाधा खड़ी कर देते। यह बात मैं सर स्टैफर्ड क्रिप्सके प्रति बिना किसी निरादर-भावके कह सकता हूँ।[2] मैं उन्हे आज भी अपना वैसा ही मित्र मानता हूँ जैसा मित्र होने का दावा उन्होंने भारतमें रहते हुए किया था। मेरे लिए तो राजनीतिक मतभेदोंके बावजूद मित्रता अपनी जगह कायम ही रहती है।

मेरे दृष्टिकोणका एक मूलभूत तत्त्व यह है कि ब्रिटिश भारतकी जनताकी आजादीकी खातिर रियासतोंकी जनताके अधिकारोंको बेच देने के लिए मैं कभी तैयार नहीं होऊँगा। इसके साथ ही मैं राजाओंका शत्रु भी नहीं हूँ। मैं अपनेको उनका मित्र मानता हूँ और यदि कोई समझना चाहे तो मैं ऐसा समाधान पेश करने को भी तैयार हूँ जो राजाओं और उनकी प्रजा दोनोंके लिए एक ही साथ सम्मानजनक हो। मेरा जीवन एक महोद्देश्यके लिए है और यदि मैं मरूँगा तो वह भी उसीकी खातिर।

१. देखिए पृ० ३६९-७० और ३७०-७४।

२. देखिए "प्रश्नोत्तर", पृ० ४१२-१४ भी।

एक रिपोर्टरने यह विचार पेश किया कि सम्भवतः ब्रिटिश सरकार युद्धकालमें सत्ता-हस्तान्तरणकी कोई बात नहीं सोचती हो और यह भी अन्देशा है कि श्री जिन्ना महात्मा गांधीका सुझाव मानने को तैयार नहीं हों, क्योंकि उनके विचारमें राष्ट्रीय सरकार बन जाने से शायद हिन्दुओंकी स्थिति केन्द्रमें सुदृढ़ हो जायेगी। इसपर महात्मा गांधीने समझाया :

यदि श्री जिन्ना या सरकार मेरा सुझाव न मानें तो मैं उसे अत्यन्त दुर्भाग्यकी ही बात समझूंगा। उससे प्रकट हो जायेगा कि दोनोंमें से कोई भी वास्तवमें इस समय भारतको स्वाधीन और भारतको आजादी तथा लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए युद्धमें विजय पाने में पूरा योगदान करते नहीं देखना चाहता।

मेरा तो पक्का विश्वास है कि श्री जिन्ना बाधक नही हैं, किन्तु ब्रिटिश सरकार भारतकी स्वाधीनताकी माँगका, जो कबकी स्वीकार हो जानी चाहिए थी, कोई न्याय-युक्त निबटारा नही करना चाहती, और भारतको स्वाधीनतासे वंचित रखने के लिए वह श्री जिन्नाकी आड़ ले रही है। श्री स्टुअर्ट गेल्डरके साथ बातचीत करते हुए मैंने यह चेतावनी दे भी दी है।

महात्मा गांधीने कहा कि "भारतकी आकांक्षाओंका गला घोंटने के दुष्टतापूर्ण षड्यन्त्रको" भंग करना सभी न्यायप्रिय लोगोंका कर्त्तव्य होना चाहिए। उन्होंने घोषणा की :

मुझे पक्का विश्वास है कि पशु-बलकी शक्ति-परीक्षामें अंग्रेज युद्ध भले जीत लें, क्योंकि पशुबल और असीम धन-साधनका योग स्वाभाविक रूपसे सबपर विजयी होगा, किन्तु वह मात्र भौतिक विजय होगी, जो आगे चलकर एक और महायुद्धका कारण बनेगी। मेरे ये विचार एक विदग्ध हृदयके निर्बन्ध उद्‌गार हैं।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-७-१९४४

२५९. पत्र : स्टुअर्ट गेल्डरको

पंचगनी
१४ जुलाई, १९४४

गेल्डर,

आपके तारके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

अंग्रेज लोग पेचिशका इलाज करना नहीं जानते। खान-पानमें बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। जब डॉ० नैयरने मुझे खाने के सिलसिलेमें आपकी लापरवाहीके बारेमें बताया तब मैंने उनसे कहा था कि आप जरूर बीमार पड़ेंगे। आपको तो भारतीय मिठाइयोंको छूना भी नहीं चाहिए। ये बहुत गरिष्ट और सान्द्रित (कंसेन्ट्रेटेड) होती है। कितना अच्छा हो अगर आप डॉ० मेहताके चिकित्सालयमें एक बार पूरा इलाज करवायें। उससे आप बिलकुल ठीक हो जायेंगे।

मैं यह जानता हूँ कि आपने उत्साहातिरेकमें जल्दबाजी की और उसमें आपके इरादे बिलकुल नेक थे। जो असंगतियाँ हैं उनका भान आपको निश्चय ही नही रहा होगा। पता नहीं, अब भी वे आपकी समझमें आई या नही। मुलाकातें समयसे पहले प्रकाशित कर दी गई[1], इसको तो मैं माफ कर सकता हूँ। लेकिन इस बातके लिए कैसे क्षमा कर सकता हूँ कि आपने उसका अधिकार अकेले 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' को दे दिया? समय आने पर आप उसे अपने पत्रको भेजनेवाले थे, या यदि उसे यहाँ प्रकाशित करने की इच्छा होती तो आपको उसके प्रकाशनका अधिकार सबको देना चाहिए था। आपको नही मालूम कि इस कारण मुझ गरीबकी कैसी लानत-मलामत की गई है।[2]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२६०. पत्र : मुकुन्दराव रामचन्द्र जयकरको

पंचगनी
१४ जुलाई, १९४४

प्रिय डॉ० जयकर,

आपके कृपापत्रके[3] लिए बहुत धन्यवाद।

जैसा कि मैंने अपने सार्वजनिक वक्तव्यमें[4] स्पष्ट कर दिया है, भेंट-वार्त्ता समय से पहले ही प्रकाशित हो गई। आपकी सलाहको[5] पूरा महत्त्व देते हुए भी वाइसराय को जो-कुछ मैंने लिखा उसके सिवा कुछ और लिखने के लिए मनको तैयार नहीं कर पाया।

मैं आपको पंचगनी आने का कष्ट नही देनेवाला हूँ। अगर सर तेज आयें — और उन्होंने कहा था कि वे आयेंगे — तो मैं चाहूँगा कि आप भी उनके साथ आयें। बहरहाल, अब मैं आपके विचार[6] तो जान ही गया हूँ।

१. देखिए परिशिष्ट १९।

२. देखिए पृ० ३९०, पा० टि० २।

३. ११ जुलाई, १९४४ का

४. देखिए पृ० ३९१-९४।

५. मु० रा० जयकरने गांधीजीको सलाह दी थी कि वाइसरायको लिखे अपने पत्रमें (देखिए पृ० ३३७) वे ये शब्द और जोड़ दें: "बदली हुई परिस्थितियोंमें १९४२ का प्रस्ताव पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता।" जयकरका खयाल था कि वाइसरायको यह बताने के लिए कि यदि गांधीजी कभी कार्य-समितिसे मिलें तो वे उससे क्या कहेंगे, ये शब्द जोड़ना आवश्यक था।

६. जयकरने कहा था: ". . . अब आपने अपने विचार बहुत स्पष्ट बता दिये हैं, इसलिए मैं नहीं समझता कि उसकी पुष्टिके लिए वकीलोंकी रायोंपर भरोसा करना ठीक होगा। . . . श्री मुंशीने पूनामें मुझे एक वक्तव्यका मसौदा दिया, जो कुछ वकीलोंके हस्ताक्षरोंसे जारी किया

वकीलोंकी सलाह[1] मुझे मिल गई है। मै उसका सार्वजनिक उपयोग नही कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

परम माननीय डॉ० मु० रा० जयकर
मलाबार हिल
बम्बई ८

[अंग्रेजीसे]
गांधी-जयकर पेपर्स, फाइल नं० ८२६, पृ० १५। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

२६१. पत्र: डी० एन० शिखरेको[2]

"दिलखुश", पंचगनी
१४ जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

पूनामें पिछले महीनेकी २८ तारीखको गांधीजी के साथ हुई आपकी बातचीतकी एक संशोधित रिपोर्ट इसके साथ भेज रहा हूँ।

आपने गत २९ तारीखको गांधीजी को लिखे अपने पत्रमें अनुरोध किया था[3] कि हिन्दू महासभा, श्री सावरकर तथा कायदे-आजम जिन्नाके प्रति गांधीजी के रुखमें जो अस्पष्टता है उसे वे दूर कर दें। इस सम्बन्धमें मुझे यह कहने का आदेश है कि गांधीजी की रायमें,

---

जानेवाला है।... आप इतने महान् हैं कि आप किसी सहायताके बिना स्वतन्त्र रूपसे निकाले गये अपने निष्कर्षोंको संसारके सामने घोषित कर सकते हैं।...भारत आपके निष्कर्षोंको शोभाके साथ स्वीकार कर लेगा, और भावी समाधानके एक सहायक तत्त्वके रूपमें उनका अपना एक अलग महत्त्व है, जो वकीलोंका समर्थन मिलनेसे बढ़ तो नहीं ही सकता, शायद कम ही हो जाये।"

१. देखिए परिशिष्ट १८।

२. डी० एन० शिखरे, जो एक पत्रकार और महात्मा मैगजीनके सम्पादक थे, महात्मा गांधीकी जीवनीमें (जो उन्होंने १९४५ में प्रकाशित की) इस भेंट-वार्ताका सही विवरण शामिल करना चाहते थे। इस पत्रके साथ जो संशोधित भेंट-वार्ता भेजी गई होगी वह तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन शिखरेने गांधीजी से अपनी लिखावटमें अपने कुछ प्रेरणाप्रद वाक्य लिख भेजने का अनुरोध किया था और उनके अनुसार वे वाक्य ये थे: "मैं मानता हूँ कि स्वतन्त्रता अविश्वसनीय गतिसे भारतमें अवतरित हो रही है। यह घड़ी सबसे अन्धकारपूर्ण है, किन्तु यह प्रभातके पूर्वका अन्धकार है। मेरी दृष्टिमें तो मात्र प्रार्थना करने से ही, बशर्ते कि वह हृदयकी पूरी गहराईसे की जाये, वांछित परिवर्तन आ सकता है।"

३. शिखरे यह जानना चाहते थे कि गांधीजी जिन्नाके पीछे क्यों भाग रहे हैं और हिन्दू महासभाके अध्यक्ष वी० डी० सावरकरकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं, जब कि दोनोंमें से कोई भी अहिंसा के सिद्धान्तसे प्रतिबद्ध नहीं है।

भेंट-वार्त्ताकी इस संलग्न रिपोर्टका पिछला अंश इतना स्पष्ट है कि ऐसी अस्पष्टताकी कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

हृदयसे आपका,

श्री डी० एन० शिखरे
६२३/२९, सदाशिवपेठ
देशमुखवाड़ी
पूना

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०५१२) से

२६२. सन्देश : बंगाल प्रान्तीय छात्रसंघको – १[1]

१४ जुलाई, १९४४

संघर्ष कीजिए तो विना किसी सन्देशके ही अपने कामके सहारे आप विजयी होंगे।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २१-७-१९४४

१. बंगाल प्रान्तीय छात्रसंघके नेता अरुण दासगुप्त और अजित रायने गांधीजी के साथ अपनी भेंटके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको जो वक्तव्य दिया था, यह सन्देश उसीमें से लिया गया है। वक्तव्य इस प्रकार था: "असमवासियोंको जापानियोंके विरुद्ध हिम्मत बँधाने के कार्यमें श्रीयुत् बारडोलोई तथा असमके अन्य कांग्रेसी नेताओंकी मददके लिए बंगाल प्रान्तीय छात्रसंघके कुछ अन्य कार्यकर्त्ताओं-सहित हम दोनोंने जूनमें असमका दौरा किया। श्रीयुत् बारडोलोईसे एक परिचय-पत्र लेकर हम असमकी वर्तमान स्थिति तथा अपने कार्यका विवरण देने गांधीजी के पास आये। १४ जुलाईको हम गांधीजी से मिले। उन्होंने हमारे कामके बारेमें हमसे चर्चा की और हमने उनसे कहा: 'हम लोग पिछले दो वर्षोंसे कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी एकताके लिए कार्य कर रहे हैं तथा अब और भी जुटकर करेंगे। आपसे प्राप्त कोई सन्देश बहुत महत्त्वका होगा।'" देखिए "सन्देश : बंगाल प्रान्तीय छात्रसंघको — २", १७-७-१९४४ भी।

२६३. पत्र : अमतुस्सलामको

सेवाग्राम[1]
१४ जुलाई, १९४४

चि० अमतुल सलाम,

तेरे तारकी तो आशा नहीं थी। लेकिन खत आज मिलना चाहिए था। उम्मीद है तू वहाँ ठीकसे पहुँची होगी और कोई सामान नहीं खोया होगा। तूने सामानकी फेहरिस्त बनाई थी? क्या जगह ठीक मिली थी?

आशा है कि तू वहाँ ठीक जम गई होगी। भगीरथजीका[2] खत आया होगा। सब तफसील लिखना। जिस कामके लिए गई है वही किया कर। यकीन रख कि उसमें सब आ जायेगा। ज्यादा आगे बढ़नें से सब खो बैठने की सम्भावना है। न्यामत[3] की लड़कीके बारेमें क्या किया, वह लिखना। मुझे शक है कि उसे ले जाकर न्यामत की या उस लड़कीकी सच्ची सेवा हुई है। मेरी तबीयत ठीक है।

बापूकी दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९) से

२६४. पत्र : सुरेशको

पंचगनी
१४ जुलाई, १९४४

भाई सुरेश,

तुम्हारा भड़कता हुआ पत्र मिला। तुम्हारी भावनाएँ मैं समझ सकता हूँ। तुम मेरी समझो तो अच्छा। मुझे तो जैसा सूझता है वैसा ही करता हूँ। लोगोंको खुश करने के लिए कभी मैंने कुछ नहीं किया। मेरे कुछ कहने से लोग खुश होते हैं, यह तो मेरा सौभाग्य है। यदि तुम धीरज रखोगे तो देखोगे कि मैंने जो कहा वह ठीक ही है। इतना भरोसा रखना कि किसीके बहकावेसे मैं भ्रमित नहीं हो सकता। मुझे बहकानेवाला तो एकमात्र प्रभु ही है।

१. स्थायी पता
२. भगीरथजी कानोडिया, कलकत्तेके व्यापारी
३. सेवाग्राम आश्रमवासी

हाँ, इतना सच है कि सभी धनी लोग देशके दुश्मन ही नही हैं। और मेरी अहिंसा शत्रु-मित्रका भेद नहीं करती। वह तो शत्रुको भी मित्र बना लेती है।[1]

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२६५. प्रश्नोत्तर[2]

पंचगनी

१४ जुलाई, १९४४

यदि कोई प्रतिबन्ध न हो तो मैं खुशीसे करूँगा। जहाँतक मुझे याद है, मैंने कभी भी प्रतिबन्धके अधीन रहकर या जमानत भरकर किसी अखबारका सम्पादन नही किया। यदि मैं देशके सामान्य कानूनका उल्लघन करूँ तो मैं दण्ड भुगतने को तो तैयार हूँ ही, जैसा कि १९२२ में मैंने किया। किन्तु मैं जानता हूँ कि जबतक मेरे प्रति सरकारको अविश्वास है उससे ऐसे व्यवहारकी अपेक्षा मैं नही रख सकता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १४-७-१९४४

२६६. भेंट : समाचारपत्रोंको

पंचगनी

१४ जुलाई, १९४४

कई प्रान्तोसे मेरे पास नजरबन्दोके प्रति दुर्व्यवहारकी शिकायतके पत्र आ रहे हैं। उनकी पूरी-पूरी सचाईका जिम्मा मैं नही ले सकता। इन शिकायतोंकी पुष्टि कराने का मेरे पास कोई उपाय नही है। किन्तु इन पत्र-लेखकोंमें से अधिकांशसे मेरा व्यक्तिगत परिचय है और वे अतिरजित वृत्तान्त भेजें, ऐसी सम्भावना नही है।

ऐसा एक मामला कल ही मेरी जानकारीमें आया। बात अजमेरकी है। कैदी उपवास कर रहा था। उसकी पत्नीने मुझे कई पत्र भेजे कि मैं उसके पतिको उपवास छोड़ने की सलाह दूं। वैसे भी बन्दी इसके लिए राजी था। मैंने अधीक्षकको तार[3] भेजा कि उपवास छोड़ देने की मेरी सलाह कैदीतक पहुँचा दी जाये। कैदीने मेरी सलाह मानकर उपवास छोड़ दिया। अब मुझे पता चला है कि जेलके किसी नियमके

१. देखिए पृ० ३६७ भी।

२. साधन-सूत्रके अनुसार, गांधीजी ने *हरिजन* के प्रकाशनके सम्बन्धमें पूछे गये एक प्रश्नके उत्तरमें यह लिखा था। *हरिजन* का प्रकाशन १६ अगस्त, १९४२ से १० फरवरी, १९४६ तक बन्द था।

३. देखिए पृ० २९०-९१।

अन्तर्गत उसके विरुद्ध इस आधारपर कार्रवाई की जा रही है कि उसने उपवास करने का अपराध किया था।

मैं जानता हूँ कि जब मैं यरवडामें कैदी था उस समय ऐसा ही कुछ नियम था, किन्तु मेरा अनुमान था कि उपवास छोड़ने के उपरान्त कैदीके विरुद्ध कार्रवाई नहीं की जाती। मैंने भी उपवास किया और इस प्रकार दण्डका भागी भी था, किन्तु मुझे दण्ड नही मिला — शायद इस कारण कि मै प्रसिद्ध व्यक्ति माना जाता था। यदि प्राप्त सूचना सही है तो मैं अधिकारियोंसे प्रार्थना करना चाहूँगा कि ऐसे मामलों को वे अनदेखा कर दें। कैदियोंको अपनी इच्छानुसार उपवास करने देने में कोई बुराई नही होगी। सबसे उचित तो यह होगा कि उन शिकायतोंकी जाँच की जाये जिनके कारण वे उपवास कर रहे है और यदि वे सही हों तो उन्हें अविलम्ब दूर कर दिया जाये। ऐसा पहले भी किया गया है और कोई कारण नही कि इस प्रशंसनीय चलनका पालन इस समय भी क्यों न हो।

मैं कैदियोंके प्रति मानवोचित व्यवहारके लिए प्रार्थना करता हूँ, विशेषकर उस अवस्थामें जब वे निरे सन्देहके आधारपर ही नजरबन्द हों या देशके सामान्य कानून के अन्तर्गत नहीं, बल्कि विशेष अध्यादेशोंके अन्तर्गत घोषित अपराधोंके दोषी ठहराये गये हों।

मेरे सामने जो दूसरे मामले आये है उनका उपवाससे कोई सम्बन्ध नही है, बल्कि वे कथित दुर्व्यवहारके मामले है और ये दुर्व्यवहार कैदियोंकी हिम्मत तोड़ने के निमित्त किये जा रहे है। 'यंग इंडिया' और बादमें 'हरिजन' का सम्पादन करते हुए मै ऐसे मामलोंको उठाता रहता था और बहुधा अधिकारीगण उनमें राहत भी देते थे।

मुझे मालूम है कि कई बार ऐसे मामलोंकी सूचना बड़े अधिकारियोंतक पहुँचती ही नही है। जनताको इन मामलोंसे अवगत कराने का मेरा प्रयोजन ऐसे मामलोंमें राहत दिलाना है। यह सभी जानते हैं कि अधिकांश प्रान्तोंमें कैदी ऐसी कठिनाइयाँ भोग रहे है जो पूरी तरह परिहार्य है। जो कैदी तनिक भी बीमार हैं या जिनका वजन घटता जा रहा है उन सबको तुरन्त रिहा कर दिया जाना चाहिए। इससे युद्ध-प्रयत्नोंपर निश्चय ही कोई बुरा असर नही पड़ेगा और न देशकी शान्तिको ही कोई खतरा पैदा होगा।[1]

गेल्डर भेंट-वार्तामें मैंने जो विचार[2] व्यक्त किये थे, उनकी तीव्र आलोचना करते हुए लोगोंने मुझे पत्र लिखे है। कुछ पत्र-लेखकोंका कहना है कि मैंने मॉडरेटों और धनवानोंके प्रभावमें आकर देश-हितके साथ घात किया है। भेंट-वार्ताके समयसे पूर्व प्रकाशित हो[3] जाने से मुझे और किसी बात की नहीं तो कमसे-कम इस बातकी खुशी अवश्य है कि उसके फलस्वरूप मुझे ऐसी आलोचनाओंके उत्तर देने का मौका

१. इसके बादका अंश स्वतन्त्र रूपसे बॉम्बे क्रॉनिकल में प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए पृ० ३६९-७४।

३. देखिए परिशिष्ट १९।

मिला। मैं अपने सम्बन्धमें लोगोंको किसी धोखेमें नही रखना चाहता। मेरे देश-वासियोंको और सरकारको भी मेरे सच्चे स्वरूपकी जानकारी होनी चाहिए। मैंने यह तथ्य कभी नही छिपाया है कि मैं जाति, रंग या धर्मका कोई भेदभाव न रखते हुए सभीका मित्र हूँ, जिनमें मॉडरेट, धनी लोग, अंग्रेज, अमेरिकी या अन्य कोई भी शामिल है। मेरे विश्वास और आचरणका सीधा स्रोत मेरी अहिंसा है। मेरा असहयोग बुराईके प्रति है, न कि बुराई करनेवाले के प्रति। मेरे असहयोगके पीछे मेरी यह हार्दिक आकांक्षा है कि बुराई करनेवाले को बुराईसे या वह जो हानि कर रहा है उससे विमुख करूँ, ताकि फिर मैं उसे अपना हार्दिक सहयोग दे सकूँ। फिर, यदि मैं तथाकथित मॉडरेटों या धनी व्यक्तियोंको अपने साथ लेकर चलता हूँ तो उसका उद्देश्य यही होता है कि मैंने जो काम हाथमें ले रखा है उसमें उनका सहयोग प्राप्त करूँ। लेकिन मैं उनके मामलेमें खुला दिमाग रखता हूँ, ताकि यदि मुझे लगे कि मुझसे गलती हुई है तो उसे सुधार सकूँ। मेरे उठाये हुए किसी कामको इस प्रकारके सम्बन्धोंसे कभी कोई नुकसान पहुँचा हो, ऐसा मेरा अनुभव नही है।

कुछ आलोचकोंने यह भी कहा है कि मौजूदा रुख अपनाकर मैं मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको नैतिक बल प्रदान कर रहा हूँ। वे भूल जाते है कि मैंने जैसा भी प्रस्ताव रखा है, उसके साथ यह शर्त जुड़ी हुई है कि मित्र-राष्ट्र, और इस प्रसंगमें ब्रिटिश सरकार, पहले भारतकी पूर्ण स्वाधीनताको मान्य करें, जो युद्धके दौरान मर्यादित रहेगी। इस प्रकार मुझे तो अगस्त-प्रस्तावमें निरूपित सिद्धान्तों और अपने वर्त्तमान सुझावमें कोई विषमता नही दिखाई पडती। क्या मैं आलोचकोंको सलाह दे सकता हूँ कि वे ब्रिटिश सरकारकी ओरसे कोई उत्तर आने तक इन्तजार करें? मैंने जो वक्तव्य दिये वे प्रथमत: सरकारको ही सम्बोधित थे। श्री गेल्डरने अप्रत्याशित काम किया। हाँ, उन्होंने ऐसा पूरे नेक इरादेसे ही किया है। अन्तत: मनुष्योंके सारे क्रिया-कलापोंका संचालन करनेवाली एक सर्वोपरि सत्ता भी तो है।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६-७-१९४४, और बॉम्बे क्रॉनिकल, १५-७-१९४४

१. बॉम्बे क्रॉनिकल के अनुसार, मुलाकातके अन्तमें गांधीजी ने वहाँ उपस्थित राजाजी को लक्ष्य करके विनोदपूर्वक कहा, "ये तो उस सबके प्रकाशनकी अनुमति दे ही देंगे जिसकी अनुमति उनका 'उप-सम्पादक' देगा।"

२६७. पत्र : 'फ्री प्रेस जर्नल' के प्रधान सम्पादकको

"दिलखुश", पंचगनी
१५ जुलाई, १९४४

प्रिय प्रधान सम्पादक महोदय,

आपका तार[1] मिला। श्री सदानन्दके नाम लिखा मेरा पत्र[2] एक सार्वजनिक प्रश्नका सार्वजनिक उत्तर है और प्रकाशनके लिए है। उचित तो यह था कि मेरे विरुद्ध शिकायत छापने से पहले मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा कर ली जाती। इस विषयमें देरी मुझे सन्देहास्पद लगती है।

यदि श्री सदानन्द कहीं बाहर हैं और निर्देश आवश्यक है तो साधारण-सा तरीका यह होगा कि फोन द्वारा निर्देश प्राप्त कर लिया जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बिस बाज बापू, पृ० १५४-५५

२६८. पत्र : लॉर्ड वेवेलको

पंचगनी
१५ जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

'न्यूज क्रॉनिकल' के श्री गेल्डरको मैंने जो वक्तव्य[3] दिये थे, उनकी प्रामाणिक प्रतियाँ, जो अब भारतीय समाचारपत्रोंमें छप चुकी हैं, आपने अवश्य ही देखी होंगी। जैसा कि मैंने समाचारपत्रोंसे कहा, उनका मुख्य प्रयोजन यही था कि वे आपको दिखाई जायें। किन्तु श्री गेल्डरने, निःसन्देह पूरे नेक इरादेसे, उस भेंट-वार्त्ताका प्रकाशन समयसे पूर्व ही कर दिया।[4] उसके लिए मुझे खेद है। किन्तु यदि उस भेंट-वार्त्ताके

१. १४ जुलाई, १९४४का, जो इस प्रकार था: "आपका पत्र मिला। सदानन्द इस समय दिल्लीमें हैं। मंगलवारतक अवश्य लौट आयेंगे। तदुपरान्त इस ओर ध्यान देंगे।"

२. देखिए पृ० ३९८-४००।

३. देखिए पृ० ३६९-७० और ३७०-७४।

४. देखिए परिशिष्ट १९

कारण आप मेरे १७ जून, १९४४ के पत्रमें[1] किये गये अनुरोधोंमें से कमसे-कम एकको भी मान सके तो भेंट-वार्ताका प्रकाशन छिपा हुआ वरदान ही सिद्ध होगा।[2]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १९-८-१९४४। सी० डब्ल्यू० १०५०६ से भी; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी

२६९. पत्र : शान्तिकुमार न० मोरारजीको

पंचगनी
१५ जुलाई, १९४४

चि० शान्तिकुमार,

तुम तो नहीं थे लेकिन सुमति[3] और जहाँगीरजी [पटेल] ने मेरी पशुताके दर्शन किये।[4] वे मेरी पशुताको भूल गये और मेरे प्रेमको समझ सके। मैं तुम सबके प्रेमपाशमें बँध गया हूँ। मेरी नालायकी तुम्हे बुलाने से रोकती है। लेकिन तुम्हारे बिना मैं कैसे चल सकता था? मुझे उम्मीद है कि तुम सुशीलाके दुःखको प्रेमसे धो डालोगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८४४) से

१. देखिए पृ० ३३७।

२. इसके उत्तरमें वाइसरायने २२ जुलाईके अपने पत्रमें लिखा कि वे जो-कुछ पहले कह चुके थे — अर्थात् यह कि यदि गांधीजी उनके सामने कोई निश्चित और रचनात्मक नीति रखें तो वे उसपर विचार करेंगे — उसके अलावा फिलहाल और कोई उपयोगी बात कहने की स्थितिमें वे नहीं थे।

३. शान्तिकुमार मोरारजीकी पत्नी

४. गांधीजी ने शान्तिकुमार मोरारजीको मनु गांधीके लिए कुछ उपहार और एक पत्र लेकर डोंकपार्टे भेजा था; देखिए पृ० ३२३।

२७०. पत्र : अनन्तराय प्र० पट्टणीको

पंचगनी
१५ जुलाई, १९४४

भाई अनन्तरायं,

तुम्हारा पत्र मिला। "कैसल"[1] में इन्तजाम है, यह तो मथुरादाससे[2] मालूम हो गया था। लेकिन मेरा धन्धा इन्तजामके पीछे भागना नहीं है, बल्कि इन्तजाम ही मेरे पीछे भागते हैं और उनमें से एकाधकी पकड़में मैं आ जाता हूँ।

दूसरे विषयोंके सम्बन्धमें मैं तुम्हारे साथ चर्चा नहीं करना चाहता। फिर नानाभाई रिहा हो गये हैं, इसलिए उनकी मदद तो तुम्हें सुलभ है ही।

वजलभाईके[3] साथ मैं तुम्हें अपनी तुलना नहीं करने दूंगा, क्योंकि गगाभाईके[4] कौशलसे मैं परोक्ष रूपसे ही परिचित हुआ था। मैंने [तुम्हारे] पिताजीको[5] गगाभाईसे ऊपर रखा है। इसके अलावा मेरी जानकारीके मुताबिक वजलभाईको गद्दी वृद्धावस्थामें मिली, इसलिए कोई तुलना नहीं की जा सकती। अतः मैं तो तुम्हारा माप पिताजीके मापदण्डसे ही करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

भावनगर

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२७१. प्रश्नोत्तर[6]

पंचगनी
१५ जुलाई, १९४४

प्रश्न : क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि क्रिप्स-योजनामें और गेल्डरके साथ आपकी भेंट-वार्तामें आपकी जो योजना सामने आई है उसमें क्या अन्तर है?

१. पंचगनीमें अनन्तराय पट्टणीका आवास

२. मथुरादास त्रिकमजी

३ और ४. क्रमशः वजकभाई गौरीशंकर ओझा और उनके पिता भावनगरके दीवान गौरीशंकर उदयशंकर ओझा

५. प्रभाशंकर पट्टणी

६. ये प्रश्न यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडियाके लन्दन-कार्यालय द्वारा भेजे गये थे।

उत्तर: मेरी योजनामें सारे भारतकी पूर्ण स्वाधीनताको तत्काल मान्य करने की तजवीज है। इसमें युद्ध-कालकी अवधि-भरके लिए उन मर्यादाओंकी गुंजाइश रखी गई है जो मित्र-राष्ट्रोंकी कार्रवाइयोंके लिए आवश्यक हों। क्रिप्स-योजनाको जैसा मैंने समझा, उसका सम्बन्ध सद्य: वर्त्तमानकी अपेक्षा भविष्यकी व्यवस्थासे अधिक था। इसके अलावा मेरी रायमें क्रिप्स-योजनाका मतलब भारतका विखण्डन था; और उसमें देशी राज्योंको पूरे देशके लिए एक विखण्डक तत्त्वके रूपमें खड़ा किया गया था। किन्तु यदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ मेरी योजनाको क्रिप्स-योजनासे बहुत भिन्न न समझते तो उसे मान लेना उनके लिए और भी सरल होना चाहिए।[1]

जिन जिलों अथवा प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत है, वहाँ यदि श्री जिन्ना केवल मुसलमानोंके ही मत-संग्रहपर आग्रह करें तो क्या होगा?

न तो कायदे-आजम जिन्ना और न मुस्लिम लीगने राजाजी की योजनापर[2] कोई राय प्रकट की है। मैं उसके बारेमें पहलेसे कुछ कहना पसन्द नहीं करूँगा। राजाजी मेरे साथ हैं। मेरी सीमित शक्तिको बचाये रखने के लिए हमने तय किया है कि योजनासे उत्पन्न होनेवाले प्रश्नोंको वही निपटायें। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं देशी और विदेशी प्रश्नकर्त्ताओंसे अपील करूँगा कि वे मुस्लिम लीगके निर्णयके बारेमें पहले से ही कुछ तय न कर लें।

आप राष्ट्रीय सरकारमें कांग्रेस और लीगका अनुपात किस प्रकार निर्धारित करेंगे?

मुझे तफसीलके बारेमें कुछ नहीं कहना चाहिए। मैंने अपने विचारका जो संकेत दिया है उससे अगर अधिकारियोंको कोई सन्तोष प्राप्त हुआ हो, तो उन्हें जेलोंके दरवाजे खोल देने चाहिए, और जो लोग अधिकृत तौरपर बोल सकते हैं, उन्हें मेरे प्रस्तावपर बोलने देना चाहिए अथवा कमसे-कम मुझे उनसे परामर्श करने देना चाहिए। अभी तो हाल यह है कि मैंने अपनी व्यक्तिगत राय उन्हें बताये बिना ही जनताके सामने रखकर उन्हें शायद अटपटी स्थितिमें ही डाला है। प्रकाशन[3] समयसे पहले ही हुआ है और मेरी इच्छासे नहीं हुआ है।

क्या आप खुद श्री जिन्नासे मिलेंगे?

यह प्रश्न तथ्योंके बारेमें अज्ञानके कारण उत्पन्न होता है। मैं कायदे-आजम जिन्नासे मिलने को सदैव तैयार हूँ।

बम्बई योजना[4] के विषयमें आपके क्या विचार हैं? क्या आप सोचते हैं कि जैसा संकट बंगालमें उपस्थित हो गया था इस प्रकारकी योजनासे वह हमेशाके लिए टाला जा सकता है?

१. देखिए पृ० ४०१ भी।
२. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।
३. न्यूज क्रॉनिकल के स्टुअर्ट गेल्डर द्वारा, देखिए परिशिष्ट १९।
४. भारतके आर्थिक विकासकी एक पन्द्रह वर्षीय योजना, जिसे पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, जे० आर० डी० टाटा, घनश्यामदास बिड़ला, अरदेशिर दलाल, श्रीराम, कस्तूरभाई लालभाई, ए० डी० श्रॉफ और जॉन मथाईने तैयार किया था।

बम्बई योजना युद्धोत्तर योजना है। मगर यह प्रश्न तो इस योजनाको तैयार करनेवालों से पूछा जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
गांधी-जिन्ना टॉक्स, पृ० ८१-८२

२७२. पत्र : नन्दू कानुगाको

[१५ जुलाई, १९४४ के पश्चात्][1]

श्री नन्दूबहन,

...[2] महत्त्वपूर्ण भाग तो रह ही जाता। बा के स्मारकके सम्बन्धमें हमारे लोग लखपतियोंके पास गये, इसमें मुझे तो कोई बुराई नही लगी। वे जो दें उसे लेने से हम इनकार कैसे कर सकते हैं? उनके प्रति हमारा द्वेष तो हो ही नहीं सकता। शेष मिलने पर।

अहमदाबाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२७३. पत्र : नवीन गांधीको

[१५ जुलाई, १९४४ के पश्चात्][3]

चि० नवीन,[4]

तू आलसी है क्या? तुझे लगता है कि मंजूके[5] बारेमें मुझे कोई चिन्ता ही नहीं है और इसीलिए तू मुझे पत्र नहीं लिखता। जो भी हो, मुझे तो नियमसे पत्र चाहिए ही।

डाक्टरकी फीसके बारेमें सुशीलाबहनने मुझसे बात की थी। वह दिल्लीके लिए रवाना हो गई है; इसलिए मुझे विचार तो करना ही है। क्या तेरी डाक्टरोंसे बात हुई है? हुई हो तो मुझे तफसीलवार लिखना। फिर मैं डाक्टरोंको लिखूंगा। फीसकी बात उठेगी, ऐसा तो मैंने सपनेमें भी नहीं सोचा था। लेकिन इसकी चिन्ता तुझे नहीं करनी है; मुझे करनी है। अपनी राय बताना। अब वहाँ तेरे साथ कौन है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१ और ३. साधन-सूत्रमें ये पत्र १५ जुलाई, १९४४ के पत्रोंके बाद रखे गये हैं।
२. साधन-सूत्रमें यहाँ छूटा हुआ है।
४ और ५. जयसुखलाल गांधीके भाई व्रजलाल गांधीके पुत्र और पुत्री

२७४. पत्र : सुशीला गांधीको

[१६ जुलाई, १९४४ या उसके पूर्व][1]

मैंने अच्छी तरह विचार किया है। मेरा खयाल है कि सीताको[2] सेवाग्राममें ही रहना चाहिए। उसे आर्यनायकम् और आशा देवीका सत्संग मिलेगा। वहाँ वह तालीमी संघकी तालीम लेगी। गोमतीकी छायामें रहेगी। गोमती साध्वी महिला है। वहाँ काशी[3] और दुर्गा तो है ही। और इस तरह उसकी गुजराती, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजीकी देखभाल होगी। यदि यह तुझे पसन्द नही तो यहाँके जिस पारसी स्कूलमें मैं रोज जाता हूँ [सीताको] उसमें रखा जा सकता है। बस, इससे आगे नही।

तेरे बारेमें अभी बादमें विचार करेंगे।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९४२) से

२७५. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

पंचगनी
१६ जुलाई, १९४४

एक पत्रमें मुझसे पूछा गया है कि रिहा होनेवाले जिन लोगोंको ये प्रतिबन्धक आदेश प्राप्त हुए हैं कि वे अमुक क्षेत्रसे बाहर न जायें या समय-समयपर पुलिस थानेमें अपनी हाजिरी देते रहें, उन्हें क्या करना चाहिए। मैं ऐसे सभी प्रतिबन्धोंको अपमानजनक मानता हूँ और मैं स्वयं उनका पालन नही कर सकता। फिर भी, मैं ऐसे लोगोंको भी जानता हूँ जिन्होंने जेलके कष्टोंको अब और अधिक बरदाश्त न कर सकने के कारण इस प्रतिबन्धित स्वतन्त्रताको ही पसन्द किया है। उन्होंने ठीक किया है या गलत, इसका फैसला मैं नही करूँगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्यके अनुसार ही कष्ट-सहन करता है। किन्तु सरकारके लिए यह एक गम्भीर और विचारणीय प्रश्न है कि क्या 'युद्ध-प्रयासोंका यह एक अनिवार्य अंग होना चाहिए कि ऐसे नौजवान स्त्री-पुरुषोंकी आत्माको चोट पहुँचाई जाये जिनका एकमात्र दोष यही है कि उन्हें सबसे बढ़कर अपने देशकी आजादी प्यारी है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १७-७-१९४४, और *बॉम्बे क्रॉनिकल*, १६-७-१९४४ भी

१. डाककी मुहरपर से
२. सुशीला गांधीकी पुत्री
३. छगनलाल गांधीकी पत्नी

२७६. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको — अंश

१६ जुलाई, १९४४

. . . मेरी सलाह तो तू मानता ही नहीं है। तू बिस्तरपर पड़ा हुआ है। मेरी चिन्ता करने के बजाय प्रभुका स्मरण करेगा तो जल्दी उठेगा। यदि ऐसा न हो तो भी तुझे शान्ति तो मिलेगी। . . . मैं जो-कुछ भी करता हूँ सो बहुत सोच-समझकर और सावधानीपूर्वक करता हूँ।[1] एक समय था जब तू मेरे इशारा-भर करने से समझ जाता था। मेरा हेतु और मेरे वचनोंका अभिप्राय तू औरोंको समझा सकता था। लेकिन अब ऐसा नहीं है। इसका क्या कारण होगा? इसपर विचार करना। कारण तुझमें है, अर्थात् तेरे बीमार होने में है।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० २०१

२७७. पत्र : जयकृष्ण प्र० भणसालीको

पंचगनी
१६ जुलाई, १९४४

चि० भणसाली,

अनुशासन तो यही है कि तुम्हें मुझसे पूछना चाहिए। यदि तुम उसका पालन नहीं करोगे तो और कौन करेगा? लेकिन इसमें भला मैं तुम्हारा क्या मार्गदर्शन कर सकता हूँ? तुम्हें आत्मविश्वास हो तो भले जाओ और लोगोंके दुःख हरो। बाकी तो तुम मुझसे आगे निकल गये हो और मुझे इसी बातसे तसल्ली होती है कि मेरी शिक्षण-पद्धति फ़लीभूत हुई है। और असली शिक्षक तो वही है जिसका शिष्य उससे बढ़-चढ़कर निकले? ईश्वर तुम्हारी शक्तिमें और भी वृद्धि करे।

मैं अपने-आपको बार-बार इस बातकी याद दिलाता हूँ कि मुझे अगस्तमें जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी वहाँ जाना है। यहाँकी आबोहवा मुझे माफिक तो आती है। सबको बताना। मणिलाल और सीता आज आ रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८३६५) से। सी० डब्ल्यू० ७१७५ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

१. मथुरादास त्रिकमजीको स्टुअर्ट गेल्डर द्वारा भेंट-वार्ताका प्रकाशन अच्छा नहीं लगा था; देखिए परिशिष्ट १९।

२७८. पत्र: विन्स्टन चर्चिलको[1]

"दिलखुश", पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

प्रिय प्रधान मंत्री,

खबर है, आप इस सीधे-सादे "नंगे फकीर" को — मेरा वर्णन करने के लिए ये शब्द आपके ही द्वारा प्रयुक्त बताये जाते हैं — कुचल डालने की इच्छा रखते हैं। मैं बहुत अर्सेसे फकीर — और वह भी नंगा, जो और भी कठिन काम है — बनने की कोशिश कर रहा हूँ। इसलिए मैं इस वर्णनको अपनी प्रशंसा ही समझता हूँ, हालाँकि यह बेइरादतन की गई प्रशंसा है। तो मैं आपसे उसी हैसियतसे अनुरोध करता हूँ कि मुझपर विश्वास कीजिए और मेरा उपयोग मेरी और अपनी कौमकी सेवाके लिए तथा उसके द्वारा संसारकी सेवा के लिए कीजिए।

आपका सच्चा मित्र,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०४९९) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। *बिस वाज बापू*, पृ० १४० भी

२७९. पत्र: लॉर्ड वेवेलको

"दिलखुश", पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

वाइसराय महोदय
वाइसरायका कैम्प

प्रिय मित्र,

मैंने कल[2] आपको फिर पत्र लिखने का साहस किया, जिसमें अपना पिछला अनुरोध दोहराया है। मुझे लगता है कि यदि साथका पत्र[3] प्रधान मंत्रीको न भेजूँ

१. *महात्मा गांधी — द लास्ट फेज*, जिल्द १, भाग १, पृ० ३२ में प्यारेलाल बताते हैं: गांधीजी का "प्रधान मंत्रीके नाम लिखा यह पत्र रास्तेमें कहीं गुम हो गया। किसी महत्त्वपूर्ण पत्रका अपने स्थानतक न पहुँचनेका यह गांधीजीका पहला अनुभव था। अतः दो महीने बाद इसकी एक नकल चर्चिलको भेजी गई। इसके उत्तरमें वाइसरायके मार्फत केवल धन्यवाद-सहित प्राप्तिकी सूचना भेज दी गई।" *हिन्दू*, १९-७-१९४५ के अनुसार गांधीजी ने १८-७-१९४५ को यह पत्र एक वक्तव्यके साथ समाचारपत्रोंमें प्रकाशनके लिए जारी कर दिया; देखिए खण्ड ८१। इस पत्रके सम्बन्धमें चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके साथ हुई गांधीजीकी बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट २०।

२. लेकिन इस पत्रपर १५ जुलाईकी तिथि दी गई थी; देखिए पृ० ४१०-११।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

तो मेरा प्रयत्न अधूरा ही रहेगा। यदि आप सहमत हों तो क्या मैं यह पत्र उनके पास शीघ्रातिशीघ्र पहुँचाने में आपकी सहायता प्राप्त कर सकता हूँ?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०५०२) से; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ११ भी

२८०. पत्र: सरोजिनी नायडूको

पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

प्रिय अम्माजान,

तुम्हारा बहुमूल्य पत्र मिला। मुझ बेचारेपर तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिए। कुछ समयतक मेरे साथ धीरजसे काम लो। कभी-न-कभी कुहासा छँटेगा।

तुम्ही मेरा सन्देश हो। उर्दू सम्मेलनमें[1] तुम्ही सर्वेसर्वा रहोगी। इसलिए मुझसे औपचारिक सन्देशकी माँग मत करो। सन्देश माँगकर तुम मुझे घोर संकटमें डाल दोगी। मैंने सन्देश भेजना बन्द कर दिया है। हमारे सामने जो उद्देश्य है उसे पूरा करने के लिए मुझे अपनी एक-एक रत्ती शक्ति बचाने दो।

अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करने में तुम सब लोगोंको और भी सतर्क होना चाहिए। या यह जिम्मेदारी सिर्फ मेरे लिए ही है?

कर्तैयेका प्यार

श्रीमती सरोजिनी नायडू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२८१. पत्र: अशफाक हुसैनको

१७ जुलाई, १९४४

प्रिय अशफाक,[2]

मुझे नहीं मालूम था कि तुम इतने लापरवाह पाठक हो। क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि यदि अध्यक्षके पेश किये बिना वह चीज लीगकी समितिके सामने रखी जानी थी तो उसे चर्चाके लिए पहले जनताके सामने रखना चाहिए? अब लीग और अन्य लोग इसपर अपनी राय दे सकते है।

सेवाग्राममें मिलने की उम्मीद रखता हूँ।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. २२ जुलाईको हैदराबादमें होनेवाली अखिल भारतीय उर्दू कांग्रेस
२. मुहम्मद अलीके एक सहयोगी

२८२. पत्र : मुहम्मद अली जिन्नाको

"दिलखुश", पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

भाई जिन्ना,

एक समय था जब मैं आपको मातृभाषामें बोलने के लिए प्रेरित कर सका था। आज मैं इस भाषामें लिखने का साहस कर रहा हूँ। आपको मिलने का निमन्त्रण तो मैं जेलसे दे चुका हूँ।[1] जेलसे रिहा होने के बाद मैं आजतक आपको नही लिख सका। लेकिन आज लिखने को प्रेरित हुआ हूँ। आप जब चाहे तब मिलें। मुझे इस्लामका अथवा यहाँके मुसलमानोका दुश्मन न मानें। मैं तो [सदा] आपका और सारे संसार का मित्र तथा सेवक रहा हूँ। मेरा त्याग न करना। इसके साथ पत्रका उर्दू अनुवाद भेज रहा हूँ।[2]

आपका भाई,
गांधी

[पुनश्च :]

आप उर्दूमे लिखें। कनु[3] सुन्दर अक्षरोंमें गुजराती लिखता है।[4]

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल। हितवाद, १-८-१९४४ भी

१. देखिए पृ० ७१-७२।

२. यह वाक्य हितवाद से लिया गया है। आगेका अंश गांधीजी की लिखावटमें पत्रके उर्दू अनुवादके नीचे लिखा हुआ है।

३. सम्भवतः गांधीजी ने यह पत्र कनुको बोलकर लिखाया था।

४. २४ जुलाईके अपने उत्तरमें मु० अ० जिन्नाने, अन्य बातोंके साथ-साथ, इस प्रकार लिखा था: "मेरी वापसीपर, जो सम्भवतः अगस्तके मध्यमें होगी, यदि आप मुझसे बम्बईमें मेरे निवास-स्थानपर मिल सकें तो मुझे खुशी होगी।...तबतक मैं और कुछ नहीं कहना चाहूँगा। मुझे समाचारपत्रोंमें यह पढ़कर बेहद खुशी हुई कि आपका स्वास्थ्य सुधर रहा है और आशा है कि आप जल्द ही बिल्कुल ठीक हो जायेंगे।"

२८३. पत्र : मनु गांधीको

पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

चि० मनुड़ी,

तुझे दूधके प्रति अरुचि मिटा ही देनी चाहिए। जितना वैद्य कहे उतना स्वादसे पीना चाहिए। मेरे पास रहने के वाद रुचि-अरुचि कैसी? जो खाना ही चाहिए उसकी रुचि और जो नही खाने लायक हो उसकी अरुचि होनी चाहिए।

युक्ति बिलकुल अच्छी हो जाये तो मेरा विश्वास वैद्योंपर जम जायेगा, और यदि तेरी आँखें ठीक हो जायें और मलेरिया मिट जाये, तो फिर मेरे लिए तू दवा भेज देना।

तेरी लिखावट सुधरती जा रही है। परन्तु अभी सुधारकी वहुत गुंजाइश है।

सुशीला बहन दिल्लीके लिए रवाना हो गई है। इसलिए उसका पत्र मिलने में देर लगेगी।

देवदास वहाँ आ गया, यह अच्छा हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफ़िल्म (एम० एम० यू०/२४) से

२८४. पत्र : क० मा० मुंशीको

पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

भाई मुंशी,

तुम्हारा पत्र मिला। सोसायटी आरम्भ करने में मुझे कोई हर्ज दिखाई नही देता। सर पुरुषोत्तमदाससे पूछना। मंगलदास[1] और मावलकरसे भी मिल लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७६७८) से। सौजन्य: क० मा० मुंशी

१. मंगलदास पकवासा

२८५. पत्र : शान्तिकुमार न० मोरारजीको

पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

चि० शान्तिकुमार,

साथका पत्र पढ़ना। ऐसे व्यक्तिका यदि कहीं उपयोग हो सके तो उसे ले लेना। विश्वासपात्र हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। उसके लिए विशेष रूपसे जगह बनाने की जरूरत नही है। यदि तुम्हें कहीं भी ऐसे व्यक्तिकी जरूरत जान पड़े तभी इस पत्रका उपयोग करना।

कोई आशुलिपिक क्या तुम्हारे ध्यानमें है? महाराष्ट्र कमेटी भले ही हिन्दी भाषणोंको छपवाये और बेचे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८०२) से। सौजन्य: शान्तिकुमार न० मोरारजी

२८६. पत्र : बाल गंगाधर खेरको

पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

भाई खेर,

तुम यहाँ हाजिरी दिये बिना कैसे भाग गये? फुरसत मिले तो आ जाना, इसपर मैं तुम्हारी यह चूक माफ कर दूँगा। मैं जो कर रहा हूँ उसके सम्बन्धमें अपनी और अन्य लोगोंकी राय भेजना।

बापूके आशीर्वाद

श्री बालासाहेब खेर
भूतपूर्व मन्त्री
खार, बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७६९) से

२८७. पत्र : नागेश वासुदेव गुणाजीको

पंचगनी
१७ जुलाई, १९४४

भाई गुणाजी,

अगर तुम नहीं पढ सकते है तो इंदु[1] पढ़कर सुनायेगी। हम एक दूसरोंको इंग्रेजीमें क्यों लिखें?

अच्छा है कि इंदु और भाई टेंडुलकरके[2] बारेमें तुम्हारे दिलका परिवर्तन हूआ है। दा० के छुटने पर अगर-आप सब चाहेंगे तो मैं सेवाग्राममें शादी करा दूंगा। से० [सिवाग्राम] में शादी करने की शर्त इंदु जानती है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० १०९५२) से; सौजन्य : तेंडुलकर। पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२८८. सन्देश : बंगाल प्रान्तीय छात्रसंघको – २[3]

प्रकाशनके लिए नहीं

पचगनी
१७ जुलाई, १९४४

आपने जो भी अच्छे कार्य किये होंगे उन सबके लिए मेरा प्रचुर आशीर्वाद तो आपके साथ है ही। सभी कार्यकर्त्ताओंको मेरी सलाह यह है कि उन्हें सभी अच्छी सेवाको अपने-आपमें आशीर्वाद मानना सीखना चाहिए। अगर सच्चा और सतत् कार्य न किया जाये तो बड़ेसे-बड़े आदमीके आशीर्वादका भी क्या मतलब? आशीर्वादसे अक्सर उसे प्राप्त करनेवालोके मनमें यह भ्रम पैदा हो जाता है कि उनका कार्य तो समाप्त हो गया है। इन शब्दोंको और अधिक प्रयत्नका अनुप्रेरक बनने दीजिए। मुझे अपने कार्य-कलापसे आपको अवगत रखना चाहिए।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।. बॉम्बे क्रॉनिकल, २१-७-१९४४ भी

१ और २. नागेश गुणाजीकी पुत्री इन्दुमती और डॉ० ए० जी० तेंडुलकर। इन दोनोंका विवाह १९ अगस्त, १९४५को सम्पन्न हुआ था।

३. यह सन्देश अरुण दासगुप्त तथा अजित रायको दिया गया था; उनके अनुसार: "१७ तारीखको हम फिर महात्माजी से मिले। हमने उन्हें बताया कि हम कांग्रेसके कार्यक्रमकी अपनी समझके अनुसार असममें काम कर रहे है। जापानियोंका मुकाबला करने, जमाखोरोंसे जूझने, जनताके लिए खाद्य-सामग्री जुटाने तथा बंगालके लोगोंको राहत पहुँचाने के लिए हमने एकताका आह्वान किया है। आशीर्वादके लिए हमारे अनुरोधपर गांधीजी ने एक सन्देश लिख दिया।..." देखिए पृ० ४०५ भी।

२८९. पत्र : ए० कालेश्वर रावको

पंचगनी
१८ जुलाई, १९४४

प्रिय कालेश्वर राव,

तुम्हारा ज्ञानवर्धक पत्र मैंने उत्सुकतासे पढ़ा। क्या साम्यवादियोंसे अपनी बातचीत या पत्र-व्यवहारमें मैं तुम्हारे पत्रका उपयोग कर सकता हूँ?[1] तुम्हारी बताई कुछ बातें तो बड़ी दु:खदायी हैं।

मेरे सबसे ताजे पराक्रमपर अपनी प्रतिक्रिया मुझे भेजना।

उपनिषदोंके जो उद्धरण दिये हैं[2] उनके रूपमें तुम्हारा पराक्रम मेरे सामने है। दो-चार क्षणोंकी फुरसत मिलते ही मैं उनमें से कामके अंश छाँट लूँगा।

तुम्हारा,
बापू

श्री ए० कालेश्वर राव

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२९०. पत्र : सुधीर घोषको

"दिलखुश", पंचगनी
१८ जुलाई, १९४४

प्रिय सुधीर,

प्यारेलालके नाम और नरगिसबहनके[3] नाम भी तुम्हारा पत्र देखा। अपनी सुविधानुसार जब चाहो तब मुझसे मिलने आ जाओ। श्री एमहर्स्टको[4] मैं जानता

१. पूरणचन्द्र जोशीको लिखे अपने पत्रमें गांधीजी ने इनका उपयोग किया भी; देखिए "पत्र: पूरणचन्द्र जोशीको", ३०-७-१९४४।

२. रेमिनिसेंसेज ऑफ गांधीजी, पृ० १४१, में चन्द्रशेखर शुक्ल बताते हैं कि ए० कालेश्वर रावने अपने पत्रमें उपनिषदोंके कुछ ऐसे अंश उद्धृत किये थे, जो गांधीजी की सत्य और अहिंसाकी शिक्षासे मेल खाते थे। उन्होंने उसी वर्ष उपनिषद् पाठमाला नामक एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी।

३. नरगिस कैप्टेन

४. ऐनर्दे एमहर्स्ट कृषि अर्थशास्त्री और शिक्षाशास्त्री, रवीन्द्रनाथ ठाकुरके निकट सहयोगी; १९४४ से बंगाल सरकारके कृषि सलाहकार; और शान्तिनिकेतनके ग्रामीण विकास संस्थान श्रीनिकेतनके संस्थापक। "बंगालके जलस्रोतोंके उपयोगकी एक विकास योजना तैयार करने" का अपना काम पूरा करके अब वे इंग्लैण्ड लौट रहे थे। गांधीजीज एमिसरी, पृ० ४९-५०, में सुधीर घोष बताते हैं:

हूँ। शायद एक बार उनसे मिलने का सौभाग्य भी प्राप्त कर चुका हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें वे साबरमती आश्रम आये थे और तब उन्होंने यह राय जाहिर की थी कि यहाँकी बबूलकी रोपाई सबसे अधिक सोच-विचारकर की गई है और यह सबसे अधिक उपयोगी है। और प्रयोजनोंको अलग रखें तो भी अगर वे आयें और उन्हें मुझसे मिलने की अनुमति दी जाये तो मैं उनसे मिलना चाहूँगा।

पंचगनीमें मुलाकातके लिए तो अब शायद बहुत कम समय रह गया है। प्रभु की इच्छा रही तो मैं उम्मीद करता हूँ कि अगस्तके आरम्भमें मैं सेवाग्राममें रहूँगा। तिथि तुम्हें समाचारपत्रोंसे मालूम हो जायेगी।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल।

२९१. पत्र : रॉय वॉकरको

"दिलखुश", पंचगनी
१८ जुलाई, १९४४

प्रिय वॉकर,

आपका पत्र[1] पाकर बड़ी खुशी हुई। आपकी पुस्तिका भी मिल गई थी। सरसरी निगाहसे देख गया। कोई बात खटकी नहीं। मुझे यह बता देना चाहिए कि मैंने उसे आलोचनात्मक दृष्टिसे नहीं पढ़ा। लेकिन मैंने प्यारेलाल और खुर्शेद नौरोजीसे कहा है कि वे उसे ध्यानपूर्वक पढ़कर आपको अपनी प्रतिक्रियाएँ भेजें। मुझे आपका दूसरा संकलन[2] पढ़ने की प्रतीक्षा रहेगी।

जहाँतक अन्तिम अनुच्छेदका[3] सम्बन्ध है, मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं ईश्वरके बताये रास्तेपर चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ। किसी देवतामें मेरा विश्वास नहीं है, लेकिन मैं सत्य और प्रेमके शाश्वत नियममें विश्वास रखता हूँ और इसीको मैंने अहिंसाका नाम दिया है। यह नियम किसी राजाके नियमकी तरह जड़ नहीं

"...मैंने सोचा कि अगर वे गांधीजी से मिल लें और ब्रिटिश सरकारमें अपने मित्रोंको... गांधीजी की मनःस्थितिके बारेमें अपनी राय तथा ब्रिटिश सरकार और गांधीजी के बीच सुलहकी सम्भावनाओंके विषयमें बतायें तो यह बड़ी अच्छी बात होगी। गांधीजी के साथ उनकी और मेरी जो दो मुलाकातें हुई उनके दौरान गांधीजी के अगले सम्भावित राजनीतिक कदमके बारेमें कोई संकेत नहीं मिला।..."

१. १० मई, १९४४ का, जिसमें गांधीजीसे अनुरोध किया गया था कि १९४३ में प्रकाशित उनके वचनोंके संकलन **द विजडम ऑफ गांधी इन हिज ओन वर्ड्स** पर वे अपनी सम्मति भेजें।

२. तात्पर्य शायद **सोर्ड ऑफ गॉल्ड** से है। गांधीजी की यह जीवनी १९४५ में प्रकाशित हुई थी।

३. जो इस प्रकार था: "इस युद्ध-जर्जर यूरोपमें हममें से जो लोग शान्तिवादी हैं उन्हें यह जानकर विजय-गर्व-सा अनुभव हुआ कि आपको शारीरिक स्वतन्त्रता फिरसे मिल गई है, क्योंकि आत्मिक स्वतन्त्रतापर तो भारत कार्यालयका कोई भी कार्य किसी प्रकारका अंकुश लगा ही नहीं सकता। प्रभुसे हमारी यही प्रार्थना है कि आप आगामी अनेक वर्षोंतक विश्वकी एक कल्याणकारी महानतम शक्ति बने रहें।"

है। यह एक सजीव वस्तु है—यह विधान और इसका विधायक दोनो एक ही है। जो भी इस सत्यका साक्षात्कार कर लेते है उनके लिए यही विधाता व्यक्तिगत देवता बन जाता है।

श्री रॉय वॉकर
डिक शेपर्ड हाउस
एण्डस्ले स्ट्रीट
लन्दन डब्ल्यू० सी० १

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२९२. एक पत्र

"दिलखुश", पचगनी
१८ जुलाई, १९४४

आपका इसी महीनेकी ११ तारीखका तार यहाँ १४ को पहुँच गया था। लेकिन यहाँके सहायकोके पास अधिक काम होने के कारण पत्र मुझे आज दिया गया। और जो पत्र लिखने का वादा किया था वह नही लिख पाया, उसका कारण मेरे पास समयका अभाव था। जाहिर है कि मैंने जो पत्र लिखने का वादा किया था, उसके बारेमें मैं बिलकुल भूल ही गया। मुझे दु:ख है, क्योकि मै जानता हूँ कि आप मेरा कितना ध्यान रखते है और आपके मनमें मेरे लिए कितना अधिक स्नेह है।

मै यह इलाज ले रहा हूँ: पूरे शरीरपर लगभग एक घण्टेतक मालिश और करीब बीस मिनटतक लम्बे टबमें लेटकर, गरम पानीसे स्नान। इससे मुझे बड़ा आराम मिलता है। अक्सर टबमें जाने से पहले मै पाँच-पाँच मिनटतक गरम और ठण्डे पानीका कटि-स्नान भी लेता हूँ।

मेरा भोजन तो आप जानते ही है—दूध, सब्जियाँ, फल और गुड़। मेरा खयाल है कि आप यह भी जानते ही होगे कि मै तीन और चार बजेके बीच मिट्टीकी पट्टी रखता हूँ। साफ मिट्टीको पानीसे सानकर उसका लौंदा बना लेता हूँ। रातको सोनेसे पहले भी ऐसी ही पट्टी लेता हूँ। एक बहुत कड़वी दवा लेता हूँ—मिलमा। इसे पानीमें उबालकर छानते है और फिर दूधमें लेते है। मैने यह सात दिनतक ली है। अब सात दिनसे ज्यादाका नागा हो चुका है। कलसे फिर सात दिनोतक लेने का इरादा है।

पूनामें मैने एक दवा ली थी, जिसे अंकुशकृमि-नाशका खास इलाज माना जाता है। उसका नाम है कार्बन टेट्राक्लोर एथिलिन।

मै प्रगति कर रहा हूँ। डॉ० जीवराज मेहता पचगनीमे है और मेरी देखभाल कर रहे हैं। सुशीलाको आप जानते ही है, वह भी जेलमें मेरे साथ थी। उसे मैंने दिल्ली भेज दिया है।

डाक्टरी रिपोर्टके अनुसार, एनीमिया धीरे-धीरे खत्म हो रहा है और सम्भवतः अंकुशकृमि तथा एंटामीबा हिस्टोलाइटिका, ये दो शत्रु अभी दबे हुए हैं, लेकिन अभी जड़से नहीं मिटे हैं। यदि ईश्वरने चाहा तो मैं अगस्तके आरम्भमें सेवाग्राम पहुँचने की उम्मीद करता हूँ। कमसे-कम इस महीनेके अन्ततक तो यहीं हूँ।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२९३. पत्र: के० बी० जोशीको

"दिलखुश", पंचगनी
१९ जुलाई, १९४४

प्रिय जोशी,

मैं सोच ही रहा था कि इतने समयसे तुम्हारा कोई पत्र क्यों नहीं आया। कुछ ही दिन हुए, तुम्हारे बारेमें मैं पूछ रहा था। वैकुण्ठभाईको[1] जितनी सूचना थी, वह सब उन्होंने मुझे दी। मैं तुमसे बिलकुल सहमत हूँ कि कुछ किया जाना चाहिए और वह भी शीघ्र ही। सौभाग्यसे वैकुण्ठभाई बिलकुल जागरूक हैं और मुझे आशा है कि कुछ किया जायेगा। तुम मुझसे सम्पर्क बनाये रखना, किन्तु तुम हमारे अन्तिम लक्ष्यसे तो अवगत हो ही। हमें एक ऐसा तरीका ढूँढ़ निकालना है जिसमें सभी अपने-अपने घरमें उसी प्रकार कागज बना सकें जिस प्रकार घरमें ही कताई हो सकती है। मैं जानता हूँ कि समस्या कठिन है, किन्तु यदि हमें चालीस करोड़ लोगोंकी सेवा करनी है तो हमें ऐसा तरीका ढूँढ़ निकालने में सफल होना ही है, जिस तरीकेकी रूपरेखा मैंने प्रस्तुत की है। आरम्भके प्रतिबन्धमें मैंने यदि कुछ ढिलाई की है तो केवल उस ध्येयतक पहुँचने की ही खातिर।

तुम्हारा,
बापू

श्रीयुत के० बी० जोशी
मार्फत तुलपुलेका बंगला
११९५/३ शिवाजी नगर
पूना ४

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७६१) से

१. गगनविहारी मेहताके भाई वैकुण्ठ मेहता

२९४. पत्र : डॉ० के० सी० घरपुरेको

पंचगनी
१९ जुलाई, १९४४

प्रिय डॉ० घरपुरे,

मंजुके[1] बारेमें निराशाजनक खबरें मिलती रही हैं। उसके बारेमें सही समाचार भेजने की कृपा करें तो बड़ा आभार मानूँगा। चूँकि डॉ० जीवराज मेहता मेरे साथ हैं; इसलिए अगर आपकी रिपोर्ट तकनीकी हुई तो भी उसे समझने में वे मेरी मदद करेंगे।

डॉ० सुशीला अभी यहाँ नही है। मैंने उससे पूना जाने और मंजुके अस्पतालसे छुट्टी पाने तक वहीं रहने को कहा है।

शल्य-चिकित्सककी फीसके बारेमें आपसे उसकी जो बात हुई थी उसके बारेमें उसने मुझे बताया। मैंने तो माना था कि ऐसे मामलेमें शायद फीस नहीं लगेगी। मंजुलाके पास अपना कोई साधन नही है। उसके अपने भाई उदीयमान कलाकार हैं। वे बड़ी मुश्किलसे दे पायेंगे। लेकिन मैं दूसरा पक्ष समझ सकता हूँ। यदि मैं डॉ० पीटसे थोडा भी परिचित होता तो खुद उन्हे लिखता। जरूरी समझें तो उन्हे यह दिखा सकते हैं। अगर वे महज एक सैनिक सर्जन है तब तो मैं उनकी जरूरतें अच्छी तरह समझ सकता हूँ। मेरे ऐसे मित्र हैं जिनकी मदद मैं ले सकता हूँ। फीस लेने के बारेमें संकोचकी जरूरत नही है। उस स्थितिमें आप बिल मुझे भेज दीजिए।

मैं आशा करता हूँ अन्तमें मंजुला ठीक हो जायेगी।[2]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य प्यारेलाल

१. नवीन गांधीकी बहन; देखिए पृ० ४१४।

२. डॉ० के० सी० घरपुरेने उत्तरमें अपने २८ जुलाई, १९४४ के पत्रमें कहा था : "कुमारी मंजुका तो ऑपरेशन बिलकुल असफल रहा। उसके चेहरेपर चमड़ी लगाई थी, वह चिपकी नहीं है और इसलिए कु० मंजु ऑपरेशनके बाद पहलेकी अपेक्षा न बेहतर है न बदतर। चमड़ी लगाने में कभी-कभी ऐसा हो जाता है। यह चिपक भी जाती है और नहीं भी। लेकिन छह महीने बाद फिरसे चमड़ी लगाई जा सकती है।"

२९५. पत्र : स्वामी आनन्दको

१९ जुलाई, १९४४

भाई स्वामी,

तुम्हारा पत्र मिला। वैकुण्ठभाईका भी मिला। उसका उत्तर मैं आज तो इसी पत्रमें शामिल कर रहा हूँ। मुझे डाकको निपटाने का ध्यान रखना है — हमें भला क्या मान-सम्मानकी जरूरत है? मेरा सुझाव तो यह है कि 'तीनों'[1] रहो तो घीसे भी चिकना। लेकिन अगर बापा तुम्हें न पचा सकें तो तुम्हें उनकी पकड़में से निकल ही जाना चाहिए। त्यागपत्र दिये बिना चले तो चलाना चाहिए। मतलब यह कि अगर हमारा काम शोभान्वित हो जाता है तो इतना काफी है।

नानाभाईको लिखना कि वह काम चालू रखे। भाई अनन्तरायके साथ मेरा पत्र-व्यवहार चल रहा है।[2] उसका उत्तर मधुर था। मुझे लगता है कि सब-कुछ ठीक ही चलेगा।

बापाने जो निर्णय दिया हो उसकी नकल तैयार करके भेजना ताकि मैं मार्ग-दर्शन कर सकूँ।

कठिनाई आये तो यहाँ चले आना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२९६. पत्र : आनन्द तोताराम हिंगोरानीको

पंचगनी

१९ जुलाई, १९४४

चि० आनन्द,

तुम्हारा खत आज ही मिला। विद्या बड़ी साध्वी थी। उसका हृदय सुनहरी था, उसकी त्यागकी इच्छा बड़ी थी। उसका प्रेम समुद्र-सा था।

तुम्हारे उसके लायक बनना है।

मैं अगस्त मासमें सेवाग्राम जाने की आशा करता हूं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी

१. कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक न्यासके न्यासियोंके रूपमें
२. देखिए पृ० ४१२।

२९७. पत्र: रं० रा० दिवाकरको

पंचगनी
१९ जुलाई, १९४४

भाई दिवाकर,

मैं सब चीज़ पूरी पढ़ नही सका हूं। मेरा अभिप्राय[1] तो जानते ही हो।

९ तारीख[2] या उस तक कुछ करते करते सब पकड़ा जायेंगे यह मुझे पसंद है। शर्त यह है कि जो किया सो काग्रेसकी मामूली कार्रवाई करते हुए नहि की सत्याग्रह करते हूए। भेद तो समजमे आया है ना।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

हमारे लोगोंके अंग्रेजी लिखने से उबल गया हू।

महात्मा, जिल्द ६, पृ० ३३६-३७ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे

२९८. भेंट: समाचारपत्रोंको[3]

पचगनी
१९ जुलाई, १९४४

मुझे खुशी है कि आपने मेरी आलोचना करनेवाले समाचारपत्रोंमें जैसा देखा ठीक उसी रूपमें प्रश्नको मेरे सामने रखा है। मैं यह स्वीकार करूँगा कि अखबारोंमें छपी सभी आलोचनाओंको मैं पढ़ नही पाता, इसलिए मैं कुछ घाटेमें ही रहता हूँ। अतएव आपका प्रश्न मेरे लिए दोहरा लाभकारी है।

मैं आरम्भमें ही आलोचकोंको याद दिला दूं कि ('न्यूज क्रॉनिकल' के श्री स्टुअर्ट गेल्डरके साथ हुई) मेरी भेंट-वार्ताका[4] प्रचार मेरी इच्छासे नही हुआ था।

१. गुप्त और भूमिगत प्रवृत्तियोंके बारेमें; देखिए पृ० २८२-८५ और २९१-९२ तथा परिशिष्ट १४ भी।

२. ९ अगस्तको "भारत छोड़ो" आन्दोलन की दूसरी वार्षिकीके अवसरपर।

३. साधन-सूत्रमें कहा गया था: "एक पत्रकारने गांधीजीसे कहा कि अनेक विदेशी समाचार-पत्रोंमें कहा जा रहा है कि युद्धकी स्थितिमें अनुकूलता आ जानेके कारण और कांग्रेसकी 'करारी हार' के कारण भी गांधीजीने अपना रुख बदल दिया है; और यह भी कि उन्होंने जो नवीनतम स्थिति अपनाई है उसे उनका 'पहली स्थितिसे पीछे हटना' ही समझा जा रहा है।"

४. देखिए पृ० ३६९-७० और पृ० ३७०-७४।

जैसा कि मै पहले ही कह चुका हूँ,[1] उस भेंट-वार्ताका उद्देश्य तो सत्ताधारियो तक अपनी बात पहुँचाना था। मै चाहता हूँ कि मेरे प्रस्तावोंपर उनके गुण-दोषकी दृष्टिसे निष्पक्ष भावसे विचार किया जाये। यदि मेरे दो कदम पीछे हट जाने से भारतको स्वाधीनता मिल जाये तो मुझे उसमें कोई एतराज नही होगा। मै यह कह सकता हूँ कि युद्धकी अनुकूल स्थितिका मेरे प्रस्तावोंसे कोई सम्बन्ध नही था — सो और किसी कारणसे नही तो इस कारण कि आसन्न विजयके नशेमें मेरे प्रस्तावकी तो सुनवाई होने तककी सम्भावना नही थी। किन्तु भारतकी ही नही, प्रत्युत सम्पूर्ण मानवजातिकी शान्तिका पुजारी होने के नाते मुझे कोई प्रस्ताव, चाहे वह जिस लायक भी हो, रखना ही था। सत्ताधारियोंके मतके अलावा विश्व-मत-जैसी कोई चीज भी तो है।

जो लोग युद्ध चलाने मे आज सर्वथा निरंकुश-सी प्रतीत होनेवाली सत्ताका उपभोग कर रहे हैं उनपर भी ऐक्यबद्ध, प्रबुद्ध और सशक्त विश्व-मतका प्रभाव अवश्य पड़ेगा और मैंने अनुभवसे सीखा है कि यदि अपना प्रस्ताव अपने-आपमें सही हो तो गलत समझे जाने या उसके ठुकराये जाने की आशंकासे डरना नही चाहिए।

कांग्रेसकी जबरदस्त हार मुझे तो बिलकुल महसूस नही हुई है। मुझे रत्ती-भर भी सन्देह नही कि हजारों कांग्रेसजनों और कांग्रेससे सहानुभूति रखनेवालोंके इस अग्निपरीक्षा और कष्ट-सहनके दौरसे गुजरने के फलस्वरूप भारतकी प्रतिष्ठा और जनताकी शक्ति दोनोंकी वृद्धि ही हुई है। अपने सुदीर्घ सार्वजनिक जीवनमें मैंने आज-तक कभी भी करारी या किसी भी प्रकारकी हारकी भावनाका अनुभव नही किया है। मैं जानता हूँ कि अनेक कांग्रेसजन कुण्ठासे ग्रस्त हैं। वे बेचारे कष्ट-सहनका महत्त्व नही समझते। किन्तु वह कुण्ठा भी क्षणिक ही है। विजय, अर्थात् सम्पूर्ण भारतकी स्वाधीनता तो एक सुनिश्चित बात है। वह स्वाधीनता शायद मेरे जीवन-कालमें न आये, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं है। मेरा कर्त्तव्य तो जीवनपर्यन्त उसके लिए कार्य ही करते रहना है। विजय तो ईश्वर जब चाहेगा तभी प्राप्त होगी।

आज ही मैंने एक मित्रको, जो यह जानना चाहते थे कि अगस्त १९४२ और आजकी स्थितिमें क्या अन्तर है, पत्र लिखा है। उस पत्रमें से मै कुछ प्रासंगिक वाक्य उद्धृत करूँगा। मैंने कहा है कि आजकी और अगस्त १९४२ की स्थितिमे अन्तर यह है कि उस समय मुझे इस बातका भान नहीं था कि कांग्रेसके हिमायतियों और कांग्रेसके विरोधियोंकी प्रतिक्रिया क्या होगी, किन्तु आज मुझे मालूम हो गया है कि उन्होंने कैसी प्रतिक्रिया दिखाई। इस संघर्षमें भाग लेनेवालोंकी वीरता, कष्ट-सहन और आत्मबलिदान स्तुतिसे परे है, किन्तु सत्य और अहिंसाके बाटसे तोलने पर इस जन-आन्दोलनमें सुस्पष्ट दोष दीख पड़ेंगे। और मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि इन दोषोंके कारण ही उस समय भारत अपने स्वाभाविक लक्ष्यतक पहुँचने में असफल रहा। और देशोंके मामलेमें चाहे जो-कुछ सच हो, किन्तु इसमें मुझे कोई भी

१. देखिए पृ० ३९३ और ४०१।

सन्देह नही कि भारत केवल सत्य और अहिंसाके साधनोसे ही अपना भवितव्य प्राप्त कर सकता हैं। तोड़-फोड़की तथा इसी प्रकारकी अन्य कार्रवाइयोको देखकर शासक हमेशाकी तरह अपना आपा खो बैठे और उन्होने वदले की ऐसी कार्रवाइयाँ की जैसी पहले कभी सुनी भी नही गई थी। यह मै यह मानकर लिख रहा हूँ कि हो सकता हं, इसमें भूल हो। मैंने एक निष्पक्ष न्यायाधिकरणकी माँग की है,[1] जो कांग्रेसपर लगाये गये आरोपो और सरकारके विरुद्ध मेरे प्रत्यारोपोकी जाँच करे। जबतक मुझे इसके विपरीत निष्कर्षका कायल नही कर दिया जाता तबतक मेरा यही विश्वास बना रहेगा कि जनताकी राईके बराबर हिंसात्मक कार्रवाईको तो सरकारकी ओरसे पर्वतका रूप दे दिया गया है और सरकारकी पर्वतके समान विकराल हिंसात्मक कार्रवाईको समयकी माँगको पूरी करनेवाली आवश्यक कार्रवाई वताकर उसका औचित्य सिद्ध किया गया है। इसलिए मुझे जन-साधारणके कार्योको सत्य और अहिंसाके मापदण्डसे मापने से तबतक इनकार करना पड़ेगा जबतक कि मै वही मापदण्ड सरकारी कार्योपर भी लागू नही कर सकता। एक अन्तर तो यह है। दूसरा अन्तर है जनताकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भुखमरी। उसका कारण दैवी प्रकोप है या शासकोकी अयोग्यता या युद्धका विश्वव्यापी दवाव, इन सब बातोकी मेरे उत्तरके सन्दर्भमें कोई प्रासंगिकता नही है। मेरी मान्यता है कि इन दो कारणोसे आजकी और अगस्त १९४२ की स्थितियोंमें स्पष्ट अन्तर आ जाता है। गतिरोधका समाधान निकालने में यदि मै बुद्धि और हृदय दोनोकी ईश्वर-प्रदत्त सम्पूर्ण शक्तियोंका उपयोग न करूँ तो मै अपने सिद्धान्तके अयोग्य ही सिद्ध होऊँगा। और वह समाधान क्या है, यह मै वता चुका हूँ।[2] वह समाधान है भारतकी स्वतन्त्रता की — ऐसी स्वतन्त्रताकी जो युद्ध-कालमें युद्धकी आवश्यकताओंके अनुरूप मर्यादित रहे — अविलम्ब घोषणा, इससे कम कुछ नही। और वह मर्यादा क्या होगी, यह आप जानते हैं। यदि यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया जाये तो अगर मै कांग्रेसको उसे स्वीकार करने की सलाह न दूँ तो यह मेरा घोर अपराध होगा।

यदि मेरा प्रस्ताव पूरी तरह फलीभूत हो तो आज जो चीज मात्र पशुवलका सघर्ष है, वह विश्वके शोषित देशोकी मुक्तिके लिए लड़े जानेवाले युद्धके रूपमें परिवर्तित हो जायेगी। तव उस युद्धके एक पक्षमें होगा मुख्यत आत्मिक वल और यथासम्भव कमसे-कम पशु-वल तथा उनकी टक्कर होगी निरे पशु-वलसे, उस पशु-वलसे जिसका उपयोग चीनका तथा यूरोपके दुर्वल राष्ट्रोका शोषण करने के लिए किया जा रहा है।

राजाजी का प्रस्ताव[3] अभी-अभी प्रकाशित हुआ है, किन्तु वन्दी-कैम्पमें अपने उपवासके दौरान ही मैंने उससे अपनी व्यक्तिगत सहमति प्रकट कर दी थी। अव तो वह १९ मास पुराना हो चुका है। और जहाँतक प्रस्तावके शेप भागका सम्बन्ध

१. देखिए पृ० १५९ और पृ० २१९।
२. देखिए पृ० ३७२-७३ और पृ० ४०९।
३. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

है, जो समझौता मेरे और राजाजी के बीच हुआ है, मुझे उसीका पालन करना है। उस प्रस्तावके सम्बन्धमें जितनी भी आलोचना हो, सबका प्रहार वही झेलेंगे।

अन्तमें मैं अपने आलोचकोंसे कहूँगा कि मेरी तरह वे भी भारतवासियोंके ही नहीं, समग्र विश्वकी जनताके, चाहे वह युद्धरत हो या न हो, कष्टोंको देखने का प्रयत्न करें। संसारमें इस समय जो हत्याकाण्ड मचा हुआ है उसे उदासीन भावसे देखते रहना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मेरा यह अडिग विश्वास है कि एक-दूसरेका गला काटना मानवजातिकी गरिमाके अनुरूप नहीं है। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि इसका उपाय है। बेशक, मुझमें इतना दम्भ है कि अपने मलेरिया ज्वरको ईश्वरका वरदान समझूं और यह मानूं कि ईश्वरने सरकारको अपना साधन बनाकर उसके माध्यमसे मुझे मुक्ति प्रदान की।

मैं मानता हूँ कि मेरी व्यक्तिगत रायकी स्वीकृतिसे वर्त्तमान उथल-पुथलमें से भी विश्व-शान्ति प्रतिफलित हो सकती है। इसलिए यदि मैं प्रतिकूल आलोचना या अधीर कांग्रेसजनोंके क्रोध या कार्य-समितिके सदस्योंकी सम्भावित नाराजगीसे भी डरकर अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट न करूँ तो मेरी अन्तरात्मा मुझे कभी क्षमा नहीं कर पायेगी।[1]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २२-७-१९४४

२९९. तार: स्टुअर्ट गेल्डरको

एक्सप्रेस २० जुलाई, १९४४

गेल्डर
मार्फत फ्रैंक मोरेस
ग्रीनफील्ड्स, चर्चगेट रिक्लेमेशन
बम्बई

दोनों तार मिले। समाचारपत्रोंको कल दी गई भेंट-वार्त्ता[2] पढ़ी। यदि और स्पष्टीकरण जरूरी लगता हो तो तार करें। क्लिफके[3]

१. २० जुलाई, १९४४ के *बॉम्बे क्रॉनिकल* के अनुसार, "गांधीजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि जो लोग उनकी नीयतपर शक करते हुए उनपर आरोप लगाते हैं वे उन्हें तनिक भी विचलित नहीं कर रहे हैं — उनका यह काम चिकने घड़ेपर पानी डालने-जैसा है। उन्होंने भेंट-वार्ताका आरम्भ इन शब्दोंसे किया था: "मेरे दिमागमें कुछ नहीं है।" अन्त उन्होंने इन शब्दोंसे किया: "आशा है, मैंने आपको काफी खुराक दे दी है।" सभी पत्रकारोंने सहमति व्यक्त की कि 'हाँ, काफी दे दी है'।"

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. *न्यूज क्रॉनिकल*, (लन्दन) के नॉर्मन क्लिफ; देखिए "तार: *न्यूज क्रॉनिकल* को", पृ० ४३९-४०।

प्रश्न मिलते ही जवाब दे दूंगा। आशा है आप शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३००. पत्र : अमिय चक्रवर्तीको

पंचगनी
२० जुलाई, १९४४

प्रिय अमिय,

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। मृत्यु किसी परिवारको अपना कर वसूल किये बिना नहीं छोड़ती। हम उसके दूतोंको अपना मित्र मानकर यह कर खुशी-खुशी क्यों नहीं दे दें? मुझे अपनी किशोरावस्थामें ही उससे परिचित होना पड़ा, और मैं यह मानना सीख गया कि मृत्यु एक स्वागत-योग्य मुक्तिका साधन है — चाहे उसका ग्रास कोई दूधमुंहा शिशु बने या तुम्हारे भाईकी तरह जीवनके पूरे ओजपर स्थित कोई व्यक्ति अथवा कोई वयोवृद्ध। तथाकथित दुर्भाग्योंको विपत्ति या दण्ड मानना मैं कब-का छोड़ चुका हूँ। मेरे भारत लौटने पर, मेरा खयाल है, शायद काकासाहब ने मुझे एक श्लोक सुनाकर याद दिलाया था कि अभी मैंने जिस दृष्टिकोणका उल्लेख किया है उसका प्रतिपादन करके मैंने वास्तवमें कोई नई बात नहीं कही है। तभी से हम प्रातःकालीन प्रार्थनामे निम्नलिखित श्लोकका गान करते रहे हैं:

विपदो नैव विपदः संपदो नैव संपदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः ॥[1]

इसलिए जिन गुत्थियोंको लेकर पश्चिम और पूर्वके दार्शनिक परेशान हैं उनसे मुझे कोई परेशानी नहीं होती। मैं जानता हूँ कि इस अनुभूतिका कारण दर्शन-विषयक कृतियोंमें मेरा अज्ञान है। तब मैं अपनेको यह सोचकर सान्त्वना देता हूँ कि अगर मेरा अज्ञान मुझे मेरे मनकी शान्ति देता है तो वह वरदान ही है।

यह है तुम्हारे शोकके शमनमें मेरा योगदान और तुम्हारे प्रश्नका मेरा उत्तर।

दूसरा प्रश्न सरल है। निस्सन्देह, संगठित बुराईका प्रतिरोध भी संगठित ही होना चाहिए। कठिनाई तब खड़ी होती है जब सत्याग्रहके संगठनकर्त्ता बुराईके संगठनकर्त्ताओंका अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। मैंने कोशिश की और बुरी तरह नाकामयाब रहा। अच्छाईकी शक्तियोंको संगठित करने का मार्ग बुराईकी शक्तियों के संगठनके मार्गके विपरीत होना चाहिए। वह मार्ग ठीक-ठीक क्या है, यह मैं पूरी

१. जिसे विपत्ति कहते हैं वह विपत्ति नहीं है, जिसे संपत्ति कहते हैं वह संपत्ति नहीं है। प्रभुका विस्मरण ही विपत्ति है और उसका स्मरण ही संपत्ति। देखिए खण्ड ४४, पृ० ३९७।

तरह अब भी नही जान पाया हूँ। मुझे लगता है कि उसका मार्ग, जहाँतक सम्भव हो, व्यक्तिका परिपूर्ण बनना है। फिर तो वह पूरे जन-समाजको ऊपर उठानेवाली खमीरकी तरह काम करता है। लेकिन मै तो अब भी टटोल ही रहा हूँ।

आशा है, तुम्हारे सोचने के लिए फिलहाल मैंने काफी मसाला दे दिया है। शेष मिलने पर। मै अगस्तके आरम्भमें सेवाग्राम पहुँचने की आशा करता हूँ। गुरुदेव तो, अपने-आपमें एक संस्था थे। इस क्षतिको अनुभव करने से हम बच नहीं सकते।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३०१. पत्र : हरिभाऊ जोशीको

पंचगनी
२० जुलाई, १९४४

प्रिय जोशी,

आचार्य जावदेकरकी अस्वस्थताका समाचार जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ है। आशा करता हूँ कि वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगे।

श्रीपादकी मुझे खूब याद है। वह बहादुर है और खुशी-खुशी कष्ट-सहन करेगा। आप जब उससे मिलें तो कृपया मेरा स्नेह कहिएगा।

यदि आप राजाजी की बातको सही ढंगसे पेश कर रहे हैं तो वह उसी हदतक सत्य है जितना कुछ उसमें है। किन्तु मैं इस विषयमें धैर्य रखूंगा और आपसे भेंट होने पर ही चर्चा करूँगा।

आपके प्रश्न रोचक हैं। मैं वचन दे चुका हूँ कि दूसरे लोग यदि आपके साथ न आ सकें तो भी मै आपसे पंचगनीमें मुलाकात कर लूँगा। इसलिए मैं मुलाकात होने तक अपनी सीमित शक्तिका संचय करता रहूँगा। किन्तु यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं इस मासके अन्तिम भागमें ही आपसे मुलाकात करना चाहूँगा। मैंने जितनी आशा रखी थी, मेरी दशामें उतना सुधार नही हो रहा है। इस देरीका आप बुरा तो नही मान रहे? २५ की शामको चार बजेका समय रखता हूँ, यानी उस समयतक यदि मैं यहाँ रहा तब। यदि अन्ततः यह स्थान मुझे अनुकूल नही पड़ा तो मासका शेष समय मुझे पूनामें ही बिताना पड़ेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९३४) से। सौजन्य : हरिभाऊ जोशी

३०२. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

पंचगनी
२० जुलाई, १९४४

चि० मुन्नालाल,

आज मैं तुम्हारा पत्र और आवेदन-पत्र अच्छी तरह पढ़ गया। तुम जो काम कर रहे हो वह अच्छा है। इसे चालू रखना। बीमार पड़ना पाप समझना। मैंने भी पाप किया, इसलिए इस पापको कम न समझना। मान्यता एक बात है और उसके अनुरूप आचरण करना दूसरी बात। मुझमें जो दोष हैं उनकी छूत किसीको नहीं लगने देनी चाहिए। मुझमें जो अच्छाई है उसकी छूत लोगोंको भले लगे। साधनासे हमें ऐसी छूत लग सकती है।

कंचन गूंगी कैसे बन गई है? उससे कहना कि वह मुझे पत्र लिखा करे। अब तो सेवाग्राम पहुँचने के दिन नजदीक आते जा रहे हैं।

भाई पाटिल सज्जन व्यक्ति हैं। उन्हें चिट्ठी लिखने का मेरा विचार है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८४७१) से। सी० डब्ल्यू० ७१७६ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

३०३. पत्र : भानुशंकरको

पंचगनी
२० जुलाई, १९४४

भाई भानुशंकर,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। दूसरा और लम्बा पत्र अभी-अभी ही पूरा पढ़ सका हूँ। तुम दोनों पत्रोंको संक्षिप्त कर सकते थे और सब-कुछ कह सकते थे। यह मैं आलोचनाकी दृष्टिसे नहीं लिख रहा हूँ। अनेक लिखनेवालोंमें मैं यह दोष पाता हूँ। तुम्हें संक्षेपमें लिखने की कलाका विकास करने की कोशिश करनी चाहिए, यह कहने के लिए मैंने उपर्युक्त बात लिखी है।

तुमने भले ही पत्र लिखा। लेकिन इसमें अर्धसत्य है। इसका अर्थ यह नहीं कि तुमने कहीं सत्यको छिपाने की कोशिश की है। इस बारेमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि तुमने तो वही लिखा है जिसे तुमने पूर्ण रूपसे सत्य माना है। लेकिन मैं जो दूसरे पक्षको भी जानता हूँ, मुझे तुम्हारे पत्रमें अर्धसत्यकी झलक दिखाई देती है। इतना विचार करो : तुमने जिनकी आलोचना की है उन सबका यदि हम त्याग कर दें तो

कांग्रेसमें काम करनेवाले कौन रह जायेंगे? तुम और मैं? वस्तुतः देखा जाये तो अकेले तुम ही रह जाओगे क्योंकि मैं तो तुमने जिनकी आलोचना की है उनके बीच उठने-बैठनेवाला व्यक्ति ठहरा। इसलिए मेरी भी क्या कीमत हो सकती है? यह मैं तुम्हारी आलोचना करने के लिए नहीं लिख रहा हूँ। बल्कि तुम्हारी दलीलमें निहित अपूर्णताकी ओर इंगित करने के लिए लिख रहा हूँ। हमें जो अच्छे-से-अच्छे साधन प्राप्त हों उनसे हमें काम लेना होगा। हम स्वयं अपूर्ण होने के कारण अपूर्ण साथियोंको सहन करते हुए ही आगे बढ़ सकते हैं। तुम्हारी आलोचनामें सत्यका अंश है तथापि कांग्रेसकी शक्तिको तो संसारने भी देख लिया है। इससे यह पता चलता है कि कुल मिलाकर कांग्रेसका काम खराब नहीं है। इसलिए इस समय विशेष कुछ नहीं लिखता। इसपर विचार करना और तब भी यदि तुम्हें मार्ग न सूझे तो मुझे लिखना। आप भला तो जग भला। दूसरे लोग भले ही कुछ भी न करें अथवा उलटा काम करें, तुम्हें तो सीधा काम ही करना है। निष्क्रिय बैठने का तो कोई अवकाश ही नहीं है।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३०४. पत्र : रं० रा० दिवाकरको

पंचगनी
२० जुलाई, १९४४

भाई दिवाकर,

कल एक खत लिखा।[1] पुंडलिक[2] आज भी यहां है इसलिये यह दूसरा लिखता हूं। यह बताता है मैं इन बातोंपर कितना सोच रहा हूं। मुझे लगता है कि जो छुपे हैं वे जाहिर हो जाय और बादमें जो कुछ करना है किया जाय। अच्छा तो यह लगता है कि जहां तक मैं बाहर हूं कोई तेज कदम न उठाया जाय।

बापुके आशीर्वाद

महात्मा, जिल्द ६, पृ० ३३६-३७ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे

१. देखिए पृ० ४२९।
२. पुंडलिक कातगडे

३०५. प्रश्नोत्तर[1]

पंचगनी
२० जुलाई, १९४४

प्रश्न १ : आपकी भेंट-वार्ताके[2] प्रकाशनके बाद लन्दनमें इस तरहके निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं कि आप जापानके विरुद्ध चल रही लड़ाईमें स्वतन्त्र भारतीय सरकारके पूरी तरह उतर आने के पक्षमें हैं। क्या आप इससे सहमत हैं ?

उत्तर : हाँ।

२ : जहाँतक पाकिस्तानका—सवाल है, लोग श्री जिन्नासे आपके पिछले सम्पर्क का अर्थ यह लगाते प्रतीत होते हैं कि वह आपके द्वारा पाकिस्तानकी स्वीकृतिका संकेत है। क्या बात ऐसी है ?

साम्प्रदायिक समस्याके समाधानके मेरे तरीकेका संकेत श्री राजगोपालाचारीके फार्मूलेसे[3] मिलता है। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसे पाकिस्तान कहा जाता है या कुछ और।

३ : स्वतन्त्र भारतीय सरकार द्वारा वित्त-व्यवस्थाके अपने हाथमें ले लिये जाने पर इंग्लैण्ड और अमेरिकाके भारत-स्थित पूंजीगत हितोंके सम्बन्धमें आप क्या नीति अपनाने की सलाह देंगे ?

मेरी सलाह यह होगी कि दोनों पक्षोंके बीच इस सम्बन्धमें किसी समझौतेके अभावमें कोई निष्पक्ष न्यायाधिकरण इस प्रकारके जिन हितोंको भारतके राष्ट्रीय हितोंसे असंगत न माने उनका सम्मान किया जाये।

४ : क्या आप युद्धोत्तर विश्वमें—खासकर ब्रिटिश राष्ट्रकुल और संयुक्त राज्य अमेरिकाकी जनताके सन्दर्भमें—स्वतन्त्र भारतकी भूमिका-सम्बन्धी अपनी कल्पनाकी रूपरेखा बतायेंगे ?

यदि युद्धोत्तर नीतिके निर्धारणमें मेरी कुछ चली तो भारतकी स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकार विश्वके सभी राज्योंके एक राष्ट्रकुलकी कल्पनाको बढ़ावा देगी, और स्वभावत: उसमें ब्रिटिश राष्ट्रकुल तथा अमेरिका और, सम्भव हुआ तो, युद्धरत देश भी शामिल

१. रिपोर्टके अनुसार ये प्रश्न एक अंग्रेजी पत्रिका कैवलकेड ने गांधीजी के पास १८ जुलाईको लन्दनसे तार द्वारा भेजे थे। गांधीजी ने इन चारों प्रश्नों और उनके उत्तरोंकी प्रतियाँ समाचारपत्रोंको २१ जुलाईको, जिस दिन कि गांधीजी ने समाचारपत्रों को वक्तव्य दिया, प्रकाशनार्थ दी थीं; देखिए अगला शीर्षक।

२. देखिए पृ० ३६९-७० और ३७०-७४।

३. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

किये जायेंगे, ताकि विभिन्न राज्योंके बीच सशस्त्र संघर्षकी सम्भावना कमसे-कम रह जाये।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-७-१९४४

३०६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

पंचगनी
२१ जुलाई, १९४४

मैंने उस प्रश्नका[1] उत्तर एक पक्के युद्ध-प्रतिरोधीके रूपमें दिया है। यदि अगस्त-प्रस्तावमें मैं शरीक हुआ था और अब यदि जिसे मैं पूर्ण सम्मानजनक समाधान मानता हूँ वह सुझा रहा हूँ तो केवल इसी कारण कि इस तरह मैं युद्ध-प्रतिरोधी प्रयासको ही प्रोत्साहन देने की आशा रखता हूँ। मै एक ऐसे विश्वका स्वप्न देखता हूँ जहाँ राष्ट्रोंके बीच आपसमें कोई कलह-क्लेश नहीं होगा। यह तभी सम्भव है जब ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका और रूस भी ऐसी ही विश्व-शान्तिकी कामना करते हों। मैं जान-बूझकर चीनका नाम नही लेता, क्योंकि चीन इन तीनों शक्तिशाली राष्ट्रोंसे कहीं अधिक विशाल और प्राचीन होते हुए भी दुर्भाग्यवश रूस, ब्रिटेन या अमेरिका की भाँति अपने बल-बूतेपर नही खड़ा रह सकता।

चीनको अब भी जापानसे भय है और उसको अपनी पूरी ऊँचाईतक उठने के लिए हर सम्भव सहायताकी आवश्यकता है।

जबतक कि ये तीनों राज्य विश्वको यह नही दिखा देते कि उन तीनोंका मन एक है, और वे अपने सब प्रयास किसी निजी स्वार्थके लिए नही कर रहे है, बल्कि वास्तवमें संसारके सभी प्रजातन्त्रोंके हितके लिए ही लड़ रहे है तबतक विश्व की कराहती हुई मानवताके कल्याणकी कोई सम्भावना मैं नही देखता।

मेरा प्रस्ताव एक खरी कसौटी है, और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटेन द्वारा इसकी हार्दिक स्वीकृतिके फलस्वरूप तत्काल ही पासा पलट जायेगा और लड़ाकू शक्तियोंकी पराजय सुनिश्चित हो जायेगी तथा संसारके शोषित राष्ट्रोंके हृदय आशा से भर उठेंगे। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि मेरा संघर्ष किसी छोटी-मोटी चीज के लिए नहीं है।[2]

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-७-१९४४

१. तात्पर्य पिछले शीर्षकके चौथे प्रश्नसे है।

२. रिपोर्टके अन्तमें कहा गया था: "गांधीजी ने पत्रकारोंसे प्रश्न पूछने को कहा तो उन्होंने कुछ प्रश्न तो धड़ाधड़ पूछ डाले, लेकिन बादमें अटक-से गये दिखे। तब गांधीजी मुसकराते हुए बोले कि वे ही उन्हें राह दिखा देंगे। उन्होंने कहा, मैं तो कुटिल प्रश्न भी पूछ सकता हूँ, किन्तु अभी उसका उचित समय नहीं है।"

३०७. भेंट : यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडियाको[1]

पंचगनी
२२ जुलाई, १९४४

मैं "द्वैध व्यवस्था"[2] शब्दसे नही डरता। प्रस्तावित व्यवस्था मुझे उतनी ही स्वाभाविक लगती है जितनी कि वर्त्तमान व्यवस्था अस्वाभाविक है। अगर भारतको अड्डा बनाकर मित्र-राष्ट्रोंका युद्ध-अभियान जारी रहना है—और वस्तुतः जारी तो रहना ही है—तो मेरा प्रस्ताव यह है कि यह चीज उसी हालतमें व्यावहारिक और संगत है जब कि भारतकी स्वतन्त्रताकी तत्काल घोषणा कर दी जाये। किन्तु मैं पूरे हृदयसे स्वीकार करता हूँ कि दोनो पक्षोंमें पारस्परिक विश्वास होना ही चाहिए। यदि वह विश्वास स्थापित नही हो सकता तो मेरा प्रस्ताव निरर्थक है। बोअर और ब्रिटिश लोगोंके बीच जो पारस्परिक अविश्वासकी भावना थी वह रक्तरंजित बोअर-युद्धके बाद बातकी-बातमें पारस्परिक विश्वासमें परिवर्त्तित हो गई। जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, जब युद्ध जीतने में समान रूपसे दोनों पक्षोंकी दिलचस्पी हो जायेगी तब पारस्परिक विश्वास भी अपने-आप आ ही जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २३-७-१९४४

३०८. तार : 'न्यूज क्रॉनिकल'को[3]

२३ जुलाई, १९४४

अगस्त-प्रस्ताव एक उत्कृष्ट घोषणा है, जिसपर मुझे गर्व है। मैं आशा करता हूँ कांग्रेस उसे कभी भी खारिज नही करेगी। उस प्रस्तावपर अमल करवाने के लिए प्रयोगमें लानेवाली शक्तिसे सम्बन्धित

१. रिपोर्टमें बताया गया था कि यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडियाके विशेष संवाददाताने गांधीजी से ब्रिटिश समाचारपत्रों द्वारा और विशेषकर लन्दन टाइम्स के दिल्ली-स्थित संवाददाता द्वारा गांधीजी के इस प्रस्तावपर उठाये गये मुद्दोंको स्पष्ट करने को कहा था कि "सैनिक नियन्त्रण वाइसराय और प्रधान सेनापतिके हाथोंमें रहेगा।"

२. टाइम्स के संवाददाताने कहा था कि जिस चीजका प्रस्ताव किया जा रहा है वह वास्तवमें सैनिक क्षेत्रमें द्वैध व्यवस्था है, और यह चीज तभी व्यावहारिक होगी जब उभय पक्षोंके लक्ष्य समान हों और उनमें पारस्परिक विश्वास हो।

३. प्यारेलाल बताते हैं कि "न्यूज क्रॉनिकल, लन्दनसे प्राप्त कुछ प्रश्नोंके उत्तरमें गांधीजी ने यह तार भेजा था।"

किये जायेंगे, ताकि विभिन्न राज्योंके बीच सशस्त्र संघर्षकी सम्भावना कमसे-कम रह जाये।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-७-१९४४

३०६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

पंचगनी
२१ जुलाई, १९४४

मैंने उस प्रश्नका[1] उत्तर एक पक्के युद्ध-प्रतिरोधीके रूपमें दिया है। यदि अगस्त-प्रस्तावमें मैं शरीक हुआ था और अब यदि जिसे मैं पूर्ण सम्मानजनक समाधान मानता हूँ वह सुझा रहा हूँ तो केवल इसी कारण कि इस तरह मैं युद्ध-प्रतिरोधी प्रयासको ही प्रोत्साहन देने की आशा रखता हूँ। मैं एक ऐसे विश्वका स्वप्न देखता हूँ जहाँ राष्ट्रोंके बीच आपसमें कोई कलह-क्लेश नहीं होगा। यह तभी सम्भव है जब ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका और रूस भी ऐसी ही विश्व-शान्तिकी कामना करते हों। मैं जान-बूझकर चीनका नाम नही लेता, क्योंकि चीन इन तीनों शक्तिशाली राष्ट्रोंसे कही अधिक विशाल और प्राचीन होते हुए भी दुर्भाग्यवश रूस, ब्रिटेन या अमेरिका की भाँति अपने बल-बूतेपर नहीं खड़ा रह सकता।

चीनको अब भी जापानसे भय है और उसको अपनी पूरी ऊँचाईतक उठने के लिए हर-सम्भव सहायताकी आवश्यकता है।

जबतक कि ये तीनों राज्य विश्वको यह नहीं दिखा देते कि उन तीनोका मन एक है, और वे अपने सब प्रयास किसी निजी स्वार्थके लिए नही कर रहे है, बल्कि वास्तवमें संसारके सभी प्रजातन्त्रोके हितके लिए ही लड़ रहे है तबतक विश्व की कराहती हुई मानवताके कल्याणकी कोई सम्भावना मैं नही देखता।

मेरा प्रस्ताव एक खरी कसौटी है, और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटेन द्वारा इसकी हार्दिक स्वीकृतिके फलस्वरूप तत्काल ही पासा पलट जायेगा और लड़ाकू शक्तियोंकी पराजय सुनिश्चित हो जायेगी तथा संसारके शोषित राष्ट्रोंके हृदय आशा से भर उठेंगे। इस प्रकार आप देख सकते है कि मेरा संघर्ष किसी छोटी-मोटी चीज के लिए नहीं है।[2]

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-७-१९४४

१. तात्पर्य पिछले शीर्षकके चौथे प्रश्नसे है।

२. रिपोर्टके अन्तमें कहा गया था: "गांधीजी ने पत्रकारोंसे प्रश्न पूछने को कहा तो उन्होंने कुछ प्रश्न तो धड़ाधड़ पूछ डाले, लेकिन बादमें अटक-से गये दिखे। तब गांधीजी मुस्कराते हुए बोले कि वे ही उन्हें राह दिखा देंगे। उन्होंने कहा, मैं तो कुटिल प्रश्न भी पूछ सकता हूँ, किन्तु अभी उसका उचित समय नहीं है।"

३०७. भेंट: यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडियाको[1]

पंचगनी

२२ जुलाई, १९४४

मैं "द्वैध व्यवस्था"[2] शब्दसे नहीं डरता। प्रस्तावित व्यवस्था मुझे उतनी ही स्वाभाविक लगती है जितनी कि वर्तमान व्यवस्था अस्वाभाविक है। अगर भारतको अड्डा बनाकर मित्र-राष्ट्रोंका युद्ध-अभियान जारी रहना है—और वस्तुतः जारी तो रहना ही है—तो मेरा प्रस्ताव यह है कि यह चीज उसी हालतमें व्यावहारिक और संगत है जब कि भारतकी स्वतन्त्रताकी तत्काल घोषणा कर दी जाये। किन्तु मैं पूरे हृदयसे स्वीकार करता हूँ कि दोनों पक्षोंमें पारस्परिक विश्वास होना ही चाहिए। यदि वह विश्वास स्थापित नहीं हो सकता तो मेरा प्रस्ताव निरर्थक है। बोअर और ब्रिटिश लोगोंके बीच जो पारस्परिक अविश्वासकी भावना थी वह रक्तरंजित बोअर-युद्धके बाद बातकी-बातमें पारस्परिक विश्वासमें परिवर्तित हो गई। जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, जब युद्ध जीतने में समान रूपसे दोनों पक्षोंकी दिलचस्पी हो जायेगी तब पारस्परिक विश्वास भी अपने-आप आ ही जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २३-७-१९४४

३०८. तार: 'न्यूज क्रॉनिकल'को[3]

२३ जुलाई, १९४४

अगस्त-प्रस्ताव एक उत्कृष्ट घोषणा है, जिसपर मुझे गर्व है। मैं आशा करता हूँ कांग्रेस उसे कभी भी खारिज नहीं करेगी। उस प्रस्तावपर अमल करवाने के लिए प्रयोगमें लानेवाली शक्तिसे सम्बन्धित

१. रिपोर्टमें बताया गया था कि यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडियाके विशेष संवाददाताने गांधीजी से ब्रिटिश समाचारपत्रों द्वारा और विशेषकर लन्दन टाइम्स के दिल्ली-स्थित संवाददाता द्वारा गांधीजी के इस प्रस्तावपर उठाये गये मुद्दोंको स्पष्ट करने को कहा था कि "सैनिक नियन्त्रण वाइसराय और प्रधान सेनापतिके हाथोंमें रहेगा।"

२. टाइम्स के संवाददाताने कहा था कि जिस चीजका प्रस्ताव किया जा रहा है वह वास्तवमें सैनिक क्षेत्रमें द्वैध व्यवस्था है, और यह चीज तभी व्यावहारिक होगी जब उभय पक्षोंके लक्ष्य समान हों और उनमें पारस्परिक विश्वास हो।

३. प्यारेलाल बताते हैं कि "न्यूज क्रॉनिकल, लन्दनसे प्राप्त कुछ प्रश्नोंके उत्तरमें गांधीजी ने यह तार भेजा था।"

धारासे सरकारको नाराजगी हुई। मैं कह चुका हूँ कि मैंने उसका प्रयोग कभी किया ही नहीं और जो अधिकार मुझे दिया गया था वह मेरी रिहाईके बाद यदि मुझे फिर दे दिया जाये तो भी इस स्थितिमें मैं उस शक्तिका प्रयोग नहीं कर सकता।

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी – द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० २७

३०९. पत्र: एस० मोहन कुमारमंगलम्‌को

पंचगनी
२३ जुलाई, १९४४

प्रिय मोहन,[1]

२८ तारीखको दिनके ४ बजे अपने मित्रके साथ बेशक आ जाओ। मुझे सतर्क किये बिना तुम्हारा मित्र दो फोटो खींच सकता है।

मुझे खुशी है कि जोशी मेरा उत्तर चाहते हैं। मैं निष्क्रिय नहीं बैठा रहा हूँ। आशा है, शीघ्र ही उत्तर[2] भेज सकूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

एम० कुमारमंगलम् सुब्बारायन्
कम्युनिस्ट पार्टी
१९० बी, खेतवाड़ी, मेन रोड
बम्बई

[अंग्रेजीसे]

चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई, फाइल नं० ३००१/एच०, पृ० १२३। सौजन्य: महाराष्ट्र सरकार

१. डॉ० पी० सुब्बारायन्‌के पुत्र

२. देखिए "पत्र: पूरणचन्द्र जोशीको", ३०-७-१९४४।

३१०. पत्र : अमतुस्सलामको

पचगनी
२३ जुलाई, १९४४

बेटी अमतुल सलाम,

तेरे खत मिले हैं। मुझमें हुक्म देने की हिम्मत नही रही। मैं तो इतना ही कहूँगा कि जो तुझे ठीक लगे वह कर। जब इलाजके लिए आश्रम आना हो तब आ जाना। जहाँ सेवा करनी हो वहाँ कर। मुझे मालूम नही कि तुझसे कौन-सा काम लूँ। सब जो-कुछ दें उससे सन्तोष मानना ही मेरा स्वभाव है। आश्रममें रहने से जो लोग सन्तोष मानें वें वहाँ रहें। जिनसे बाहर सेवा ज्यादा हो सके तो वहाँ करें।

बापूकी दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०) से

३११. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२३ जुलाई, १९४४

. . . तू तनिक भी अधीर न होना। जो-कुछ हो उसे तटस्थ भावसे देखा कर। . . . डाक्टर लोग आकर मेरी जाँच कर गये हैं। तबीयतमें अच्छा सुधार हो रहा है। मुझे आबोहवा माफिक आई है। लेकिन अब बहुत रहने की मेरी इच्छा नही है। उसकी जरूरत भी नहीं है। सेवाग्राम जाने के लिए प्राण छटपटा रहे हैं।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० २०१-२

३१२. भेंट : समाचारपत्रोंको

पंचगनी
२३ जुलाई, १९४४

सिन्ध विधान-सभाके एक सदस्यको सभाकी बैठकमें शामिल होने के अपने अधिकारका उपयोग करने से जबरदस्ती रोका गया था। अखबारोंके अनुसार, इस कार्रवाई का बचाव करते हुए सिन्धके गृह-मन्त्रीने[1] कहा : "हमें सूचना मिली है कि महात्मा गांधीकी रिहाईके बादसे समूचे भारतमें तोड़-फोड़ आन्दोलन फिरसे आरम्भ कर दिया गया है और इस आन्दोलनके पीछे जो प्रमुख व्यक्ति रहे हैं वे फिर उसका संचालन करने का प्रयत्न कर रहे हैं।" इस सिलसिलेमें उन्होंने मैरियट रोड डकैती-काण्डके तीन अभियुक्तोंके कराची जेलसे भाग निकलने का उल्लेख किया और कहा : "यह सब उस आन्दोलनको पुनरुज्जीवित करने के लिए ही किया जा रहा है।"

अपनी रिहाईके बाद मैंने जितनी जानकारी एकत्र की है वह सब सिन्धके गृह-मन्त्रीके कथित वक्तव्यके ठीक विपरीत है। उनको सूचना देनेवाले उन्हें गलत सूचना तो नहीं दे रहे हैं? क्या उनका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे अपनी प्राप्त सूचनाओंके ब्योरोंसे जनताको अवगत करायें? वे प्रमुख व्यक्ति कौन हैं और यह कौन-सा तोड़-फोड़का आन्दोलन है?

यदि कराची जेलसे अभियुक्तोंके भाग निकलने का कथित तोड़-फोड़ आन्दोलनके कथित पुनरुज्जीवनसे कोई सम्बन्ध है तो कमसे-कम इतना तो लाजिमी है कि ये नाम प्रकट किये जायें और यह सम्बन्ध भी दर्शाया जाये।

मुझे सिन्धके गृह-मन्त्रीके कथनपर केवल इस कारण ध्यान देना पड़ रहा है कि भारतकी स्वाधीनताके निमित्त मैं जो प्रयास कर रहा हूँ उसको विफल करने के लिए हमारी स्वाधीनताके शत्रुओं द्वारा उनके कथनका उपयोग किये जाने की आशंका है। मुझे पक्का विश्वास है कि सिन्धके गृह-मन्त्री शान्तिमय साधनोंसे भारतकी स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए उतने ही उत्सुक हैं जितना कि मैं हूँ।

मैं यह बता दूँ कि इस पूरे कठिन कालके दौरान अखबारोंके जरिये और कांग्रेसजनों तथा अन्य लोगोंके साथ अपनी बातचीतमें मैं यह बताने की कोशिश करता रहा हूँ कि मैं तोड़-फोड़ और इस तरहकी दूसरी कार्रवाइयोंके सर्वथा विरुद्ध हूँ। मैंने यह भी कह दिया है कि मुझे सविनय अवज्ञा आरम्भ करने का मौका ही नहीं मिला और यह भी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने मुझे जो अधिकार सौंपे थे, उनका अन्त मेरी गिरफ्तारीके साथ ही हो गया था और बीमारीके आधारपर हुई मेरी रिहाईके उपरान्त वे अपने-आप पुनरुज्जीवित नहीं हो सकते।

१. हाजी मुहम्मद हाशिम गजदर

अतएव यदि मान लिया जाये कि सविनय अवज्ञाको ही तोड़-फोड़के आन्दोलन की संज्ञा दी गई है — हालांकि मै इस सज्ञाको स्वीकार नही करता — तो वह भी कांग्रेसकी ओरसे कोई भी व्यक्ति आरम्भ नही कर सकता।

किन्तु इसके साथ ही मैंने यह भी कहा है कि कांग्रेसको अपने विशुद्ध रूपसे शान्तिपूर्ण और सामान्य कार्योको बराबर जारी रखना है, भले ही उनपर प्रतिबन्ध क्यों न थोप दिये जायें। इसलिए यदि अधिकारियोमें मेरी सलाह मानने की तनिक भी वृत्ति हो तो यह तो उनके वसमे ही है कि अगस्त १९४२ से पहले कांग्रेसको जो कार्रवाइयाँ करने की अनुमति थी — उदाहरणार्थ प्रति मास झण्डोत्तोलन करना, सार्वजनिक सभाएँ करना, इत्यादि — उन कार्रवाइयोमे हस्तक्षेप न किया जाये।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २४-७-१९४४

३१३. प्रस्तावना : "सत्याग्रहियोंको दिये जानेवाले निर्देशोंका मसौदा" की

पचगनी
२४ जुलाई, १९४४

सत्याग्रहियोके मार्ग-दर्शनके लिए तैयार किये गये निर्देशोके[1] मसौदेका यह शब्दशः अनुवाद है। मसौदा हिन्दुस्तानीमें था और देवनागरी तथा फारसी दोनो लिपियोमें उसकी प्रतियाँ तैयार की गई थीं। मसौदा ७ अगस्त, १९४२ को तैयार करके ८ अगस्त, १९४२ को कार्य-समितिके सम्मुख पेश किया गया था, जिसने उसपर चर्चा की। कार्य-समितिकी अगली बैठक ९ अगस्तको प्रातःकाल होनेवाली थी, किन्तु वह विधाताको मजूर नही था।

मुझे कार्य-समितिके सम्मुख सरकारके साथ अपनी आगामी समझौता-वार्त्ताके सम्बन्धमें अपने विचार पेश करने थे। उस कार्यमें कमसे-कम तीन सप्ताहका समय लगना था। उस समझौता-वार्त्ताके विफल होने पर ही इन निर्देशोको प्रकाशित करना था।

इस समय उस मसौदेको प्रकाशित करने के दो उद्देश्य है। इससे प्रकट होता है कि उस समय मेरा मस्तिष्क कैसे काम कर रहा था। सरकार द्वारा निकाले गये अभियोग-पत्रमें मेरी अहिंसाके सम्बन्धमे जो आक्षेप किये गये है उनका वह एक और जवाब है। दूसरा और अधिक प्रासंगिक उद्देश्य है कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंको यह बताना कि उस समय मै किस प्रकार कार्य करता।

मुझे पता चला है कि तोड़-फोड़के और इसी प्रकारके अन्य कार्योंको उचित बताने के लिए मेरे नामका उपयोग बेखटके किया गया। मै प्रत्येक कांग्रेसीसे, बल्कि प्रत्येक भारतवासीसे अपेक्षा रखता हूँ कि वह इस बातको समझे कि भारतको विदेशी

१. देखिए खण्ड ७६, पृ० ४०६-९।

शासन-रूपी दुःस्वप्नसे मुक्त कराने का जिम्मा उसीपर है। अहिंसापूर्वक कष्ट-सहन ही उसका एकमात्र उपाय है। भारतकी स्वाधीनता हमारे लिए तो सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है, किन्तु विश्वके लिए भी वह बहुत महत्त्व रखती है; क्योंकि अहिंसा द्वारा प्राप्त स्वाधीनताका अर्थ होगा विश्वमें एक नई व्यवस्थाका शुभारम्भ।

मानव-जातिका भविष्य केवल इसी उपायपर अवलम्बित है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २८५-८६

३१४. तार: मनोरंजन चौधरीको[1]

पंचगनी
२४ जुलाई, १९४४

मनोरंजन — मार्फत निर्मल भट्टाचारजी
रुस्तम मैन्शन
अदनवाला रोड, माटुंगा
बम्बई

सत्ताईस तारीखको दिनके चार बजे खुशीसे आइए।[2]

बी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०५१४) से

१. बंगाल हिन्दू सभाके
२. देखिए "पत्र: पूरणचन्द्र जोशीको", ३०-७-१९४४ भी।

३१५. पत्र : अमृतलाल नानावटीको

पंचगनी
२४ जुलाई, १९४४

चि० अमृतलाल,

भगवान करे तुम बहुत जीओ और सेवा करो। दोनों बहनोंको आशीर्वाद।

मैंने पत्रिकाएँ पढ़ी थी। नई पत्रिकाएँ भी पढ़ जाऊँगा।

मैं २ अगस्तको वर्धा जाने के लिए यहाँसे रवाना होऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री अमृतलाल नानावटी
६४ ए/बी० चौथी मंजिल
पन्नालाल टेरेस
ग्रान्ट रोड
बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८०३) से

३१६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

पंचगनी
२४ जुलाई, १९४४

चि० प्रेमा,

सुशीला दिल्ली गई है। मैं यहाँसे २ अगस्तको रवाना होऊँगा और सीधा वर्धा जाऊँगा। बम्बई होकर जाना पड़ेगा या कल्याण होकर, यह नहीं जानता। तू मेरे साथ अथवा बादमें, जब इच्छा हो तब आ सकती है। मेरी तबीयत अच्छी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४३१) से। सी० डब्ल्यू० ६८७० से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३१७. तार : तेजबहादुर सप्रूको[1]

[२५ जुलाई, १९४४][2]

आपके लिए यहाँ प्रबन्ध हो गया है। पंचगनीसे पहली अगस्तको रवाना होकर तीन तारीखको सेवाग्राम पहुँच जाऊँगा।

[अंग्रेजीसे]
गांधी-सप्रू पेपर्स। सौजन्य : नेशनल लाइब्रेरी

३१८. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

पंचगनी
२५ जुलाई, १९४४

प्रिय सी० आर०,

अभी बिलकुल सुबहका समय है। मुझे तुम्हारी अनुपस्थिति अखरती है। पाकिस्तानसे सम्बन्धित प्रश्न उठते रहते हैं। कागज-पत्र तुम्हें भेजे जा रहे हैं। किन्तु उतना ही काफी नहीं है। कुछ प्रश्नोंका तो मुझे स्वयं ही उत्तर देना है। किन्तु तुमसे सलाह किये बिना उत्तर देना ठीक नहीं है। मैं तुम्हें पंचगनी आने का कष्ट नही देना चाहता। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि मेरे सेवाग्राम पहुँचने तक तुम भी वहाँ आ जाओ। आशा है, वहाँ मैं ३ अगस्तको पहुँच जाऊँगा। उसी दिन वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करना और तबतकके लिए वहीं जमकर रहने का इरादा करके आना जबतक कि मेरे भाग्यका कुछ फैसला, इस पार या उस पार, न हो जाये। मेरे भाग्यका फैसला हर बार अनिवार्य रूपसे कुछ ही समयके लिए हो सकता है।

तुम्हारे जाने के समय यहाँ जैसी वर्षा हो रही थी वैसी ही अब भी जारी है। लेकिन मैं मजेमें हूँ। मैं यह भी देखता हूँ कि यदि गरीबोंको भी यहाँ आश्रय मिल

१ और २. यह तार प्यारेलाल द्वारा सर तेजबहादुर सप्रूको लिखे २५ जुलाईके पत्रमें से उद्धृत है। पत्र इस प्रकार था : "गांधीजी ने सेवाग्राम रवाना होने का निश्चय कर लिया है। . . . यहाँके प्रवाससे उन्हें लाभ हुआ है और उनके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यहाँ एक पखवाड़ा और बिता लेना बहुत अच्छा होता। किन्तु उनकी आत्मा तो सेवाग्रामके लिए तरस रही है और डाक्टरोंने उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका दमन करने में कोई लाभ नहीं देखा। गांधीजी ने अभी-अभी आपको निम्नलिखित तार भेजा है।"

सके तो यह जगह मुझे पसन्द आ सकती है। इसका निर्माण तो धनी वर्ग या उच्चतर मध्य वर्गके लिए ही हुआ है।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०९५) से

३१९. पत्र : बाल गंगाधर खेरको

पंचगनी
२५ जुलाई, १९४४

भाई खेर,

साथमें भाई नटराजनका पत्र है। इसे पढ़ जाना। इसमें दिया गया सुझाव यदि तुम्हें अच्छा लगे तो उसे स्वीकार करने के लिए अन्य लोगोंको समझाना। मैं स्वयं ही समझाता, लेकिन मेरे पास समय ही कहाँ है, शक्ति ही कहाँ है? यदि तुम्हें राजाजी का फार्मूला[1] अच्छी तरह समझ आ गया है तो उसका ठीक-ठीक प्रचार करना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

इसमें प्यारेलालने भूल नहीं की।[2] उसने जान-बूझकर ही तुमसे कहा। तुम्हारे जैसे व्यक्तियोंके लिए यह गोपनीय नहीं है। वस्तुतः यह गोपनीय तो समाचारपत्रोंके लिए है। चर्चिलको विषम स्थितिमें न डालने के लिए ही इसे समाचारपत्रोंसे दूर रखना है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७७१) से

१. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।
२. सन्दर्भ १७ जुलाईको विन्स्टन चर्चिलको लिखे पत्रका है; देखिए पृ० ४१७।

३२०. पत्र : कानम गांधीको

२५ जुलाई, १९४४

चि० कानम,

तेरा पत्र आज मिला। लौटती डाकसे मेरे उत्तरकी अपेक्षा रखेगा तो उसे हमेशा नहीं पूरा कर सकूँगा। अपनी लिखावट तो तूने इतनी बिगाड़ ली है कि अब तो उसे पढ़ने में भी मुश्किल पड़ती है। सीताकी[1] लिखावट इतनी अच्छी है कि तुम सबको उसका अनुकरण करना चाहिए। वह लिखती तो है अंग्रेजी ही लेकिन जो एक लिपि अच्छी लिखेगा वह दूसरी भी अच्छी ही लिखेगा।

सेवाग्रामके निवासियोंके साथ अन्यायकी बातके बारेमें मिलने पर पूछना।

सेवाग्रामके निवासियोंको छोड़कर सिनेमा[2] देखकर मैं तो अघा गया। मैं बाहर होऊँ और कुछ अच्छा करूँ तो उसमें तो तुम सबकी याद करूँगा ही। लेकिन इसमें तो कुछ ऐसा भी नहीं था। इसलिए चलचित्र न देखकर किसीने कुछ खोया नहीं। उलटे, देखकर मैंने तो खोया। क्या खोया, यह तू पूछ सकता है।

मैं ३ तारीखको सेवाग्राम पहुँचने की आशा करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. कानम गांधीकी चचेरी बहन
२. गांधीजी ने अपने निवास-स्थानपर ही चलचित्र 'रामराज्य' देखा था।

३२१. पत्र : पी० जी० मैथ्यूको

पंचगनी
२५ जुलाई, १९४४

प्रिय मैथ्यू,[1]

पिताजीके स्वर्गवासका मुझे दु:ख है। तुम्हारा पश्चाताप मैं समझता हूं। पिता हमें कुछ भी न दें तो भी हम उनसे नाराज कैसे हो सकते है। लेकिन हुआ सो हुआ। जो कुछ मिला है उसका दान करने से प्रायश्चित हो जायगा।

बापुके आशीर्वाद

प्रो० पी० जी० मैथ्यू
एस० एच० कालेज
थेवड़ा
एर्नाकुलम् होकर

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १५४३) से

३२२. पत्र : क्लेमेंट एम० डोकको

पंचगनी
२६ जुलाई; १९४४

प्रिय क्लेमेंट,[2]

कारावासके दिनोंमें तुम्हारा प्यारा पत्र मिला था। वहाँसे मैं कोई पत्र नहीं लिखता था।

बा की देह तो अग्निको अर्पित हो चुकी है, किन्तु वह स्वयं हर समय मेरे साथ ही है। मैंने बुद्धि और हृदय दोनोंसे इस सत्यका दर्शन कर लिया, फिर भी समस्त विश्वसे मुझे जो सहानुभूति मिल रही है उसकी मैं कद्र करता हूँ। उससे मुझे ईश्वरकी दयाका ऐसा भान हुआ है जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

१. मूलमें यह अंग्रेजीमें है।

२. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजी के निकटके सहयोगी जे० जे० डोकके पुत्र; १९१४-२१में न्यासालैण्ड-स्थित दक्षिण आफ्रिकी बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटीके सदस्य; और बादमें जोहानिसबर्ग-स्थित विट्वाटर्सरैंड विश्वविद्यालयमें बंटू अध्ययन विभागके प्रधान

मणिलालसे तुम्हारी कुछ खबर पाकर खुशी हुई थी। उसने मुझे बताया था कि तुमने पुरानी परम्पराको कायम रखा है। मुझे पूरे परिवारके बारेमें बताओ कि सब कैसे हैं और क्या-क्या कर रहे हैं। पत्र लिखते-लिखते सभी पुरानी स्मृतियाँ जागती जा रही हैं और मनको हर्ष पहुँचा रही है।

तुम सबको प्यार।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४५) से

३२३. पत्र: सुशीला गांधीको

पंचगनी
२६ जुलाई, १९४४

चि० सुशीला,

मणिलाल और सीताका आना मुझे अच्छा लगा है। तू वहाँ अकेली रह गई, यह बात तो मुझे और भी अच्छी लगी। मेरा खयाल था कि यह काम तेरी सामर्थ्यसे बाहर है। अब तू मेरी नजरमें और भी ऊपर चढ़ गई है। ईश्वर तुम दोनोंको ऊँचे स्थानपर ही रखे।

मणिलालके साथ मेरी बातचीत ठीक-ठीक हुई है, लेकिन जी-भरकर नहीं हुई। उतना समय ही नहीं मिल पाता है। अभी तो हम सेवाग्राम पहुँचने पर अथवा रास्तेमें और बातचीत करेंगे।

सीता बहुत अच्छी लड़की है। मैं जितनी चाहता हूँ उतनी दोस्ती उससे अब तक नहीं कर सका हूँ। लेकिन मेरा खयाल है कि मैं कर सकूँगा। वह होशियार लड़की है। इस समय उसकी जैसी सेहत है वैसी ही बनी रहे, इस बातका सबसे ज्यादा ध्यान रखना होगा। अच्छी सेहत एक नेमत है। तू उसकी चिन्ता न करना। और यदि मणिलालकी चिन्ता करेगी तब तो मैं तुझे मूर्ख ही समझूँगा।

मेरे बारेमें तो मणिलाल तुझे लिखेगा। चिन्ता करने का कोई कारण नही है। मैं ईश्वरके हाथमें हूँ। वह जो चाहेगा सो करेगा।

फिलहाल जो कार्यक्रम है उसके मुताबिक मेरा खयाल है कि तू दिसम्बरके बाद यहाँ आयेगी। इस समय तो कार्यक्रम यह है कि मणिलाल और सीता अकोलासे होते हुए सेवाग्राममें मेरे पास आ जायेंगे, बशर्ते कि कोई अप्रत्याशित घटना न घटे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९३५) से

३२४. पत्र : मंजुला म० मेहताको

पचगनी
२६ जुलाई, १९४४

चि० मंजुला,

तेरा पत्र मिला। मुझे लगता है कि रतिलालके[2] जितने पैसे निकलते हैं वह उसे भेज देने चाहिए। जैसा नसीब होगा वैसा उनका उपयोग होगा। आयुको प्राप्त व्यक्तिकी हम कबतक निगरानी कर सकते हैं? चम्पाके पत्र आते रहते हैं। उसमें लिखी बातें विवेकपूर्ण होती हैं।

मेरा विचार यहाँसे पहली तारीखको सेवाग्राम जानेका है। वहाँ यदि मिलनेके लिए आ सके तो आ जाना।

जेलमें तेरा पत्र मिलनेकी बात मुझे याद नहीं है। मुझे बहुत कम पत्र दिये गये थे।

बापूके आशीर्वाद

श्री मगनलाल प्राणजीवनदास मेहता, बैरिस्टर
८२ घोड़बंदर रोड
अंधेरी

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२९) से। सौजन्य: मंजुला म० मेहता

३२५. पत्र : बालकृष्ण भावेको

पंचगनी
२६ जुलाई, १९४४

चि० बालकृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे अच्छा लगा। दिनशाजीका स्वभाव मुझे पसन्द आया है। उनकी पत्नी भी प्रेमालु है। हालाँकि उनके यहाँ एकान्त नहीं, फिर भी बहुत शान्ति है। सब सुविधाएँ हैं। दूधादिके उपचार वे अच्छी तरहसे जानते हैं। इसलिए यदि तुम तैयार हो तो एक वर्ष पूना जाकर रहो। कदाचित वहाँ तुम्हारी

१. मगनलाल मेहताकी पत्नी
२. मगनलाल मेहताके भाई

तबीयत बिलकुल ठीक हो जाये। न हो, तो भी इससे तुम कुछ खोनेवाले नही हो। पूनामें कुछ सेवा-कार्य तो करोगे ही। जो लोग मिलने आयें यदि उनसे भेंट करने के लिए तुम तैयार रहो तो उससे कई लोगोंको मदद भी मिलेगी। आरोग्य-भवनमें तुम्हारी उपस्थिति वहाँ रहनेवाले लोगोंके लिए मददरूप सिद्ध होगी। इन सब बातों पर विचार करना। मैं वहाँ अब आने ही वाला हूँ, इसलिए निर्णय तो बादमें करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ८१०) से। सौजन्य: बालकृष्ण भावे

३२६. पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको

२६ जुलाई, १९४४

बापा,

तुम्हारा पत्र मिला। यह निर्णय क्यों? क्या कोई त्यागपत्र न दे? लेकिन तुम प्रवासमें रहो या दिल्लीसे न हिलो, स्वामी[1] तो आज ही छुटकारा पाने को तैयार है। लेकिन सर पुरुषोत्तमदास आदिमें से कोई भी तुम्हें छोड़ने को तैयार नहीं है। स्वामीका कहना है कि मामला पंचको सौंप दिया जाये और वही निर्णय दे। लेकिन क्या इसे पंचके पास ले जाना चाहिए? यहाँ प्रश्न स्वभाव-भेदका ही है। कुछ लोगोंके स्वभाव आपसमें नही मिलते। लेकिन ऐसा हो सकता है कि काम दोनों या सब अच्छा कर रहे हो। इस परिस्थितिमें वे अलग रहकर काम करते है और मधुरता नही खोते। मैं कोई फरमान नही जारी कर रहा हूँ। बस, विचारोंका ही आदान-प्रदान कर रहा हूँ।

बापू

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. स्वामी आनन्द; देखिए पृ० ४२८।

३२७. पत्र : मंजुला गांधीको

२६ जुलाई, १९४४

चि० मंजु,

तेरा पत्र मिला। ईश्वरपर पूरा भरोसा रखकर और अपने भजनोकी थाती का सहारा लेकर निश्चिन्त हो जा। तू वयसे बच्ची है इसलिए तू ज्ञानी न बन सके, ऐसा कोई नियम नही है। ज्ञान अर्थात् अन्तर्ज्ञानका उम्रके साथ कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही है। मैंने वृद्ध और बहुत पढ़े-लिखे व्यक्ति भी मूढ़ देखे है और रायचन्द भाई-जैसे बे-पढ़े लिखे आदमीको कम उम्रमें आत्मज्ञान प्राप्त करते देखा है। मै तुझसे पहली तारीखकी रात या २ तारीखकी सुबह मिलने की आशा रखता हूँ। तू अच्छी हो जा,[1] उसके बाद मेरे पास आ जा, इसपर मेरा बहुत आग्रह है। मै गिरफ्तार हो जाऊँ, तब भी तू आश्रममें रह सकती है अथवा उस समय यह विचार कर सकती है कि क्या करना है।

बापूके आशीर्वाद

मंजु गांधी

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३२८. भेंट : समाचारपत्रोंको

पंचगनी
२६ जुलाई, १९४४

भारतीय प्रश्नपर लॉर्ड सभामें हुई बहसको मैंने ध्यानसे पढ़ा है। मैं स्वीकार करता हूँ कि उससे मुझे निराशा हुई है। लॉर्ड मन्स्टरने मेरे प्रस्तावोंका सार[2] ठीक पेश किया है। मै इससे अधिक रचनात्मक सुझावकी कल्पना नही कर सकता था। यदि इसे कमसे-कम मैत्रीपूर्ण चर्चा और मुझे कार्य-समितिके सदस्योसे, जो इस मामलेमें अधिकार-पूर्वक बोलने के एकमात्र हकदार है, मिलने की अनुमति देने के आधारके रूपमें भी स्वीकार नहीं किया जाता तो मुझे अनिच्छापूर्वक इसी निष्कर्षपर पहुँचना पड़ेगा कि जिसे मैं एक गतिरोध मानता हूँ किन्तु जिसे शायद ब्रिटिश सरकार वैसा नही मानती हो उसका वह कोई उचित समाधान नही चाहती।

१. देखिए "पत्र : डॉ० के० सी० घरपुरेको", पृ० ४२७।
२. मन्स्टरके भाषणके अंशोंके लिए देखिए परिशिष्ट २१।

मै समाधान ढूँढने का चाहे जितनी ईमानदारीसे प्रयत्न करूँ, यदि ब्रिटिश सरकार उसका उचित उत्तर नही देती तो मुझे मालूम है कि मै कुछ नही कर सकता। काश, बहसमें साम्प्रदायिक मतभेदोका हौआ न खड़ा किया गया होता। मैंने कहा है और अब भी कहता हूँ कि जबतक उन मतभेदोंका नाजायज फायदा उठाने के लिए तीसरा शासक पक्ष मौजूद है तबतक मतभेद तो रहेंगे ही। मैंने वही कहा है जिसे मै सत्य मानता हूँ। प्रसंग इतना गम्भीर है कि उस सत्यको मैं छिपा नही सकता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-७-१९४४

३२९. पत्र : राधिका देवीको

[२६ जुलाई, १९४४ के पश्चात्][1]

प्रिय भगिनी,

तुम्हारा खत मिला है। अमानुषी वर्ताव हुआ है तो बगैर अनशनके मनुष्य क्या कर सकता है? मेरी हिम्मत दखल देने की नही होती। ईश्वरपर श्रद्धा रखकर जो होवे उसकी बरदाश्त की जाय।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती राधिका देवी
विश्वनाथ प्रसाद चौबे
गोपालपुर
बलिया

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र २६ जुलाई, १९४४ के पत्रोंके बाद रखा गया है।

३३०. पत्र : लॉर्ड वेवेलको

पंचगनी

[२६/][1] २७ जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

मुझे स्वीकार करना होगा कि आपके इसी २२ तारीखके पत्रसे[2] मुझे निराशा हुई। लेकिन मैं निराशाके बीच भी काम करने का अभ्यस्त हूँ। यह रहा मेरा ठोस सुझाव।

मैं कार्य-समितिको यह घोषणा करने की सलाह देने को तैयार हूँ कि बदली हुई परिस्थितियोंको देखते हुए अब सार्वजनिक सविनय अवज्ञा, जिसकी तजवीज अगस्त १९४२ के प्रस्तावमें थी, नहीं की जा सकती, और यदि इस शर्तके साथ कि युद्धके चालू रहते भारतपर कोई आर्थिक बोझ डाले बिना सैनिक कार्रवाइयाँ आजकी तरह चलती रहेंगी, भारतकी अविलम्ब स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी जाती है और केन्द्रीय विधान-सभाके प्रति उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकारका गठन कर दिया जाता है तो कांग्रेसको युद्ध-प्रयत्नमें पूरा सहयोग देना चाहिए। अगर ब्रिटिश सरकार समझौता चाहती है तो पत्र-व्यवहारके बदले मैत्रीपूर्ण वार्त्ता होनी चाहिए। लेकिन मैं आपके हाथोंमें हूँ। जबतक सम्मानजनक समझौतेकी तनिक भी आशा शेष है तबतक मैं आपका दरवाजा खटखटाता ही रहूँगा।

इतना लिखने के बाद मैंने लॉर्ड सभामें दिया गया लॉर्ड मन्स्टरका भाषण देखा। उन्होंने लार्ड सभामें जो सारांश पेश किया उसमें मेरे प्रस्तावका समावेश काफी हदतक हो गया है। यह सारांश पारस्परिक मैत्रीपूर्ण वार्त्ताके आधारका काम कर सकता है।[3]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ६। हिन्दू, १९-८-१९४४ भी

१. लॉर्ड मन्स्टरके भाषणके उल्लेखसे; देखिए परिशिष्ट २१।

२. देखिए पृ० ४११, पा० टि० २।

३. देखिए "भेंट: समाचारपत्रोंको", पृ० ४५३-५४। लॉर्ड वेवेलके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट २२।

३३१. पत्र : मनु गांधीको

पंचगनी
२७ जुलाई, १९४४

चि० मनुड़ी,

तेरा पत्र मिला। तेरा वजन ८७ पौंड तक घट जाये, यह तो शर्मकी बात है। रातके दो बजेतक पढ़ना पाप है। पास होने की यदि यह शर्त हो तो मुझे ऐसी पढाई नही चाहिए। यदि तू नियमका पालन कर ही न सके तो तुझे मेरे पास आना पड़ेगा। ऐसी पढ़ाई के बजाय तू अनपढ़ रह जाये, यह मुझे स्वीकार्य होगा। दवा भी तू नियमित रूपसे नही खाती। यह किस बातका सूचक है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

३३२. बातचीत: पंचगनीके नागरिकोंके साथ[1]

पंचगनी
२७ जुलाई, १९४४

महात्मा गांधीने कहा कि पंचगनी-प्रवाससे मुझे बहुत लाभ पहुँचा है और मेरे स्वास्थ्यमें काफी सुधार हुआ है।

वईके नवाबने महात्मा गांधीसे नागरिकोंका परिचय कराते हुए आशा व्यक्त की कि वे प्रति-वर्ष वहाँ आया करेंगे।

महात्मा गांधीने वहाँ एकत्र लोगोंसे काफी अनौपचारिक ढंगसे बातचीत की। एक स्थानीय यूरोपीय स्कूलके उप-प्रधानाचार्यने जब उनसे कहा कि उन्होंने लगभग चालीस वर्ष पूर्व अपने बचपनमें चार्ल्सटाउनमें उन्हें देखा था तो महात्मा गांधी बोल पड़े, "अरे हाँ, चार्ल्सटाउनकी तो मुझे खूब याद है। चार्ल्सटाउनको भला मैं क्यों न जानूँगा? वहीं तो मेरी अच्छी पिटाई हुई थी।"[2] और यह कहकर वे खिलखिलाकर हँसने लगे।

१. रिपोर्टके अनुसार, शैक्षणिक संस्थाओंके प्रधानों, चिकित्सकों तथा व्यवसायियोंने गांधीजी से दिनमें तीसरे पहर मुलाकात की और उनके साथ कोई आधा घण्टा रहे।

२. देखिए खण्ड ३९, पृ० ९१-९२।

महात्मा गांधीने कहा कि आजतक उन्होंने भारतके जितने पहाड़ी स्थल देखे हैं, उनमें से उन्हें पंचगनी सबसे पसन्द आया। साथ ही उन्होंने ठहरने की जगहोंकी कमीका उल्लेख किया और कहा कि धनी लोगोंको ऐसे घर बनवाने चाहिए जहाँ आकर निर्धन लोग भी स्वास्थ्य-सुधारके लिए वहाँके जलवायुका लाभ उठा सकें।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २८-७-१९४४

३३३. तार : स्टुअर्ट गेल्डरको

२८ जुलाई, १९४४

एक्सप्रेस
गेल्डर
मार्फत — फ्रैंक मोरेस
ग्रीनफील्ड्स, चर्चगेट रिक्लेमेशन
बम्बई

यह जानकर दुःख हुआ कि आप अबतक अस्वस्थ हैं। मोरेसको आकर देखने दीजिए कि क्या बनता है।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३३४. पत्र : अमतुस्सलामको

पंचगनी
२८ जुलाई, १९४४

बेटी अमतुल सलाम,

तेरा खत पढ़कर दुःख हुआ। तेरा धर्म ही इन्दौर जाने का है। मेरा हुक्म नहीं मिलेगा। मुझे तेरी सेवा नहीं चाहिए। तू बीमार पड़े और तुझे सेवाकी जरूरत हो, तो तू सेवाग्राम आये, यह अलग बात है। तेरा काम बाहर रहकर जो आता हो वह करने का है। मेरे गुस्सेकी बात नहीं है। मेरी अपनी मर्यादाकी बात है। इसलिए तुझे जो सेवा पसन्द हो वह कर लेकिन सेवाग्रामसे बाहर रहकर। अब तो तेरी तबीयत अच्छी हो गई है, इसलिए सेवाग्राम जाने का कोई कारण नहीं है।

बापूकी दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८१) से

३३५. पत्र : कुसुम देसाईको

पंचगनी
२८ जुलाई, १९४४

चि० कुसुम,

तेरा पत्र मिला। मैं सेवाग्राम ३ तारीखको पहुँचने की आशा रखता हूँ। बम्बई नही जाऊँगा। कल्याणसे गाड़ी पकड़ूंगा। उस गाड़ीमें तू आ सकती है। उसमें आये तो शान्तिकुमारसे मिल लेना। मुझे भी तुझसे मिलने का लोभ है।

बापूके आशीर्वाद

श्री कुसुमबहन देसाई
मेहता पोल
बड़ौदा

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८५१) से

३३६. पत्र : विजया म० पंचोलीको

पंचगनी
२८ जुलाई, १९४४

चि० विजया,

तेरा पत्र मिला। मैं ३ तारीखको सेवाग्राम पहुँचूंगा, वहाँ आना चाहे तो आ जाना। मैं तेरे पत्रकी बाट जोहूँगा। अब उत्तर देना। नानाभाईसे कहना कि उनका पत्र मुझे मिल गया है। वे सेवाग्राम जरूर आयें। मैं बम्बई रुकनेवाला नही हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१४९) से। सी० डब्ल्यू० ४६४१ से भी; सौजन्य : विजया म० पंचोली

३३७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

पंचगनी
२८ जुलाई, १९४४

मेरे मुलाकाती मुझसे जिस विषयपर सबसे अधिक चर्चा करते है वह यह है कि क्या मैं भूमिगत प्रवृत्तियोंका अनुमोदन करता हूँ। इन प्रवृत्तियोंमें तोड़-फोड़की कार्रवाई, अनधिकृत पर्चोंका प्रकाशन इत्यादि शामिल है। मुझसे कहा गया है कि यदि कुछ कार्यकर्त्ता भूमिगत न हुए होते तो वे कुछ भी नही कर पाते। कुछने यह दलील दी है कि यदि लोगोंकी जानकी हिफाजत की जा सके तो सम्पत्तिके विध्वंसको, जिसमें संचार-व्यवस्थाकी तोड-फोड़ भी शामिल है, अहिंसा ही माना जाना चाहिए। ऐसे दूसरे राष्ट्रोंके उदाहरण दिये गये है जो यह सब ही नही, इससे भी बहुत-कुछ अधिक करने में भी नही झिझके। मेरा उत्तर यह है कि जहाँतक मुझे मालूम है, आजतक किसी भी देशने जानबूझकर अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके एकमात्र साधनके रूपमें सत्य और अहिंसाका प्रयोग नही किया है। इस मापदण्डके अनुसार देखें तो मैं बेहिचक कह सकता हूँ कि अहिंसक कार्य-प्रणालीमें भूमिगत कार्रवाइयोंका, चाहे वे अपने-आपमें नितान्त हानि-रहित ही क्यो न हो, कोई स्थान नही होना चाहिए। तोड-फोड़की कार्रवाई और उसमें शामिल सभी बातें, जिनमें सम्पत्तिका विनाश भी आ जाता है, अपने-आपमें हिंसा है। शायद यह सिद्ध किया जा सकता हो कि इन कार्रवाइयोंने लोगोंकी कल्पनाको छुआ है तथा उनका उत्साह बढ़ाया है, किन्तु मुझे तनिक भी सन्देह नही कि आन्दोलनको समग्र रूपमें लें तो इनसे उसको क्षति पहुँची है।

मेरी सम्पूर्ण आस्था रचनात्मक कार्यक्रममें ही है। उस कार्यक्रमके मुद्दे ये है :

१. साम्प्रदायिक एकता
२. अस्पृश्यता-निवारण
३. मद्य-निषेध
४. खादी
५. अन्य ग्रामोद्योग
६. गाँवोकी सफाई
७. नई या बुनियादी तालीम
८. प्रौढ़ शिक्षा
९. नारी-उत्थान
१०. तथाकथित आदिवासियोंकी सेवा
११. स्वास्थ्य और सफाई-स्वच्छताकी शिक्षा

१२. राष्ट्रभाषाका प्रचार

१३. मातृभाषा-प्रेम

१४. आर्थिक समता स्थापित करने का प्रयत्न

दुर्भाग्यकी बात है कि इस कार्यक्रममें मेरी जैसी जीवन्त आस्था है, वैसी कार्यकर्त्ताओंमें विकसित नही हो पाई है। मै तो इस कार्यक्रमके महत्त्वपर बार-बार जोर ही दे सकता हूँ। और यदि सम्पूर्ण भारतके लोगोंको इस कार्यक्रमको अपनाने के लिए राजी किया जा सके तो हम अपने लक्ष्यतक शीघ्रातिशीघ्र पहुँच जायें।

जो कार्यकर्त्ता अभीतक भूमिगत हैं उनको मेरी यह सलाह है:

यदि आप मेरे समान ही यह विश्वास रखते हो कि भूमिगत प्रवृत्ति सक्रिय अहिंसाकी भावनाके विकासमें सहायक नही है तो आप प्रकट हो जायेंगे और इस विश्वासके साथ गिरफ्तार होने का खतरा उठायेंगे कि इस प्रकार कैद भुगतने से भी स्वतन्त्रता आन्दोलनको सहायता पहुँचती है।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-७-१९४४

३३८. पत्र: सर एडवर्ड जेन्किन्सको

सेवाग्राम[2]

कैम्प पंचगनी

२९ जुलाई, १९४४

प्रिय सर एडवर्ड,

आपके १६ जुलाईके पत्रके[3] लिए धन्यवाद। कुमारी एगथा हैरिसनके नाम मेरे पत्रको भेजने के लिए आपका आभारी हूँ।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

सर एडवर्ड जेन्किन्स

वाइसराय भवन

नई दिल्ली

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० ३५

१. देखिए परिशिष्ट १३ और १४ भी।

२. स्थायी पता

३. पत्र इस प्रकार था: "श्री पवेलके शिमलामें होने के कारण उनको लिखे आपके १३ जुलाईके पत्र [देखिए पृ० ३९७-९८] के सम्बन्धमें मैं ही कार्रवाई कर रहा हूँ। आपकी इच्छानुसार कुमारी एगथा हैरिसनके नाम आपका पत्र [देखिए पृ० ३९६-९७] वाइसराय महोदयकी डाकमें शामिल करके भेजा जा रहा है।"

३३९. पत्र : शारदाबहन गोरधनदास चोखावालाको

पंचगनी
२९ जुलाई, १९४४

चि० बबुड़ी,

मुझे तेरा साफ पत्र मिला। मैं ३ तारीखको सेवाग्राम पहुँचने की उम्मीद रखता हूँ। तुझे और आनन्दको कब देखूंगा? मिलने की इच्छा होने के बावजूद मुझे उतावली नहीं है। बिलकुल ठीक होने के बाद ही आना। मैंने कोशिश तो की थी, लेकिन जो मुझे समझा सके ऐसा होमियोपैथिक डाक्टर मुझे अभी नहीं मिला है। जब मैं कुछ रोगियोंको होमियोपैथीसे अच्छा होते देखूंगा, तभी तो मेरा विश्वास उसपर बैठेगा न? अभी तो तूने जिस पुस्तकके विषयमें लिखा है वह पुस्तक मैं नहीं मँगवा रहा हूँ। समय ही नहीं है। लेकिन तेरा डाक्टर भला मुझे क्या सिखा सकता है?

तुम सबको
बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९७३) से। सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

३४०. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२९ जुलाई, १९४४

चि० कृष्णचंद्र,

बालकृष्णके बारेमें चिंता होती है। इस समय तो बीत जायगा। क्या वह पूनामें डा० मेहताके आरोग्य भवनमें रहेंगे? मैं नहीं जानता कि दा० मेहता उस केस लेंगे।[1] यों तो मैं हूं। लेकिन मेरा भरोसा ही नहीं हो सकता है।[2]

आजकल मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ। मेरी कलम खुद-ब-खुद गुजरातीमें चलने लगी इसलिए अब गुजरातीमें ही लिखूंगा। मुन्नालालका पत्र पूरी तरहसे नहीं पढ़ा। अभी तो इतना ही कह सकता हूँ कि वह ठीक लगता है।

कृष्णदास[3] और जाजूके[4] रिहा होने का समाचार मिला, अच्छा लगा। मैं दोनों के ब्योरेवार पत्रकी राह देखूंगा।

१. देखिए "पत्र : बालकृष्ण भावेको", पृ० ४५१-५२।
२. इसके बादका अंश गुजरातीमें है।
३. कृष्णदास गांधी
४. कृष्णदास जाजूजी

उम्मीद है, मीतू[1] ठीक चल रही होगी।

मनोज्ञाकी[2] बहनके साथ क्या बात है? उससे कहना कि वह मुझे पत्र लिखे। प्यारेलालको बम्बई भेजा है। शनिवारतक वापस आ जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४४२) से

३४१. पत्र : गंगाधरराव देशपाण्डेको

पंचगनी
२९ जुलाई, १९४४

भाई गंगाधरराव,

सब हाल भाई पुडलिकसे सुन लिये हैं। तुम्हारा विवरण पढ गया हूं। मैं जो कर रहा हूं उससे मेरी उमीद है समाधान हो जायगा। और कुछ शंका रहे तो लिखो। स्वास्थ्य अच्छा होना ही चाहीये। तुम्हारे बहुत सेवा करनी बाकी है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ५२२४) से

३४२. बातचीत : बम्बईके कांग्रेसी नेताओंके साथ[3]

पंचगनी
२९/३० [जुलाई][4], १९४४

नौ अगस्त एक महान् दिवस है और उसे मनाना सबका कर्त्तव्य है। किन्तु प्रस्तावके सार्वजनिक सविनय अवज्ञावाले अशको कार्यान्वित नही किया जा सकता, क्योंकि उसको कार्यान्वित करने का अधिकार अनन्य रूपसे केवल मुझे सौंपा गया था। आज उस अधिकार या परिस्थिति, किसीको भी ध्यानमें रखकर देखने से मुझे सार्वजनिक सविनय अवज्ञाकी कोई सम्भावना नजर नही आती है।

सार्वजनिक सविनय अवज्ञा करना एक बात है और अपने नागरिक अधिकारोंका उपभोग और उसके सिलसिलेमें सविनय अवज्ञा करना बिलकुल दूसरी बात है। सन्

१. आर्यनायकमकी पुत्री
२. कृष्णदास गांधीकी पत्नी
३. साधन-सूत्रके अनुसार यह बातचीतका सार-संक्षेप है।
४. साधन-सूत्रमें यहाँ 'अगस्त' है, जो स्पष्ट ही भूल है।

१९२० से लोग प्रतिरक्षात्मक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाके अधिकारका उपयोग करते चले आ रहे हैं। सार्वजनिक सविनय अवज्ञा और अपने नागरिक अधिकारोंकी रक्षाके लिए की जानेवाली व्यक्तिगत सविनय अवज्ञामें जो भेद है, उसे शायद आम लोग न समझें। किन्तु इस भेदको समझ लेना आवश्यक है।

नौ अगस्त-जैसे मौकोंपर जनताको यह भेद समझ लेना होगा, और नागरिक अधिकारोंकी सुरक्षाके निमित्त व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाके अधिकारका उपयोग करना होगा। जिन स्थानोंपर सभाओं, जुलूसों और ऐसे ही सामान्य नागरिक अधिकारोंके उपयोगके लिए पुलिसकी अनुमति लेना आवश्यक हो वहाँ अनुमति माँगी जाये। किन्तु यदि अनुमति न मिले तो लोगोंको इस इनकारके बावजूद अपने नागरिक अधिकारका उपयोग करना चाहिए।[1]

[अंग्रेजीसे]

चीफ कमिशनर्स ऑफिस, बम्बई; फाइल नं० ३००१ / एच० पी०। सौजन्य: महाराष्ट्र सरकार

३४३. पत्र : पूरणचन्द्र जोशीको

सेवाग्राम[2]
कैम्प पंचगनी
३० जुलाई, १९४४

प्रिय मित्र,

आपका १४ जूनका पत्र[3] मुझे यथासमय मिल गया था और श्री कुमारमंगलम् के हाथ भेजा २६ जुलाईका पत्र भी।

मेरे पहले प्रश्नका आपने जो उत्तर दिया है उससे एक नया प्रश्न उठता है, जिसका उत्तर आपसे अपेक्षित है। मुझे मालूम हुआ है कि यद्यपि मित्र-राष्ट्रोंके प्रमुख नेताओंका वास्तविक लोकतन्त्रकी ओर कोई रुझान नहीं है, फिर भी आप सोचते हैं कि युद्ध समाप्त होते-होते उनके मंसूबे धरे-के-धरे रह जायेंगे और समस्त विश्वकी जनता अचानक ही उठ खड़ी होगी और वर्तमान नेताओंका तख्ता उलट देगी। आपके उत्तरके अनुसार, इस "जनता" शब्दमें भारतकी जनता, अन्य एशियाईजनों और नीग्रो लोगों, बल्कि वस्तुत. जापान तथा जर्मनीके भी सर्वहारा लोगोंको गिनने का मुझे अधिकार है। यदि आपकी यही मान्यता है तो मुझे कहना पड़ेगा कि मैं इससे सहमत नहीं हूँ, किन्तु कायल कर सकें तो मैं कायल होने को तैयार रहूँगा। फिलहाल,

१. साधन-सूत्रके अनुसार, इसके बाद ९ अगस्तके जुलूसके नेताकी ओरसे बम्बईके पुलिस कमिश्नर को भेजने के लिए एक पत्रका मसौदा तैयार किया गया, जो "उक्त नीतिके अनुरूप" गांधीजी द्वारा "अनुमोदित" बताकर प्रकाशित हुआ; देखिए परिशिष्ट २३।

२. स्थायी पता

३. देखिए परिशिष्ट १६।

मै यही कहूँगा कि "जन-युद्ध" शब्द अत्यन्त भ्रामक है। इससे भारत सरकारको यह दावा करने का मौका मिलता है कि इस युद्धको भारतकी कमसे-कम एक जनप्रिय पार्टी "जन-युद्ध" मानती है। मेरा यह भी कहना है कि चाहे जिस तरह भी देखा जाये, यह नही हो सकता कि जो युद्ध पहले उस नाजी गुटके खिलाफ एक साम्राज्य-वादी युद्ध था वह मित्र-राष्ट्रोंसे रूसके एक सीमित ढंगके सन्धि-सम्बन्धमें बँध जाने से "जन-युद्ध" में बदल गया हो।

अब चूँकि मेरे विचार इस तरहके हैं, इसलिए आपकी इस दलीलका उत्तर देना मेरे लिए बेकार है कि "इस युद्धने विश्वको दो शिविरोंमें बाँट दिया है"। जब एक ओर पहाड़ हो और दूसरी ओर खाई तो फिर हम जिस ओर भी जायें, हमारा नाश तो होगा ही। इसलिए मुझे तो तूफानके बीच ही रहना है। मैंने एक उपाय सुझाया था किन्तु स्वभावतः वह ठुकरा दिया गया, क्योंकि सत्ताधारी लोग भारतपर से अपनी पकड़ ढीली नही करना चाहते। इस पत्रको रचते हुए मैंने आपके तर्कको बार-बार पढ़ा है। प्रत्येक अनुच्छेद बुरा लगता है, क्योकि मेरी दृष्टिमें उसमें वास्तविकताका अभाव है। आप सच मानिए, आपने पहले प्रश्नका जो उत्तर दिया है उसे परखने में मैंने आपके दलके प्रति अपने पूर्वग्रहको बिलकुल अलग रखा है।

प्र० २: जिस हदतक इसका उत्तर आपने दिया है उस हदतक उसे मैं पूर्णतः सन्तोषजनक मानता हूँ। आपके वित्तीय मामलेके सम्बन्धमें मैं और प्रमाण माँगना नही चाहता।

आपके उत्तरोंके सम्बन्धमें अपनी बात कह लेने के बाद मैं आपके सम्मुख अपनी कठिनाइयाँ रखूँगा। अन्य प्रश्नोंके आपने जो उत्तर दिये हैं उनके स्पष्ट उत्तरकी गुंजाइश नहीं है। मैं आपके उत्तरोंको समझता हूँ और उनकी कद्र भी करता हूँ। यदि मेरे मनमें पूर्वग्रह न होते तो उन्हें स्वीकार करने में मुझे कोई हिचक न होती।[1] किन्तु मेरी कठिनाई वास्तविक है और मैं आपसे सहानुभूति चाहता हूँ। जब मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे मनमें पूर्वग्रह हैं, तो यह आपसे एक प्रकारकी विनती है कि आप मेरे साथ धीरज से काम लें, और अपनी ओरसे यथासम्भव अच्छेसे-अच्छे ढंगसे मेरे पूर्वग्रहोंको निरस्त करें। मैं तो आपको यही भरोसा दिला सकता हूँ कि आप जिससे चाहें मै उससे मिलने को तैयार हूँ, आप जो-कुछ चाहें उसे पढ़ने को तैयार हूँ और आप जो भी तर्क या तथ्य पेश करें उनपर मैं भरसक तटस्थ भावसे विचार करने को तत्पर हूँ। आपको मैं यह आश्वासन भी देता हूँ कि मैंने अपने इस पूर्वग्रहके वशीभूत होकर कोई कार्य नही किया है और तबतक नहीं करूँगा जबतक यह पूर्वग्रह इस दृढ़ विश्वासका रूप न ले ले कि आपका दल एक अनिष्ट शक्तिका प्रतिनिधित्व करता है और स्वाधीनता-संग्रामके मार्गमें वास्तवमें बाधक है। मेरे मनमें ऐसे विश्वासके आसानीसे घर कर पाने की सम्भावना नहीं है, और यदि

१. इस सम्बन्धमें पूरणचन्द्र जोशीने अपने १२ सितम्बरके प्रत्युत्तरमें लिखा था: "आप सोच नहीं सकते कि मुझे यह पढ़कर कितनी चोट पहुँची है कि हमारे देशका नेता एक युवा राष्ट्रीय दलके खिलाफ लगाये गये मिथ्या आरोपपर विचार करने में अपने पूर्वग्रहके बाधक होने की दुहाई दे।"

कर जाता तो मैं काफी पहलेसे आपको उसकी सूचना दे दूँगा, ताकि आप मुझे उससे विमुख कर सकें। मैं आपकी योग्यताको जानता हूँ। आपके पास कितने ही सुयोग्य युवा स्त्री-पुरुष हैं, जो उतने ही नि:स्वार्थ हैं जितना नि:स्वार्थ होने का दावा मैं करूँगा। आप सब परिश्रमी हैं और आपमें भारी शक्ति है तथा आप अपने कार्यकर्त्ताओंपर कड़ा अनुशासन रखते हैं। यह सब मुझे बहुत प्रिय और सराहनीय लगता है। मात्र अपनी किसी पूर्वग्रहीत धारणाके कारण मैं ऐसी शक्तिको आसानीसे अपने हाथसे जाने नही देना चाहूँगा।

आपने तो मुझे तत्काल ही उत्तर भेज दिये थे, किन्तु उनपर अपने विचार देने में मैंने बहुत देर लगा दी है। उसका कारण यह था कि मैं, जैसा कि आपको मालूम ही है, बहुत व्यस्त था और यह भी कि बिना माँगे ही आपकी पार्टीके खिलाफ मेरे पास जो ढेर सारे साक्ष्य आते चले जा रहे थे, उनकी मैं जाँच कर रहा था।[1] मैंने उन लोगोसे उनके नाम प्रकट करने की अनुमति माँगी, जो उन्होंने दे दी है। जिस व्यक्तिसे सबसे हालमें साक्ष्य मिला है उसे — अर्थात् बाबू मनोरंजन चौधरीको — मैं सबसे पहले ले रहा हूँ। मुझे पता भी नही था कि वे आनेवाले हैं और उन्होंने मुलाकातके[2] लिए समय माँगा तो वह राजाजी फार्मूलेपर[3] मेरी स्वीकृतिके सम्बन्धमें बातचीतके लिए माँगा। किन्तु मेरा अधिकांश समय उन्होंने यही बताने में लिया कि साम्यवादियोंने राष्ट्रीय उद्देश्यको भारी नुकसान पहुँचाया है। उन्होने जिन शब्दोंका प्रयोग किया था, वे इनसे काफी कड़े थे। मैं उनकी बातको नर्म शब्दोमें बता रहा हूँ। वे कुछ कागजात छोड़ गये थे, जिनका मैं अभीतक अध्ययन नही कर पाया हूँ। वे मेरे पास एक छपी हुई किताब[4] भी छोड़ गये हैं, जिसे मैंने स्वयं सरसरी निगाहसे देख लिया है। वह पढ़ने में मुझे बुरी लगी। आप जिस प्रतिनिधिको भी भेजना चाहें उसे यह मुद्रित पुस्तक दिखा दी जायेगी। शायद आप स्वयं उसे देख चुके है।[5]

१. पूरणचन्द्र जोशीने इसके उत्तरमें लिखा था: "जिन्हें जनतापर भरोसा न रहा हो और जो सब नैतिक मूल्य खो बैठे हों उनके लिए राजनीतिक विपक्षियोंपर कीचड़ उछालना एक पुराना अस्त्र है।"

२. गांधीजी ने मनोरंजन चौधरीको २७ जुलाईको मुलाकातके लिए आने को कहा था (देखिए पृ० ४४४)। इस मामलेपर जोशीने अपने प्रत्युत्तरमें लिखा था कि मनोरंजन चौधरी डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जीके एजेंट हैं, जो कि साम्यवादियोंके घोर विरोधी हैं, क्योंकि साम्यवादियोंने उनकी पोल खोल दी है।

३. देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

४. कल्याणी भट्टाचार्यकी लिखी वार अगेन्स्ट द पीपुल। जोशीका आरोप था कि वह पुस्तककी वास्तविक लेखिका नहीं हैं, बल्कि वह पुस्तक डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जीने लिखवाई और अपने खर्च पर ही उसको छपवाया।

५. जोशीने कहा कि उन्होंने पुस्तकको पढ़ा तो नहीं है, किन्तु सरसरी निगाहसे देख लिया है। पुस्तक प्राप्त होते ही उन्होंने साम्यवादी दलकी बंगाल समितिसे पूछा था कि क्या उन्हें पीपुल्स वार में उसका उत्तर देना चाहिए। उत्तरमें समितिने लिखा था: "इसकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि पुस्तकको इस वजहसे बाजारसे हटाया जा चुका है कि सभी शिष्ट बंगालियोंको उसे पढ़कर बड़ी वितृष्णा हुई।"

दूसरे हैं बेजवाड़ाके श्रीयुत कालेश्वर राव। उन्होंने एक लम्बा पत्र भी भेजा, जिसमें से कुछ महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद[1] उद्धृत कर रहा हूँ (देखिए संलग्न पन्ने[2])। इनके अलावा, मेरे परिचित और अपरिचित वहुत-से लोगोंने पत्र भेजे हैं, जिन सबमें आपके दलपर गम्भीर आरोप लगाये गये हैं। मुझे यह भी पता चला है कि श्री जयप्रकाश नारायणका भी "मोहभंग हो गया है"।

आपने मुझसे मियाँ इफ्तिखारुद्दीन[3] और शौकत अन्सारीसे पूछ देखने को कहा है। इन दोनोंको मैं अच्छी तरह जानता हूँ और उनके लिए मेरे मनमें बहुत आदर है। दुर्भाग्यसे इफ्तिखारुद्दीन इस समय जेलमें है। और शौकतसे तो मैंने आजतक कभी भी साम्यवादपर चर्चा नही की है, क्योंकि उनके राजनीतिक विचारोंसे अलग भी शौकत तथा उसकी पत्नी जोहराके साथ मेरा व्यक्तिगत परिचय है। किन्तु वे लोग आपके सम्बन्धमें मुझे जो भी सामान्य आश्वासन दें उससे वे सब साक्ष्य मिट तो नही जायेंगे जो मेरे न चाहते हुए भी मेरे सामने रख दिये गये हैं, और जिनको संक्षेपमें मैंने आपके सामने रख भी दिया है। मेरा अनुरोध है कि आप इन सब साक्ष्योको मात्र पूर्वग्रह कहकर टाल न दें। आपसे मैं कहूँगा कि आपके आलोचक चाहे जितने अज्ञान हों, आप उनके प्रति क्रोध न करें। यदि उनकी आलोचना शरारत-भरी हो और विरोध-भावसे प्रेरित हो तभी आपके क्रोध करने का उचित कारण हो सकता है। अन्तमें मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप सच मानिए, मै स्वतन्त्रता के ध्येयमें, जिसके लिए उस रास्तेसे संघर्ष करना है जो मैंने खुद अपने और समूचे देशके लिए निर्धारित कर दिया है, आपमें से हर व्यक्तिकी सेवा प्राप्त करना चाहता हूँ। और यदि मै इस बातका कायल हो जाऊँगा कि मैं भटक गया हूँ और आपका तरीका सही है तो मैं चाहूँगा कि आप मुझे अपने पक्षमें कर लें, और तब मैं पूरी ईमानदारीसे और खुशी-खुशी एक ऐसे प्रशिक्षणार्थीके रूपमें सेवा करूँगा जो आपके दलकी एक इकाईके रूपमें अपना नाम दर्ज कराना चाहता है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स बिटवीन महात्मा गांधी ऐंड पी० सी० जोशी, पृ० १७-२२

१. कालेश्वर रावके आरोपके सम्बन्धमें जोशीने गांधीजीको लिखा कि वे कालेश्वर राव और आन्ध्रके साम्यवादी नेता सुन्दरैयाको एकसाथ बुलाकर उनके बारेमें निर्णय करें या चक्रवर्ती राजगोपालाचारी तथा श्रीमती सरोजिनी नायडूको न्यायाधीश बनाकर उनपर सार्वजनिक रूपमें मुकदमा चलायें।

२. यहाँ नहीं दिये गये हैं।

३. पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष

३४४. भेंट : 'न्यूज क्रॉनिकल' को[1]

[पंचगनी
३० जुलाई, १९४४][2]

श्री एमरी सब-कुछ जानते-समझते है, किन्तु यह कहकर कि यह फार्मूला तो आरम्भिक बिन्दुका भी काम नही करता, मेरे प्रस्तावको[3] ठुकरा देना उनके लिए सुविधाजनक है। यदि यह फार्मूला आरम्भिक बिन्दु नही होता तो अखबारोमें इस पर जितनी चर्चा हुई है वह सब न होती।

यह पूछे जाने पर कि क्या उनका भी ऐसा विचार है कि ब्रिटिश सरकार जनताका ध्यान आर्थिक प्रश्नकी ओर खींचकर राजनीतिक समस्यासे कतरा जाने का इरादा रखती है, गांधीजी ने उत्तर दिया :

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि किसी बाहरी सत्ताके अधीन रहकर इंग्लैण्डका आर्थिक पुनरुत्थान सम्भव है? जिस सत्ताने डेढ़ सौ वर्षोंसे अधिक कालसे भारतको गुलाम बनाये रखा है, उसके द्वारा भारतकी आर्थिक साधन-सम्पदाके निर्ममतापूर्ण शोषणकी बात तो मैं समझ सकता हूँ, किन्तु वैसे शोषणसे भारतकी आर्थिक

१. रिपोर्टमें कहा गया था कि भारत-मन्त्री एल० एस० एमरीने २८ जुलाईको कॉमन्स-सभामें हुई एक बहसके उत्तरमें जो-कुछ कहा था, उसीके उत्तरमें गांधीजी ने ये बातें कही थी। इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४४, जिल्द २, पृ० २०८ के अनुसार एमरीने कहा था: "... जहाँतक भारतके भावी संविधानका सवाल है, ... कोई सर्वसम्मत संविधान उसी हालतमें तैयार हो सकता है जब मुस्लिम बहुसंख्यावाले प्रान्तोंको साथ रहने या अलग हो जाने की छूट हो। ... इस खास मुद्देके अलावा ... उनकी [गांधीजी की] एक प्रमुख माँग ... यह है कि एक अस्थायी सरकारके अधीन भारतको तत्काल स्वाधीनता दे दी जाये; और इस सरकारके अन्तर्गत वाइसरायके हाथोंमें केवल वे ही अधिकार होंगे जिनका सम्बन्ध सक्रिय सैनिक कार्रवाइयोंके संचालनसे है। युद्ध-प्रयत्नोंके साथ प्रशासनके विविध कार्योंका पूरा समन्वय बनाये रखने के निमित्त कुछ अनिवार्य विशेषाधिकार तथा देशके अल्पसंख्यक समुदायोंकी संवैधानिक स्थितिकी सुरक्षाके निमित्त बनाये गये कुछ अनिवार्य विशेषाधिकार, इन सबीका लोप हो जायेगा। यही तो वह माँग है जिसके कारण दो वर्ष पूर्व कांग्रेसके साथ सरकारकी समझौता-वार्ता टूट गई थी और निश्चय ही अब भी यही होगा। मैं तो सदनसे यही अनुरोध करूँगा कि श्री गांधीके वक्तव्योंको उस समय कांग्रेसी नेताओं द्वारा दिये गये वक्तव्योंके साथ मिलाकर पढ़ें। फिर तो उन्हें सहज ही स्पष्ट हो जायेगा कि इस मामलेमें स्थितिमें कोई सच्ची प्रगति नहीं हुई है। यही नहीं, श्री गांधीने अब एक और शर्त जोड़ दी है कि भारत अपनी सुरक्षाके व्ययका कोई भार नहीं उठायेगा। जबतक ये मुद्दे उनके प्रस्तावोंके आधार बने रहेंगे तबतक स्पष्ट ही उन प्रस्तावोंको लेकर लॉर्ड वैवेल या नजरबन्द कांग्रेसी नेताओंके साथ उनके बातचीत करने से कोई लाभ नहीं होनेवाला है।"

२. यह भेंट इसी तिथि-पंक्तिके अन्तर्गत प्रकाशित हुई थी।

३. देखिए पृ० ३७२ और ४०९।

समृद्धि नहीं हो सकती। उसका अर्थ तो आर्थिक तबाही और राजनीतिक जलालत होगा। मैं तो चकित हूँ कि आज जो ब्रिटिश राजनेता भारतपर शासन कर रहे हैं वे पूरी ईमानदारीसे तैयार की गई एक योजनाको अस्वीकार करके ही सन्तुष्ट नहीं हैं, बल्कि यह भी सुझाते हैं कि युद्ध-कालके दौरान राजनीतिक समस्याको ताकपर रख दिया जाये और भारतके आर्थिक उद्धारपर ही पूरा ध्यान दिया जाये।[१]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १-८-१९४४

३४५. भेंट: समाचारपत्रोंको

पंचगनी

३० जुलाई, १९४४

हाँ, मेरा ध्यान इसपर[२] गया है। जिस ब्रिटिश जातिका राजनीतिक स्वतन्त्रता के निमित्त किये गये शौर्यपूर्ण संघर्षका अपना एक सुदीर्घ और ज्वलन्त इतिहास है, उसीके प्रतिनिधि भारतके आर्थिक विकासको उसकी राजनीतिक दासतासे बिलकुल अलग चीज मानें और आर्थिक विकासको राजनीतिक दासतासे मुक्तिके मुकाबले प्राथमिकता दें, यह देखकर मुझे क्लेश और विस्मय दोनोंका अनुभव हुआ है। मुझे तो यह घोड़ेको गाड़ीके पीछे जोतने-जैसा लगता है और मैंने आजतक किसी घोड़ेको अपने थूथनसे गाड़ीको ढकेलने का करतब करते नहीं देखा है। इसलिए मुझे यह देखकर हर्ष हुआ कि दो प्रमुख उद्योगपतियों, श्री जे० आर० डी० टाटा और सर होमी मोदीने कॉमन्स-सभामें पेश किये गये इस विचारको फौरन ठुकरा दिया, और शायद पिछले कटु अनुभवोंके आधारपर यह राय जाहिर की कि भारतका आर्थिक विकास राजनीतिक गतिरोधके समाधानपर या दूसरे शब्दोंमें केन्द्रमें किसी उपयुक्त राष्ट्रीय सरकारके शासनकी बागडोर सँभालने पर निर्भर है। मैं समझता हूँ कि उनके ध्यानमें वे भारी रियायतें थी जो पिछले वर्षोंके दौरान ब्रिटिश एकाधिकारियोंको दी गई हैं। उनके ध्यानमें यह बात भी रही होगी कि किस प्रकार भारतीय उद्यमका दम घोंटा जा रहा है। इसलिए राष्ट्रीय सरकारके बिना भारतका आर्थिक विकास नहीं, बल्कि उसका शोषण और अपमान ही हो सकता है।

भारतकी वास्तविक परिस्थितिसे अनभिज्ञ कॉमन्स-सभाके सदस्यगण दार्शनिक भावसे भारतके आर्थिक विकासके तात्कालिक महत्त्वकी बातें कर सकते हैं। काश, वे देख सकते कि भारतमें आज क्या हो रहा है! मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं कि बंगालमें अकाल और भारतके अन्य भागोंका भी अकाल दैवी कोप नहीं था,

१. देखिए अगला शीर्षक भी।

२. कॉमन्स-सभाकी बहसमें व्यक्त इस आम रायकी ओर कि भारतका आर्थिक विकास राजनीतिक गतिरोधके समाधानसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है; देखिए पिछला शीर्षक भी।

बल्कि उसके लिए मनुष्य ही जिम्मेदार थे। ब्रिटेनसे भारतमें शासन करने के लिए जो लोग भेजे गये हैं उनकी ईमानदारीपर मुझे आक्षेप करने की कोई जरूरत नहीं है।

मैं यह मानता हूँ कि ब्रिटिश शासक चाहे जितनी ईमानदारीसे काम लें, उनके लिए भारतकी अन्दरूनी स्थितिको समझ पाना और वास्तविक रोगको पहचान सकना असम्भव है। इसलिए कॉमन्स-सभामें जाहिर की गई आम राय मुझे एक अत्यन्त गम्भीर स्थितिकी ओर संकेत करती प्रतीत होती है। उसने मेरी इस रायको पुष्ट किया है कि "भारत छोड़ो" प्रस्ताव कोई क्रोध और उतावलीमें तैयार किया गया प्रस्ताव नहीं था। इसी बातको संसदीय भाषामें इस प्रकार कह सकते हैं कि उसका तकाजा यह है कि अब भारतका शासन उसकी जनता द्वारा निर्वाचित भारतीयों के हाथोंमें हो और वह भी जनताके एक विशिष्ट वर्ग द्वारा नहीं, बल्कि जाति, धर्म और रंगके भेद-भावसे रहित समस्त भारतीय जन-समुदाय द्वारा निर्वाचित भारतीयोंके हाथोंमें। दुर्भाग्यकी बात है कि कॉमन्स-सभाने मित्र-राष्ट्रों और धुरी-राष्ट्रोंके बीचके प्रश्नको निरंकुशता बनाम लोकतन्त्रका वास्तविक प्रश्न या किसी पूर्णतः शस्त्र सज्जित वर्ग अथवा राष्ट्र द्वारा वर्गों या राष्ट्रोंके शोषणका सच्चा सवाल बनाने का एक और मौका खो दिया है। अपने प्रस्तावमें मैंने उस उद्देश्यको अपनी सामर्थ्य-भर अधिकसे-अधिक स्पष्ट भाषामें प्रस्तुत किया था। वह पृथ्वीके सभी शोषित राष्ट्रों और शोषित जातियोंकी ओरसे पेश किया गया था। यह बड़े खेदकी बात है कि लॉर्ड-सभा और कॉमन्स-सभा, दोनोंने मेरा प्रस्ताव ठुकरा दिया। मित्र-राष्ट्रोंकी विजय होगी, किन्तु विजयके आलोकका अनुभव शोषित जातियाँ नहीं कर पायेंगी। वे देखेंगे कि उस विजयने ही दूसरी और अधिक घातक लड़ाईके बीज बो दिये हैं। मैं अपने-आपसे पूछता हूँ कि 'क्या ऐसी खोखली विजयकी ही खातिर खूनकी ये नदियाँ बहनी चाहिए?'

गांधीजी से पूछा गया कि वे श्री जिन्नासे कब मिलने की आशा रखते हैं, उन्होंने उत्तर दिया :

कायदे-आजम जब भी मुझसे मिलना चाहे मैं तभी उनसे मिलने की आशा रखता हूँ, बशर्ते कि मेरा स्वास्थ्य ठीक हो। फार्मूलेका[1] प्रकाशन साम्प्रदायिक समझौते के लिए बातचीत शुरू करने के निमित्त ही है। यह कोई निरर्थक प्रयास नहीं है, इसके पीछे पूरी ईमानदारी है। खेदकी बात है कि फार्मूलेकी जो भी आलोचनाएँ की गई हैं उन सबके पीछे या तो पूर्वग्रह है या फार्मूलेका अधकचरा अध्ययन। यह किसी दल-विशेषकी ओरसे प्रस्तुत किया गया प्रस्ताव भी नहीं है। अभीतक जो साम्प्रदायिक उलझन सुलझाये नहीं सुलझी है उसीको सुलझाने की दिशामें यह राष्ट्रके दो आजीवन सेवकोंका योगदान है। इसमें सभी पक्षोंको आमन्त्रित किया गया है कि वे समाधान निकालने के लिए अपनी-अपनी बुद्धि लगायें। राजाजी फार्मूला सभी देश-प्रेमियोंके सहायतार्थ है। अपनी समझके अनुसार हमने, इसमें सर्वोत्तम समा-

१. राजाजी फार्मूला; देखिए खण्ड ७६, परिशिष्ट ८।

धानकी परिकल्पना की है, किन्तु जिस प्रकार इसे कोई स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता है उसी प्रकार इसमें सुधार और परिवर्तन भी किया जा सकता है।

गांधीजी ने बताया कि ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावके ठुकरा दिये जाने का राजाजी फार्मूलेपर किसी प्रकारका कोई असर नहीं पड़ता। जहाँतक मुझे स्मरण है, गेल्डरको इस प्रस्तावकी जानकारी नहीं थी और यदि थी भी, तो वह उन्हें मुझसे नहीं बल्कि राजाजी से ही मिली होगी।[1]

राजनीतिक गतिरोधके समाधानके लिए प्रस्तुत किये गये मेरे प्रस्तावकी अस्वीकृति एक प्रकारसे सभी दलोंको अपना ध्यान साम्प्रदायिक समझौतेपर केन्द्रित करने का अवसर देती है। मेरा कहना था और मैं उसे फिर दोहराता हूँ कि एक तीसरे पक्ष की उपस्थिति समस्याके हलमें निश्चित रूपसे बाधक है, लेकिन मेरे इस कथनका अर्थ यह नहीं था कि हमारे देशमें तीसरे पक्षका प्रभुत्व कायम रहते मैं किसी सम्मानजनक समाधानके लिए कोई प्रयत्न करूँगा ही नही। यदि हम कोई ऐसा समाधान निकाल लें जिससे सभी पक्षोंको सन्तोष हो तो मुझसे ज्यादा खुशी किसीको नही होगी।

एक संवाददाताने महात्मा गांधीसे पूछा कि उनके प्रस्तावोंके ब्रिटिश सरकार द्वारा ठुकराये जाने के परिणामस्वरूप क्या वे कांग्रेसजनोंको फिरसे जेल जाने की सलाह देंगे। इसके उत्तरमें महात्मा गांधी बोले :

क्या आपने किसी भी समझदार आदमीको अकारण ही, या जेलसे छूटते ही दोबारा जेल जाते देखा या सुना है? किन्तु जिस व्यक्तिको अपना आत्म-सम्मान या अपने देशकी स्वाधीनता प्राणोंसे भी प्रिय हो वह इन दोनोंमें से किसीकी भी रक्षा करने की खातिर मरते दमतक खुशीसे कष्ट-सहन करता है, और यदि इनकी रक्षा करते हुए उसे जेल भी जाना पड़े तो उसका भी स्वागत करता है। इसलिए यह प्रश्न तो सरकारसे पूछा जाना चाहिए कि 'जिन लोगोंको आपने रिहा किया है उन्हें आप कब जेलमें वापस बुलाना चाहते है?' मैं जानता हूँ कि सरकार आपके इस प्रश्नका उत्तर देने नही जा रही है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १-८-१९४४

१. यह अनुच्छेद ३१-७-१९४४ के बॉम्बे क्रॉनिकल से लिया गया है।

३४६. पत्र : शुएब कुरैशीको

पंचगनी
३१ जुलाई, १९४४

प्रिय शुएब,

तुमने लड़केका जो वर्णन किया है उससे आँखें भर आती हैं। उस बच्चेको सँभालने के लिए मैंने जो कोशिश की, मुझे अच्छी तरह याद है। प्रभु उसे और उसके माता-पिता, तुम दोनोंको शान्ति दे।

तो देख रहे हो कि कायदे-आजम और मैं मिलनेवाले हैं। यदि सी० आर० फार्मूलेका प्रकाशन दोष देने योग्य था तो उनके साथ मैं भी उस दोषका भागी हूँ। जो भी हो, मैं जानता हूँ, तुम तो अपने काममें जुटे रहोगे।

तुम दोनोंको प्यार।

बापू

शुएब साहब कुरैशी
भोपाल

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३४७. पत्र : रेखड़ेको

सेवाग्राम,[1] वरास्ता वर्धा
३१ जुलाई, १९४४

प्रिय रेखड़े,

तुम्हारा पत्र पढ़कर दु.ख होता है। अकेले तुम्हारे साथ ही ऐसा नहीं हुआ है। और मैं तो बिलकुल लाचार हूँ। जैसा तुम्हारे साथ हुआ है, वैसा तो राष्ट्रीय संघर्षमें होना अनिवार्य ही है। मूल्योंको बदलना है। हम पुराना जीवन जीते रहकर सघर्षमें शरीक नही हो सकते।

मुझे खेद है कि मैं कोई ऐसा उत्साहवर्धक पत्र नही भेज सकता जो तुम्हें अच्छा लगे।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. स्थायी पता

३४८. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

३१ जुलाई, १९४४

चि० जानकीबहन,

ईश्वरकी कृपा होगी तो तुम्हारी खबर लेने के लिए तीसरी तारीखको पहुँच रहा हूँ। 'कृपा' तो भूलसे लिख गया। ईश्वरकी तो हमेशा कृपा ही होती है। यदि हम उस कृपाको नहीं पहचान सकते तो यह हमारी मूर्खता है। लेकिन हम सब अपनी इच्छा या अनिच्छासे उसकी इच्छाके अधीन हैं ही। इसलिए यदि उसकी इच्छा हुई, तो तीसरीको मिलेंगे। मदालसा[1] और ओम्[2] वहाँ होंगी, यह ठीक है। बेशक, सावित्रीकी[3] अनुपस्थिति खलेगी। कमलाका[4] तो कहना ही क्या। वह तो बहुत व्यस्त महिला है। अब और नाम गिनने लगूँगा तो मुझे दूसरा कागज लेना पड़ेगा और फिर वक्त भी कहाँ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०३३) से

३४९. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

३१ जुलाई, १९४४

बापा,

यह पत्र तो यदि मैं तुम्हें हँसा सकूँ तो तुम्हें हँसाने के लिए है। स्वभाव न मिलने पर पिता-पुत्र, पति-पत्नी, मित्र-मित्र, परस्पर सम्बन्ध न तोड़कर अलग-अलग रहते हैं। तुम्हारी तुलनामें स्वामी दीन स्त्रीके समान है। हमारे यहाँ तो अनेक स्त्रियों का एक पति होता है। तुम्हें तो स्वामी-जैसी अनेक स्त्रियाँ रखने का अधिकार है। तुमने इतने दिनोंतक निभाया। थोड़े और वर्ष निभा दो। "बहुत बीत गई, थोड़ी रही।" और कैसे निभाया जाये, यह तो मैं बता ही चुका हूँ।

तुम तो खूब जोर-शोरसे काम कर रहे हो। लेकिन कितने कामोंको देख सकते हो? जब ज्वालामुखी फूट रहा हो तब यह स्मारक बहुत छोटा जान पड़ता है। इसके लिए तुम-जैसे लोग अलख जगाकर निकल पड़ें, यह बात मुझसे सही नहीं

१, २ और ४. जानकीदेवी बजाजकी पुत्रियाँ

३. जानकीदेवी की पुत्रवधू, कमलनयनकी पत्नी

जाती। मैं तो केवल यही सोचकर चुप बैठा हुआ हूँ कि इससे गाँवकी स्त्रियों और बच्चोंको भी कुछ मदद मिलेगी।

बापू

[पुनश्च :]

३ तारीखको सेवाग्राम पहुँचने की उम्मीद रखता हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११९३) से

३५०. पत्र : चिमनलाल न० शाहको

[३१ जुलाई, १९४४][1]

चि० चिमनलाल,

अमृतलालका क्या होगा? प्रह्लादको मेरे पास लाना चाहो तो लाना। नया प्रबन्ध कैसा चल रहा है? खेतमें यदि बहुत काम हो तो हममें से जो लोग जितना समय दे सकते हो उतना समय उन्हे देना चाहिए। निराई आदिका काम सहल है। घास आदि गोदाममें रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६१४) से

३५१. पत्र : काशीबहन गांधीको

[३१ जुलाई, १९४४][2]

चि० काशी,

ऐसा माना जायेगा कि अब तुमने वृद्धावस्थाकी शुरुआत कर दी है। लेकिन अब भी काफी जीवन शेष है—जीने के लिए नही बल्कि सेवा करने के लिए। जो जीने के लिए जीता है वह वास्तवमें जीता ही नही है, जो सेवाकी खातिर जीता है वही जीता है और जो सेवा करते-करते मर जाता है वह भी जीता है। इसलिए सारी चिन्ता छोड़कर शरीर और मन जो सेवा स्वीकार करे, वह करो।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. जी० एन० रजिस्टरसे
२. साधन-सूत्रमें यह पत्र इसी तिथिके पत्रोंके साथ रखा गया है।

३५२. पत्र : श्रीकृष्ण सिंहको

[३१ जुलाई, १९४४][1]

भाई श्रीकृष्ण सिंह,

साथका तार पढ़िये। उचित किया जाय। इतना तो मैं मानता हूं कोई सार्वजनिक सेवा छोड़कर कस्तुरबा थैली इकट्ठी करने में समय न दिया जाय। अल्प प्रयास से जो मिले उसीको मूल्य माना जाय। मैंने तारका उत्तर नही दिया है। आप ही दीजिये।

बापा लिखते हैं कि आप और अनुग्रह बाबू[2] बीमार रहते है। शरीरकी रक्षा करो। बहुत सेवा बाकी है।

पंचगनी कल छोड़ता हूं। तीनको सेवाग्राम ईश्वरेच्छा होगी तो पहुंचूंगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३५३. सन्देश : असम-निवासियोंको[3]

पंचगनी
जुलाई, १९४४

यदि लोगोंको बसाने और आव्रजनके सम्बन्धमें सरकारकी वर्त्तमान नीतिके बारेमें लगता हो कि वह दमनात्मक और राष्ट्र-विरोधी है तो लोग उसका अहिंसात्मक ढंगसे या आवश्यक हो तो हिंसात्मक ढंगसे विरोध करें।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १९-१२-१९४४

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र इसी तारीखके पत्रोंके साथ रखा गया है।

२. अनुग्रह नारायण सिंह

३. रिपोर्टमें कहा गया है कि असमके भूतपूर्व मुख्यमन्त्री गोपीनाथ बारडोलोईने यूनाइटेड प्रेस [ऑफ इंडिया] के प्रतिनिधिको बताया था कि असम प्रान्तको प्रभावित करनेवाले इस मामलेमें सरकारी नीतिसे उत्पन्न होनेवाली समस्याओंकी गम्भीरताको ध्यानमें रखते हुए यह प्रश्न, जब गत जुलाई महीनेमें असमके दो कांग्रेसजन पंचगनी भेजे गये थे, उस समय गांधीजी के सामने रखा गया। देखिए खण्ड ७८, "सन्देश : असम-निवासियोंको", १६ अगस्त, १९४४ के पूर्व।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

लॉर्ड लिनलिथगोका पत्र[1]

व्यक्तिगत — १३ जनवरी, १९४३

प्रिय श्री गांधी,

३१ दिसम्बरके आपके व्यक्तिगत पत्रके लिए, जो मुझे अभी-अभी मिला है, आपको धन्यवाद। पत्रमें जो व्यक्तिगत स्वर है उसे मैं पूरी तरह स्वीकार करता हूँ और इसमें जिस स्पष्टवादितासे काम लिया गया है उसका स्वागत करता हूँ। और मेरा उत्तर भी, जैसा कि आप चाहेंगे, उतना ही स्पष्ट और सर्वथा व्यक्तिगत होगा जितना कि स्वयं आपका पत्र है।

२. आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि हमारे पिछले सम्बन्धोको देखते हुए आपसे जैसे खुले दिलसे मुझे अपनी बात कहनी चाहिए वैसे कहूँ तो यही कहूँगा कि हालके महीनोके दौरान मैं बहुत खिन्न रहा हूँ। इसका एक कारण तो अगस्तमें कांग्रेस द्वारा अपनाई गई नीति है और दूसरा यह कि यद्यपि उस नीतिके फलस्वरूप, जैसा कि स्पष्टतया लाजिम ही था, पूरे देशमें हिंसा और अपराध फूट पड़ा (यहाँ मैं भारतपर बाहरी खतरोंकी चर्चा नहीं करता), तथापि उस हिंसा और अपराधकी निन्दा करते हुए न आपने और न कांग्रेस कार्य-समितिने एक भी शब्द कहा। पहले जब आप पूनामें थे, मुझे मालूम था कि आपको समाचार-पत्र नही मिल रहे है और मैंने माना कि आप इसी वजहसे चुप है। लेकिन जब यह व्यवस्था कर दी गई कि आपको और कार्य-समितिको आपके मनचाहे समाचार-पत्र मिलते रहें तब मेरा विश्वास था कि इन समाचारपत्रोंमें आजकलकी घटनाओंका ब्योरा पढ़ने पर आपको उतना ही आघात और दुःख पहुँचेगा जितना हम सबको पहुँचा है, और आप उसकी स्पष्ट भर्त्सना करना चाहेंगे और इस बातके लिए उत्सुक होंगे कि उसकी जानकारी अधिकसे-अधिक लोगोंको मिले। लेकिन ऐसा नही हुआ और इससे मुझे सचमुच बहुत निराशा हुई, और यह निराशा तब और बढ़ जाती है जब मैं इन हत्याओं, पुलिस अधिकारियोके जिन्दा जलाये जाने, रेल गाड़ियोंमें तोड़फोड़ और इन नौजवान विद्यार्थियोके गुमराह किये जाने के बारेमें, जिससे भारतके नामको और कांग्रेस पार्टीको इतना बट्टा लगा, सोचता हूँ। मैं

१. देखिए पृ० ४७ और ८०।

आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपने समाचारपत्रोंमें प्रकाशित जिन विवरणोंका उल्लेख किया है वे सही तथ्योंपर आधारित हैं। काश कि ऐसा न होता, क्योंकि उनमें जो-कुछ लिखा है वह बहुत बुरा है। कांग्रेस आन्दोलन और कांग्रेस पार्टी तथा उसके अनुगामियोंपर आपका जो जबरदस्त प्रभाव है उससे मैं अच्छी तरह वाकिफ हूँ और एक बार फिर साफ शब्दोंमें कहूँ तो काश मैं यह महसूस कर पाता कि इन सब घटनाओंकी भारी जिम्मेदारी आपपर नहीं है। (और दुर्भाग्यसे, यद्यपि प्रारम्भिक जिम्मेदारी तो नेताओंकी होती है, उसके परिणाम अन्य लोगोंको भुगतने पड़ते हैं, चाहे वह कानून तोड़नेवाले अपराधीके रूपमें हों अथवा उसका शिकार होनेवाले लोगोंके रूपमें।)

३. लेकिन यदि आपके पत्रका मेरा यह अर्थ लगाना सही है कि जो-कुछ हुआ उसको देखते हुए अब आप अपने कदम वापस लेना चाहते हैं और पिछले ग्रीष्ममें कांग्रेसने जो नीति अपनाई थी उससे अपनेको अलग करना चाहते हैं तो आप मुझे केवल बता-भर दें, मैं तुरन्त इस मामलेपर आगे विचार करूँगा। और यदि मैं आपके उद्देश्यको समझ नहीं पाया होऊँ तो आप मुझे तुरन्त वेझिझक सूचित कर दें कि मैं किस मामलेमें उसे नहीं समझ पाया हूँ, और यह भी बता दें कि आप मेरे सामने क्या व्यावहारिक सुझाव रखना चाहते हैं। इतने वर्षोंके बाद आप मुझे इतना तो जान ही गये हैं कि आप यह मान सकें कि आपके भेजे हर सन्देशको पढ़ने, उसे पूरा महत्त्व देने, और आपकी भावना तथा आपके मन्तव्योंको समझने की गहरी चिन्ताके साथ उसपर विचार करने के लिए मैं कितना अधिक उत्सुक रहता हूँ।

हृदयसे आपका,
लिनलिथगो

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मिस्टर गांधी, पृ० ५-६

परिशिष्ट २

लॉर्ड लिनलिथगोका पत्र[1]

५ फरवरी, १९४३

प्रिय श्री गांधी,

अभी-अभी आपका २९ जनवरीका पत्र प्राप्त हुआ। तदर्थ बहुत धन्यवाद। आपके मनको ठीकसे समझ सकूँ और आपकी दलीलके साथ पूरा न्याय कर सकूँ, इस खयालसे आपके पत्रको मैंने सदाकी भाँति पूरे मनोयोगसे पढ़ा है। लेकिन कहना पड़ता है कि पिछले पतझड़के दिनोंमें जो खेदजनक अव्यवस्था फैली उसके लिए

१. देखिए पृ० ५३, ५४ और ८०।

कांग्रेसकी और स्वयं आपकी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमें मेरी रायमें कोई फर्क नहीं आया है।

२. अपने पिछले पत्रमें मैंने कहा था कि तथ्योंकी जो जानकारी मुझे मिली है उसको देखते हुए यही मानना पड़ता है कि अगस्तके निर्णयके बाद हिंसा और अपराधोंका जो दौर चला उसके लिए कांग्रेसका आन्दोलन और आप ही जिम्मेदार हैं, क्योंकि आपको पिछले अगस्तमें हुए निर्णयके समय उस आन्दोलनका नेतृत्व करने का पूरा अधिकार और सत्ता प्रदान की गई थी। उत्तरमें आपने अपना यह अनुरोध दोहराया है कि मैं आपको कायल करने का प्रयत्न करूँ कि मेरी राय सही है। इस अनुरोध का उत्तर मैं पहले भी सहर्ष देता, लेकिन आपके पत्रोंमें मुझे जैसी आशा करनी चाहिए थी उसके विपरीत, इस बातका कोई संकेत ही नहीं था कि आप यह जानकारी पहलेसे कोई धारणा बनाये बिना खुले मनसे माँग रहे हैं। अपने हर पत्रमें आपने हालकी घटनाओंके प्रकाशित विवरणोंके प्रति गहरा अविश्वास प्रकट किया है, हालाँकि अपने अन्तिम पत्रमें उसी जानकारीके आधारपर आपने उन सारी घटनाओंकी जिम्मेदारी भारत सरकारके माथे मढ़ने में कोई संकोच नहीं किया है। उसी पत्रमें आपने कहा है कि जिन सरकारी विवरणोंपर मैं भरोसा करता हूँ उनकी यथातथ्यतामें आप भी विश्वास करें, ऐसी आशा मैं आपसे न करूँ। इस हालतमें समझमें नहीं आता कि आप मुझसे यह अपेक्षा कैसे रखते हैं या यह इच्छा भी कैसे करते हैं कि मैं आपको किसी बातका कायल करूँ। लेकिन वास्तविकता यह है कि कांग्रेसके ८ अगस्तके प्रस्तावमें जब उसकी माँगोंके समर्थनमें "जन-आन्दोलन" की घोषणा की गई, आपको उसका नेता नियुक्त किया गया और सभी कांग्रेसियोंको आन्दोलनके नेतृत्वमें हस्तक्षेप किये जाने पर अपनी जिम्मेदारीपर काम करने का अधिकार दिया गया, तबसे हिंसा, तोड़-फोड़ और आतंककी जो कार्रवाइयाँ हुईं उनके लिए कांग्रेस और उसके नेताओंको जिम्मेदार मानने के कारण सरकारने कभी छिपाये नहीं हैं। जो संस्था इस तरहका प्रस्ताव पास करती है उसे उसके बाद होनेवाली घटनाओंकी जिम्मेदारीसे इनकार करने का अधिकार नहीं है। इस बातके प्रमाण मौजूद हैं कि आप और आपके साथी यह उम्मीद करते थे कि इस नीतिका परिणाम हिंसा होगी, और आप उसे दरगुजर करने को तैयार थे, और जो हिंसा बादमें हुई वह एक ऐसी संगठित योजनाका अंग थी जो कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारी के बहुत पहले ही तैयार कर ली गई थी। कांग्रेसके खिलाफ जो अभियोग है उसके सामान्य स्वरूपकी चर्चा गृहमन्त्रीने गत १५ सितम्बरको केन्द्रीय विधान-सभाके समक्ष अपने भाषणमें सार्वजनिक रूपसे कर दी, और अगर आपको और जानकारी चाहिए तो उस भाषणको देख लीजिए। आपको उसके अखबारोंमें छपे पाठ तो मिले ही होंगे। लेकिन यदि वे पर्याप्त न हों तो उस भाषणकी पूरी नकल साथमें भेज रहा हूँ। अपनी ओरसे मुझे इतना ही और कहना है कि साक्ष्योंका जो विशाल पुंज सामने आया है उससे हम जिन निष्कर्षोंपर पहले पहुँचे थे उनकी पुष्टि ही हुई है। मेरे पास इस बातकी पूरी जानकारी है कि तोड़-फोड़की कार्रवाइयाँ उन गुप्त हिदायतोंके

अधीन् की गई हैं जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके नाम जारी की गई, जाने-माने कांग्रेसियोंने हिंसा और हत्याकी कार्रवाइयोंका संगठन किया और उनमें खुलकर भाग लिया; और आज भी एक भूमिगत कांग्रेस संगठन है, जिसमें अन्य लोगोंके अलावा कांग्रेस कार्य-समितिके एक सदस्यकी पत्नी प्रमुख भूमिका निभा रही है और जो बम-कांडों तथा आतंककी उन कार्रवाइयोंकी योजना बनानेमें सक्रिय रूपसे जुटा हुआ है जिनसे पूरा देश परेशान हो गया है। यदि हम तमाम जानकारीके आधार पर कार्रवाई नहीं कर रहे हैं या यह जानकारी प्रकाशित नहीं कर रहे हैं तो उसका कारण यह है कि अभी उसके लिए ठीक समय नहीं आया है। लेकिन् आप भरोसा रखिए कि कांग्रेसके खिलाफ लगाये आरोपोंको देर-सबेर सामने लाया ही जायेगा और तब अगर आपसे बने तो आप और आपके सहयोगी दुनियाके सामने अपनेको उनसे बरी साबित कर दें। और इस बीच अगर आपने अपनी किसी ऐसी कार्रवाईके द्वारा जिसके बारेमें आप सोच रहे प्रतीत होते हैं, इनसे बच निकलने का कोई आसान तरीका निकाला तो फैसला इसलिए आपके खिलाफ जायेगा कि आप अपना पक्ष प्रस्तुत करने को सामने नहीं आये।

३. आपके वक्तव्यमें मुझे यह पढ़कर आश्चर्य हुआ कि ५ मार्च, १९३१ के दिल्ली समझौतेमें जिसे आपने "गांधी-अर्विन समझौता" कहा है, सविनय अवज्ञा के सिद्धान्तको ध्वनित रूपसे स्वीकार किया गया है। मैंने उस दस्तावेजको दोबारा देख लिया है। उसका आधार तो यह था कि सविनय अवज्ञा "कारगर तौरपर बन्द" कर दी जायेगी और सरकार कोई "अनुकूल जवाबी कार्रवाई" करेगी। इस दस्तावेजमें सविनय अवज्ञाके अस्तित्वका उल्लेख तो आवश्यक ही था। लेकिन मुझे उसमें इस बातका कोई संकेत नहीं मिलता कि सविनय अवज्ञाको किसी भी हालतमें वैध माना गया हो। और मैं साफ कह दूं कि मेरी सरकार तो ऐसा नहीं ही मानती।

४. जो दृष्टिकोण आप प्रस्तुत कर रहे हैं उसे स्वीकार करने का मतलब तो यह होगा कि इस देशकी प्राधिकृत सरकार, जिसके सिर शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने का दायित्व है, तोड़-फोड़ करनेवाली और क्रान्तिकारी गतिविधियोंको, जिन्हें स्वयं आपने खुला विद्रोह कहा है, बेरोक-टोक चलने दे, और हिंसा, संचार-व्यवस्थाको भंग करने, निर्दोष लोगोंपर हमले करने तथा पुलिस अधिकारियों और दूसरोंकी हत्याकी तैयारीको रोकने के लिए कुछ नहीं करे। सच तो यह है कि मुझपर और मेरी सरकारपर यह आरोप लगाया जा सकता है कि आपके और कांग्रेसी नेताओंके खिलाफ हमने पहले कार्रवाई क्यों नहीं की। लेकिन मुझे और मेरी सरकारको बराबर इस बातकी फिक्र रही है कि जो स्थिति अपनाने का फैसला आपने और कांग्रेसने किया है उससे विमुख होने का आपको हर सम्भव अवसर दिया जाये। अगर आपके "करो या मरो" के अन्तिम आह्वानका खयाल न किया जाये तो भी गत जून और जुलाई महीनोंके आपके वक्तव्य, कार्य-समितिका १४ जुलाईका मूल प्रस्ताव और उसी दिन की गई आपकी यह घोषणा कि बातचीतके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है और आखिरकार यह तो एक खुला विद्रोह है, ये तमाम बातें अपने-आपमें बहुत

गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है। लेकिन इधर धैर्यके साथ, जो शायद अनुचित धैर्य ही था, यह तय किया गया कि यदि सरकार भारतकी जनताके प्रति अपना दायित्व निभाना चाहती है तो जबतक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावसे यह स्पष्ट नही हो जाये कि कांग्रेसके रुखको अब और बरदाश्त नही किया जा सकता तबतक प्रतीक्षा की जाये।

५. अन्तमें मैं यह कह दूं कि अपने पत्रके अनुसार आप जो निर्णय लेने की बात सोच रहे हैं उसका, आपके स्वास्थ्य और उम्रको देखते हुए, मुझे कितना अधिक दुःख है। मैं आशा और कामना करता हूँ कि आपको अब भी सुबुद्धि आयेगी। लेकिन उपवासमें जो खतरे समाये हुए है उन खतरोके साथ उपवास करने या न करने का निर्णय स्पष्ट ही आपको ही करना है, और उसके लिए तथा उसके परिणामोके लिए जिम्मेदार अकेले आप होगे। मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने जो-कुछ कहा है उसको ध्यानमें रखते हुए आप अपने निश्चयपर पुनर्विचार करेंगे और उसपर पुनर्विचार करने के आपके निर्णयसे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी सो केवल इसलिए नही कि स्वभावतः मैं यह नही चाहता कि आप जान-बूझकर अपने जीवनको संकटमें डालें, बल्कि इसलिए भी कि राजनीतिक प्रयोजनोके लिए उपवासके प्रयोगको मैं ऐसा अनुचित राजनीतिक दबाव (हिंसा) मानता हूँ जिसका कोई नैतिक औचित्य नही हो सकता और, जैसा कि स्वयं आपके पहलेके लेखोमें मैंने समझा है, आपका विचार भी ऐसा ही था।

हृदयसे आपका,
लिनलिथगो

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, पृ० ९-११

परिशिष्ट ३

सर रॉजर लमलीके नाम होरेस जी० अलेक्जेंडरका पत्र[1]

२४ फरवरी, १९४३

प्रिय सर रॉजर लमली,

कल श्री गांधीने मुझसे जो-कुछ कहा उसका विवरण साथमें भेजने की धृष्टता कर रहा हूँ। सोमवारको बम्बईसे लौटने पर कर्नल भण्डारीसे मुझे जो सन्देश मिला उसको ध्यानमें रखते हुए समझमें नही आ रहा था कि क्या करूँ। लेकिन श्री गांधी यह आशा कर रहे थे कि मैं यह सवाल उनके सामने उठाऊँगा, इसलिए मैंने उसे उठाना ठीक समझा, और फिर स्पष्ट हो गया कि वे उसके बारेमें कुछ कहना

१. देखिए पृ० ९२।

चाहते थे। मैंने उन्हें यह नहीं बताया कि सुझाव वाइसरायके सामने रखा जा चुका है और मेरे जानते अस्वीकार भी किया जा चुका है। लेकिन [साथके विवरणमें] आप देखेंगे कि इसकी चर्चा वे खुद कर रहे थे—और सो २१ दिनके पूर्व उपवास तोड़ने की सम्भावनाको लेकर नहीं बल्कि उसके बादकी सम्भावित परिस्थितिके सन्दर्भमें।

दो-तीन और बातें हैं जो कहना चाहूँगा। एक तो यह कि जहाँतक खुद उपवासका सम्बन्ध है, वे पूरे आश्वस्त दिखाई देते हैं कि वे उसे झेल लेंगे, बल्कि उन्होंने तो विनोदपूर्वक उसे "कपटपूर्ण उपवास" भी कहा, क्योंकि अब वे डाक्टरोंकी सलाहपर संतरेका रस अधिक ले रहे हैं। मैं नहीं समझता कि उनकी रिहाईके लिए की जा रही हलचलमें उनकी कोई खास दिलचस्पी है। वे इक्कीस दिनोंके उपवासपर हैं और मैं समझता हूँ, वे अपनी रिहाई उसी हालतमें चाहेंगे जब उन्हें लगेगा कि वह इस बातका संकेत है कि सरकारको भरोसा है कि स्वतन्त्र व्यक्तिके रूपमें वे उसके लिए परेशानीका कारण बनने के बजाय सहायताके हेतु बनेंगे।

दूसरी बात यह है: स्पष्ट है कि यह सोचकर उनका मन बहुत परेशान है कि जिस व्यक्तिने अहिंसाका मार्ग प्रशस्त करने के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है उसपर ऐसे लोग, जिनको वह सम्मानकी दृष्टिसे देखता है, यह सन्देह कर रहे हैं या आरोप लगा रहे हैं कि वह न केवल अनजाने में और दिग्भ्रमित होकर हिंसाको प्रश्रय देने का उपकरण बन गया है, बल्कि देशके कुछ हिस्सोंमें निर्विवाद रूपसे फैली हिंसाको उसने जान-बूझकर उकसाया है। उन्होंने जिस तरह खुलकर मुझसे बात की (और मैं समझता हूँ कि वे और भी बहुत-कुछ कहना चाहते थे, लेकिन उनको थकानसे बचाने के लिए स्वभावतः हमें बातचीत जल्दी समाप्त कर देनी पड़ी) उसका मुख्य कारण यह था कि उन्हें लग रहा था कि उन्हें किसी ऐसे अंग्रेजको अपनी मनोव्यथा सुनानी चाहिए जो आज भी उनकी सदाशयतामें विश्वास करता है।

जैसा कि कर्नल भण्डारीके दिये सन्देशसे मुझे लगा, अगर वाइसराय इस मामलेमें मेरा और कुछ करना उचित नहीं समझते तो मैं तो यही आशा व्यक्त कर सकता हूँ कि श्री गांधीमें फिरसे जरा ज्यादा ताकत आते ही मामलेको आगे बढ़ाने के लिए कोई और आदमी ढूँढ़ लिया जाये, क्योंकि फिरसे सद्भाव कायम करने के लिए वे वास्तवमें बहुत उत्सुक जान पड़ते हैं।

कुछ ही दिनोंमें मुझे अपने कामपर बंगाल वापस चले जाना चाहिए, लेकिन मेरे जाने से पहले क्या मुझे चन्द मिनटका समय देने की कृपा करेंगे? अगर दें तो मैं शायद आपको अधिक पूर्ण विवरण दे सकूँ।

इस घरमें टेलीफोन नहीं है, लेकिन तार या कोई अन्य प्रकारका सन्देश प्राप्त होने पर मैं कभी भी बम्बई आ सकता हूँ।

हृदयसे आपका,
होरेस जी० अलेक्जैंडर

पुनश्च :

यद्यपि यह पत्र मुझे आपको ही लिखना ठीक लगा, लेकिन मेरा खयाल है कि अगर आप इसे इतना महत्त्वपूर्ण समझें तो यह आगे वाइसराय महोदयको भेज दिया जायेगा।[1]

[अंग्रेजीसे]
ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ७३३-३४

परिशिष्ट ४

गांधीजी के उपवासके बारेमें डॉ० विधानचन्द्र रायके विचार[2]

१. पूनामें यूनाइटेड प्रेसको दी गई मुलाकातमें

४ मार्च, १९४३

गांधीजी के उपवासके दौरान एक अवस्था ऐसी आ गई थी जब उनकी जान खतरेमें पड़ गई थी। उन्होंने शरीरपर मनके पूर्ण नियन्त्रण और जीने के प्रबल संकल्पके सहारे उस खतरेको पार कर लिया। अपने इस संकल्पके निर्वाहके लिए उन्होंने हर क्षण संघर्ष किया।

गांधीजी के शरीरसे मल आदिका रेचन होता रहे, इस काममें उन्होंने डॉक्टरोंकी सहायता की। उनसे जितना भी सम्भव हुआ उतना पानी लेने का उन्होंने प्रयत्न किया। वे सादा पानी भी लेते रहे और नमक मिला तथा मोसम्बीका रस मिला पानी भी लेते रहे। नमकका अंश तो मोसम्बीके रसवाले पानीमें भी होता ही है। आजकल शरीरके अंगोपर मस्तिष्कका अधिकाधिक नियन्त्रण स्थापित होता जा रहा है। भूख-प्यास आदि अनेक शारीरिक धर्म तथा विभिन्न प्रकारके प्रस्रवण तथा रेचन अधिकाधिक परिमाणमें मस्तिष्कमें स्थित तन्त्रोके नियन्त्रणमें लाये जा रहे हैं। यही कारण है कि पुराने जमानेके सरल मनुष्यकी तुलनामें आजका मनुष्य इतना जटिल हो गया है।

गांधीजी के सम्बन्धमें स्थिति यह है कि जो शक्तियाँ हम सबमें काम कर रही हैं, अंशतः तो उनके कारण और अंशतः उनके द्वारा प्रयत्नपूर्वक शरीर-धर्मपर स्थापित मस्तिष्कके नियन्त्रणके कारण उनके शरीरके विभिन्न अंगोके धर्म अधिकाधिक सीमातक केन्द्रीय तन्तुप्रणालीसे संचालित हो रहे हैं। इसलिए हमारी भविष्यवाणी

१. बम्बई सरकारके एक सन्देशके अनुसार, मध्यस्थके रूपमें होरेस अलेक्जैंडरकी सहायता आगे जरूरी नहीं समझी गई और उन्हें सूचित कर दिया गया कि उनका वाइसरायसे मिलना आवश्यक नहीं था।

२. देखिए पृ० ६७।

गलत साबित हुई। हम तो औसतके नियमपर ही निर्भर हो सकते थे और ऐसी परिस्थितियोमें एक औसत आदमीका क्या होगा, उसीके आधारपर अपनी राय दे सकते थे।

२. कलकत्ता विश्वविद्यालयमें

७ मार्च, १९४३

पूरा उपवास एक धार्मिक अनुष्ठानके ढंगका था। अगर आप आरम्भसे अन्त तक देखेंगे तो पायेंगे कि उन्होंने इस पूरी चीजकी अवधारणा एक धार्मिक अनुष्ठान के अभिन्न अंगके रूपमें की थी। उन्होंने आरम्भमें सरकारको सूचित किया कि कुछ शर्तोंके साथ मैं "क्षमता उपवास" करने जा रहा हूँ। मेरा खयाल है, लोगोंने "क्षमता उपवास" शब्दोंको ठीकसे समझा नहीं है। इन शब्दोंका प्रयोग १९३२ में प्रयुक्त शब्दों अर्थात् "आमरण अनशन" के विपरीत अर्थमें किया गया था। इस प्रसंग पर उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि वे मरना नहीं चाहते। इसके बजाय उनकी इच्छा २१ दिन उपवास करने की थी, क्योंकि यह अवधि जो आज समाप्त हुई, उनकी रायमें उनके लिए तपस्याकी अवधि थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४३, जिल्द १, पृ० ३३८-३९

परिशिष्ट ५

"कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३" का अन्तिम अध्याय[1]

अध्याय छह: उपसंहार

कुछ पुनरावृत्तिका खतरा उठाकर भी यहाँ इस बातपर फिर बल देना आवश्यक है कि श्री गांधीको यह मालूम था कि भारतमें कोई जन-आन्दोलन छेड़ने का मतलब हिंसक आन्दोलन छेड़ना ही होगा। आजसे दस और बीस वर्ष पूर्व उन्होंने जिन आन्दोलनोंका नेतृत्व किया था उनके कटु अनुभवके आधारपर वे इस बातको जानते थे। इस जानकारीके बावजूद भी वे दंगा-फसाद और अव्यवस्थाका खतरा उठाने को तैयार थे। अपने लेखोंमें उन्होंने इस खतरेको कम आँकने की कोशिश की, लेकिन उनके मनमें इसका सही अन्दाज जरूर रहा होगा। इन कथनोंपर जरा फिर विचार कीजिए।

> १. हिन्दुस्तानको भगवानके भरोसे छोड़ जाओ, और अगर यह नहीं कर सकते तो उसे अराजकताके हाथों सौंप जाओ ('हरिजन', २४-५-१९४२)।
>
> २. उस अराजकताके फलस्वरूप देशमें कुछ समयके लिए आपसी युद्ध मच सकता है या बेरोक लूट-मार फैल सकती है ('हरिजन', २४-५-१९४२)।

१. देखिए पृ० १४२।

३. यह व्यवस्थित और अनुशासित अराजकता खत्म होनी चाहिए, और अगर इसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानमें पूर्ण अव्यवस्था फैल जाती है तो मैं उसका खतरा भी उठा लूँगा ('हरिजन', २४-५-१९४२)।

४. मैं हमेशा सोचता रहा कि जबतक देश अहिंसक संघर्षके लिए तैयार नहीं है तबतक मुझे रुकना होगा। लेकिन अब मेरे रुखमें परिवर्तन हो गया है। मुझे लगता है कि अगर मैं तैयारीके लिए रुका रहा तो मुझे प्रलय कालतक रुके रहना होगा। . . . आम जनतामें मेरे-जैसी अहिंसा नहीं है। इसलिए अगर मैं लोगोंकी हिंसाको न रोक सकूँ तो मुझे वह खतरा भी उठाना ही है। . . . मैं तो आजकी प्रशासनिक पद्धतिसे अराजकता भी पसन्द करूँगा, क्योंकि यह व्यवस्थित अराजकता उस वास्तविक अराजकतासे भी बदतर है। मुझे विश्वास है कि ऐसी भयानक अराजकता मिटाने के प्रयत्नमें जो अराजकता पैदा होगी वह कम भयानक होगी। . . . मनुष्य स्वभावकी दुर्बलताके कारण जो-कुछ हिंसा होगी, वह तो होगी ही। हमारे देशमें करोड़ों लोगोंके पास हथियार नहीं हैं। वे आपसमें हिंसा करेंगे भी तो कबतक कर सकेंगे? . . . मैं आशा करता हूँ कि उस अराजकतामें से ही विशुद्ध अहिंसाका उदय होगा ('हरिजन', ७-६-१९४२)।[१]

५. मैं नहीं चाहता इस आन्दोलनके परिणामस्वरूप देशमें कहीं भी दंगे हों। लेकिन तमाम एहतियातोंके बावजूद अगर दंगे हुए ही तो उसका कोई इलाज नहीं ('हरिजन', १९-७-१९४२)।

इस तरह स्पष्ट है कि अहिंसाके मूल स्रोत श्री गांधीको भलीभाँति मालूम था कि भारतके आम लोग अहिंसाका आचरण करने में असमर्थ हैं। इस बातको समझते ही अगस्त महीनेमें उनकी गिरफ्तारीके बादके छह महीनेकी घटनाएँ एक नये रंगमें सामने आ जाती हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आन्दोलन कौन-सा रूप लेगा, इसकी भविष्यवाणी करते हुए श्री गांधी और उनके कांग्रेसी शिष्योंने अहिंसाकी जितनी भी दुहाइयाँ दी और गिरफ्तारीके बादके कार्यक्रमों और हिदायतोंमें इस शब्दके जितने भी उल्लेख किये, वे सब मात्र एक सदाशा या अधिकसे-अधिक तो ऐसी चेतावनी थे जिसका कोई भी व्यावहारिक महत्त्व नहीं था। यह दिखाया जा चुका है कि इस तरहके उल्लेख निरर्थक हैं, इसलिए उनकी उपेक्षा करना ही ठीक होगा, और गिरफ्तारीसे पहलेकी भविष्यवाणियों तथा उसके बादकी हिदायतोंपर "अहिंसा" के मुखौटेके बिना विचार करना उचित होगा। इन महत्त्वहीन उल्लेखोंको नजरअन्दाज करते हुए देखें तो पाते हैं कि १९ जुलाई, १९४२ के 'हरिजन' में श्री गांधीने लिखा, "वह . . . जन-आन्दोलन होगा। . . . जन-आन्दोलनमें जो-कुछ हो सकता है सो सब उस आन्दोलनमें होगा।" फिर २६ जुलाई, १९४२ के 'हरिजन' में लिखा: "आन्दोलनके

१. गांधीजी की उपर्युक्त उक्ति मूलतः हिन्दीमें थी, जिसके हरिजन में प्रकाशित अनुवादको यहाँ उद्धृत किया गया था। किन्तु यहाँ अनुवादमें हमने मूल हिन्दी वक्तव्य ही उद्धृत किया है। देखिए खण्ड ७६, पृ० १७६-७७।

कार्यक्रममें उन सभी . . . कार्यवाहियोंका समावेश होगा जो एक जन-आन्दोलनका अंग हो सकती है। . . . अगर मैंने देखा कि अंग्रेज सरकारपर या मित्र-राष्ट्रोंपर उसका कोई असर नही पड़ रहा है तो मै उसे चरम-सीमातक ले जाने में भी नही झिझकूंगा। . . . यह मेरा सबसे बड़ा आन्दोलन होगा। अगर उसमें कुछ जान होगी तो (नेताओंकी गिरफ्तारीके साथ) वह और भी जोर पकड़ेगा।" कार्य-समितिने ४ अगस्तको बम्बईमें पारित और ८ अगस्तको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अनुमोदित प्रस्तावमें कहा: "इसलिए कमेटी स्वतन्त्र और स्वाधीनताके भारतके अनन्य अधिकारकी स्थापनाके लिए यथासम्भव बड़े-से-बड़े पैमानेपर एक . . .[1] जन-आन्दोलन छेड़ने की मंजूरी देने का निश्चय करती है, ताकि देश पिछले २२ सालोंके . . .[2] पूर्ण संघर्षमें संचित अपनी सम्पूर्ण . . .[3] शक्तिको काममें ला सके।" फिर अगर "अहिंसा" के नामकी झूठी दुहाईको अलग रखकर देखें तो बारह-सूत्री कार्य-क्रममें "अधिकसे-अधिक बड़े पैमानेपर असहयोग करने" का आह्वान किया गया, और यह आह्वान उस संघर्षके सिलसिलेमें था जो जनता तथा विदेशी सरकारके बीच होना है तथा जिसमें भारतके हर सुपुत्र और सुपुत्रीको 'करो या मरो' का ध्येय लेकर चलना है, जिसे "एक जन-आन्दोलनमें जितनी भी कार्रवाइयोंका समावेश हो सकता है उन सबसे युक्त" होना है, जिसमें "उस लक्ष्यकी प्राप्ति (विदेशी शासनकी समाप्ति) में सहायक हर उपाय वरण करने योग्य और उचित है" और जिसमें "प्रान्तोंमें जनताको प्रशासनको ठप करने का उपाय निकालना और अपनाना है"। जो-कुछ वास्तवमें हुआ, ये निर्देश उसका बहुत यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते है। लेकिन इन निर्देशोंके मुकाबले आन्दोलनमें यदि कुछ कम हुआ तो उसका कारण यह था कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंने बड़ी तत्परतासे कठोर कदम उठाये और जनताके बहुत बड़े हिस्सेमें कांग्रेसके कार्यक्रमके प्रति सहानुभूतिका अभाव था।

'हरिजन' में श्री गांधीके लिखे लेखों द्वारा तैयार किये गये वातावरणके साक्ष्य को, कार्य-समितिके सदस्यों द्वारा बम्बईमें और उसके पूर्व दिये भाषणोंके साक्ष्यको, गिरफ्तारियोंके समय वितरित हिंसक कार्रवाईवाले कार्यक्रमोंके साक्ष्यको, विद्रोहके रूपमें साक्ष्यको, जाने माने कांग्रेसियोंके व्यक्तिगत रूपसे हिंसक कार्रवाई करने के अपराधी पाये जाने के साक्ष्यको, कांग्रेसके नामपर वितरित पर्चोंके साक्ष्यको — इन सबको देखते हुए इस प्रश्नका एक ही उत्तर हो सकता है कि जिन सामूहिक विद्रोहों और व्यक्तिगत अपराधोंने भारतके सुनामको कलंकित किया और जो उसे आज भी कलंकित कर रहे हैं उनका जिम्मेदार कौन है। वह उत्तर है — श्री गांधीके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० १९९-२००

१, २ और ३. उद्धृत करते समय यहाँ क्रमशः "अहिंसक", "शान्तिपूर्ण" और "अहिंसात्मक" विशेषण निकाल दिये गये हैं।

परिशिष्ट ६

सर रिचर्ड टॉटनमका पत्र[1]

गृह-विभाग,
१४ अक्टूबर, १९४३

महोदय,

मुझसे आपके १५ जुलाईके उस पत्रका उत्तर देने के लिए कहा गया है जिसमें आपने सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' के कतिपय अंशोंका खण्डन करने का प्रयत्न किया है। सबसे पहले मैं आपको याद दिला दूँ कि इस दस्तावेजका प्रकाशन जनताकी सूचनार्थ किया गया था। आपको सरकारी पक्ष समझाने अथवा आपको सफाई देने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से नहीं किया गया था। यह दस्तावेज आपको केवल आपके अनुरोधपर ही भेजा गया था और ऐसा करते समय सरकारने न आपको इसपर कोई टिप्पणी करने के लिए आमन्त्रित किया था और न ऐसी इच्छा ही व्यक्त की थी। तथापि, चूँकि आपने इस विषयपर सरकारको कुछ लिख भेजना उचित समझा इसलिए मैं यह कहना चाहूँगा कि सरकारने आपके पत्रपर अच्छी तरहसे विचार किया है।

२. सरकारको यह देखकर दुःख हुआ है कि हालाँकि आपके पत्रमें आपके अपने वक्तव्यों और लेखोंसे लम्बे-लम्बे उद्धरण दिये गये हैं, लेकिन उसमें मुख्य प्रश्नोंके प्रति आपके दृष्टिकोणके बारेमें कोई ताजा अथवा स्पष्ट कथन नहीं है और न उस अनर्थकारी नीतिकी ही स्पष्ट अस्वीकृति देखने को मिलती है जिसे आपके और कांग्रेसके अपनाने के फलस्वरूप वे घटनाएँ घटित हुईं जिनकी चरम परिणति ८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस-प्रस्तावमें हुई। आपके पत्रका उद्देश्य यह जान पड़ता है कि आप कहना चाहते हैं कि 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' में आपको किसी-न-किसी तरहसे गलत रूपमें पेश किया गया है लेकिन किस खास रूपमें किया गया है, सो स्पष्ट नहीं है। आप यह सोचते जान पड़ते हैं कि पुस्तकमें आपपर जापानियोंके साथ सहानुभूति रखने का आरोप लगाने का कोई प्रयत्न किया गया है, लेकिन ऐसा नहीं है, और प्रथम अध्याय का अन्तिम वाक्य[2] तो, जिसपर आपने पत्रके १८वें अनुच्छेदमें आपत्ति की है, पिछले पृष्ठपर दिये गये जवाहरलाल नेहरूके शब्दोंकी[3] प्रतिध्वनि मात्र है। आपका यह कहना गलत है कि प्रकाशित वक्तव्योंमें उन्होंने उन शब्दोंको अस्वीकार किया

१. देखिए पृ० २१३ और २१७।
२. देखिए पृ० २१५।
३. देखिए पृ० ११३, पा० टि० ३ और पृ० ११४, पा० टि० १।

है। लेकिन पुस्तिकाका एक उद्देश्य यह दिखाना अवश्य था कि आपने जो कार्रवाइयाँ कीं उनका कारण जापानके खतरेकी वजहसे आपके अन्दर उत्पन्न आपका पराजय-वादी दृष्टिकोण और आपका यह भय था कि अगर मित्र-राष्ट्रोंकी सेना समय रहते भारतसे नहीं हटी तो यह देश युद्ध-भूमि बन जायेगा और उस युद्धमें अन्ततः जापान की विजय होगी। आपमें ऐसी भावना थी, यह तो स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरूने अपने उस वक्तव्यमें कहा था जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, और इलाहाबादके प्रस्तावके आपके अपने ही मसौदेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि "भारत छोड़ो" आन्दोलन और उस आन्दोलनको अंजाम देने के उद्देश्यसे पारित कांग्रेस-प्रस्ताव, इन दोनोंके पीछे आपका हेतु यह था कि आपको ऐसी स्थितिमें छोड़ दिया जाये जिससे कि आप और कांग्रेस जापानके साथ समझौता कर सकें। भारत सरकार देखती है कि आपके पत्रमें आपपर लगाये गये इस आरोपका, जिसे सरकार अब भी सच मानती है, खण्डन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। वस्तुस्थितिकी एक यही व्याख्या आपके इस कथनसे मेल खाती है कि "हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी मौजूदगी जापानियोंके लिए हिन्दुस्तानपर आक्रमण करने का निमन्त्रण-जैसी है। अगर अंग्रेज यहाँसे चले जायें तो प्रलोभन ही दूर हो जायेगा।" इसी तरह इस पुस्तिकामें प्रस्तुत मान्यताके अतिरिक्त किसी और आधारपर आप यह भी नहीं समझा पाये हैं कि आपके इस कथन तथा बादमें आपने यह जो कहा कि आप भारत-भूमिपर मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंको रहने की अनुमति देंगे उसके बीच असंगति क्यों है।

३. आपने समय-समयपर अपने द्वारा प्रयुक्त शब्दोंको लेकर जो मुद्दे उठाये हैं उसमें भारत सरकार पड़ना नही चाहती, अलबत्ता वह इस बातसे इनकार नहीं करती कि आपको अपने वक्तव्योंकी ऐसी पुनर्व्याख्या करने की आदत है जो किसी विशेष प्रसंगमें आपके प्रयोजनोंके उपयुक्त हो, और इस आदतके कारण आपके लिए यह कुछ भी मुश्किल नही है कि आप अपने कथनों और लेखोंसे ऐसे अंश उद्धृत कर दें जो आपपर आरोपित किसी भी विचारका प्रकटतः खण्डन करनेवाले हों। लेकिन आप यह तो स्वीकार करते हैं कि उन कथनोंमें आपको महत्त्वपूर्ण अन्तराल दिखाई पड़ते हैं और आपको अपनी बातको समय-समयपर बना-सँवारकर दुबारा पेश करना जरूरी लगा है। यह तथ्य अपने-आपमें इस बातका प्रमाण है कि एक गम्भीर संकटकी घड़ीमें आपने भारतकी प्रतिरक्षा और उसकी आन्तरिक शान्तिके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलोंके सम्बन्धमें घोर विचारशून्यतापूर्ण बातें कहीं। सरकार तो आपके वक्तव्योंकी व्याख्या उसमें प्रयुक्त शब्दोंका जो स्पष्ट अर्थ किसी भी ईमानदार और निष्पक्ष पाठकको जान पड़ेगा उसीकी दृष्टिसे करेगी, और उसे भरोसा है कि 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' में सम्बन्धित अवधिके दौरान आपकी कही बातोंको कहीं भी गलत रूपमें पेश नही किया गया है।

४. अपने पत्रमें[1] आपने स्पष्ट ही यह दिखाने का प्रयत्न करते हुए काफी कुछ लिखा है कि १४ जुलाई, १९४२ को वर्धामें आपने जो प्रेस सम्मेलन किया था उसमें एसोशिएटेड

१. देखिए पृ० १३१-३४।

प्रेस ऑफ इंडियाकी रिपोर्टके अनुसार आपने जो बात कही वह वास्तवमें आपने नहीं कही थी। रिपोर्टके अनुसार आपने कहा था : "आखिर यह खुला विद्रोह है। एक और मौकेका कोई सवाल पैदा नहीं होता।" यह सन्देश उस समय भारत-भरके समाचारपत्रोंमें उद्धृत किया गया था। अब आप भारत सरकारको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि आपको इसकी खबर पहले-पहले २६ जून, १९४३ को लगी। सरकार इस बातको बहुत असम्भावित मानती है कि अगर इसमें आपकी कही बात सही रूपमें नहीं रखी गई तो उस समय यह तथ्य आपके ध्यानमें नहीं लाया गया था या अगर लाया गया तो गिरफ्तारीसे पहलेके हफ्तोंके दौरान आपने उस भूलको सुधारे बिना छोड़ दिया।

५. भारत सरकारने यह भी लक्ष्य किया है कि आप अब भी उपद्रवोंका दायित्व सरकारके सिर डालने को प्रयत्नशील हैं। उसके लिए आपने जो कारण दिये हैं उन्हें सरकार नगण्य ही मान सकती है और उनका उत्तर वह वाइसराय महोदय के साथ आपके प्रकाशित पत्र-व्यवहारमें दे चुकी है। 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' नामक पुस्तिकामें जो बात स्पष्ट रूपसे सिद्ध कर दी गई है वह यह है कि वे उपद्रव आपकी "खुले विद्रोहकी" घोषणाका स्वाभाविक और अनुमानित परिणाम थे। इन परिणामोंका पूर्वानुमान आप स्वयं लगा सकते थे। यह बात १९२२ में न्यायालयमें दिये गये आपके उस बयानसे[1] स्पष्ट है जिसमें आपने यह स्वीकार किया था कि आप "चौरी-चौरा के नृशंस अपराधोंकी या बम्बईके पागलपन-भरे कारनामों" की जिम्मेदारीसे अपनेको अलग नहीं रख सकते और आगे कहा था कि आपको मालूम था कि आप आगसे खेल रहे थे, लेकिन इसके बावजूद आपने खतरा मोल लिया था और फिर लेंगे। अगर आपका कहना यह है कि इस तरहके परिणाम निकले, ऐसा न तो कोई इरादा था और न इसका पूर्वानुमान था, तो यह अपने-आपमें ऐसी बात है जो अपने अनुगामियों की प्रतिक्रियाओंको समझने की आपकी अक्षमताको प्रकट करती है। अब आप खुद आपके और कांग्रेसके नामपर की गई बर्बरताकी निन्दा करने के बजाय उसे सही बताने की, नहीं तो दरगुजर कर देने की कोशिश तो अवश्य कर रहे हैं। स्पष्ट है कि आपकी सहानुभूति किस पक्षमें है। आपके पत्रमें खुद आपके "करो या मरो" सन्देश[2] के बारेमें एक शब्द भी नहीं कहा गया है, और न उसमें यहाँ परिशिष्ट १० में उद्धृत आपके सन्देशके[3] सम्बन्धमें कुछ कहा गया है। अगर आप यह साबित नहीं कर सकते कि यह सन्देश आपका नहीं है तो यह आपके इस दावेका खण्डन करने के

१. देखिए खण्ड २३, पृ० १२३।

२. यहाँ संकेत अ० भा० कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित "भारत छोड़ो" प्रस्ताव के बाद ८ अगस्तको बम्बईमें दिये गये गांधीजी के भाषणकी ओर है; देखिए खण्ड ७६, पृ० ४३४।

३. "श्री गांधीका अन्तिम सन्देश" शीर्षकसे दिये इस परिशिष्टमें इस प्रकार लिखा था : "हर व्यक्तिको अहिंसाके अधीन पूरा गतिरोध पैदा करके, हड़तालें करके या दूसरी अहिंसक कार्रवाइयाँ करके पूरी दूरीतक जाने की छूट है। सत्याग्रहियोंको जीने के लिए नहीं बल्कि मरने के लिए बाहर निकलना चाहिए। जब व्यक्ति मृत्युकी तलाशमें और उसका सामना करने को बाहर निकलेंगे तभी राष्ट्र जियेगा। "करेंगे या मरेंगे"। इस परिशिष्टका उल्लेख सरकारी प्रकाशनके चौथे अध्यायमें हुआ है। गांधीजी ने ६५ वें अनुच्छेदमें कहा था कि मैं ऐसे किसी भी निर्देशको सही नहीं मान सकता जो अहिंसाके खिलाफ हो; देखिए अनुच्छेद ६५, पृ० १५८।

लिए काफी है कि जब उपद्रव हुए उस समयतक आपने कोई आन्दोलन छेड़ा ही नहीं था।

६. अन्तमें आपके पत्रके प्रकाशनके बारेमें आपके अनुरोधको लेता हूँ। प्रथमतः तो मैं आपको खुद अपनी स्थितिकी याद दिलाता हूँ जो आपको पहले ही समझाई जा चुकी है — अर्थात् जबतक आपकी नजरबन्दीके कारण पूर्ववत् है तबतक सरकार आपको आम जनतासे सम्पर्क करने की सुविधा देने को तैयार नही है, और न वह स्वयं आपके प्रचारकी एजेंट बनने को राजी है। दूसरे, मैं आपको यह बता दूं कि ८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस-प्रस्तावके पहलेके महीनोंके दौरान आपको इस बातका पूरा अवसर प्राप्त था कि अपनी गिरफ्तारीके पूर्व आप अपना आशय पूर्णतः स्पष्ट कर दें। आपके अपने अनुयायियोंने भी आपके इरादोंका वही अर्थ लगाया जो सरकारने लगाया है, इस बातको देखते हुए अब और स्पष्टीकरणोकी गुंजाइश नही रह जाती। इसलिए मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि जबतक सरकार आपके पत्रको प्रकाशित करना उचित नही समझेगी तबतक वह उसे प्रकाशित नही करना चाहती।[1] लेकिन इस निर्णयसे सरकारके इस अधिकारपर कोई पाबन्दी नही लगती कि आपने स्वेच्छासे उसे जो पत्र लिखा है उसमें आपकी विभिन्न स्वीकारोक्तियोका उपयोग वह किसी भी समय चाहे जिस प्रकारसे कर सकती है।

७. आपके पत्रका उद्देश्य जिस हदतक आपको कांग्रेसके विद्रोह और उससे सम्बद्ध घटनाओंके दायित्वसे मुक्त कराना हो सकता है उस हदतक सरकारको दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि वह नही मानती कि यह आपको उस दायित्वसे किसी भी प्रकार मुक्त करता है; बल्कि सच तो यह है कि वह यह भी नही समझती कि इसमें आपने अपनेको सही साबित करने का कोई गम्भीरतासे प्रयत्न किया है। उसे यह देखकर भी दु:ख हुआ है कि अपने पत्रमें आपने ऐसा कुछ नही कहा जिससे लगे कि आप ८ अगस्त, १९४२ के कांग्रेस-प्रस्तावसे व्यक्तिगत रूपसे अपनेको असम्बद्ध मानते है; उस प्रस्तावके पारित होने के बाद जो हिंसात्मक वारदातें हुई उनकी आप स्पष्ट निन्दा करते है; आप धुरी शक्तियों और विशेषतः जापानके विरुद्ध विजय मिलने तक युद्धको चलाते रहने के लिए भारतके समस्त संसाधनोके उपयोगके पक्षमें है; या आप भविष्यमें अच्छा आचरण करने के सन्तोषजनक आश्वासन दे रहे है। और चूंकि आपकी मानसिकतामें किसी भी परिवर्त्तनका कोई लक्षण दिखाई नही देता और जिस नीतिके कारण आपकी और कांग्रेस कार्य-समितिकी सरगरमियोंपर पाबन्दी लगाना जरूरी हो गया उसे आप किसी भी प्रकारसे अस्वीकार नही करते, इसलिए सरकार आपके इस पत्रके सम्बन्धमें और कोई भी कारंवाई करने में असमर्थ है।

आपका,
आर० टॉटनम

[अंग्रेजीसे]

कॉरस्पॉण्डेन्स विद् मि० गांधी, पृ० ११२-१४

1. लेकिन सरकारने २१ जून, १९४४ को यह पत्र प्रकाशित कर दिया।

परिशिष्ट ७

पूनाके जेल-महानिरीक्षकके नाम आगाखाँ पैलेसके कार्यभारी अधिकारीका पत्र[1]

आगाखाँ पैलेस, यरवडा
१५ दिसम्बर, १९४३

जेल-महानिरीक्षक
पूना

महोदय,

१४ दिसम्बर, १९४३ के आपके गोपनीय अर्ध-सरकारी पत्र सं० ६२४७ के उत्तरमें मैं आपकी सेवामें निम्नलिखित अपेक्षित जानकारी पेश कर रहा हूँ:

१ श्री गांधी यहाँ रखे गये अन्य लोगोंके साथ — खासकर श्री प्यारेलाल और कुमारी स्लेडके साथ — राजनीतिक प्रश्नोंकी चर्चा करते हैं। कुमारी नैयर बराबर मौजूद रहती हैं। कभी-कभी डा० गिल्डरके साथ भी करते हैं। ऐसा आम तौर पर तब होता है जब वे लोग अखबार पढ़ रहे होते हैं।

२ श्री गांधीकी दिनचर्या

वे सुबह साढ़े ६ बजे उठते हैं और हाथ-मुँह धोकर नाश्ता करने के बाद पुस्तकें या समाचारपत्र पढ़ते हैं।

सुबहके सवा ८ बजेसे ९ बजेतक प्यारेलाल, कुमारी स्लेड, कुमारी नैयर और कुमारी मनुके साथ बगीचेमें टहलते हैं। टहलते हुए वे राजनीतिक तथा अन्य विषयोंकी चर्चा करते हैं।

डा० गिल्डर और डा० नैयर लगभग ४५ मिनटतक उनकी मालिश करते हैं और फिर सवा ११ बजेतक स्नान करते हैं।

सवा ११ से दोपहर १२ बजेतक वे खाना खाते हैं और कुमारी स्लेड उस समय या तो उनसे बात करती हैं या कुछ पढकर सुनाती हैं।

दोपहरके १२ बजेसे तीसरे पहर १ बजेतक कुमारी नैयरको संस्कृत पढाते हैं।

तीसरे पहर १ से २ बजेतक आराम करते हैं।

तीसरे पहर २ से ३ बजेतक श्री प्यारेलाल उन्हें अखबार पढ़कर सुनाते हैं और अखबारोंसे उठनेवाले अलग-अलग मुद्दोंकी चर्चा करते हैं। इस बीच श्री गांधी या तो कातते रहते हैं या अखबारोंकी कतरनोंकी संचिका बनाते रहते हैं।

शामके ३ से ४ बजेतक कुमारी मनुको पढाते हैं।

१. देखिए पृ० २२६।

शामके ४ बजेसे साढ़े ५ बजेतक अखबारोंकी कतरनोंको विषयवार लगाते हैं। इस काममें प्यारेलाल, डा० गिल्डर और डा० नैयर उनकी सहायता करते हैं। वे लोग अखबारोंके चुने हुए और निशान लगे हिस्से अलग करते हैं। वे कागजके टुकड़ो पर उन्हें चिपकाते हैं और फिर श्री गांधीको अनुक्रमसे लगाने और संचिकाबद्ध करने के लिए देते हैं।

शामके साढ़े ५ से साढ़े ६ बजेतक कुमारी स्लेड उन्हें अखबार पढ़कर सुनाती हैं और विभिन्न राजनीतिक तथा अन्य विषयोंपर चर्चा करती हैं।

शामके साढ़े ६ से सवा ७ बजेतक वे महलमें रखे गये अन्य लोगोंके साथ बगीचेमें टहलते हैं।

रातके साढ़े ७ बजेसे सवा ८ बजेतक वे कातते हैं। और उस समय प्यारेलाल उन्हें कोई पुस्तक पढ़कर सुनाते रहते हैं।

सवा ८ बजेसे ९ बजे राततक प्रार्थना चलती है।

रातके ९ बजेसे १० बजेतक श्री प्यारेलाल और कुमारी नैयरके साथ पढ़ना और बातचीत चलती हैं।

रातके १० बजे वे बिस्तरमें चले जाते हैं।

मौसमके अनुसार वे अपनी इन चर्याओंका समय बदलते रहते हैं।

३. श्री प्यारेलाल श्री गांधीके लिए टाइपका काम करते हैं।

जब 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी' के उत्तरके तौरपर वह लम्बा पत्र भारत सरकार को भेजा गया उस समय उसका अधिकतर हिस्सा डा० गिल्डरने टाइप किया था।

आपका परम आज्ञाकारी सेवक,
(हस्ताक्षर)
आगाखाँ पैलेसका कार्यभारी अधिकारी

[अंग्रेजीसे]

चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई, फाइल नं० ४६, गोपनीय, गृह-विभाग, विशेष शाखा (६), १९४३-४४। सौजन्य: महाराष्ट्र सरकार

परिशिष्ट ८

एगथा हैरिसनका पत्र[1]

२ क्रेनबोर्न कोर्ट
अल्बर्ट ब्रिज रोड
लन्दन, एस० डब्ल्यू० ११
२ दिसम्बर, १९४३

प्रिय गांधीजी,

यह पत्र मै इस विश्वाससे लिख रही हूँ कि यह आपको मिल जायेगा। मैंने श्री एमरीसे पूछा कि क्या आप इसे जल्दी भारत भेजने का प्रबन्ध कर देंगे और उन्होंने कृपापूर्वक हामी भरी। साथ ही उन्होंने सारे पत्र-व्यवहारपर प्रतिबन्धोंकी याद दिलाई।[2] . . .

इस सबको याद करते हुए दस वर्ष बाद मै ऐसे समयमें आपको लिख रही हूँ जब भारत भूकम्पके बजाय अकालका सामना कर रहा है; और जैसा कि बिहारकी विपत्तिके समय था उसी तरह इस पत्रकी भी पृष्ठभूमि राजनीतिक गतिरोध की है। इस बार एक विश्वयुद्ध और जुड़ गया है और चारों ओर अविश्वास और सन्देहका दमघोंटू वातावरण फैला हुआ है।

हम इस दुष्काण्डको अपनी आँखो देख रहे हैं। भारतपर जो-कुछ गुजर रहा है उससे यहाँके लोगोंमें बहुत बेचैनी है। (काश, आप वे पत्र पढ़ पाते जो राहत कोषके निमित्त पैसेके साथ भेजे जाते हैं।) कुछ काल पहले आपने 'हरिजन' में जो लेख लिखे उनसे स्पष्ट है कि आपको इस विपत्तिका पूर्वाभास हो गया था। होरेस अलेक्जेंडर यहाँ वापस आ गये हैं। फरवरी महीनेमें आपसे उनकी जो संक्षिप्त बात-चीत हुई थी उसके बारेमें उन्होने हमें बताया है और यह जानकारी भी दी है कि उन दिनो इस परिस्थितिके कारण आपके मनपर कैसा बोझ था और आप सहायता करने को कितने आकुल थे। हममें से जिन लोगोंको आपको और आपके साथियोंको अपने मित्र कहने का सौभाग्य प्राप्त है वे महसूस करते है कि आज भी सहायता और अनुभवका एक कोष अछूता पड़ा है, जिसका यदि उपयोग किया जाये तो बात-की-बातमें परिस्थिति बदल जा सकती है। हम अपने इस विश्वासपर आग्रह करते हुए बिहारकी नजीर पेश करते हैं। लेकिन हमें जवाब मिलता है: 'हाँ, १९३४ में

१. देखिए पृ० २२९-३०। यहाँ पत्रके कुछ अंश ही दिये गये हैं।
२. उसके बाद एगथा हैरिसनने १९३४ के अपने भारत-प्रवासका वर्णन किया था।

तो ऐसा हुआ, लेकिन क्या सबूत है कि अब भी वैसा होगा? सविनय अवज्ञाका खतरा कायम है। अभी इतना-कुछ दाँवपर लगा हुआ है कि हम अगस्त १९४२ की घटनाकी पुनरावृत्तिका खतरा नही उठा सकते,' आदि। और जो आशंकाएँ (अर्थात् कांग्रेसके राजनीतिक लाभ उठाने की आशंकाएँ) बिहारकी विपत्तिके समय व्यक्त की गई थीं वे आज भी व्यक्त की जा रही है।

मै अनुमान लगा सकती हूँ कि आप इसे पढ़कर यही कहेंगे, 'पहल तो सरकार को ही करनी है' और यह कहते हुए आप आपके और लॉर्ड लिनलिथगोके बीच हुए पत्र-व्यवहारका और अपने साथियोंसे मशविरा करने की आवश्यकताके बारेमें आपने जो-कुछ कहा उसका हवाला देंगे। और इस प्रकार यह दुश्चक्र चलता ही रहेगा। इसका भेदन कौन करेगा?

गांधीजी, इस "दुश्चक्र" को मै आपके सामने रख रही हूँ। आशा है, आप यह समझेंगे कि यह कोई एकतरफा प्रयत्नकी चीज नही है। उस दुश्चक्रको इधरसे भेदने के दायित्वपर बराबर जोर दिया जा रहा है। लेकिन लगता है, हम राजनीतिक मर्यादाओंकी परिधितक पहुँच गये हैं। जब स्थिति ऐसी हो जाती है तब कोई और उपाय करना जरूरी हो जाता है। लन्दनके दिनोंसे आपसे मेरा जो निकट सम्पर्क रहा है और सी० एफ० एन्ड्रचूजके साथ काम करते हुए आपके और आपकी कार्य-पद्धतियोंके बारेमें मैं जितना-कुछ जान पाई हूँ उसके आधारपर मुझमें यह विश्वास और प्रतीति उत्पन्न होती है कि आप इस दुश्चक्रको भेदने का कोई रास्ता ढूंढ़ लेंगे। अतीतमें आप अनेक वार ऐसा कर चुके है, क्योंकि आपमें आत्माकी शक्तियोंकी असीम सम्भावनाओंकी समझ है। . . .

यह पत्र लिखते समय मेरी मेजपर 'इवनिंग स्टैंडर्ड' में प्रकाशित लो[1] का एक व्यंग्य-चित्र पड़ा हुआ है। शीर्षक है: "असहायकों और असहायोंके बीच।" उसमें भारतकी सड़कका चित्रण किया गया है; दोनों ओरकी पटरियाँ मृत और भूखे स्त्री-पुरुषों तथा बच्चोंकी भीड़से भरी हुई है। सड़कके बीचमें खराब पड़ी एक भारी-भरकम मोटर लारी पड़ी हुई है, जिसका नाम है "भारत-खाद्य वितरण"। लारीके सामने दो रस्से बँधे हुए है, जिनमें से एकका दूसरा छोर पूरा जोर लगाते लॉर्ड वैवेल से बँधा हुआ है। दूसरे रस्सेका दूसरा छोर उन्होंने अपने हाथमें पकड़ रखा है और एक भारतीयसे उसे थामने का इशारा कर रहे हैं। वह भारतीय सामने बैठा एक अखबार पढ़ रहा है, जिसका नाम है 'पोलिटिकल प्लैटिच्यूड्स'।

मैं इससे बिलकुल अलग चित्र बनाती। क्योंकि मैं आपको लॉर्ड वैवेलसे आतुरता से मिलने आते चित्रित करती — और आपके साथ ही श्री जिन्नाको भी। आपका एक हाथ दूसरे रस्सेको थामने के लिए बढ़ा हुआ होता और दूसरेमें एक अखबार होता, जिसमें लिखा होता, "हम सविनय अवज्ञा फिलहाल बन्द करते है"।

१. अंग्रेज व्यंग्य-चित्रकार

इस व्यंग्य-चित्रके शीर्षकके रूपमें मैं विहारमें बोले गये आपके ही शब्दोंका इस्तेमाल करती: "यह सरकार और कांग्रेसके बीच — हिन्दू और मुसलमानके बीच — मतभेदका समय नहीं है।"

हृदयसे आपकी,
एगथा हैरिसन

[अंग्रेजीसे]
चीफ कमिश्नर्स ऑफिस, वम्बई, फाइल नं० १३-१। सौजन्य: महाराष्ट्र सरकार

परिशिष्ट ९

कर्नल भण्डारीके नाम डा० नैयर और डा० गिल्डरका पत्र[1]

नजरबन्दी कैम्प
३१ जनवरी, १९४४

प्रिय कर्नल भण्डारी,

आपको मालूम ही है कि श्रीमती कस्तूरबा गांधी धीरे-धीरे निढाल होती जा रही हैं। पिछली रात वे बहुत कम सो पाईं, और आज सुबह बुरी तरह मूर्छित हो गई थी। उनकी साँस बहुत धीमी पड़ गई (श्वासोच्छ्वास ४८), नाड़ीका जोर और तनाव बहुत क्षीण हो गया, गति प्रति मिनट १०० हो गई और उनका रंग धूसर नीला पड़ गया। लगभग बीस मिनटके इलाजके बाद वे इस हालतसे उबरी। दोपहरमें वे बेचैन हैं, बायी छाती और पीठमें दर्दकी शिकायत करती हैं। वे नीली पड़ गई हैं और उन्हें साँस लेनेमें कष्ट हो रहा है। नाड़ीकी गति १०८ है, रक्तचाप ९०/५०, और श्वासोच्छ्वास ४०।

इस हालतमें हम डा० जीवराज मेहता (यरवडा केन्द्रीय जेल) और डा० विधानचन्द्र राय (कलकत्ता) की सलाहके रूपमें उनकी सहायता चाहेंगे। श्रीमती गांधी जब पहले बीमार हुई थीं तब ये दोनों सज्जन उन्हें देखने यहाँ आये थे। श्रीमती गांधीको उनपर बड़ा भरोसा है। यहाँ इतना और बता दूँ कि बीमारकी हालत इतनी नाजुक है कि अगर इन डाक्टरोंकी सहायता किसी तरह उपयोगी होनी है तो उसे सुलभ कराने में तनिक भी विलम्ब नहीं होना चाहिए।

हम यह भी बता दें कि उनकी देख-रेख दिन-रात करनी पड़ती है, इसलिए उनकी शुश्रूषा बहुत कठिन हो गई है और बीमार खुद ही कनु गांधी और डा० दिनशा मेहताको बुलानेके लिए बराबर कह रही हैं।

हृदयसे आपके,
सु० नैयर
एम० डी० डी० गिल्डर

१. देखिए पृ० २३८, २५७ और २९८।

पुनश्च :

आज सुबह गांधीजी का रक्तचाप २०६/११० था।

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २२६-२७

परिशिष्ट १०

भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवका पत्र[1]

नं० ३/४३–एम० एस०
भारत सरकार, गृ० वि०
नई दिल्ली
२१ मार्च, १९४४

प्रेषक

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार
गृह-विभाग
नई दिल्ली

सेवामें

श्री मो० क० गांधी

महोदय,

२ मार्च, १९४४ को कॉमन्स-सभामें एक प्रश्नके श्री बटलर द्वारा दिये गये उत्तरके सम्बन्धमें लिखे आपके ४ मार्चके पत्रमें मुझे यह कहने का निर्देश मिला है कि भारत सरकारको इस बातसे दुःख हुआ है कि आपको लगता है कि विशेष आयुर्वैज्ञानिक सहायकोंको बुलाने में उसका व्यवहार उचित नहीं था या उसने उसमें बाधा डाली। भारत सरकार सरकारी डाक्टर जैसा जरूरी समझें वैसी अतिरिक्त आयुर्वैज्ञानिक सहायता या परामर्शकी सुविधा देने के लिए बराबर तैयार थी और वह नहीं समझती कि जब सरकारी डाक्टरोंने तय किया कि बाहरी डाक्टरोंकी जरूरत है तब उनको बुलाने में कोई देर की गई। पहले-पहल २८ जनवरीको उसे सूचित किया गया कि श्रीमती गांधीने डा० दिनशा मेहताके उपचारकी माँग की है, और ३१ जनवरीसे पहले उसे यह नहीं बताया गया कि डा० गिल्डरने कुछ और डाक्टरोंके परामर्शकी भी सुविधा देने को कहा है। १ फरवरीको बम्बई सरकारको स्पष्ट बताया गया कि सरकारी डाक्टरको जरूरी या उपयोगी लगे, ऐसी हर आयुर्वैज्ञानिक सहायता या परामर्श सुलभ कराया जाये। अगर डा० दिनशा मेहताको पहले नहीं बुलाया गया तो उसका कारण यह था कि कर्नल भण्डारी और डा० गिल्डर दोनोंने

१. देखिए पृ० २५८, २९८ और पृ० २७३।

आरम्भमें यह राय जाहिर की कि उनकी सेवाओंसे कोई लाभ नही होगा, किन्तु जैसे ही सरकारी डाक्टरो ने अपनी राय बदली, डा० मेहताको बुला लिया गया। आपके २७ जनवरीके पत्रमें, जो १ फरवरीके पूर्व भारत सरकार को नही मिला, आपकी पत्नीकी इस इच्छाका कुछ जिक्र था कि एक आयुर्वेदिक चिकित्सक बुलाया जाये, लेकिन किसी नामका उल्लेख नही किया गया था, और फिर ९ फरवरीको जाकर वैद्यराज शर्माकी सेवाएँ सुलभ कराने का अनुरोध प्राप्त हुआ। उसके २४ घटेके अन्दर अनुरोध स्वीकार कर लिया गया और भारत सरकारको उनके महलके अन्दर न रखे जाने से उत्पन्न कठिनाइयोंकी जानकारी मिलते ही उसने उन्हें महलमें ठहरने की इजाजत दे दी। इन बातोंको देखने हुए भारत सरकार मानती है कि उसने इस बातकी हर सम्भव कोशिश की कि आपकी पत्नीको उनकी बीमारीके दौरान आपकी इच्छानुसार सारा उपचार सुलभ हो सके।

२. जहाँतक रिहाईका सम्बन्ध है, भारत सरकारको अब भी लगता है कि उसने जो मार्ग अपनाया वह सबसे अच्छा और अनुकम्पायुक्त मार्ग था। २५ जनवरीको उसे बताया गया कि आपके पुत्र देवदास गांधीने अपनी माँसे पूछा कि क्या वे पेरोलपर रिहा होना चाहेंगी, लेकिन उन्होंने कहा कि अपने पतिके बिना वे महल से वाहर नही जाना चाहेंगी। सरकारने इस जानकारीका कोई उपयोग नही किया है, क्योंकि वह एक खानगी बातचीतका विवरण था; लेकिन इससे उसके उपर्युक्त विचारकी पुष्टि हुई। अमेरिकामें सर गिरिजाशंकर बाजपेयी पर जो वक्तव्य देने का सरासर गलत आरोप लगाया गया उससे सम्बन्धित गलतफहमी विधान-सभामें दिये गये उत्तरों द्वारा दूर कर दी गई है। निस्सन्देह वे उत्तर आपने देखे होंगे।

३. दाह-संस्कारके लिए जो व्यवस्था की गई उसके सम्बन्धमें हमारी जानकारी यह है कि वह आपकी इच्छाके अनुसार की गई। सरकारने इस सम्बन्धमें पूछताछ की तो उसे बताया गया कि आपके पत्रमें उल्लिखित दो विकल्पोंमें से किसीको आप विशेष प्राथमिकता नही देते।

४. इन बातोको देखते हुए भारत सरकार यह नही मानती कि ससदीय प्रश्नका श्री बटलर द्वारा दिया गया उत्तर सारत: गलत था।

आपका परम आज्ञाकारी सेवक,
आर० टॉटनम
अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २३५-३७

परिशिष्ट ११

लॉर्ड वैवेलका पत्र[1]

२८ मार्च, १९४४

प्रिय श्री गांधी,

आपका ९ मार्चका पत्र मिला। कॉमन्स-सभामें श्री बटलरके उत्तरके सम्बन्धमें आपको जो शिकायत है उसका एक उत्तर गृह-सचिव अलगसे देंगे। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि अगर आपको यह लगता है कि श्रीमती गांधीकी बीमारीके बारेमें भारत सरकारका रुख असहानुभूतिपूर्ण रहा है तो इसका मुझे बहुत दु:ख है। कुमारी स्लेडके मामलेपर, उनके बारेमें आपका जो कहना है, उसको ध्यानमें रखकर विचार किया जायेगा।

इस विषयमें हम लम्बी बहसमें पड़ें, इसमें मुझे कोई सार नहीं दिखाई देता, और इसलिए आपने जो मुद्दे उठाये हैं उनका उत्तर विस्तारसे नहीं देना चाहता। लेकिन भारतके भावी घटनाक्रम और आपकी वर्त्तमान नजरबन्दीपर अपने विचार स्पष्ट बता देना मैं ठीक समझता हूँ।

सर स्टैफर्ड क्रिप्स सम्राटकी सरकारकी घोषणाका जो मसौदा लेकर भारत आये थे उसमें स्पष्ट शब्दोंमें बताया गया था कि सम्राटकी सरकारका इरादा भारतको उसके सभी प्रमुख तत्त्वोंकी सहमतिसे स्वयं उसीके द्वारा बनाये गये संविधानके अधीन स्वशासन देने का है। कहने की जरूरत नहीं कि उस लक्ष्यसे मैं पूर्णत: सहमत हूँ। और सिर्फ इस बातके लिए प्रयत्नशील हूँ कि उसे लागू करने के लिए ऐसा अच्छा उपाय ढूंढ़ निकालूं जिससे भारतमें उलझन और अव्यवस्था पैदा न हो। सही समाधान प्राप्त करने के लिए काफी समझदारी और सद्भावना तथा समझौतेकी भावनाकी जरूरत होगी, लेकिन मुझे यकीन है कि अच्छे नेतृत्वकी सहायतासे समाधान ढूँढ़ा जा सकता है।

इस बीच करने का बहुत-सा काम पड़ा हुआ है — खासकर आर्थिक क्षेत्रमें, ताकि भारत आधुनिक विश्वमें अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। उसे ऐसे बहुत-से *क्षेत्रोंमें, जिनसे आजतक वह अपरिचित* रहा है, परिवर्त्तन और *प्रगतिका* स्वागत करने और अपनी आबादीके जीवन-स्तरको ऊपर उठाने के लिए तैयार रहना है। ऐसा काम मुख्यत: गैर-राजनीतिक है; वह राजनीतिक समाधान जल्दी प्राप्त करने में मददगार हो सकता है, लेकिन राजनीतिक समाधान प्राप्त होने तक उस कामको टाले नहीं रखा जा सकता। उससे ऐसी बहुत-सी नई और गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न होंगी जिनके समाधानके लिए भारतको अपनी सम्पूर्ण योग्यता और क्षमताका विनियोग

1. देखिए पृ० २६५ और २७४।

करना पड़ेगा। शेष विश्वसे अलग रहकर इन समस्याओंका समाधान करने की अपेक्षा भारतसे नहीं की जा सकती, और न ब्रिटेन जो सहायता दे सकता है उसके बिना तथा अनुभवी प्रशासनकी मददके बगैर ही उससे ऐसा कर सकने की आशा की जा सकती है। लेकिन यह ऐसा काम है जिसमें सभी दलोके नेता इस बातके लिए आश्वस्त रहकर सहयोग कर सकते हैं कि इस तरह वे देशको स्वतन्त्रताके लक्ष्यकी प्राप्तिमें सहायता दे रहे हैं।

मुझे दु:खके साथ कहना पड़ता है कि कांग्रेस पार्टीकी वर्त्तमान नीति स्वशासन की प्राप्ति और विकासको सम्पन्न करने की दिशामें भारतकी प्रगतिमें सहायक नही, बल्कि बाधक है। जिस युद्धमें, जैसा कि आपने स्वयं स्वीकार किया है, धुरी शक्तियों के विरुद्ध मित्र-राष्ट्रोंकी सफलता भारत और विश्व दोनोके लिए अत्यन्त आवश्यक है उसके दौरान कांग्रेस कार्य-समितिने सहयोग करने से इनकार कर दिया, कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंको त्यागपत्र दे देने का आदेश दिया, और देशके प्रशासनमें या मित्र-राष्ट्रोंकी मददमें भारत जो युद्ध-प्रयत्न कर रहा था उसमें कोई हिंस्सा न लेने का निर्णय किया। जब जापानी आक्रमण सम्भव था, ऐसे समयमें भारतके सामने उपस्थित सबसे बड़े संकटकी घड़ीमें कांग्रेस पार्टीने अंग्रेजोसे भारत छोड़ देने को कहने का प्रस्ताव पारित करने का फैसला किया। निश्चित था कि अंग्रेजोंके भारत छोड़ देने का जापानियोसे भारतकी सीमाओको रक्षा करने की हमारी सामर्थ्यपर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता। मेरी स्पष्ट राय है कि अंग्रेजोके तत्काल और पूर्ण रूपसे भारतसे हट जाने से भारतकी समस्याएँ नही सुलझ सकती।

मैं आपपर या कांग्रेस पार्टीपर यह आरोप नहीं लगाता कि आप जान-बूझकर जापानियोंकी मदद करना चाहते है। लेकिन श्री गांधी, आप इतने सयाने तो हैं ही कि समझ सकें कि आपके प्रस्तावका असर युद्ध-संचालनके मार्गमें बाधक होगा और मैं स्पष्ट देखता हूँ कि हमारी भारतकी रक्षा करने की सामर्थ्यमें आपका विश्वास उठ गया था, और हमारी तथाकथित सैनिक कठिनाइयोसे आप राजनीतिक लाभ उठाने को तैयार थे। मेरी समझमें नही आता कि भारतकी सुरक्षाके लिए जिम्मेदार लोगोंने जैसा आचरण किया उससे भिन्न आचरण वे कैसे कर सकते थे और उस प्रस्तावके पुरस्कर्ताओंको गिरफ्तार करने में कैसे चूक सकते थे। जहाँतक उसके बाद होनेवाले उपद्रवोंके लिए कांग्रेसकी आम जिम्मेदारीका सवाल है, आप जानते हैं कि उन दिनों मैं प्रधान सेनापति था; बर्माकी सीमाओंसे हमें जोड़नेवाले संचारके महत्त्वपूर्ण सूत्रोंको कांग्रेसके समर्थकोने कांग्रेसके नामपर और बहुधा कांग्रेसके झण्डेका इस्तेमाल करते हुए काट डाला। इसलिए जो-कुछ हुआ उसके दोषसे मैं कांग्रेसको मुक्त नही मान सकता; और मैं इस बातमें विश्वास नही कर सकता कि आप-जैसा योग्य और अनुभवी आदमी इस बातसे बेखबर रहा हो कि आपकी नीतिके फलस्वरूप क्या-कुछ होनेवाला है। मैं यह नही मान सकता कि इस मामलेमें कांग्रेस पार्टीकी कार्रवाई भारतकी भावनाको प्रतिबिम्बित करती थी, और न यही स्वीकार कर सकता हूँ कि कांग्रेसकी असहयोगकी नीति भारतके बहुमत-जैसे किसी वर्गकी रायका प्रतिनिधित्व करती है।

संक्षेपमें, मै मानता हूँ कि आम सहयोगके बलपर हम भारतकी आर्थिक समस्याओंके समाधानके लिए निकट भविष्यमें बहुत-कुछ कर सकते हैं और भारतीय स्वशासनकी दिशामें क्रमिक और ठोस प्रगति कर सकते है।

मेरा विश्वास है कि भारतकी भलाईमें कांग्रेस पार्टी सबसे बड़ा योगदान यही कर सकती है कि वह असहयोगकी नीति त्याग दे और आर्थिक तथा राजनीतिक प्रगतिमें भारतकी सहायता करने में अन्य भारतीय दलों और अंग्रेजोंके साथ शामिल हो जाये। यह प्रगति किसी नाटकीय या कौतुकपूर्ण कार्यसे नहीं, बल्कि लक्ष्य-प्राप्तिके लिए कठोर और सतत् श्रमसे सम्पन्न होगी। मैं समझता हूँ, आप भारतकी सबसे बड़ी सेवा यही कर सकते हैं कि ऐसे सहयोगके लिए स्पष्ट सलाह दें।

इस बीच भारतके एक सच्चे मित्रके नाते उसके हित-साधनके लिए इस बातको मै अपना कर्त्तव्य मानता हूँ कि अपने सारे प्रयत्न इस युद्धको विजयपूर्ण परिणति देने और भारतकी युद्धके बादकी प्रगतिकी तैयारी करने पर केन्द्रित करूँ। मुझे लगता है कि मैं यह भरोसा करके चल सकता हूँ कि भारतीयोंका बहुमत इस कार्यमें मेरे साथ काफी सहयोग करेगा।

हृदयसे आपका,
वैवेल

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, १२२-२३

परिशिष्ट १२

भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवके नाम डॉ० गिल्डरका पत्र[1]

नजरबन्दी कैम्प
३१ मार्च, १९४४

अतिरिक्त सचिव, भारत सरकार
गृह-विभाग
नई दिल्ली

महोदय,

महात्मा गांधीको लिखे आपके २१ मार्चके पत्रमें निम्नलिखित बात कही गई है।

> पहले-पहल २८ जनवरीको उसे [भारत सरकारको] सूचित किया गया कि श्रीमती गांधीने डॉ० दिनशा मेहताके उपचारकी माँग की है। . . . अगर

१. देखिए पृ० २६९ और २७३।

डॉ० दिनशा मेहताको पहले नही बुलाया गया तो उसका कारण यह था कि कर्नल भण्डारी और डॉ० गिल्डर दोनोंने आरम्भमें यह राय जाहिर की कि उनकी सेवाओंसे कोई लाभ नही होगा, किन्तु जैसे ही सरकारी डॉक्टरोंने अपनी राय बदली, डॉ० मेहताको बुला लिया गया।

कर्नल भण्डारीके साथ मेरे नामका जोड़ा जाना बेशक एक भूल है। श्रीमती गांधीकी सेवामें सरकारी डॉक्टर कर्नल भण्डारी और कर्नल शाह थे। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, पिछले वर्ष दिसम्बरमें किसी दिन शामको जब कर्नल अडवानी (जो उस समय कर्नल भण्डारीकी जगहपर काम कर रहे थे) श्रीमती कस्तूरबा गांधीको देखने आये तब श्रीमती गांधीने उनसे डॉ० दिनशा मेहताको आने देने को कहा। इसपर कर्नल अडवानीने मुझसे पूछा कि डॉ० दिनशा मेहताका आना क्या ठीक होगा। चूंकि मैंने इस बारेमें अपनी सहयोगी डॉ० सुशीला नैयरसे कोई बात नही की थी और न श्रीमती गांधी या उनके पतिसे ही बात की थी, इसलिए मैंने कर्नल अडवानीसे कहा कि मै उन्हें बादमें उत्तर दूंगा। अगले दिन सुबह जब वे फिर श्रीमती गांधीको देखने आये, मैंने उन्हें अपनी यह सुविचारित राय बताई कि डॉ० दिनशा मेहताकी उपस्थितिसे बहुत मदद मिलेगी।

जनवरीका पूरा महीना बीत जाने पर भी जब डॉ० दिनशा मेहताके लिए अनुमति नही आई तब डॉ० नैयर और मैंने अपने ३१ जनवरीके पत्रमें विनम्र शब्दोमें सरकारको इसकी याद दिलाई। पत्रकी नकल साथमें नत्थी है।

मै यह भी कह दूं कि हालांकि उस पत्रमें हमने डॉ० विधानचन्द्र रायसे परामर्श करने की भी माँग की, लेकिन लगता है, उसकी ओर या जबानी याद-दिहानियोंकी ओर कोई ध्यान नही दिया गया है।

आप मुझे एक और गलतीकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करने की अनुमति देंगे अर्थात् प्रशिक्षित नर्सोंकी नियुक्तिकी ओर। कोई प्रशिक्षित नर्स कैम्पके अन्दर कभी नही आई। श्रीमती जयप्रकाश नारायण और श्री कनु गांधीके आने के पूर्व, जब सेवा-शुश्रूषा बहुत कठिन पड़ रही थी, हमें एक स्त्रीकी सेवा सुलभ कराई गई थी। उसने मानसिक रोगियोंके अस्पतालमें बदली आयाके रूपमें काम किया था। वह एक हफ्तेके भीतर कामसे तंग आ गई और उसने अधीक्षकसे छुट्टी दे देने को कहा।

आपका,

एम० डी० डी० गिल्डर

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, पृ० २४०-४१

परिशिष्ट १३

भूमिगत प्रवृत्तियोंपर बातचीत[1]

कार्यकर्त्री : आपने हमसे कहा था कि आपकी गिरफ्तारीके बाद हमें अपना नेता आप बनना चाहिए। कार्य-समितिकी अनुपस्थितिमें प्रत्येक व्यक्तिको खुद ही सोच-समझकर फैसला करना था। हमने अपनी समझके अनुसार काम किया। आपकी अभी हालकी बातोंसे हम महसूस करते हैं कि हमें छला गया है।

गांधीजी : मैंने किसीको दोष नहीं दिया है। लेकिन जब कोई चीज गलत हो तो उसे मुझे गलत तो कहना ही चाहिए।

का० : लेकिन क्या इससे हमारी उद्देश्य-प्राप्तिको धक्का नही पहुँचेगा?

गां० : नही, हम अपनी गलतियोसे सीखते है। उन्हें सुधारने से हम आगे बढ़ते हैं।

का० : कुछ लोगोंका कहना है कि 'यदि अहिंसाकी आपकी यही संकीर्ण व्याख्या है तो हमें उसकी कोई जरूरत नहीं। इसे आप हिंसा कहें अथवा जो-कुछ भी, हम तोड़-फोड़ किये बिना सरकारको हटा नहीं सकते।'

गां० : यह सफल नही हो सकता, हालाँकि कुछ समयके लिए यह सफल हुआ जान पड़ सकता है अथवा सचमुच सफल भी हो सकता है। लेकिन मैंने कहा है कि जिन लोगोंको मेरे तरीकेमें विश्वास नहीं है वे प्रकट रूपमें ऐसा कह सकते है और साहसपूर्वक अपने तरीकेको आजमाकर देख सकते है कि उसमें ज्यादा सफल होंगे या नही।

का० : हम स्वीकार करते है कि लोकमत आपके पक्षमें हो गया है। चाहे ज्ञानवश हो या भयवश, जनता यह महसूस करने लगी है कि तोड़-फोड़से काम नहीं चलनेवाला है। लेकिन आप हर किसीसे सम्पूर्ण मानव बननेकी अपेक्षा नही रख सकते, जब कि आपके तरीकेका मतलब तो यही है।

गां० : मैं इसे स्वीकार करता हूँ। इसलिए मैंने अपूर्ण मानवोंको लेकर संघर्ष छेड़ दिया। लेकिन लोग चाहे अपेक्षित अहिंसाका विकास करें या न करें, मैं अपने सिद्धान्तोंके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता।

का० : लक्ष्यतक पहुँचनेका सबसे छोटा रास्ता कौन-सा है?

गां० : वही सीधा रास्ता, हालाँकि देखने में वह लम्बा लग सकता है।

का० : तो आप नही सोचते कि निकट भविष्यमें स्वतन्त्रता मिलनेवाली है?

गां० : मै तो निकटतम भविष्यमें स्वतन्त्रता मिलनेकी आशा रखता हूँ बशर्ते कि लोग मेरे रास्तेपर चलें।

1. देखिए पृ० २८५, २९१, ३७४ और ४६०।

का० : आप चाहते हैं कि हम क्षुब्ध होकर भी चुपचाप बैठे रहें।

गां० : नहीं, मैं चाहता हूँ कि आप अपने-आपपर खूब क्षुब्ध हों; लेकिन साँपपर गुस्सा करने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह काटेगा ही। यदि मेरा रास्ता आपको न रुचे तो जो ठीक लगे वह रास्ता अपनाइए, लेकिन चुपचाप नहीं बैठिए।

का० : हममें साहस नहीं है; हम आपका विरोध करके आगे नहीं बढ़ सकते।

गां० : आपको उस साहसका विकास करना होगा . . .।[1] अकेले खड़े होने के मेरे इसी साहसके कारण ऐसा माना जाता है कि मैं भारतकी लालसाका प्रतिनिधित्व करता हूँ . . .।[2] स्वराज कमजोर लोगोंके लिए नहीं है। यदि आप यह कहती हैं कि आप मेरा अनुसरण करती हैं लेकिन सचमुच आप ऐसा नहीं करतीं, तो इसका मतलब यह है कि आप कमजोर हैं।

यह सुनकर कार्यकर्त्रीसे कुछ कहते नहीं बना। गांधीजी ने उसकी दुविधा भाँप ली। फिर उसे आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा :

"तथापि आप कह सकती हैं, 'हमें आपका तर्क समझमें नहीं आता, फिर भी हम आपके अनुभवके आगे सिर झुकाते हैं।' आप अपने साथी-कार्यकर्त्ताओंसे कह सकती हैं, 'हम वहाँ गये थे। हम उनकी बातके कायल नहीं हुए, लेकिन उन्हें भी कायल नहीं कर सके। इसलिए अनुशासित सैनिकोंकी तरह हम उनका अनुसरण करेंगे।' लेकिन यदि उन्हें यह बात नहीं जँचती तो वे बखूबी यह कह सकते हैं, 'महात्माने हमसे कहा है कि यदि हमें उनके तरीकोंमें विश्वास नहीं है तो हम अपनी विवेकबुद्धिके अनुरूप कार्य कर सकते हैं।' यह भी उतनी ही ईमानदारीका — बल्कि कदाचित् उससे भी ज्यादा ईमानदारीका व्यवहार होगा। फिर मैं उनके पक्षमें बोलूँगा।"

औंधके राजकुमार अप्पा पन्त भूमिगत कार्यकर्त्ताओंको सलाह देते रहे हैं और उनका मार्गदर्शन करते रहे हैं। उन्होंने गांधीजी के सम्मुख अपनी दुविधा रखी: "मेरे लिए सत्य और अहिंसा नीति न होकर, सिद्धान्त है। मैं ऐसे भूमिगत कार्यकर्त्ताओंके बारेमें जानता हूँ जो खुशीसे चींटीको भी चोट नहीं पहुँचाना चाहेंगे। वे सच्चे देशभक्त हैं। जब वे मेरे पास आते हैं और मुझसे सलाह माँगते हैं तब मुझे उन्हें आश्रय देना पड़ता है। मैं उन्हें गुप्त कार्रवाइयोंके तरीकोंसे विमुख करना चाहता हूँ। लेकिन ऐसा करते हुए मुझे स्वयं गोपनीयता बरतनी पड़ती है। मैं हैरान और परेशान हूँ।" इसपर गांधीजी ने उत्तर दिया :

"आपका दृष्टिकोण ऐसा है जिसपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। आपसे भागती हुई ट्रेनसे कूदने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। दूसरा कोई आपको प्रभावकारी मार्गदर्शन नहीं दे सकता। यह तो आपके ही अन्दरसे उपजना चाहिए। यदि आप अपने अन्तस्में उतरेंगे और भक्तिपूर्वक उत्तरकी तलाश करेंगे, तो एक ऐसी स्थिति आयेगी जब एकाएक आपके ज्ञान-चक्षु खुल जायेंगे और आपको असत्य और गोपनीयतासे इतनी अरुचि हो जायेगी कि आप भूमिगत कार्यकर्त्ताओंके

१ और २. साधन-सूत्रमें यहाँ छोड़ दिया गया है।

पास जाकर उनसे कहेंगे कि यदि वे अपने मार्गपर चलना चाहते हैं तो मार्गदर्शक के रूपमें आप उनके लिए निरुपयोगी सिद्ध होंगे। तब वे इस चीजको आपके चेहरे पर साफ देखेंगे और समझ जायेंगे, तथा बहुत सम्भव है कि इसके साथ ही उनके जीवनके एक नये अध्यायकी शुरुआत हो।"

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३९-४०

परिशिष्ट १४

बातचीत : भूमिगत कार्यकर्त्ताओंसे[1]

जैसे-जैसे सरकारी दमनकी कार्रवाईमें व्यापकता और तीव्रता आती गई, ज्यादा से-ज्यादा कार्यकर्त्ता भूमिगत होते गये। . . . उनमें से कुछ लोग गांधीजी के रिहा होने के तुरन्त बाद उनसे मिलना चाहते थे। गांधीजी ने उन्हें कहला भेजा कि वे चाहें तो अपनी जिम्मेदारी और जोखिमपर उनसे मिलने आ सकते हैं। तदनुसार उनमें से कई लोग आकर उनसे जुहू तथा बादमें पंचगनीमें मिले। उनमें रं० रा० दिवाकर . . . अन्नदा चौधरी . . . अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफ अली थीं। . . .

गांधीजी ने उन्हें जो सलाह दी वह सुस्पष्ट थी। उनका विचार था कि हर प्रकारकी गोपनीयता पाप है। उन्होंने कहा, "हममें जिस हदतक गोपनीयता आ गई है, उस हदतक हमारे उद्देश्यको नुकसान पहुँचा है। हमें एक या दो व्यक्तियों की बात नहीं सोचनी है, हमें तो ४० करोड़ लोगोंके सन्दर्भमें विचार करना है। आज वे निष्प्राण महसूस करते हैं। गोपनीय तरीकोंका सहारा लेकर हम उनमें जीवनका संचार नहीं कर सकते। सत्य और अहिंसाके मार्गपर आरूढ़ रहकर ही हम उनकी निस्तेज आँखोंमें रोशनी ला सकते हैं।"

उन्होंने उनसे कहा कि अपने परिवेशको देखकर आप ऐसा सोच सकते हैं कि अगर आपमें से कुछ लोग भूमिगत न हुए होते तो आन्दोलनको नुकसान पहुँचता। लेकिन ऐसा तो ऊपर-ऊपरसे ही जान पड़ता है।

जब आपके सम्मुख बड़े-बड़े मसले होंगे उस समय "आप देखेंगे कि हर प्रकार की गोपनीयताका त्याग करने और खुले तौरपर काम करने से ही आप आगे बढ़ सकते हैं। . . . यदि आप खुलेमें आ जाते है तो सम्भव है कि आज आप दो हों, कल आप बीस होंगे और इस तरह संघर्ष दिन-ब-दिन गति पकड़ता जायेगा।"

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३४-३५

१. देखिए पृ० २९१, ३६४, ३७४, ४२९ और ४६०। यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

परिशिष्ट १५

वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीका पत्र[1]

स्वागतम, मैलापुर
मद्रास
२ जून, १९४४

प्रिय भाई,

यह पत्र मैं केवल आपके और आपके विश्वस्त मित्रोंके लिए लिख रहा हूँ। श्री टी० आर० वेंकटराम शास्त्री, जो श्रीनगर जा रहे हैं, अपने हाथो यह पत्र आपको देंगे।

सबसे पहले मुझे आपकी "प्रचुर सहानुभूति" के लिए आपको धन्यवाद देना चाहिए। मेरा दर्शन इतना नीरस नहीं है, लेकिन उसे सवेदनाके स्पर्शकी जरूरत है। आपकी तरह बहुत कम लोग सीधे-सादे शब्दोंमें दूसरोंके हृदयतक पहुँचने की कला जानते हैं। इसके लिए बहुत विशाल हृदय चाहिए।

आप मुझसे एक लम्बे राजनीतिक भाषणका अन्देशा न रखें। मैं नही समझता कि आपके फिरसे स्वस्थ होते ही सरकार आपको गिरफ्तार कर फिर जेलमें डाल देगी। जयकरको लिखे अपने पत्रमें आपने कहा है कि वह ऐसा करेगी। यदि आपके पास ऐसा सोचने के कारण है तो उन्हें मैं नही जानता।

आप मेरा किस्सा सुनिए। वह संक्षिप्त होगा। मैं जो मोटी रूपरेखा दूँगा उसके ब्योरे आप भर ले सकते है।

आपके जीवनके शेष दिनोंकी सबसे महान घटना होगी विश्वशान्ति सम्मेलन। आप इसमें अवश्य भाग लें। यदि सरकार आपको भारतके प्रतिनिधिके रूपमें सम्मेलनमें नही जाने दे तब भी आप जरूर जायें। विश्वशान्ति सम्मेलनमें आये नेकनीयत व्यक्तियोंके लिए आपका नाम ही पर्याप्त प्रमाणपत्र होगा।

आप तफसीलकी बातोंमें अपनी शक्ति न गँवाएँ। उनकी सँभाल विशेषज्ञ कर लेंगे। आप तो प्रमुख समस्याओंकी ओर ध्यान दें।

१. सभी राष्ट्रोंका निरस्त्रीकरण। मैं तो अन्तर्राष्ट्रीय प्राधिकरणको कुछ सशस्त्र सेना रखने की अनुमति दे दूंगा। लेकिन आप नहीं देंगे। आप जाइए। आपको समस्त विश्वमें जबरदस्त समर्थन मिलेगा। यदि आप इसमें असफल हो जाते है तो भी क्या? आप पीड़ित और आपकी बातको कान देने को तैयार दुनियाको अपनी शिक्षा तो दे ही चुके होंगे।

१. देखिए पृ० ३२८।

२. विश्वके सब लोगोंके लिए आर्थिक और राजनीतिक समानताके अवसर। इस सिद्धान्तके फलितार्थ इतने ज्यादा और जटिल हैं कि कोई एक व्यक्ति उन्हें ग्रहण नहीं कर सकता। आप तो इसके उसी अंशको सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं जो आपकी कल्पनामें समाये।

३. ब्रिटिश राष्ट्रकुल और समस्त संसारसे रंगभेदका उन्मूलन। इस मामलेमें असफल होने का अर्थ है भविष्यमें युद्धोंके लिए द्वार खुला छोड़ना। भारत राष्ट्रकुलमें हो अथवा उससे बाहर, यह प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। शान्ति सम्मेलनमें भाग लेनेवाला व्यक्ति विश्वका नागरिक है।

यदि आपको भारत सरकारकी ओरसे प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दे दिया जाये तो इसमें सन्देह नहीं कि आपकी शक्ति बहुत ज्यादा बढ़ जायेगी। लेकिन वह आपको प्रतिनिधि-मण्डलका नेता बनाये अथवा न बनाये, लोग तो आपको नेताके रूपमें ही देखेंगे। एक अनिवार्य शर्त है ९३वीं धाराके शासनका समाप्त किया जाना और लोकप्रिय सरकारकी पुनः स्थापना। इसके लिए मैं पिछले दो वर्षोंसे यह कहता आया हूँ कि:

(१) राजनीतिक कैदी और नजरबन्द रिहा कर दिये जायें;

(२) आम चुनाव करवाये जायें और केन्द्रीय तथा स्थानीय विधानमण्डल पुनः सत्तारूढ़ किये जायें; और

(३) केन्द्रमें एक राष्ट्रीय सरकारका गठन किया जाये, जिसके सदस्य निर्वाचित नेताओंमें से चुने जायें। युद्धके दौरान संसद द्वारा कानून बनाये जाने या देशकी सुरक्षाका सम्पूर्ण नियन्त्रण जन-प्रतिनिधियोंको सौंपे जाने पर मैं अन्धाग्रह नहीं करूँगा।

आप कहेंगे कि यह तो लम्बी-चौड़ी माँग है। इस रूपरेखामें जो भारी दोष और अपरिष्कृतियाँ हैं वे पैनी दृष्टिसे बच नहीं सकतीं। लेकिन इन सब बातोंका ध्यान रखने के लिए हमारे बीच समझदार और शक्तिशाली लोग मौजूद हैं।

हमें चक्करमें डालने, हतोत्साह करने और गतिशून्य बनानेवाला हिन्दू-मुसलमान मतभेद तो अपनी जगह कायम ही है। इसके बारेमें सोचकर ही मैं निराश हो उठता हूँ। आप परिस्थितिको अन्य अधिकांश लोगोंकी अपेक्षा दूरतक और ज्यादा साफ देखते हैं। मैं आपके निर्णयका पालन करूँगा — लेकिन याद रखें, पाकिस्तानकी बातको छोड़कर।

मैं इतना कमजोर हूँ कि सक्रिय प्रचार नहीं कर सकता।

इन महान उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए जो साधन सुझाये गये हैं उन्हें केवल सत्य और अहिंसाकी कसौटीपर ही परखा जा सकता है। इनसे छोटे मानदण्ड — जैसे मान-प्रतिष्ठा, संगति अथवा दलका भविष्य — यहाँ अप्रासंगिक हैं।

पेड़ देखना है, पत्तियाँ नहीं गिननी हैं।

हमेशा और हृदयसे,

आपका प्यारा भाई,
वी० एस० श्रीनिवासन

[अंग्रेजीसे]
लेटर्स ऑफ द राइट ऑनरेबल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, पृ० ३५९-६०

परिशिष्ट १६

पूरणचन्द्र जोशीका पत्र[1]

बम्बई
१४ जून, १९४४

प्रिय गाधीजी,

आपका पुर्जा पाकर इसलिए बड़ा ताज्जुब और खुशी हुई कि आप हमारे बारेमें और अधिक जानकारी चाहते है। . . .

आपके सवालोके जवाब मै बहुत सक्षेपमें दे रहा हूँ। . . .

१. जन-युद्धमें जनका मतलब विश्वके सभी जन हैं। इसमें अपवाद कोई नही है। वेशक, इसमें भारतके करोड़ो लोग और हब्शी भी, चाहे वे जहाँ भी हो, शामिल है। . . . इस युद्धने दुनियाको दो खेमोंमें बाँट दिया है। एक ओर . . . फासी लोग विश्वपर साम्राज्यवादी प्रभुत्व कायम करने के लिए लड़ रहे हैं। . . . दूसरी ओर विश्वके स्वातन्त्र्य-प्रेमी जन हैं . . यानी स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रका खेमा है। . . . आज हमारे लिए फासीवादसे लडना साम्राज्यवादी प्रभुत्वसे मुक्तिका एकमात्र मार्ग है। . . . हम अपने देशप्रेमी दलोंको जितना अधिक ऐक्यबद्ध करते हैं, विदेशी सरकार उतनी ही अधिक कमजोर और अकेली पड़ती जाती है और हमारी—राष्ट्रीय तथा अन्य माँगें जितनी ही अधिक दुर्निवार होती जाती हैं, हमारी जनताकी रक्षा और सेवा करने की क्षमता उतनी ही ज्यादा बढ़ती जाती है। जिन कार्योका सफल सम्पादन किसी भी युद्धकालीन सरकारको करना चाहिए लेकिन जिन्हे कोई विदेशी सरकार नही कर सकती उन कार्योंमें देशप्रेमी दल जितने अधिक सन्नद्ध होते है, उतनी ही तेजीसे विश्वके सभी जन एक होकर राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना की हमारी राष्ट्रीय माँगके समर्थनमें आकर खड़े होते है, ताकि जो हम सबका शत्रु है उसके खिलाफ हम सब मिलकर लड़ सकें।

२ अगर आप हिसाव-कितावकी जाँच खुद करना चाहते है तो आप जब और जहाँ कहे, वे सभी बहियाँ आपके सामने पेश कर देंगे। अगर आप कोई प्रतिनिधि नियुक्त करना चाहते है तो उसे ऐसा होना चाहिए जिसे हम भी ईमानदार मानते हों और जिसमें हमारे खिलाफ पूर्वग्रह न हों। जिस सावधानीसे व्यावसायिक पेढ़ियाँ अपना हिसाव-किताव रखती है वैसी सावधानी तो आप हमारे हिसाब-किताबमें नही पायेंगे, लेकिन मुझे विश्वास है कि आप उसे पास कर देंगे। . . . उसमें आपको कुछ अनाम दाता भी देखने को मिलेगे, लेकिन मै समझता हूँ, अनाम दाताओ

१. देखिए पृ० ३३० और ४६३। यहाँ इस पत्रके अंश ही दिये गये हैं।

के दान आप भी स्वीकार करते हैं। लेकिन अगर ऐसा कोई सन्देह हो कि 'अज्ञात-नाम' शायद सरकारसे प्राप्त नकद राशिका संकेत हो, मैं आपको (लेकिन आपके प्रतिनिधिको नहीं) नाम देने को तैयार हूँ। . . .

अगर आपके मनमें फिर भी किसी मामलेमें कोई सन्देह बाकी हो तो मैं आपको कुछ नाम देता हूँ। इफ्तिखारुद्दीन और उनकी बेगम, शौकत अन्सारी और जोहरा, एन० एम० जोशी। आप डॉ० और श्रीमती सुब्बारायनसे पूछ सकते है कि जब मोहन और पार्वती (उनके बच्चे और हमारे साथी) उनकी सम्पत्ति विरासतमें पायेंगे तब उनकी रायमें उसका क्या होगा, और उनकी जानकारीके मुताबिक दलके पूर्णकालिक कार्यकर्त्ताओंकी सम्पत्तिका दरअसल क्या होता है। . . .

३. मैं जानता हूँ कि ऐसे गन्दे आरोप लगाना तो बहुत आसान है, लेकिन उन्हें साबित करना बड़ा कठिन है। . . . एक तो अगर आपको पता चलता है कि हमें सरकारसे पैसा नहीं मिलता है तो मेरा खयाल है कि आप इस बातको आसानीसे स्वीकार कर लेंगे कि हम श्रमिक नेताओंको पुलिसके हवाले कर दें, इसकी सम्भावना नहीं है।

दूसरे, अहमदाबाद और जमशेदपुरको छोड़कर हमारा दल उसी प्रकार श्रमिक वर्गका नेता है जिस प्रकार महान् कांग्रेस सम्पूर्ण भारतीय जनताकी रहनुमा है।... हमने अपनी हड़तालकी नीति इसलिए त्याग दी कि आजकी परिस्थितिमें हमने उसे राष्ट्र-विरोधी माना, एक ओर जापानी आक्रमणकारियोंको मदद देनेवाला और दूसरी ओर हमारे अपने लोगोंके आर्थिक संकटको और भी घनीभूत बनानेवाला माना। भारतीय श्रमिक वर्गको हम उसकी बिगड़ती हुई आर्थिक अवस्थाके दौरमें भी हड़तालों का सहारा लेने से रोकने में सफल रहे। इससे न केवल उसपर हमारे प्रभावका अन्दाजा मिलता है बल्कि यह राष्ट्रीय हितको अपना समझने की उसकी क्षमताका भी पैमाना है।

४. हमारे "कांग्रेस संगठनमें घुसपैठ करने की नीति अपनाने" का कोई सवाल ही नही उठता। हम तो कांग्रेसमें तभीसे हैं जब एक दलके रूपमें हमारा उदय हुआ। . . . हमारे इरादे शत्रुतापूर्ण हैं या नही, यह तय करना हमारे साथी कांग्रेसजनोंका काम है और हमारा काम है अपने आचरणसे यह साबित करना कि हमारे इरादे शत्रुतापूर्ण नहीं हैं। . . . हम कांग्रेसके अन्दर साधिकार कायम हैं, हम सार्वजनीन राष्ट्रीय संगठनमें शामिल होनेवाले लोगोंके देशप्रेमी सपूतों और सुपुत्रियोंकी तरह उसमें शरीक है, ताकि राष्ट्रीय मुक्तिके सामान्य लक्ष्यकी प्राप्तिमें हम अपनी पूरी शक्ति से और अच्छीसे-अच्छी रीतिसे संघर्ष कर सकें, और कोई भी निन्दा-तिरस्कार हमें इस स्थितिसे विमुख होने तथा इस गौरवास्पद सौभाग्यका त्याग करने को उत्तेजित नहीं कर सकता।

५. साम्यवादी दल अपने सामान्य जन-समुदाय और विश्वके जन-समुदायोंके हितोंकी अपनी समझके मुताबिक अपनी नीति आप तय करता है। जबतक कम्युनिस्ट इंटरनेशनल बरकरार था, हमें 'मास्कोके एजेंट" कहा जाता था। उस संगठनके भंग

हो जाने के बाद भी ऐसा आरोप लगाया जा रहा है, यह देखकर ताज्जुब होता है। . . . साम्यवादी दल एक महान् क्रान्तिकारी भ्रातृत्व है। यह विश्वके हर देशमें कायम है। सबकी समान विचारधारा है, और वे अपने तथा सभी जन-समुदायोंकी मुक्तिके लिए लड़ने के सामान्य लक्ष्यसे परिचालित है। मै ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण आफ्रिका और आस्ट्रेलियाके साम्यवादी दलोंके पत्र-पत्रिकाएँ और प्रलेख भेज सकता हूँ। इन दलोंने ९ अगस्तके बाद एमरी और उनके साथियोंको झूठी बदनामी और उत्तेजना फैलानेवाले कुचक्री करार दिया है और स्पष्ट शब्दोमें कांग्रेसी नेताओंकी रिहाईकी और सच्ची राष्ट्रीय सरकारके आधारपर भारतके साथ समझौता करने की माँग की है। . . .

पू० च० जोशी

[अंग्रेजीसे]
कॉरस्पॉण्डेन्स बिटविन महात्मा गांधी ऍंड पी० सी० जोशी, पृ० ३-१६

परिशिष्ट १७

'क्विंटेसेंस ऑफ गांधीज्म' के अंश[1]

तुम्हें भले लोगोंकी सुरक्षा और अन्यायियोंके विनाश तथा धर्मकी प्रतिष्ठाके लिए लड़ना है।

तुम जिस पक्षमें खड़े होते हो और जो हथियार अपनाते हो वे महत्त्वपूर्ण तो है ही, लेकिन लड़ने का कर्त्तव्य अपने-आपमें सम्पूर्ण है और किसी भी अन्य कर्त्तव्य के बन्धनसे परे है, और सारा जोर कर्त्तव्यपर ही है। सम्भव है कि संघर्षमें तुम गलत पक्षमें जा खड़े होओ। लेकिन यदि आज तुम गलत पक्षमें हो तो कल सही पक्षमें भी जा सकते हो। किन्तु जो लोग बीचमें बैठे है वे तो दांतेके नरकके भागी बन ही चुके है। . . .

२

तुम न्यायके लिए लड़ोगे, क्योकि . . . "विजय सत्यकी ही होती है, असत्यकी नही।" . . .

आप गलत पक्षमें खड़े हों और उचित लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए भी आपत्तिजनक साधनोंको अपनायें और तब भी सफल होने की आशा करें, यह असम्भव है। . . .

३

तुम्हारे संघर्षके लिए तैयार हो जाने पर गांधीजी तुम्हे सर्वजयी और अमोघ अस्त्र, अर्थात् . . . कष्ट-सहन तथा क्षमाशीलतासे सज्जित करते है। . . .

१. देखिए पृ० ३४५।

. . . यदि मनुष्यजातिको घृणा तथा हिंसाके दुश्चक्रसे मुक्त होना है तो उसे प्रेम एवं अहिंसाकी शरण जाना ही होगा। गलतीका इलाज जवाबी गलती नहीं है। हिंसाके प्रत्युत्तरमें हिंसा करने से और भी हिंसा भड़कती है और यह क्रम सीमाहीन है।

सच्चे आस्तिकके लिए गांधीवादी दृष्टिकोण ही वह दृष्टिकोण है जिसे वह अपनी आस्तिकताको अक्षुण्ण रखते हुए अपना सकता है। यदि निर्णायक और सही वस्तुके रक्षकके रूपमें ईश्वर हमारे बीच सतत उपस्थित है — जैसे तुम या मैं उपस्थित हूँ उससे भी अधिक सच्चे अर्थोंमें उपस्थित है — तो अपने ज्ञान और शक्तिकी अपूर्णताके बोधसे युक्त आस्तिक अपने प्रतिद्वन्दीके सम्बन्धमें कोई निर्णय देना या जिसे वह उसे उसका गलत कार्य माने उसके लिए उसे दण्ड देना अपने कार्य-क्षेत्रसे बाहरकी बात मानेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २२-१-१९२५

परिशिष्ट १८

गांधीजीके उत्तरदायित्वके सम्बन्धमें राय[1]

६ फरवरी,[2] १९४४

हमसे, इस प्रश्नपर विचार करने को कहा गया है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके ८ अगस्त, १९४२ के प्रस्तावमें "अहिंसक तरीकोसे जन-संघर्ष छेड़ने" का जो अधिकार महात्मा गांधीको दिया गया वह क्या अब भी कायम है। यह प्रश्न जिस प्रयोजनके लिए वह अधिकार दिया गया उसकी वैधता-अवैधताके सवालसे बिलकुल अलग है।

उक्त प्रस्तावमें जो अधिकार दिया गया उसे उन परिस्थितियों और उन प्रयोजनोंके सन्दर्भमें देखना चाहिए जिनमें और जिनके लिए वह दिया गया। प्रस्तावको कुल मिलाकर देखने पर प्रतीत होता है कि इस अधिकारके अधीन जो कदम उठाने थे उनकी कल्पना प्रस्तावके रचयिताओंने उस परिस्थितिका सामना करने के लिए की थी जो तब उत्पन्न हो गई थी।

हमारी रायमें उक्त प्रस्तावके पाठ और प्रयोजन और जिन परिस्थितियोंमें वह प्रस्ताव पारित किया गया, वे परिस्थितियाँ उस अधिकारको मर्यादित करती हैं, जिससे वह तात्कालिक परिस्थितियों और अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी दृष्टिमें उस

१. देखिए पृ० ३६०, ३८१ और ४०४।

२. यह चूक जान पड़ती है। साधन-सूत्र (पृ० ९१) के अनुसार गांधीजी ने ६ मईको रिहा होने के बाद वकीलोंकी राय माँगी थी।

समय विद्यमान प्रयोजनतक सीमित हो जाता है। उक्त अधिकार तात्कालिक परिस्थितिमें और उसीके लिए उपयोगमें लाने के निमित्त था। इस अधिकारका प्रयोग करने के पूर्व ९ अगस्त, १९४२ को ही गाधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, और उस प्रस्तावके अनुरूप कार्य करने से रोक दिये गये, क्योंकि उन्हें स्वतन्त्र अभिकर्त्ता नही रहने दिया गया। उनके इस तरह रोक दिये जाने से उस अधिकारका उपयोग असम्भव हो गया और वह समाप्त हो गया।

जो अधिकार उन्हे दिया गया वह न स्थायी था और न आवर्ती और वर्त्तमान परिस्थितिमें गाधीजी के रिहा कर दिये जाने से उस अधिकारके पुनरुज्जीवनका कोई प्रश्न नही उठता।

भूलाभाई जे० देसाई
वी० एफ़० तारापोरवाला
क० मा० मुंशी

[अंग्रेजीसे]
पिलग्रिमेज टु फ्रीडम, पृ० ४३३-३४

परिशिष्ट १९

'न्यूज क्रॉनिकल'-को स्टुअर्ट गेल्डरका तार[1]

श्री गाधी युद्धकालीन राष्ट्रीय सरकारमें शरीक होना स्वीकार करने और कांग्रेसको वैसा करने की सलाह देने को तैयार है। सिविल प्रशासनपर उस सरकारका पूरा नियन्त्रण होगा; और वाइसराय तथा प्रधान सेनापतिका ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओपर वैसा ही नियन्त्रण होगा। आशा यह रखी जायेगी कि इस तरहकी सरकारकी स्थापनाके साथ ही यह आश्वासन दे दिया जायेगा कि युद्धके उपरान्त भारतको स्वतन्त्र कर दिया जायेगा।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा श्री जिन्नाके सामने रखे प्रस्तावोंका भी श्री गाधीने अनुमोदन कर दिया है। उन प्रस्तावोंके अनुसार, यदि मुस्लिम लीग स्वतन्त्रता की माँगका समर्थन करेगी और संक्रान्तिकालके लिए एक अस्थायी अन्तरिम सरकारके गठनमें कांग्रेसके साथ सहयोग करेगी तो जनमत-संग्रह तथा मुसलमान-बहुल क्षेत्रोके सीमांकनकी पद्धति द्वारा हिन्दू-पाकिस्तान समस्याका समाधान उन्हें स्वीकार्य है।

यद्यपि अभी भी वे स्वस्थ नही है और चाहते है कि जहाँतक सम्भव हो, फिलहाल उनके सिर राजनीतिक समस्याओसे तफसीलमें निबटने का बोझ न डाला जाये, तथापि इस हफ्ते पंचगनीमें मैंने तीन घटेसे अधिक समयतक उनसे बात की। अगर मुस्लिम लीग श्री राजगोपालाचारीके सुझाव स्वीकार कर ले और सरकार श्री गांधीसे

१. देखिए पृ० ३९०, ३९२, ३९९, ४००, ४०३, ४०८, ४१०, ४१३ और ४१६।

परिस्थितिकी चर्चा करे तो गतिरोध समाप्त हो सकता है और भारतके इतिहासमें एक नये अध्यायका आरम्भ हो सकता है। श्री गांधीने बताया कि कार्य-समितिके सदस्योंसे परामर्श किये बिना कांग्रेसकी ओरसे बोलने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है, लेकिन इसमें सन्देह नही कि उनके विचार और उनके द्वारा अनुमोदित हिन्दू-मुस्लिम प्रस्ताव बेझिझक स्वीकार कर लिये जायेंगे।

मैंने श्री गांधीसे पूछा कि अगर कार्य-समितिके सदस्योंको रिहा कर दिया जाये और सरकार उनकी माँगें स्वीकार करने में अपनेको असमर्थ पाये तो क्या आप सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देंगे? उत्तरमें उन्होंने कहा:

"अभी सविनय अवज्ञा करने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मैं देशको वापस १९४२ के वर्षमें नही ले जा सकता। इतिहासकी पुनरावृत्ति कभी नहीं हो सकती। अगर मैं चाहूँ तो जन-साधारणपर मेरा जैसा प्रभाव माना जाता है उसके बलपर, कांग्रेस द्वारा दिये जानेवाले अधिकारके बिना भी, आज ही सविनय अवज्ञा आरम्भ कर सकता हूँ। लेकिन उस हालतमें तो मैं सिर्फ ब्रिटिश सरकारको परेशान करने के लिए ही सविनय अवज्ञा कर रहा होऊँगा। यह मेरा उद्देश्य नहीं हो सकता।"

लेकिन श्री गांधीने बताया कि जनता कष्ट उठा रही हो, उस समय कार्य-समिति शान्तिसे बैठी नहीं रह सकती। उन्होंने कहा कि मेरा विश्वास है, जबतक सिविल प्रशासनकी सत्ता और दायित्व अंग्रेजोंके हाथोंसे भारतीयोंके हाथोंमें नही सौंप दिये जाते, तबतक स्थितिमें सुधार नहीं हो सकता और लोगोंके दुःख दूर नहीं हो सकते।

मैंने श्री गांधीसे कहा कि आजकी वस्तुस्थितिको देखते हुए मुझे नहीं लगता कि सरकार अभी सत्ताका हस्तान्तरण करेगी या युद्धके दौरान स्वतन्त्रताकी माँग स्वीकार करेगी। उत्तरमें उन्होंने कहा कि आज मैं जिस चीजकी माँग करूँगा और जिसकी माँग १९४२ में की थी उन दोनोंमें अन्तर है। आज भारत ऐसी राष्ट्रीय सरकारसे सन्तुष्ट हो जायेगा जिसपर सिविल प्रशासनका पूरा नियन्त्रण सौंप दिया जाये। १९४२ में यह स्थिति नही थी।

इस सरकारकी रचना केन्द्रीय विधान-सभाके निर्वाचित सदस्योंके चुने हुए व्यक्तियोंसे होगी। इसमें यह जरूरी होगा कि युद्धके बाद भारतको स्वतन्त्र कर दिया जायेगा, इसकी घोषणा आज ही कर दी जाये।

वह सरकार सेनाको रेलमार्ग, बन्दरगाह और संचारकी अन्य तमाम आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करेगी, यद्यपि ये सभी संगठन राष्ट्रीय सरकारके नियन्त्रणमें होंगे। अध्यादेश राजका स्थान सामान्य सिविल प्रशासन ले लेगा। वाइसरायका पद कायम रहेगा और ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओंका पूर्ण नियन्त्रण उनके और प्रधान सेनापति के हाथोंमें रहेगा। अन्य मामलोंमें उनकी स्थिति इंग्लैण्डके राजाकी तरह होगी। ऐसे मामलोंमें वे उत्तरदायी मन्त्रियोंके मार्ग-दर्शनमें चलेंगे। सभी प्रान्तोंमें लोकप्रिय सरकारें स्वतः ही फिरसे कायम हो जायेंगी, ताकि प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनों सरकारें भारतकी जनताके प्रति उत्तरदायी हों।

राष्ट्रीय सरकार सैनिक मामलोंमें सलाह देने और आलोचना करने की अधिकारी होगी, और प्रतिरक्षा विभाग राष्ट्रीय सरकारके हाथोमें होगा, जिसकी देशकी प्रतिरक्षामें सच्ची रुचि होगी और जो नीतियोंके निर्धारणमें महत्त्वपूर्ण सहायता देने की स्थितिमें होगी। श्री गांधी यह महसूस करते है कि भारत भूमिसे युद्धका सचालन किये विना मित्र-राष्ट्र जापानको हरा नही सकते, और इसलिए वे यहाँसे युद्धका संचालन करते रहेंगे, लेकिन उसका खर्च भारतके सिर नहीं पड़ना चाहिए।

मैंने श्री गांधीसे पूछा कि क्या आप कांग्रेसको ऐसी शर्तों और करारोंके अधीन गठित इस तरहकी सरकारमें शामिल होने की सलाह देंगे। उत्तरमें उन्होने कहा, "हाँ"। श्री गांधीके कट्टर शान्तिवादी दृष्टिकोणको देखते हुए पाठक पूछ सकते है, कि ऐसी सरकारमें स्वयं उनकी स्थिति क्या होगी। अस्थायी सरकारके गठन और युद्धके उपरान्त भारतके स्वतन्त्र कर दिये जाने की घोषणाके फलस्वरूप स्वाधीनता प्राप्ति सुनिश्चित हो जाने के बाद वे शायद कांग्रेसके सलाहकारकी हैसियतसे काम करना छोड़ देंगे।

अहिंसाके शिक्षक और प्रतिपादककी हैसियतसे उन्हें इस सबसे अलग हो जाना पड़ेगा, लेकिन यह निश्चित है कि वे सरकारका या कांग्रेस पार्टीके उस सरकारमें शामिल होने का कोई विरोध नही करेंगे। भारतमें जीवनकी संतुलित गतिमें कोई हस्तक्षेप करने से अलग रहना ही उनका सहयोग होगा। वे इस आशासे काम करते रहेंगे कि उनका ऐसा प्रभाव हमेशा पड़ता रहेगा जिससे भारतका मानस शान्तिवादी बना रहेगा और विश्व-नीति जाति और रंगके भेदभावके बिना सम्पूर्ण मनुष्य-जातिके बीच सच्ची शान्ति और भ्रातृत्वकी दिशामें प्रगति करती रहेगी।

अभी मै श्री गांधीसे अपनी बातचीतकी सभी तफसीलोंका विवरण लिखने की स्थितिमें नही हूँ। पूनामें उनसे हुई बातचीतका पूरा विवरण वाइसरायको बताने के लिए पिछले हफ्ते मै दिल्ली गया था। अब मै श्री गांधीके साथ अपनी हालकी बातचीत का पूरा विवरण उनके सामने रख रहा हूँ।

जब लॉर्ड वैवेलने निकट भविष्यमें उनसे मिलने से इनकार कर दिया उसके बाद इस हफ्ते मैंने श्री गांधीसे पूछा कि अगर वाइसराय आपसे मिलें तो आप उनसे क्या कहेंगे। उन्होंने कहा :

"मै उनसे कहूँगा, मैंने मुलाकातका समय मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें बाधा डालने के लिए नहीं, सहायता करने के लिए माँगा था। लेकिन कार्य-समितिके सदस्योंसे मिले विना मैं कुछ नही कर सकता, क्योंकि मै मानता हूँ कि अगस्त प्रस्तावके अधीन प्राप्त मेरा अधिकार मेरी गिरफ्तारीके साथ ही समाप्त हो गया। मेरी रिहाईके कारण वह मुझे फिर प्राप्त हो गया हो, ऐसा नहीं है।"

मैंने बताया कि वाइसराय पहले यह जानना चाहेंगे कि आप सदस्योंपर कैसा प्रभाव डालेंगे, उसके बाद ही वे आपको उनसे मिलने की अनुमति देंगे। उत्तरमें श्री गांधीने कहा कि इतिहासकी पुनरावृत्ति नही होती। "पूरी परिस्थितिपर नये सिरेसे विचार करना होगा। इसलिए कार्य-समितिसे मुझे जिस प्रयोजनसे चर्चा करनी

है वह यह जानना है कि रिहाईके बादसे मुझे जो जानकारी मिली है उसके सम्बन्धमें उनकी प्रतिक्रिया क्या है। जो सूत्र सरकारने १९४२ में तोड़ दिया उसे मुझे फिरसे हाथ में लेना है। तब पहले मुझे सरकारसे वार्त्ता करनी थी और विफल होने पर जरूरत समझता तो, सविनय अवज्ञा करनी थी। मैं वाइसराय महोदयसे विनती करना चाहता हूँ। लेकिन कार्य-समितिके मनकी बात जानने के बाद ही मैं यह काम कर सकता हूँ।"

"लेकिन आपको बता दूँ कि हम लोगोंमें आम चर्चा यह है कि खुद वाइसराय महोदय जो भी चाहे, राजनीतिक क्षेत्रमें उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। श्री चर्चिल निबटारा नहीं चाहते। वे मुझे कुचल देना चाहते हैं। खबर तो ऐसी ही है और उन्होंने इसका खण्डन नहीं किया है। लेकिन मेरी खुशकिस्मती कहिए और उनकी बदकिस्मती कि सत्याग्रहीको कोई कुचल नहीं सकता, क्योंकि वह अपना शरीर बलिदानके लिए सहर्ष प्रस्तुत करके अपनी आत्माको स्वतन्त्र कर लेता है।"

यह आशंका व्यक्त करते समय श्री गांधीके स्वरमें घोर निराशा थी, लेकिन कटुता तनिक भी नहीं।

श्री गांधी महसूस करते हैं कि अगर ब्रिटिश सरकारके इरादे नेक हैं तो समझौतेमें कोई परेशानी नहीं होगी। लेकिन उग्रपंथी और नरमपंथी दोनों तरहके विचारोंके भारतीयोंमें यह बेचैनीका भाव विद्यमान है कि व्यक्तिशः वाइसराय महोदय की इच्छा चाहे जो हो, श्री चर्चिल अभी समाधान नहीं चाहते। हो सकता है, यह भाव निराधार ही हो, लेकिन यह बहुत जरूरी है कि इस मुद्देपर सरकारी तौर पर भारतीय मानसको आश्वस्त किया जाये।

यह राय श्री राजगोपालाचारीके साथ हुई अनौपचारिक बातचीतमें, जिसे कोई मुलाकातका रूप देने का इरादा नहीं था, जाहिर की गई। उनका यह विचार तो सुविदित ही है कि कांग्रेसको क्रिप्सका सुझाव मानकर युद्धमें सहयोग करना चाहिए, और वे स्वतन्त्रताके सुदृढ़ हिमायती रहते हुए कांग्रेस तथा श्री गांधीकी नीति की ईमानदारी और साफगोईके साथ आलोचना करते रहे हैं। इसलिए उनकी अपील और चेतावनी मुझे इतनी महत्त्वपूर्ण और अर्थ-भरी जान पड़ी कि मैंने उनसे 'न्यूज क्रॉनिकल' में प्रकाशित करने की इजाजत माँगी, जिसपर वे राजी हो गये।

उन्होंने कहा, "जान पड़ता है, ब्रिटिश सरकार अभी समाधान नहीं चाहती। उसे ऐसा लगने लगा है कि असली चीज सत्ता ही है। उसने आदर्शोंको ताकपर रख दिया है, और इसलिए वह चाहे जिस दिशामें चलकर ही सन्तुष्ट है। वह भविष्यके लिए कोई योजना नहीं बना रही है। उसे नहीं मालूम कि युद्धके बाद वस्तुस्थिति क्या होगी, और इसलिए वह भारत-ब्रिटेन सम्बन्धके बारेमें सोच नहीं रही है। लेकिन यदि युद्ध दोनों देशोंके सम्बन्धके ऐसा रहते ही समाप्त हो गया तो उसमें सदाके लिए कटुता आ जायेगी। जहाँतक एशियाका सम्बन्ध है, यह युद्धका दयनीय अन्त होगा।"

ब्रिटिश सरकारके लिए गांधीजी को मित्र बनाना पूर्णतः सम्भव है। जो लोग उन्हें काफी निकटसे जानते हैं वे मेरी इस रायकी पुष्टि करेंगे। ब्रिटेनके युद्ध-प्रयत्न

की दृष्टिसे उन्हें मित्र बनाने के लिए खास कोशिश करना शायद जरूरी नही; लेकिन भारत-ब्रिटेन सम्बन्धके भविष्यके लिए, जो कोई महत्त्वहीन चीज नही है, उन्हे मित्र बनाना आवश्यक है और यह समय उसके लिए सबसे उपयुक्त है। ऐसी सद्भावना का रूप अपनाने से विजयी इंग्लैण्डकी कोई हानि नही होगी, बल्कि उसे स्थायी महत्त्व का भारी लाभ होगा। आज उनकी इच्छा युद्धके पूर्व भारतमें राष्ट्रीय सरकारको प्रतिष्ठित देखने की है और इसका लाभ उठाया जाना चाहिए।

श्री गांधीकी सहमतिसे मैंने उनके साथ हुई बातचीतकी चर्चा कुछ ऐसे लोगोसे की है जिनका भारतीय मामलोमें अपना कुछ प्रभाव है। इन लोगोंमें कांग्रेसके कुछ प्रबल समर्थक, उसकी नीतिके कुछ प्रबल आलोचक और वाइसरायकी परिषद्के एक सदस्य भी शामिल है। उनके राजनीतिक दृष्टिकोणमें जो अन्तर हैं उनके बावजूद सबने यह आशा व्यक्त की कि वाइसराय और श्री गांधीके बीच मुलाकातकी व्यवस्था की जायेगी। उनमें से एकने मुझसे कहा: "इसमें सन्देह नही कि वे मित्रता करने को तैयार ही नही, बल्कि उत्सुक भी है और सरकारके लिए श्रेयस्कर यही होगा कि उनका मैत्रीका हाथ अभी थाम ले। हम सबमें निराशाका भाव भर गया है। अगर राष्ट्रीय सरकारका गठन हो जाये और मतभेदोके समाधानके हेतु प्रस्तावोके अधीन मुसलमान उसमें शामिल हो जायें तो उससे भारतके युद्ध-प्रयत्नमें भारी अन्तर आ जायेगा।"

मैं अपनेको राजनीतिक टीकाकारकी स्थितिमें नही रखना चाहता; मैं तो खुद को सिर्फ एक पत्रकार समझता हूँ, जिसने श्री गाधीके साथ परिस्थितिपर पूर्ण रूपसे और निकटतासे बात की है — उस बातकी अहमियत चाहे जो हो। मैं अपनी यह राय लिपिबद्ध करना चाहूँगा कि सरकारके सामने आज गतिरोधको समाप्त करने और ऐसे भारतकी रचना करने का — जो आधे मनसे या अनमने तौरपर नही बल्कि सोत्साह ब्रिटेनके पक्षमें खड़ा हो — जैसा अवसर उपस्थित है वैसा सर स्टैफर्ड क्रिप्सके भारतमें आने के बादसे कभी नही आया था। यह पूरे तौरपर ब्रिटिश सरकारपर निर्भर नही होगी। कामचलाऊ सरकारको सफल बनाने की भारी जिम्मेदारी कांग्रेस पर है।

अब कमसे-कम यह तो नही कहा जा सकता कि सम्बन्धोको फिरसे शुरू करने के लिए कोई नया आधार नही है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-७-१९४४

परिशिष्ट २०

बातचीत : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके साथ[1]

राजाजी : मुझे आशंका है कि आपके पत्रका गलत अर्थ लगाया जायेगा। यह खराब पत्र है।

गांधीजी : मैं ऐसा नही समझता। मैंने जो-कुछ लिखा है, गम्भीरतासे लिखा है।

राजाजी : उनकी अतीतकी एक उक्तिका हवाला देकर आपने उनके मर्मपर चोट की है। अपनी इस उक्तिपर उन्हें शायद कोई गर्व नही है।

गांधीजी : लेकिन उनकी उस उक्तिको गैर-इरादतन की गई प्रशंसा बताकर मैंने उसके दंशको निकाल दिया है।

राजाजी : मैं तो चाहूँगा कि आपकी बात सही हो।

गांधीजी : खेदके साथ कहूँगा कि मेरे खयालमें तुम गलत हो!

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द १, भाग १, पृ० ३१-३२

परिशिष्ट २१

लॉर्ड मन्स्टरका भाषण[2]

२५ जुलाई, १९४४

श्री गांधीने ये विचार सामने रखे थे : एक तो यह कि श्री गांधीने कहा कि युद्धके दौरान मैं सविनय अवज्ञाके हथियारका इस्तेमाल तबतक कभी नही करूँगा जबतक कि कोई बहुत गम्भीर कारण — जैसे कि भारतके स्वतन्त्रताके अधिकारका मार्ग अवरुद्ध किया जाना — उपस्थित न हो। दूसरे, यदि युद्ध-काल तकके लिए राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जाये और उसमें विधान-सभाके निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने हुए लोग शामिल हों तथा उस सरकारका सिविल प्रशासनपर पूरा नियन्त्रण हो तो इतनेसे वे सन्तुष्ट हो जायेंगे। तीसरे, इंग्लैण्डके राजाकी तरह वाइसरायको उत्तरदायी मन्त्रियोंके मार्ग-दर्शनमें चलना चाहिए। चौथे, सभी प्रान्तोमें, अर्थात् जो प्रान्त आज अधिनियमके खण्ड ९३ के अधीन है उनमें उत्तरदायी सरकार स्वतः ही फिरसे स्थापित

१. देखिए पृ० ४१७।

२. देखिए पृ० ४५३-५४। यहाँ भाषणके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

हो जायेगी। पाँचवें, राष्ट्रीय सरकारके अधीन सैनिक कार्रवाइयोंपर वाइसराय और प्रधान सेनापतिका पूरा नियन्त्रण होगा, लेकिन एक प्रतिरक्षा विभाग होगा, जो राष्ट्रीय सरकारके हाथोंमें होगा। इस विभागकी देशकी प्रतिरक्षामें सच्ची दिलचस्पी होगी और वह नीति-निर्धारणमें बहुत मदद कर सकता है। छठे, मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंको भारत-भूमिमें युद्धसे सम्बन्धित कार्य चलाने की सुविधा होगी, लेकिन ऐसे कार्योंका खर्च भारतीयोंके सिर नहीं पड़ना चाहिए। सातवें, यदि राष्ट्रीय सरकार बनी तो श्री गांधी कांग्रेसको उसमें शरीक होने की सलाह देंगे।

जो कार्य-पद्धति अपनाई गई है वह कुछ उलझी हुई है और समझमें नहीं आती। समाचारपत्रोंके माध्यमसे ये सुझाव प्रकाशित कराने के कुछ दिन बाद श्री गांधीने संवाददाताओंको अपनी बात आगे समझाई। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि उनके वक्तव्योंमें गतिरोधको समाप्त करने के उनके व्यक्तिगत प्रयत्नका ही समावेश है, लेकिन अगर उनके सुझाव श्री जिन्नाको या सत्ताधारियोंको स्वीकार्य नहीं हुए तो यह बहुत दु:खद बात होगी। श्री जिन्नाके समक्ष रखे अपने प्रस्तावोंको स्पष्ट करते हुए — अर्थात् यदि इसे स्पष्टीकरण कहा जाये तो — श्री गांधीने कहा कि उनके प्रस्ताव क्रिप्स मिशनके प्रस्तावोंसे बिलकुल भिन्न हैं, क्योंकि मिशनके प्रस्तावमें भारतके लगभग स्थायी विभाजनकी तजवीज थी। सच कहूँ तो ऐसा नहीं लगता कि श्री गांधीके इन वक्तव्योंसे साम्प्रदायिक समझौतेकी सम्भावनाओंमें वास्तवमें कोई निश्चित सुधार हुआ है।

जहाँतक महामहिमकी सरकारका सम्बन्ध है, मुख्य बात यह है कि श्री गांधी आज भी ठीक उसी दावेपर अड़े हुए हैं जिसने क्रिप्स मिशनको विफल कर दिया और जो अप्रैल, १९४२ में वार्ताको समाप्त करने का कारण बना, क्योंकि आज भी वे पहले की अपेक्षा इस बातको स्वीकार करने को कुछ अधिक तैयार नहीं हैं कि अस्थायी सरकारका गठन तो किया जाये, लेकिन उसमें वाइसरायके मौजूदा सुरक्षित अधिकार कायम रहें। वे एक ऐसी तथाकथित "अस्थायी" सरकारकी माँग कर रहे हैं जिसका सिविल प्रशासनपर पूरा नियन्त्रण हो और जिसमें वाइसरायका स्थान संवैधानिक राजाका जो अर्थ हम यहाँ अपने देशमें लगाते हैं उस अर्थमें संवैधानिक राजावाला हो। यह नहीं भूलना चाहिए कि अगर मौजूदा संविधानके अधीन समझौता किया जाता है तो भी बहुत-से महत्त्वपूर्ण सवाल रह जाते हैं जिनका निबटारा आवश्यक होगा, और इन सवालोंमें अल्पसंख्यकोंकी सुरक्षाका सवाल कोई कम अहमियत नहीं रखता। अन्तिम रूपसे संविधानका विकास करने के पूर्व इन सभी मामलोंका निबटारा हो जाना चाहिए। इस मुद्देपर यह देखा जा सकता है कि सरकारने कुछ समय पहले जो वचन दिया था और जिसे मैं अब दुहराता हूँ उससे सरकार रच-मात्र भी विचलित नहीं हुई है, और वह वचन यह है कि जो प्रस्ताव लेकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत गये थे वे आज भी पूरे तौरपर ज्योंके-त्यों कायम हैं।

अन्तमें लॉर्ड स्ट्रैबॉलगीके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कि क्या वाइसराय श्री गांधीको कार्य-समितिके सदस्योंसे मिलने देने को तैयार हैं, लॉर्ड मन्स्टरने कहा: "लॉर्ड

स्ट्रैबॉलगीका ध्यान मैं उस पत्रकी ओर दिलाना चाहूँगा जो वाइसरायने श्री गांधीको गत २२ जूनको लिखा था। उन्होंने कहा कि मेरी और श्री गाधीकी मुलाकातसे सिर्फ झूठी आशाएँ ही पैदा हो सकती हैं। उन्होंने कहा, श्री गांधीने सार्वजनिक रूपसे कहा है कि मैं "भारत छोड़ो" प्रस्तावपर पूरी तरहसे कायम हूँ और उसे निर्दोष मानता हूँ। वाइसरायने बेशक यह स्पष्ट कर दिया कि जब श्री गांधीके पास हमारे सामने पेश करने के लिए कोई निश्चित या रचनात्मक नीति होगी तो मैं उस समय उसपर अविलम्ब और सहर्ष विचार करूँगा।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४४, जिल्द २, पृ० २९३-९४

परिशिष्ट २२

लॉर्ड वेवेलका पत्र[1]

नई दिल्ली

१५ अगस्त, १९४४

प्रिय श्री गांधी,

आपके २७ जुलाईके पत्रके लिए धन्यवाद। आपके प्रस्ताव निम्न प्रकार हैं:

१. आपको कार्य-समितिको यह सलाह देनी है कि

(क) बदली हुई परिस्थितियोंमें १९४२ के प्रस्तावमें संकल्पित सार्वजनिक सविनय अवज्ञा नहीं की जा सकती; और

१. देखिए पृ० ४५५। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ४, पृ० ११३८ और ११९१ के अनुसार वाइसरायका यह उत्तर दिल्ली और लन्दनके बीच बड़ी सरगरमीसे किये गये पत्र-व्यवहारका परिणाम था, और इस पत्र-व्यवहारके कारण चर्चिल और वेवेलके बीच लगभग सीधी टक्कर हो गई थी। वाइसरायने उत्तरका जो मसौदा तैयार किया था उसमें अनेक समझौतापरक उद्‌गार थे, जिनमें से एक था: "आपको और जिन्नाको आपकी आगामी वार्ताके लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ।" युद्ध-मन्त्रिमण्डलने मूल मसौदेमें काट-छाँट कर दी और काफी आदान-प्रदानके बाद वेवेलने अन्तिम मसौदा भेजा। इस तीव्र विवादके दौरान एक समय चर्चिलने युद्ध-मन्त्रिमण्डलको निम्न तार भेजा: "आशा है, मन्त्रिमण्डल दृढ़तासे काम लेगा और वाइसरायके रुखसे विचलित नहीं होगा। वे सोचते हैं कि चूँकि गांधीने उन्हें पत्र लिखा तो उन्हें ऐसे शब्दोंमें उसका उत्तर देनेका अधिकार है जो युद्ध-मन्त्रिमण्डलको पसन्द नहीं। दरअसल उन्हें गांधीसे वार्ता चलाने का कोई हक नहीं है, क्योंकि चिकित्सकों की वह राय हमारे पास उन्होंने ही भेजी थी जिसके आधारपर हमें बताया गया कि गांधी राजनीतिमें अब फिर कभी भाग नहीं ले पायेंगे। असली बात यह है कि वेवेलने गांधीके स्वास्थ्यकी स्थितिके बारेमें जो-कुछ कहा वह कहने के बाद अब उन्हें उनके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा पत्र-व्यवहार निश्चित तौरपर वाइसराय और जेलसे हालमें रिहा हुए इस रुग्ण और जर्जर व्यक्तिके बीच एक गम्भीर वार्ताका रूप ले लेगा।" देखिए पृ० २७९ भी।

(ख) कांग्रेसको युद्ध-प्रयत्नमें पूरा सहयोग देना चाहिए, बशर्ते कि महामहिमकी सरकार (अ) भारतकी अविलम्ब स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दे, और (आ) केन्द्रीय विधान-सभाके प्रति उत्तरदायी एक 'राष्ट्रीय सरकार' का गठन करे, "लेकिन इस उपबन्धके साथ कि जबतक युद्ध चल रहा है तबतक सैनिक कार्रवाइयाँ आजकी ही तरह चलती रहे, किन्तु भारतपर कोई वित्तीय भार डाले बिना।"

२. महामहिमकी सरकार आज भी इस बातके लिए बहुत उत्सुक है कि भारतीय समस्याका कोई समाधान हो जाये। लेकिन जैसे प्रस्ताव आपने रखे हैं उस तरह के प्रस्ताव महामहिमकी सरकारको वार्त्ताके आधारके रूपमें स्वीकार्य नहीं हैं, और अगर गत २८ जुलाईको कॉमन्स-सभामें श्री एमरीका वक्तव्य आपने पढ़ा हो तो आप यह बात समझ ही गये होंगे। ये प्रस्ताव वास्तवमें अप्रैल १९४२ में मौलाना आजाद द्वारा सर स्टैफर्ड क्रिप्सके सामने प्रस्तुत प्रस्तावोंसे बहुत अधिक मिलते-जुलते हैं, और जिन कारणोंसे महामहिमकी सरकार उन्हें अस्वीकार करती है वे वही हैं जो उस अवसरपर थे।

३. इन तमाम कारणोंको विस्तारसे दुहराये बिना मैं आपको याद दिला दूँ कि उस समय महामहिमकी सरकारने यह स्पष्ट कर दिया था कि :

(क) युद्धकी समाप्तिके उपरान्त पूर्ण स्वतन्त्रता देने की शर्त यह है कि पहले भारतीय राष्ट्रीय जीवनके सभी मुख्य तत्त्वोंकी सहमतिसे एक संविधान तैयार किया जाये और महामहिमकी सरकारके साथ आवश्यक सन्धि-व्यवस्थाओंके लिए वार्त्ता की जाये;

(ख) युद्धके दौरान संविधानमें कोई परिवर्त्तन करना असम्भव है, लेकिन आपके सुझाये ढंगकी "राष्ट्रीय सरकार" को केन्द्रीय विधान-सभाके प्रति उत्तरदायी तो उसमें परिवर्त्तन करके ही बनाया जा सकता है।

इन शर्तोंका उद्देश्य जातिगत और धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा दलित वर्गोंके हितोंकी रक्षाके सम्बन्धमें महामहिमकी सरकारके कर्त्तव्य और भारतीय रियासतोंके प्रति उसके दायित्वोंका निर्वाह करना था।

४. इन्हीं शर्तोंपर महामहिमकी सरकारने भारतीय नेताओंको एक ऐसी अन्तरिम सरकारमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जो वर्त्तमान संविधानके अधीन काम करेगी। मुझे यह बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहिए कि जबतक युद्ध समाप्त नहीं हो जाता तबतक प्रतिरक्षा और सैनिक कार्रवाइयोंके दायित्वोंको सरकारके अन्य दायित्वोंसे अलग नहीं किया जा सकता, और जबतक युद्ध खत्म नहीं हो जाता और नया संविधान लागू नहीं हो जाता तबतक महामहिमकी सरकार और गवर्नर जनरलको सम्पूर्ण तन्त्रके सम्बन्धमें अपना दायित्व कायम रखना है। जहाँतक युद्ध-सम्बन्धी व्ययमें भारतके हिस्सेका सम्बन्ध है, यह तो पूर्णतः ऐसा मामला है जिसे महामहिमकी सरकार और भारत सरकारको आपसमें तय करना है, और वर्त्तमान वित्तीय व्यवस्थाओंपर दो में से किसी एक पक्षके माँग करने पर ही पुनर्विचार किया जा सकता है।

५. इन परिस्थितियोंमें स्पष्ट है कि आपके सुझाये आधारपर बातचीत करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। लेकिन अगर हिन्दुओं, मुसलमानों और अन्य महत्त्व-पूर्ण अल्पसंख्यक समुदायोंके नेता वर्तमान संविधानके अधीन स्थापित और काम करने-वाली अन्तरिम सरकारमें सहयोग करने को तैयार हों तो मैं मानता हूँ कि अच्छी प्रगति हो सकती है। ऐसी अन्तरिम सरकारकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि उसके गठनके पूर्व हिन्दुओं और मुसलमानों तथा अन्य सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्वोंके बीच नया संविधान तैयार करने के तरीकेके बारेमें सहमति हो जाये। यह समझौता भारतीयों को आपसमें ही करना है। जबतक भारतीय नेताओंमें आजकी अपेक्षा अधिक निकटता नहीं स्थापित होती, तबतक खुद मैं किसी तरह मददगार हो सकता हूँ, इसमें मुझे शक है। मैं आपको यह भी याद दिला दूँ कि अल्पसंख्यकोंसे सम्बन्धित समस्याएँ सरल नहीं हैं। वे समस्याएँ बहुत वास्तविक हैं और आपसी सुलह-समझौते और सहिष्णुतासे ही उन्हें सुलझाया जा सकता है।

६. युद्धकी समाप्तिके बाद अन्तरिम सरकार कितने समयतक चलेगी, यह इस बातपर निर्भर होगा कि नया संविधान कितनी जल्दी तैयार कर लिया जाता है। मुझे इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि भारतीय नेताओंके उस उद्देश्यको ध्यान में रखकर सहयोग करने के लिए तैयार होते ही उस संविधानके सम्बन्धमें प्रारम्भिक कार्य आरम्भ न कर दिया जाये। अगर संविधान तैयार करने के तरीकेके बारेमें उनके बीच सच्चा समझौता हो जाये तो युद्धके समाप्त होने पर अन्तिम निष्कर्षोंतक पहुँचने और महामहिमकी सरकारके साथ सन्धि-शर्तें तय करने में अनावश्यक समय नहीं लगाना पड़ेगा। लेकिन यहाँ भी प्राथमिक दायित्व भारतीय नेताओंके ही सिर है।

हृदयसे आपका,
वैवेल

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १९-८-१९४४

परिशिष्ट २३

पत्र : बम्बईके पुलिस आयुक्तको — मसौदा[1]

हममें से बहुतोंके लिए ९ अगस्त स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जानेवाला दिवस है। ८ अगस्तके प्रस्तावपर हमें गर्व है। यह भारतकी आशाकी उद्घोषणा है। यद्यपि यह प्रस्ताव मोटे तौरपर राष्ट्रीय है, किन्तु सम्भावनाओंकी दृष्टिसे यह अन्तर्राष्ट्रीय है। इसमें अपनी बात मनवाने के लिए शक्ति-प्रयोग-सम्बन्धी एक धारा है, लेकिन उसमें भी कांग्रेसके लिए कोई लज्जाजनक बात नहीं है। इसमें शरीर-बलके स्थानपर सविनय अवज्ञाके रूपमें आत्म-पीड़नसे उत्पन्न आत्मबलको प्रतिष्ठित किया गया है।

१. देखिए पृ० ४६३।

यदि कुछ कांग्रेसी तथा दूसरे लोग ८ अगस्त, १९४२ के बादके चन्द दिनोंके दौरान निर्धारित मार्गसे भटक गये तो उनका वह आचरण प्रस्तावके विपरीत था। अ० भा० कांग्रेस कमेटीने उस शक्तिका प्रयोग करने की सत्ता महात्मा गांधीको दी थी, लेकिन उन्हें उसके प्रयोगका अवसर ही नही मिला। उनका कहना है कि उनकी गिरफ्तारीके साथ ही वह सत्ता समाप्त हो गई और उसे कभी पुनरुज्जीवित नही किया गया। उनका कहना यह भी है कि अगर वह सत्ता समाप्त न हुई हो तो भी वे मानते हैं कि बदली हुई परिस्थितियोंमें शक्ति-प्रयोग-सम्बन्धी धाराको पुनरुज्जीवित करना अनुचित होगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हममें से किसीको सार्वजनिक सविनय अवज्ञाकी तकनीकका ज्ञान नही है। इसलिए अब शक्तिके प्रयोगका कोई सवाल ही नही उठता। अतएव ९ अगस्तको मेरे सहयोगी कार्यकर्ता जो-कुछ भी करने का निश्चय करें उसे और शक्ति-प्रयोग-सम्बन्धी धाराको एक ही बात न समझा जाये। आपको जो असाधारण सत्ता दी गई है वह न दी गई होती तो इस पत्रकी आवश्यकता न पडती। अध्यादेशके नियमके अधीन आपकी पूर्वानुमतिके बिना कोई जुलूस या सभा आयोजित नही की जा सकती। यह एक सामान्य नागरिक अधिकारपर हाथ डालना है। अब ९ अगस्तको मेरा इरादा प्रतीक और संकेतके तौरपर बिना तिरंगेके पाँच-पाँच व्यक्तियोंकी पाँच मण्डलियाँ बनाने का है। भीड़ इकट्ठी न हो, इस विचारसे पूर्वसूचना दिये बिना वे लोग चौपाटीके तटकी ओर कूच करेंगे, सुबहके साढ़े पाँच बजे लोकमान्यकी मूर्तिके सामने पहुँचेंगे, वहाँ पाँच मिनट मौन प्रार्थना करते हुए खड़े रहेंगे, और फिर प्रस्तावको हिन्दुस्तानीमें पढने के बाद झण्डावन्दनका गीत गाकर वहाँ से बिखर जायेंगे। मुझे पूरी आशा है कि इस सादे समारोहपर आपको कोई आपत्ति नही होगी। अपनी अनुमति भेज दें तो कृपा होगी।

टिप्पणी . गांधीसे ५ तारीखतक सभी काग्रेसियोंके लिए तफसीलवार हिदायतें जारी करने की अपेक्षा की जाती है। ९ तारीखको २५ लोग बम्बईके अलग-अलग इलाकोंसे पाँच-पाँचकी मण्डली बनाकर जुलूसमें चलेंगे और साढे पाँच बजे (गांधी के बताये समयपर) चौपाटीके तटपर पहुँचकर उस दिनका कार्यक्रम सम्पन्न करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

पुलिस कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बई, फाइल नं० ३००१/एच०। सौजन्य : महाराष्ट्र सरकार

सामग्रीके साधन-सूत्र

'आरोग्यकी कुंजी' : मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५९।

'(द) इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२', जिल्द २; १९४३, जिल्द १; १९४४, जिल्द २ (अंग्रेजी) : सम्पादक : नृपेन्द्रनाथ मित्र, द ऐनुअल रजिस्टर ऑफिस, कलकत्ता।

'इन द शैडो ऑफ द महात्मा' (अंग्रेजी) : घनश्यामदास बिड़ला, ओरिएंट लॉन्गमैन्स लि०, १९५३।

'कॉरस्पॉण्डेन्स बिटवीन महात्मा गांधी ऐंड पी० सी० जोशी' (अंग्रेजी) : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९४५।

'कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी, अगस्त १९४२ – अप्रैल १९४४' (अंग्रेजी) : मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९४४।

'गांधी जिन्ना टॉक्स' (अंग्रेजी) : 'द हिन्दुस्तान टाइम्स', नई दिल्ली, १९४४।

'गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४' (अंग्रेजी) : सम्पादक : प्यारेलाल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५७।

'गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४४-४७' (अंग्रेजी) : सम्पादक : प्यारेलाल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५९।

'ग्लिम्पसेज ऑफ गांधीजी' (अंग्रेजी) : आर० आर० दिवाकर, हिन्द किताब्स लि०, बम्बई, १९४९।

'(द) ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, १९४२-४७', जिल्द ३ (अंग्रेजी) : सम्पादक : निकोलस मैनसर्घ और ई० डब्ल्यू० आर० लुम्बी, हर मैजेस्टीस स्टेशनरी ऑफिस, लन्दन, १९७१।

'दिस वाज बापू' (अंग्रेजी) : आर० के० प्रभु, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५४।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

'पिलग्रिमेज टु फ्रीडम' (अंग्रेजी) : क० मा० मुन्शी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५६।

प्यारेलाल पेपर्स : नई दिल्लीमें प्यारेलालके पास उपलब्ध कागजात।

'प्राणलाल देवकरण नानजी अभिनन्दन ग्रन्थ' (गुजराती) : प्राणलाल देवकरण नानजी षष्टिपूर्ति अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, बम्बई, १९५६।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स : बम्बई सरकारके आधिकारिक रेकार्ड।

'महात्मा गांधी — द लास्ट फेज', जिल्द १, भाग १ (अंग्रेजी) : प्यारेलाल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९६५।

'महात्मा — लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', जिल्द ६ (अंग्रेजी) : डी० जी० तेंदुलकर, बम्बई, १९५२।

'महाराष्ट्रके कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके साथ महात्मा गांधीजी की बातचीत' : औंध प्रकाशन ट्रस्ट, औंध, पूना, १९४४।

'यंग इंडिया' (१९१८-३१) : बम्बईमें जमनादास द्वारकादास द्वारा संस्थापित अंग्रेजी साप्ताहिक; ७ मई, १९१९ से गांधीजी की देखरेखमें सप्ताहमें दो बार प्रकाशित; ८ अक्टूबर, १९१९ से गांधीजी के सम्पादकत्वमें अहमदाबादसे प्रकाशित साप्ताहिक।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और गांधीजी से सम्बन्धित कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

'लिंक' : नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'लेटर्स ऑफ द राइट ऑनरेबल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री' (अंग्रेजी) : सम्पादक : टी० एन० जगदीशन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९६३।

'संस्मरणो' (गुजराती) : गणेश वासुदेव मावलंकर, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, १९५४।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : गांधीजी से सम्बन्धित पुस्तकों और कागजातका पुस्तकालय तथा अभिलेखागार।

'हरिजन' (१९३३-५६) : हरिजन सेवक संघके तत्त्वावधानमें तथा गांधीजी की देख-रेखमें प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। इसका प्रथम अंक ११ फरवरी, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था; इसके बाद २७ अक्टूबर, १९३३ से मद्राससे प्रकाशित होने लगा, १३ अप्रैल, १९३५ से पुनः पूनासे प्रकाशित होने लगा; तदनन्तर अहमदाबादसे प्रकाशित होता रहा।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१८ दिसम्बर, १९४२–३१ जुलाई, १९४४)

१९४२

१८ दिसम्बर: पूनाके आगाखाँ पैलेसमें, जहाँ गांधीजी ९ अगस्त, १९४२ से नजरबन्द थे, अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'की टु हेल्थ' का जो मूलतः गुजरातीमें लिखी गई थी, संशोधन-कार्य समाप्त किया।

३१ दिसम्बर: लॉर्ड लिनलिथगोको लिखे पत्रमें नववर्षकी बधाई देते हुए कहा: "आप मुझे मेरी गलती या गलतियाँ समझाइए और मैं उनका परिशोध करूँगा।"

१९४३

१२ जनवरी: मध्यप्रान्त सरकारके साथ समझौता होने पर जयकृष्ण भणसालीने उपवास तोड़ दिया।

२६ जनवरी: स्वतन्त्रता-दिवसके अवसरपर गांधीजी ने दुबारा प्रतिज्ञा ली।

२९ जनवरी: लॉर्ड लिनलिथगोको लिखे पत्रमें "यथाशक्ति . . . ९ फरवरीको बहुत सवेरे नाश्ता करने के बाद . . . अनशन" शुरू करने की इच्छा व्यक्त की।

७ फरवरी: सर जॉन गिलबर्ट लेथवेटको लिखे पत्रमे सरकारके साथ गत १४ अगस्त से लेकर सारे पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करने का अनुरोध किया।

८ फरवरी: सर रिचर्ड टॉटनमको लिखे पत्रमें अपने प्रस्तावित अनशनके दौरान अपनी अस्थायी रिहाईके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया।

१० फरवरी: २१ दिनका अनशन आरम्भ किया।

२१ फरवरी: सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवीको भेंट दी।

२३ फरवरी: होरेस जी० अलेक्जैंडरके साथ बातचीत की।

३ मार्च: गांधीजी ने सुबह ९-३४ पर अनशन तोड़ दिया।

४ मई: मुहम्मद अली जिन्नाको लिखे पत्रमें जिन्नाको सीधे पत्र लिखने के निमन्त्रण का स्वागत किया और सुझाव दिया कि "पत्र-व्यवहार द्वारा वार्त्तालाप करने के बजाय हम परस्पर मिलें"!

२७ मई: सर रिचर्ड टॉटनमको लिखे पत्रमें मु० अ० जिन्नाके नाम अपने पत्रको भिजवाने में सरकारकी अस्वीकृतिपर खेद प्रकट किया।

१५ जुलाई: भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' का विस्तृत उत्तर लिखकर नजरबन्दी कैम्पके अधीक्षकको दिया।

१६ जुलाई : सर रिचर्ड टॉटनमको पत्र लिखकर इस अफवाहका खण्डन किया कि मैंने वाइसराय महोदयको पत्र लिखकर अ० भा० कांग्रेस कमेटीका गत ८ अगस्तका प्रस्ताव वापस ले लिया है।

२७ सितम्बर : लॉर्ड लिनलिथगोको लिखे पत्रमें कहा: "आजकल जितने भी उच्च पदाधिकारियोंको जानने का सौभाग्य मुझे मिला है, उनमें से आपके कारण मुझे जितना गहरा दु:ख पहुँचा है उतना किसी औरके कारण नहीं।"

२६ अक्टूबर : सर रिचर्ड टॉटनमको लिखे पत्रमें कहा कि कांग्रेसके खिलाफ आरोपों की एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा जाँच करानी चाहिए।

१८ नवम्बर : खतरनाक वन्य-पशुओं तथा साँप-बिच्छुओंके सम्बन्धमें मीराबहनके साथ बातचीत की।

७ दिसम्बर : निर्मला और देवदास गांधीके साथ बातचीत की।

९ दिसम्बर : देवदास गांधी, मनोरमा मशरूवाला, रमाबहन पारेख और माधवदास कापड़ियाके साथ बातचीत की।

२९ दिसम्बर : एगथा हैरिसनको पत्रमें गांधीजी ने लिखा : " . . . मैं बिलकुल वैसा ही हूँ जैसा तुमने मुझे जाना है। . . . सत्य और अहिंसा, आज पहलेसे भी बढ़कर, मेरे अवलम्ब है।"

१९४४

१४ जनवरी के पश्चात् : विजयलक्ष्मी पण्डितके नाम सन्देशमे उनसे "यह याद रखने को कहा कि भविष्यमें उनके कार्योंमें ही श्री पण्डितकी स्मृति जीवित रहेगी"।

२४ जनवरी : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पत्र लिखकर अपनी नजरबन्दीके आदेश के विरुद्ध "प्रार्थनापत्र देने के अधिकारका" उपयोग किया।

२६ जनवरी : देवदास गांधीके साथ कस्तूरबा गांधीकी आयुर्वेदिक चिकित्साके सम्बन्ध में बातचीत की।

छगनलाल गांधी, जयसुखलाल गांधी, और रामदास गांधीने अपनी पुत्रीके साथ गांधीजी से भेंट की।

२७ जनवरी : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको लिखे पत्रमें गांधीजी ने कस्तूरबा गांधीके इलाज और परिचर्याके लिए क्रमश: डा० दिनशा मेहता तथा कनु गांधीको बुलवाने का अनुरोध किया।

२८ जनवरी : रामदास गांधीके साथ बातचीत की।

११ फरवरी : बम्बईके जेल-महानिरीक्षकको लिखे पत्रमें कहा कि कस्तूरबा गांधीकी चिकित्साके लिए एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिसे भिन्न किसी दूसरी चिकित्सा-पद्धतिको अपनाने का यदि कोई दुष्परिणाम हुआ तो सरकार उससे मुक्त रहेगी।

१४ फरवरी : जेल-महानिरीक्षकके नाम पत्रमें वैद्यराज शिव शर्माको आगाखाँ पैलेसमें ही ठहरने की सुविधा देने की माँग की।

१६ फरवरी : बम्बईके जेल-महानिरीक्षकको पत्र लिखकर तीन विकल्प सुझाये : (१) वैद्यराज शिव शर्माको महलमें ही रहने दिया जाये, (२) कस्तूरबा गांधीको पैरोलपर रिहा किया जाये, (३) यदि सरकारको दोनोंमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकार्य न हो तो मुझे किसी और जेलमें भेज दिया जाये।

२१ फरवरी : डर्बनकी शीरीबाई जालभाई रुस्तमजीको भेजे तारमें कहा कि कस्तूरबा "धीरे-धीरे अन्तकी ओर जा रही है" और मणिलाल तथा सुशीला "अपने काममें जुटे रहे"।

२२ फरवरी : शाम ७-३५ पर कस्तूरबा गाधीका निधन हो गया। गाधीजी ने कस्तूरबा की अन्त्येष्टि-क्रियाके सम्बन्धमें रातको ८ बजकर ७ मिनटपर जेल-महा-निरीक्षकको बोलकर निर्देश लिखाये।

४ मार्च : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको लिखे पत्रमें कहा कि खर्चेको बचाने के लिए जो कि "भारतकी बेजबान जनतासे वसूल किये गये करोसे पूरा किया जाता है", सरकार "मुझे और मेरे साथियोंको . . . किसी भी सामान्य कारागारमें भेज दे"।

भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको लिखे पत्रमें कस्तूरबा गांधीके इलाजके लिए दी गई सुविधाओं और उनकी अन्त्येष्टि-क्रियाके सम्बन्धमें कॉमन्स-सभा में दिये गये लॉर्ड बटलरके वक्तव्यपर खेद प्रकट किया।

९ मार्च : लॉर्ड वैवेलको लिखे पत्रमें १७ फरवरीको लॉर्ड वैवेलने विधान-मण्डलमें जो भाषण दिया था उसकी आलोचना की।

१६ मार्च : अरदेशिर ईदुलजी केटलीको लिखे पत्रमें सभी समवेदना-सन्देश भेजनेवालों को उत्तर भेजने की सरकार द्वारा दी गई सीमित सुविधाका उपभोग करने से इनकार कर दिया।

१ अप्रैल : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको भेजे पत्रमें सरकारके इस दावेका खण्डन किया कि सरकारने कस्तूरबा गाधीके इलाजके लिए "हर सम्भव उपाय" किया।

२ अप्रैल : भारत सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको लिखे पत्रमें केन्द्रीय राज्य परिषद् में गृह-सचिवके इस वक्तव्यका खण्डन किया कि वैद्यराज शिव शर्माकी सेवा प्राप्त करने के लिए भारत सरकारसे सर्वप्रथम अनुरोध ९ फरवरीको किया गया था।

९ अप्रैल : लॉर्ड वैवेलको भेजे पत्रमें सरकारसे अनुरोध किया कि वह "भारतवासियों से उनके निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी मार्फत सहयोग करे"।

३ मई : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको लिखे पत्रमें कहा कि "जबतक सरकार मुझे केवल सम्बन्धियोसे मिलने देती है" और दूसरे व्यक्तियोंको मुझसे मिलने की अनुमति नही देती "तबतक मै अपनेको सम्बन्धियोंसे मिलने के सुखसे वंचित रखूंगा।"

६ मई : नजरबन्दीसे रिहा होने से पूर्व बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पत्र लिखा कि जिस स्थलपर महादेव देसाई और कस्तूरबा गांधीके शवका दाह-संस्कार हुआ था सरकार उस स्थलको अपने हाथमें ले ले।

सुबह ८ बजे गांधीजी को जेलसे रिहा कर दिया गया।

पर्णकुटीकी ओर जाती हुई कारमें बैठे-बैठे गांधीजी कस्तूरबा गांधी और महादेव देसाईके बारेमें सोचने लगे : "वह जेलसे मुक्त होने के लिए बहुत उत्सुक थी, लेकिन मैं जानता हूँ कि इससे अच्छी मौत उसकी नही हो सकती थी। वह और महादेव देसाई दोनो ही . . . अमर हो गये है।"

संध्याकालीन प्रार्थना-सभाएँ आरम्भ की जहाँ हरिजन कल्याण कोषके लिए चन्दा एकत्र किया जाता था।

१० मई : कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक न्यासका अध्यक्ष-पद स्वीकार किया।

११ मई : जुहूमें जहाँगीर पटेलकी कुटियामें आयोजित प्रार्थना-सभामें भाग लिया। डाक्टरोकी रायके मुताबिक मुलाकातो, सभाओ आदिसे सम्बन्धित प्रतिबन्धोका कड़ाईसे पालन किया।

१४ मई : १५ दिनका मौन-व्रत ले लिया।

१५ मईके पूर्व : तार द्वारा इनायतुल्ला खाँ मशरिकीको सूचित किया कि मै जिन्नासे मिलने के लिए तैयार हूँ।

१७ मई : मनोहर बर्वेका संगीत सुना।

१९ मई : धमाकेसे क्षतिग्रस्त बन्दरगाहके स्थलको देखने गये। रुग्ण मंगलदास पकवासा से भेंट की।

२० मई : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको लिखे पत्रमें वी० एस० रामस्वामी शास्त्री की मृत्युपर समवेदना प्रकट की।

मुकुन्दराव रामचन्द्र जयकरको पत्रमें लिखा : "देशने मुझसे बहुत-सी आशाएँ बाँध रखी है। . . . मै अगस्त-प्रस्तावको वापस नही ले सकता।"

२३ मई : गगनविहारी मेहताकी रुग्ण पुत्रीसे मुलाकात की।

२५ मई : चीनियोंके एक दलकी मार्फत चीनके नाम सन्देश भेजा।

२६ मई : दोपहर बाद बड़े गुलाम अली खाँसे भजन सुने।

२८ मई : अपने स्वास्थ्यके लिए प्रार्थना करने घरपर आये ईसाइयोको एक लिखित सन्देश दिया।

२९ मई : दोपहर बाद ३ बजे मौन-व्रत तोड़ा।

३० मई : आंशिक मौन धारण किया; युसुफ मेहर अलीसे भेंट की।

८ जून : जुहूमें फाटक तोड़कर अहातेके अन्दर घुस आई भीड़से शान्तिपूर्ण ढंगसे तितर-बितर होने की अपील की।

९ जून : तेजबहादूर सप्रूको पत्र लिखकर यह आश्वासन दिया कि मै वक्तव्य देने की जल्दबाजी नही करूँगा।

अरुणा आसफ अली को लिखे पत्रमें उन्हें भूमिगत अवस्थामें मरने की बजाय प्रकट होकर आत्म-समर्पण करने की सलाह दी।

अन्नदा चौधरीको पत्रमें लिखा: "गोपनीयता पाप है, और हिंसाका लक्षण है। . . . मै सभी भूमिगत प्रवृत्तियोको वर्जित मानता हूँ।"

होमी पी० मोदीके साथ बातचीत की।

१० जून : गाधीजी ने सरकारके साथ हुए अपने पत्र-व्यवहारकी तथा सरकारी पुस्तिका 'कांग्रेस रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर द डिस्टर्बेन्सेज, १९४२-४३' की नकले मित्रोंको बाँटी।

११ जून : होमी पी० मोदीके साथ बातचीत की।

१२ जून : बम्बई केरलीय समाजके सदस्योंको, जिन्होने गांधीजी के निवास-स्थानपर उनके स्वास्थ्य-लाभके लिए प्रार्थना की थी और उन्हें ५०० रु० की थैली भेंट की थी, गाधीजी ने लिखित सन्देश दिया।

मौन-दिवसपर पत्रकारोको भेंट दी।

१५ जून : कुछ घन्टे मौन धारण करने के बाद गांधीजी सुबह ७-५५ पर जूहूके लिए रवाना हो गये; डॉ० सुशीला नैयर, डा० गज्जर, डा० गिल्डर और महापौर नगीनदास मास्टरके साथ कुरला और सियोन स्टेशनोंके बीच स्थित एक रेलवे क्रॉसिगपर पूना एक्सप्रेस ट्रेन पकड़ी। पूनामें डॉ० मेहताके नैसर्गिक उपचार-गृहमें ठहरे।

१७ जून : वाइसरायको लिखे पत्रमें कार्य-समितिके सदस्योसे मिलने की अनुमति देने की दुबारा प्रार्थना की; साथ-साथ वाइसरायसे उनकी अपनी सहूलियतके मुताबिक कहींपर भी मिलने की इच्छा जाहिर की।

२० जून : 'न्यूज क्रॉनिकल' के स्टुअर्ट गिल्डरको भेंट दी।

२२ जून : वाइसरायने गाधीजी के अनुरोधको अस्वीकार कर दिया; वाइसरायने अपने और गांधीजी के बीच पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करने की इजाजत दे दी।

२९ जून : महाराष्ट्र काग्रेसके प्रतिनिधियोके सम्मुख गांधीजी ने हिन्दुस्तानीमें भाषण दिया।

३० जून : गांधीजी की सहमतिसे चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने अपने फार्मूले और जिन्ना द्वारा उसे अस्वीकार करने की बातको प्रकाशित करने के निर्णयके बारेमें जिन्ना को तार द्वारा सूचित किया। वैसे, राजगोपालाचारीने जिन्नासे उनके निर्णय पर दुबारा गौर करने की अपील की।

४-६ जुलाई : गांधीजी ने स्टुअर्ट गिल्डरको भेंट दी।

१२ जुलाई : सदानन्दको भेजे तारमें गिल्डरको दी गई भेंट-वार्त्ताकी अनधिकृत रिपोर्ट के प्रकाशनके लिए क्षमा-प्रार्थना की।

गिल्डरके साथ हुई चर्चाके ब्योरेके दो विवरणोके साथ-साथ गिल्डरको दी भेंट-वार्त्ताके बारेमें एक वक्तव्य जारी किया।

१३ जुलाई : समाचारपत्रोको दिये गये वक्तव्यमे कहा कि मैने यह कभी नही कहा कि अगस्त-प्रस्ताव रद हो गया है।

१४ जुलाई : एक प्रश्नके उत्तरमे 'हरिजन'का प्रकाशन बिना किसी प्रतिबन्धके दुबारा आरम्भ करने के बारेमें अपनी इच्छा जाहिर की।

समाचारपत्रोको दिये गये वक्तव्यमें रिहा हुए बन्दियोंके साथ सद्व्यवहार करने की अपील जारी की; कांग्रेसजनोकी आपत्तियोका उत्तर दिया।

१५ जुलाई : 'फ्री प्रेस जर्नल'के प्रधान सम्पादकको भेजे पत्रमें उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना अपने विरुद्ध शिकायतको छापने का विरोध किया।

समाचारपत्रोंको दिये वक्तव्यमें क्रिप्स-योजना और अपनी योजनाके बीच अन्तरको स्पष्ट किया।

१६ जुलाई : समाचारपत्रोको दिये वक्तव्यमें कहा कि रिहा हुए लोगोपर लगे प्रतिबन्ध "अपमानजनक" है।

१७ जुलाई : जिन्नाको भेजे पत्रमें उनसे भेंट करने के लिए समय माँगा।

विन्स्टन चर्चिलको लिखे पत्रमें कहा . "मै . . . अनुरोध करता हूँ कि मुझपर विश्वास कीजिए और मेरा उपयोग मेरी और अपनी कौमकी सेवाके लिए तथा उसके द्वारा संसारकी सेवाके लिए कीजिए।"

१९ जुलाई : समाचारपत्रोको दिये वक्तव्यमें यह विश्वास प्रकट किया कि सम्पूर्ण भारतकी स्वाधीनता तो सुनिश्चित बात है।

२० जुलाई : समाचारपत्रोको दिये वक्तव्यमें 'कैवलकेड'के प्रश्नोके उत्तर दिये।

२२ जुलाई . 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया'को दी गई भेंटमें अपने दृष्टिकोणको स्पष्ट करते हुए कहा कि सैनिक नियन्त्रण वाइसराय और प्रधान सेनापतिके हाथोमें रहेगा।

हिन्दू राष्ट्र दलके कुछ उत्तेजित हिन्दुओंको, जिन्होने प्रार्थना-सभामें काले झण्डे लेकर प्रदर्शन किया था, शान्त किया।

२३ जुलाई : समाचारपत्रोंको दी गई भेंटमें सिन्धके गृह-मन्त्रीके इस आरोपका खण्डन किया कि "समूचे भारतमें तोड़-फोड़ आन्दोलन फिरसे आरम्भ कर दिया गया है"।

२४ जुलाई : गाधीजी ने जिन्नाको अगस्तके मध्यमें बम्बईमें अपने निवास-स्थानपर मिलने का निमन्त्रण दिया।

२६ जुलाई : लार्ड मन्स्टर द्वारा लॉर्ड-सभामें दिये गये भाषणके सम्बन्धमें गांधीजी ने समाचारपत्रोको वक्तव्य दिया।

२७ जुलाई : लॉर्ड वैवेलको लिखे पत्रमें कहा कि लॉर्ड वैवेलका भाषण "पारस्परिक मैत्रीपूर्ण वार्त्ताके आधारका काम कर सकता है"।

पंचगनीके नागरिकोके साथ बातचीत की।

२८ जुलाई : समाचारपत्रोंको दिये वक्तव्यमें गांधीजी ने तोड़-फोड़की कार्रवाई और भूमिगत प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त किये।

कॉमन्स-सभामें एमरीने कहा कि गांधीजी का फार्मूला तो "आरम्भिक विन्दुका भी काम नही करता"।

२९-३० जुलाई : ९ अगस्तको मनाने के सम्बन्धमें गांधीजी ने बम्बईके कांग्रेसी नेताओंके साथ बातचीत की।

३० जुलाई : पूरणचन्द्र जोशीको लिखे पत्रमें और अधिक स्पष्टीकरणकी माँग की।

एमरीके वक्तव्यके सम्बन्धमें 'न्यूज क्रॉनिकल' को भेंट दी।

कॉमन्स-सभामें हुई वहसके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

ओ

औ

क

ख

ग

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

य

र